शिवराज-विजय पर सम्मति ।

डाक्टर भगवानदास शान्तिसदन, सिगरा,
(बनारस कैण्ट)
तिथि १३ आश्विन २००३ वि०

श्री अम्बिकादत्तव्यासजी का रचा 'शिवराज-विजय' नाम का गद्यकाव्य, बहुत वर्ष हुए, मैंने आद्योपान्त पढा—कुछ वर्षो के पीछे पुन. आद्योपान्त पढा—इधर उसका पाँचवाँ संस्करण निकला—इस नये संस्करण की एक प्रति में इस काव्य को तीसरी बार पढ रहा हूँ—प्रत्येक आवृत्ति मे आनन्द अधिक आया—

संस्कृत के, पण्डित-मण्डली में, प्राय. तीन गद्यकाव्यो की चर्चा अधिक होती रही है, सुबन्धु की 'वासवदत्ता', बाण की 'कादम्बरी', दण्डी का 'दशकुमारचरित'—दण्डी का गद्यकाव्य तो निश्चयेन, अन्य दोनों की अपेक्षा से अच्छा कहा जा सकता है,—यद्यपि 'अ-लौकिक' असम्भाव्यसी घटनाएँ उसमें कई वेर आई हैं, तथापि भाषा, ओजस्विनी होती हुई भी कुछ अर्थ रखती है, और राजनीति, लोकचातुरी, ललितकला आदि विषयक ज्ञान भी उसमें रक्खा है—पर वासवदत्ता और कादम्बरी के शब्दो की अरण्यानी में तो बेचारा अर्थपथिक सर्वथा भूलभटक कर खो जाता है, उसका पता ही नही लगता—कविता के गुणो मे प्रसाद गुण एक मुख्य गुण है, वह इन दो काव्यभासों में मिलता नही—

विपरीत इसके, शिवराजविजय में, भाषा उत्तमोत्तम, ओजस्विनी भी, अर्थपूर्ण भी, सुबोध्य भी, यथास्थान, यथावसर, उद्दाम भी, कोमल भी। नवोरस भी इसमें बहुत औचिती और दक्षता से रक्खे हैं, वीररस, जिसका अर्वाचीन संस्कृत-साहित्य मे प्राय अभाव ही है, वह इस ग्रन्थ मे प्रधान है, शृङ्गार भी है, और सर्वथा सात्त्विक, सुश्लील, कोमल, प्रीति रूप, कही भी अश्लीलता आने नही पाई है, युद्धो के प्रसग में रौद्र, भयानक, वीभत्स का, और वीर के सम्बन्ध में अद्भुत का, रूप बहुत पर्याप्त मात्रा में दिखा दिया है। राजनीति और चार-चातुर्य और रणकौशल का भी निरूपण बहुत सुन्दर है। सर्वोपरि गुण इसका यह है कि विषय ऐतिहासिक, अधिकाश वास्तविक है, कपोल-कल्पित-नही, और देशभक्ति, जन्म-भूमि-भक्ति, प्रजा की राज-भक्ति, राजा की प्रजा-भक्ति, दोनो की धर्म-भक्ति, और भारतीय-राष्ट्रीय-भाव से भरा है, जिन भावो का अर्वाचीन सस्कृत ग्रन्थो में सर्वथा अभाव है।

मैं जान नही सकता कि क्यो पण्डित मण्डली में अश्लीलता-पूर्ण, 'हठाद्-आकृष्ट-पद-पूर्ण' माघ किरात आदि काव्यो की इतनी महिमा है, और इस रत्नभूत ग्रन्थ से ईर्ष्या नही तो विमुखता है। इसका जितना अधिक प्रचार हो उतना अच्छा है—

भगवान्दास—

साहित्याचार्य पं० अम्बिकादत्त व्यास

जयपुर से लगभग ११ कोस पूर्व 'रावत जी की धूला' नामक चारो ओर पहाड़ियो से घिरा ग्राम वीर-प्रसविनी भूमि राजस्थान के कमल-कोमल करों में कंकण की भाँति शोभित है। मानसिंह के द्वितीय पुत्र दुर्जन सिंह ने धूला को अपनी राजधानी बनाया था। दुर्जन सिंह के वंश में ठाकुर दलेल सिंह हुए, जिनके द्वार-पण्डित आदि गौड, पराशरगोत्रीय, यजुर्वेदी, त्रिप्रवर, भींडा वंशावतंस श्री गोविन्दराम जी हुए। पं० गोविन्दराम के प्रपौत्र पं० राजाराम जी तीर्थयात्रा करते हुए काशी आये और काशी-वासियो के आग्रह के कारण मानमन्दिर मुहल्ले में बस गये। पं० राजाराम जी ज्योतिष और पण्डिताई के अतिरिक्त लेन-देन का व्यवहार भी करते थे, किन्तु व्यवहार-कुशल न होने के कारण महाजनी का व्यवसाय आपके लिये महँगा पड़ा।

भाद्रपद शुक्ल ३ सं० १८७२ वि० को बुधवार के दिन पं० राजाराम के ज्येष्ठ पुत्र पं० दुर्गादत्त का जन्म हुआ। पं० दुर्गादत्त बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे और संस्कृत तथा हिन्दी के सिद्धहस्त लेखक तथा कवि थे। जयपुर के सिलावटो के मुहल्ले में आपकी ससुराल थी। वही चैत्र शुक्ल ८ सं० १९१५ वि० को आपके द्वितीय पुत्र का जन्म हुआ। नवरात्र के अष्टमी के दिन जन्म लेने के कारण पुत्र का नाम अम्बिकादत्त रखा गया। किसी ने ठीक ही कहा है 'होनहार-बिरवान के होत चीकने पात'। बारह वर्ष की अल्पायु में ही व्यास जी भारतेन्दु जी द्वारा आयोजित कवि-गोष्ठियो में समस्या-पूर्तियाँ करने लगे थे।

सं० १९२८ में १३ वर्ष की आयु मे आपका विवाह हुआ।

इस समय आपके परिवार पर अर्थाभाव के बादल मँडरा रहे थे। पैतृक सम्पत्ति के नाम पर आप लोगो के पास काशी के मानमन्दिर मुहल्ले में एक तिमंजिला मकान था। प० दुर्गादत्त जी कथा-वार्ता और यजमानी से जो कुछ थोड़ा-बहुत पैदा कर लेते थे उसी से सात प्राणियो के कुटुम्ब का पालन-पोषण होता था। व्यास जी को अर्थोपार्जन मे अपने पिता की सहायता करनी पडती थी। अर्थ और समय के अभाव में भी आपका अध्ययन यथाक्रम चलता रहा। प० ताराचरण तर्करत्न से साहित्यदर्पण, कुनलाल वाजपेयी और कैलाशचन्द्र भट्टाचार्य से न्याय, राममिश्र शास्त्री से सांख्य और विश्वनाथ कविराज से आपने वैद्यक और बंगला की शिक्षा प्राप्त की। इतना ही नही, १८ कोस पैदल चल कर पथरकटी (डुमराव) में गदका, फरई, बनेठी आदि भी आपने सीखा था।

व्यास जी का पारिवारिक जीवन सुखी न था। स० १९३१ वि० में आपके ऊपर से माँ के अंचल की ममतामयी छाया उठ गई। स० १९३७ वि० में पिता का स्नेह-सम्बल छिन गया। ज्येष्ठ भ्राता आपसे अकारण द्वेष रखते थे। स० १९४२ वि० में १८ वर्षीय लघुभ्राता यौवन की देहरी पर पाँव रखती हुई पत्नी की माँग सूनी करके चला गया। जीवन के वसन्त में ही आपकी बहन का भी संसार उजड गया था। इस मानसिक असन्तुलन अस्थिरता के काल की रचनायें देखकर आश्चर्य होता है। रचनाओं में कहीं भी मानसिक अवसाद या विषाद की छाया तक नहीं पडने पाई है। जीवन की सारी कटुता सारा गरल आपने अपने लिए रख छोडा और अमृत समाज को बाँट दिया।

२२ वर्ष की अल्पायु में ही पूरे परिवार का बोझ आपके दुर्बल कंधो पर आ पडा। सवेरे जयनारायण कालेज के प्रधानाचार्य श्री एम० एम० हाकेट को हिन्दी पढाते थे, फिर धूप में पौन कोस पैदल चलकर रानी बडहर के यहाँ कथा कहते थे। रानी बडहर के काशी से मिर्जापुर चले जाने पर जीविका का यह साधन भी जाता रहा, किन्तु सरस्वती के

इस वरद पुत्र ने लक्ष्मी और सरस्वती के संघर्ष में लक्ष्मी को सदा ठोकर ही मारी। पूर्वजों के जन्मस्थान घूला के ठाकुर महाराज कुमार वैरीसाल सिंह जी के स्वयं आकर बुलाने पर भी आप वहाँ न गये और मन्दिर तथा ६५० बीघे भूमि की सम्पत्ति अपने उस बड़े भाई को दे दी, जिन्हें आप फूटी आँखों भी न सुहाते थे।

सं० १९४० वि० में मधुबनी संस्कृत पाठशाला के प्रधानाचार्य नियुक्त हो जाने पर आर्थिक कठिनाइयाँ कुछ कम अवश्य हुईं। आपकी आय का अधिकांश भाग स्वसम्पादित 'पीयूषप्रवाह' का घाटा पूरा करने में चला जाता था। माई की मृत्यु हो जाने के अनन्तर मधुबनी में आपका मन न लगता था, अत आपने त्यागपत्र दे दिया। इसी बीच मुजफ्फरपुर जिला स्कूल के हेड पण्डित के पद पर आपकी नियुक्ति हो गयी, जहाँ आप अन्त तक बने रहे।

व्यास जी का सामाजिक व्यक्तित्व आकर्षक था। अपने युग के साहित्यकारों में आपके मित्रों की सख्या सर्वाधिक थी। उन्नीस वर्ष की अल्पायु में ही 'ब्रह्मामृत वर्षिणी सभा' के आप लेखाध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। सं० १९३७ वि० से ही आप तत्कालीन धार्मिक आन्दोलनो में भाग लेने लगे थे। मधुबनी के अध्यापन काल में आपने 'धर्मसभा' और 'सुनीति संचारिणी सभा' की स्थापना की। सस्कृत की श्रीवृद्धि के लिए व्यास जी का प्रयास स्तुत्य है। 'विहार सस्कृत सजीवन' की स्थापना और कार्य-प्रणाली में आपका महत्त्वपूर्ण योग था। 'विहार संस्कृत सजीवन' के सभापति का आसन भी आपने सुशोभित किया था।

उन दिनों आर्यसमाज और ब्रह्मसमाज का सुधार-आन्दोलन जोरो पर था, राजनीतिक आन्दोलन की भी धूमिल रूप-रेखा बन रही थी। शास्त्र के निष्णात पण्डित और पुरातन प्रेमी होने के कारण व्यास जी की इन आन्दोलनों के प्रति सहानुभूति न थी। अपने व्यय से उत्तर भारत के प्रमुख स्थानों में घूम-घूमकर आपने आर्यसमाज का विरोध किया।

वाकीपुर में स्वामी सहजानन्द सरस्वती और काशी में स्वामी दयानन्द सरस्वती को भी आपकी प्रतिभा का लोहा मानना पड़ा। वहुत अधिक वोलने के कारण आपको हृद् रोग हो गया।

स० १९५३ वि० से ही आपका स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरता जा रहा था। वैद्यो के मना करने पर भी आप धर्म-प्रचार में सलग्न रहे। मार्गशीर्ष कृष्ण १३ सोमवार स० १९५७ वि० को रात के तीन वजे आप पञ्च तत्त्व को प्राप्त हुए।

व्यास जी में विलक्षण प्रतिभा थी। वक्ता और साहित्यकार होने के अतिरिक्त आप शतरज के खिलाडी, चित्रकार, घुडसवार और सगीतज्ञ भी थे। सितार, हारमोनियम, जलतरग, नसतरग और मृदग वजाने में आप वडे-वडे गवैयो के कान काटते थे।

कविता लिखने में आपको अच्छी गति थी। 'द्रव्यस्तोत्र' आपकी रात भर की रचना है। एक घडी में १०० श्लोक लिख सकने की क्षमता के कारण आपको 'घटिका शतक' की उपाधि मिली थी। आप 'शतावधान' भी थे।

साहित्याचार्य तो आप थे ही, न्याय, वेदान्त, दर्शन और व्याकरण पर भी आपका अधिकार था। हिन्दी, सस्कृत और वगला में धारा प्रवाहिक वक्तृता करते थे। अग्रेजी का भी आपको ज्ञान था। थियोसोफिस्ट कर्नल अल्काट और जार्ज ग्रियर्सन ने आपकी तेजस्विता और वक्तृत्व शक्ति की वडी प्रशसा की थी।

उन्नीसवी शताब्दी में लिंग विपर्यय के कथानक पर 'सामवतम् नाटक' की रचना व्यासजी की असाधारण प्रतिभा का प्रत्यक्ष प्रमाण है। 'शीघ्र लेख' प्रणाली पर भी उन्होंने एक पुस्तक लिखी थी। पाणिनि की सूत्र-पद्धति पर आपने 'आर्यभाषा सूत्राधार' नामक हिन्दी व्याकरण लिखना प्रारम्भ कर दिया था, जो आपकी असामयिक मृत्यु के फलस्वरूप अधूरा रह गया।

व्यासजी की मृत्यु के समय उनके पुत्र प० राधाकुमार व्यास की आयु ७ वर्ष की थी और राधाकुमार जी की मृत्यु के समय उनके पुत्र प० कृष्णकुमार जी ९ वर्ष के थे। यही कारण है कि व्यासजी की अधिकांश कृतियाँ नष्ट हो गई हैं। व्यासजी के उपलब्ध साहित्य के अध्ययन-अध्यापन की ओर विद्वानो को ध्यान देना चाहिए।

संस्कृत-साहित्य में शिवराज-विजय का स्थान एवं

'शिवराज-विजय' संस्कृत वाङ्मय का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है। उपन्यास अध्यायो या प्रकरणो मे लिखा जाने वाला कल्पित रसयुक्त और विवेचनात्मक गद्य रचना का वह प्रकार है—जो जन-जीवन के परस्पर सम्बद्ध चरित्रों और कार्यों का प्रतिनिधित्व करता है। संस्कृत के गद्य काव्यो की कसौटी पर खरा उतरते हुए भी 'शिवराज-विजय' वस्तुत: है उपन्यास ही। शिवराज-विजय का वाक्य विन्यास, अलकरण और शब्दश्लेष कादम्बरी से प्रभावित जान पडता है, किन्तु रूप-शिल्प की दृष्टि से यह रचना वंकिम बाबू के उपन्यासो के जितने ही निकट है उतनी ही संस्कृत के गद्य काव्यो से दूर। 'दशकुमार चरित' का कथानक कमल की पखुरियो सा है, एक आख्यान का अन्त दूसरे का प्रारम्भ है। इसके विपरीत 'शिवराज-विजय' का कथानक उलझी हुई पुष्पित लतिका की भाँति है। 'दशकुमारचरित' का रूप-शिल्प पौराणिक कथाओ जैसा है, अर्थात् उसमें एक वक्ता कथाकार है और एक या एकाधिक श्रोता। अपने मे पूर्ण अनेक स्वतत्र लघु आख्यायिकाये मिलकर एक वडे आख्यान को जन्म देती है। 'शिवराज-विजय' का रूप शिल्प पाश्चात्य उपन्यासो जैसा है, लेखक वातावरण वनाकर पाठको को अपने चरित्रो के बीच में बैठा देता है, जहाँ वे तटस्थ दर्शक की भाँति उनके क्रिया-कलाप देखते हैं। 'शिवराज-विजय' में दो स्वतत्र कथा-धारायें समानान्तर बहती हैं, एक का नायक

रघुवीर सिंह (राम सिंह) है और दूसरी के शिवाजी, किन्तु ये दोनों कथायें भी नितान्त अन्य निरपेक्ष नहीं है।

ऐतिहासिक उपन्यासकार को सामाजिक उपन्यासकार की अपेक्षा कम स्वतन्त्रता मिलती है। अतीत के अनुरूप ही उसे चरित्रों और घटनाओं का संघटन करना पड़ता है। प्रधान चरित्र हमारे इतने निकट होते हैं कि उनका चित्रण करते समय लेखक की कल्पना के लिए बिलकुल अवकाश नहीं रह पाता। उपन्यास की कथावस्तु बहुश्रुत होने के कारण कौतूहल तत्व पर भी आघात पहुँचता है। ऐतिहासिक तथ्यों का बहुत अधिक ध्यान रखने पर रचना ऐतिहासिक उपन्यास न रहकर औपन्यासिक इतिहास हो जाती है और ऐतिहासिक तथ्यों की अवहेलना लेखक का अज्ञान प्रकट करती है। इन्हीं कारणों से ऐतिहासिक उपन्यासकार अनेक प्रासंगिक कथाओं और काल्पनिक चरित्रों की सृष्टि कर लेते हैं। साहित्यकार का सत्य इतिहासकार के सत्य से भिन्न होता है। इतिहासकार वस्तुस्थिति देखता है और साहित्यकार संभावना।

शिवराज-विजय के शिवाजी, भूषण, माल्यश्रीक, अफजल खाँ (अफजल खान), शाइस्ता खाँ (शास्तिखान), कुमार मुअज्जम (मायाजिन्न), जय सिंह और यशवन्त सिंह ऐतिहासिक चरित्र हैं और रघुवीर सिंह (राम सिंह), सौवर्णी, पुरोहित देवशर्मा (वीर सिंह), ब्रह्मचारी गुरु, गौर सिंह, श्याम सिंह, क्रूर सिंह, बदरुद्दीन (बदरदीन), चाँद खाँ (चान्दखान) आदि कल्पित।

ऐतिहासिक चरित्रों के क्रिया-कलापों और आचरण-व्यवहार का चित्रण इतिहासकार की दृष्टि से किया गया है। ऐतिहासिक मान्यताओं का ध्यान रखते हुये व्यास जी ने ऐसे स्थल ढूंढ निकाले हैं जहाँ उनकी प्रतिभा को खुल खेलने का अवसर मिल सके।

औरंगजेब की दुहिता गौहरआरा (रसनारी) के स्थान पर इतिहासकार बीजापुर की राजकुमारी का बन्दी बनाना लिखते हैं। नायक की

गरिमा बढाने और कथा को विकास देने के लिए ही शिवाजी पर शत्रु-तनया की अनुरक्ति दिखाई गयी है। यह ऐतिहासिक सत्य भले न हो, साहित्यकार का सत्य तो है ही।

'शिवराज-विजय' का कथानक शिवाजी के जीवन की दस वर्षों (१६५७—६७ ई०) की घटनाओं पर आधारित है, पाठक सौवर्णी की बढती हुई आयु से सरलतापूर्वक दस वर्षों की अवधि का अनुमान कर सकते हैं।

'शिवराज-विजय' की सबसे बडी विशेषता उसकी उपादेयता है। १८५७ की प्रथम सशस्त्र राज्यक्रान्ति की विफलता ने हमारा विश्वास छीन लिया था। ऐसे समय में जब हवा भी सांस लेते कांपती थी व्यास जी ने शिवाजी का आदर्श हमारे सम्मुख रखा। व्यास जी ने जनता के बीच से एक साधारण जागीरदार के पुत्र को अपना नायक चुनकर दिखा दिया कि धरती को स्वर्ग बनाने के लिए हमें स्वर्ग नही जाना होगा, हम धरती को ही स्वर्ग बना सकते हैं, हां, लगन सच्ची होनी चाहिये।

—हीरालाल तिवारी एम० ए०

MAHAMAHOPADHYAYA
Gopi Nath Kaviraj M. A.

2 A, Sigra,
BENARES

Dated 26-3-46

I have read with great interest the revised edition of the Late Pandit Ambika Datta Vyasa's work entitled "Sivaraja Vijaya" It is a well known historical romance in Sanskrit prose based on the story of the Maharastra Chief Sivaji and written in a graceful and lucid style

The author was a distinguished religious preacher in his time whose Hindi speeches in different parts of the country won for him a great reputation as an orator. But the present work shows him as a gifted Sanskrit writer In the history of Sanskrit prose literature this work, though a recent production, deserves a lasting place

It is hoped that students interested in Sanskrit studies and in the art of Sanskrit composition will appreciate it as a valuable aid

Gopinath Kaviraj

❀ श्री ❀

निर्माणहेतुः

"गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति"

श्लोक एकस्याद्यंशस्य चमत्कार-विशेषाधायकत्वे सर्वोऽपि श्लोकः प्रशस्यते, न च गद्ये तथा सुलभं सौष्ठवम्; गद्ये तु सर्वाङ्गीण-सौन्दर्यमुपलभ्येत चेत्; तदैव तत् प्रशंसा-भाजनं भवेद् भव्यानाम्। पद्ये छन्दःपारवश्यात् स्वच्छन्द-पद-प्रयोगो न भवतीत्यनिच्छताऽपि कविता-प्रसङ्ग-प्राप्तं- स्वाभाविकं स्वल्पमपि वचनीयं क्वचिद् विस्तार्यते, क्वचिद् बह्वपि नियताक्षरैः संक्षिप्य क्षोदिष्ठं विधीयते, क्वचिच्च द्वित्र-स्वाभाविक-पद-प्रयोग-समापनीयान्यपि पारस्परिकालाप-संसक्त-प्राप्त-वाक्यानि जटिलीक्रियन्ते। गद्ये तु यदि किमपि तादृशमस्वाभाविकं स्यात्; तत् कवेरेव निर्वक्ति महदवद्यम्—इत्यादिकारणैः पद्यापेक्षया गद्यमेव महामान्यं भवति, भवति च दुष्करमपि गद्यकाव्यमेव। अत एव शुद्ध-पद्यात्मकेषु बहुषु महाकाव्येष्वपि खण्डकाव्येष्वपि च प्राप्येष्वपि गद्यपद्यात्मकेषु चम्पू-नाटकादिषु चानेकेषूपलभ्यमानेष्वपि, शुद्ध-गद्य-काव्यानि तथा नाऽऽसाद्यन्ते। अस्माकं महामान्या धन्या सुबन्धु-बाण-दण्डिनो महाकवयो ये वासवदत्ता-कादम्बरी-दशकुमारचरितानि सुधामधुराणि सदा सदनुभाव्यानि गद्यकाव्यानि विरचय्य भारतवर्षे सबहु-प्रमोद-वर्षं व्यधिषत, येषां चोक्ति-पर्य्यालोचन-प्राप्त-पर्याप्त-व्युत्पत्तयोऽसङ्ख्याश्छात्रा अद्यापि वर्तन्ते, वर्तिष्यन्ते च चिराय। पूर्वैर्भट्टार-हरिचन्द्र-प्रभृतिभिरेतैर्महाकविभिश्च प्रचारि-

तोऽपि महाकाव्य-सञ्चारो न चिराय स्थितिमकलयत्। भारताभिजन-भाषाकविभिरपि च प्रायः पद्य-प्रकृतिकैरेव समभावि-इति जगत्प्रसिद्धैः सूरदास-प्रभृतिभिरपि पद्यान्येव निबद्धानि। साम्प्रतन्तु समय-महिम्ना भारतीय-वर्तमान-भाषासु बहुधा गद्यकाव्यानि विरच्यन्ते। वङ्ग-गुर्जरादि-भाषासूपन्यासैरेव व्याप्ता विपणयः। हिन्दीभाषाऽपि च प्रत्यहमतिशयमासादयति गद्यसोपानेष्वेव पदाधाने। परं न केवलं प्राकृतिक-गिरां गुरवो गीर्वाणगिरि व्युत्पत्तिगरीयांस उपलभ्यन्ते, न वा कांश्चिद् धन्य-धन्यान् विहाय संस्कृतसाहित्य-व्युत्पन्ना एव, इतर-भाषानुरक्ता विशेषतोऽवलोक्यन्ते। अत एव भारताभिजन-भाषा-कवयः प्रायः स्वभ्रमान् साक्षात्संस्कृतसाहाय्येन शोधयितुं न पारयन्ति, न वा भाषाकविसमादृतान् नवान् नवान् मनोरमान् चमत्कारविशेषाधायकान् पथोऽनुसर्तुं संस्कृत-साहित्य-वैभवेषु च निधीन् वर्द्धयितुं संस्कृतज्ञा एव प्रायशः पारयन्ति। कदाचित् वृन्दारक-वृन्द-वाण्यां गद्यकाव्य-प्रचार-दौर्बल्यस्येदमेव प्रधानं कारणं स्यात्। महदिदमुपहासास्पदं विडम्बनं यद्—मण्डूक इव महापारावार-पारमासादयितुं यतमानस्तादृशं कवि-कौशल-निकषायितं गद्यकाव्यं मादृक्षः क्षोदीयान् जनो रिरचयिषुः संवृत्त इति। काव्यमिदं मा स्म भूत् तादृगभाव-विघट्टकम्, मा स्म वा पुषत् कस्यापि मोद-विशेषम्, परं मया तु सनातनधर्म-धूर्वह-शिवराज-वर्णनेन रसना पावितैव, प्रसङ्गत. सदुपदेश-निर्देशैः स्व-ब्राह्मण्यं सफलितमेव, ऐतिहासिककाव्यरुचीनि स्वमित्राणि रञ्जितान्येव, चिरमस्मत्पूर्वजैः पराशर-पाराशरादिभिरुपासिता संस्कृतभाषा सेवितैव, चक्षुषी निमील्य सविशेष साक्षात्कृता पीयूष-पूर-पूर्णैरिव दृक्पातैरुज्जीवयन्ती पारिजात-कुसुम-वर्षिभिरिव वचनैरुपदिशन्ती जननी सरस्वती समाराधितैव, सद्यः परनिर्वृतिश्च समासादितैव। भवभूतिजगन्नाथादीनां

राजमान्यानां कवि-मण्डल-चक्रवर्तिनान्तु द्वेषविशेषैर्वा स्वग्रन्थ-मार्मिकजनालाभेन वा कारणान्तर-कलापैर्वा महानेव शोक-सङ्घात आसीत्। "कोऽस्मद्ग्रन्थानवलोकयिष्यति ? को वाऽस्माकं गूढ-तात्पर्यं भोत्स्यति ?"-इति चिन्ता-सन्तान-वितान-झञ्झावातोद्धूत-संशय-घनघनाडम्बर एव तथा समरौत्सीद् हृदयाकाशम्; यथा ध्रुवं सद्यः परनिर्वृतिरूप-चन्द्रिका-प्रसरेणापि न रञ्जितमेव तदन्तः-करणकुमुद-वनम्।

तथा च तैरेवोक्तम्—

"ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञा
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥"

"विद्वांसो वसुधातले परवचःश्लाघासु वाचंयमा
भूपालाः कमलाविलासमदिरोन्मीलन्मदाघूर्णिताः।
आस्ये धास्यति कस्य लास्यमधुना धन्यस्य कामालस-
स्वर्वामाधर माधुरीं विधुरयन् वाचा विलासो मम॥"

अहन्तु तादृक्षाणां महाकवीना चरण-रजो-विमर्श-भाजनमपि तदपेक्षयाऽधिकं भाग्यवत्तरोऽस्मीति निश्चिनोमि, यतो मद्ग्रन्थ-मार्मिकस्तु मिथिला-मही-महेन्द्रः, भारत-साम्राज्य-व्यवस्थापक-समाज-सञ्जीवनः, महामान्यः, वदान्यः, धन्य-धन्यः, विविध-बिरुदावली-विराजमानः, राजमानोन्नतः, नतोन्नविदायकः, महा-राजश्रीरमेश्वरसिंहवीरवर एवास्ति। माद्यन्ति च परश्शता वाराण-स्यादि-पण्डित-मण्डल-मण्डना रसास्वादानुकूल-वासना-वासिता-न्तःकरणा विबुध-जनाः।

सोऽयं स्वलेखनी-कण्डूमुपशमयितु लिखितः प्रकाण्ड-लेखो यदि केपाञ्चित् पण्डित-प्रकाण्डाना कर्ण-कण्डूं खण्डयेत्; तन् कृतकृत्यः सवर्त्तेय। ये तु पुरोभागिनो निगीर्यापि प्रबन्धमिमुं तुण्ड-मुण्ड-गण्ड-कण्डूयने., ताण्डव-करण्डीकृत-भ्रूभङ्गैर्भ्राम्यमाणास्मा-कांश्च हासयिष्यन्ति; तेऽप्यसङ्ख्य-प्रणति-पात्राण्येवास्माकम्। ये तु जोष जोषमालोक्यापि काव्यानि, समासाद्यापि च तोपम, सरोष-मुज्जृम्भिताभिर्जाठरज्वालाभिरेव तं जारयन्ति; जारयन्ति ते ग्राव्णोऽपि लौहमपि विषमपि दाधीचास्थीन्यपि चेति विलक्षण-कुक्षयस्ते न कस्य नमस्या' ?

अम्बिकादत्तव्यासः।

॥ श्रीः ॥

शिवराजविजयः

गद्यकाव्यम्



"विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोहितञ्जगत्"
"हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयाद्विमुच्यते" ।
—भागवतम् ।

वागीश्वर्यै नमः ।

शिवाङ्के खेलन्तीं शिवशिरसि गङ्गालहरिका
समुद्यद्गम्भीरध्वनिभरसमुद्दीपितमदाम् ।
निरीक्ष्योत्का वामा सरलहृदयाऽऽघूर्णितवती
यमासेव्यं देव तमिह कलये चित्तनिलये ॥

शिवराज-विजय का हिन्दी अनुवाद

स्पर्शेनैव मनोभुवोऽह जनिता रोमाञ्चरूपाङ्कुराम्
यत्नैर्जातमनोजयोरनुदिनं पत्रादिभिर्वर्द्धिताम् ।
ता पाणिग्रहणाद्भिरेव समये सिक्ता, क्रमात्पुष्पिताम्
स्निग्धा स्नेहलता स्मरामि गिरिजाकेदारयोः प्रीतये ॥ १ ॥
गहनदर्शनशास्त्रमहातलोदधिनिमज्जनकौतुककारिणी ।
सरससंस्कृतकाव्यसुधाम्बुधिं समवगाहतु मेऽद्य सरस्वती ॥ २ ॥
शिवराजजयं नाम गद्यकाव्यमनूद्यते ।
केदारनाथमिश्रेण छात्रेभ्यो राष्ट्रभाषया ॥ ३ ॥

अरुण एप प्रकाशः पूर्वस्था भगवतो मरीचिमालिनः । एप

तत्रभवान् कविकुलचूडामणिः सिद्धसरस्वतीकोऽम्बिकादत्तव्यासो वीररस-प्रधानं गद्यकाव्य चिकीर्षुर्महनीययशसो भारतभागधेयस्य दुर्दान्तोरगजिह्म-जिह्मोत्पाटनकुशलस्य शिववीरस्य चरितचयनेनैव भारती कृतार्थयितव्येति विहितमनोरथ उपक्षिपति वेदव्यासोक्तिं श्रीमद्भागवताद्दुद्धृताम्–विष्णोर्मा-येति । वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरात्मक प्रपञ्चमिति विष्णुर्ब्रह्म, तस्य माया = सत्त्वप्रधानः शक्तिविशेषः । सा चैषा भगवती = समग्रषड्गुणसम्पन्ना ।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णा भग इतीरणा ॥

इति प्रसिद्धो भगपदार्थः—तद्वत्त्वञ्च भगवत्त्वम् । यया = मायया । गच्छतीति जगत् स्थावरस्याप्युपलक्षणम् । सम्मोहितम् = सम्यग्रूपेण मोहितम् ।

हिंस्र = घातुकः । खल = दुष्टः । स्वस्यैव पापेन विहिंसितो भवति, नतु तत्र निमित्तान्तरापेक्षा । साध्नोति परकार्यमिति साधुः । तथाभूतश्च समत्वेन = विवेचकत्वेन । भयाद्विमुच्यते = अपगतभयो भवति । तत्रापि तस्य समत्वमेव हेतुर्न कारणान्तरापेक्षा । तदुक्तम् "न कर्तृत्व न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभु" इति । एतेनाऽऽद्यनिश्वासे पापिनामशोभनाः साधूनाञ्च शोभना आचाराः प्रदर्शिता भवेयुरित्युपक्षिप्तम् । सर्वञ्चेद सर्वतन्त्रस्वतन्त्रस्य भगवतो मायया त्रिगुणात्मिकया निबद्धैरेव समास्थीयत इति, काचन

भगवान् विष्णु की माया, जिसने सम्पूर्ण जगत् को मोह में डाल रखा है, सकल ऐश्वर्यशालिनी है ।

दुष्ट हिंसक अपने पाप से ही मारा गया और सज्जन अपनी समत्वबुद्धि के कारण भय से बच गया ।

पूर्व दिशा में भगवान् सूर्यदेव की यह लालिमा है । यह भगवान्

भगवान् मणिराकाशमण्डलस्य, चक्रवर्ती खेचर-चक्रस्य, कुण्डल-माखण्डलदिश., दीपको ब्रह्माण्डभाण्डस्य, प्रेयान् पुण्डरीक-पटलस्य, शोक-विमोकः कोक-लोकस्य, अवलम्बो रोलम्बकदम्बस्य,

हिन्दुकन्या केनचन दुष्टेन हृता रक्षिता च सा साधुना, दुष्टनाशश्च स्वपापेनैव संवृत्त इति कथाभागश्च । विष्णुनामग्रहणेन मङ्गलमपि शिष्टा-चारानुमितश्रुतिबोधितेतिकर्त्तव्यताकं सूचितम् ।

कथाभागं प्रारभमाणो भगवदादित्यप्रकाशात्मवस्तुनिर्देशरूपमपि मङ्गल समाचरति-अरुण एष इति । पूर्वस्यामिति-"दिशि" इति विशेष्यम् । मरीचीनां मालाऽस्यास्तीति मरीचिमाली = दीधितिपतिः । बहुव्रीहीतरसमा-सोपलक्षककर्मधारयपदघटितमपि "न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेत्तद-र्थप्रतिपत्तिकर" इति वचनं न सार्वत्रिकम्, 'असुब्वत्' इति भाष्यप्रयोगा-दिति ध्येयम् । अरुणः=ईषल्लोहितः । "ज्योतिषां रविरंशुमान्" इति भगवद्विभूतिसमूहपातित्वेन भगवत्त्वं सर्वथा स्फुटम् । अथाऽऽदित्यं विशिनष्टि-एष भगवानिति । "दिनस्य" इत्यन्तं मालारूपकालङ्कारो वैदर्भी रीतिः प्रसादाख्यश्च गुणः । मणिः = रत्नम् । यथा हीरकादिरन्धकारं वारयति प्रकाशयति च पदार्थसार्थं तथाऽयमपि बाह्याभ्यन्तरतमोऽपवार्य प्रकाशयति सकलानर्थानिति मणित्वेन रूपणम् । खे नभसि चरन्ति गच्छन्तीति खेचराः = भगणाः, तेषां चक्रस्य = समूहस्य, चक्रवर्त्ती = सम्राट् । सैन्यं प्रवर्त्तयति सम्राट्, दिनाधिपोऽपि सर्वं ग्रहगणमिति रूपणम् । आखण्डल-दिश. = इन्द्रसम्बन्धिन्याः प्राच्या नायिकायमानाया. । कुण्डलम् = कर्णा-भरणविशेषः । वर्त्तुलत्वमारोपबीजम् । ब्रह्माण्डमेव भाण्डम् = सदनम्, तस्य दीपकः । प्रकाशकत्वमत्राऽऽरोपहेतुः । पुण्डरीकाणाम् = कमलानाम्, "पुण्डरीकं सिताम्भोजम्" इति विशेषग्रहणन्तु नात्र, श्वेतत्वस्याविवक्षित-त्वात्, पटलस्य = समूहस्य । प्रेयान् = अतिशयेन प्रियः । कोकानाम् =

सूर्यदेव आकाशमण्डल के रत्न, नक्षत्रसमूह के सम्राट्, इन्द्र की दिशा (पूर्व) रूपी नायिका के कुण्डल, ब्रह्माण्डरूपी गृह के दीपक, कमलकुल

सूत्रधारः सर्वव्यवहारस्य, इनश्च दिनस्य। अयमेव अहोरात्रं जनयति, अयमेव वत्सरं द्वादशसु भागेषु विभनक्ति, अयमेव कारणं षण्णामृतूनाम्, एष एवाङ्गीकरोति उत्तरं दक्षिणं चायनम्, एतेनैव सम्पादिता युगभेदाः, एतेनैव कृताः कल्पभेदाः, एतमेवाऽऽश्रित्य भवति

चक्रवाकाणाम्, लोकस्य = समुदायस्य। शोकस्य विमोकः = मोक्षः। रूपकम्। कोकमिथुनानां रात्रिविरहः कविसमयसिद्धः। अत्र चक्रवाकादिप्रदर्शनं टीकाकृतामनपेक्षितमसाम्प्रदायिकञ्च, चक्रवाकादिसमासाभिधेयस्य समारोपणादेवोपपत्तेः। रोलम्बानाम् = भ्रमराणाम्, कदम्बस्य = समूहस्य। अवलम्बः = आश्रयः। सर्वश्चासौ व्यवहारः = ऐहिकामुष्मिकलक्षणो व्यापारः, तस्य, सूत्रधारः = प्रवर्त्तयिता। दिनस्य, इनः = स्वामी। "इनः सूर्ये प्रभौ" इति कोशः। इनपदस्य स्वामिसूर्योभयवाचित्वेऽपयत्रापर्यायत्वमेवेति ध्येयम्। अथ स्वभावोक्त्याऽलङ्करोति तमेव भगवन्तम्-अयमेवेति। अहश्च रात्रिश्चाहोरात्रस्तम्। शशधरेऽपि किरणानुप्रवेशद्वारा निशाजनकत्वमेतदीयमेवेति भवति द्वितयजनकत्वमेवकारसार्थक्यञ्चेति विवेचनापरम्। जनयति = प्रादुर्भावयति। वत्सरम् = हायनम्। द्वादशसु भागेषु = मेषादिमासरूपेषु। विभनक्ति = विभजते। "भञ्जो आमर्दने" इत्यस्य रूपम्। भवति चात्र मानव शासनम् 'अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके' इति। षण्णामृतूनाम् = वसन्तग्रीष्मवर्षाशरद्धेमन्तशिशिराणाम्। कारणम् = हेतुः। अयनम् = सूर्यमार्गः। युगानाम् = कृतत्रेताद्वापरकलीनाम्। भेदाः = विभागाः। एतेनैव सूर्येणैव, अन्वादेशत्वादेनादेशः। कल्पभेदाः, षष्ठीतत्पुरुषः। कल्पद्रुमैक-

के प्रेमपात्र, चक्रवाकों का शोक दूर करने वाले, भ्रमरसमूह के आश्रय, समस्त व्यवहार के प्रवर्तक और दिन के स्वामी हैं। ये ही दिन और रात के जनक हैं, ये ही वर्ष को बारह भागों में विभाजित करते हैं, ये ही छः ऋतुओं के कारण हैं और ये ही उत्तरायण तथा दक्षिणायन (उत्तर और दक्षिण मार्ग) का अवलम्बन करते हैं। इन्होंने ही सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग का भेद किया है, इन्होंने ही कल्पों का विभाग किया है,

परमेष्ठिनः परार्द्धसङ्ख्या, असावेव चर्कर्ति बर्भर्ति जर्हर्ति च जगत्, वेदा एतस्यैव वन्दिनः, गायत्री अमुमेव गायति, ब्रह्मनिष्ठा ब्राह्मणा अमुमेवाहरहरुपतिष्ठन्ते। धन्य एष कुलमूलं श्रीरामचन्द्रस्य, प्रणम्य एष विश्वेषामिति उदेष्यन्तं भास्वन्तं प्रणमन्

सहस्रमहायुगात्मकः ख्यातः कालविदाम्। परमेष्ठिनः=विधातुः। परार्द्ध-सङ्ख्या=अन्तिमा परार्द्धनाम्ना ख्याता संख्या। चर्कर्ति=पुनः पुनः करोति। यङ्लुगन्तम्। यङ्लुकश्छान्दसत्वं तु न वैयाकरणसम्प्रदायसिद्ध न वा महाकविजनानुमोदितमिति भूयो भूयः प्रयोगान् प्रदर्शयति। यङ्लुगन्तत्रित-येनोत्पत्तिस्थिति-लयकर्तृत्वं निवेदितम्। वन्दिनः=स्तुतिपाठकाः। वेदा. =ऋग्-यजुःसामाथर्वाभिधाः। एतेन सूर्ये ब्रह्मदृष्टिरिति सूचितम्। "अन्त-स्तद्धर्मोपदेशात्" इत्यधिकरणे हि निर्णीतमादित्योपाधिब्रह्मस्तूयमानत्वम्। अत एव "गायत्र्यमुमेव गायती" त्येवकारसहितं वाक्य स्वरसतः सङ्गच्छते। गायत्र्याश्च मुख्यं वाच्यं ब्रह्मैवेति बृहदारण्यकादिषु सुनिरूपितम्। "गायन्तं त्रायत" इति तद्व्युत्पत्तिरप्यत एवोपपद्यते। ब्रह्मणि निष्ठा येषा ते, वेदपारगा इत्यर्थः। उपतिष्ठन्ते=उपासते। "उपाद्देवपूजा-सङ्गतिकरण-मित्रकरण-पथिष्वि" त्यात्मनेपदम्। भास्वन्तम्=सूर्यम्। "भास्वद्विवस्व-त्सप्ताश्वहरिदश्वोष्णरश्मय" इत्यमरः। भास्वत्त्वप्रणतिहेतुः। प्रणामो हि स्वापकृष्टत्वबोधनम्, तच्च प्रणम्ये गुणेषु सत्स्वेवेति न तिरोहितम्।

इनका आधार लेकर ही ब्रह्मा की परार्द्ध (सबसे बडी और अन्तिम) सङ्ख्या पूरी होती है और ये ही बार-बार जगत् की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। वेद इन्हीं की वन्दना करते हैं, गायत्री इन्हीं का गान करती है और ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण प्रतिदिन इन्हीं की उपासना करते है। भगवान् रामचन्द्र के कुल के मूल ये सूर्यदेव धन्य हैं। ये भगवान् सूर्य सभी के प्रणम्य हैं, यह विचार कर, उदय होते हुए सूर्य को प्रणाम करता

निजपर्णकुटीरात् निरगात् कश्चन गुरुसेवन-चतुरो वटुः।

"अहो ! चिरायास्मि सुप्तः, [illegible] पुण्यमयः समयोऽतिवाहितः, समयोऽयम् [illegible] चरणानाम्, तत्पूर्वम् अवचिनोमि कुसुमानि" इति विचिन्त्य कदली-दलमेकमाकुञ्च्य, तृणशकलैः सन्धाय, पुटकं निर्माय, [illegible] कर्तुमारेभे।

१

ह्रस्वा कुटी कुटीरः। "कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः"। [illegible]। विप्रश्चासौ विप्रस्य वा वटुर्विप्रवटुः—ब्राह्मणबालकः।

अहो=साश्चर्यखेदे [illegible]।

'नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥'

इत्यादिभिः सन्ध्यावन्दनादिनित्यकर्मानुष्ठाने [illegible] दिना तत्कालातिपातने स्वाभाविको हि क्षोभः सताम्। चिरकालात्=चिरम्। "चिराय चिररात्राय चिरस्याद्याश्चिरार्थकाः" इत्यमरः। [illegible] जालम्=आनायः, तत्परतन्त्रेण=तदधीनेन। पुण्यमय, "ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्" इति मनूक्त्या। [illegible] अव-चिनोमि=सङ्कलयामि। कदली=रम्भा, तस्या दलम्=पत्रम्। आकु-ञ्च्य=भुग्नं विधाय। तृणानां शकलैः=खण्डैः। सन्धाय=संयोज्य। पुटमेव पुटकम्=समुद्गः। "दोना" इति हिन्द्याम्। पुष्पाणाम्, अवचयः=सङ्ग्रहः, लवनं वा, तम्।

हुआ, कोई गुरुसेवा में कुशल ब्राह्मण बालक अपनी पर्णकुटी से बाहर निकला।

ओह, मैं बहुत देर तक सोता रहा, निद्रारूपी जाल में फँसकर मैंने यह पुण्यमय समय गवाँ दिया, यह हमारे गुरुजी की सन्ध्योपासना का समय है। इसलिये तुरन्त फूल तोड़ लाऊँ, यह सोचता हुआ वह, केले के एक पत्ते को मोड़ कर, तिनकों से जोड़ कर, दोना बना कर, फूल चुनने लगा।

वटुरसौ आकृत्या सुन्दरः, वर्णेन गौरः, जटाभिर्ब्रह्मचारी, वयसा षोडशवर्षदेशीयः, कम्बुकण्ठः, आयतललाटः, सुबाहुर्विशाललोचनश्चाऽऽसीत् ।

कदलीदलकुञ्जायितस्य एतत्कुटीरस्य समन्तात् पुष्पवाटिका, पूर्वतः परम-पवित्र-पानीयं परस्सहस्र-पुण्डरीक-पटल-परिलसितं पतत्रि-कुल-कूजित-पूजितं पयःपूरपूरितं सर आसीत् । दक्षिणतश्चैको निर्झर-

---

आकृत्या = आकारेण । "प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानमि" ति तृतीया । वर्णेनेत्यत्रापि । जटाभिः = सटाभिः । "इत्थंभूतलक्षण" इति तृतीया । जटाज्ञाप्यब्रह्मचारित्वसवलित इत्यर्थः । षोडशवर्षदेशीयः = ईषदसमाप्त-षोडशवर्षः । "ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः" कम्बुरिव कण्ठो यस्य स शङ्खग्रीव इत्यर्थः ।

कुञ्ज इव = लतादिपिहितोदर इव, आचारादित्यकुञ्जायिष्ट । "कर्तुः क्यङ् सलोपश्च" ति क्यङन्तात् क्ते कुञ्जायितम् । कदलीदलैः कुञ्जायितस्येति समासः । लुप्तोपमालङ्कारः । समन्तात् = परितः । पूर्वतः = पूर्वस्याम् । "तसिलादिष्वाकृत्वसुच" इति पुंवत्त्वम् । परस्सहस्राणाम् = सहस्राधिका-नाम्, पुण्डरीकाणाम् = सिताम्भोजानाम्, पटलेन = समूहेन, परत = सर्वतः, लसितम् = शोभितम् । पतत्रिणाम् = पक्षिणाम्, कुलस्य = गणस्य, कूजितेन = शब्देन, पूजितम् = विराजितम् । पयसां पूरेण =

उस बालक की आकृति सुन्दर थी और रंग गोरा था । जटाओं से वह ब्रह्मचारी प्रतीत होता था और अवस्था लगभग सोलह वर्ष की थी । उसका कण्ठ शङ्ख का सा और ललाट विस्तीर्ण था, भुजाएँ प्रशस्त और आँखें बड़ी-बड़ी थीं ।

चारों ओर से केले के वृक्षों से घिरी होने के कारण कुञ्ज के समान लगने वाली इस पर्णकुटी के चारों ओर पुष्पवाटिका थी । पूर्व की ओर, परमपवित्र जल वाला, सहस्रों श्वेतकमलों से पूर्ण, पक्षियों के कलरव से सुशोभित और पानी से लबालब भरा एक तालाब था । दक्षिण की ओर

झर्झर-ध्वनि-ध्वनित-दिगन्तरः फल-पटलाऽऽस्वाद-चपलित-चञ्चु-पतङ्ग-कुलाऽऽक्रमणाधिक-विनत-शाख-शाखि-समूह-व्याप्तः सुन्दर-कन्दरः पर्वतखण्ड आसीत्।

यावदेष ब्रह्मचारी बटुरलिपुञ्जमुड्डीय कुसुमकोरकानवचिनोति,

प्रवाहेण, पूरितम्=भरितम्। विशेषणानि मानि चत्वारि सरसो विशेष्य-भूतस्य। दक्षिणतः=दक्षिणस्यां दिशि। पर्वतखण्ड आसीदित्यन्वयः। पर्वतखण्डः=प्रत्यन्तपर्वतः "टेकरी" इति हिन्दी। त्रिभिरपि विशे-षणत्रयेण—निर्झरस्य=प्रवाहस्य, "वारिप्रवाहो निर्झरो झरः" इत्यमरः, झर्झर-ध्वनिना ध्वनितम्=नादितम्, दिगन्तरम्=दिक्प्रान्तभागो यस्य सः। झर्झर इति जलशब्दानुकृतिः। फलानां पटलस्य=समूहस्य, आस्वादेन=भक्षणेन, चपलिताः=चञ्चलाः, चञ्चवः=त्रोट्यः, "चञ्चुस्त्रोटिरुभे स्त्रियौ" इत्यमरः, येषां ते च ते पतङ्गाः=पक्षिणः, "पतङ्गौ पक्षिसूर्यौ च" इत्य-मरः, तेषां कुलम्=समूहः, तस्याक्रमणेन, अधिकम्=अत्यन्तम्, विनताः=नम्रभूताः, शाखाः=शिखाः, "शिखा शाखा शिफा लते" त्यमरः, येषां ते च ते शाखिनः=वृक्षाः, "वृक्षो महीरुहः शाखी विटपी पादपस्तरुः" इत्यमरः, तेषां समूहेन व्याप्तः=आवृतः। सुन्दराः=शोभनाः, कन्दराः=गुहाः, यस्य सः। "दरी तु कन्दरो वा स्त्री" त्यमरः। अत्रानुप्रासः, शब्दालङ्कारो गौडी च रीतिः।

ब्रह्म=वेदः, तदध्ययनार्थं व्रतमपि ब्रह्म, तच्चरतीति ब्रह्मचारी। "ब्रह्म-चर्यमहिंसा चे" त्यादौ तु यमभेदविशेषस्य मैथुनत्यागस्यैव ब्रह्मचर्यपदवाच्यता। अलीनाम्=भ्रमराणाम्, पुञ्जः=राशिः, "स्यान्निकायः पुञ्जराशी" इत्य-

झरने की झर-झर ध्वनि से दिशाओं को मुखरित करनेवाली, फल खाने से चञ्चल हो गई चोंच वाले पक्षियों के फुदक फुदक कर बैठने से और भी अधिक झुक जाने वाली शाखाओं वाले पेड़ों से व्याप्त, तथा सुन्दर गुफाओं वाली एक पहाड़ी (या टेकरी) थी।

ज्यों ही वह ब्रह्मचारी बालक भौंरों को उड़ाकर, फूल की कलियाँ

तावत् तस्यैव सतीर्थ्योऽपरस्तत्समानवयाः कस्तूरिका-रेणु-रूपित इव श्यामः, चन्दन-चर्चित-भालः, कर्पूरागुरु-क्षोद-च्छुरित-वक्षो-बाहु-दण्डः, सुगन्ध-पटलैरुन्निद्रयन्निव निद्रा-मन्थराणि कोरक-निकुरम्बकान्तराल-सुप्तानि मिलिन्द-वृन्दानि झटिति समुपसृत्य निवारयन् गौरवटुमेवमवादीत्—

मरः, तम्, अवधूय=निवार्य। कुसुमानां कोरकाः=कलिकाः, "कलिका कोरकः पुमान्" इत्यमरः, तान्। अवचिनोति=संकलयति। सतीर्थ्यः= सहाध्यायी। "समानतीर्थे वासी"ति यप्रत्यये "तीर्थे ये" इति सादेशः। "सतीर्थ्यास्त्वेकगुरव" इत्यमरः। तेन समानं वयः=अवस्था, यस्य सः। सतीर्थ्यं विशिनष्टि चतुर्भिर्विशेषणैः। श्याम इत्याद्य विशेषणम्। स्वभावतः कृष्णवर्णं तमुत्प्रेक्षते-कस्तूरिकायाः=मृगनाभेः, रेणुभिः=रजोभिः, रूपित इव=छुरित इव। चन्दनेन=गन्धसारेण, चर्चितम्=लिप्तम्, भालम्= ललाटम्, यस्य सः। कर्पूरस्य=घनसारस्य, अगुरोः=नृपार्हस्य, "अगर" इति हिन्दी, च क्षोदेन=चूर्णेन, छुरितम्=व्याप्तम्, वक्षोबाहु-दण्डम्=उरःस्थलभुजद्वयम्, यस्य सः। सुगन्धपटलैः=सौरभसमूहैः, निद्रया मन्थराणि=अलसानि। कोरकाणाम्=कलिकानाम्, निकुरम्बकाणि=वृन्दानि, "निकुरम्ब कदम्बकम्" इत्यमरः। तेषाम, अन्तराले=अभ्यन्तरे, सुप्तानि=शयानानि। मिलिन्दानाम्= भ्रमराणाम्, वृन्दानि=समूहान्। उन्निद्रयन्निव=जागरयन्निव। अन्व-यमनुसृत्यात्र व्याख्यातम्। सुगन्धलोलुपा द्विरेफाः श्यामबटुशरीरानुलिप्त-

तोडने लगा, उसका सहपाठी और समवयस्क दूसरा ब्रह्मचारी जो कस्तूरी की बुकनी से सना हुआ सा साँवले रंग का था, मस्तक पर चन्दन लगाये था, और वक्षःस्थल तथा बाहुओं पर कपूर और अगर की बुकनी रमाये था—नींद से अलसाये और कलियों के अन्दर सोये हुए भौंरों को सुगन्ध की गमक से जगाता हुआ सा, झटपट समीप आकर, उस गोरे बालक को मना करता हुआ बोला—

अलं भो अलम्! मयैव पूर्वमवचितानि कुसुमानि, त्वं तु चिरं रात्रावजागरीरिति क्षिप्रं नोत्थापित', गुरुचरणा अत्र तडागतटे सन्ध्यामुपासते, सस्थापिता मया निखिला सामग्री तेषां समीपे। या च सप्तवर्षकल्पाम्, यावनत्रासेन निःशब्द रुदतीम्, परम-सुन्दरीम्, कलित-मानव-देहामिव सरस्वतीं सान्त्वयन्, मरन्द-

चन्दन-घनसार-कस्तूरिका-परिमलमाघ्राय पुष्पेभ्य उड्डीय तच्छरीरनिपतनो-त्सुकाः सञ्जाता इति स्वाभाविकवार्तायां जागरणमुखेनाग्रोत्प्रेक्षणम्।

अल भो अलम्, पुष्पावचय निषेधति। इतः पर काश्चित्स्थलवि-शेषानपहाय वृत्तक नाम गद्यम्। "अकठोराक्षर स्वल्पसमास वृत्तक मतम्" इति तल्लक्षणात्, एतदेव "अनाविद्धपद चूर्णम्" इति वामनसूत्रे चूर्णक-नाम्नाऽभिहितम्। अजागरीः, "जागृ" धातोर्लुङि सिपि रूपम्। सप्तवर्ष-कल्पाम् = असमाप्तसप्तवर्षाम्। यवनेभ्य आगतो यवनाना वाऽय यावनः, स चासौ त्रासस्तेन। यवनजवनशब्दौ सस्कृतसाहित्ये समायातौ। आद्यो वशिष्ठविश्वामित्रसग्रामे धेनुस्तनसमुत्पन्नेषु रूढः, परश्च सगरसग्रामे वशिष्ठ-परित्याजितार्यधर्मेषु सागरपारस्थक्षत्रियेष्विति त्यक्तमहामहोपाध्यायपदवांकाः शक्तिसम्प्रदायाचार्याः श्रीपञ्चाननतर्करत्नभट्टाचार्या'। तन्मतानुसरणे भारतसमागतेष्वेषु जवनशब्दप्रयोग एवोचित इति भाति। कलित' — धारितः मानवो देह, यया सा, ताम्, मानवरूपेणावतीर्णां सरस्वती-मिवेत्युत्प्रेक्षा। मरन्देन=पुष्परसेन, मधुरा = मिष्टाः, अपा विशेषणम्। "अयि दलदरविन्द! स्यन्दमानं मरन्दम्, तव किमपि लिहन्तो

बस भाई बस। फूल मैंने पहले ही तोड रखे हैं। तुम रात में देर तक जागते रहे थे इसीलिये तुम्हें जल्दी नहीं जगाया। गुरु जी यहाँ तालाब के किनारे सन्ध्योपासना कर रहे हैं। मैंने सारी सामग्री उनके पास पहुँचा दी है। जिस, लगभग ७ वर्ष की अवस्था वाली, यवनों के भय से सिसकियाँ भर-भर कर रोने वाली, परम सुन्दरी, मानवशरीर धारण करके आई हुई सरस्वती के समान, कन्या को, ढाढस बँधाते, मधुर जल

मधुरा अपः पाययन्, कन्दखण्डानि भोजयन्, त्वं त्रियामाया यामत्रयमनैषी'; सेयमधुना स्वपिति, उद्बुद्धय च पुनस्तथैव रोदिष्यति, तत्परिमार्गणीयान्येतस्याः पितरौ गृहं च—"

इति संश्रुत्य उष्णं निःश्वस्य यावत् सोऽपि किञ्चिद्वक्तुमियेष तावदकस्मात् पर्वतशिखरे निपपात उभयोर्दृष्टिः।

तस्मिन्न पर्वते आसीदेको महान्कन्दरः। तस्मिन्नेव महामुनिरेकः समाधौ तिष्ठति स्म। कदा स समाधिमङ्गीकृतवानिति कोऽपि न वेत्ति। ग्रामणी-ग्रामीण-ग्रामाः समागत्य मध्ये मध्ये तं पूज-

मञ्जु गुञ्जन्तु भृङ्गा" इति पण्डितराजपद्ये प्रयुक्तोऽयं मरन्दशब्दः। मरम्=भ्रमरमरणम्, द्यति=खण्डयतीति मरन्दः भ्रमरजीवनम्, मकरन्द इति व्युत्पत्तिलभ्यत्वमर्थस्य। पाययन्, णिजन्ताच्छतरि। कन्दाः=ऋषीणां खाद्यविशेषाः। "शालूकं कन्दमौत्पलम्" "कन्दमस्त्री मूलसस्यम्" इति च वैजयन्ती। त्रियामायाः=रात्रेः। "रात्रिस्त्रियामा क्षणदा क्षपे" त्यमरेण रूढत्वम्। अत एव यामत्रयमिति प्रहरत्रयार्थकं सङ्गच्छते। परिमार्गणीयानि=अन्वेषणीयानि। नपुंसकमनपुंसकेनेत्येकशेषः।

वक्तुमियेष=कथयितुमिच्छति स्म।

समाधौ=चित्तवृत्तिनिरोधात्मके योगे। ग्रामण्य=ग्रामाधिपाः, 'लम्बरदार, जमीन्दार', इति हिन्दी, ते च ते, ग्रामे भवा ग्रामीणा'=ग्रामवासिनः,

पिलाते और कन्दो के टुकडे खिलाते हुए, तुमने रात के तीन पहर बिता दिये थे, वह इस समय सो रही है, जागने पर फिर वैसे ही रोयेगी, इसलिये उसके माता पिता और घर का पता लगाना चाहिये।

यह सुन कर गर्म साँस लेकर, ज्यों ही उसने भी कुछ कहना चाहा, त्यों ही अचानक उन दोनों की निगाह पहाडी की चोटी पर पडी।

उस पर्वत में एक बहुत बड़ी गुफा थी। उसमें एक महामुनि समाधि लगाये थे। उन्होंने समाधि कब लगाई थी इसका पता किसी को न था।

यन्ति प्रणमन्ति स्तुवन्ति च । तं केचित् कपिल इति, अपरे लोमश इति, इतरे जैगीषव्य इति, अन्ये च मार्कण्डेय इति विश्वसन्ति स्म । स एवायमधुना शिखरादवतरन् ब्रह्मचारिभ्यामदर्शि ।

"अहो ! प्रबुद्धो मुनिः ! प्रबुद्धो मुनिः ! इत एवाऽऽगच्छति, इत एवाऽऽगच्छति, सत्कार्योऽयम् सत्कार्योऽयम्" इति तौ सम्भ्रान्तौ बभूवतुः ।

अथ समापित-सन्ध्यावन्दनादिक्रिये समायाते गुरौ, तदाज्ञया

तेषां ग्रामाः=समूहाः । श्रुत्यनुप्रास-प्रदर्शनमात्रफलकोऽयम् । सरसे रौद्रादिरसाभाववति प्रकृते दोषत्वमेतस्येति केचित् । तम्=समाधिनिरतम् । कपिल-लोमशजैगीषव्यमार्कण्डेयाश्चिरञ्जीविनो महर्षयः । "नारद इत्यबोधि सः" इत्यादिवदितिना निपातेनाभिहितत्वात्र तेषां द्वितीयान्तता विश्वसन्तिक्रियाकर्मत्वेऽपीति बोध्यम् । ग्रहीतृभेदादेकस्यैवानेकधोल्लेखादुल्लेखालङ्कारः । अदर्शि =दृष्टः । कर्मणि लुङि रूपम् ।

सत्कार्यः =आदरणीयः । सम्भ्रान्तौ =क्षुभितौ । बहोः कालात् कन्दरायां निवसन् मुनिरकस्माद्बहिरायात इति हर्षोद्रेकेण व्याकुलौ बभूवतुः । अत एव च तदुक्तिषु साम्रेडता ।

समापिता सन्ध्यावन्दनादिक्रिया येन सः, तथाभूते । आदिना स्वेष्ट-

---

कभी-कभी ग्राम-प्रधान और ग्रामीण उनका पूजन, वन्दन और स्तवन कर आते थे । उन्हें कोई कपिल, कोई लोमश, कोई जैगीषव्य और कोई मार्कण्डेय समझता था । दोनों ब्रह्मचारियों ने, इस समय, उन्हीं को शिखर से उतरते देखा ।

"अहा ! मुनि जग गये । मुनि जग गये । इसी ओर आ रहे हैं, इसी ओर आ रहे हैं, इनका सत्कार करना चाहिये, इनका सत्कार करना चाहिये" यह कहते हुए वे दोनों शीघ्रता करने लगे ।

तदनन्तर, सन्ध्यावन्दन आदि कृत्य समाप्त कर के गुरु के आ जाने और उनकी आज्ञा से गोरे ब्रह्मचारी के, सन्ध्यावन्दन आदि नित्यकर्म

नित्यनियम-सम्पादनाय प्रयाते गौरवटौ, छात्रगण-सहकारेण प्रस्तुतासु च स्वागत-सामग्रीषु, "इत आगम्यतां सनाथ्यतामेष आश्रम" इति सप्रणाममभिगम्य वदत्सु निखिलेषु, योगिराज आगत्य तन्निर्दिष्ट-काष्ठ-पीठं भास्वानिवोदयगिरिमारुरोह, उपाविशच्च।

तस्मिन् पूज्यमाने, "योगिराडुत्थित इति, आयात इति च" आकर्ण्य कर्णपरम्परया बहवो जना. परितः स्थिताः। सुघटितं शरीरम्, सान्द्रां जटाम्, विशालान्यङ्गानि, अङ्गारप्रतिमे नयने, मधुरां गम्भीराञ्च वाचं वर्णयन्तश्चकिता इव सञ्जाताः।

देवतापूजन-स्वेष्टगुरुमन्त्रजपादिः। नित्या ये नियमा =सन्ध्यावन्दनादयः-तेषा सम्पादनाय। छात्रगणस्य, सहकारेण=साहाय्येन। स्वागत-सामग्रीषु=उपचारद्रव्येषु। "यस्य च भावेन भावलक्षणमि" ति भावाधिकरणे सप्तमी। प्रस्तुतासु=सन्नद्धासु। सनाथ्यताम्=समलङ्क्रियताम्। निखिलेषु=समुपस्थितेषु सर्वेषु। जनेष्विति शेषः। काष्ठपीठम् = दारुनिर्मिता चतुष्पादिकाम्। "चौकी" इति हिन्दी। उदयगिरिमिव=उदयाचलमिव। आरुरोह=अधिशिश्रिये। उपाविशत्=आसितवान्। न सूर्य इवाधिश्रित्य दूरं गतोऽपि तु तत्रैव स्थित इति क्रियाद्वयमुपात्तम्। उपमालङ्कार.।

सुघटितम्=यथावस्थित-शोभनाङ्ग-संस्थानम्। सान्द्राम्=घनाम्। अङ्गारप्रतिमे=अङ्गारसदृशे, प्रतिमाशब्दोऽत्रोपमावाचकः, दृष्टश्च तादृशेऽर्थे "न तस्य प्रतिमा अस्ति" इति वेदे, "गतः सुखान्यप्रतिमानि

करने के लिये, चले जाने पर, छात्रों के सहयोग से स्वागत सामग्री के प्रस्तुत हो जाने और प्रणामपूर्वक सभी उपस्थित लोगों के "इधर पधारिये, इस आश्रम को सनाथ कीजिये" यह कहने पर, योगिराज आकर, उनके द्वारा निर्दिष्ट चौकी पर, उदयाचल पर सूर्य की भाँति चढ़कर बैठ गये।

उनकी पूजा हो ही रही थी कि 'योगिराज समाधि से जग गये हैं और यहाँ आये हैं' यह समाचार एक दूसरे से सुनकर, चारों ओर लोगों की भीड़ लग गई। उनके सुगठित शरीर, घनी जटाओं, विशाल

अथ योगिराजं सम्पूज्य यावदीहितं किमपि आलपितुम्, तावत् कुटीराद् अश्रूयत तस्या एव बालिकायाः सकरुण-रोदनम्।

ततः "किमिति? कुत इति? केयमिति? कथमिति?" पृच्छापरवशे योगिराजे ब्रह्मचारिगुरुणा बालिकां सान्त्वयितुं श्यामवटुमादिश्य कथितम्—

भगवन्! श्रूयतां यदि कुतूहलम्। ह्य सम्पादित-सायन्तन-कृत्ये, अत्रैव कुशाऽऽस्तरणमधिष्ठिते मयि, परितः समासीनेषु छात्र-वर्गेषु, धीर-समीर-स्पर्शेन मन्दमन्दमान्दोल्यमानासु व्रततिषु,

---

ह्विते"ति वाल्मीकीये च। पृच्छा=प्रश्नः, तत्परवशे=तत्परतन्त्रे।

कुतूहलम्=कौतुकम्। वृत्तान्त-ज्ञानोत्कण्ठेति यावत्। ह्यः=गतदिवसे, सम्पादितम्=विहितम्, सायन्तनम्=सायभवम्, कृत्यम्=सन्ध्यादि येन तादृशे। कुशास्तरणम्=कुशासनम्। "कुश की चटाई" इति हिन्दी। 'अधिशीङ्' इति कर्मसंज्ञा। धीरः=मन्दगतिः, समीरः= वायुः, तस्य स्पर्शेन। आन्दोल्यमानासु=सञ्चाल्यमानासु। व्रततिषु= लतासु। 'वल्ली तु व्रततिर्लता' इत्यमरः।

अगो, अगारों के समान (लाल) नेत्रों और मधुर गम्भीर वाणी का बखान करते हुए लोग चकित और मन्त्रमुग्ध से हो गये।

तदनन्तर, योगिराज का विधिवत् पूजन-सत्कार कर, ज्यों ही ब्रह्मचारी के गुरु ने उनसे कुछ पूछना चाहा, त्यों ही कुटी से उस बालिका का करुण क्रन्दन सुन पड़ा। तब योगिराज के, "यह क्यों रो रही है? कहाँ से आई है? कौन है? कैसे आई" यह पूछने पर ब्रह्मचारी के गुरु ने साँवले ब्रह्मचारी को बालिका को ढाढस बँधाने के लिये भेज कर, कहना प्रारम्भ किया—

भगवन्! यदि आपको इसका वृत्तान्त जानने की उत्कण्ठा है तो सुनिये। कल, सायकालीन नित्यकर्म से निवृत्त होकर, मैं यहीं कुशासन पर बैठा हुआ था और मेरे चारों ओर छात्रगण बैठे थे,

समुदिते यामिनी-कामिनी-चन्दनबिन्दौ इव इन्दौ, कौमुदी-कपटेन सुधाधारामिव वर्षति गगने, अस्मन्नीतिवार्ता शुश्रूषुषु इव मौनमाकलयत्सु पतग-कुलेषु, कैरव-विकाश-हर्ष-प्रकाश-मुखरेषु चञ्चरीकेषु, अस्पष्टाक्षरम्, कम्पमान-निःश्वासम्, श्लथत्कण्ठम्, घर्घरितस्वनम्, चीत्कारमात्रम्, दीनतामयम्, अत्यवधानश्रव्यत्वादनुमितदूरविप्रतं क्रन्दनमश्रौषम्। तत्क्षणमेव च "कुत इदम्? किमिदमिति द्रष्टा

इन्दौ = चन्द्रमसि। समुदिते = उदय प्राप्ते। चन्द्रमसं रूपयति— यामिनी = निशीथिनी, सैव कामिनी = ललना, तस्याः, चन्दनबिन्दौ= ललाट-तिलके इव। कौमुदी=चन्द्रिका, 'चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ने' त्यमरः, तस्याः कपटेन=व्याजेन। वर्षतीवेत्युत्प्रेक्षा। पतगकुलेषु=पक्षिसमूहेषु। मौनम् = निःशब्दताम्, आकलयत्सु = आश्रयत्सु। किमिति मौनावलम्बनमित्युत्प्रेक्षते-अस्मन्नीतीति। शुश्रूषुषु = श्रोतुमिच्छुषु। कैरवाणाम् = सिताम्भोजानाम्, यो विकाशः=प्रफुल्लनम्, तेन यो हर्षप्रकाशः = मोदाविर्भावः, तेन मुखरेषु = शब्दायमानेषु। चञ्चरीकेषु = द्विरेफेषु। "इन्दिन्दिरो मधुकरश्चञ्चरीको मधुव्रत" इति वैजयन्ती। क्रन्दनम् = रोदनम्, अश्रौषम् = आकर्णितम्। सप्तभिर्विशेषणैः स्वभावोक्त्या

मन्द-मन्द वायु के झोंकों से लताएँ धीरे-धीरे हिल रही थीं, निशानायिका के चन्दनबिन्दु के समान चन्द्रमण्डल उदित हो चुका था, आकाश चाँदनी के बहाने अमृत बरसा रहा था, पक्षिगण— मानो हम लोगों की नीतिचर्चा सुनने की इच्छा से—मौन धारण किये थे, और कुमुदों के खिल जाने से भौंरे हर्षातिरेक से गुनगुना रहे थे, कि मैंने किसी का अस्पष्ट अक्षरों और कम्पित निःश्वासों वाला, रुँधे गले से निकलने वाला, घर्घरशब्दमय, चीत्कारमय और दीनतापूर्ण करुण क्रन्दन सुना। रोने की आवाज ध्यान देने पर ही सुनाई देती थी, जिससे उसके बहुत दूर होने का अनुमान होता था। मैंने उसी क्षण, "यह आर्तस्वर कहाँ से आ रहा

ज्ञायताम्" इत्यादिश्य छात्रेषु विसृष्टेषु, क्षणानन्तरं छात्रेणैकेन भय-भीता सवेगमत्युष्णं दीर्घं निश्वसती, मृगीव व्याघ्राऽऽघ्राता, अश्रु-प्रवाहे स्नाता, सवेपथुः, कन्यकैका अङ्के निधाय समानीता। चिरा-न्वेषणेनापि च तस्या सहचरी सहचरो वा न प्राप्त। ताञ्च चन्द्र-कलयेव निर्मिताम्, नवनीतेनेव रचिताम्, मृणाल-गौरीम्, कुन्द-कोरकाग्रदतीम्, सक्षोभं रुदतीमवलोक्याऽस्माभिरपि न पारितं

क्रन्दनं विशिनष्टि—अस्पष्टानि अक्षराणि, यस्मिंस्तत्। कम्पमाना निःश्वासा, यस्मिंस्तत्। श्लथन्=शिथिलः, कण्ठ, यस्मिंस्तत्। अत्यवधानेन=विशेषध्यानेन, श्रव्यम्=श्रवणार्हम्, तस्य भावस्तत्त्व तस्मात्, हेतौ पञ्चमी। अतिशयेन दूरं दविष्ठम्, तस्य भावो दविष्ठता, अनुमिता=विज्ञाता, दविष्ठता=अतिदूरता यस्य तत्। आदिश्य=आज्ञाप्य। व्याघ्रेण=शार्दूलेन, आघ्राता=आक्रान्ता। उपमालङ्कारः। सवेपथु=सकम्पा। एकेनाङ्के निधाय कन्यका समानीतेति स्थले क्रियापदद्वयम्। प्रधानक्रियानिरूपितकर्मत्वाभिधानेऽप्रधानक्रियानिरूपित-कर्मत्वमनभिहितमप्यभिहितवत्प्रकाशत इति महाभाष्ये ध्वनितम्,

प्रधानविषया शक्तिः प्रत्ययेनाभिधीयते।
यदा गुणे तदा तद्वदनुक्ताऽपि प्रतीयते॥

इत्यादिना वाक्यपदीये स्पष्टीकृतञ्च। नवनीतेनेव=हैयङ्गवीनेनेव। "मक्खन" इति हिन्दी। मृणालमिव=कमलदण्ड इव, गौरीम्=श्वेताम्, लुप्तोपमा। कुन्दकोरका=माध्यकलिकाः, तेषामग्राणि व दन्ता यस्याः सा ताम्।

है? क्या बात है? देख कर पता लगाओ" यह आज्ञा देकर, छात्रों को भेजा और क्षण भर बाद ही एक छात्र, डरी हुई, जल्दी-जल्दी गर्म और लम्बी साँस ले रही, बाघ से आक्रान्त हरिणी के समान, आँसुओं से नहाई हुई और काँपती हुई एक बालिका को गोद में उठाकर लाया। चन्द्रमा की कलाओं से रची गई सी, मक्खन से बनाई गई सी, कमल-नाल के समान गोरी और कुन्दकलिका के समान दाँतों वाली उस

निरोद्धुं नयन-वाष्पाणि।

अथ "कन्यके! मा भैषीः, पुत्रि! त्वां मातुः समीपे प्रापयिष्यामः, दुहितः! खेदं मा वह, भगवति! भुङ्क्ष्व किञ्चित्, पिब पयः, एते तव भ्रातरः, यत् कथयिष्यसि तदेव करिष्यामः, मा स्म रोदनैः प्राणान् संशयपदवीमारोपयः, मा स्म कोमलमिदं शरीरं शोकज्वालावलीढं कार्षीः" इति सहस्रधा बोधनेन कथमपि सम्बुद्धा किञ्चिद् दुग्धं पीतवती। ततश्च मया क्रोडे उपवेश्य, "बालिके! कथय क ते पितरौ? कथमेतस्मिन्नाश्रमप्रान्ते समायाता? किं ते कष्टम्? कथमरोदीः? किं वाञ्छसि? किं कुर्मः?" इति

सा ताम्। "अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्च" ति दन्नादेशे, उगिदन्तत्वाद् ङीप्। सक्षोभम्=ससाध्वसम्।

मा भैषीः, "माङिलुङ्" "न माङ्योग" इत्यणिषेधः। मा वह, निषेधार्थकोऽत्र माशब्दो न तु माङ्, अत एव लोट्। प्राणान्=असून् "पुंसि भूम्न्यसवः प्राणा" इत्यमरः। आरोपयः, "स्मोत्तरे लङ्चे"ति लङ्। शोकज्वालया=शोकाग्निना, अवलीढम्=व्याप्तम्। क्रोडे=अङ्के। मुग्धतया

बालिका को व्याकुल होकर रोते देख, हम लोग भी अपने आँसू न रोक सके।

उसके बाद "बेटी डरो मत, बच्ची तुम्हें माँ के पास पहुँचा देंगे, बेटी अफसोस मत करो, रानी बिटिया कुछ खाओ, दूध पियो, ये तुम्हारे भाई हैं, जो कुछ तुम कहोगी हम वही करेंगे, रो-रोकर प्राणों को सन्देह में मत डालो, इस कोमल शरीर को शोकाग्नि की लपटों से मत झुलसाओ" इस प्रकार हजारों तरह से समझाने-बुझाने पर किसी प्रकार आश्वस्त हो उस बालिका ने कुछ दूध पिया। तदनन्तर, मैंने उसे गोद में लेकर पूछा, 'बच्ची! बतलाओ तुम्हारे माता-पिता कहाँ रहते हैं? तुम इस आश्रम के किनारे कैसे आ गई? तुम्हें क्या कष्ट है? तुम रोती क्यों थी? क्या चाहती हो? हम तुम्हारे लिए क्या करें?' निरी बच्ची होने के कारण

पृष्टा मुग्धतया अपरिकलित-वाक्पाटवा, भयेन विशिथिलवचन-विन्यासा, लज्जया अतिमन्दस्वरा, शोकेन रुद्धकण्ठा, चकितचकितेव कथं कथमपि अबोधयदस्मान् यद्—एषा अस्मिन्नेदीयस्येव ग्रामे वसतः कस्यापि ब्राह्मणस्य तनयाऽस्ति। एना च सुन्दरीमाकलय्य कोऽपि यवन-तनयो नदीतटान्मातुर्हस्तादाच्छिद्य क्रन्दन्तीं नीत्वाऽपससार। ततः कञ्चिदध्वानमतिक्रम्य यावदसिधेनुकां सन्दर्श्य विभीषिकयाऽस्याः क्रन्दन-कोलाहलं शमयितुमियेष; तावदकस्मात्कोऽपि काल-कम्बल इव भल्लूको वनान्तादुपाजगाम। दृष्ट्वैव यवन-तन-

बालस्वभावादज्ञतया। अपरिकलितम्=अविज्ञातम्, वाक्पाटवम्=भाषण-चातुर्यं यया सा। भयेन=भीत्या। हेतौ तृतीया। विशिथिलः=अस्तव्यस्तः, वचनविन्यासः=भाषणम्, यस्याः सा। चकितचकितेव=अतिभीतेव। नेदीयसि=अतिनिकटे। "अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ" वित्यन्तिकस्य नेदादेशः। आकलय्य=निश्चित्य। इयं न ब्राह्मणतनया किन्तु क्षत्रिय-तनया स्नातुं च गता न मात्रा सह, अपि तु दास्या, पुरोहितं पितरं दासीं च मातरं मेने इत्यग्रेतनकथया स्पष्टीभविष्यति। असिधेनुकाम्=छुरिकाम्। "छुरिका चासिधेनुके" त्यमरः। विभीषिकया=भयप्रदर्शनेन। काल-श्चासौ कम्बल इति कर्मधारयः। कृष्णवाची कालशब्दः। कालस्य=यम-स्य कम्बल इवेति वा। शाल्मलितरूलांके "सेंमर" इति निगद्यते।

भाषणचातुरी से एकदम अपरिचित, भय के मारे अस्त-व्यस्त शब्दों में बोलने वाली, लज्जा से धीमे स्वर और शोक से रुँधे गले वाली, अत्यन्त चकित हुई सी इस बालिका ने बड़ी कठिनाई से हमें बताया कि यह समीप के ही गाँव में रहनेवाली किसी ब्राह्मण की कन्या है। सुन्दर देखकर, कोई मुसलमान का लड़का, नदी के किनारे से, माँ के हाथ से छीनकर, रोती बिलखती हुई इसको ले भागा। कुछ दूर जाकर उसने, छुरा दिखा कर, डरा कर, इसको चुप करना चाहा, इतने में ही एकाएक काले कम्बल सा एक रीछ जंगल के किनारे से उधर आ निकला। उसे देखते

योऽसौ तत्रैव त्यक्त्वा कन्यकामिमां शाल्मलितरुमेकमारुरोह। विप्रतनया चेयं पलाश-पलाशि-श्रेण्यां प्रविश्य घुणाक्षरन्यायेन इत एव समायाता यावद् भयेन पुना रोदितुमारब्धवती, तावदस्मच्छात्रेणैवाऽऽनीतेति।

तदाकर्ण्य कोपज्वालाज्वलित इव योगी प्रोवाच-"विक्रमराज्येऽपि कथमेष पातकमयो दुराचाराणामुपद्रवः?" तत स उवाच—

महात्मन्! क्वाधुना विक्रमराज्यम्? वीरविक्रमस्य तु भारतभुवं विरहय्य गतस्य वर्षाणां सप्तदश-शतकानि व्यतीतानि। क्वाधुना मन्दिरे मन्दिरे जयजय-ध्वनिः? क्व सम्प्रति तीर्थे तीर्थे

पलाशाः=किंशुकाः, ते च ते पलाशिनः=तरवः, तेषां श्रेण्याम्=पङ्क्तौ पलाशानि पत्राणि वा, "पत्र पलाशं छदनम्" इत्यमरः। घुणाक्षरन्यायेन, काष्ठवेधकैः कृमिभिः काष्ठानुवेधे क्रियमाणे यथाऽकस्मादक्षरमिव प्रतीयते, तथा यत्रावितर्कित-कार्य-सिद्धिस्तत्रैत्यमभिधीयते। पुना रोदितुम्, "रो रि" इति लोपे "ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः" इति दीर्घः।

विरहय्य=परित्यज्य। सप्तदशशतकानि, शिवराजसमयसूचनार्थमिदम्। शिवराजकालिकयवनदुराचारान्वर्णयति—क्वेत्यादि। मठे मठे=

ही वह मुसल्मान का लड़का, इस लड़की को वहीं छोड़, एक सेमर के पेड़ पर चढ़ गया और यह ब्राह्मण-बालिका पलाश वृक्षों के झुरमुट में प्रवेश कर घुणाक्षर न्याय से इधर आकर मारे भय के पुनः रोने लगी, इसी बीच हमारा छात्र इसे यहाँ ले आया।

यह सुनकर क्रोधाग्नि की लपटों से प्रदीप्त हुए से योगिराज बोले—"विक्रमादित्य के राज्य में दुराचारियों का यह पापमय उपद्रव कैसा!"

तदनन्तर ब्रह्मचारी के गुरु ने कहा—"महात्मा जी, अब विक्रम का राज्य कहाँ रहा! वीर विक्रमादित्य को तो भारतभूमि को छोड़कर गये सत्रह सौ वर्ष व्यतीत हो गये। अब मन्दिरों में जय-जयकार कहाँ! तीर्थों

घण्टानादः ? क्वापि मठे मठे वेदघोषः ? अद्य हि वेदा विच्छिद्य वीथीषु विक्षिप्यन्ते, धर्मशास्त्राण्युद्धूय धूमध्वजेषु ध्मायन्ते, पुराणानि पिष्ट्वा पानीयेषु पात्यन्ते, भाष्याणि भ्रंशयित्वा भ्राष्ट्रेषु भर्ज्यन्ते, "क्वचिन्मन्दिराणि भिद्यन्ते, क्वचित्तुलसीवनानि छिद्यन्ते, क्वचिद्दारा अपह्रियन्ते, क्वचिद्धनानि लुण्ठ्यन्ते, क्वचिदार्त्तनादाः, क्वचिद् रुधिरधाराः, क्वचिदग्निदाहः, क्वचिद् गृहनिपातः" इत्येव श्रूयतेऽवलोक्यते च परितः ।

प्रतिच्छात्रालयम् । "मठश्छात्रादिनिलयः" इत्यमरः। वेदाः=वेदपुस्तकानि। विच्छिद्य = विपाट्य, वीथीषु = पथिषु, उद्धूय = उत्तोल्य । धूम एव ध्वजो येषां ते तेषु = वह्निषु । ध्मायन्ते = ज्वाल्यन्ते । पुराणानि = ब्रह्मवैवर्त्तादीनि । पिष्ट्वा = चूर्णीकृत्य । भाष्याणि = सूत्रव्याख्यानानि वात्स्यायनादिनिर्मितानि । भ्राष्ट्रेषु = भर्जनपात्रेषु "क्लीबेऽम्बरीषं भ्राष्ट्रो ना" इत्यमरः । "भाड" इति हिन्दी । दाराः = भार्याः । दृ विदारणे इत्यस्माण्णिजन्तात् "दारजारौ कर्त्तरि णि लुक् च" इति घञ्, "दाराक्षत-लाजासूनां बहुत्वम्" ।

क्रोडा हारा तथा दारा त्रय एते यथाक्रमम् ।
क्रोडे हारे च दारेषु शब्दाः प्रोक्ता मनीषिभिः ॥

इति हेमचन्द्रानुसारेण टाबन्तोऽप्ययम् । यथा च "दारा त्रय" इति पद्ये दृश्यते तथा टाबन्तस्यैकवचनादिष्वपि प्रयोगस्तदिष्टोऽवधार्यते । क्वाधुने-त्यारभ्य परित इत्यन्त समता नाम गुणो दण्डिमते । प्रसादस्तु सर्वसम्मतः । रीतिर्वैदर्भी ।

में घण्टा-निनाद कहाँ ? मठों में वेदध्वनि कहाँ ? आज तो वेद की पुस्तकें फाड-फाड कर सडकों पर बिखेरी जाती हैं, धर्मशास्त्र के ग्रन्थ अस्त-व्यस्त कर आग में झोंके जाते हैं, पुराण की पुस्तकें पीस कर पानी में फेंकी जाती हैं और भाष्यग्रन्थ तोड-मरोड कर भाडों में झोंके जाते हैं । कहीं मन्दिर तोड़े जाते हैं, कहीं तुलसी वृक्ष काटे जाते हैं, कहीं स्त्रियों का अप-हरण किया जाता है और कहीं धनसम्पत्ति लूटी जाती है । कहीं करुण-

तदाकर्ण्य दुःखितश्चकितश्च योगिराडुवाच—"कथमेतत् ? ह्य एव पर्वतीयाञ्छकान्विनिर्जित्य महता जयघोषेण स्वराजधानी-मायातः श्रीमानादित्य-पदलाञ्छनो वीरविक्रमः । अद्यापि तद्विजय-पताका मम चक्षुषोरग्रत इव समुद्धूयन्ते, अधुनापि तेषां पटह-गोमुखादीनां निनादः कर्णशष्कुलीं पूरयतीव, तत्कथमद्य वर्षाणां सप्तदश-शतकानि व्यतीतानि" इति ?

ततः सर्वेषु स्तब्धेषु चकितेषु च ब्रह्मचारिगुरुणा प्रणम्य कथितम्—

"भगवन् ! बद्ध-सिद्धासनैर्निरुद्ध-निश्वासैः प्रबोधितकुण्डलिनी-

पर्वतीयान्=पर्वतप्रान्तस्थान् । स्वराजधानीम्=उज्जयिनीम् । आदित्य-पदलाञ्छनः = आदित्यपदविभूषितः । लक्ष्मवाची लाञ्छनशब्दः "कलङ्काङ्कौ लाञ्छनं च चिह्नं लक्ष्म च लक्षणमि" त्यमरः । समुद्धूयन्ते = कम्पमाना विराजन्ते । पटह-गोमुखादीनाम् = वाद्यविशेषाणाम् । पटह=नगारा । गोमुख = तुरही इति हिन्दी । भाविकालङ्कारोऽतीतस्य प्रत्यक्षायमाणत्वात् ।

भवादृशैः = योगनिरतैः, कालस्य वेगः = गतिर्न ज्ञायत इत्यन्वयः । भवादृशान् विशिनष्टि—बद्धंसिद्धासनम्=योगशास्त्रीय आसनविशेषो यैस्तैः ।

क्रन्दन है तो कहीं रुधिर की धारा, कहीं अग्निकाण्ड है और कहीं गृह-ध्वंस । चारों ओर यही सुनाई देता है और यही दिखाई देता है ।

यह सुनकर खिन्न और विस्मित हुए योगिराज ने कहा—'यह कैसे ? श्रीमान्, आदित्यपद विभूषित वीरवर विक्रम अभी कल ही पर्वत प्रान्त निवासी शकों को जीतकर, महान् जय-जयकार के साथ अपनी राजधानी उज्जयिनी आये हैं । आज भी उनकी विजयपताकाएँ मेरे नेत्रों के सामने फहरा सी रही हैं, इस समय भी उनके नगाड़े, तुरही आदि बाजों की ध्वनि मेरे कर्णविवरों को पूर्ण सी कर रही है, फिर आज सत्रह सौ वर्ष कैसे बीत गये ?'

योगिराज के यह वचन सुनकर सबके स्तब्ध और विस्मित हो जाने पर, ब्रह्मचारी के गुरु ने प्रणाम कर कहा—"भगवन् ! सिद्धासन और

कैर्विजित-दशेन्द्रियैरनाहत-नाद-तन्तुमवलम्ब्याऽऽज्ञाचक्रं संस्पृश्य, चन्द्रमण्डलं भित्त्वा, तेजःपुञ्जमविगणय्य, सहस्रदलकमलस्यान्तः प्रविश्य, परमात्मानं साक्षात्कृत्य, तत्रैव रममाणैर्मृत्युञ्जयैरानन्द-

निरुद्धाः = अन्तर्नियमिताः, निश्वासाः = प्राणा यैस्तैः। प्रबोधिता = उद्द्योतिता, कुण्डलिनी = पराशक्त्यभिधेया नाडीरूपा प्रधानव्यक्तिस्थानम्, यैस्तैः। विजितानि = वशीकृतानि, दशेन्द्रियाणि यैस्तैः। वाक् पाणि-पाद-पायूपस्थानि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि, चक्षुः-श्रोत्र-घ्राण-रसन-त्वगाख्यानि पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि। अनाहतश्चासौ नाद तस्य तन्तुं = तन्तुतुल्यां सूक्ष्मावस्थालतिकाम्। सुषुम्णामध्ये स्थितं तुरीय पद्ममनाहतनाम्ना योगशास्त्रे प्रसिद्धम्, तदुत्थो नादोऽनाहतनादः। आज्ञाचक्रम् = भ्रुवोर्मध्ये द्विदलात्मक चक्रम्। संस्पृश्य = ध्यानावलम्बनं कृत्वा। चन्द्रमण्डलम् = ततः परवर्ति षोडशदलात्मकं चक्रम्। तेज पुञ्जम् = सोमचक्रवर्तिन महाप्रकाशम्। सहस्रदलकमलस्य = ब्रह्मरन्ध्रवर्त्तिनः सहस्रारचक्रस्य। परमात्मानम् = पर ब्रह्म। तत्रैव = ब्रह्मणि। रममाणैः = विहरद्भिः। अनिर्वचनीयमानन्दमुपभुञ्जद्भिरिति यावत्। मृत्युञ्जयैः = स्वायत्तीकृतकालवृत्तिभिः, आनन्दमात्रस्वरूपैः = आनन्दमये ब्रह्मणि लीनत्वात्तत्स्वरूपैः। यत्तु योगशास्त्रमात्रप्रसिद्धाना शब्दानामुपादानं तच्छास्त्रानभिज्ञस्य बोधाजनक मि-

कर, साँस रोककर, कुण्डलिनी को जगाकर, दसो इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर, अनहद नाद (सुषुम्णा के मध्य में स्थित, योगशास्त्र में अनाहत नाम से प्रसिद्ध चतुर्थ पद्म से उत्पन्न होने वाले नाद) की तन्तु तुल्य सूक्ष्मावस्था का अवलम्बन कर, भौंहों के बीच में स्थित द्विदलात्मक आज्ञाचक्र को ध्यान का लक्ष्य बनाकर, षोडशदलात्मक चक्र चन्द्रमण्डल को भेद कर, चन्द्रचक्रवर्ती महाप्रकाश का तिरस्कार कर, सहस्रारचक्र के अन्दर प्रविष्ट हो, परब्रह्म का साक्षात्कार कर, उसी में रमण करने वाले मृत्यु के विजेता, आनन्दस्वरूप और ध्यान में स्थित आप के से

मात्रस्वरूपैर्ध्यानावस्थितैर्भवादृशैर्न ज्ञायते कालवेगः। तस्मिन् समये भवता ये पुरुषा अवलोकिता' तेषां पञ्चाशत्तमोऽपि पुरुषो नावलोक्यते। अद्य न तानि स्रोतांसि नदीनाम्, न सा सस्था नगराणाम्, न सा आकृतिर्गिरीणाम्, न सा सान्द्रता विपिनानाम्। किमधिकं कथयामो भारतवर्षमधुना अन्यादृशमेव सम्पन्नमस्ति"—

इदमाकर्ण्य किञ्चित्स्मितेवेव परितोऽवलोक्य च योगी जगाद—

"सत्यं न लक्षितो मया समय-वेगः। यौधिष्ठिरे समये कलित-समाधिरहं वैक्रम-समये उदस्थाम्। पुनश्च वैक्रम-समये समाधिमाकलय्य अस्मिन् दुराचारमये समयेऽहमुत्थितोऽस्मि। अहं पुनर्गत्वा

त्यप्रतीतत्वदोषदुष्टमिदमिति—तन्न, अत्रत्यगद्यस्य योगशास्त्रोक्त-ध्यान-प्रकारे व्युत्पत्त्याधायकत्वादेतदर्थमेव समुल्लिखितत्वाच्च। अत एव "न सा विद्या न तच्छास्त्रमि" त्यादिना साहित्यस्य व्युत्पत्त्यापि तदर्थस्य सर्वमयत्वं सूचितम्। कथमन्यथा "ब्रह्विर्विकार प्रकृतेः पृथगि" त्यादीना "वागर्थाविव संपृक्तावि" त्यादीनाञ्च न तद्दोषदुष्टत्वमित्यलमसदावेशेन।

पञ्चाशत्तम' = पञ्चाशत्संख्यापूरकः। कैमुतिकन्याय—सूचकोऽपिः। यौधिष्ठिरे = युधिष्ठिरस्याय समयो योधिष्ठिरस्तस्मिन्।

महात्माओं को समय का वेग प्रतीत नहीं होता। उस समय आपने जिन लोगों को देखा होगा, उनकी पचासवीं पीढ़ी का पुरुष भी आज नहीं दिखायी देता। आज नदियों के वे स्रोत नहीं रहे, नगरों की वह स्थिति नहीं रही, पर्वतों का वह आकार नहीं रहा और जंगलों की वह गहनता नहीं रही। अधिक क्या कहें भारतवर्ष इस समय दूसरा सा ही हो गया है।

यह सुनकर कुछ मुस्कराते हुए से, चारों ओर देखकर, योगिराज बोले—"सचमुच मुझे समय के वेग की प्रतीति नहीं हुई। युधिष्ठिर के समय में समाधि लगा कर मैं विक्रम के समय में जागा था, और पुनः

समाधिमेव कलयिष्यामि, किन्तु तावत्सङ्क्षिप्य कथ्यतां का दशा भारतवर्षस्येति"—

तत्संश्रुत्य भारतवर्षीय-दशा-संस्मरण-संजात-शोको हृदयस्थ-प्रसाद-सम्भारोद्गिरण-श्रमेणेवातिमन्थरेण स्वरेण "मा स्म धर्मध्वसन-घोषणैर्योगिराजस्य धैर्यमवधीरय" इति कण्ठं रुन्धतो बाष्पान-विगणय्य, नेत्रे प्रमृज्य, उष्णं निश्वस्य, कातराभ्यामिव नयनाभ्या परितोऽवलोक्य, ब्रह्मचारिगुरुः प्रवक्तुमारभत—

"भगवन् ! दम्भोलिघटितेव रसना, या दारुण-दानवोदन्तो-

भारतवर्ष-सम्बन्धिन्या दशायाः संस्मरणेन सञ्जातः शोको यस्य सः। हृदयस्थो यः प्रसादः = प्रसन्नता, तस्य सम्भारः = अतिशयः, तस्योद्गिरणे = वमने यः श्रमः, तेनेवेत्युत्प्रेक्षा। धर्मस्य = श्रुतिप्रतिपाद्यस्य यद् ध्वसनम् = उन्मूलनम्, तस्य घोषणैः = कथनैः।

दम्भोलिघटिता = वज्रमयी। "दम्भोलिरशनिर्द्वयोरि"त्यमरः दारुणानाम् = भयानकानाम्, दानवानाम् = म्लेच्छानाम्, उदन्तस्य = वृत्तान्तस्य। "वार्त्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्तः स्यादि" त्यमरः

विक्रम के समय में समाधिस्थ होकर इस अनाचारमय समय में जागा हूँ। मैं फिर जाकर समाधि ही लगाऊँगा, किन्तु तब तक संक्षेप में बताइये कि भारतवर्ष की क्या दशा है ?

यह सुनकर भारतवर्ष की दुर्दशा के स्मरण से ब्रह्मचारी के गुरु का शोक उमड आया। मानो हृदयस्थित हर्षातिरेक के प्रकाशन करने के श्रम से धीमे पड गये स्वर से, 'धर्मविध्वंस की कथाओं से योगिराज का धैर्य मत डिगाओ' यह कहते हुए से गला रूँधने वाले आँसुओं की पर-वाह न कर, नेत्र पोंछकर, गरम साँस लेकर, कातर नेत्रों से चारों ओर देखकर, ब्रह्मचारी के गुरु ने कहना प्रारम्भ किया—

"भगवन् ! मेरी यह जीभ वज्र से बनी है जो भीषण म्लेच्छों के

दीरणैर्न दीर्य्यते, लोहसारमयं हृदयम्, यत् संस्मृत्य यावनान्पर-स्सहस्रान् दुराचारान् शतधा न भिद्यते, भस्मसाच्च न भवति। धिगस्मान्, येऽद्यापि जीवामः, श्वसिमः, विचरामः, आत्मन आर्य्यवंश्यांश्चाभिमन्यामहे—"

उपक्रममसुमाकर्ण्य अवलोक्य च मुनेर्विमनायमानं हरिद्राद्रव-क्षालितमिव वदनम्, निपतद्वारिबिन्दुनी नयने, अञ्चित-रोम-कञ्चुकं शरीरम्, कम्पमानमधरम्, भज्यमानञ्च स्वरम्, अवा-गच्छत् "सकलानर्थमयः, सकल-वञ्चनामय, सकलपापमयः, सकलोपद्रवमयश्चायं वृत्तान्तः"—इति, "अत एव तत्स्मरणमात्रेणापि

उदीरणै.=कथनैः, लोहसारमयम्=अयोनिर्मितम्। सहस्रात् पराः परस्सहस्राः, तान्। राजदन्तादित्वात्सहस्रशब्दस्य परनिपातः। पारस्करा-दित्वात्सुट्। विशेष्यनिघ्नत्वाद्वाच्यलिङ्गता। नास्मज्जीवन जीवनम्, अपि तु भस्त्रेव श्वसनमिति सूचयन् जीवाम इत्यभिधाय श्वसिम इति।

विमनायमानम्=दुर्मनायमानम्। हरिद्रा=महारजन, तद्द्रवेण=तद्रसेन, क्षालितमिव=धौतमिव। उत्प्रेक्षा। निपतन्त.=स्खलन्तः, वारिबिन्दवः=अश्रुकणा याभ्या ते। अञ्चितरोमकञ्चुकम्=सरोमा-

वृत्तान्त के वर्णन से कट नहीं जाती, मेरा हृदय लोहे का बना हुआ है, जो यवनों के हजारों दुराचारों का स्मरण कर टुकड़े-टुकडे नहीं हो जाता और जलकर राख नहीं हो जाता। धिक्कार है हम लोगों को, जो आज भी जीते हैं, साँस लेते हैं, इधर-उधर घूमते हैं और अपने को आर्यों का वंशज मानते हैं।"

इस उपोद्घात को सुनकर और ब्रह्मचारी के गुरु के हल्दी से रँगे हुए से (पीले) उदास चेहरे, आँसू बरसाते नेत्रों, रोमाञ्चित शरीर, फड़-कते ओष्ठ और लड़खडाते स्वर से, योगिराज समझ गये कि यह सारा वृत्तान्त अनर्थों, वञ्चनाओं तथा पाप और उपद्रव की घटनाओं से भरा

खिद्यत एव हृदये, तन्नाहमेनं निरर्थं जिग्लापयिषामि, न वा चिखेदयिषामि" इति च विचिन्त्य—

"मुने ! विलक्षणोऽयं भगवान् सकल-कला-कलाप-कलनः सकल-कालनः करालः कालः। स एव कदाचित् पयः-पूर-पूरितान्यकूपार-तलानि मरूकरोति। सिंह-व्याघ्र-भल्लूक-गण्डक-फेरु-शश-सहस्र-व्याप्तान्यरण्यानि जनपदीकरोति, मन्दिर-प्रासाद-हर्म्य-शृङ्गाटक-चत्वरोद्यान-तडाग-गोष्ठमयानि नगराणि च कान-

श्रम्। जिग्लापयिषामि = ग्लपयितुमिच्छामि। चिखेदयिषामि = खेदयितुमिच्छामि। सकलानां कलानां यः कलापः = समूहः, तत्कलनः = तन्निर्माता। सकलान् कालयतीति सकलकालनः = सकलनाशयिता। कालः = महाकालः। "कालो मृत्यौ महाकाले समये यमकृष्णयोरि"ति मेदिनी। अकूपारतलानि = समुद्रतलानि। "समुद्रोऽब्धिरकूपार"इत्यमरः। मरूकरोति = मरुतुल्यानि करोति। अभूततद्भावे च्विः। गण्डक = खड्गी, लोके "गैंडा" इति। फेरव = शृगालाः। "शृगालवञ्चकक्रोष्टु-फेरुफेरवजम्बुका" इत्यमरः। मन्दिराणि = देवनिवासाः। प्रासादा = भूभृन्निवासाः। हर्म्यम् = धनिकावासः। "हर्म्यादि धनिना वास" इत्यमरः। शृङ्गाटकम् = चतुष्पथम्। "चौराहा" इति हिन्दी। चत्वरम् = अङ्गणम्। "अङ्गण चत्वराजिरे" इत्यमरः। उद्यानम् = वाटिका। "पुमानाक्रीड उद्यानम्" इत्यमरः। गोष्ठं "गोस्थानकमि" त्यमरः। "गौशाला" इति

है, यही कारण है कि उसका स्मरण करके ही इनका मन खिन्न हो जाता है। अतः मैं इन्हें व्यर्थ में म्लान या खिन्न न करूँगा, यह सोचकर,

"हे मुनि ! सारी कलाओं के निर्माता और सबके संहारक, भगवान् महाकाल बड़े ही विलक्षण हैं। ये ही कभी जलप्रवाह से परिपूर्ण समुद्र-तलों को मरुस्थल बना देते हैं, हजारों शेरों, बाघों, भालुओं, गेंडों, सियारों और खरगोशों से भरे जंगलों को नगर बना देते हैं तथा मन्दिरों, राज-महलों, अट्टालिकाओं, चौराहों, चबूतरों, उपवनों, सरोवरों और गोशालाओं

नीकरोति। निरीक्ष्यतां कदाचिदस्मिन्नेव भारते वर्षे यायजूकै राजसूयादियज्ञा व्ययाजिषत, कदाचिदिहैव वर्ष-वाताऽऽतप-हिम-सह्यानि तपांसि अतापिपत्।' सम्प्रति तु म्लेच्छैर्गावो हन्यन्ते, वेदा विदीर्यन्ते, स्मृतयः सम्मृद्यन्ते, मन्दिराणि मन्दुरीक्रियन्ते, सत्य. पात्यन्ते, सन्तश्च सन्ताप्यन्ते। सर्वमेतन्माहात्म्यं तस्यैव महाकालस्येति कथं धीरधौरेयोऽपि धैर्यं विधुरयसि? शान्तिमाकलय्यातिसंक्षेपेण कथय यवनराज्य-वृत्तान्तम्। न जाने किमित्यनावश्यकमपि शुश्रूषते मे हृदयम्"—इति कथयित्वा तूष्णीमवतस्थे।

अथ स मुनिः—"भगवन्! धैर्येण, प्रसादेन, प्रतापेन, तेजसा,

हिन्दी। प्राचुर्यार्थे मयट्। एतत्प्रचुराणीत्यर्थः। काननीकरोति = जङ्गलीकरोति। यायजूकै = इज्याशीलैः। "इज्याशीलो यायजूक" इत्यमरः। व्ययाजिषत = कृताः, व्युपसृष्टाद् यजेर्लुङि। अतापिपत = तप्तानि। मन्दुरीक्रियन्ते = वाजिशालीक्रियन्ते। "वाजिशाला तु मन्दुरे" त्यमरः। पात्यन्ते, पातिव्रत्यात्। व्यभिचार्यन्त इत्यर्थः। धीरधौरेयः = धीरधुरन्धरः। विधुरयसि = विकलयसि। "वैकल्येऽपि च विश्लेषे विधुर विकले त्रिष्वि" ति मेदिनी। शुश्रूषते = श्रोतुमिच्छति। "ज्ञाश्रुस्मृदृशां सन" इत्यात्मनेपदम्।

से भरे नगरों को जंगल बना देते हैं। देखिये, कभी इसी भारतवर्ष में याज्ञिकों ने राजसूय आदि यज्ञ किये थे, कभी यहीं पर वर्षा, आँधी, धूप और हिमपात सह कर तपस्याएँ की गयी थीं, परन्तु इस समय म्लेच्छों द्वारा गायें मारी जाती हैं, वेद की पुस्तकें फाड़ी जाती हैं, स्मृतियाँ कुचली जाती हैं, मन्दिर, घुड़साल बनाये जाते हैं, सतियों का सतीत्व नष्ट किया जाता है और सज्जनों को कष्ट पहुँचाया जाता है। यह सब उसी महाकाल की महिमा है, आप धीर होकर धैर्य क्यों खोते हैं? शान्त होकर अति संक्षेप में यवनराज्य का वृत्तान्त कहिये। अनावश्यक समझते हुए भी, न जाने क्यों मन इसे सुनना चाहता है।" यह कहकर योगिराज चुप हो गये।

तदनन्तर उन मुनि ने कहना प्रारम्भ किया—"भगवन्! धैर्य,

वीर्येण, विक्रमेण, शान्त्या, श्रिया, सौख्येन, धर्मेण, विद्यया च सममेव परलोकं सनाथितवति तत्र भवति वीरविक्रमादित्ये, शनैः शनैः पारस्परिक–विरोध–विशिथिलीकृत–स्नेहबन्धनेषु राजसु, भामिनी-भ्रूभङ्ग-भूरिभाव-प्रभाव-पराभूत-वैभवेषु भटेषु, स्वार्थ-चिन्ता-सन्तान-वितानैकतानेष्वमात्यवर्गेषु, प्रशंसामात्रप्रियेषु प्रभुषु, "इन्द्रस्त्वं वरुणस्त्वं कुबेरस्त्वम्" इति वर्णनामात्रसक्तेषु बुधजनेषु, कश्चन गजिनी-स्थाननिवासी महामदो यवनः ससेनः प्राविशद् भारते वर्षे। स च प्रजा विलुण्ठ्य, मन्दिराणि निपात्य, प्रतिमा विभिन्द्य, पर-

सनाथितवति = सनाथ कृतवति। धैर्यादिना साकं सनाथीकरणमिति सहोक्तिरलङ्कारः। सौकुमार्यं नामगुणः, अमङ्गलस्य विस्पष्टमनभिधानात्। तत्र भवति = श्रेष्ठे। "तत्र च भावेने"ति सप्तमी। पारस्परिकविरोधेन विशिथिलीकृतानि = शिथिलतामापादितानि स्नेहबन्धनानि यैस्तेषु। भामिनीनाम् = मानिनीनाम्, भ्रूभङ्गाः = सकटाक्षेक्षणानि, भूरिभावाः = हावाद्याश्चेष्टाः, तेषां प्रभावेण पराभूतानि = तिरस्कृतानि, वैभवानि = धनानि येषां तादृशेषु। गजिनी = "गजनी" इति लोके प्रसिद्धा। संस्कृतशब्दापभ्रंशीभूता एव सर्वे भाषाशब्दा इत्यभिप्रायेण प्रायः सार्थकसंस्कृतशब्दानामेव नामादिष्वपि प्रयोगः। महामद = महमूद इति लोकप्रसिद्ध तन्नाम, देशनाम्ना "महमूद गजनवी" इति वृत्तेषु समुल्लिखितम्।

प्रसन्नता, प्रताप, तेज, बल, पराक्रम, शान्ति, शोभा, सुख, धर्म और विद्या के साथ वीर विक्रमादित्य के परलोक चले जाने पर, राजाओं के पारस्परिक स्नेहबन्धन के आपसी झगड़ों के कारण ढीले पड़ जाने पर, वीरों के, कामिनियों के कटाक्षों और हाव-भाव के प्रभाव में आकर सारी सम्पत्ति बरबाद कर चुकने पर, अमात्यों के स्वार्थचिन्तामात्रपरायण हो जाने पर, राजाओं के प्रशंसामात्र प्रिय हो जाने पर तथा विद्वानों के 'आप इन्द्र हैं, आप वरुण हैं, आप कुबेर हैं' कहकर चाटुकारिता करके प्रभुओं को प्रसन्न करने में लग जाने पर, गजिनी स्थान निवासी, किसी महमूद नाम के यवन ने सेना के साथ भारतवर्ष में प्रवेश किया। वह प्रजा

श्शतान् जनांश्च दासीकृत्य, शतश उष्ट्रेषु रत्नान्यारोप्य स्वदेशम-नैषीत् । एवं स ज्ञातास्वादः पौनःपुन्येन द्वादशवारमागत्य भारत-मलुलुण्ठत् । तस्मिन्नेव च स्वसंरम्भे एकदा गुर्जरदेश-चूडायितं सोमनाथतीर्थमपि धूलीचकार । अद्य तु तत्तीर्थस्य नामापि केनापि न स्मर्यते; परं तत्समये तु लोकोत्तरं तस्य वैभवमासीत् । तत्र हि महार्ह-वैदूर्य-पद्मराग-माणिक्य-मुक्ताफलादि-जटितानि कपाटानि, स्तम्भान्, गृहावग्रहणीः, भित्तीः, वलभीः, विटङ्कानि च निर्मथ्य, रत्ननिचयमादाय, शतद्वय-मणसुवर्ण-शृङ्खलावलम्बिनीं चञ्चच्चाकचक्य-चकितीकृतावलोचक-लोचन-निचयां महाघण्टां

अलुलुण्ठत् = लुण्ठितवान् । गुर्जरदेशचूडायितम् = गुर्जरदेशभूषणतुल्यम् । धूलीचकार = नाशयामास । जटितानि, 'जट, झट सङ्घात'इत्यस्य प्रयोगः । "जडे हुवे" इति हिन्दी । गृहावग्रहणीः = देहलीः । भित्तीः = कुड्यानि । वलभीः = गोपानसीः । "गोपानसी तु वलभिच्छादने वक्रदारुणी"त्यमरः । "छज्जा" इति हिन्दी "धरना" इति वा । मणशब्दो लोके "मन"इति ख्यातः । चञ्चता = समुच्छलता, चाकचक्येन, चकितीकृताः = विस्मेरीकृताः, अवलोचकलोचनानाम् = द्रष्टृजननयनानाम्,

---

को लूट कर, मन्दिरों को ध्वस्त कर, मूर्तियों को तोड़ कर, सैकड़ों लोगों को दास बना कर, सैकडों ऊँटों पर रत्न लाद कर, अपने देश को ले गया। इस प्रकार, स्वाद मिल जाने के कारण बार-बार आकर उसने बारह बार भारतवर्ष को लूटा । अपने इन्हीं हमलों मे उसने एक बार गुजरात के आभूषणतुल्य सोमनाथ तीर्थ को भी धूल में मिला दिया । आज तो उस तीर्थ का नाम भी किसी को नहीं याद है, पर उस समय उसका वैभव लोकोत्तर था । उसमें बहुमूल्य वैदूर्य (मूँगा), पद्मराग, हीरे और मोती जड़े किवाडों, खम्भों, देहलियों, दीवारों, छज्जों और कबूतरों के दरबों को छानकर, रत्नराशि लेकर, दो सौ मन सोने की जञ्जीर मे लटकने वाली और देदीप्यमान चमचमाहट से दर्शकों के नेत्रों को चमत्कृत कर देनेवाली

भारतवर्षं प्रविश्य, शीतलशोणितानप्यसयन् पञ्चाशदुत्तर-द्वादश-शतमितेऽब्दे (१२५०) दिल्लीमश्वयाम्बभूव ।

ततो दिल्लीश्वरं पृथ्वीराज कान्यकुब्जेश्वरं जयचन्द्रञ्च पारस्परिकविरोध-ज्वर-ग्रस्तं विस्मृत-राजनीतिं भारतवर्ष-दुर्भाग्याय-माणमाकलय्यानायासेनोभावपि विशस्य, वाराणसीपर्यन्तमखण्ड-मण्डलमकण्टकमकीटकिट्टं महारत्नमिव महाराज्यमङ्गीचकार । तेन वाराणस्यामपि वहवोऽस्थिगिरयः प्रचिता, रिङ्गत्तरङ्ग-भङ्गा गङ्गाऽपि शोणित-शोणा शोणीकृता, परस्सहस्राणि च देवमन्दिराणि

तान् = अनुष्णरक्तान्, युद्धेच्छाविरहितान् इति भावः । असयन् = असिना घ्नन् । अश्वयाम्बभूव = अश्वैरतिचक्राम । 'तेनातिक्रामती' ति णिच् । विस्मृता राजनीतिः = "वयं पञ्च वयं पञ्च वय पञ्च शतञ्च ते । परैः साकं विवादे तु वयं पञ्चोत्तर शतमि" त्येव यौधिष्ठिरनीतिः, येन तम् । आकलय्य = अवधार्य । विशस्य = घातयित्वा, अकीटकिट्टम् = कीटकिट्ट-विरहितम् । कीटाः = कृमयः, किट्टम् = मलम् । अस्थिगिरयः = कीकस-पर्वताः । गिरिशब्दप्रयोगो महतो नाशकाण्डस्य ध्वननाय । रिङ्गन्तः=चलन्तः, तरङ्गभङ्गा. = ऊर्मिभेदा यस्या सा । शोणितेन शोणा = रक्ता । शोणी-कृता = शोणनदतामापादिता । मेकलगिरिसमुद्भूतो विहारविहारी महानदः

निर्माण कर, चतुरङ्गिणी सेना के साथ भारतवर्ष में प्रवेश कर, युद्ध की इच्छा से रहित भारतीयों को तलवार के घाट उतारते हुए, १२५० में दिल्ली को घुड़सवार सेना से घेर लिया ।

तत्पश्चात् मुहम्मद गोरी ने दिल्लीश्वर पृथ्वीराज और कन्नौज-नरेश जयचन्द को आपसी फूट रूपी ज्वर से ग्रस्त, राजनीति के ज्ञान से शून्य, और भारतवर्ष का दुर्भाग्यस्वरूप समझकर, दोनों को अनायास ही मारकर, वाराणसी तक विस्तृत, कीट और मल से अस्पृष्ट महारत्न के समान राज्य पर अधिकार कर लिया । वाराणसी में भी उसने हड्डियों के बहुत से पहाड़ चुन दिये, चञ्चल तरंगों वाली गंगा को भारतीयों के रुधिर से रँग कर शोणनद

भूमिसात्कृतानि ।

स एव प्राधान्येन भारते यावनराज्याङ्कुराऽऽरोपकोऽभूत्। तस्यैव च कश्चिन् क्रीतदास. कुतुबुद्दीन–नामा प्रथमभारतसम्राट् सञ्जातः।

तमारभ्याद्यावधि राक्षसा एव राज्यमकार्षुः । दानवा एव च दीनानदीदलन्। अभूत् केवलम् अकबरशाह–नामा यद्यपि गूढशत्रु-र्भारतवर्षस्य, तथापि शान्तिप्रियो विद्वत्प्रियश्च। अस्यैव प्रपौत्रो मूर्तिमदिव कलियुगं, गृहीतविग्रह इव चाधर्मः, आलमगीरो-पाधिधारी अवरङ्गजीवः सम्प्रति दिल्लीवल्लभतां कलङ्कयति।

शोणः। भूमिसात्कृतानि=धूलिसात्कृतानि। भारतसम्राट्, सम्राट्-सदृशे लाक्षणिकोऽयं शब्दः।

राक्षसाः=निर्दयाः हिंसाप्रियाश्च। अदीदलन्=अजीघतन्, हिंसित-वन्त इत्यर्थः। गूढशत्रुः=गुप्तरिपुः। राजपुत्रवंश्यैः सहोद्वाहादिसम्बन्धं प्राचारयदिति मुद्रान्तरेण सर्वान् म्लेच्छान् विधित्सुरासीदिति तत्त्वम्। अवरङ्गजीवः="औरङ्गजेब" इति नामवान्।

बना दिया, और हजारों देव-मन्दिरों को धूल में मिला दिया।

भारतवर्ष में यवन-राज्य का बीजारोपण (मुसलमानी राज्य के अङ्कुर का आरोपण) मुख्यतः उसी ने किया, और उसी का कुतुबुद्दीन नाम का एक गुलाम भारतवर्ष का प्रथम यवन सम्राट् हुआ।

उससे लेकर आज तक राक्षसों ने ही राज्य किया है, और दानवों ने ही दीनों की निर्मम हत्या की है। केवल अकबर नाम का बादशाह— यद्यपि वह भी भारतवर्ष का गुप्त शत्रु था—कुछ शान्तिप्रिय विद्वानों का आदर करने वाला हुआ। उसी का प्रपौत्र, मूर्तिमान कलियुग और शरीर धारण करके आया हुआ अधर्म-सा औरङ्गजेब—जिसने 'आलम-गीर' उपाधि धारण कर रखी है—इस समय दिल्ली के शासन को कलं-

अस्यैव पताका केकयेषु मत्स्येषु मगधेषु अङ्गेषु वङ्गेषु कलिङ्गेषु च दोधूयन्ते, केवलं दक्षिणदेशेऽधुनाऽप्यस्य परिपूर्णो नाधिकारः सवृत्तः।

दक्षिणदेशो हि पर्वत-बहुलोऽस्ति अरण्यानी-सङ्कुलश्चास्तीति चिरोद्योगेनापि नायमशकन्महाराष्ट्रकेसरिणो हस्तयितुम्। साम्प्रत-मस्यैवाऽऽत्मीयो दक्षिणदेश-शासकत्वेन "शास्तिखान"-नामा प्रेष्यत

वितस्ताया—(झेलम्) श्चन्द्रभागाया (चनाव) श्चान्तरालवर्ती केकय-देशः=रामायणसमये "गिरिव्रज" नाम्ना ख्याता नगर्येतदीयराजधान्या-सीत्। भरतजनन्याः केकय्या जन्मभूरियमेवेति रामायणे व्यक्तम्। गिरि-व्रजस्य (गिरिझक) यवनसाम्राज्यकाले "जलालपुर" इति नामकरणमभूत्।

इन्द्रप्रस्थात्पश्चिमस्थो दृषद्वत्याश्च दक्षिणस्थो मरुभूमेः पूर्वस्थो भूखण्डो मत्स्यदेशः। मगधदेशः=कीकटापरनामा वर्तमान-दक्षिणविहारो गया-राजगृहादिसमवेतः। अङ्गदेशः=वर्तमान-भागलपुरसवलितो भूखण्ड-विशेषः। अङ्गदेशात्पूर्वस्थितोऽधुना वङ्गालनाम्ना ख्यातो वङ्गदेशः। कलिंगदेशः='उडीसा' इति साम्प्रतं ख्यातः।

अरण्यानी=महदरण्यम्, तथा सङ्कुलः=व्याप्तः। महाराष्ट्र-केसरिण, अत्र केसरिपद श्रेष्ठवाचकम्,

"स्युरुत्तरपदे व्याघ्रपुङ्गवर्षभकुञ्जराः।
सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थगोचराः॥" इत्यमरः।

हस्तयितुम्=हस्ते कर्तुम्। वशीकर्तुमिति यावत्। शास्तिखानः=

कित कर रहा है। केकय (पंजाब), मत्स्य (राजपूताना), मगध (बिहार), अङ्ग (पूर्वी बिहार), वङ्ग (बङ्गाल) और कलिङ्ग (उडीसा) में आज इसी के झंडे फहरा रहे हैं, केवल दक्षिण देश ही ऐसा है जहाँ अभी भी इसका पूरा अधिकार नहीं हो पाया है।

दक्षिण देश में पर्वतों की अधिकता है और घने जंगल भी वहाँ बहुत हैं, इसीलिये बहुत दिनों के प्रयत्न के बावजूद भी औरंगजेब सिंहसदृश मराठों को वश में नहीं कर सका। सुना जाता है कि अब उसी

इति श्रूयते। महाराष्ट्रदेशरत्नम्, यवन-शोणित-पिपासाऽऽकुल-कृपाणः, वीरता-सीमन्तिनी-सीमन्त-सुन्दर-सान्द्र-सिन्दूर-दान-देदीप्यमान-दोर्दण्डः, मुकुटमणिर्महाराष्ट्राणाम्, भूषणं भटानाम्, निधिर्नीतीनाम्, कुलभवनं कौशलानाम्, पारावारः परमोत्साहानाम्, कश्चन प्रातः स्मरणीयः, स्वधर्माऽऽग्रह-ग्रह-ग्रहिलः, शिव इव धृतावतारः शिववीरश्चास्मिन् पुण्यनगरान्नेदीयस्येव सिंहदुर्गेससैनो निवसति। विजयपुराधीश्वरेण साम्प्रतमस्य प्रवृद्धं वैरम्। "कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्" इत्यस्य सारगर्भा महती

"शाइस्ता खाँ" इति प्रसिद्ध नाम। रत्नशब्दस्य नित्यक्लीबत्वम्। यवनानाम् = मोहमदाना, शोणितस्य पिपासायामाकुलः कृपाणो यस्य सः। वीरस्य भावो वीरता = शूरता, सैव सीमन्तिनी = ललना, तस्याः सीमन्ते = केशवेशे, सुन्दरं सान्द्रं = घनं, यत्सिन्दूरदानं = नागकेशर-चर्चनं, तेन देदीप्यमानो दोर्दण्डः = बाहुदण्डो यस्य सः। श्रुत्यनुप्रासः। स्वधर्मस्य = सनातनधर्मस्य, य आग्रहग्रहः = हठादपि पालनम्, तत्र ग्रहिलः = दृढतरः। शिव इवेत्युत्प्रेक्षा। शिववीरः = "शिवाजी" इति विख्यातः। पुण्यनगरात्-"पूना" इति ख्यातात्। नेदीयसि = अति

का सगा-सम्बन्धी शाइस्ता खाँ दक्षिण देश का शासक बना कर वहाँ भेजा जा रहा है। महाराष्ट्र देश के रत्न, यवनों के रुधिर की प्यासी तलवार वाले, वीरता रूपी नायिका की माँग में सुन्दर चटकीला सिन्दूर लगाने से देदीप्यमान भुजाओं वाले, मराठों के मुकुटमणि, योद्धाओं के आभूषण, नीतियों के निधान, निपुणताओं के कुलगृह, परम उत्साहों के सागर, प्रातःस्मरणीय, सनातनधर्म के दृढतम पालक, अवतार धारण कर आये शिव के समान, महाराज शिवाजी पूना नगर से निकट ही सिंहगढ़ में सेनासहित रह रहे हैं। बीजापुर-नरेश के साथ इस समय इनकी शत्रुता बढ़ी हुई है। 'या तो कार्य को ही पूरा करूँगा या देह को ही नष्ट कर डालूँगा' यह इनकी सारगर्भित गम्भीर प्रतिज्ञा है।

प्रतिज्ञा। सतीनाम्, सताम्, त्रैवर्णिकस्य आर्यकुलस्य, धर्मस्य, भारतवर्षस्य च आशा-सन्तान-वितानस्यायमेवाऽऽश्रय.। इयमेव वर्तमाना दशा भारतवर्षस्य। किमधिकं विनिवेदयामो योग-बलावगत-सकल-गोप्यतम-वृत्तान्तेषु योगिराजेषु" इति कथयित्वा विरराम।

तदाकर्ण्य विविध-भाव-भङ्ग-भासुर-वदनो योगिराजो मुनि-राजं तत्सहचरांश्च निपुण निरीक्ष्य, तेषामपि शिववीरान्तरङ्गता-मङ्गीकृत्य, मुनिवेषव्याजेन स्वधर्मरक्षाप्रतिनिश्चयोररीकृत्य, "विज-यतां शिववीर., सिद्धयन्तु भवतां मनोरथा" इति मन्दं व्याहार्षीत्।

अथ किमपि पिपृच्छिषामीति शनैरभिधाय बद्धकरसम्पुटे सोत्कण्ठे जटिलमुनौ "अवगतम्, यवनयुद्धे विजय एव, दैवादापद्-

शयेनान्तिक इति नेदीयान्, तस्मिन्। आशायाः, सन्तानम् = परम्परा, तस्य, वितानम् = विस्तारः, तस्य। योगबलेन = योगसामर्थ्येन, अवगतः = विज्ञातः, सकलो गोप्यतम. = रहस्यात्मको वृत्तान्तो यैस्तेषु।

सतियों, सज्जनों, द्विजों, आर्यों, धर्म और भारतवर्ष की आशाओं के एकमात्र आधार यही हैं। भारतवर्ष की यही वर्तमान दशा है। आप योगिराज हैं और योगबल से सारे गोप्य वृत्तान्त भी जानते हैं, अतः आपसे अधिक क्या कहना?" यह कह कर मुनि चुप हो गये।

यह वृत्तान्त सुनकर, योगिराज का मुख विविध भाव-भङ्गियों से खिल उठा। उन्होंने मुनि और उनके साथियों को गौर से देखकर, उन्हें भी शिवाजी के अन्तरङ्ग सहायक समझ कर, और मुनि के वेष के बहाने अपने धर्म की रक्षा करने में कटिबद्ध जानकर, धीरे से 'वीर शिवाजी की जय हो, आपके मनोरथ पूरे हों' यह कहा।

तत्पश्चात् 'मैं कुछ पूछना चाहता हूँ' धीरे से यह कह कर, जटाधारी मुनि के उत्कण्ठापूर्वक हाथ जोड़ने पर योगिराज बोले, 'मैंने समझ लिया,

ग्रस्तोऽपि च सखिसाहाय्येनाऽऽत्मानमुद्धरिष्यति" इति समभाणीत्। मुनिश्च गृहीतमित्युदीर्य, पुनः किञ्चिद्विचार्य्येव, स्मृत्वेव च, दीर्घमुष्णं निःश्वस्य, रोरुध्यमानैरपि किञ्चिदुद्गतैर्बाष्पबिन्दुभिराकुलनयनो "भगवन्! प्रायो दुर्लभो युष्मादृक्षाणां साक्षात्कार इत्यपराऽपि पृच्छाऽऽच्छादयति माम्" इति न्यवेदीत्। स च "आम्! ऊरीकृतम्, जीवति सः, सुखेनैवाऽऽस्ते" इत्युदतीतरत्। अथ "तं कदा द्रक्ष्यामीति" पुनः पृष्टवति "तद्विवाहसमये द्रक्ष्यसि" इत्यभिधाय, बहूनि सान्त्वना-वचनानि च गम्भीरस्वरेणोक्त्वा, सपदि उपत्यकाम्, गण्डशैलान्, अधित्यकाञ्चाऽऽरुह्य पुनस्तस्मिन्नेव पर्वत-

---

दीर्घमुष्ण नि.श्वस्य, गमीरशोकद्योतकमिदम्। रोरुध्यमानैः = भृशं वार्यमाणैः। ऊररीकृत्य = स्वीकृत्य। उदतीतरत्=उत्तरयाञ्चकार। सान्त्वनावचनानि = सामवाक्यानि। उपत्यकाम् = अद्रेरधः सन्निहितां भूमिम्। गण्डशैलान् = पर्वतात् पतितान् स्थूलपाषाणान्। "गण्डशैलास्तु च्युताः स्थूलोपला गिरेरि" त्यमरः। अधित्यकाम् = अद्रेरूर्ध्वां भूमिम्। "उपा-

---

यवन-युद्ध में शिवाजी की जीत ही होगी, दुर्दैव से आपत्तिग्रस्त होकर भी मित्रों की सहायता से वे अपने को उबार लेंगे।' मुनि ने भी 'भगवन्! समझ गया' यह कह कर, पुनः कुछ विचार-सा कर के, कुछ स्मरण-सा कर के, लम्बी और गरम साँस लेकर, रोके जाने पर भी कुछ निकल आये अश्रुकणों से आकुलनेत्र होकर निवेदन किया, 'भगवन्! आप के समान महात्माओं का दर्शन दुर्लभ है, अतः एक और प्रश्न मुझे उत्सुक कर रहा है।' योगिराज के 'हाँ, स्वीकार किया, वह जीवित है और सुखपूर्वक ही है।' यह उत्तर देने पर, मुनि ने फिर पूछा 'उसे कब देखूँगा?' 'उसके विवाह के समय देखोगे।' यह कह कर, गम्भीर स्वर से अनेक प्रकार के आश्वासन देकर, योगिराज उसी समय पर्वत की घाटी, पर्वत से गिरी हुई बड़ी-बड़ी शिलाओं और पर्वत के ऊपर की भूमि पर चढ़कर पुनः उसी

कन्दरे तपस्तप्तुं जगाम ।

तत शनैः शनैर्निर्यातेष्वपरिचितजनेषु, संवृत्ते च निर्मक्षिके, मुनिर्गौरबटुमाहूय, विजयपुराधीशाऽऽज्ञया शिववीरेण सह योद्धुं ससेनं प्रस्थितस्य अपजलखानस्य विषये यावत्किमपि प्रष्टुमियेष, तावत्पादचारध्वनिमिव कस्याप्यश्रौषीत् । तमवधार्यान्यमनस्के इव मुनौ, गौरबटुरपि तेनैव ध्वनिना कर्णयोः कृष्ट इव समुत्थाय, निपुण परितो निरीक्ष्य, पर्य्यट्य, 'कोऽयम् ?' इति च साम्रेड व्याहृत्य, कमप्यनवलोक्य, पुनर्निवृत्य, 'मन्ये मार्जार. कोऽपि' इति मन्दं गुरवे निवेद्य, पुनस्तथैवोपविवेश । मुनिश्च 'मा स्म कश्चिदितर. श्रौषीत्' इति सशङ्क क्षण विरम्य पुनरुपन्यस्तुमारेभे—

धिष्ण्या त्यकन्नासन्नारूढयोरि" त्युभयत्रापि त्यकन् । "उपत्यकाऽद्रेरासन्ना भूमिरूर्ध्वमधित्यके" त्यमरः । निर्मक्षिके=मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकं तस्मिन्, एकान्ते । मानवसञ्चारदेशे सर्वत्र मक्षिकास्तिष्ठन्तीति तदभावेन जन-सचारामावो लक्ष्यते । मा श्रौषीत्=मा आकर्णयतु । उपन्यस्तुम्=

गुफा में तपस्या करने चले गये ।

उसके बाद, अपरिचित लोगों के धीरे-धीरे चले जाने और एकान्त हो जाने पर, मुनि ने ज्यों ही गौरबटु को बुला कर, बीजापुरनरेश की आज्ञा से वीर शिवाजी के साथ लडने के लिये सेना के साथ कूच कर चुके अफजल खाँ के विषय में कुछ पूछना चाहा, कि किसी के पैरों की आहट सुनाई दी । उसे सुन कर मुनि के अन्यमनस्क से हो जाने पर, वह गोरा ब्रह्मचारी, उसी ध्वनि से आकृष्ट हुआ-सा उठ कर, चारों ओर भलीभाँति देख कर, टहल कर बार-बार 'कौन है' कह कर, किसी को न पाकर, फिर लौट गुरु से धीरे से 'मालूम होता है कोई बिल्ली है' यह कह कर, फिर वैसे ही बैठ गया । मुनि ने भी 'कोई दूसरा न सुन ले' इस आशङ्का से थोडी देर रुक कर, फिर कहना शुरू किया—

"वत्स गौरसिंह ! अहमत्यन्तं तुष्यामि त्वयि, यत्त्वमेकाकी अपजलखानस्य त्रीनश्वान् तेन दासीकृतान् पञ्च ब्राह्मणतनयांश्च मोचयित्वा आनीतवानसीति। कथं न भवेरीदृशः ? कुलमेवेदृशं राजपुत्रदेशीयक्षत्रियाणाम्"। तावत् पुनरश्रूयत मर्मरः पादक्षेपश्च। ततो विरम्य, मुनिः स्वयमुत्थाय, प्रोच्चं शिलापीठमेकमारुह्य, निपुणतया परितः पश्यन्नपि कारणं किमपि नावलोकयामास चरणाक्षेपशब्दस्य। अतः पुनरेकतानेन निपुणं निरीक्षमाणेन गौरसिंहेन दृष्टं, यत् कुटीर-निकटस्थ-निष्कुटक-कदलीकूटे द्वित्रास्तरवोऽतितरां कम्पन्ते इति। तदेव संशयस्थानमित्यङ्गुल्या निर्दिश्य, कुटीर-वलीके गोपयित्वा स्थापितानामसीनामेकमाकृष्य, रिक्त-

कथयितुम्। राजपुत्रदेशः = राजपुत्रशब्दापभ्रंशीभूतो लोके सम्प्रति "राजपूताना" इति प्रसिद्धशब्दव्यपदेश्यो देशः। मर्मर = शुष्कपर्णध्वनिः। "अथ मर्मरः। स्वनिते वस्त्रपर्णानामि" त्यमरः। एकतानेन = एकचित्तेन। निष्कुटा एव निष्कुटकाः = गृहारामाः, "गृहारामास्तु निष्कुटा" इत्यमरः, कुटीरनिकटे तिष्ठन्तीति कुटीरनिकटस्थाश्च ते गृहारामास्तेषु, कदलीनाम् = रम्भाणाम्, कूटे = समूहे। वलीके = पटले। "वलीकनीध्रे

"बेटा गौरसिंह ! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम अकेले ही अफजल खाँ के तीन घोड़ों और उसके द्वारा दास बनाये गये पाँच ब्राह्मण बालकों को छुड़ा कर ले आये। तुम ऐसे क्यों न होगे, राजपूताने के क्षत्रियों का कुल ही ऐसा है।" इसी बीच मर्मर ध्वनि और पैरों की आहट पुनः सुनाई दी। तब बोलना बन्द कर, मुनि ने स्वयं उठकर एक ऊँची शिला पर चढ़कर, चारों ओर भलीभाँति देखा, पर पैरों की आहट का कोई कारण नहीं दिखाई दिया। इसलिए, एकाग्रचित्त होकर पुनः भलीभाँति देखते हुए गौरसिंह ने देखा कि कुटी के निकट की गृहवाटिका के केलों के झुरमुट में दो-तीन पेड़ बहुत अधिक हिल रहे हैं। 'सन्देह का

हस्तेनैव मुनिना पृष्ठतोऽनुगम्यमानः कपोल-तल-विलम्बमानान् चक्षुश्चुम्बिन कुटिल-कचान् वामकराङ्गुलिभिरपसारयन्, मुनिवेषोऽपि किञ्चित्कोप-कषायित-नयनः, कर-कम्पित-कृपा-कृपण-कृपाणो महादेवमारिराधयिषुस्तपस्विवेषोऽर्जुन इव शान्तवीररस-द्वयस्नात' सपदि समागतवान् तन्निकटे, अपश्यश्च लता-प्रतान-वितान-वेष्टित-रम्भा-स्तम्भ-त्रितयस्य मध्ये नीलवस्त्र-खण्ड-

---

पटलप्रान्त" इत्यमरः। "छप्पर की ओरी" इति हिन्दी।

रिक्तहस्तेन = शून्यकरेण। कपोलतल-विलम्बमानान् = गण्डसलग्नान्। किञ्चित्कोपेन = ईषत्क्रोधेन, कषायिते कलुषिते, नयने = नेत्रे, यस्य सः। करे कम्पित' कृपाकृपणः = दयाशून्यः, कृपाण' = असिर्यस्य सः। आरिराधयिषु = सेवितुमिच्छुः। शङ्करमाराधनाय करकलितचापो मध्यमपाण्डवस्तपश्चचारेति महाभारतीया कथा किरातार्जुनीयमहाकाव्यमूलभूता। पूर्णोपमा। लतानाम् = वल्लीनाम्, "वल्ली तु व्रततिर्लते"त्यमरः, प्रतानानि = सूक्ष्मतन्तवस्तेषा, वितानम् = विस्तारः, तेन वेष्टितम् = वलयितम्, रम्भास्तम्भानां त्रितयम् = कदलीस्तम्भत्रय, तस्य। यवनयुवकमपश्यदित्यन्वयः। तमेव विशिनष्टि। नील्या रक्त नीलं, तच्च वस्त्रखण्डम्,

---

स्थान वही है' ऐसा उँगली के इशारे से बताकर, छप्पर की ओरी में छिपाकर रखी गयी तलवारों में से एक तलवार खींच कर गौरसिंह उसी ओर चल दिया। मुनि खाली हाथ ही उसके पीछे हो लिये। गालों पर लटकते हुए और आँखों पर आ जाने वाले अपने घुँघराले बालों को सँभालते हुए, मुनिवेष में होते हुए भी कुछ क्रोध से लाल नेत्र किये हुए, हाथ में निर्दय तलवार लिये हुए, महादेव की आराधना करने के लिए तपस्वी वेषधारी अर्जुन के समान शान्त और वीर दोनों रसों से सराबोर गौरसिंह, झट उसके समीप आ पहुँचा और वहाँ आकर उसने लताओं की विस्तृत वेलों से वेष्टित केले के तीन पेड़ों के बीच, नीले कपड़े

वेष्टित-मूर्द्धानं हरित-कञ्चुकं श्याम-वसनानद्ध-कटितट-कर्बुरा-धोवसनम्, काकासनेनोपविष्टम्, रम्भालवाल-लग्नाधोमुख-खड्ग-त्सरुन्यस्त–विपर्यस्त-हस्त-युगलम्, लशुनगन्धिभिर्निश्वासैः कदली-किसलयानि मलिनयन्तम्, नवाङ्कुरित-श्मश्रु-श्रेणि-च्छलेन कन्य-कापहरण-पङ्क-कलङ्कपङ्क-कलङ्कितासनम्, विंशतिवर्ष-कल्पं यवन-

तेन वेष्टितो मूर्धा यस्य तम्। हरितः = हरिद्वर्णः, कञ्चुकः = चोलको यस्य तम्। "अङ्गरखा, चोंगा" इति हिन्दी। श्यामवसनेन = कृष्णवस्त्रेण "वस्त्रमाच्छादनं वासश्चैलं वसनमंशुकमि" त्यमरः, आनद्धम् = आच्छादितम्, कटितटे कर्बुरम् = अनेकवर्णम्, "चित्रं किर्मीर-कल्माषशबलैताश्च कर्बुरे" इत्यमरः, अधोवसनम् = नाभ्यूरुजङ्घाच्छादनम्, "तहमत, लुङ्गी" इति हिन्दी, यस्य तम्। काकासनेन=चिबुकार्पितजानुयुगलासनेन। रम्भाया आलवाले = आवापे, "स्यादालवालमावाप" इत्यमरः, वृक्षादिमूले समन्ततोऽम्भसां धारणार्थं वेष्टनमावालम्, "थाँवला" इति हिन्दी, अधोमुखस्य = निम्नाननस्य, खड्गस्य त्सरौ = मुष्टौ, "तलवार की मूठ" इति हिन्दी "त्सरुः खड्गादिमुष्टौ स्यादि" त्यमरः। विशिष्टवाचकानां शब्दानां सति विशेषणे विशेष्यमात्रपरत्वमित्यभियुक्ताभ्युपगमात्प्रकृतेऽधिकपददोषशङ्कानवकाशः। न्यस्तम् = स्थापितम्, विपर्यस्तम् = न्युब्जीभूतम्, हस्तयुगलम्=करद्वयं यस्य तम्। लशुनस्य गन्ध इव गन्धो येषां तैः, किसलयानि = नवपल्लवानि। नवाङ्कुरितायाः = नवस्फुरितायाः, श्मश्रुश्रेण्याः छलेन= कन्यकाया अपहरणरूपं यत् पङ्कम् = पापम्, "अस्त्री पङ्कं पुमान् पाप्मे" त्यमरः, तस्य यः कलङ्कः = दुर्यशः। स एव पङ्कः = कर्दमः, "पङ्कोऽस्त्री शादकर्दमावि" त्यमरः, तेन कलङ्कितम्=भ्रष्टम्, आननं यस्य तम्। मुखसमुद्भतश्मश्रूणां कलङ्कपङ्कत्वेनोत्प्रेक्षा। विंशतिवर्षकल्पम् = प्रायो विंशतिवर्ष-

के टुकड़े को सिर पर लपेटे हुए, कमर में काला कपडा बाँधे हुए, चितकबरे रंग की लुङ्गी पहने हुए, काकासन से (घुटनों के बीच में ठोढ़ी डालकर, सिकुड़कर) बैठे हुए, केले के थाले पर अधोमुख रखी तलवार की मूठ पर दोनों हाथ उलटे रखे हुए, जरा-जरा सी निकलती रेख (मूँछ और दाढी) के बहाने कन्यापहरण रूप पापकर्म से उत्पन्न अपयश रूप कीचड

गोरसिंह, "बालिका कुटी के भीतर है, यवनों के वंश के दुश्मन! मेरे जीते जी तू उसे छूना तो दूर, देख भी नहीं सकता। जब तक तेरे खून की प्यासी यह तलवार नहीं चलती तब तक चाहे जो उछल-कूद मचा ले।" यह कहकर पैंतरा बना कर, तैयार हो गया।

तब गौरसिंह ने, तलवार के, दायें-बायें सैकड़ों पैंतरे बदलने वाले, सूर्य की किरणों के सम्पर्क से जिसकी चमक चौगुनी हो रही थी, ऐसी चलती हुई तलवार की चमचमाहट से आँखों को चौंधिया रहे उस दुष्ट

लक्षितोद्योगः, अकस्मादेव स्वासिना कलित-क्लेद-संजात-स्वेद-जल-जालं विशिथिल-कच-कुल-मालं भग्न-भ्रू-भयानक-भालं शिरश्चिच्छेद।

अथ मुनिरपि दाडिम-कुसुमास्तरणाच्छन्नायामिव गाढ-रुधिर-दिग्धायां ज्वलदङ्गार-चितायां चितायामिव वसुधायां शयानं विधु-

नित्यसापेक्षस्थल इति सुव्यक्तमेव। स्वासिना शिरश्चिच्छेदेत्यन्वयः। शिरो विशिनष्टि—कलितेन = व्याप्तेन, क्लेदेन = श्रमेण, सञ्जातस्य = उत्पन्नस्य, स्वेदजलस्य = घर्मजलस्य, "घर्मो निदाघः स्वेद" इत्यमर, जालम् = समूहो यस्मिंस्तत्। विशिथिलाः = इतस्ततः परिभ्रष्टाः, कचानाम् = केशानाम्, कुलस्य = समूहस्य, माला = पङ्क्तिः, यस्मिंस्तत्। भग्नया = छिन्नया, भ्रुवा = दगूर्ध्वभागेन, "ऊर्ध्वे दृग्भ्या भ्रुवौ स्त्रियावि" त्यमरः, भयानकम् = भीषणम्, भालम् = ललाटम्, यस्मिंस्तत्। जालम् मालम् भालमित्यत्र यमकम्।

वसुधायाम् = पृथिव्याम्। शयानम् = पतितम्। वसुधा विशिनष्टि-गाढेन = घनीभूतेन, रुधिरेण = लोहितेन, दिग्धायाम् = लिप्तायाम्। "दिग्धो विषाक्तबाणे स्यात्पुंसि लिप्तेऽन्यलिङ्गक" इति मेदिनी। उत्प्रेक्षते-दाडिमस्य = करकस्य, 'दाडिमस्तु त्रिलिङ्गः स्यादेलाया करके त्रिष्वि' ति मेदिनी, कुसुमानाम्, आस्तरणेन = विष्टरेण, आच्छन्नायामिव। पुनरप्युत्प्रेक्षते ज्वलदङ्गारैः, चितायाम् = व्याप्तायाम्। चितायाम् = चितौ, "चिता चित्या चितिः स्त्रियामि" त्यमरः। भस्मीभवनाय न यावनैश्चिता प्राप्यते। हिन्दुकरेण मृत्युमवाप्य कियतः कालस्य कृते सा

यवन के श्रम करने से निकले हुए पसीने से तर, अस्तव्यस्त बालों वाले, टेढ़ी भौंहों से भयानक लगने वाले ललाट वाले शिर को ऐसी सफाई से काट डाला कि कोई देख भी न पाया।

तत्पश्चात् मुनि ने भी, अनार के फूलों के बिछौने से ढकी हुई सी, गाढ़े खून से लथपथ हो रही, जलते अंगारों से व्याप्त चिता के समान

ज्यमान-भारतभुवमालिङ्गन्तमिव निर्जीवीभवदङ्गबन्ध-चालन-परं शोणित-सङ्घात व्याजेनान्तः-स्थित-रजोराशिमिवोद्गिरन्तं कलित-सायन्तन-घनाऽऽडम्बर-विभ्रमं सतत-ताम्रचूड-भक्षण-पातकेनेव ताम्रीकृतं छिन्न-कन्धरं यवनहतकमवलोक्य सहर्षं ससाधुवादं सरोमोद्गमञ्च गौरसिंहमाश्लिष्य, भ्रूभङ्गमात्राऽऽज्ञप्तेन भृत्येन मृतक-

---

लब्धाऽनेनेति ध्वनिः । चिन्ताचितयोर्दाहकत्वपर्यालोचनापरमिदं पद्यमनुभवपथपथिकम्—"चिन्ताचिताद्वयोर्मध्ये बिन्दुमात्रं विशेषकम् । सजीवं दहते चिन्ता निर्जीवं दहते चिता ॥" यवनहतक विशिनष्टि—निर्जीवीभवताम् = निष्प्राणतां गच्छताम्, अङ्गबन्धानाम् = शरीरसन्धीनाम्, चालने, परम् = निरतम् । शोणितसंघातव्याजेन = रुधिरप्रवाहच्छलेन । अन्तःस्थितो यो रजोराशिः = रजोगुणसमूहः, तमिवेत्युत्प्रेक्षा । उद्गिरन्तम् = वमन्तम् । कलितः = धारित, सायन्तनस्य=सायंभवस्य, घनाडम्बरस्य = मेघविडम्बनायाः, विभ्रमः = विलासो येन तम् । सततम्=सर्वदा, यत् ताम्रचूडस्य = कुक्कुटस्य, "कृकवाकुस्ताम्रचूडः कुक्कुटश्चरणायुधः" इत्यमरः, भक्षणम् = अशनम्, तदेव पातकम् = पाप तेनेव, ताम्रीकृतम् = रक्तीकृतम् । छिन्नकन्धरम् = कृत्तग्रीवम् । सायङ्कालिक-

---

पृथ्वी पर लुढक रहे, बिछुडती हुई भारत भूमि का आलिङ्गन करते हुए से, निर्जीव हो रही अगसंधियों को हिलाते और छटपटाते हुए, रुधिर राशि के बहाने भीतर के रजोगुण को उगलते हुए से, सायंकालीन मेघ के समान, मानों निरन्तर मुर्गा खाने के पाप से लाल हो गये, कटे हुए सिर वाले, दुष्ट यवन को देख कर, हर्षपूर्वक, शाबाशी देते हुए, रोमाञ्चित होकर, गौरसिंह का आलिंगन कर के, आँखों के इशारे मात्र से आज्ञप्त

कञ्चुक-कटिबन्धोष्णीषादिकमन्विष्याऽऽनीतं पत्रमेकमादाय सगणः स्वकुटीरं प्रविवेश ।

इति प्रथमो निश्वासः ।



सूर्य इव संजातमिति यावत् । कटिबन्ध =जघनपट्टिका "पेटी" इति हिन्दी। उष्णीषम् = शिरोवेष्टनम् ।

निश्वास इति वाक्यविन्यासरूपे गद्यकाव्ये निश्वासप्रश्वासा एव परिच्छेदका भवन्तीति परिच्छेदकानामङ्कसर्गाध्यायादिसंज्ञाः समुपेक्ष्य निश्वास-संज्ञामेवादरयाञ्चकार ग्रन्थकारः । यद्यपि बाणादिभिरुच्छ्वाससंज्ञा गृहीता, किन्तु सा शोकक्रोधाद्यावेशापेक्षितेति तामपि तत्याज । भवति चात्र प्राचीनं पद्यम्—"प्रौढिप्रकर्षेण पुराणरीति-व्यतिक्रमः श्लाघ्यतमः कवीनाम्" इति ग्रन्थकृच्छिष्यकृता टिप्पणी ।

इति शिवराजविजयवैजयन्त्यां प्रथमनिश्वासविवरणम् ।



भृत्य द्वारा, मृतक के चोगे, कमरबन्द और पगड़ी की तलाशी लेकर लाये गये एक पत्र को लेकर, सब के साथ अपनी कुटी मे प्रवेश किया ।

शिवराजविजय के प्रथम निश्वास का हिन्दी अनुवाद समाप्त ।



इतस्तु स्वतन्त्र-यवनकुल-भुज्यमान-विजयपुराधीश-प्रेषित' पुण्यनगरस्य समीपे एव प्रक्षालित-गण्डशैल-मण्डलायाः, निर्झर-वारिधारा-पूर-पूरित-प्रबल-प्रवाहायाः, पश्चिम-पारावार-प्रान्त-प्रसृत-गिरि-ग्राम-गुहा-गर्भ-निर्गताया अपि प्राच्य-पयोनिधि-चुम्बन-चञ्चुरायाः, रिङ्गत्-तरङ्ग-भङ्गोद्भूतावर्त्त-शत-भीमायाः,

दुर्गादश्दूर एव तिष्ठति स्मेति सम्बन्धः। अपजल-खानं विशिनष्टि-स्वतन्त्रम् = स्वच्छन्दम् यद् यवनकुलं तेन भुज्यमानस्य = शात्यमानस्य, विजयपुरस्य = तन्नामकनगरस्य, अधीश्वरेण, प्रेषितः = प्रहितः। इदं तात्कालिकस्थितिप्रदर्शनमात्रफलकं नतु साहित्यिकविवेचनया समुपयोगि विशेषणमिति वेदितव्यम्।

भीमाया नीरं कट्ठकुर्वन्निति सम्बन्धः। नदीं विशिनष्टि-प्रक्षालितानि = धौतानि, गण्डशैलानाम् = गिरिच्युतस्थूलशिलानाम् मण्डलानि यया तस्याः। निर्झराणाम् = जलनिर्गमस्रोतसाम्, वारिधारापूरैः = जलधारासमूहैः, पूरित' = भरितः, प्रबल. = वेगवान्, प्रवाहो यस्यास्तस्याः। पश्चिमश्चासौ पारावारः = समुद्रः "समुद्रोऽब्धिरकूपारः पारावारः सरित्पतिरि" त्यमरः, तस्य, प्रान्ते = निकटप्रदेशे, यो गिरीणां ग्रामः = समूहः, तस्य गुहाः = गह्वराणि तासां गर्भतः = मध्यात्, निर्गतायाः = समुत्पन्नायाः। प्राच्यः = प्राचीभवः, यः पयोनिधि, तच्चुम्बने चञ्चुरायाः = चपलायाः। पश्चिमसमुद्रान्निःसृत्य पूर्वसमुद्रं प्रविष्टाया इति वाच्योऽर्थः। एवमुक्तिः पाश्चात्यरमणीना प्राच्यसपर्करूपसाम्प्रतिकव्यवहारोपहासाय। रिङ्गताम् = सञ्चलताम्, तरङ्गाणाम् = ऊर्मीणाम्, भङ्गैः =

इधर स्वेच्छाचारी यवनों द्वारा शासित बीजापुर के अधिपति द्वारा भेजा गया, पूना के समीप ही, पर्वतों से गिरे हुए बड़े-बड़े पत्थरों को धोने वाली, झरनों की जलधाराओं से पूर्ण प्रबल प्रवाह वाली, पश्चिमी सागर की तटवर्ती पर्वत श्रेणियों की गुफाओं से निकली हुई भी पूर्वी समुद्र को चूमने को उतावली (पूर्वी समुद्र में गिरने वाली), चचल लहरों के टूटने से उत्पन्न होने वाले सैकड़ों भँवरों के कारण भयंकर लगने वाली

भीमाया नद्याः, अनवरत-निपतद्बकुल-कुल-कुसुम-कदम्ब-सुरभीकृतमपि नीरं वगाहमान-मत्त-मतङ्गज-मद-धाराभिः कटू-कुर्वन्; हय-हेषा ध्वनि-प्रतिध्वनि-बधिरीकृत-गव्यूति-मध्यगाध्वनीन-वर्गः, पट-कुटीर-कूट-विहित-शारदाम्भोधर-विडम्बनः, निरपराध-

छेदैः, उद्भूता = उत्पन्नाः, ये आवर्ताः = अम्भसां भ्रमाः, तैः भीमायाः = भयदायिन्याः। "घोरं भीमं भयानकम्" इत्यमरः। भीमायाः = 'भीमा' नामवत्याः। अनवरतम् = सततम्, निपतताम् = प्रच्यवताम्, बकुलकुल-कुसुमानाम् = वञ्जुल-समूह-सुमानाम्, कदम्बेन = समूहेन, सुरभीकृतम् = सुगन्धितामापादितम्। वगाहमानानाम् = प्रविशताम्, जलक्रीडां कुर्वतामिति भावः, "वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोरि" त्यल्लोपः, मत्तानाम् = दानभरितानाम्, मतङ्गजानाम् = करिणाम्, मदधाराभिः = दानजलैः। कटूकरणे हेतुः। हयानाम् = अश्वानाम्, हेषा = ध्वनिः, यद्यपि हेषा-शब्दोऽश्वशब्दे, "अश्वानां हेषा ह्रेषा च निःस्वन" इत्यमरात् तथा चाश्व-शब्दोच्चारणमनपेक्षितम्, तथापि विशिष्टवाचकपदानां सति विशेषणवाचक-पदान्तरप्रयोगे विशेष्यमात्रपरत्वस्य "सकोचकैर्मांसतपूर्णरन्ध्रैरि" त्यादिषु दृष्टत्वेन केवलनिःस्वनवाचकत्वेन नाश्वशब्दवैयर्थ्यमिति वदितव्यम्।

तद्ध्वनिप्रतिध्वनिभिः बधिरीकृतः = श्रुतिसामर्थ्यविकलीकृतः, गव्यूतिमध्यगः = क्रोशद्वयान्तरालवर्ती, "गव्यूतिः स्त्री क्रोशयुगमि" त्यमरः, अध्वनीनवर्गः = पथिकसमूहो येन सः। पटकुटीराणाम् = उपकारिकाणाम्, "उपकार्योपकारिके" त्यमरः, कूटैः = समूहैः, विहिता, शारदाम्भोधराणाम् = शरन्मेघानाम्, निर्जलत्वेन श्वेतवर्णानामिति तात्पर्यम्,

भीमा नदी के निरन्तर गिर रहे बकुल पुष्पों से सुशोभित जल को जल-क्रीडा कर रहे मदमत्त हाथियों की मदधारा से और भी अधिक तीव्र गन्ध वाला बनाता हुआ, घोड़ों के हिनहिनाने की आवाज की प्रतिध्वनि से दो कोस तक के यात्रियों को बहरा बना देने वाला, सफेद खेमों के समूह से

भारताभिजन-जन-पीडन-पातक-पटलैरिव समुद्धूयमान-नीलध्वजै-रुपलक्षितः, विजयपुरेश्वरस्यान्यतमः सेनानीः अपजलखानः प्रताप-दुर्गादविदूर एव शिववीरेण सहाऽऽहवद्यूतेन चिक्रीडिषुः ससैन-स्तिष्ठति स्म ।

अथ जगतः प्रभाजालमाकृष्य, कमलानि सम्मुद्रय, कोकान् सशोकीकृत्य, सकल-चराचर-चक्षुःसञ्चार-शक्तिं शिथिलीकृत्य, कुण्डलेनेव निज-मण्डलेन पश्चिमामाशां भूषयन्, वारुणी-सेवने-

---

विडम्बना=अनुकृतिर्येन सः । समुद्धूयमानैः=कम्पमानैः, नीलध्वजैः= नीलपताकाभिः, उपलक्षितः=युतः । उत्प्रेक्षते—निरपराधानाम= निर्दोषाणाम्, भारताभिजनानाम्=भारतीयानाम् । यत्र पूर्वैरुषितं तदभिजनात्मनाऽऽख्यायते । तिष्ठति स्म=अतिष्ठद् । 'लट् स्म' इति स्मयोगे लट् । अन्यतमः=अनेकेष्वेकः । आहवद्यूतेन=युद्धदुरोदरेण ।

अथ भगवान् भास्वान् चक्षुषामगोचर एव संजात इति सम्बन्धः । जगतः=संसारस्य । प्रभाजालम्=दीप्तिसमूहम् । आकृष्य=आकुञ्च्य । सम्मुद्रय=सङ्कोच्य । कोकान्=चक्रवाकान् । "कोकश्चक्रश्चक्रवाकः" इत्यमरः । सशोकीकृत्य=दुःखिनो विधाय । दम्पत्योः परस्पर वियोगेन शोकः । सकलस्य, चराचरस्य=स्थावरजङ्गमात्मकस्य । चक्षुषाम्=नेत्राणाम् । सञ्चारस्य=कार्यकरणस्य, दर्शनस्येति यावत्, शक्तिम्=सामर्थ्यम् । कुण्डलेन=कर्णभूषणेन । 'कुण्डलं कर्णभूषणम्' इत्यमरः । पश्चिमा

शरद के बादलों का उपहास करने वाला, निरपराध भारतीय जनता के उत्पीडन से उत्पन्न पापराशि के समान नीली पताकाओं से पहचाना जाने वाला, बीजापुराधीश का प्रधान सेनापति अफजल खाँ, शिवाजी के साथ युद्धरूपी जुआ खेलने की इच्छा से, प्रताप दुर्ग के समीप ही पडाव डाले हुए था।

तदुपरान्त, संसार के प्रकाश-समूह को खींच कर, कमलों को सङ्कुचित कर, चक्रवाकों को शोकमग्न कर, सम्पूर्ण जड़-चेतन जगत् की दर्शन-शक्ति को शिथिल कर, अपने कुण्डल सदृश मण्डल से पश्चिम दिशा को अलङ्कृत करते हुए, वारुणी (पश्चिम दिशा और मदिरा) के सेवन के कारण

नेव माञ्जिष्ठ-मञ्जिम-रञ्जितः, अनवरत-भ्रमण-परिश्रम-श्रान्त इव सुषुप्सुः, म्लेच्छ-गण-दुराचार-दुःखाऽऽक्रान्त-वसुमती-वेदनामिव समुद्रशायिनि निविवेदयिषुः, वैदिक-धर्म-ध्वंस-दर्शन-सञ्जात-निर्वेद इव गिरिगह्वरेषु प्रविश्य तपश्चिकीर्षुः घर्म-ताप-तप्त इव समुद्रजले सिस्नासुः, सायं समयमवगत्य सन्ध्योपासनमिव

चासौ, आशा = काष्ठा, ताम्। "दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरितश्च ताः" इत्यमरः, वरुणस्येयं वारुणी = पश्चिमा दिग् मद्यञ्च, "सुरा प्रत्यक् च वारुणी" इत्यमरः। मञ्जिष्ठप्राया = मण्डूकपर्ण्याः, "मजीठ" इति हिन्दी, अथ माञ्जिष्ठः, स चासौ मञ्जिमा = रक्तिमा, तेन रञ्जितः = रक्तः। यथा जनो वारुणी-(सुरा) पानानन्तरं शोणवर्णो भवति तथा भास्करोऽपि वारुणी-(पश्चिमा) संसर्गात्तरं शोणः संजात इत्युत्प्रेक्षा। अनवरत-भ्रमण-परिश्रम-श्रान्त = सततचलनखेदखिन्नः। सुषुप्सुः = स्वप्तुमिच्छुः। स्वाभाविकी चरमाचलप्राप्तिः खेदकारणकशयनेच्छावत्त्वेनोत्प्रेक्षिता। म्लेच्छगणस्य = यवनसमूहस्य, दुराचारैः = असदाचरणैः गोहननमन्दिरध्वसनादिभिः, दुःखाक्रान्तायाः = कष्टपीडितायाः, वसुमत्याः = पृथिव्याः, वेदनाम् = पीडाम्। समुद्रशायिनि = विष्णौ। निविवेदयिषुः = निवेदयितुमिच्छुः। स इवेत्युत्प्रेक्षा। पत्नीक्लेशस्य पत्यावेव निवेदनीयत्वादिति भावः। वैदिकधर्मस्य = सनातनधर्मस्य, ध्वंसदर्शनेन = विनाशावलोकनेन, सञ्जातः = समुत्पन्नः, निर्वेदः = वैराग्यं यस्य स इव। गिरिगह्वरेषु = पर्वतदुर्गमेषु। चिकीर्षुः = कर्तुमिच्छुः। सिस्नासुः = स्नातुमिच्छुः। सर्वो हि तप्तः

मजीठ की लालिमा से लाल, निरन्तर भ्रमण करने के परिश्रम से थके से सोने के इच्छुक, म्लेच्छों के अनाचारों में दुःखी पृथ्वी की वेदना को समुद्र में सो रहे भगवान् से कहने के इच्छुक से, वैदिक धर्म के ह्रास को देखकर खिन्न से होकर दुर्गम पर्वतों में जाकर तप करने के इच्छुक, सायंकाल का

विधित्सुः, "नास्ति कोऽपि मत्कुले, यः सकण्ठग्रहं धर्म-ध्वंसिनो यवनहतकान् यज्ञियादस्माद् भारत-गर्भान्निस्सारयेत्" इति चिन्ताऽऽक्रान्त इव कन्दरि-कन्दरेषु प्रविविक्षुर्भगवान् भास्वान्, क्रमश क्रूरकरानपहाय, दृश्य-परिपूर्ण-मण्डलः संवृत्य, श्वेतीभूय, पीतीभूय, रक्तीभूय च गगन-धरातलाभ्यामुभयत आक्रम्यमाण इवाण्डाकृतिमङ्गीकृत्य, कलि-कौतुक-कवलीकृत-सदाचार-प्रचारस्य पातक-पुञ्ज-पिञ्जरित-धर्मस्य च यवन-गण-ग्रस्तस्य भारतवर्षस्य च स्मारयन्, अन्धतमसे च जगत् पातयन्, चक्षुपामगोचर एव संजातः।

स्नातुमिच्छति। अवगत्य = ज्ञात्वा। विधित्सुः=चिकीर्षुः। सकण्ठग्रहम्=कण्ठं गृहीत्वा। अर्धचन्द्रं दत्त्वेत्यर्थः। णमुलन्तम्। यज्ञियात्=यज्ञकरणयोग्यात्। "यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञावि"ति घः। प्रविविक्षुः=प्रवेष्टुमिच्छुः। क्रूरकरान्=तीव्रकिरणान्। दृश्यम् = अवलोकयितुमर्हम्, सम्पूर्णम् = समस्तम्, मण्डलम् = बिम्बं, यस्य सः। श्वेतीभूयेत्यादि स्वभावोक्तिः। अण्डाकृतिम् = सूर्योऽण्डाकृतिरेवोदेत्यस्तमेति चेति तत्कालच्छटावलोकनेन प्रतीयते। अत्र सर्वत्रोत्प्रेक्षा। कलिकौतुकेन=कलियुगकौतूहलेन, कवलीकृतस्य = विनष्टस्य। पातकपुञ्जेन=अघौघेन, पिञ्जरितस्य = पीतवर्णस्य। जर्जरीकृतस्येति भावः। धर्मस्य = सनातनधर्मस्य। भारतवर्षस्य च स्मारयन्नित्यत्र "अधीगर्थदयेशामि"ति कर्मणि

समय हुआ जान कर संध्योपासन करने के इच्छुक से, 'मेरे कुल में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जो धर्मध्वंसी यवनों को इस यज्ञ योग्य भूमि से गर्दनियाँ देकर निकाल बाहर करे' इस प्रकार चिन्तित से होकर पर्वत की गुफा में प्रवेश करने के इच्छुक से भगवान् सूर्य, क्रमशः तीखी किरणों को छोड़ अपने सारे बिम्ब को दर्शन योग्य बना कर, पहले सफेद, फिर पीले और फिर लाल होकर आकाश और पृथ्वी दोनों ओर से दबाये जा रहे से अण्डाकार बन कर, कलियुग के प्रताप से विनष्ट सदाचार वाले, पापराशि से पीले पड़े धर्म वाले तथा यवनों से ग्रस्त भारतवर्ष का स्मरण कराते हुए

ततः संवृत्ते किञ्चिदन्धकारे धूप-धूमेनेव व्याप्तासु हरित्सु, भुशुण्डीं स्कन्धे निधाय निपुणं निरीक्षमाणः, आगत-प्रत्यागतञ्च विदधानः, प्रताप-दुर्ग-दौवारिकः, कस्यापि पादक्षेप-ध्वनिमिवाश्रौषीत्। ततः स्थिरीभूय पुरतः पश्यन् सत्यपि दीप-प्रकाशेऽवतमसवशादागन्तारं कमप्यनवलोकयन्, गम्भीरस्वरेणैवमवादीत्—"कः कोऽत्र भो ? कः कोऽत्र भोः ?" इति।

अथ क्षणानन्तरं पुनः स एव पादध्वनिरश्रावीति भूयः साक्षेपमवोचत्—"क एष मामनुत्तरयन् मुमूर्षुः समायाति बधिरः ?"

षष्ठी। अन्धतमसे=गाढध्वान्ते। 'ध्वान्ते गाढेऽन्धतमसमि' त्यमरः। चक्षुषामगोचरः=अदृश्यः। सूर्यास्तमनवेलाऽभूदित्यर्थः।

हरित्सु=दिक्षु। भुशुण्डीम्=आयुधविशेषम्। "बन्दूक" इति हिन्दी। आगतप्रत्यागतम्=यातायातम्। विदधानः=कुर्वाणः। प्रतापदुर्गस्य=तन्नाम्ना ख्यातदुर्गस्य, "किला" इति हिन्दी, दौवारिकः=द्वारपालः। पादक्षेप-ध्वनिम्=चरणचङ्क्रमणशब्दम्। अवतमसम्=क्षीणध्वान्तम् "अवसमन्धेभ्यस्तमसः" इति सूत्रेण समासान्तोऽच्, तस्य, वशात् सामर्थ्यात्।

संसार को घोर अन्धकार में ढकेलते हुए, आँखों से ओझल हो गए।

उसके बाद, कुछ अँधेरा हो जाने पर और दिशाओं के मानों धूप से उठने वाले धूम से व्याप्त हो जाने पर बन्दूक को कन्धे पर रख कर गौर से इधर-उधर देखते हुए और गश्त लगाते हुए प्रताप दुर्ग के द्वारपाल ने किसी के पैरों की आहट सी सुनी। तब खड़े होकर, सामने देखकर, दीपक का प्रकाश होते हुए, भी धुँधलपन के कारण आने वाले को न देखकर, उसने गम्भीर स्वर से कहा "अरे यहाँ यह कौन है ! यह कौन है ?"

क्षण भर बाद फिर वही पैरों की आहट सुन पड़ी, इसलिये फिर बिगड़ कर बोला, 'अरे यह कौन बहरा बिना मुझे जवाब दिये ही मरने के लिये बढ़ता चला आ रहा है ?'

ततो "दौवारिक ! शान्तो भव, किमिति व्यर्थं मुमूर्षुरिति बधिर इति च वदसि ?" इति वक्तारमपश्यतैवाऽऽकर्णि मन्द्रस्वरमेदुरा वाणी। अथ "तत्किं नाज्ञायि अद्यापि भवता प्रभुवर्य्याणामादेशो यद् दौवारिकेण प्रहरिणा वा त्रिःपृष्टोऽपि प्रत्युत्तरमददद् हन्तव्य इति" इत्येवं भाषमाणेन द्वाःस्थेन "क्षम्यतामेष आगच्छामि, आगत्य च निखिलं निवेदयामि" इति कथयन, द्वादशवर्षेण केनापि भिक्षु-बटुनाऽनुगम्यमानः, कोऽपि काषायवासा, धृत-तुम्बी-पात्रः, भस्म-च्छुरित ललाटः रुद्राक्ष-मालिका-सनाथित-कण्ठः, भव्यमूर्त्तिः संन्यासी दृष्टः। ततस्तयोरेवमभूदालाप ।

मुमूर्षुः=मर्तुमिच्छुः। मन्द्रस्वरेण=गम्भीरनादेन, मेदुरा=सान्द्र-स्निग्धा। "सान्द्रस्निग्धस्तु मेदुर" इत्यमरः। अपश्यता=अनवलोकमानेन, दौवारिकेणेति शेषः। आकर्णि=श्रुतः। अज्ञायि=ज्ञातः। श्रुत इति यावत्। द्वारि तिष्ठतीति द्वाःस्थः=द्वारपालः, तेन। प्रहरिणा=यामिकेन। नगरादिषु सशब्द जनताजागरकेण चोरनिवारयित्रेति यावत्। कषायेण रक्त काषायाम्, वासो यस्य सः। त्रि=वारत्रयम्। "द्वित्रिश्चतुरिति

तत्पश्चात् उस दौवारिक ने बोलने वाले को न देखते हुए 'द्वारपाल ! शान्त रहो, क्यों बेकार मरणासन्न और बहरा कहते हो ?' यह गम्भीर स्वर से स्निग्ध वाणी सुनी। उसके बाद 'तो क्या आपको अभी तक महाराज शिवाजी का यह आदेश नहीं मालूम है कि द्वारपाल या पहरेदार के तीन बार पूछने पर भी जो व्यक्ति उत्तर न दे उसे गोली मार दी जाय' यह कहते हुए द्वारपाल ने, 'क्षमा करो मैं आ रहा हूँ, आकर सारा हाल बताऊँगा' यह कहते हुए, बारह साल के किसी भिक्षु बालक के आगे-आगे आते हुए किसी काषाय वस्त्रधारी, तुम्बी पात्र लिये हुए, मस्तक पर भस्म लगाये तथा गले में रुद्राक्ष की माला पहने किसी भव्यमूर्ति संन्यासी को देखा। फिर उन दोनों में आपस में इस प्रकार बातचीत हुई।

संन्यासी—कथमस्मान् संन्यासिनोऽपि कठोरभाषणैस्तिरस्करोषि ?

दौवारिकः—भगवन् ! भवान् संन्यासी तुरीयाश्रमसेवीति प्रणम्यते, परन्तु प्रभूणामाज्ञामुल्लङ्घ्य निजपरिचयमददद्देवाऽऽयातीत्याक्रुश्यते ।

संन्यासी—सत्यं क्षान्तोऽयमपराधः, परमद्यावधि संन्यासिनः, ब्रह्मचारिणः, पण्डिताः, स्त्रियः, बालाश्च न किमपि प्रष्टव्याः, आत्मानमपरिचाययन्तोऽपि प्रवेष्टव्याः ।

कृत्योऽर्थे" । रुद्राक्षमालिकया, सनाथितः=भूषितः, कण्ठो यस्य सः । आलापः=अन्योन्यसम्बोधनपूर्वकभाषणम् ।

तुरीयाश्रमसेवी=चतुर्थाश्रमवासी । "स सन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः" इति भगवद्वचनेन सन्यासिपदस्य न चतुर्थाश्रमि-गैरिकधारिमात्ररूढतेति ध्वनयता पदद्वयं विशेष्यविशेषणभावेनोपात्तमिति विज्ञाः । अददत्=अयच्छन्, "नाभ्यस्तादि"ति नुम्निषेधः ।

अपरिचाययन्तः=परिचयमददतः । अपरिचितानपि प्रवेशयेति भावः ।

सन्यासी—तुम हम सन्यासियों को भी कठोर वचनों द्वारा अपमानित क्यों करते हो ?

दौवारिक—भगवन् ! आप सन्यासी हैं, चतुर्थ आश्रम में हैं, अतः मैं आप को प्रणाम करता हूँ, किन्तु आप महाराज की आज्ञा का उल्लंघन कर अपना परिचय दिये बिना ही आ रहे हैं इसलिये हम आप पर बिगड़ रहे हैं ।

सन्यासी—सच है, अच्छा तुम्हारा यह अपराध मैंने क्षमा कर दिया, लेकिन आज से सन्यासियों, ब्रह्मचारियों, पण्डितों, स्त्रियों, और बालकों से कुछ भी मत पूछना, और यदि वे अपना परिचय न दें तो भी उन्हें अन्दर आने की अनुमति दे देना ।

दौवारिकः—संन्यासिन् ! संन्यासिन् ! बहूक्तम्, विरम, न वयं दौवारिका ब्रह्मणोऽप्याज्ञां प्रतीक्षामहे। किन्तु यो वैदिकधर्म-रक्षा-व्रती, यश्च संन्यासिनां ब्रह्मचारिणां तपस्विनाञ्च संन्यासस्य ब्रह्मचर्यस्य तपसश्चान्तरायाणां हन्ता, येन च वीरप्रसविनीयमुच्यते कोङ्कणदेश-भूमिः; तस्यैव महाराज-शिववीरस्याऽऽज्ञां वयं शिरसा वहामः।

संन्यासी—अथ किमप्यस्तु,पन्थानं निर्दिश, आवां शिववीर-निकटे जिगमिषावः।

दौवारिकः—अलमालप्यापि तत्, प्राह्णे महाराजस्य सन्ध्योपा-

संन्यासिनामित्यादित्रिकस्य संन्यासस्येत्यादित्रिकेण यथासङ्ख्य-मन्वयः। अत एव यथासङ्ख्यनामाऽलङ्कारः। शिरसा वहामः = सर्वथा पालयामः। अन्तरायाणाम् = विघ्नानाम्। "विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूह" इत्यमरः। हन्ता = निवारयिता।

अलमालप्यापि = इदमालपनीयमपि नास्तीत्यर्थः। "अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचा क्त्वे"ति क्त्वा प्रत्ययः। यथा शाकुन्तले "अलं रुदित्वा, ननु भवतीभ्यामेव स्थिरीकर्त्तव्या शकुन्तले"त्यत्र, शिशुपालवधे "आलप्याल-मिदं बभ्रोर्यत्स दारानपाहरदि" त्यत्र च प्रसिद्धोऽयम्। प्राह्णे = पूर्वाह्णे।

दौवारिक—संन्यासी ! सन्यासी ! बहुत कह चुके, अब बस करो, हम दौवारिक लोग ब्रह्मा की आज्ञा की भी परवाह नहीं करते, वरन् जिन्होंने वैदिक-धर्म की रक्षा का व्रत ले रखा है, जो संन्यासियों, ब्रह्मचारियों, तपस्वियों, तथा संन्यास, ब्रह्मचर्य और तप के विघ्नों के नाशक हैं, जिन के कारण ही कोङ्कण देश की भूमि वीरप्रसू (वीरों को जन्म देने वाली) कहलाती है, उन्हीं महाराज शिवाजी की आज्ञा को शिरोधार्य करते है।

सन्यासी—अच्छा जो कुछ भी हो, हमें रास्ता दिखाओ, हम वीर शिवाजी के पास जाना चाहते हैं।

दौवारिक—उसका नाम भी न लीजिये, आपके से लोगों के मिलने का

सनसमये भवादृशानां प्रवेश-समयो भवति; न तु रात्रौ।

सन्यासी—तत्कि कोऽपि न प्रविशति रात्रौ ?

दौवारिक —(साक्षेपम्) कोऽपि कथं न प्रविशति ? परिचिता वा प्राप्त-परिचयपत्रा वा आहूता वा प्रविशन्ति, न तु भवादृशा', ये तुम्बी गृहीत्वा द्वाराद् द्वारम्—इति कथयन्नेव तत्तेजसेव धर्षितो मध्य एव विरराम।

संन्यासी—(स्वगतम्) राजनीति-निष्णात' शिववीर । सर्वथा दौवारिकता-योग्य एवात्र द्वारपाल स्थापितोऽस्ति। परीक्षितमप्येनमेकस्मिन् विषये पुन परीक्षिष्ये तावत्। (प्रकटम्) दौवारिक ! इत आयाहि, किमपि कर्णे कथयिष्यामि।

दौवारिक —(तथा कृत्वा) कथ्यताम्।

तुम्बी=अलाबूपात्रम्। भिक्षाभाजनमिति सव्यङ्ग्यम्। धर्षित =र्भापितः।

राजनीतौ, निष्णात'=निपुणः। "प्रवीणे निपुणाभिज्ञविज्ञनिष्णात-शिक्षिता"इत्यमरः। दौवारिकता=द्वारपालकर्म। परीक्षिष्ये=परीक्षा करिष्ये।

समय प्रातःकाल महाराज के सन्ध्योपासन के समय होता है, न कि रात में।

सन्यासी—तो क्या रात में कोई नहीं आता ?

दौवारिक— (बिगडता हुआ) 'कोई कैसे नहीं आता ? महाराज के परिचित लोग, परिचय-पत्र प्राप्त लोग या आमन्त्रित लोग, आते हैं, न कि आप के से लोग जो तुम्बी लिये दरवाजे से दरवाजे'—यह कहते ही कहते मानों उसके तेज से घबराकर वह बीच में ही रुक गया।

सन्यासी—(अपने मन में) शिवाजी राजनीति में कुशल हैं। उन्होंने पहरेदारी के योग्य ही द्वारपाल नियुक्त किया है। यद्यपि मैं इसकी परीक्षा ले चुका हूँ, फिर भी मैं इसकी एक विषय पर पुनः परीक्षा लूँगा। (प्रकाश में) द्वारपाल ! इधर आओ, कुछ तुम्हारे कान में कहूँगा।

दौवारिक—(वैसा ही कर के) कहिये।

संन्यासी—निरीक्षस्व त्वमधुना दौवारिकोऽसि, प्राणानगणयन् जीविकां निर्वहसि, त्वं सहस्र वाऽयुतं वा मुद्रा राशीकृताः कदापि प्राप्स्यसीति न कथमपि संभाव्यते।

दौवारिक—आम् , अग्रे कथ्यताम् ।

संन्यासी—वयञ्च सन्यासिनो वनेषु गिरिकन्दरेषु च विचरामः, सर्वं रसायन-तत्त्व विद्मः।

दौवारिकः—स्यादेवम् , अग्रे अग्रे ?

सन्यासी—तद् यदि त्व मां प्रविशन्तं न प्रतिरुन्धे तदधुनैव परिष्कृतं पारद-भस्म तुभ्य दद्याम् ; यथा त्वं गुञ्जामात्रेणापि द्वापञ्चाशत्सङ्ख्याक-तुलापरिमितं ताम्रं जाम्बूनद विधातुं शक्नुया।

निरीक्षस्व=अवलोकय। त्वम् = निस्स्वः साधारणदौवारिकः कष्टेन जीविकां निर्वहसीति ध्वनिः। अत एव तत्प्रयोगः, अन्यथा 'निरीक्षस्वे' त्येनेनैव गतार्थता स्यात्। रसायनानाम् = ताम्रादीनां सुवर्णादिनिर्माणशक्तिमतामोषधिविशेषाणाम् , तत्त्वम् = सामर्थ्यम्। प्रतिरुन्धेः = प्रतिवारयेः। 'रुधिर् आवरणे' इत्यस्य विधौ लिङि रूपम्। परिष्कृतम् = सुसाधितम्। तुला = पलानां शतम्। "तुला

संन्यासी—देखो इस समय तुम द्वारपाल हो, प्राणों की बाजी लगाकर जीवन-निर्वाह करते हो, तुम कभी हजार दस हजार रुपये इकट्ठे पा जाओगे यह किसी भी तरह सम्भव नहीं है।

दौवारिक—हाँ, आगे कहिये।

सन्यासी—और हम संन्यासी लोग वनों और पर्वत-कन्दराओं में विचरते हैं, हमें सारा रसायन-रहस्य मालूम है।

दौवारिक—हो सकता है, आगे और आगे कहिये।

सन्यासी—तो यदि तुम मुझे अन्दर जाने से न रोको, तो मैं अभी तुम्हें शोधित पारे की भस्म दे दूँ, जिससे तुम रत्ती भर से भी लगभग ७५ सेर ताँबे को सोना बना सकोगे।

५०

दौवारिकः—हंहो ! कपटसंन्यासिन् !! कथं विश्वासघातं स्वामिवञ्चनञ्च शिक्षयसि ? ते केचनान्ये भवन्ति जार-जाताः, ये उत्कोच-लोभेन स्वामिनं वञ्चयित्वा आत्मानमन्धतमसे पातयन्ति, न वयं शिवगणास्तादृशाः । (सन्यासिनो हस्तं धृत्वा) इतस्तु सत्यं कथय कस्त्वम् ? कुत आयातः ? केन वा प्रेषितः ?

संन्यासी—(स्मित्वेव) अथ त्वं मां कं मन्यसे ?

दौवारिकः—अह तु त्वामस्यैव सम्प्रेनस्याऽऽयातस्य अपजलखानस्य—

संन्यासी—(विनिवार्य मध्य एव) धिग् धिग् !

दौवारिकः—कस्याप्यत्यस्य वा गूढचरं मन्ये । तदादेशं पालयिष्यामि प्रभुवर्यस्य । (हस्तमाकृष्य) आगच्छ दुर्गाध्यक्ष-समीपे,

---

त्रिया पलशतमि" त्यमरः । ताम्रम् , धातुनाम । जाम्बूनदम् = सुवर्णम् ।

जारजाताः, "अमृते जारजः कुण्डो मृते भर्तरि गोलक" इति कोशात् पत्यौ जीवति परपुरुषेण समुत्पादिता जारजाता इत्युच्यन्ते, अत्र

दौवारिक—अच्छा जी ! क्यों रे कपटी संन्यासी विश्वासघात और स्वामी को छलने की शिक्षा देता है ! वे हरामजादे कोई दूसरे ही होते हैं जो घूस के लालच से स्वामी को छल कर अपने को नरक में डालते हैं । महाराज शिवाजी के सेवक हम लोग वैसे नहीं हैं । (सन्यासी का हाथ-पकड़ कर) अच्छा, अब सच-सच कह तू कौन है, कहाँ से आया है, या तुझे किसने भेजा है ?

सन्यासी—(मुस्कराता हुआ सा) अच्छा तुम मुझे कौन समझते हो ?

दौवारिक—मैं तो तुझे इसी सेना सहित आये हुये अफजल खाँ का—

सन्यासी—(बीच ही में रोककर) छिः छिः !!

दौवारिक—या किसी दूसरे का गुप्तचर समझता हूँ, अतः मैं महाराज के आदेश का पालन करूँगा । (हाथ खींच कर) इधर आओ, दुर्गाध्यक्ष

स एवाभिज्ञाय त्वया यथोचितं व्यवहरिष्यति ।

ततः संन्यासी तु-"त्यज, नाहं पुनरायास्यामि, नाहं पुनरेवं कथयिष्यामि, महाशयोऽसि, दयस्व दयस्व"-इति सहस्रधा समचकथत्, तथापि दौवारिकस्तु तमाकृष्य नयन्नेव प्रचलितः ।

अथ यावद् द्वारस्थ-स्तम्भोपरि संस्थापितायां काच-मञ्जूषायां जाज्वल्यमानस्य प्रबल-प्रकाशस्य दीपस्य समीपे समायातः, तावत्संन्यासिनोक्तम्-"दौवारिक ! अपि मां पूर्वमपि कदाऽप्यद्राक्षीः ?" ततो दौवारिकः पुनस्तं निपुणं निरीक्षमाणो मन्द्रेण स्वरेण, अरुणापाङ्गाभ्यां लोचनाभ्याम्, गौरतरेण वर्णेन चुम्बितयौवनेन वयसा, निर्भीकेण हारिणा च मुख-मण्डलेन पर्यचिनोत्। भुशुण्डी-समु-

---

निन्दार्थकम् । उत्कोचो हिन्द्या "घूस" इति, "रिश्वत" इति चोच्यते ।

काचघटिता मञ्जूषा काचमञ्जूषा = रक्तवर्तिका । "लालटेन" इति हिन्दी । अपाङ्गः = नेत्रप्रान्तभागः । "अपाङ्गौ नेत्रयोरन्तावि"त्यमरः । चुम्बितम् = स्पृष्टम्, यौवनम् = नवं वयो येन तेन । निर्भीकेण = भयशून्येन । हारिणा = मनोहरेण । पर्यचिनोत् = परिचितवान् ।

के समीप चलो, वह सोच-समझकर और तुम्हें पहचान कर तुम्हारे साथ जैसा उचित समझेंगे वैसा व्यवहार करेंगे ।

उसके बाद सन्यासी ने "छोड दीजिये, मैं फिर नहीं आऊँगा, ऐसी बात नहीं कहूँगा, आप बड़े उदार हैं, दया कीजिये, दया कीजिये" ऐसा हजारों बार कहा, पर दौवारिक फिर भी उसे खींच ही ले चला ।

तदनन्तर द्वारपाल के फाटक पर रखी लालटेन में जल रहे प्रखर प्रकाश वाले दीपक के समीप पहुँचने पर संन्यासी ने कहा, 'द्वारपाल ! क्या मुझे तुमने कभी पहले भी देखा है ?' तब द्वारपाल ने पुनः उसे गौर से देख कर, उसके गम्भीर स्वर, आरक्त नेत्र प्रान्त वाली आँखों, गोरे रंग, उमड़ रही नई जवानी और निर्भीक तथा मनोहर मुखमण्डल से

त्तोलन-किण-कर्कश-करग्रहमपहाय, सलज्ज इव च नम्रीभूय, प्रणमन्नुवाच—"आः! कथ श्रीमान गौरसिंह आर्यः? क्षम्यतामनुचितव्यवहार एतस्य ग्राम्य-वराकस्य"। तदवधार्य तस्य पृष्ठे हस्तं विन्यस्यन् सन्यासिरूपो गौरसिंह समवोचत्—दौवारिक! मया वहुश परीक्षितोऽसि, ज्ञातोऽसि यथायोग्य एव पदे नियुक्तोऽसि चेति। त्वादृक्षा एव प्रभूणां पुरस्कारभाजनानि भवन्ति, लोकद्वयञ्च विजयन्ते। तव प्रामाणिकतां जानीत एवात्रभवान प्रभुवर्य्यः, परमहमपि विशिष्य कीर्तयिष्यामि। निर्दिश तावत् कुत्र श्रीमान? किञ्चानुतिष्ठति?

ततः पुनर्वद्धाञ्जलेर्दौवारिकस्य किमपि कर्णे कथितमाकर्ण्य

भुशुण्ड्याः = आयुधविशेषस्य, समुत्तोलनेन = उत्थापनेन, यः किण. = चिह्नविशेषः तेन कर्कशस्य = कठोरस्य, करस्य, ग्रहः = ग्रहणम्। गौरसिंहः कथाभागे पूर्वं गौरवटुनाम्ना समायातोऽयमेवेति न विस्मर्तव्यम्।

उसे पहचान लिया। पहचानते ही, बन्दूक उठाने से जिसमें घट्टे पड गये थे ऐसे कठोर हाथ को सन्यासी से हटाकर अर्थात् संन्यासी का हाथ छोडकर, सहमा-सा, सिर झुकाकर प्रणाम करता हुआ बोला—"अरे! श्रीमान् गौरसिंहजी, आप? इस वेचारे गँवार के अनुचित व्यवहार को क्षमा कीजियेगा।" यह सुनकर उसकी पीठ ठोंकते हुए संन्यासी वेषधारी गौरसिंह बोले—

दौवारिक! मैंने तुम्हारी कई वार परीक्षा ली है, मैं तुम्हें समझ गया, तुम यथायोग्य पद पर ही नियुक्त किये गये हो। तुम्हारे जैसे लोग ही स्वामियों के पुरस्कार के पात्र होते हैं तथा इहलोक और परलोक दोनों में सम्मान पाते हैं। तुम्हारी प्रामाणिकता को तो पूज्य शिवाजी जानते ही हैं, फिर भी मैं उनसे विशेष रूप से कहूँगा। बताओ, महाराज कहाँ हैं और क्या कर रहे हैं?

तदनन्तर द्वारपाल ने हाथ जोडकर गौरसिंह के कान में कुछ कहा, उसे

प्रधानद्वारमुल्लङ्घ्य, नेदीयस्यामेकस्यां निम्बतरु-तल-वेदिकायां सह्चरं समुपवेश्य, तुम्बीमेकतः संस्थाप्य, स्वाङ्गरक्षिकावरण-काषाय-वसनं चैकतो निम्बशाखायामवलम्बय्य, पट-खण्डेन पक्ष्मणो. कपोलयो. कर्णयोर्भ्रुवोश्चिबुके नासाया केशप्रान्तेषु च छुरितामिव विभूतिं प्रोच्छ्य, स्कन्धयो. पृष्ठे च लम्बमानान् मेचकान् कुञ्चितान् कचानाबध्य, सहचर-पोटलिकात उष्णीषमादाय, शिरसि चाऽऽधाय, सुन्दरमुत्तरीयं चैकं स्कन्धयोर्निक्षिप्य, दौवारिक-निर्देशानुसारं श्रीशिववीरालंकृतामट्टालिकां प्रति प्रातिष्ठत।

शिववीरस्तु कस्याञ्चिच्चन्द्रचुम्बिन्यां सान्द्र-सुधासार-संलिप्त-

नेदीयस्याम् = समीपवर्तिन्याम्। अङ्गरक्षिका = कञ्चुकस्यैव संक्षेपः। "अगरखा" इति हिन्दी। पक्ष्मणोः = अक्षिलोम्नोः "पक्ष्माक्षिलोम्नि" त्यमरः। "पलक" इति हिन्दी। चिबुकं "ठोडी" इति हिन्दीप्रसिद्धम्। छुरिताम = व्याप्ताम्, सलग्नामित्यर्थः। प्रोच्छ्य = दूरीकृत्य। "पोंछकर" इति हिन्दी। मेचकान् = कृष्णवर्णान्, "कृष्णे नीलसितश्यामकालश्यामल-मेचका" इत्यमरः। पोटलिकातः = "गठरीसे" इति भाषायाम्।

शिववीरोऽट्टालिकायामुपविष्ट आसीदिति सम्बन्धः। अट्टालिकां विशि-नष्टि—चन्द्रचुम्बिन्याम् = अत्युच्छ्रायायाम्। असम्बन्धे सम्बन्धवर्णनादति-

सुनकर, प्रधान द्वार पार कर, पास में ही स्थित नीम के पेड़ के नीचे के एक चबूतरे पर साथ के बालक को बिठा कर, तुम्बी को एक ओर रखकर, अपने अंगरखे को ढकने के लिए पहने गये गेरुए वस्त्र को नीम की शाखा में एक ओर लटका कर, रुमाल से आँखों, गालों, कानों, भौहों, ठोढ़ी, नाक तथा बालों में लगी भस्म को पोंछ कर, कन्धों और पीठ पर लटक रहे काले घुँघराले बालों को संभाल—सँवार कर, साथ के बच्चे के हाथ की पोटली से एक पगड़ी निकाल कर, ऐसे सिर पर रख कर, और एक सुन्दर उत्तरीय को कन्धों पर डाल कर गौरसिंह द्वारपाल के द्वारा बताये गये रास्ते से, श्री शिवाजी द्वारा अलंकृत अट्टालिका की ओर चल दिये।

शिवाजी एक गगनचुम्बी, गाढ़े चूने से पुती दीवारों वाले, धूप से

भित्तिकाया धूपधूपितायां गजदन्तिकावलम्बित-विविध-च्छुरिका-खड्ग-रिष्टिकाया सुवर्ण-पिञ्जर-परिलम्बमान-शुक-पिक-चकोर-सारिका-कल-कूजित-पूजितायामट्टालिकाया सन्ध्यामुपास्यो-पविष्ट असीत्। नैर्ष परितश्च तस्यैव खर्वामप्यखर्व-पराक्रमा श्यामामपि यशःसमूह-श्वेतीकृत-त्रिभुवनां कुशासनाश्रयामपि

शयोक्तिः। सान्द्रेण=घनेन, सुधासारेण=चूर्णद्रव्येण, संलिप्ताः=रूपिताः, भित्तिकाः=कुड्यानि यस्या तस्याम्। स्वल्पो गजदन्तो गजदन्तिका=भित्तिशङ्कुः, "खूँटी" इति हिन्दी, तस्यामवलम्बिताः, विविधा=अनेक-प्रकाराः, छुरिकाखड्गरिष्टिका यस्या तस्याम्। छुरिकाऽसिधेनुका, खड्गोऽसिः, रिष्टिका तद्विशेषः। सुवर्णपिञ्जरेषु, परिलम्बमानाना=निवसताम्, शुक-पिकचकोरसारिकाणा, कलकूजितै=मधुरभाषणैः, पूजितायाम्=भूषि-तायाम्। शुका.=कीराः, पिका.=कोकिलाः, चकोराः=जीवञ्जीवाः, सारिका.=शारिकाः, "मैना" इति हिन्दी। परितश्च तस्यैव मूर्ति दर्शं दर्शं वयस्याः कदानध्यवस्यन्निति सम्बन्धः। मूर्ति विशिनष्टि—खर्वाम्=ह्रस्वाम्। शिववीरः खर्वः स्थूलोऽपठितश्चाऽऽसीदति वृत्तवेदिनो वदन्ति। अखर्वः=अनल्पः पराक्रमो यस्यान्ताम्। अखर्वस्य पराक्रमो यस्यामिति विगृहीते यः खर्वस्तस्मिन्नखर्वस्य पराक्रमः कुत आयात इति विरोध इवाऽऽभासते। परिहारोपायश्च वास्तविकविग्रहाश्रयणेन। तथा च विरोधो न वास्तव इति विरोधाभासोऽत्रालङ्कारः। कलितगौरवामपि कलितलाघवामित्यन्तं सर्वत्रैव-मेव। सोऽपि च स्वभावोक्त्योत्प्रेक्षया चानुप्राणित इति विपुला शोभामा-श्रयति। श्यामाम्=कृष्णाम्। यशःसमूहेन=कीर्त्तिकूटेन, श्वेतीकृतम्=

सुगन्धित, प्रासाद में—जिसमें खूँटियों पर नाना प्रकार के छूरे, कृपाण, तलवार आदि लटक रही थीं और जो सोने के पिंजड़ों में लटक रहे तोतों, कोयलों, चकोरों और सारिकाओं के कलरव से सुशोभित था, सन्ध्यावन्दन से निवृत्त होकर बैठे हुए थे। उनके चारों ओर, उन्हीं की, देखने में ठिगनी होने पर भी महापराक्रमशालिनी, साँवली होते हुए भी तीनों लोकों को अपनी कीर्ति से धवलित करने वाली, कुश के आसन पर आसान

सुशासनाश्रयां पठन-पाठनादि-परिश्रमानभिज्ञामपि नीति-निष्णातां स्थूलदर्शनामपि सूक्ष्म-दर्शनां ध्वंसकाण्डव्यसनिनीमपि धर्म-धौरेयीं कठिनामपि कोमलाम् उग्रामपि शान्तां शोभित-विग्रहामपि दृढ-सन्धि-बन्धां कलित-गौरवामपि कलित-

धवलितम्, त्रिभुवनं यया ताम्। श्यामया धवलीकरणं विरोधविषयः, परिहारश्च कीर्तेः श्वैत्याभिधानद्वारेण। कुशानाम्, आसनम् = विष्टरः, आश्रयः = अवस्थितिः, यस्यास्ताम्। सुशासनम् = शोभनराष्ट्रस्थितिः, आश्रयो यस्यास्ताम्। कुत्सितं शासनं कुशासनमाश्रयो यस्या इति विग्रहे या कुशासनाश्रया सा कथं सुशासनाश्रयेति विरोधः। स्थूलं दर्शनम् = नेत्र यस्यास्ताम्। सूक्ष्मं दर्शनम् = कर्तव्याकर्तव्यविचारो यस्यास्ताम्। या स्थूलदर्शना सा कथं सूक्ष्मदर्शनेति विरोधः सामान्यतोऽर्थाश्रयणे। सूक्ष्मबुद्धित्वरूपवास्तविकार्थे परिहारश्च। ध्वंसकाण्डस्य = विधर्मिहिंसनस्य, व्यसनमस्ति यस्यां तादृशीमपि धर्मधौरेयीम् = धर्मभारधारिणीम्। या ध्वंसव्यसनवती सा कथं धर्मं पालयेदिति विरोधः, विधर्मिवधेन सनातनधर्मपालिका चेति विरोधपरिहारः। उग्रशान्तयोर्विरोधः स्पष्ट एव, उग्रत्वं दुर्धर्षत्वाच्छान्तत्वञ्च दयाविभूषितत्वादिति परिहारः। कठिनकोमलयोः स्पर्शपरत्वे विरोधः। तयोः पुनः शरीर-हृदय गतत्वे स्थलविशेषविषयत्वे वा परिहारः। शोभितः = सुन्दरः, विग्रहः = संग्रामो यस्यास्ताम्। दृढः = स्थिरः, सन्धिबन्धः = सन्धिप्रस्तावो यस्यास्तामिति विरोधः, परिहारस्तु विग्रहशब्दस्य शरीररूपार्थाश्रयणेन, सन्धिबन्धशब्दोऽपि अवयवसन्धानपरः। कलितगौरवलाघवयोर्विरोधः स्फुट एव, गौरवमित्यस्य गाम्भी-

होने पर भी सुन्दर शासन का आश्रय, पठन पाठन के परिश्रम से अपरिचित होती हुई भी राजनीति में निष्णात, देखने में स्थूल होने पर भी सूक्ष्मदृष्टि (कर्तव्याकर्तव्यविचार) वाली, (विधर्मियों-म्लेच्छों की) हिंसा को व्यसनिनी होने पर भी धर्म का भार धारण करने वाली, कठिन होती हुई भी कोमल, उग्र होती हुई भी शान्त, सुन्दर शरीर वाला होती हुई भी सुदृढ़

लाघवां विशाल-ललाटां प्रचण्ड-बाहुदण्डां शोणापाङ्गां कम्बुग्रीवां सुनद्धस्नायु वर्तुल-श्याम-श्मश्रु धारिताकृतिमिव वीरतां विग्रहिणीमिव धीरतां समासादित-समर-स्फूर्त्तिं मूर्तिं दर्शं दर्शं परं प्रसादमासादयन्तस्तस्य वयस्याः कटानध्यवसन्। तेषु च अपजलखानदमन-विषयक-वार्तामारिप्सुष्वेव कश्चिद् वेत्रहस्तः प्रतीहारः प्रविश्य, वेत्रं कक्षे संस्थाप्य, शिरो नमयित्वा, अञ्जलिं बद्ध्वा न्यवीविदत्—"प्रभो! श्रीमान् गौरसिंहो दिदृक्षतेऽत्र भवन्तम्"—तदाकर्ण्य—"आम्! प्रवेशय प्रवेशय" इति सानन्दं सोत्साहं च कथितवति

र्यमित्यर्थाश्रयणे लाघवशब्दस्य चातुर्यार्थकत्वे च परिहारः। शोणापाङ्गाम् = रक्तकटाक्षाम्। सुनद्धा = शोभनतया श्लिष्टाः, स्नायवो यस्यास्ताम्। वर्तुलं श्याम च श्मश्रु यस्यास्ताम्। उत्प्रेक्षते—धारिता = गृहीता, आकृतिर्यया ताम्। विग्रहिणीमिव = शरीरवतीमिव। समासादिता = लब्धा, समरे स्फूर्तिर्यया ताम्। दर्शं दर्शम् = दृष्ट्वा दृष्ट्वा। कटान् = तृणनिर्मितोपवेशनानि। "चटाई" इति हिन्दी। "उपान्वध्याङ् वसः" इत्याधारस्य कर्मत्वम्। आरिप्सुषु = प्रारम्भ चिकीर्षुषु। न्यवीविदत् = निवेदितवान्। दिदृक्षते = द्रष्टुमिच्छति, "ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः" इत्यात्मनेपदम्।

आखण्डलशब्द इन्द्रवाच्यपि प्रकृते श्रेष्ठपरः। प्रावीविशत् =

सन्धिबन्धोंवाली, गौरवशालिनी होते हुए भी चातुर्यसम्पन्न, विशाल ललाट और प्रबल भुजदण्डो वाली, आरक्त नेत्रों वाली, शख सदृश कठ वाली, सुगठित नसोंवाली, गोल और काली दाढी मूँछ वाली, मूर्तिमती वीरता-सी, शरीरधारिणी धीरता-सी, और युद्ध भूमि में असाधारण फुर्ती दिखाने वाली मूर्ति (देह) को देख-देख कर, परम प्रसन्न होते हुए, शिवाजी के साथी, चटाइयों पर बैठे थे। वे अफजल खाँ दमन से सम्बन्धित बातचीत शुरू ही करने जा रहे थे, कि बेंत हाथ में लिये प्रतीहारी ने प्रवेश कर, बेंत को बगल में दबा कर, सिर झुका कर, हाथ जोड कर निवेदन किया, 'स्वामिन्! श्रीमान्

महाराष्ट्रमण्डलाऽऽखण्डले, प्रतीहारो निवृत्य, सपद्येव तं प्रावीविशत्।

तमवलोक्यैव "इत इतो गौरसिंह! उपविश, उपविश, चिराय दृष्टोऽसि, अपि कुशलं कलयसि? अपि कुशलिनस्तव सहचासिनः? अप्यङ्गीकृत-महाव्रतं निर्वहथ यूयम्? अपि कश्चिन्नूतनो वृत्तान्तः?" इति कुसुमानीव वर्षता पीयूष-प्रवाहेणेव सिञ्चता मृदुना वचनजातेन तत्रभवता शिववीरेणाऽऽद्रियमाणः, आपृच्छ्यमानश्च, त्रिः प्रणम्य, अन्तरङ्ग-मण्डली-जुष्ट-कटे समुपविश्य, करौ सम्पुटीकृत्य "भगवन्! अखिलं कुशलं प्रभूणामनुग्रहेणास्माकमखिलानाम्, अङ्गीकृत-महाव्रते च मा स्म पदं धात् कश्चनान्तराय इत्येव सदा प्रार्थ्यते भगवान् भूतनाथः। नूतनः प्रत्नश्च को नाम्नाद्यतनसमये वक्तव्यः श्रोतव्यश्च

अन्तर्णीतवान्। जुष्टम् = सेवितम्। अध्युषितमिति यावत्। धात्, लुङो रूपं, माङो योगादडभावः। प्रत्न = पुरातनः, "पुराणे प्रतनप्रत्नपुरातनचिरन्तना" इत्यमरः। अद्यतनसमये = सम्प्रति। "आजकल" इति

गौरसिंह आपका दर्शन करना चाहते हैं।' यह सुनकर, महाराष्ट्रमण्डल के इन्द्र-श्रेष्ठ शिवाजी के 'अच्छा, ले आओ, ले आओ' कहने पर, प्रतीहार लौट कर तुरन्त उन्हें ले आया।

उन्हें देखते ही, "इधर, इधर गौरसिंह! बैठो बैठो, काफी समय बाद दीख पड़े, कुशल से तो हो? तुम्हारे साथी कुशल से तो हैं? तुम लोग स्वीकृत महाव्रत को निबाहते तो हो न? क्या कोई नया समाचार है?" इस प्रकार पुष्पवर्षा सी करते हुए, अमृतप्रवाह से सींचते हुए से, मृदुवचनों से महाराज शिवाजी द्वारा आदर पाते हुए और पूछे जाते हुए गौरसिंह ने तीन बार प्रणाम कर, जिस पर अन्तरङ्ग मित्र बैठे थे उसी चटाई पर बैठ कर, हाथ जोड़ कर कहा, "भगवन्! प्रभुचरणों के अनुग्रह से हम सब लोग पूर्णतया सकुशल हैं और भगवान् विश्वनाथ से सदा यही प्रार्थना किया करते हैं कि स्वीकृत महाव्रत में कोई विघ्न न उपस्थित

वृत्तान्त.—ऋते दुराचारात् स्वच्छन्दानामुच्छृङ्खलानामुच्छिन्न-सच्छीलाना म्लेच्छ-हतकानाम्" इति कथयामास। ततश्च तेपा-मेवमभूदालाप ।

शिववीर—अथ कथ्यतां को वृत्तान्तः? का च व्यवस्था अस्मन्महाव्रताश्रम-परम्परायाः?

गौरसिह—भगवन् सर्वं सुसिद्धम्, प्रतिगव्यूत्यन्तरालमङ्गी-कृत-सनातनधर्म-रक्षा-महाव्रताना धारित-मुनि वेषाणा वीरवराणा-माश्रमाः सन्ति। प्रत्याश्रमञ्च वलीकेपु गोपयित्वा स्थापिताः-परश्शता खड्गा, पटलेपु तिरोभाविता शक्तयः, कुशपुञ्जान्त.-स्थापिता भुशुण्ड्यश्च समुल्लसन्ति। उञ्छस्य, शिलस्य, समिदाह-

---

हिन्दी। अद्यतनशब्दो वैयाकरणैः परिभाषितो यस्मिन्नर्थे अतीतरात्र्य-र्धारब्धागामिरात्र्यर्धचरमावयवरूपे—न तदभिप्रायेण प्रयोग इति वेदितव्यम्। स्वच्छन्दानामित्यारभ्य म्लेच्छान्तेऽनुप्रासः। महाव्रतम् = महान् नियमः। उञ्छः = पतितकणानामेकैकशो ग्रहणम्। शिलम् = क्षेत्रादौ स्वामित्यक्ताना कणिशाना ग्रहणम्। "उञ्छः कणश आदान कणि-

---

हो, नया कहने लायक और सुनने लायक समाचार आजकल निरकुश, उद्दण्ड, शील और सदाचारविहीन दुष्ट म्लेच्छों के दुराचार के सिवा और क्या है?" तदनन्तर उनकी बातचीत इस प्रकार हुई।

शिवाजी—अच्छा बताइये हमारे महाव्रताश्रमों का क्या हाल-चाल है? उनकी व्यवस्था कैसी चल रही है?

गौरसिंह—भगवन्! सब ठीक हो गया है। प्रत्येक दो कोस के बीच में सनातन धर्म की रक्षा का महाव्रत स्वीकार किये हुए मुनिवेषधारी वीरों के आश्रम हैं और प्रत्येक आश्रम में छप्परों की ओरियों में सैकड़ों तल-वारें, छप्परों में शक्तियाँ (शस्त्रविशेष) और कुशों के ढेर में बन्दूकें छिपा कर रखी हुई हैं। खेतों में गिरे अनाज के दानों और बालियों को

रणस्य, इङ्गुदी-पर्य्यन्वेषणस्य, भूर्जपत्र-परिमार्गणस्य, कुसुमावचयनस्य, तीर्थाटनस्य, सत्सङ्गस्य च व्याजेन, केचन जटिला, परे मुण्डिनः, इतरे काषायिण, अन्ये मौनिनः, अपरे ब्रह्मचारिणश्च बहवः पटवो वटवश्चराः सञ्चरन्ति । विजयपुरादुड्डीयात्राऽऽगच्छन्त्या मक्षिकाया अप्यन्त. स्थितं वय विद्म., किं नाम एषा यवनहतकानाम् ?

शिववीर.–साधु साधु, कथं न स्यादेवम् ? भारतवर्षीया यूयम्, तत्रापि महोच्चकुलजाताः, अस्ति चेदं भारतं वर्षम्, भवति च स्वाभाविक एवानुरागः सर्वस्यापि स्वदेशे, पवित्रतमश्च यौष्माकीण. सनातनो धर्म., तमेते जाल्माः समूलमुच्छिन्दन्ति, अस्ति च "प्राणा यान्तु, न च धर्म" इत्यार्याणां दृढ. सिद्धान्तः । महान्तो

शाद्वलेन शिलर्मि"त्यमरः । इङ्गुद्याः =पिण्याकस्य, पर्यन्वेषणम्=सर्वतो मार्गणम्, तस्य । जटिलाः=जटायुताः । "लोमादि-पामादि-पिच्छादिभ्यः शनेलचः" । काषायिणः = गैरिकवसनाः । मक्षिकाया अपि, किमुत मनुष्याणाम्, कैमुत्ययुता लोकोक्तिः । अन्तः स्थितम् = मानसे विद्यमानम् । जाल्माः = अविवेकिनः । "जाल्मोऽसमीक्ष्यकारी स्यादि" त्यमर. ।

बीनने, समिधा लाने, इंगुद (हिंगोट या मालकाँगनी के बीज) खोजने, भूर्जपत्र खोजने, फूल चुनने, तीर्थाटन करने तथा सत्संग करने के बहाने, कोई जटा धारण किये, दूसरे सिर मुड़ाये, कुछ गेरुआ वस्त्र पहने, कुछ मौनी बने, और अन्य ब्रह्मचारी वेष धारण किये, अनेक चतुर गुप्तचर बालक घूम रहे हैं। हम बीजापुर से उडकर यहाँ आने वाली मक्खी तक की आन्तरिक बातों को जानते हैं, इन दुष्ट यवनों की तो बात ही क्या है ?

शिवाजी—शाबाश, शाबाश, ऐसा कैसे न हो ? तुम लोग भारतीय हो, उसमें भी उच्च कुल में उत्पन्न हुए हो, यह भारतवर्ष है, अपने देश पर सभी का स्वाभाविक प्रेम होता है, आपका सनातन धर्म पवित्रतम धर्म है, उसे ये जालिम जड़ से उखाड़ रहे हैं, और आर्यों का, 'प्राण भले ही चले जायँ, पर धर्म न जाय' यह दृढ़ सिद्धान्त है । महापुरुष

हि धर्मस्य कृते लुण्ठ्यन्ते, पात्यन्ते, हन्यन्ते, न च धर्मं त्यजन्ति, किन्तु धर्मस्य रक्षार्थं सर्वसुखान्यपि त्यक्त्वा, निशीथेष्वपि, वर्षास्वपि, ग्रीष्म-घर्मेष्वपि, महारण्येष्वपि, कन्दरिकन्दरेष्वपि, व्याल-वृन्देष्वपि, सिंह-सङ्घेष्वपि, वारण-वारेष्वपि, चन्द्रहास-चमत्कारेष्वपि च निर्भया विचरन्ति। तद् धन्याः स्थ यूयं वस्तुत आर्य-वंशीया' वस्तुतश्च भारतवर्षीयाः।

अथ कथ्यतां कोऽपि विशेषोऽवगतो वा अफजलखानस्य विषये ?

गौरसिंह —"अवगत., तत्पत्रमेव दर्शयामि"—इति व्याहृत्य, उष्णीष-सन्धौ स्थापितं कन्यापहारक-यवन-युवक-मृत-शरीर-वस्त्रान्त. प्राप्तं पत्रं बहिश्चकार।

"जालिम" इति हिन्दी। लुण्ठ्यन्ते = चोर्यन्ते। निशीथेषु = अर्धरात्रेषु। वारणवारेषु = हस्तिसमूहेषु। "समूहे निवहव्यूहसदोहविसरव्रजा। स्तोमौघ-निकर व्रात-वार-सघात सञ्चया" इत्यमरः। कन्यापहारकस्य = बालिकाचोरस्य, नवयुवकस्य, मृतस्य = गतासो, मारितस्येति यावत्। शरीरस्य, वस्त्रान्त = वसनान्तराले, प्राप्तम् = लब्धम्।

धर्म के लिए लुट जाते हैं, गिराये जाते हैं, मारे जाते हैं, पर धर्म को नहीं छोडते, वरन् धर्म की रक्षा के लिए सारे सुखों को भी छोडकर, अर्द्ध-रात्रि में भी, वर्षा में भी, गर्मी को धूप में भी, घने जगलों में भी, पर्वतों की गुफाओं में भी, सर्पों के समूह के बोच मे भी, सिंहों के झुण्डों में भी, हाथियों के यूथों में भी और चमकती तलवारों में भी निर्भय विचरते हैं। तुम लोग धन्य हो और वस्तुतः आर्यवशो और भारतवर्षीय हो।

अच्छा बताइये, क्या अफजल खॉं के विषय में कोई नई बात मालूम हुई ?

गौरसिंह ने 'हॉं मालूम हुई, उसका पत्र ही दिखाऊॅंगा।' यह कह कर पगडी के अन्दर रखे हुए कन्याहरण करने वाले यवन युवक के मृत शरीर के वस्त्रों के अन्दर से प्राप्त पत्र को बाहर निकाला।

सर्वे च विजयपुराधीशमुद्रामवलोक्य, "किमेतत् ? कुत एतत् ? कथमेतत् ? कस्मादेतत् ?" इति जिज्ञासमाना. सोत्कण्ठा वितस्थिरे। गौरसिंहस्तु शिववीरस्यापि तत्प्राप्ति-चरित-शुश्रूषामवगत्य संक्षिप्य सर्वं वृत्तान्तमवोचत्। ततस्तु "दृश्यताम्, प्रसार्यताम्, पठ्यताम्, कथ्यताम्, किमिदमि"ति पृच्छति शिववीरे गौरसिंहो व्याजहार–

भगवन्! सर्पाकारैरक्षरैः पारस्य-भाषाया लिखितं पत्त्रमेतदस्ति। एतस्य सारांशोऽयमस्ति—विजयपुराधीशः स्वप्रेपितमपजल खानं सेनापतिं सम्बोध्य लिखति यत्–"वीरवर! महाराष्ट्र-राजेन सह योद्धुं प्रस्थितोऽसीति मा स्म भूत्कश्चनान्तरायस्तव विजये। शिवं युद्धे जेष्यसि चेन्, पद्भ्यां सिंहं जितवानसीति मन्ये, किन्तु

विजयपुरम् = 'बीजापुर' इति भाषायां प्रसिद्ध नगरम्। वितस्थिरे = स्थिताः। "समवप्रविभ्यः स्थ" इत्यात्मनेपदम्। शुश्रूषाम्=श्रोतुमिच्छाम्।

सर्पाकारैः=वक्रैः। सोपहासम्। पारस्यानाम् = पारसीकानाम्, भाषायाम् = वाचि। "फारसी भाषा में" इति हिन्दी।

सभी लोग, बीजापुर के सुल्तान की मुहर देखकर 'यह क्या है ? कहाँ से मिला ? कैसे मिला ? किससे मिला ?' यह जानने को अत्यधिक उत्सुक हो उठे। गौरसिंह ने, शिवाजी को भी उसकी प्राप्ति का वृत्तान्त जानने को उत्सुक जानकर संक्षेप में सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तदनन्तर, वीर शिवाजी के 'दिखाइये, खोलिये, पढ़िये, कहिये यह क्या है ?' इस प्रकार पूछने पर गौरसिंह बोला—

भगवन्! यह सर्पाकार अक्षरों (अरबी लिपि) से फारसी भाषा में लिखा गया पत्र है। इसका सारांश यह है, बीजापुर का सुल्तान, अपने द्वारा भेजे गये सेनापति अफजल खाँ को सम्बोधित करके लिखता है कि "वीरवर! तुमने महाराष्ट्र के अधिपति शिवाजी के साथ युद्ध करने के लिए प्रस्थान किया है, अतः तुम्हारी विजय में किसी प्रकार का विघ्न न उपस्थित हो, यदि युद्ध में तुमने शिवाजी को जीत लिया, तो मैं

सिंहहननापेक्षया जीवतः सिंहस्य वशीकार एवाधिकं प्रशस्यः। तद् यदि छलेन जीवन्तं शिवमानयेस्तद् वीरपुङ्गवोपाधि-दान-सह-कारेण तव महतीं पदवृद्धिं कुर्य्याम्। गोपीनाथपण्डितोऽपि मया तव निकटे प्रस्थापितोऽस्ति, स मम तात्पर्यं विशदीकृत्य तव निकटे कथयिष्यति। प्रयोजनवशेन शिवमपि साक्षात्करिष्यति" इति।

इत्याकर्णयन एव शिववीरस्य अरुणकौशेय-जाल-निबद्धौ मीनाविव नयने सजाते, मुखञ्च बाल-भास्कर-बिम्ब-विडम्बना-मालम्बे, अधरश्च धीरताधुरामधरीकृतवान्।

'शिवं युद्धे जेष्यसि चेत् पद्भ्या सिंहं जितवानसी'ति निदर्शनालङ्कारः। मस्ये = शास्ये। प्रशस्य' = श्लाघ्यः। प्रस्थापित' = प्रेषितः। विशदीकृत्य = स्पष्टीकृत्य।

अरुणम्=लोहितम्, यत् कौशेयस्य पट्टवस्त्रस्य, जालम्=आनाय, तेन निबद्धौ=गृहीतौ। मीनाविवेत्युपमा। क्रोधान्नयने लोहिते अभूतामिति वाच्योऽर्थः। बालभास्करस्य = नवोदितसूर्यस्य, यद्, बिम्बम् = नितान्त-लोहित मण्डलम्, तद्विडम्बनाम् = तदनुकृतिम्। आलम्बे = धृतवत्। धीरताधुराम् = धैर्यभारम्। "ऋक् पूरब्धू" रित्यादिना समासान्तो-ऽप्रत्ययः। अधरीकृतवान् = त्यक्तवान्। अनुप्रासः। चूर्णक गद्यम्,

---

समझूँगा कि पैदल ही शेर जीत लिया, लेकिन शेर मारने की अपेक्षा जीवित शेर को वश में करना ही अधिक प्रशंसनीय होता है, अतः यदि तुम छल से शिवाजी को जीवित ही पकड़ लाओ तो तुम्हें वीरपुंगव की उपाधि देने के साथ ही तुम्हारी पदवृद्धि भी कर दूँगा। मैंने गोपीनाथ पण्डित को भी तुम्हारे पास भेज दिया है, वे मेरे अभिप्राय को तुम्हें विस्तार से समझायेंगे और प्रयोजनवश शिवाजी से भी मिलेंगे।"

यह सुनते ही शिवाजी की आँखें लाल रेशमी जाल में फँसी मछली की तरह हो गईं (आँखों में लाल डोरे पड़ गए), मुखमण्डल नवोदित सूर्यबिम्ब के समान लाल हो गया और अधर धैर्य छोड़कर फड़कने लगे।

अथ स दक्षिण-कर-पल्लवेन श्मश्रु परामृशन्नाकाशे दृष्टिं वद्ध्वा "अरे रे विजयपुर-कलङ्क ! स्वयमेव जीवन् शिव' तव राजधानीमाक्रम्य, वीरपुङ्गवोपाधिसहकारेण तव महतीं पदवृद्धिमङ्गीकरिष्यति, तत्किं प्रेषयसि मृत्योः क्रीडनकानेतान् कदर्य्य-हतकान ?"—इति साम्रेडमवोचत् । अपृच्छच्च "ज्ञायते वा कश्चिद् वृत्तान्तो गोपीनाथपण्डितस्य ?"

यावद् गौरसिंह· किमपि विवक्षति तावत्प्रतीहार' प्रविश्य 'विजयतां महाराज.' इति त्रिर्व्याहृत्य, करौ संपुटीकृत्य, शिरो नमयित्वा कथितवान् "भगवन् ! दुर्गद्वारि कश्चन गोपीनाथनामा पण्डितः श्रीमन्तं दिदृक्षुरुपतिष्ठते । नायं समयः प्रभूणा दर्शनस्य, पुनरागम्यताम्" इति वहुश· कथ्यमानोऽपि "किञ्चनात्यावश्यक·

वैदर्भी रीतिः, प्रसादश्च गुण इति तत्र तत्र न विस्मरणीयम् । शिवः = शिवाजीत्यर्थः । पदवृद्धिं = स्थानोन्नतिम्, 'तरक्की' इति भाषायाम् । मृत्योः = यमस्य । क्रीडनकान् = खेलासाधनानि । सन्निहितमरणानिति

उसके बाद शिवाजी ने, दाहिने हाथ से मूँछों पर ताव देते हुए, आकाश की ओर दृष्टि कर, "अरे वीजापुर के कलङ्क ! स्वयं शिवाजी ही जीवित रहकर, तुम्हारी राजधानी पर आक्रमण करके, वीरपुङ्गव उपाधि के साथ तुम्हारी दी हुई पदवृद्धि (तरक्की) स्वीकार करेगा, मृत्यु के खिलौने इन दुष्ट कायरों को क्यों भेजते हो ?" यह वाक्य कई बार दुहराया और गौरसिंह से पूछा, 'क्या गोपीनाथ पण्डित का कोई समाचार मिला ?'

गौरसिंह कुछ कहना ही चाहते थे कि इतने में ही द्वारपाल ने आकर, तीन बार- 'महाराज की जय हो' कह कर, हाथ जोडकर, सिर झुका कर कहा, महाराज ! किले के फाटक पर कोई गोपीनाथ नामक पण्डित आपके दर्शनों की इच्छा से खड़े हैं । 'यह समय महाराज से मिलने का

कार्यम्" इति प्रतिजानाति। तदत्र प्रभुचरणा एव प्रमाणम्—इति।

तदवगत्य "सोऽयं गोपीनाथः, सोऽयं गोपीनाथः" इति साम्रेडं सतर्कं सोत्साहञ्च व्याहृतवत्सु निखिलेषु, शिववीरेण निजबाल्यप्रियो माल्यश्रीकनामा संबोध्य कथितो यद् गम्यता दुर्गान्तर एव महावीर-मन्दिरे तस्मै वासस्थानं दीयताम्, भोज्य-पर्यङ्कादि-सुखद-सामग्री-जातेन च सत्क्रियताम्, ततोऽहमपि साक्षात्करिष्यामि—इति।

ततो बाढमित्युक्त्वा प्रयाते माल्यश्रीके; "महाराज! आज्ञा चेदहमद्यैव अपजलखानं कथमपि साक्षात्कृत्य, तस्याखिलं व्यवसितं विज्ञाय प्रभुचरणेषु विनिवेदयामि। नाधुना मम क्षान्तिः शान्तिश्च, यतः संन्यासिवेषोऽहं समागच्छन् द्वयोर्यवनभटयोर्वार्तयाऽवागमम्,

---

यावत्। साक्षात्करिष्यामि = द्रक्ष्यामि। गोपीनाथमिति शेषः।

बाढम्, अङ्गीकारसूचकमव्ययम्। व्यवसितम् = उद्योगम्।

नहीं है, पुनः आइयेगा,' बार-बार कहने पर भी, कहते हैं कि 'कुछ बहुत जरूरी काम है।' प्रभुचरणों का जैसी आज्ञा हो वैसा ही किया जाय।

यह जानकर, 'यह वही गोपीनाथ है, यह वही गोपीनाथ है,' इस प्रकार सभी लोगों के अनुमानपूर्वक और उत्साहपूर्वक बार बार कहने पर शिवाजी ने अपने बचपन के मित्र माल्यश्रीक को सम्बोधित कर कहा, 'जाओ, दुर्ग के अन्दर ही महावीर-मन्दिर में उन्हें ठहराओ और भोजन, पलंग आदि सुखद सामग्रियों से उनका सत्कार करो, फिर मैं भी उनसे मिलूँगा।'

उसके बाद, माल्यश्रीक के 'अच्छी बात है' कहकर चले जाने पर, गौरसिंह ने शिवाजी के कान में धीरे से कहा, 'महाराज! यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं आज ही किसी प्रकार अफज़ल खाँ से मिल कर, उसका सारा इरादा जान कर आकर आप से निवेदन करूँ। अब मुझमें न तो सहिष्णुता रह गई है, न शान्ति, क्योंकि सन्यासी के वेष में आते हुए मुझे

यत् श्व एवैते युयुत्सन्ते" इति गौरसिंहो मन्दं कर्णान्तिकं व्याहार्षीत् ।

ततो "वीर ! कुशलोऽसि, सर्वं करिष्यसि, जाने तव चातुरीम्, तद् यथेच्छं गच्छ, नाहं व्याहन्मि तवोत्साहम्, नीतिमार्गान् वेत्सि, किन्तु परिपन्थिन एते अत्यन्तनिर्दयाः, अतिकदर्याः, अतिकूटनीतयश्च सन्ति । एतैः सह परम-सावधानतया व्यवहरणीयम्"—इति कथयित्वा शिववीरस्तं विससर्ज ।

गौरसिंहस्तु त्रिः प्रणम्य, उत्थाय, निवृत्य, निर्गत्य, अवतीर्य, सपदि तस्या एव निम्ब-तरु-तल-वेदिकायाः समीप आगत्य, स्वसह-

क्षान्तिः=क्षमा । कर्णान्तिकम् =श्रवणसमीपम् । असर्वश्रव्यमिति यावत् ।

चातुरीम् = कौशलम् । "गुणवचनब्राह्मणादिभ्य" इति ष्यञि यह्लोपयलोपयोः; षित्वान्ङीषि । व्याहन्मि = नाशयामि । परिपन्थिनः = शत्रवः । अत्यन्तं निर्दयाः = दयाशून्याः । अतिकदर्याः = परमनीचाः । "कदर्ये कृपणक्षुद्रे" त्यमरः । अतिकूटनीतय = कपटाचारचतुराः । "माया निश्चलयन्त्रेषु कैतवानृतराशिषु । अयोघने शैलशृङ्गे सीराङ्गे कूटमस्त्रियामि" त्यमरः ।

रास्ते में दो मुसलमान सिपाहियों की बातचीत से पता चला कि ये कल ही लडना चाहते हैं ।'

तदनन्तर, शिवाजी ने, "वीरवर ! तुम अत्यन्त कुशल हो, मैं तुम्हारी चतुरता को जानता हूँ, तुम सब कर लोगे, अतः अपनी इच्छानुसार जाओ, मैं तुम्हारा उत्साह नहीं मारना चाहता । तुम नीतिमार्गों को तो जानते ही हो, पर ये शत्रु बडे क्रूर, नीच और कपटपटु हैं, इनके साथ बडी सावधानी बरतनी चाहिये ।" यह कह कर गौरसिंह को बिदा किया ।

गौरसिंह ने तीन बार प्रणाम कर, उठ कर, घूम कर, बाहर निकल कर, नीचे उतर कर, झट उसी नीम के पेड़ के नीचे चबूतरे पर आकर

चरं कुमारमिङ्गितेनाऽऽहूय कस्मिंश्चित् स्वसंकेतित-भवने प्रविश्य, आत्मन कुमारस्यापि च केशान् प्रसाधनिकया प्रसाध्य, मुखमार्द्र-पटेन प्रोञ्छ्य, ललाटे सिन्दूर-बिन्दु-तिलकं विरचय्य, उष्णीषम-पहाय, शिरसि सूचिस्यूतां सौवर्ण-कुसुम-लतादि-चित्र-विचित्रिता-मुष्णीषिकां संधार्य, शरीरे हरितकौशेय-कञ्चुकिकामायोज्य, पादयोः शोण-पट्ट-निर्मितमधोवसनमाकलय्य, दिल्लीनिर्मिते महार्हे उपानहौ धारयित्वा, लघीयसीं तानपूरिकामेकां सह नेतुं सहचर-हस्ते समर्प्य, गुप्तच्छुरिकां दन्तावलदन्त-मुष्टिकां यष्टिकां मुष्टौ गृहीत्वा, पटवा-

इङ्गितेन = सङ्केतेन । प्रसाधनिकया = कङ्कतिकया । "प्रसाधनी कङ्कतिके" त्यमरः । "कंघी" इति हिन्दी । सौवर्णेन = सुवर्णविरचितेन, कुसुमलतादीनां चित्रेण, विचित्रिताम् = संवलिताम् । लघ्वुष्णीष-मुष्णीषिका, ताम् । "टोपी" इति हिन्दी । शोणपट्टनिर्मितम् = रक्तकौ-शेयरचितम् । अधोवसनम् = अधोमार्गेण चरणेन धारणीयं वसनम् । "पायजामा" इति हिन्दी । दिल्लीशब्दो "दिल्लीवल्लभपाणिपल्लवतले नीतं नवीनं वय" इत्यादौ पण्डितराजेनापि व्यवहृतः । महार्हे—इत्यत्र 'ईदूदे' दित्यनेन प्रगृह्यत्वात् प्रकृतिभावो बोध्यः । तानपूर एव तानपूरिका । "तानपूरा" इति हिन्दी । सहेत्यस्य "आत्मने"ति शेषः । तानपूरिका-शब्दस्यतु न सहशब्देन विशेष्यविशेषणभाव एवेति न तत्र तृतीयाऽऽशंका । दन्तावलस्य = करिण दन्त मुष्टिका यस्या ताम् । दन्तेन निर्मितेति मध्यमपदलोपिसमासो वा । "हाथी दाँत की मूठवाली गुप्ती छडी" इति

अपने साथी लडके को इशारे से बुलाकर, किसी पहले से निश्चित भवन में प्रवेश कर अपने और उस लडके के बालो को कघी से सॅवार कर, मुँह को गीले कपडे से पोंछ कर, मथे पर सिन्दूर का तिलक लगा कर, पगडी उतार कर, सुई से सिली सोने के काम वाली पुष्पलतादि चित्रित टोपी लगाकर, हरा रेशमी अंगरखा, लाल कपड़े का पायजामा, दिल्ली के बने बहुमूल्य जूते पहन कर, छोटे से एक तानपूरे को साथ ले जाने के लिये साथी बालक के हाथ में देकर जिसमें छुरी गुप्त थी ऐसी हाथी के

सैर्दिगन्तं दन्तुरयन्, करस्थपटखण्डेन च मुहुर्मुहुराननं प्रोञ्छन् गायकवेषेण अपजलखान-शिबिराभिमुखं प्रतस्थे ।

अथ तौ त्वरितं गच्छन्तौ, सपद्येव परश्शत-श्वेतपट-कुटीरैः शारद-मेघ-मण्डलायितं दीपमाला-विहित-बहुल-चाकचक्यम् अपजलखान-शिबिरं दूरत एव पश्यन्तौ, यावत्समीपमागच्छतस्तावत् कश्चन कोकनद-च्छवि-वस्त्र-खण्ड-वेष्टित-मूर्द्धा, कटिपर्यन्त-सुनद्ध-काकश्यामाङ्गरक्षिकः, कर्बुराधोवसनः, शोण-श्मश्रुः, विजय-पुराधीश-नामाङ्कित-वर्तुल-पित्तल-पट्टिका-परिकलित-वाम-वक्ष-

मापा । पटवासैः = सुगन्धितद्रव्यैः । "इत्र" इति हिन्दी । दन्तुरयन् = उन्नतयन्, सुगन्धयन्निति तात्पर्यम् । करस्थपटखण्डेन = हस्तस्थयाऽङ्गावलक्ष्या । "दस्ती रुमाल" इति हिन्दी ।

शारदमेघमण्डलायितम् = शरत्समयमेघमण्डलमिवाऽऽचरितम् । शुभ्रत्वादुन्नतत्वाच्च सादृश्यम् । कोकनदच्छविना = रक्तकमलकान्तिना, वस्त्रखण्डेन = वेष्टितो मूर्धा यस्य सः । कटिपर्यन्ता सुनद्धा काकश्यामा = अतिश्यामला, अङ्गरक्षिका यस्य सः । कर्बुरम् = अनेकवर्णम्, अधोवसनं यस्य सः । शोणश्मश्रुः = रक्तमुखकेशः । विजय-पुराधीशनाम्नाऽङ्कितया = तन्नामधेयेन चिह्नितया, वर्तुलया = गोलाकारया,

दाँत की मूठ वाली गुप्ती छडी हाथ में लेकर, इत्र की सुगन्ध से दिशाओं को सुगन्धित करते हुए, हाथ में लिये रूमाल से बार-बार मुँह पोंछते हुए, गायक के वेष में, अफजल खाँ के शिविर की ओर प्रस्थान किया ।

तदनन्तर, जल्दी-जल्दी कदम बढ़ा रहे वे दोनों, सैकड़ों श्वेत खेमों से शरद ऋतु के मेघमण्डल के समान लगने वाले, दीपमालिकाओं से जगमगा रहे, अफज़ल खाँ के शिविर को दूर से ही देखते हुए, बात की बात ज्योंही समीप पहुँचे, लालकमल की सी कान्तिवाले कपडे के टुकड़े को सिर पर लपेटे, कमर तक लम्बी कौए के रंग के समान काला अँगरखा पहने, चितकबरी लुङ्गी पहने, लाल मूँछ दाढ़ी वाले, बीजापुर के सुल्तान

स्थलः स्कन्धे भुशुण्डीं निधाय, इतस्ततो गतागतं कुर्वन सावष्टम्भमुर्दू-भापया उवाच–'कोऽयंकोऽयम् ?' इति; ततो गौरसिंहेनापि 'गायकोऽहं श्रीमन्तं दिदृक्षे'इति समार्दवं व्याख्यायि। ततो 'गम्यतामन्येऽपि गायका वादकाश्च सम्प्रत्येव गताः सन्ति' इति कथयति प्रहरिणि, 'घृतेन स्नातु भवद्रसना' इति व्याहरन् शिविर-मण्डलं प्रविवेश।

तत्र च क्वचित् खट्वासु पर्यङ्केषु चोपविष्टान, सगडगडाशब्दं ताम्रक-धूममाकृष्य, मुखात् कालसर्पानिव श्यामल–निश्वासानुद्गिरत', स्वहृदय–कालिमानमिव प्रकटयत., स्वपूर्वपुरुषोपार्जित-

पित्तलपट्टिकया = धातुफलकिकया, लोके "चपरास"इति ख्यातया, परिकलितम् = भूषितम्, वामं वक्षःस्थलं यस्य सः। सावष्टम्भम् = सप्रतिरोधम्। समार्दवम् = सकोमलतम्। व्याख्यायि = कथितम्। घृतेन स्नातु भवद्रसनेति, "आपके मुँह में घी चीनी" इत्यर्थकलोकप्रवादकथनम्। अतएव लोकोक्तिरलङ्कारः।

तत्र चेत्यारभ्य प्रधानपटकुटीरद्वारमाससादेत्येकान्वयि। ताम्रकम् = "तमाखू" इति हिन्दी। ताम्रकधूमनिश्वासस्य स्वत एव श्यामलस्य मुखादुद्वमितस्य कालसर्पत्वेनोत्प्रेक्षा। यथैन्द्रजालिका जनान्मोहयितुमाननात् कृष्णान् सर्पानुद्वमन्ति तथैवैते शिववीरमोहनाय स्थिता इत्युपमालङ्कारस्य व्यङ्ग्यत्वेन

के नाम से अङ्कित गोल पीतल की चपरास छाती की बाईं ओर डाले, कंधे पर बन्दूक रखकर इधर उधर गश्त लगा रहे किसी आदमी ने उन्हें टोक कर, उर्दू भाषा में कहा, 'कौन है, यह कौन ?' गौरसिंह ने नम्रता से कहा, 'मैं गायक हूँ, हुजूर से मिलना चाहता हूँ।' तब प्रहरी के 'जाओ और भी गाने और बजाने वाले अभी-अभी गये हैं' यह कहने पर, 'आपके मुँह में घी-शक्कर' कहता हुआ गौरसिंह शिविर में प्रविष्ट हो गया।

वहाँ, कहीं खाटों और पलगों पर बैठे हुए गड़गड़ शब्द के साथ तम्बाकू का धुआँ खींच कर मुँह से काले सर्पों के समान धुआँ निकाल रहे, मानो अपने हृदय की कालिमा को प्रकट कर रहे, मानो अपने पूर्वजों द्वारा

पुण्यलोकानिव फूत्कारैरग्निसात् कुर्वतः, मरणोत्तरमतिदुर्लभं सुखाग्निसंयोगं जीवन-दशायामेवाऽऽकलयतः, प्राप्ताधिकारकलिताखर्वगर्वान् ; क्वचिद् "हरिद्रा हरिद्रा, लशुनं लशुनम्, मरिचं मरिचम्, चुक्रं चुक्रम्, वितुन्नकं वितुन्नकम्, शृङ्गवेरं शृङ्गवेरम्, रामठं रामठम्, मत्स्यण्डी मत्स्यण्डो, मत्स्या मत्स्याः, कुक्कुटाण्डं कुक्कुटाण्डम्, पललं पललम्" इति कलकलैर्बालाना निद्रां विद्रावयतः,

---

वस्त्वलङ्कारध्वनिः। अन्वयोत्प्रेक्षते स्वहृदयस्य कालिमानमिव। पुनरप्युत्प्रेक्षते स्वपूर्वपुरुषैः=अन्वयमूलभूतैः, उपार्जितान्=संचितान्, पुण्यलोकान् = स्वर्गादिकान्। अग्निसात् = वह्न्यधीनीभूतान्। दहत इति भावः। ताम्रकधूमाकर्षणमग्निसत्कारत्वेनोत्प्रेक्षते—मरणादुत्तरम्=देहत्यागानन्तरम्। प्राप्तेन=लब्धेन, अधिकारेण = स्वाम्येन, अखर्वः = बहुलीभूतः, गर्वः= अभिमानो येषां तान्। हरिद्रा=महारजनम्। "निशाह्वा काञ्चनी पीता हरिद्रा वरवर्णिनी"त्यमरः। संभ्रमे द्विरुक्तिः। चुक्रम् = वृक्षाम्लम्। "तिन्तिडीकञ्च चुक्रञ्च वृक्षाम्लमि"त्यमरः। "चूक"इति हिन्दी। वितुन्नकम्=छत्रा। "अथच्छत्रा वितुन्नकमि"त्यमरः। "सौंफ" इति हिन्दी। शृङ्गवेरम्=आर्द्रकम्। "आर्द्रकं शृगवेरं स्यादि"त्यमरः। "आदी" इति हिन्दी। रामठम् = हिङ्गु। मत्स्यण्डो = फाणितम्। "राब" इति हिन्दी। कुक्कुट्या अण्ड कुक्कुटाण्डम्। "कुक्कुट्यादीनामण्डादिष्वि" ति

उपार्जित स्वर्गादि पुण्य-लोकों को फूंक मार कर जला रहे, मरने के बाद (मुसलमानों के मुर्दों का जलाना उनके धर्म से निषिद्ध होने के कारण) न प्राप्त हो सकने वाले अग्निसंयोग को जीवित दशा में ही प्राप्त कर ले रहे, अधिकार सम्पन्न होने से घमण्ड में चूर हो रहे, यवनयुवकों; और कहीं 'हल्दी-हल्दी, लहसुन-लहसुन, मरिच-मरिच, खटाई-खटाई, सौंफ-सौंफ, अदरख-अदरख, हींग-हींग, राब-राब, मछलियाँ-मछलियाँ, मुर्गी का अण्डा-मुर्गी का अण्डा, मांस-मांस' के कोलाहल से बच्चों की नींद हराम कर रहे,

समीप - संस्थापित - कुतू - कुतुप-कर्करी-कण्डोल कट - कटाह-कम्वि-कडम्बान्, उग्रगन्धीनि मांसानि शूलाकुर्वत, नखम्पचा यवागूः स्थालिकासु प्रसारयत., हिंगुगन्धीनि तेमनानि तिन्तिडीरसैर्मिश्र-यत., परिपिष्टेषु कलम्बेषु जम्बीर-नीरं निश्च्योतयत:, मध्ये मध्ये समागच्छतस्ताम्रचूडान व्यजन-ताडनै. पराकुर्वत., त्रपु-लिप्तेषु

पुंवत्त्वम्, पललम् = मांसम् । विद्रावयत = दूरयतः । कुतूः = चर्मनिर्मित तैलाद्याधारपात्रम् । कुतुप = सैव लघुः । "कुतूः कृत्तेः स्नेहपात्रं सैवाल्पा कुतुपः पुमान्" इत्यमरः । कर्करी=हस्तप्रक्षालनादियोग्य पात्रम् । "कर्कर्यालुर्गलन्तिके" इत्यमरः । "करवा" "गडुवा" इति हिन्दी । यवनाना "बधना" इति । कण्डोल. = पिटः । वेणुदलादिरचितो भाण्डविशेषः । "बाँस की पिटारी" इति हिन्दी । कट' = किलिञ्जक । कटाह' = शष्कुल्यादिपाकपात्रम् । "कढायी" इति भाषायाम् । कम्वि: = दर्विः । "कलछी" इति हिन्दी । कडम्ब' = कलम्बः । शूलेन = लोहशलाकया, शूलाकुर्वत =संस्कुर्वतः । "शूलात्पाके" इति डाच् । नखम्पचन्ति यास्ता नखम्पचाः । यवागू = तरलाः । "यवागूरुष्णिका धाना विलेपी तरला च से" इत्यमरः । हिङ्गुनो गन्धो येषु तानि हिङ्गुगन्धीनि । "अल्पाख्यायामि" ति गन्धस्येकार । "गन्धो गन्धक आमोदे लेशे सम्बन्धगर्वयोरि"त्यमरः । तेमनानि = व्यञ्जनानि । तिन्तिडीरसै. = चुकरसैः । मिश्रयत = संयोजयतः । अत्र विशेष्यविशेषणाभ्यां "कढी" इति ख्यातस्य ग्रहणम् । कलम्बेषु = वास्तूकादिशाकदण्डेषु । "अस्त्री शाक हरितकं शिग्रुरस्य तु नाडिका । कलम्बश्च कडम्बश्चे"त्यमर' । "पीसी हुई चटनी में" इति

पास में ही कुप्पा, कुप्पी, करवा (गडुआ या बधना), टोकरी, चटाई, कढाई, करछुल और साग के डण्ठल रखे, दुर्गन्ध देने वाले मास खण्डों को लोहे की सलाखों में पिरोकर पका रहे, गरम-गरम गाला भात थालियों में परोस रहे, हींग से बघारी कढी में इमली का रस मिला रहे, पिसी हुई चटनी में नींबू का रस निचोड रहे, बीच-बीच में आने वाले मुर्गों को पखों से मार

ताम्र-भाजनेषु आरनालं परिवेषयत' सूदान्; क्वचिद्वक्र-प्रसाधित-काकपक्षान्, मद-व्याघूर्णित-शोण-नयनान्, सपारस्परिक-कण्ठग्रहं पर्य्यटत:, यौवन-चुम्बित-शरीरान्, स्वसौन्दर्य-गर्व-भारेणेव मन्द-गतीन्, अनवरताऽऽक्षिप्त-कुसुमेषु-बाणैरिव कुसुमैर्भूषितान्, वसना-तिरोहिताङ्गच्छटान्, विविध-पटवास-वासितानपि चिराम्नान-

हिन्दी। निश्च्योतयत: = क्षारयतः। ताम्रचूडान् = कुक्कुटान्। त्रपु-लिप्तेषु = "कलई किये हुये" इति हिन्दी। आरनालम् = काञ्जिकम्, "आरनालकसौवीरकुल्माषाभिषुतानि च। काञ्जिक" इत्यमरः। सूदान = पाचकान्। वक्रम् यथा तथा प्रसाधिता' = स्फालिताः, काकपक्षा: = कुञ्चितकचाः "काकुल" इति हिन्दी, यैस्तान्। मदेन व्याघूर्णितानि शोणानि नयनानि येषां तान्। पारस्परिकेण = आन्योन्येन, कण्ठग्र-हेण = गलधारणेन सहित यथा स्यात्तथेति पर्यटनक्रियाविशेषणम्। यौव-नेन = नववयसा, चुम्बितानि = सम्बद्धानि, शरीराणि येषा तान्। चुम्बि-तपद लक्षणया सम्बद्धबोधकम्, वक्त्रसंयुक्तत्वरूपस्य मुख्यार्थस्य बाधात्। स्वभावतो मन्दाया गतेर्निमित्तमुत्प्रेक्षते स्वसौन्दर्यस्य गर्वभारेणेवेति। कुसुम-भूषितेषु तेषु कुसुमानि कुसुमेषुधनुर्निपतितानीत्युत्प्रेक्षते—अनवरतम् = सततम्, आक्षिप्ताः = पतिताः, कुसुमेषुवाणाः = कामशराः, येषु तान्। वसनैः = वस्त्रैः, अतिरोहिता, अङ्गच्छटा येषा तान्। विविधैः, पटवासैर्वा-सितानपि, चिराम्नानेन = अत्यधिककालतो देहानिर्णेजनेन, महामलिन-

मार कर भगा रहे, और कलई किये हुये ताँबे के बर्तनों में काञ्जी परोस रहे रसोइयों को, कहीं तिरछी जुल्फें सँवारे हुए, नशे से झूमते लाल आँखों वाले, एक दूसरे के गले मे हाथ डाले घूमते हुए, नई जवानी वाले, मानो अपने सौन्दर्य के घमण्ड के भार से धीरे-धीरे चल रहे, निरन्तर चलाए जा रहे मानों कामबाणरूपी पुष्पों से अलंकृत, कपड़ों से अङ्गच्छवि को तिरोहित न कर सकने वाले, नाना प्रकार के इत्रों से सुगन्धित होते हुए

६

महा-मलिन-महोत्कट-स्वेद-पूतिगन्ध-प्रकटीकृतास्पृश्यतान् यवन-युवकान्;

क्वचिद् "अहो! दुर्गमता महाराष्ट्रदेशस्य, अहो! दुराधर्पता महाराष्ट्राणाम्, अहो! वीरता शिववीरस्य, अहो! निर्भयता एतत्सेनानीनाम्, अहो त्वरितगतिरेतद्घोटकानाम्, आः! किं कथयामः? दृष्ट्वैव चमत्कारं शिववीर-चन्द्रहासस्य न वयं पारयामो धैर्यं धर्त्तुम्, न च शक्नुमो युद्धस्थाने स्थातुम्, को नाम द्विशिरा यः शिवेन योद्धुं गच्छेत्? कश्च नाम द्विपृष्ठो यस्तद्भटैरपि छलालापं

स्य=अत्यन्तमलीमसस्य, महोत्कटस्य=अत्युग्रस्य, स्वेदस्य=घर्मवारिणः, पूतिगन्धेन=दौर्गन्ध्येन, प्रकटीकृता=व्यक्तीकृता, अस्पृश्यता=स्पर्शायोग्यता, येस्तान्।

क्वचिद् व्याहरत इति द्वितीयान्तेन सम्बन्धः। व्याहरणं कथयति-अहो इति। पुनः पुनः सम्भवति सम्बोभवीति, अतिशयेन सम्बोभवीति सम्बोभवीतितमाम्। "वर्त्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद्वे" ति लट्। भ्रुकुंसक=स्त्रीवेषधारी नर्त्तक। भ्रुवोः कुसः=भाषणम्, भ्रुवा कुसः=शोभा वा यस्य सः। दुराधर्पता=दुरभिभवनीयता। द्वे शिरसी यस्यासौ द्विशिरा=द्विशीर्षः, एवम्भूत एव हि परितः प्रसृतान् तदीयान् भटान् छलयन् रहस्यमाख्यातुमर्हति य उभयतोदृष्टिर्भवेदिति तत्त्वम्। द्वे पृष्ठे

भी, बहुत दिनों से स्नान न करने के कारण कुचैले और उग्र गन्ध वाले पसीने की बदबू से अपनी अस्पृश्यता को प्रकट कर रहे यवन युवकों,

तथा कहीं 'उफ! महाराष्ट्र देश बड़ा दुर्गम है, ओह! मराठे बड़े दुर्धर्ष हैं, ओह! शिवाजी की वीरता अद्भुत है। इसके सैनिक बड़े निडर हैं, इसके घोड़े कितने तेज हैं? आह, क्या कहें शिवाजी की तलवार की चमक देखकर ही हमारे छक्के छूट जाते हैं और युद्धस्थल से टिक सकना हमारे लिए कठिन हो जाता है। कौन दो सिर वाला होगा जो शिवाजी से लड़ने जायगा और कौन दो पीठ वाला होगा जो उसके सैनिकों से भी छल-

विदध्यात् ? वयं बलिनः, आस्माकीना महती सेना, तथाऽपि न जानीमः किमिति कम्पत इव क्षुभ्यतीव च हृदयम् । 'यवनानां पराजयो भविष्यति, अपजलखानो विनङ्क्ष्यती'ति न विद्म' को जपतीव कर्णे, लिखतीव सम्मुखे, क्षिपतीव चान्तःकरणे । मा स्म भोः ! मेवं स्यात्, रक्ष भो ! रक्ष जगदीश्वर ! अथवा सम्वोभवीति-तमामेवमपि, योऽयमपजलखान' सेनापति-पद-विडम्बनोऽपि 'शिवेन योत्स्ये हनिष्यामि ग्रहीष्यामि वे' ति सप्रौढि विजयपुराधीश-महासभायां प्रतिज्ञाय समायातोऽपि, शिवप्रतापञ्च विदन्नपि अद्य नृत्यम्, अद्य गानम्, अद्य लास्यम्, अद्य मद्यम्, अद्य वाराङ्गना, अद्य भ्रकुंसक', अद्य वीणावादनमिति स्वच्छन्दैरुच्छृङ्खला-ऽऽचरणैर्दिनानि गमयति ! न च य' कदापि विचारयति; यत्

यस्यासौ द्विपृष्ठः यस्य पृष्ठद्वय भवेत् स एव तद्धटेन छलं कुर्यात्, नतु साधारण इति भावः । जपतीव = मन्दं कथयतीव । इवेन न वास्तवो जप

छन्द की बात करेगा ? हमलोग बलशाली हैं, हमारी सेना भी बहुत बड़ी है, फिर भी न जाने क्यों हृदय कॉपता-सा है, क्षुब्ध-सा होता है । 'यवनों की हार होगी और अफजल खाँ मारा जायगा' इस प्रकार न जाने कौन कान में धीरे से कह-सा रहा है, सामने लिख-सा रहा है, दिल में यही बात जम-सी रही है । नहीं-नहीं, ऐसा कभी नहीं, या खुदा बचाना ! अथवा ऐसा हो भी सकता है, क्योंकि सेनापति पद को विडम्बित करने वाला यह अफजल खाँ, यद्यपि 'मैं शिवाजी से लड़ूँगा, उसे या तो मार डालूँगा या कैद कर लाऊँगा' इस प्रकार 'बीजापुर के सुल्तान की सभा में प्रतिज्ञा करके आया है और शिवाजी के पराक्रम से भी भली-भाँति परिचित है, फिर भी आज नाच है तो आज गाना है, आज श्रृङ्गारप्रधान स्त्रीनृत्य है तो आज मदिरा है, आज वेश्या है तो आज स्त्रीवेषधारी नर्तक है, आज सितारवादन है, इस प्रकार स्वच्छन्द उच्छृङ्खल असदा-चरण से दिन बिता रहा है । यह कभी भी यह नहीं सोचता कि कहीं

कदाचित् परिपन्थिभि प्रेपिता काचन वारवधूरेव मामासवेन सह विपं पाययेत्, कोऽपि नट एव ताम्बूलेन सह गरलं ग्रासयेत्, कोऽपि गायक एव वा वीणया सह खड्गमानीय खण्डयेदित्यादि; ध्रुव एव तस्य विनाश., ध्रुवमेव पतनम्, ध्रुवमेव च पशुमारं मरणम्। तन्न वय तेन सह जीवन-रत्न हारयिप्याम."—इति व्याहरत; इतरांश्च—

"मैवं भो:! श्व एव आहव-क्रीडाऽस्माकं भविष्यति, तत् श्रूयते सन्धि-वार्त्ता-व्याजेन शिव एकत आकारयिप्यते, यावच्च स स्वसेनामपहाय एकाकी अस्मत्स्वामिना सहाऽऽलपितुमेकान्तस्थाने यास्यति; तावद्वयं श्येना इव शकुनिमण्डले महाराष्ट्र-सेनायां, छिन्धि

इति सूचितम्। आसवेन = मद्येन। जीवनरत्नम् = श्रेष्ठ जीवनम्। रत्नशब्दः श्रेष्ठवाची। "रत्नं स्वजातिश्रेष्ठेऽपी" त्यमरः। इतराश्च कर्णान्तिकमुखमानीयोत्तरयत इति सम्बन्धः। उत्तर प्रदर्शयति मैवमिति। आहवः = सग्रामः, स एव क्रीडा। श्येना इव = वाजपक्षिण इव। शकुनिमण्डले=

दुश्मनो द्वारा भेजी गई कोई वेश्या ही मुझे मदिरा के साथ विष न पिला दे, कोई नट ही पान के साथ जहर न खिला दे, कोई गायक ही वीणा के साथ खड्ग लाकर मेरे टुकडे-टुकडे न कर दे, उसका विनाश अवश्यम्भावी है, उसका पतन होने में कोई सन्देह नहीं, उसका पशुवत् मारा जाना निश्चित है। इसलिए हम उसके साथ अपना बहुमूल्य जीवन नहीं गँवायेंगे।' इस प्रकार कहते हुए कुछ सिपाहियों और दूसरों को उनके कान के पास मुँह ले जाकर, 'ऐसा मत कहो, कल ही हमारी युद्ध-क्रीडा होगी, सुनते हैं कि सन्धि की बातचीत के बहाने शिवाजी को एक ओर बुलाया जायगा, और ज्यों ही वह अपनी सेना को छोडकर हमारे मालिक के साथ बात करने के लिए एकान्त स्थान में जायँगे, हम लोग पक्षियों पर बाज की तरह, मराठों की सेना पर मार-काट मचाते हुए एक साथ टूट पडेंगे

भिन्धि—इति कृत्वा युगपदेव पतिष्यामः, वसन्त-वाताहत-नीरसच्छदानिव च क्षणेन विद्रावयिष्यामः। इतस्तु छलेनास्मत्स्वामिसहचराः शिवं पाशैर्बद्ध्वा पिञ्जरे स्थापयित्वा तं जीवन्तमेव वशंवदं करिष्यन्ति। परन्तु गोप्यतमोऽयं विषयो मा स्म भूत् कस्यापि कर्णगतः"—इति कर्णान्तिकं मुखमानीयोत्तरयतः सांग्रामिक-भटानवलोकयन्; "धन्या भवन्तो येषां गोप्यतमा अपि विषया एव वीथिषु विकीर्यन्ते। महाराष्ट्रा धूर्ताचार्याः, नैतेषु भवतां धूर्तता सफला भवति" इत्यात्मन्येवाऽऽत्मना कथयन्, स्व-प्रभा-धर्षित-सकल-रक्षकगणः स्वसौन्दर्येणाऽऽकर्षयन्निव विश्वेषां मनांसि, सपद्येव प्रधान-पट-कुटीर-द्वारमाससाद। तत्र च प्रहरिणमालोकयदुक्तवांश्च यत् पुण्यनगर—निवासी गायकोऽहमत्रभवन्तं गान—रस—रसायनैरमन्दमानन्दयितुमिच्छामीति। तदवगत्य स भ्रूसंचारेण कञ्चित्

पक्षिसमूहे। वसन्तवातेन, आहतान्, अतएव नीरसान् शुष्कान्, छदानिव=पत्राणीव। उपमा। वशं वदतीति वशंवदस्तम्। "प्रियवशे वदः खजि"ति खच्। आकर्षयन् = वशीकुर्वन्। वीणाया आवरणम् =

और क्षण भर में ही उसे वसन्त (पतझड) ऋतु की हवा से गिरे सूखे पत्तों की तरह मार भगायेंगे। इधर हमारे मालिक के नौकर, शिवाजी को छल से रस्सियों से बाँध कर, पिंजडे में बन्द करके, जीते जी ही अपने वश में कर लेंगे। लेकिन 'यह विषय ही बड़ा गोपनीय है, किसी के कान में न पड़ने पायें' इस प्रकार उत्तर देते हुए देखकर, मन-ही-मन 'आप लोग धन्य हैं, जिनके अति गोपनीय विषय भी रास्तों में इस प्रकार फैले रहते हैं, पर मराठे परले सिरे के धूर्त हैं, आपकी धूर्तता इनके आगे सफल नहीं हो सकती' ऐसा कहते हुए, अपने तेज से सभी पहरेदारों को निष्प्रभ कर, अपनी सुन्दरता से सभी के हृदयों को अपनी ओर खींचते हुए से गौरसिंह (तानरंग) बात की बात में प्रधान खेमे के दरवाजे पर पहुँच गये। वहाँ पहरेदार से मिले और कहा कि पूना नगर का निवासी मैं हुजूर को गानरस के रसायन से आनन्दित करना चाहता हूँ। उनका

निवेदकं सूचितवान् । स चान्तः प्रविश्य, क्षणानन्तरं पुनर्बहिर्निर्गत्यगायकमपृच्छत्—'किं नाम भवत ? पूर्वञ्च कदाऽपि समायातो न वा ?' अथ स आह—'तानरङ्गनामाऽहं कदाचन युष्मत्कर्णमस्पृशम् । न पूर्वं कदाऽपि ममात्रोपस्थातु सयोगोऽभूत्, अद्य भाग्यान्यनुकूलानि चेच्छ्रीमन्तमवलोकयिष्यामि' इति । स च 'आम्' इत्युदीर्य पुन. प्रविश्य क्षणानन्तर निर्गत्य च, विचित्र-गायकममुं सह निनाय ।

तानरङ्गस्तु तेनैव तानपूरिका-हस्तेन बालकेनानुगम्यमानः, शनै' शनै प्रविश्य, प्रथमं द्वितीय तृतीयञ्च द्वारमतिक्रम्य, कांश्चित् मृदङ्ग-स्वरान् सन्दधत., काश्चिद्वीणावरणमुन्मुच्य, प्रवाल प्रोञ्छ्य, कोणं कलयत., काश्चिदविचलोऽयमेतेनैव सह योज्यन्तामपरवाद्या-

आच्छादनवस्त्रम् । प्रवालम् = वीणादण्डम् "वीणादण्डः प्रवालः स्यादि" त्यमर' ! कोणम् = वादनोपयोगिनमुपकरणविशेषम् । "मिजराफ"

भाव समझकर उसने भौंहों के इशारे से एक सन्देशवाहक को सूचित किया । उसने अन्दर जाकर क्षण भर बाद पुनः बाहर आकर गायक से पूछा 'आपका नाम क्या है ? आप पहले कभी आये हैं या नहीं ?' गायक ने कहा 'मेरा नाम तानरग है, शायद कभी यह नाम आपके कानों में पड़ा हो । मुझे पहले कभी यहाँ आने का अवसर नहीं मिला, आज यदि भाग्य ने साथ दिया तो हुजूर के दर्शन करूँगा ।' वह 'अच्छा' कह कर भीतर जाकर और थोड़ी ही देर में बाहर आकर उस विचित्र गायक को साथ ले गया ।

तानरग—जिसके पीछे-पीछे तानपूरा हाथ में लिए वह बालक चल रहा था—ने धीरे-धीरे प्रवेश कर, पहले, दूसरे और तीसरे दरवाजे को पार कर, किसी को मृदङ्ग के स्वर साधते, किसी को सितार का गिलाफ उतार कर, वीणादण्ड को पोंछ कर, कोण (मिजराफ) पहनते, किसी को 'बाँसुरी का स्वर अविचल है, इसी के साथ अन्य बाजों को मिलाओ'

नीति वंशोरवं साक्षीकुर्वतः; कांश्चित् कलित-नेपथ्यान्, पादयोर्नूपुरं वध्नतः; कांश्चित् स्कन्धावलम्बिगुटिकातः करतालिकामुत्तोलयतः; कांश्चिच्च कर्णे दत्तकरं निधाय, चक्षुषी सम्मील्य, नासामाकुञ्च्य, पातितोभयजानु उपविश्य, वामहस्तं प्रसार्य, तन्त्रीस्वरेण स्व-काकलीं मेलयतः; सम्मुखे च पृष्ठतः पार्श्वतश्चोपविष्टैः कैश्चित् ताम्बूल-वाहकैः, अपरैर्निष्ठ्यूताद्दान-भाजन-हस्तैः, अन्यैरनवरत-चालित-चामरैः, इतरैर्बद्धाञ्जलिभिर्लालाटिकैः परिवृतम्, रत्नजटितोष्णीषिकामस्तकम्, सुवर्ण-सूत्र-रचित-विविध-कुसुम-कुड्मल-लता-

---

इति हिन्दी। साक्षीकुर्वत = साक्षाद्दर्शिता नयतः। इतरथाऽसत्यतायै प्रमाणता प्रापयत इति यावत्। करतालिकाम् = "करताल" इति हिन्दी। काकलीम् = सूक्ष्मं कलम्। 'ईषदर्थे चेति' कोः कादेशः, गौरादित्वात् ङीष्। "काकली तु कले सूक्ष्म" इत्यमर। निष्ठ्यूताद्दानम् = पतद्ग्रहः। "पीकदान" इति हिन्दी। लालाटिकैः = अधिपतिभालमात्रावलोकनक्षमैर्न तु कार्यसम्पादकैः। "लालाटिकः प्रभोर्भालदर्शी कार्याक्षमश्च यः" इत्यमरः। सुवर्णसूत्रेण = सूक्ष्मतमसुवर्णतन्तुना, "कलाबत्तू" इति हिन्दी, रचिता या विविधाः = अनेकप्रकाराः, कुसुमकुड्मललताः = पुष्पकलिकावल्ल्यः, तासां प्रतानैः = वितननैः, अङ्कितः = अञ्चितः,

---

यह कहते; किसी को वेष रचना कर पैरों में घुंघुरू बाँधते, किसी को कन्धे पर लटकती झोली से करताल निकालते, किसी को कान पर दाहिना हाथ रखकर, आँखें मूँद कर, नाक सिकोड कर, घुटनों के बल बैठकर, बायाँ हाथ फैला कर, वीणा के स्वर के साथ अपनी काकली (सूक्ष्म कलगान) का मिलान करते; और सामने, पीछे तथा दायें-बायें बैठे हुए कुछ ताम्बूल-वाहकों, दूसरे हाथ में पीकदान लिए लोगों, अन्य निरंतर चँवर डुला रहे आदमियों तथा दूसरे हाथ जोडे खड़े चापलूस नौकरों से घिरे हुए, सिर पर रत्न जडी टोपी लगाये हुए, सोने के तारों से कढ़े विविध फूलों,

प्रतानाङ्कित-कञ्चुकं महोपबर्हमेकं क्रोडे संस्थाप्य, तदुपरि सन्धारितभुजद्वयम्, रजत-पर्य्यङ्के विविध-फेन फेनिल-क्षीरधि-जल-तलच्छविमङ्गीकुर्वत्यां तूलिकायामुपविष्टमफजलखानं च ददर्श।

ततस्तु तानरङ्ग-प्रभा-वशीभूतेषु सर्वेषु 'आगम्यतामागम्यतामास्यतामास्यताम्' इति कथयत्सु, तानरङ्गोऽपि सादरं दक्षिण हस्तेनाऽऽदरसूचक-सङ्केत-सहकारेण यथानिर्दिष्टस्थानमलञ्चकार।

ततस्तु इतरगायकेषु सगर्वं सासूयं सक्षोभं साक्षेप सचक्षुर्विस्फारण सशिरःपरिवर्तनं च तमालोकयत्सु अफजलखानेन सह तस्यैवमभूदालाप।

कञ्चुक =निचोलो यस्य तम्। मपहोबर्हम् = महोपधानम्। "मसनद" इति हिन्दी। विविधफेनेन = प्रचुरडिण्डीरेण, फेनिलस्य = फेनसंवलितस्य, क्षीरधे. = वारिधेः, जलतलस्य छविम् = शोभाम्, अङ्गीकुर्वत्याम् = धारयन्त्याम्। तूलमस्ति यस्या सा तूला = तूलवती, तूलैव तूलिका = तूलमयो विष्टरः, तस्याम्। "रूई की गद्दी, तोसक" इति हिन्दी। कूर्चीपर्यायत्वमनुचिन्तयन्तस्तु चिन्तनीयबुद्धय एवेति शम्।

आदरसूचकसंकेत. = "सलाम" इति हिन्दी।

कलियों और बेलबूटों वाली अचकन पहने, गोद में एक बड़ी-सी मसनद रखकर उस पर अपने दोनों हाथ रखे हुए, चाँदी के पलग के ऊपर, प्रचुर फेन से फेनिल समुद्र की शोभा को मात कर रहे गद्दे पर बैठे अफजल खाँ को देखा।

उसके बाद तानरङ्ग की चमक दमक से सबके मंत्रमुग्ध होकर 'आइये। आइये। बैठिये। बैठिये।' कहने पर, तानरङ्ग ने भी दाहिने हाथ से सलाम करते हुए निर्दिष्ट आसन अलङ्कृत किया।

अन्य गायकों के गर्व, ईर्ष्या, झुँझलाहट और निन्दा के साथ आँखे फाड-फाड कर तथा सिर हिला-हिला कर, तानरङ्ग को देखने पर, अफजल खाँ के साथ तानरङ्ग की इस प्रकार बातचीत हुई।

अपजलखानः—किन्देशवास्तव्यो भवान् ?

तानरङ्गः—श्रीमन् ! राजपुत्रदेशीयोऽहमस्मि ।

अपजल०—ओः ! राजपुत्रदेशीयः ?

तान०—आम् ! श्रीमन् !

अप०—तत् कथमत्र महाराष्ट्रदेशे ?

तान०—सेनापते ! मम देशाटन-व्यसनं मां देशाद्देशं पर्याटयति ।

अप०—आ ! एवम् ! तत्किं प्रायः पर्य्यटति भवान् ?

तान०—एवं चमूपते !, नव्यान् नव्यान् देशानवलोकयितुम्, नवा नवा भाषा अवगन्तुम्, नूतना नूतना गान-परिपाटीश्च कलयितुम् एधमान-महाभिलाष एष जनः ।

वास्तव्यः = निवासी । "वसेस्तव्यत् कर्त्तरि णिच्चे" ति तव्यत् । पर्याटयति = सर्वतो भ्रामयति । एधमानः = वृद्धिं गच्छन्, महान् अभि-

---

अफ़ज़ल खाँ—आप किस देश के निवासी हैं ?

तानरङ्ग—हुज़ूर ! मैं राजपूताने का हूँ ।

अफ़ज़ल खाँ—ओह ! राजपूताने के ?

तानरङ्ग—हाँ, हुज़ूर !

अफ़ज़ल खाँ—तो यहाँ महाराष्ट्र देश में कैसे आना हुआ ?

तानरङ्ग—सेनापति जी ! अपने घूमने के शौक के कारण मैं एक देश से दूसरे देश में घूमता रहता हूँ ।

अफ़ज़ल खाँ—अच्छा, यह बात है, तो क्या आप अक्सर घूमा करते हैं ?

तानरङ्ग—हाँ सेनापति जी ! नये-नये देशों को देखने, नई-नई भाषाओं को जानने, नई-नई गान-शैलियों को सीखने का मुझे बड़ा शौक है ।

अप०—अहो ! ततस्तु बहुदर्शी बहुज्ञश्च भवान् । अथ वङ्ग-देशे गतो भवान् ? श्रूयतेऽतिवैलक्षण्यं तद्देशस्य ।

तान०—सेनापते ! वर्षत्रयात्पूर्वमहं काश्यां गङ्गायां संस्नाय, उज्जयिनी-देशीय-क्षत्रिय कुलालङ्कृत भोजपुर-देशमालोक्य, गङ्गा-गण्डक-तटोपविष्ट हरिहरनाथं प्रणम्य, विलासि-कुल-विलसितं पाटलिपुत्र-पुरमुल्लङ्घ्य, सीताकुण्ड-विक्रमचण्डिकादि-पीठ-पटल-पूजित विक्रम-यश-सूचक-दुर्गावशेप-शोभित देवधुनी-तरङ्ग-क्षालित-प्रान्त मुद्गलपुर निरीक्ष्य, कर्ण-दुर्ग-स्थानेन तद्यशोमहामुद्रये-वाङ्कितमङ्गदेशं दिनत्रयमध्युष्य, अतिवर्द्धमानवैभव वर्द्धमान-नगरं च सम्यक् समालोक्य, यथोचित-सम्भारैस्तारकेश्वरमुपस्थाय, ततो-

लाप = इच्छा, यस्य सः । उज्जयिनीदेशीय-क्षत्रियकुलालंकृतम्, अतएव भोजपुरमिति तन्नाम । भोजो हि ह्यभूवोज्जयिन्या नातिदूरे धारानगरे । देव-धुन्या = बहुतनयायाः, तरङ्गैः, क्षालितः प्रान्तो यस्य तत् । मुद्गलपुरम्= 'मुङ्गेर' इति ख्यातम् । वर्द्धमाननगरम्=अद्यत्वे "बर्दवान" इति ख्यातम् ।

अफजल खाँ—तब तो आपने बहुत कुछ देखा-सुना है। क्या आप बंगाल गये हैं ? सुनते हैं वह देश बड़ा अद्भुत है।

तानरङ्ग—सेनापति जी, मैंने तीन साल पहले काशी में गङ्गा में नहाकर, उज्जैन के क्षत्रिय-वंशों से अलङ्कृत भोजपुर देश को देखकर, गङ्गा और गण्डक नदियों के तट पर विराजमान हरिहरनाथ को प्रणाम कर, विलासी लोगों से सुशोभित पटना नगर को पार कर, सीताकुण्ड, विक्रमचण्डिका आदि पीठों से पूजित, वीर विक्रमादित्य की कीर्ति के परि-चायक खडहरों से सुशोभित और गङ्गा की लहरों से धुले प्रान्त मुँगेर का दर्शन कर, कर्ण-दुर्ग स्थान रूपी महारथी कर्ण की मुद्रा से अङ्कित से अङ्ग देश में तीन दिन निवास कर, महा समृद्धिशाली बर्दवान नगर को भली-भाँति देखकर, समुचित सामग्री से भगवान् तारकेश्वर की पूजा करके, उससे

ऽपि पूर्वं वङ्गदेशे, पूर्ववङ्गेऽपि च चिरमहमटाट्यामकार्षम् ।

अप०—किं किं कि पूर्ववङ्गेऽपि ?

तान०—आम् श्रीमन् ! पूर्ववङ्गमपि सम्यगवालुलोकदेष जनः, यत्र प्रान्त-प्ररूढां पद्मावलीं परिमर्दयन्ती पद्मेव द्रवीभूता पयः-पूर-प्रवाह-परम्पराभिः पद्मा प्रवहति, यत्र ब्रह्मपुत्र इव शत्रु-सेना-नाशन-कुशलः ब्रह्म-देशं विभजन् ब्रह्मपुत्रो नाम नदो भूभागं प्लावयति, यत्र साम्ल-सुमधुर-रस-पूरितानि फूत्कारोद्धूत-भूति-ज्वलदङ्गार-विजित्वर-वर्णानि जगत्प्रसिद्धानि नारङ्गाण्युङ्ग—

अटाट्याम् = पर्यटनम् ।

अवालुलोकत् = अवलोकयाञ्चकार । प्रान्तयोः=तटोपान्तयोः, प्ररूढाम्=समुद्भूताम् । पद्मावलीम्=कमलश्रेणीम् । सरिति कमलानि विकसन्तीति कविसमयख्यातिः । पद्मेव = श्रीरिव । द्रवीभूता=प्रस्नुता । पद्मा= तन्नाम्नी नदी । ब्रह्मपुत्र=गरलविशेषः । "ब्रह्मपुत्रः प्रदीपन" इत्यमरः । ब्रह्मदेशम् = "बर्मा" इति ख्यातदेशम् । साम्ल-सुमधुरः = 'खट-मीठ' इति भाषा । फूत्कारेण = मुखवायुना, उद्धूता = उड्डायिता, भूतिः = भस्म, येषां तादृशा ये ज्वलदङ्गाराः=प्रकाशमानाङ्गाराः, तेषां विजित्वराः=

भी पूर्व में स्थित बंगाल में और पूर्वी बंगाल में, बहुत दिनों तक भ्रमण किया है ।

अफजल खाँ—क्या, क्या, क्या, पूर्वी बंगाल में भी ?

तानरंग—हाँ हुजूर ! मैंने पूर्वी बंगाल भी खूब अच्छी तरह देखा है । जहाँ किनारे उगी हुई कमल की पंक्ति को जलप्रवाह से मसलती हुई, जलरूप में परिणत हो गई लक्ष्मी के समान, पद्मा नदी बहती है, जहाँ ब्रह्मपुत्र (एक विशेष प्रकार का विष) के समान वैरियों की सेना के नाश करने में दक्ष ब्रह्मपुत्र नाम का नद, ब्रह्मदेश को भारतवर्ष से पृथक् करता हुआ, भूमिभाग को सींचता है, जहाँ खटमिट्ठे रस से भरे, धधकते हुए अंगारों-जिनकी राख फूँक मार कर उड़ा दी गई हो—के रंग को मात

वन्ति, यद्देशीयानां जम्बीराणां रसालाना तालानां नारिकेलानां खर्जूराणां च महिमा सर्वदेश-रसज्ञानां साम्रेड कर्णं स्पृशति, यत्र च भयंकराऽऽवर्त-सहस्राऽऽकुलासु स्रोतस्वतीषु सहोहोकारं क्षेपणीः क्षिपन्तः, अरित्रं चालयन्तः, वडिशं योजयन्तः, कुवेणीस्थ-म्रियमाण मत्स्य-परीवर्त्तानालोकमालोकमानन्दन्तः, अदृष्टतटेष्वपि महाप्रवाहेषु स्वल्पया कूष्माण्ड-फक्किकाकारया नौकया भिन्नाञ्जन-लिप्ता इव मसी-स्नाता इव साकारा अन्धकारा इव काला धीवर-वाला निर्भयाः क्रीडन्ति ।

जयनशीलाः, वर्णा येषा तानि । नारङ्गाणि=नागरङ्गाणि । "नारंग" इति हिन्दी । भयङ्करैः=भीतिजनकैः, आवर्त्तसहस्रैः = बहुसख्याम्भसा भ्रमैः, "स्यादावर्त्तोऽम्भसा भ्रम" इत्यमरः, आकुलासु । स्रोतस्वतीषु=नदीषु । सहोहोकारम्=नौकादण्डप्रक्षेपावसरे तद्देशीयाः "हो हो" शब्द कुर्वन्ति । क्षेपणीः=नौकादण्डान् । "नौकादण्डः क्षेपणी स्यादि" त्यमरः । "डाँडा" इति हिन्दी । अरित्रम् = "अरित्र केनिपातक" इत्यमरः । "पतवार" इति हिन्दी । वडिशम् = "वडिशं मत्स्यवेधनमि" त्यमरः, कुवेण्याम् = मत्स्याधान्या तिष्ठन्ति ये ते कुवेणीस्थाः, म्रियमाणाः = आसन्नमरणाः, मत्स्यास्तेषा परीवर्त्तान् = पार्श्वपरिवर्तितानि । आलोकमालोकम् = समवलोक्येत्यर्थः, फक्किका = "फाँक, फाँकी" इति हिन्दी । धीवरबालाना

करनेवाले विश्वविख्यात संतरे पैदा होते हैं, जहाँ के नीबू, आम, नारियल और खजूरों का नाम सभी देशों के रसिकों के कान में बार-बार पडता है, और जहाँ भयकर हजारों भँवरों से भरी नदियों में, 'हो हो' करते हुए डाँड डालते और पतवार चलाते हुए, बंसी डालते, जाल में फँसी मरणासन्न मछलियों का छटपटाना देखकर आनन्दित होते हुए, जिनके तट भी नहीं दिखाई देते ऐसे महाप्रवाहों में भी छोटी-सी कुँभड़े की फाँक के आकार की नाव से, पिसे हुए अञ्जन से लिपे-पुते से, स्याही में डूबे-से, शरीर धारण कर आये हुए अन्धकार के समान काले धीवरों (मछुवे) के लडके निडर होकर खेलते हैं ।

अप०—[स्वयं हसन्, सर्वांश्च हसतः पश्यन्] सत्यं सत्यम् ॥ धन्यो भवान्, योऽल्पेनैव वयसैवं विदेश-भ्रमणैः चातुरीं कलयति।

तान०—धन्य एव यदि युष्मादृशैरभिनन्द्ये !

अप०—(क्षणानन्तरम्) अथ भवान् मूर्छना-प्रधानं गायति, तान-प्रधानं वा ?

तान०—ईदृक्षं तादृक्षञ्च ।

कालत्वमुत्प्रेक्षते भिन्नाञ्जनलिप्ता इव, मसीस्नाता इव, साकारा अन्धकारा इवेति ।

अभिनन्द्ये, कर्मणि उत्तमपुरुषे। मूर्छनाप्रधानमिति, अविच्छेदं स्वरात् स्वरान्तरप्राप्तिर्मूर्छना, सविच्छेदं स्वरात्स्वरान्तरप्राप्तिस्तानः। "स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्छनामवेक्षमाणं महतीं मुहुर्मुहुरि"ति वायुसम्पर्केण मूर्छना कथमिवोद्भाव्यत इति माघ एव जानातु, परिसमाप्नोतु वा वीणावैलक्षण्यं सर्वमिति मूलकृच्छिष्यकृतटिप्पणी। महत्यास्तत्तत्स्वरानुगासु तन्त्रीषु क्रमिकेण पवनाघट्टनेन निर्दिष्टमूर्छनाया अव्याघातान्माघाक्षेपो निरर्थक इति दार्शनिकसार्वभौमा गोस्वामिदामोदरशास्त्रिचरणाः। "आरोहावरोहक्रमयुक्तः स्वरसमुदायो मूर्छनेत्युच्यते, तानस्त्वारोहक्रमेण भवती" ति मतगः।

भवति च सङ्गीतशास्त्रपद्यम्—

"आरोहेणावरोहेण क्रमेण स्वरसप्तकम् ।
मूर्छनाशब्दवाच्यं हि विज्ञेयं तद्विचक्षणैः ॥"

अफजल खाँ—(स्वय हँसते हुए और हँसते हुए सभी अन्य लोगों को देखते हुए) सच है, सच है ! आप धन्य हैं, जिसने इतनी कम उम्र में ही, इस तरह विदेशों में घूम कर इतनी चतुरता सीख ली।

तानरंग—यदि आप जैसे लोग मेरी सराहना करते हैं तो मैं सचमुच धन्य हूँ।

अफजल खाँ—(क्षणभर बाद) अच्छा, आप मूर्च्छना-प्रधान गाते हैं या तानप्रधान ?

तानरंग—मूर्च्छना-प्रधान भी और तान-प्रधान भी।

अप०—(क्षणानन्तरम्) अस्तु, आलप्यतां कश्चन राग. ।

तान०—(किञ्चिद् विचार्य) आज्ञा चेद्का राग–माला–गीतिं गायामि, यत्र प्रत्याभोग नवीन एव रागो भवेदेकेनैव च ध्रुवेण सङ्गच्छेत, तत्तद्राग–नामानि च तत्रैव प्राप्येरन् ।

अप०—आ. । किमेवम् ? ईदृशं तु गानं न प्राय. श्रूयते, तद् गीयताम् ।

आलप्यताम् = आलापः क्रियताम् । विश्रकलय्य रागोदीरणमालापः । रागः=रञ्जकस्वरसन्दर्भः ।

"योऽसौ ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषितः ।
रञ्जको जनचित्ताना स रागः कथितो बुधैः ॥"

रागमालाम्=तन्नाम्नीम्, गीतिम् । प्रत्यालपं विभिन्नीभवद्भी रागमालारूपैः सहितत्वात् । तदाह-यत्रेति । प्रत्याभोगम्=प्रतिगेयखण्डम्, उच्चारणविषयाणा शब्दाना शरीरत्वमाश्रित्य तथोक्तम् ।

ध्रुवेण=स्थिरपदेन । सकलपादान्ते वारं वारं समुच्चार्यमाणत्वेन ध्रुवत्वम्, अत एव तथा संज्ञा । सङ्गच्छेत=सम्मेल्येत, "समोगम्यृच्छिभ्याम्" इत्यात्मनेपदम् । स्वरान्=निषादप्रभृतीन् ।

निषादर्षभगान्धारषड्जमध्यमधैवताः ।
पञ्चमश्चेत्यमी सप्त तन्त्रीकण्ठोत्थिताः स्वराः ॥ इत्यमरः ।

अफजल खाँ—(थोडी देर बाद) अच्छा, कोई राग अलापिये ।

तानरंग—(कुछ सोचकर) अगर हुजूर का हुक्म हो तो एक 'रागमाला' गीत सुनाऊँ, जिसमें गीत के प्रत्येक गेयखण्ड में एक नया ही राग होगा और वे सब एक ही ध्रुव से मिलेंगे, तथा उसी में उन सभी रागों के नाम भी आ जायँगे ।'

अफजल खाँ—अच्छा ! क्या ऐसा है ? ऐसा गाना तो अक्सर नहीं सुनाई पड़ता, अच्छा गाइये ।

ततस्तानपूरिकायाः स्वरान् संमेल्य पातित-वाम-जानुः तान-पूरिका-तुम्बं क्रोडे निधाय दक्षपादस्योत्थितजानुनि च दक्ष-हस्त-कूर्पर-स्थापन-पुरःसरं तेनैव हस्तेन तर्जन्यङ्गुल्या तानपूरिकां रण-यन् स्वकण्ठेनापि त्रीन् ग्रामान् सप्त स्वरांश्च समधात्। तन्मात्र-श्रवणेनैव मुग्धेष्विवाखिलेषु इमां राग-माला-गीतिमगायत्—

सखि हे नन्द-तनय आगच्छति। सखि० ॥
मन्द मन्दं मुरली-रणनैः समधिक-सुखं प्रयच्छति ॥

पातितं वामजानु येन सः। गायकानामवस्थानरीतिः। दक्षहस्तस्य= वामेतरकरस्य यः कूर्परः= कफोणिः, "स्यात्कफोणिस्तु कूर्परः" इत्यमरः, भुजमध्यग्रन्थिरिति यावत्, तत्स्थापनपुरस्सरम्। त्रीन् ग्रामान्= षड्जम-ध्यमगान्धारान्। तथा चोक्तम्—

"यथा कुटुम्बिनः सर्वेऽप्येकीभूता भवन्ति हि।
तथा स्वराणा सन्दोहो ग्राम इत्यभिधीयते॥
षड्जग्रामो भवेदादौ मध्यमग्राम एव च।
गान्धारग्राम इत्येतद् ग्रामत्रयमुदाहृतम्॥"

समधात्= समयोजत्। सखि != आलि! मुरलीरणनैः= वंशीस्वनैः। समधिकम्= ब्रह्मानन्दलक्षणम्। कीदृशोऽसौ नन्दसुतस्त-

---

उसके बाद तानपूरे के स्वरों को मिला कर, बायाँ घुटना टेक कर, तानपूरे की तुम्बी को गोद में रखकर, दाहिने पैर के उठे घुटने पर दाहिने हाथ की कुहनी रखकर, उसी हाथ की तर्जनी उँगली से तानपूरे को बजाते हुए तानरंग ने अपने कण्ठ से भी तीन ग्रामों (षड्ज, मध्यम और गान्धार) और निषादादि सात स्वरों को अलापा। इतना सुनकर ही सबके मुग्ध हो जाने पर इस 'रागमाला' गीत को गाया—

हे सखि। नन्दनन्दन श्रीकृष्ण आ रहे हैं। मुरली की मन्द-मन्द

भैरव-रूपः पापिजनानां सतां सुख-करो देवः ।
कलित-ललित-मालती-मालिकः सुरवर-वाञ्छित-सेवः ।
सारङ्गैः सारंग-सुन्दरो दृग्भिर्निपीयमानः ।
चपला-चपल-चमत्कृति-वसनो विहित-मनोहर-गानः ॥
श्रीवत्सेन लाञ्छितो हृदये श्रील' श्रीद' श्रीश' ।
सर्वश्रीभिर्युत' श्रीपति' श्री-मोहनो गवीश' ॥

आऽऽह-पापिजनानाम् = अधिनराणाम् । भैरवरूपः = भयङ्करः । नमः-प्रकृतीना राक्षसायमानानामपजलखानप्रभृतीनामपि पापित्वात्तेषामपि भैरव एवेति ध्वनिः । सताम्=सत्त्ववता सज्जनानाम्, शिवादीनाम् । कलिता ललिता मालतीमालिका येन सः । सुरवरैः=इन्द्रादिभिः, वाञ्छिता सेवा यस्य सः । सारङ्ग इव सुन्दर । "सारङ्गो मृगपक्षिणोः" । सारङ्गैः,दृग्भिः=नयनैः निपीयमान = सलालस वीक्ष्यमाणः, चपलेव = विद्युदिव, चपला चमत्कृतिर्यस्य तादृशम् चञ्चलचाकचक्यं, वसन यस्य सः । विहितं मनोहरम् = श्रोतृचित्ताकर्षकम्, गानम् = गीतिर्येन सः । श्रीवत्सेन = भृगुपदेन । लाञ्छित.=चिह्नितः । श्रील.=श्रीमान्, "श्रीलः श्रीमान् स्निग्धस्तु वत्सल" इत्यमरः । श्रिय = धन ददातीति श्रीदः । श्रिया = लक्ष्म्याः, ईशः । सर्वश्रीभि' = सर्वाभिः शोभाभिः । गवाम् = वाणीनाम्, ईश. =

ध्वनि से वे अति आनन्द प्रदान कर रहे हैं । ये भगवान् श्रीकृष्ण पापियों के लिए भयङ्कर और सज्जनों को सुख देने वाले हैं, उन्होंने सुन्दर मालती पुष्प की माला पहन रखी है । देवता लोग भी उनकी सेवा करने को लालायित रहते हैं । कामदेव के समान सुन्दर श्रीकृष्ण को हरिण टकटकी लगाकर देख रहे हैं । उनके वस्त्र बिजली के समान चञ्चल चमचमाहट वाले हैं और वे मनोहर गाना गा रहे है । उनका हृदय श्रीवत्स नाम के चिह्न से सुशोभित है, वे श्रीमान्, सम्पत्ति के देनेवाले, लक्ष्मी के स्वामी, सारी शोभाओं से युक्त, लक्ष्मी के पति, श्री को मोहित करनेवाले और

गौरी—पतिना सदा भावितो बर्हिण-बर्ह-किरीटः।
कनककशिपु-कदनो बलि-मथनो विहत-दशानन-कीटः॥

अथ एतावन्नैव श्रुत्वा अतितरां प्रसन्नेषु पारिषदेषु, ससाधुवादं

प्रादुर्भावकः, वेदाविष्कारकर्तेति यावत्। गवा = इन्द्रियाणाम्, ईशः, इन्द्रियजिदिति वा। गवाम् = वृन्दावनपशूनां, स्वामी वा। गौर्याः = हिमतनयायाः, पत्या = भगवता शिवेन। भावितः = ध्यातः। बर्हिण-बर्हकिरीटः = मयूरपिच्छमुकुटः। कनककशिपुकदनः = हिरण्यकशिपु-संहारकः, वराहः। बलिमथनः = बलिध्वंसी, वामनः। विहतः = नाशितः, दशानन एव कीटः = क्षुद्रजन्तुः, येन सः, श्रीरामः। अत्र भैरव-ललित-सारंग-श्री-गौरी-नामानि रागाणाम्। तत्र भैरव. प्रथमः प्रातःकालिकश्च। अत्र सप्त स्वरा अपेक्ष्यन्त इत्ययं सम्पूर्ण इत्युच्यते। ऋषभ-मध्यम-धैवता निम्नका लगन्ति, गान्धार-निषादौ चोच्चकौ। गान्धार-मध्यमापञ्चमा अत्र प्रधानानि। ललिते ऋषभधैवतौ निम्नकौ गान्धारनिषादौ चोच्चकौ। अत्र पञ्चमो नापेक्ष्यत इति वैशिष्ट्यम्। सारङ्गे मध्यमनिषादौ निम्नकौ ऋषभधैवतौ चोच्चकौ। गान्धारोऽत्र नितरां वर्जितः, धैवतोऽपि केवलमवरोहेऽपेक्षितः। श्रीरागोऽपि सम्पूर्णः। ऋषभधैवतौ निम्नकौ, गान्धा-रनिषादावुच्चकौ, मध्यमश्चोभयथा लगति। निम्नमध्यमयोजनं चातुर्यकृत्यम्। यद्यप्यत्राऽऽरोहे गान्धारधैवतौ वर्जितौ, तथापि विज्ञाः सम्भयन्त्येव क्वचित्। गौरी सम्पूर्णा रागिणी, ऋषभधैवतौ निम्नकौ गान्धारमध्यमनिषादाश्चोच्चकाः। आरोहेऽत्र नियमेन चर्षभं त्यजन्ति, कदाचिच्च पञ्चमं धैवतञ्चेत्यादिक बहुतर-मूहनीयम्। संगीतशास्त्रविदां मोदाय तु कियन्मात्रमत्र संगृहीतम्।

वेदवाणी के आविष्कारक हैं। श्री शङ्करजी उनका सदा ध्यान किया करते हैं, वे मोर मुकुट धारण करने वाले, हिरण्यकशिपु का नाश करने वाले, बलि का विध्वंस करने वाले और रावण रूपी कीड़े को मारने वाले हैं।

इतना ही सुनकर सब सभासदों के अत्यधिक प्रसन्न हो जाने और

वितीर्णकङ्कणे च अपजलखाने, तानरङ्गोऽपि सप्रसादं तानपूरिकां भूमौ संस्थाप्य अपजलखानस्य गुणग्राहिता प्रशशंस।

अथ अपजलखानः क्रमशो मैरेय-मद-परवशतां वहन् उवाच— यत् कथ्यतामस्मिन् प्रान्ते भवादृशानां गुण-ग्राहकाः के सन्ति ? के वा कवितायाः संगीतस्य च मर्मावगच्छन्ति ?

ततस्तानरङ्गोऽचकथत्—को नामापरः शिववीरात् ? स एव राजनीतौ निष्णातः, स एव सैन्धवाऽऽरोह-विद्या-सिन्धुः, स एव चन्द्रहास-चालने चतुरः, स एव मल्ल-विद्या-मर्मज्ञः, स एव बाण-विद्या-वारिधिः, स एव पण्डित-मण्डल-मण्डनः, स एव धैर्य-धारि-धौरेयः, स एव वीर-वार-वरः, स एव पुरुष-पौरुष-

---

पारिषदेषु, परिषदि = सभायां साधवः पारिषदास्तेषु। "परिषदो ण्य" इत्यत्र योगविभागाद् णोऽपि। गुणग्राहिताम् = गुणज्ञताम्।

मैरेयम् = मद्यम्, तस्य यो मदः, तत्परवशताम् = तदधीनताम्। शिववीरादित्यत्रापरशब्दयोगे "अन्यारादितरर्ते दिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते" इति पञ्चमी। सैन्धवारोहविद्यायाः = अश्वारोहणकलायाः, सिन्धुः = सागर इति रूपणम्। वीरवारवरः, वीराणां वारः = समूहः, तत्र वरः =

अफजल खाँ के शाबाशी तथा प्रशंसापूर्वक सोने का कड़ा पुरस्कार देने पर, तानरंग ने भी प्रसन्न होकर, तानपूरे को जमीन पर रख कर अफजल खाँ की गुणग्राहकता की प्रशंसा की।

उसके बाद क्रमशः शराब के नशे में चूर होता हुआ अफजल खाँ बोला—'कहिये, इस प्रान्त में आप जैसे लोगों के गुणग्राहक कौन हैं ? अथवा कविता और संगीत का मर्म जानने वाले कौन हैं ?'

तानरंग ने कहा—'शिवाजी को छोड़ ऐसा और कौन है ? वे ही राजनीति में कुशल हैं, वे ही घुड़सवारी की विद्या के समुद्र हैं, वे ही मल्लविद्या के मर्मज्ञ हैं, वे ही बाण-विद्या के सागर हैं, वे ही पुरुषों के

परीक्षक', स एव दीन-दुःख-दाव-दहनः, स एव स्वधर्मरक्षण-सक्षणः, स एव विलक्षण-विचक्षणः, स एव च मादृश-गुणि-गण-गुण-ग्रहणाऽऽग्रही वर्तते ।

अथ अपजलखाने—"तत् किं शिव एव एवंगुण-गण-विशिष्टोऽस्ति ? एवं वा वीर-वरोऽस्ति !"इति सचकितं सभयं सतर्कं सरोमोद्गमं च कथयति, किञ्चिद् विचार्येव नीति-कौशल-पुरःसरं गौरःपुनरवादीत्-

भगवन् ! सामान्य-राजभृत्यस्य पुत्रः शिववीरो यदि नाम नाभविष्यत्स्वयमीदृश ऊर्जस्वलः, तत्कथं स्वर्णदेव-सदृशं सहचरं प्राप्स्यत् ? तद्द्वारा समस्तं कल्याण-प्रदेशं कल्याण-दुर्गं च स्वहस्त-गतमकरिष्यत् ? कथं तोरण-दुर्ग-भोग-भाजनतामकलयिष्यत् ? कथं तोरण-दुर्गाद् दक्षिण-पूर्वस्यां पर्वतस्य शिखरे महेन्द्र-

श्रेष्ठः । दीनानाम् = अनाथानाम्, दुःखदावस्य = क्लेशविपिनस्य, दहनः = अग्नितुल्यः । स्वधर्मरक्षणे सक्षणः = सोत्साहः । हर्षवाची क्षणशब्दः । विलक्षणविचक्षणः = विशिष्टविद्वान् । गुणिनां गणस्य गुणग्रहणे, आग्रही । अनुप्रास एषु ।

पौरुष के सच्चे पारखी हैं, वे ही दीनों के दुःख रूप वन के लिए दावाग्नि के समान हैं, वे ही अपने धर्म की रक्षा में उत्साह रखते हैं, वे ही अद्भुत विद्वान् हैं और वे ही हम जैसे गुणियों के गुणों के कदरदान हैं ।'

इसके बाद अफजल खाँ के 'तो क्या यह शिवाजी इस प्रकार के गुणों से युक्त और इतना वीर है' यह आश्चर्य, भय, अनुमान और रोमाञ्च के साथ कहने पर मानों कुछ सोचकर, नीति कौशल-पूर्वक गौरसिंह ने पुनः कहा—

हुजूर, राजा के एक साधारण कर्मचारी के लड़के शिवाजी यदि स्वयं इस प्रकार के तेजस्वी न होते तो स्वर्णदेव के समान साथी कैसे पाते और उसके द्वारा सारे कल्याण प्रदेश और कल्याण दुर्ग को हस्तगत कैसे कर लेते ! तोरणदुर्ग को अपना भोग्य कैसे बनाते, और तोरण दुर्ग से दक्षिण-

मन्दिर-खण्डमिव धर्षितारि-वर्गं डमरु-हुडुक्कार-तोषित-भर्गं राय-गढनामकं महादुर्गं व्यरचयिष्यत्? कथं वा तपनीय-भित्तिका-जटित-महारत्न-किरणावली-वितन्यमान-महावितान-वितति-विरोचित-प्रताप-तापित-परिपन्थि-निवहं चन्द्रचुम्बन-चतुर-चारु-शिखर-निकरं भुशुण्डिका-किणाङ्कित-प्रचण्ड-भुजदण्ड-रक्षक-

---

ऊर्जस्वलः = बलशाली। दक्षिणपूर्वस्याम् = दक्षिणस्याः पूर्वस्याश्च दिशोर्यदन्तरालं सा दक्षिणपूर्वा, तस्याम्। महेन्द्रमन्दिरस्य = देवेन्द्रभवनस्य, खण्डमिव = अंशमिव। धर्षितः = भयं प्रापितः, अरिवर्गो येन तम्। उपमयाऽरिवर्गाजेयत्वं व्यनक्ति। डमरुहुडुक्कारेण, तोषितः, भर्गः = शिवो यस्मिंस्तम्। कथं वा प्रतापदुर्गं निरमापयिष्यदिति सम्बन्धः। प्रतापदुर्गं विशिनष्टि तपनीयस्य = हिरण्यस्य, भित्तिकासु = कुड्येषु, जटितानाम् = खचितानाम्, महारत्नानाम् = हीरकादीनाम्, किरणावलीभिः = मयूखसमूहैः, वितन्यमानस्य = विस्तार्यमाणस्य, महद्वितानस्य = महोल्लोचस्य, वितत्या = विस्तारेण, विरोचितेन = शोभितेन, प्रतापेन = तेजसा, तापितः = ज्वलितः, परिपन्थिनिवहः = शत्रुसमूहो येन तम्। शिवराजविभूतिवर्णनादुदात्तालङ्कारः। चन्द्रचुम्बने = इन्दुस्पर्शे, चतुरः = समर्थः, चारुः = शोभनः, शिखरनिकरः = ऊर्ध्वभागसमूहो यस्य तम्। उच्छ्रायवर्णनपरमिदम्, चन्द्रस्पर्शासम्बन्धेऽपि सम्बन्धाभिधानादतिशयोक्तिः, अनुप्रासश्च स्पष्ट एव। भुशुण्डिकाना किणैः = आघातैः, अङ्किताः = चिह्निताः, भुजा दण्डा इव येषां तेषाम्, रक्षकाणाम् = रक्षानिरतानाम्,

---

पूर्व की ओर पहाड की चोटी पर, इन्द्र के महल के एक भाग के समान, दुश्मनों को डराने वाले, डमरू की हुडुक् हुडुक् ध्वनि से शङ्कर को प्रसन्न करने वाले रायगढ नामक महादुर्ग का निर्माण कैसे कर लेते। अथवा सोने की दीवारों पर जडे हुए हीरे आदि महारत्नों की किरणावलियों से ताने गए विशाल मण्डप से सुशोभित तेज से दुश्मनों को जलाने वाले, अनेक चन्द्रचुम्बी शिखरों वाले, बन्दूक लिये रहने से पड गये घट्टों से युक्त

कुल-विधीयमान-परस्सहस्र-परिक्रमं घमद्घमद्दोधूयमानानेक-ध्वज-पटल-निर्मथित-महाकाशं प्रताप-दुर्गं निरमापयिष्यत् ? कथं वा 'आगत एष शिववीरः'-इति भ्रमेणापि सम्भाव्य अस्य विरोधिषु केचन मूर्च्छिता निपतन्ति, अन्ये विस्मृत-शस्त्रास्त्रा पलायन्ते, इतरे महात्रासाऽऽकुञ्चितोदरा विशिथिल-वाससो नग्ना भवन्ति, अपरे च शुष्कमुखा दशनेषु तृणं सन्धाय साम्रेड प्रणिपात-परम्परा रचयन्तो जीवनं याचन्ते ।

ततस्तस्य महाप्रतापमवगत्य किञ्चिद्भीते इव तच्छत्रूणां चावहेलामाकलय्य किञ्चिदरुण-नयने इव, दक्षिण-हस्ताङ्गुष्ठ-तर्जनीभ्यां श्मश्रग्रं परिमृजति यवन-सेनापतौ; तानरङ्गः पुनर्न्यवेदयत्—

कुलेन = समूहेन, विधीयमानाः परस्सहस्राः परिक्रमाः = मण्डलानि यस्य तम् । घमद्घमदिति शब्देन दोधूयमानानाम् = भृशं सञ्चलताम्, अनेकेषा ध्वजाना पटलेन निर्मथितः = विलोडितः, महाकाशो येन तम् । महात्रासेन = महाभयेन, आकुञ्चितानि = कशिमानमायान्ति, उदराणि येषा ते । अत एव विशेषत॰ शिथिलानि वासासि येषा ते । याचन्ते = प्रार्थयन्ते ।

प्रबल हाथी वाले रक्षकों से गश्त लगा-लगा कर रक्षा किये जाने वाले, फहराती हुई ध्वजाओं से महाकाश को मथने वाले प्रतापगढ़ को ही कैसे बनवा लेते ? अथवा 'ये वीर शिवाजी आ गये' यह भ्रमवश समझकर भी, इन के विरोधियों में कुछ मूर्च्छित होकर क्यों गिर पडते है ? कुछ शस्त्रास्त्र भूल कर भाग क्यों खडे होते हैं ? कुछ डर के मारे पेट के कृश हो जाने अतएव वस्त्रों के ढीले हो जाने से नगे क्यों हो जाते हैं ? और दूसरे सूखे मुँह वाले दाँतों मे तृण दबा कर, बार-बार प्रणाम करते हुए गिडगिडा कर जीवन भिक्षा क्यों माँगने लगते हैं ?

तब शिवाजी के महाप्रताप को जानकर, यवन सेनापति के कुछ डर से जाने पर और शिवाजी के दुश्मनों की अवहेलना सुनकर कुछ क्रुद्ध से हो जाने पर, तथा दाहिने हाथ के अँगूठे और तर्जनी से मूँछ के अग्र भाग पर हाथ फेरने पर, तानरङ्ग ने पुनः निवेदन किया—

परन्त्वद्य सिंहेन सह शिवस्य साम्मुख्यमस्ति, तन्मन्ये इयमस्तमनवेला तत्प्रतापसूर्यस्य।

तत् कर्णे कृत्वा सन्तुष्ट इव सकन्धराकम्पं सेनापतिरुवाच-अथात्र संग्रामे कस्य विजयः सम्भाव्यते ?

स उवाच—श्रीमन्! यदि शिवस्य साहाय्यं साक्षाच्छिव एव न कुर्यात्, तद् विजयपुरस्यैव विजयः।

अथ सहासं सोऽब्रवीत्-को नाम खपुष्पायितः शशशृङ्गायितः कमठी-स्तन्यायितः सरीसृप-श्रवणायितः भेक-रसनायितः वन्ध्या-पुत्रायितश्च शिवोऽस्ति ? य एनं रक्षिष्यति, दृश्यतां श्व एवैषोऽस्माभिः पाशैर्बद्ध्वा चपेटैस्ताड्यमानो विजयपुरं नीयते।

अस्तमनवेला, तत्प्रतापरूपसूर्य्यस्य समाप्तिवेलेत्यर्थः। सूर्यास्तोदयौ तु न भवतः, केवलं तत्खण्डवासिभिस्तदनवलोकनेन तादृशशब्दव्यवहार एवाऽऽस्थीयते। तदुक्तम् "नैवास्तमनमर्कस्य नोदयः सर्वदा सतः" इति।

खपुष्पमिवाऽऽचरितः खपुष्पायितः। खपुष्पम्, शशशृङ्गम्, कमठी-(कच्छपी) दुग्धम्, सरीसृपश्रवणम्, भेकरसना, वन्ध्यापुत्रश्चेत्यसम्भवालीकवस्तूनि। यथैतानि न सन्त्येव भूतनाथः सदाशिवोऽपि नास्तीत्यर्थः।

'लेकिन आज सिंह के साथ शिवाजी का सामना हुआ है, इसलिये मेरी समझ से यह उनके प्रताप-सूर्य के अस्त होने का समय आ गया है?'

यह सुन कर सन्तुष्ट-सा यवन सेनापति बोला—'अच्छा, इस युद्ध में किसकी जीत की सम्भावना है?'

तानरंग ने कहा—'हुजूर! अगर शिवाजी की सहायता स्वयं शङ्कर जी ही न करें तो बीजापुर की ही जीत होगी।'

तब हँसते हुए अफजल खाँ ने कहा—'भला गगनकुसुम-सा, खरगोश के सींग-सा, कछुई के दूध-सा, साँप के कान-सा, मेंढक की जीभ-सा और बाँझ के लड़के-सा शङ्कर भी कोई चीज है जो उसकी रक्षा करेगा। देखना कल ही रस्सियों से बाँध कर हम लोग उसे थप्पड़ मारते हुए बीजापुर ले जायेंगे।'

–इति सकष्टमाकर्ण्य, "स्यादेवं भगवन्!" इति कथयति तान-रङ्गे, अभिमान-परवशः स स्वसहचरान् सम्बोध्य पुनरादिशत्-भो-भो योद्धारः! सूर्योदयात् प्रागेव भवन्तः पञ्चापि सहस्राणि सादिनां दशापि च सहस्राणि पत्तीनां सज्जीकृत्य युद्धाय तिष्ठत। गोपीनाथ-पण्डित-द्वाराऽऽहूतोऽस्ति मया शिव-वराक, तद् यदि विश्वस्य स समागच्छेत्, ततस्तु बद्ध्वा जीवन्तं नेष्यामः, अन्यथा तु सदुर्गमेनं धूलीकरिष्यामः। यद्यप्येवं स्पष्टमुदीरणं राजनीति-विरुद्धम्, तथाऽपि मदावेशस्तु न प्रतीक्षते विवेकम्।

तदवधार्य समस्तक-कूर्चान्दोलनम्–"यदाज्ञाप्यते यदाज्ञाप्यते" इति वाचां धारासंपातैरिव स्नापयत्सु पारिषदेषु, "गोपनीयोऽयं

सादिनाम् = अश्वारोहिणाम्। "अश्वारोहास्तु सादिन" इत्यमरः। पत्तीनाम् = पदातीनाम्। "पदातिपत्तिपदगपादातिकपदाजय" इत्यमरः। विश्वस्य=विश्वासं कृत्वा। समस्तककूर्चान्दोलनम् = सशिरोदाढिका-सञ्चालनम्। क्रियाविशेषणम्। अदुर्मनसो दुर्मनसो भवन्तीति दुर्मनाय-मानास्तेषु। "भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हल" इति सूत्रेणाभूततद्भावविषये

तानरंग के कष्टपूर्वक यह बात सुनकर हुजूर! हो सकता है ऐसा ही हो कहने पर, अभिमान के कारण आत्म-संयम खोकर अफजल खाँ ने अपने साथियों को सम्बोधित कर आज्ञा दी। 'ऐ योद्धाओ! आप लोग कल सूर्योदय से पहले ही पाँचों हजार घुडसवारों और दसों हजार पैदल सैनिकों को सुसज्जित कर युद्ध करने के लिए तैयार रहना। गोपीनाथ पण्डित द्वारा मैंने बेचारे शिवाजी को बुलाया है तो अगर वह विश्वास कर के आ जाय तब तो बाँध कर जीवित ही ले चलेंगे अन्यथा दुर्ग-सहित उसे धूल में मिला देंगे। यद्यपि इस प्रकार खुल्लम-खुल्ला कहना राजनीति के विरुद्ध है, फिर भी मेरा आवेश (जोश) विवेक की परवाह नहीं करता।'

यह सुनकर, सभासदों की सिर और दाढ़ी हिला-हिला कर 'जो आज्ञा, जो आज्ञा' यों मानों वाणियों की मूसलाधार वृष्टि से स्नान-सा कराने पर,

वृत्तान्तः कथं स्पष्टं कथ्यते ?" इति दुर्मनायमानेऽस्मिन्नेव च अकस्मादेव प्रविश्य सूदेनोक्तम् "श्रीमन् ! व्यत्येति भोजनसमय"—तत् श्रुत्वा "आ ! एवं किलैतत्" इति सोत्प्रासम् सविस्मयं सकूर्चोद्धूननं सोपबर्हताडनमुच्चार्य सपद्युत्थाय, "पुनरागम्यताम्" इति तानरङ्गं विसृज्य सेनापतिरन्तः प्रविवेश । तानरङ्गश्च यथागतं निववृते ।

इतस्तु प्रतापदुर्गे विहिताहार-व्यापारे रजत-पर्य्यङ्किकामेकामधिष्ठिते किञ्चित् तन्द्रा-परवशे इव गोपीनाथे, शिववीरः शनैरुपसृत्य प्रणम्य, उपाविशदवोचच्च—अहो ! भाग्यमस्माकं यदालयं युष्मादृशा भूदेवाः स्वचरणरजोभिः पावयन्ति—इति ।

व्यत्येति शानच्, भावसप्तमी । सूदेन = पाककर्त्रा । सोत्प्रासम्=ईषद्धास्येन सह, क्रियाविशेषणम् । "सोत्प्रासं समनाक्स्मितम्" इत्यमरः । सकूर्चोद्धूननम् = श्मश्रूल्लासनेन सह । सोपबर्हताडनम् = उपधानप्रहारेण साकम् । गर्वहर्षाभ्यामिदं ताण्डवं सर्वम् ।

रजतेन = दुर्वर्णेन, खचिताम्, पर्यङ्किकाम् = लघुपर्यङ्कम् । मञ्चिकामिति यावत् । तन्द्रा-परवशे = निद्रापूर्वालस्याधीने ।

तथा 'यह गोपनीय बात खुले आम कैसे कही जा रही है' यह सोच कर कुछ नाराज सा होने पर, एकाएक रसोइये ने प्रवेश करके कहा, 'हुजूर, खाने का वक्त बीत रहा है' । यह सुनकर थोडा मुस्कराकर, विस्मयपूर्वक, दाढी हिला कर, मसनद पर हाथ पटक कर 'ओह ! क्या ऐसा है' यह कहकर, तानरंग को 'फिर आइयेगा' कहकर विदा कर सेनापति ने अन्दर प्रवेश किया और तानरंग जिस मार्ग से आया था उसी से वापस लौट गया ।

इधर प्रतापदुर्ग में जब गोपीनाथ पण्डित भोजन कर के, एक चाँदी की पलंग पर लेटे ऊँघ रहे थे, शिवाजी धीरे से जाकर, उन्हें प्रणाम कर बैठ गये और बोले—'अहो ! हमारा सौभाग्य है कि आपके से ब्राह्मण ने अपनी चरणरज से हमारे घर को पवित्र किया ।' फिर उन दोनों में इस प्रकार बातचीत हुई ।

अथ तयोरेवमभूवन्नालापाः ।

गोपीनाथः—राजन् ! कोऽत्र सन्देहः ? सर्वथा भाग्यवानसि, परं साम्प्रतं नाहं पाण्डितत्वेन कवित्वेन वा समायातोऽस्मि, किन्तु यवनराज-दूतत्वेन । तत् श्रूयतां यदहं निवेदयामि ।

शिववीरः—शिव ! शिव ! खलु खलु खल्विदमुक्त्वा, येषां श्रीमतां चरणेनाङ्कितं विष्णोरपि वक्षःस्थलमैश्वर्य-मुद्रयेव मुद्रितं विभाति, न तेषां ब्राह्मण-कुल-कमल-दिवाकराणां यवन-कैङ्कर्य-कलङ्क-पङ्को युज्यते, यं शृण्वतोऽपि मम स्फुटत इव कर्णौ । तथाऽपि कुलीना निरभिमाना भवन्ति-इति आनीतश्चेत् कश्चित् सन्देशः; तदेव आज्ञाप्यतां श्रीमच्चरण-कमल-चञ्चरीकः ।

गोपीनाथः—वीर ! कलिरेष कालः, यवनाऽऽक्रान्तोऽयं भारत-

खलु इदमुक्त्वा, निषेधार्थकः खलुशब्दः । "अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा" । यवनानां कैङ्कर्यम्=किङ्करस्य भावः, दासता, तदेव कलङ्कपङ्कः । स्फुटत इव=दीर्येते इव । कुलीनाः=सद्वंशजाः ।

गोपीनाथ—इसमें क्या सन्देह ? आप सचमुच भाग्यवान् हैं, लेकिन इस समय मैं पण्डित या कवि के रूप में नहीं, वरन् यवनराज के दूत के रूप में आया हूँ, अतः मैं जो निवेदन करता हूँ उसे सुनिये ।

शिवाजी—शिव ! शिव ! ऐसा मत कहिये, जिन आप लोगों के चरण से अङ्कित होने से विष्णु भगवान् का वक्षःस्थल भी ऐश्वर्य की मुद्रा से मुद्रित सा शोभित होता है उन ब्राह्मण-कुल-कमल-दिवाकरों को यवनों की चाकरी रूप कलङ्क कीचड़ शोभा नहीं देता, जिसे सुनकर भी मेरे कान फूट से रहे हैं । यह दूसरी बात है कि कुलीन अभिमान रहित होते हैं इसलिये आप कोई सन्देश लाये हों, यदि ऐसा हो तो अपने चरण-कमलों के भ्रमर इस जन को आज्ञा दीजिये ।

गोपीनाथ—वीरवर, यह कलिकाल है, यह भारत-भूमि यवनों से

भूभागः, तन्नास्माकं तथा तानि तेजांसि, यथा वर्णयसि । साम्प्रतं तु विजयपुराधीश-वितीर्णां भृतिं भुञ्जे इति तदाज्ञामेव परिपालयामि । तत् श्रूयतां तदादेशः ।

शिववीरः—आर्य ! अवदधामि ।

गोपीनाथः—कथयति विजयपुरेश्वरो यद्—"वीर ! परित्यज नवामिमां चञ्चलतामस्माभिः सह युद्ध्य, त्वदपेक्षयाऽस्मन्नतितरां बलिनो वयम्, प्रवृद्धोऽस्माकं कोषः, महती सेना, बहूनि दुर्गाणि, बहवश्च वीराः सन्ति । तच्छुभमात्मन इच्छसि चेत् त्यक्त्वा निखिलां चञ्चलताम्, शस्त्रं दूरतः परित्यज्य, करप्रदतामङ्गीकृत्य, समागच्छ मत्सभायाम् । मत्तः प्राप्त-पदोच्चैश्चिरं जीविष्यसि, अन्यथा तु सदुर्दशं निहतः कथावशेषः संवत्स्यसि । तत् केवलं त्वयि दययैव सन्देश

भृतिम्=जीविकाम् । अवदधामि=सावधानोऽस्मि ।

आक्रान्त है, इसलिये हम लोगों में जैसा आप वर्णन कर रहे हैं वैसा तेज नहीं रहा, इस समय बीजापुर के सुल्तान द्वारा दी गई जीविका (वेतन) से अपना निर्वाह कर रहा हूँ, अत उन्हीं की आज्ञा का पालन करता हूँ। अतः उनका आदेश सुनिये ।

शिवाजी—आर्य ! मैं सावधान हूँ ।

गोपीनाथ—बीजापुर के सुल्तान कहते हैं कि—

'वीर ! हमारे साथ लड़ाई ठानने की इस नई चपलता का परित्याग कर दो, हम तुम्हारी अपेक्षा बहुत अधिक बली हैं, हमारा कोष बहुत समृद्ध है, हमारी सेना बहुत बड़ी है, हमारे पास बहुत-से किले हैं और बहुत-से योद्धा हैं। अत. यदि अपना कल्याण चाहते हो तो सारी चपलता छोड़ कर, शस्त्र का सर्वथा परित्याग कर, मुझे कर देना स्वीकार करके, मेरी सभा में आ जाओ। मुझ से कोई बड़ा-सा पद पाकर बहुत दिनों तक जीवित रहोगे। अन्यथा दुर्दशा करके मारे जाओगे और तुम्हारी सिर्फ कहानी ही शेष रह जाएगी। अतः सिर्फ तुम्हारे ऊपर दया कर के ही सन्देश भेज

प्रेषयामि, अङ्गीकुरु । मा स्म वृद्धायाः, प्रसविन्त्या रजतश्वेतां पक्ष्म-पङ्क्तिमश्रु-प्रवाह-दुर्दिने पातय"-इति ।

शिववीरः—भगवन् ! कथयेदेवं कश्चिद् यवनराज, परं किं भवानपि मामनुमन्यते—यद् ये अस्मदिष्टदेवमूर्तीर्भङ्क्त्वा मन्दिराणि समुन्मूल्य, तीर्थस्थानानि पक्कणीकृत्य, पुराणानि पिष्ट्वा वेदपुस्तकानि विदार्य च, आर्यवंशीयान् बलाद् यवनीकुर्वन्ति, तेषामेव चरणयोरञ्जलिं बद्ध्वा लालाटिकतामङ्गीकुर्याम् ? एवं चेद् धिङ् मां कुल-कलङ्कं क्लीवम्, यः प्राणभयेन सनातनधर्म-द्वेषिणां दासेरकतां वहेत् । यदि चाहमाहवे म्रियेय, वध्येय, ताड्येय वा

प्रसविन्त्याः=जनन्याः । रजतश्वेताम्=रूप्यधवलाम् । पक्ष्म-पङ्क्तिम्=नेत्रलोमश्रेणीम् । अश्रुप्रवाहेण=अश्रुधारया दुर्दिने=मलिने । मेघच्छन्नाहस्य वाचकमत्र लक्षणया प्रयुक्तम् । अस्माभिर्हेतस्य तव विरहेण त्वन्माता शोकाकुला मा भूदिति भावः ।

पक्कणीकृत्य=शबरसदनं कृत्य । "पक्कणः शबरालय" इत्यमरः । दासेरकताम्=भृत्यताम् । "भृत्ये दासेरदासेयदासगोप्यकचेटकाः" इत्यमरः । म्रियेय, वध्येय ताड्येय वा, क्रियापदम् । अत्र अहमिति कर्म ।

रहा हूँ, उसे स्वीकार करो । बूढ़ी माँ का चाँदी के समान सफेद बरौनियों को आँसुओं की झड़ी में मत डुबाओ ।'

शिवाजी—महाराज ! कोई यवनराज ऐसा भले ही कहे पर क्या आप भी मुझे यह अनुमति देते हैं कि जो हमारे इष्टदेव की मूर्तियों को तोड़कर, मन्दिरों को मटियामेट कर, तीर्थस्थानों को भीलों की बस्ती बनाकर, पुराणों को पीस कर, वेद की पुस्तकों को फाड़कर, आर्यवंशजों (हिन्दुओं) को जबर्दस्ती मुसल्मान बनाते हैं हम उन्हीं के चरणों में अञ्जलि बाँधकर, उनकी चाकरी मञ्जूर करें ? यदि मैं ऐसा करूँ तो मुझ कुलकलङ्क कायर को धिक्कार है, जो अपने प्राणों के मोह से सनातन धर्म के दुश्मनों की चाकरी करे । यदि मैं युद्ध में मर जाऊँ, मार डाला जाऊँ या घायल किया

तदैव धन्योऽहम्, धन्यौ च मम पितरौ। कथ्यतां भवादृशां विदुषामत्र का सम्मतिः ?

गोपीनाथ –(विचार्य) राजन् ! धर्मस्य तत्त्वं जानासि, तन्नाहं स्वसम्मतिं कामपि दिदर्शयिषामि। महती ते प्रतिज्ञा, महत्तवोद्देश्यमिति प्रसीदामितमाम्। नारायणस्तव साहाय्यं विदधातु।

शिववीर.—करुणानिधान ! नारायणः स्वयं प्रकटीभूय न प्रायेण साहाय्यं विदधाति, किन्तु भवादृश-महाशय-द्वारैव। तत् प्रतिज्ञायतां काऽपि सहायता।

गोपीनाथ —राजन् ! कथ्यतां किमहं कुर्याम्, परं यथा न मामधर्मः स्पृशेत्, तथैव विधास्यामि।

शिववीर —शान्तं पापम्! कोऽत्राधर्मः? केवलं श्वोऽस्मिन्नुद्यान-प्रान्तस्थ-पट-कुटीरे यवन-सेनापतिरपजलखान आनेयः, यथा

दिदर्शयिषामि=दर्शयितुमिच्छामि। प्रसीदामितमाम्=अत्यन्त प्रसीदामि।

जाऊँ तो मेरा अहोभाग्य है और मेरे माता-पिता धन्य हैं। कहिये आप के से विद्वानों की इस विषय में क्या सम्मति है ?

गोपीनाथ—(विचार कर) राजन्! आप स्वयं धर्म का तत्त्व जानते हैं, इसलिये मैं अपनी कोई भी राय नहीं देना चाहता। आपकी प्रतिज्ञा और आपका उद्देश्य बहुत महान् है, इससे मुझे अत्यधिक प्रसन्नता है। भगवान् तुम्हारी सहायता करें।

शिवाजी—कृपानिधान! भगवान् प्रायः स्वयं प्रकट होकर नहीं, वरन् आप के समान महाशयों के द्वारा ही सहायता करते हैं। अतः आप कुछ सहायता करने की प्रतिज्ञा कीजिये।

गोपीनाथ—राजन्! कहिये, मैं क्या करूँ ? लेकिन जिससे मुझे पाप न लगे वही करूँगा।

शिवाजी—शिव! शिव!! शिव!!! इसमें अधर्म या पाप की क्या बात है! बस, कल इसी उद्यान के किनारे लगे खेमे में यवनसेनापति

तेनैकाकिनाऽहमेकाकी मिलित्वा किमप्यालपामि ।

गोपीनाथः—तत् सम्भवति ।

ततः परं गोपीनाथेन सह शिववीरस्य बहुविधा आलापा अभूवन्; यैः शिववीरस्य उदारहृदयतां धार्मिकतां शूरताञ्चावगत्य गोपीनाथोऽतितरां पर्य्यतुष्यत् ।

अथ स तमाशीर्भिरनुयोज्य यावत्प्रतिष्ठते, तावदुपातिष्ठत ससहचरस्तानरङ्गः । गोपीनाथस्तु तमनवलोकयन्निव तस्मिन्नेव निशीथे दुर्गादवातरत् । कपट-गायको गौरसिंहस्तु शिववीरेण सह बहुश आलप्य, सेनाऽभिनिवेश-विषये च सम्मन्त्र्य, तदाज्ञातः स्ववासस्थानं जगाम ।

शिववीरोऽप्यन्य-सेनापतीन् यथोचितमादिश्य, स्वशयनागारं प्रविश्य होरात्रयं यावत्किञ्चिन्न निद्रा-सुखमनुभूय, अल्पशेषायामेव रजन्यामुदतिष्ठत् ।

निशीथे=अर्धरात्रे । सेनाभिनिवेशविषये=सेनासंस्थानसम्बन्धे, सम्मन्त्र्य=परामृश्य ।

अफजल खाँ को ले आइये, जिससे मैं अकेले अफजल खाँ से अकेला मिल कर कुछ बातचीत कर सकूँ ।

गोपीनाथ—यह हो सकता है ।

उसके बाद गोपीनाथ के साथ शिवाजी की अनेक प्रकार की बातें हुईं, जिनसे गोपीनाथ शिवाजी की उदारहृदयता, धार्मिकता और वीरता जानकर बहुत ही प्रसन्न हुआ ।

इसके बाद शिवाजी को आशीर्वाद देकर गोपीनाथ ने प्रस्थान किया ही था कि अपने साथी बालक के साथ तानरंग आ पहुँचा । गोपीनाथ उन्हें अन देखा-सा कर उसी अर्धरात्रि में दुर्ग से नीचे उतर गए । गायक-वेषधारी गौरसिंह शिवाजी के साथ बहुत-सी बात-चीत कर, सेना की व्यूह-रचना के सम्बन्ध में सलाह कर, उनकी आज्ञा ले, अपने निवासस्थान को गये ।

वीर शिवाजी भी, अन्य सेनापतियों को यथायोग्य आदेश देकर,

शिववीर-सेनास्तु यथासङ्केतं प्रथममेव इतस्ततो दुर्ग-प्राचीरान्तरालेषु गहन-लता-जालेषु उच्चावच-भूभाग-व्यवधानेषु सज्जाः पर्यवातिष्ठन्त। बहवोऽश्वारोहा यवन-पट-कुटीर-कदम्बकं परिक्रम्य ततः पश्चादागत्य, अवसरं प्रतिपालयन्ति स्म।

इतश्च सूर्यप्रभाभिररुणीक्रियमाणे भूभागे अरुण-श्मश्रवोऽपि सेनाः सज्जीकृतवन्तः।

बहवो-"वयमद्य शिवमवश्यमेव विजेष्यामहे; परं तथाऽपि न जानीमहे किमिति कम्पत इव हृदयम्, अहो! विलक्षणः प्रताप

"प्राचीर=प्रान्ततोवृतिः" इत्यमरः। उदक् चावाक् च उच्चावचम्, "मयूरव्यंसकादयश्च" इति समासः। होरात्रयम्=घण्टात्रिकम्। अहोरात्रशब्दस्याद्यन्तयोर्विलोपे 'होरा' इति दिनरात्रिवाचकम्, तदाधारेण होराशास्त्रमित्युच्यते ज्यौतिषम्। सम्प्रति घटिकाया घण्टयाश्च प्रयुज्यत इति वेदितव्यम्।

अरुणश्मश्रव=यवनाः। विजेष्यामहे, "विपराभ्यां जे." इत्यात्मनेपदम्। प्रवहति-पतति-मर्मरीभवतीति त्रयमपि शत्रन्तं सप्तम्येकवचनम्।

अपने शयनागार में प्रवेश कर, तीन घन्टे तक कुछ नींद का सुख लेकर, थोडी रात रहते ही जग गये।

वीर शिवाजी की सेना, सङ्केत के अनुसार पहले से ही, इधर-उधर किले की चहारदीवारी के अन्दर, घनी झाडियों में और ऊँची नीची ऊबड-खाबड जमीन के बीच में, शस्त्रास्त्र से सज्जित डटी थी। बहुत-से घुडसवार यवनों के खेमों का चक्कर लगाकर, लौट आकर, समय की प्रतीक्षा कर रहे थे।

इधर सूर्य के तेज से भूमण्डल के लाल हो जाने पर लाल दाढी-मूँछ वाले यवनों ने भी अपनी सेना सुसज्जित की।

बहुत से और लोग—"हम आज शिवाजी को अवश्य जीतेंगे" लेकिन फिर भी न जाने क्यों हृदय काँपता सा है। ओह, शिवाजी का

एतस्य, पवनेऽपि प्रवहति, पतत्रेऽपि पतति, पत्रेऽपि मर्मरीभवति, स एवाऽऽगत इत्यभिशंक्यतेऽस्माभिः। अहह !! विचित्रोऽयं वीरो यो दुर्ग-प्राचीरमुल्लङ्घ्य, प्रहरि-परीवारमविगणय्य, लोहार्गल-शृङ्खला-सहस्र-नद्धानि करि-कुम्भाघात-सहानि द्वाराणि प्रविश्य, विकोशचन्द्रहासासिधेनुका-रिष्टि-तोमर-शक्ति-त्रिशूल-मुद्गर-भुशुण्डी-कराणां रक्षकाणां मण्डलमवहेल्य, प्रियाभिः सह पर्य्यंकेषु सुप्तानामपि प्रत्यर्थिनां वक्षःस्थलमारोहति, निद्रास्वपि तान् न जहाति, स्वप्नेष्वपि च विदारयति। कथमेतस्य चञ्चच्चन्द्रहास-चमत्कार-चाकचक्य-चिल्लीभूत-चक्षुष्काः समराङ्गणे स्थास्यामः ?" इति चिन्ता-चक्रमारूढा अपि कथं कथमपि कैश्चिन् वीरवरैर्वर्धितोत्साहाः समर-भूमिमवातरन्।

प्रहरिपरीवारम्=द्वारिकसंघम्। विकोशः=कोशान्निःसारितः, नग्न इति यावत्। "नंगी तलवार" इति हिन्दी। अवहेल्य=उपेक्ष्य। प्रत्यर्थिनाम्=शत्रूणाम्। निद्रा=सुषुप्तिः, जहाति=त्यजति। स्वप्न=तत्पूर्वावस्था। चञ्चतश्चन्द्रहासस्य चमत्कारेण यच्चाकचक्यं तेन चिल्लीभूतानि=क्लिन्ना-भूतानि, मुकुलप्रायाणि इति यावत्, चक्षूंषि=नेत्राणि येषां ते। भयादिति भावः।

प्रताप विलक्षण है, वायु चलने पर भी, पक्षी के उड़ने पर भी, पत्ते के खड़खड़ाने पर भी, हम लोगों को 'शिवाजी आ गया' यही शङ्का होती है। अहा, यह वीर विचित्र है। जो किले की चहारदीवारी लाँघ कर, पहरेदारों को कुछ न समझ, हजारों लोहे की जञ्जीरों से बँधे, हाथी के मस्तक के आघात को भी सह सकने वाले दरवाजों में घुसकर, नंगी तलवार, छुरी, बर्छी, शक्ति, त्रिशूल, मुद्गर और बन्दूक हाथ में लिए पहरेदारों की उपेक्षा कर अपनी प्रियाओं के साथ पलंगोंपर सोये हुए दुश्मनों की छाती पर चढ़ जाता है, गाढी नींद में भी उन्हें नहीं छोड़ता और स्वप्नावस्था में भी चीर डालता है। इसकी चल रही तलवार के चमत्कार को चमचमाहट से चकाचौंध पड़े नेत्रोंवाले हम लोग युद्धभूमि में कैसे टिक सकेंगे ?" इसी प्रकार की चिन्ताओं से आक्रान्त होते हुए भी यवन सैनिक, किसी प्रकार कुछ वीरों के द्वारा प्रोत्साहित किये जाने पर युद्धभूमि में उतरे।

अथ कथंचित् प्रकाश-बहुले सवृत्ते नभःस्थले, परस्पर परिचीयमानासु आकृतिषु, कमलेष्विव विकचतामासादयत्सु वीरवदनेषु, भ्रमरालिष्विव परितः प्रस्फुरन्तीषु असि-पङ्क्तिषु, चाटकैर-चकचकायितेषु कवच-चक्रत्कारेषु, गोपीनाथ-पण्डितो वारमेकं शिववीर-दिशि परतश्च यवन-सेनापति-दिशि गतागतं विधाय, सेनाद्वयस्य मध्य एव कस्मिंश्चित् पट-कुटीरे अपजलखानमानेतुं प्रबबन्ध।

शिववीरोऽपि कौशेय-कंचुकस्यान्तर्लोह-वर्म्म परिधाय, सुवर्णसूत्र-ग्रथितोष्णीषस्याप्यधस्तादायसं शिरस्त्राणं संस्थाप्य, सिंह-नख-नामकं शस्त्रविशेषं करयोरारोप्य, दृढबद्ध-कटिरपजलखान-साक्षात्काराय सज्जस्तिष्ठति स्म।

विकचताम्=विकासभावम्। उपमालङ्कारः। एवं परत्र। चटकाया अपत्यानि पुमांसः चाटकैराः, तेषां चकचकायितेषु=चकचकमिवाचरितेषु, चकचक इत्यनुकरणशब्दः। कवचानाम्=उरश्छदानाम्, "उरश्छदः कङ्कटकोऽजगरः कवचोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः। चक्रत्कारेषु=तादृशशब्देषु। गतागतम्=यातायातम्। प्रबबन्ध=व्यवस्थापितवान्।

उसके बाद आकाश में पर्याप्त प्रकाश फैल जाने पर, जब परस्पर आकृतियाँ पहचान में आने लगीं, वीरों के मुखों के कमलों की तरह प्रफुल्लित हो जाने पर, भ्रमरावलियों की तरह तलवारों के चारों ओर दिखाई पड़ने लगने पर, कवचों की गौरैयों के चहचहाने की-सी आवाज करने लगने पर, गोपीनाथ पण्डित ने एक बार शिवाजी की ओर, दूसरी बार यवन सेनापति की ओर चक्कर लगा कर, दोनों सेनाओं के बीच में ही, किसी खेमे में अफजल खाँ को लाने का प्रबन्ध किया।

शिवाजी भी रेशमी कुर्ते के अन्दर लोहे का कवच पहन कर, सोने के तारों से गुँथी पगड़ी के नीचे लोहे का शिरस्त्राण रख कर, हाथों में बघनखा पहन कर, दृढ़ता से कमर कस कर अफजल खाँ से मिलने के लिए तैयार बैठे थे।

अपजलखानोऽपि च—"यदाऽहमेनं साक्षात्कृत्य, करताडनमेकं कुर्य्याम्; तदैव तालिकाध्वनि-समकालमेव अमुकामुकैः श्येनैरिवाभिपत्य पाशैरेष बन्धनीय', सेनया च क्षणात् तत्सेना झञ्झया घनघटेवापनेया"—इति संकेत्य, सूक्ष्म-वसन-परिधानः, वज्रक-जटितोष्णीषिकः, गल-विलुलित-पद्मराग-माल', मुक्ता-गुच्छ-चोचुम्ब्यमानभालः; निश्वास-प्रश्वास-परिमथित-मद्य-गन्ध-परिपूरित-पार्श्व-देशान्तरालः, शोण-श्मश्रु-कूर्च-विजित-नूतन-प्रवालः, कञ्चुक-स्यूत-काञ्चन-कुसुम-जालः, विविध-वर्ण-वर्णनीय-शिविकामारुह्य निर्दिष्ट-पटकुटीराभिमुखं प्रतस्थे ।

अमुकामुकैः="फलाना फलाना" इति हिन्दी। झञ्झया=झञ्झावातेन, "झञ्झावातःसवृष्टिक" इत्यमरः। घनघटेव=मेघसमूह इव। वज्रकेण=हीरकेण, जटिता=खचिता, उष्णीषिका=शिरोवेष्टन यस्य सः। निश्वासप्रश्वासाभ्या परिमथितो यो मद्यगन्धः=मैरयामोदः, तेन, परिपूरितम्=भरितम्, पार्श्वदेशान्तरालं येन सः। शोणाभ्याम्=लोहिताभ्याम्, श्मश्रुकूर्चाभ्या विजितो नूतनः प्रवाल'=नवपल्लव येन सः। कञ्चुके स्यूतानि=खचितानि, काञ्चनानि=हैरण्यानि, कुसुम-

---

अफजल खाँ भी 'ज्यों ही मैं उससे मिल कर एक ताली बजाऊँ, त्यों ही ताली की आवाज के साथ ही, अमुक-अमुक लोग बाज की तरह उसपर टूट कर उसे रस्सियों से बाँध लें और हमारी सेना क्षण भर में उसकी सेना को, बादलों को झञ्झावात की तरह, भगा दे।' यह सकेत देकर, महीन कपडे पहने, हीरा जड़ी टोपी लगाये, गले में पद्मराग मणियों की माला पहने, मस्तक पर मोतियों का गुच्छा लगाये, आसपास के वातावरण को श्वासोच्छ्वास से निकली शराब की दुर्गन्ध से दूषित करता हुआ, विविध रगों की सुन्दर पालकी में बैठकर, मिलने के लिए पहले से निश्चित खेमे की ओर रवाना हुआ। उसकी लाल मूँछ और दाढी नये पल्लवों को भी मात कर रही थी और उसकी शेरवानी सोने के तारों से कढे फूलों से भरी थी।

इतस्तु कुरङ्गमिव तुरङ्गं नर्त्तयन् रश्मि-ग्राह-वेषेण गौरसिंहेनानुगम्यमानः माल्यश्रीक-प्रभृतिभिर्वीर-वरैर्युद्ध-सज्जैः सतर्कं निरीक्ष्यमाण' शिववीरोऽपि तस्यैव सङ्केतितस्य समागमस्थानस्य निकटे एव सव्य-करेण वल्गामाकृष्याश्वमवारुधत् ।

ततस्तु, इतोऽश्वात् शिववीरः ततस्तु शिविकातोऽपजलखानः अपि युगपदेवावातरताम्, परस्परं साक्षात्कृत्य च, उभावप्युत्सुकाभ्यां नयनाभ्याम्, सत्वराभ्यां पादाभ्याम्, स्वागताऽऽम्रेडनतत्परेण वदनेन, आश्लेषाय प्रसारिताभ्यां च हस्ताभ्यां कौशेयास्तरणविरोचितायां वहिर्वेदिकायां धावमानौ परस्परमालिलिङ्गतुः ।

शिववीरस्तु आलिङ्गन-च्छलेनेव स्वहस्ताभ्यां तस्य स्कन्धौ दृढं

जालानि यस्य सः । विविधैः=नानाप्रकारैः, वर्णैः=रंगैः, अक्षरैर्वा, वर्णनीयाम्=प्रशंसनीयाम् । कुरङ्गमिवेति तुरङ्गस्य शीघ्रगामिताध्वननाय । रश्मिग्राह =प्रग्रहधारी । "सईस" इति हिन्दी । वल्गाम्=कविकाम्, "लगाम" इति हिन्दी । आकृष्य=आकृष्य । अवारुधत्=निरुद्धवान् ।

स्वागताम्रेडनम्=वारं वार स्वागतनिवेदनम् । आश्लेषाय= आलिङ्गनाय । धावमानौ=शीघ्र गच्छन्तौ । अन्योन्यं हर्षप्रदर्शनायेदम् ।

इधर हरिण की तरह घोड़े को नचाते हुए वीर शिवाजी—जिनके पीछे सईस के वेप में गोरसिंह चल रहा था और जिन्हें युद्ध के लिए सन्नद्ध माल्यश्रीक इत्यादि वीर सतर्कतापूर्वक देख रहे थे—ने भी उसी पहले से निश्चित सम्मिलन स्थान के निकट ही, बाएँ हाथ से लगाम खींचकर घोड़े को रोका ।

इधर घोड़े से वीर शिवाजी और उधर पालकी से अफजल खाँ, दोनों साथ ही उतरे और एक-दूसरे को देख कर, उत्सुक नेत्रों, जल्दी-जल्दी बढ़ रहे पैरों, 'स्वागत, स्वागत' कहने में तत्पर मुख और आलिंगन करने के लिए फैलाये गये हाथों वाले उन दोनों ने, रेशमी चादर बिछे हुए बाहर के चबूतरे पर, दौड़ते हुए एक दूसरे को आलिंगन किया ।

शिवजीने आलिंगन के ही बहाने, अपने हाथों से उसके कन्धों को

गृहीत्वा, सिंहनखैर्जत्रुणी कन्धरां च व्यपाटयत्। रुधिरदिग्धं च तच्छरीरं कटि-प्रदेशे समुत्तोल्य भूपृष्ठेऽपोथयत्।

तत्क्षणादेव च शिववीर-ध्वजिन्या महाध्वज एक समुच्छ्रित। तत्समकालमेव यवन-शिविरस्य पृष्ठस्थिता शिववीर-सेना-शिविरम-ग्निसात्कृतवती, पुरःस्थित-सेनासु च अकस्मादेव महाराष्ट्र-केसरिणः समपतन्। तेषां 'हरहर-महादेव' गर्जनपुरस्सर छिन्धि-भिन्धि-मारय-विपोथय-इति कोलाहल, प्रत्यर्थिनां च 'खुदा-तोबा-अल्लादि' पारस्य-पदमयः कलकलो रोदसी समपूरयत्।

ततो यवन-सेनासु शतशः सादिनः, गगनं चोचुम्ब्यमानाः, कृतदिगन्त-प्रकाशाः, कडकडा-ध्वनि-धर्षित-प्रान्त-प्रजाः, उड्डीय-

जत्रुणी=स्कन्धस्य सन्धी, "स्कन्धो भुजशिरोऽसोऽस्त्री सन्धी तस्यैव जत्रुणी" इत्यमरः। व्यपाटयत्=व्यदारयत्। अपोथयत्=न्यपातयत्। "पटका" इति हिन्दी।

ध्वजिन्याम्=सेनायाम्, रोदसी=द्यावापृथिव्यौ।

शतशः सादिनो ज्वालमाला अवलोक्य तदभिमुखं प्रयाता इति सम्बन्धः। ज्वालमाला विशिनष्टि— गगनं चोचुम्ब्यमाना इत्यादिभिः।

मजबूती से पकड कर, बघनखों से, कन्धों के जोडों और गले को चीर डाला और उसके खून से लथपथ शरीर को कमर तक उठाकर, जमीन पर पटक दिया।

उसी क्षण वीर शिवाजी की सेना में एक बडी भारी पताका फहरा उठी। उसके फहराते ही यवन-शिविर के पीछे तैनात शिवाजी की सेना ने शिविर में आग लगा दी और आगे खडी यवन सेनाओं पर वीर मराठे एकाएक सिंह की भाँति टूट पड़े। उनके 'हरहर महादेव' गर्जनपूर्वक, 'मारो, काटो, पटको' के कोलाहल और शत्रुओं की 'खुदा, तोबा, अल्ला' आदि फारसी शब्दमय हलचल से पृथ्वी और आकाश गूँज उठे।

तब यवनसेना के सैकड़ों घुड़सवार, आकाश को छूने वाली, दिशाओं को प्रकाशित कर देने वाली, कड़कड ध्वनि से समीप के लोगों को

मान-दन्दह्यमान-परसहस्र-पटखण्ड-विहित-हैम-विहङ्गम-विभ्रमाः, ज्योतिरिङ्गणायित-परस्कोटि-स्फुलिङ्ग-रिङ्गित-पिङ्गीकृत-प्रान्ताः, दोधूयमान-धूम-घटा-पटल परिपात्यमान-भसित-सितीकृतानोकहा, सकलकलध्वनि पलायमानै पतत्रि-पटलैरिव सोसूच्यमाना. शिविर-घस्मरा ज्वालमाला अवलोक्य, सहाहा-कारं तदभिमुखं प्रयाताः। अपरे च महाराष्ट्रासि-भुजङ्गिनीभिर्दन्दश्यमानाः, केचन

कृतो दिगन्तस्य=दिक्प्रान्तभागस्य, प्रकाशो याभिस्ताः। कडकडाध्वनिभिर्घर्षिताः प्रान्तप्रजा याभिस्ताः। उड्डीयमानै, दन्दह्यमानैः=नितरां ज्वलद्भिः, परस्सहस्रैः, पटखण्डैर्विहितो हैमानाम्=सौवर्णानाम्, विहङ्गमानाम्=पतत्रिणाम्, विभ्रमो याभिस्ताः। ज्योतिरिंगणायितानाम्=खद्योतायितानाम्, परस्कोटीनाम्=असंख्यानाम्, पारस्करादित्वात् सुट्, ष्ट्विन पराद्यवयवत्वात् न विसर्गः। स्फुलिंगानाम्=अग्निकणानाम्, रिङ्गितैः=उड्डयनैः, पिङ्गीकृता=पिञ्जरीकृताः, प्रान्ताः=परिसरभूमयो याभिस्ताः। दोधूयमानानाम्=नितान्त वृद्धिं गच्छन्तीनाम्, धूमघटानाम्=धूमलेखानाम्, पटलेन=समूहेन, परिपात्यमानैः=समन्ततो विकीर्यमाणैः, भसितैः=भस्मभिः, सितीकृताः=शुभ्रीकृताः, अनोकहाः=वृक्षाः, याभिस्ताः। सकलकलध्वनि=कलकलशब्देन सह, पलायमानैः, पतत्रिपटलैः=पक्षिसमूहैः। सोसूच्यमाना=बोबुध्यमानाः। उड्डीना भयात्कलकलं कुर्वन्ति विहगाः, इह च स एव सूचनमुखेनोत्प्रेक्षितः।

भयभीत कर देने वाली, हजारों अ गजले कपड़ों के टुकड़ों से स्वर्णपक्षियों का भ्रम उत्पन्न कर देने वाली, जुगुनू के समान करोड़ों चिनगारियों के उड़ने से पास-पड़ोस को पीला बना देने वाली, लगातार बढ़ रही धूम-घटाओं से चारों ओर बिखेरी जा रही भस्म से वृक्षों को सफेद बना देने वाली, शिविर को भस्मसात् कर देने वाली अग्नि की ज्वालाओं,—कलकल ध्वनि करके उड़ रहे पक्षी मानो जिनकी सूचना दे रहे थे—को देखकर हाहाकार करते हुए उसी ओर दौड़े। अन्य यवन मराठों की

"त्रायस्व-त्रायस्व" इति साम्रेडं व्याहरमाणाः पलायमानाः, अन्ये धीरा वीराश्च—

"तिष्ठत रे तिष्ठत धूर्त-धुरीणाः ! महाराष्ट्र-हतकाः ! किमिति चौरा इव लुण्ठका इव दस्यव इव च यवन-सेनापतीनाक्राम्यथ ? समागच्छत सम्मुखम्, यथा शाम्येदस्मच्चन्द्रहासानां चिरप्रवृद्धा महाराष्ट्र-रुधिराऽऽस्वाद-तृषा"

—इति सक्ष्वेड समर्ज्य, युद्धाय सज्जाः समतिष्ठन्त ।

तेषां चाश्वाना सव्यापसव्य-मार्गैः खुरक्षुण्णा व्यदीर्यत वसुधा । खड्ग-खटखटाशब्दैः सह च प्रादुरभूवन् स्फुलिङ्गाः । रुधिर-धाराभिः जपा-सुमनस्समाच्छन्नमिवाभूद्रणाङ्गणम् ।

शिविरघस्मराः=पटगृहभक्षिकाः । दन्दश्यमानाः=भृशं दश्यमानाः, खण्ड्यमाना इत्यर्थः । साम्रेडम्=वारं वारम् ।

सक्ष्वेडम्=ससिंहनादम् ।

सुमनसः=पुष्पाणि । "स्त्रियः सुमनसः पुष्पमि" त्यमरः ।

तलवार रूपी नागिन से डँसे जा रहे थे, कुछ 'बचाओ, बचाओ' कहते हुए भाग रहे थे, और कुछ वीर और धीर यवन सैनिक 'अरे धूर्तराजो ! अरे दुष्ट मराठो ! खड़े रहो, खड़े रहो, चोरो, लुटेरों और डाकुओं की तरह यवन सेनापतियों पर आक्रमण क्यों करते हो ? सामने आओ, जिससे हमारी तलवारों की बहुत दिनों से बढ़ी मराठा की खून पीने की प्यास शान्त हो सके ।' यह कह कर, सिंहनाद-पूर्वक गरज कर, युद्ध के लिए तैयार हो, खड़े हो गये ।

उनके घोड़ों के दाँये-बायें पैतरा बदलने से खुरों से खुद कर पृथ्वी फट-सी गयी और तलवार के खटखट शब्दों के साथ ही चिनगारियाँ निकलने लगीं । रक्त की धारा से रणभूमि जपापुष्पों से आच्छन्न-सी हो गयी ।

तदवलोक्य गौरसिंहो मृतस्यापजलखानस्य शोणित-शोणं शोणं शरीरं प्रलम्ब-वेणु-दण्डाग्रेषु बद्ध्वा समुत्तोल्य सर्वान् सन्दर्श्य सभेरीनाद घोषितवान् "यद्-दृश्यतां दृश्यतामितो हतोऽयं यवन-सेनापतिः, ततश्चाग्निसात् कृतानि ससकल-सामग्री-जातानि शिविराणि, परितश्च बहूनि विनाशितानि यवन-वीर-कदम्बकानि, तत् किमिति अवशिष्टा यूयं मुधा बक-गृध्र-शृगालानां भोज्याः संवर्तध्वे ? शस्त्राणि त्यक्त्वा पलायध्वं पलायध्वम्, यथा नेयं भूः कदुष्णैर्भवतां सद्यश्छिन्न-कन्धरा-गलद्रुधिरप्रवाहैर्भवद्रमणीनां च कज्जल-मलिनैर्बाष्प-पूरैरार्द्रा भवेद्"—इति। तदवधार्य, दृष्ट्वा च रुधिर-दिग्धं क्रीडापुत्तलायित स्वस्वामिशरीरम्, सर्वे ते हतोत्साहा विसृज्य शस्त्राणि, कान्दिशीका दिशो भेजुः।

शोणितशोणम्, शोणम् = रुधिरार्द्रत्वात् प्रकृत्या च रक्तवर्णमित्यर्थः। प्रलम्बानाम्=दीर्घाणाम्, वेणुदण्डानाम्=वंशानाम्, अग्रेषु, समुत्तोल्य= उत्थाप्य। कदुष्णैः=ईषदुष्णैः। रुधिरदिग्धम्=रक्तक्लिन्नम्। क्रीडा-पुत्तलायितम्=खेलार्थं निर्मितपटादिमूर्तिवदाचरितम्।

यह देख कर गौरसिंह ने मरे अफजल खाँ के खून से लथपथ लाल शरीर को लम्बे बाँसों की नोक में बाँध कर खड़ा कर, सब को दिखा कर, डुग्गी पिटाकर यह घोषणा कर दी—"देखो, देखो, इधर यह यवन सेनापति मार डाला गया है और उधर सारी सामग्री सहित सारे शिविर जला दिये गये हैं और चारों ओर अनेक यवन-वीरो के समूह नष्ट कर दिये गये हैं, तो बचे हुए तुम लोग व्यर्थ में बगुलों, गीधों और सियारों का भोजन क्यों बनते हो ? शस्त्र छोड़कर भागो, भागो, जिससे यह भूमि तुम्हारी तुरंत कटी गर्दन से बह रही गरम-गरम खून की धाराओं और तुम्हारी स्त्रियों के काजल से मैले आँसुओं के प्रवाहों से गीली न हो।" यह सुनकर और अपने सेनापति के खिलौने बनाये गये खून से लथपथ शरीर को देख कर वे सभी हतोत्साहित हो, शस्त्र छोड़कर, डरकर चारों ओर भाग खड़े हुए।

सखेनः शिववीरश्च विजय-शङ्खनादैः रोदसी सम्पूर्य, रणाङ्गण-शोधनाधिकारं माल्यश्रीकाय समर्प्य, प्रताप-दुर्गं प्रविश्य मातुश्चरणौ प्रणनाम ।

इति द्वितीयो निश्वासः ।

*

कान्दिशीकाः=भीताः "कान्दिशीको भयद्रुत" इत्यमरः ।
मातुः=जनन्याः । प्रणनाम=नमस्कृतवान् ।

इति शिवराजविजयवैजयन्त्यां द्वितीय निश्वासविवरणम् ।



वीर शिवाजी ने सेना के साथ विजय-शङ्ख के घोष से अन्तरिक्ष और पृथ्वी के अन्तराल को पूर्ण कर, रणभूमि की सफाई का काम माल्यश्रीक को सौंप कर, प्रतापगढ़ में प्रवेश कर, माता के चरणों में प्रणाम किया ।

शिवराजविजय के द्वितीय निश्वास का

हिन्दी अनुवाद समाप्त



"जीवन् नरोभद्रशतानि पश्यन्"

—स्फुटकम्

"संसारेऽपि सतीन्द्रजालमपरं यद्यस्ति तेनापि किम् ?"

—भर्तृहरिः ।

तत्र पर्ण-कुटीरे तु कथं कथमपि दाडिमाद्यास्वादन-तत्परां कुसुम-गुच्छैर्मनो विनोदयन्तीं बालिका गुरोः समीपे परित्यज्य, तदाज्ञया तत्पितरौ समन्वेष्टुम्, अन्तर्गोपित-क्षुरप्र-च्छुरिका यष्टिकामेका हस्तेन धृत्वा, तैरेव श्याम-श्यामैं गुच्छ-गुच्छैः

गौरवटुश्यामबटुनाम्ना प्रसिद्धयोरुदयपुरराज्यैकभूभागस्वामिश्रीखड्गसिंहतनययो. समागमश्चिराद्विमुक्तया सौवर्णानामिकया भगिन्या पुरोहितेन च काकतालीयन्यायेन जात इति तृतीयपरिच्छेदकथामुपक्षिपति—"जीवन्नरो भद्रशतानि पश्येदि"ति ।

अघटितघटनापटीयस्या मायया प्रपञ्चजातमेवेन्द्रजालन्न तु ततोन्यत्किञ्चिदित्यपि स्मारयति भर्तृहरिपद्यखण्डेन—"ससारेऽपी"ति ।

कुसुमगुच्छैः=पुष्पस्तबकैः । श्यामश्यामैः=अतिश्यामैः । एव-

॥ श्रीः ॥

तृतीय निश्वास

'जीवित रहने पर मनुष्य सैकडों सुख देख सकता है ।'

'ससार के होते हुए भी, यदि कोई दूसरा इन्द्रजाल हो तो उससे क्या, अर्थात् सृष्टि का सबसे बडा इन्द्रजाल स्वय ससार ही है ।'

उस पर्णकुटी में किसी प्रकार अनार आदि खाने में लगी हुई और फूलों के गुच्छों से मन बहला रही बालिका को गुरु के समीप छोड़ कर, उनकी आज्ञा से, उसके माता-पिता को खोजने के लिये, एक

लोल-लोलैः कुञ्चितैः कचैः ब्रह्मचारि-बटु-वेष एव श्यामवटु-रासन्न-ग्रामटिका-दिशि-समगात् ।

ततो "हन्त ! कथमद्यापि शूली त्रिशूलेन नैतान् शूलाकरोति ? कथं खड्गिनी खड्गेन न खण्डयति ? कथं चक्री चक्रेण न चूर्णयति ? कथं पाशी पाशैर्न पाशयति ? कथं हली हलेन नावहेलयति ? कथं वा जम्भारातिर्दम्भोलिघातैर्दम्भिन एतानम्भोधि-जल-स्तम्भा-

---

मग्रेऽपि । "नित्यवीप्सयोरि"त्याभीक्ष्ण्ये द्वित्वम् । आसन्ना=समीपवर्तिनी, ग्रामटिका=लघुग्रामः । "स्वर्गग्रामटिकाविलुण्ठनवृथोच्छूनै" रित्यादिषु महाकविभिः प्रयुक्तोऽयं शब्दः, स्तद्धित इति महासज्ञास्वारस्य-कल्प्यमान-"ग्रामाट्टिकनि" प्रत्ययनिष्पन्नः "गंवई" इति हिन्दी ।

शूली=शिवः, शूलाकरोति=शूलेन पचति । "शूलात्पाके" इति डाच् । खड्गिनी=दुर्गा । चक्री=विष्णुः । पाशी=वरुणः । "प्रचेता वरुणः पाशी"त्यमरः । पाशैः=बन्धनसाधनैर्वरुणास्त्रैः, हली=बलः, अवहेलयति=तिरस्करोति । जम्भस्य=तन्नाम्नोऽसुरस्य, अरातिः=रिपुः, इन्द्रः दम्भोलीनाम्=वज्राणाम्, "दम्भोलिरशनिर्द्वयोरि"त्यमरः, घातै=

लकड़ी की गुप्ती-जिसमें तीक्ष्ण छुरी छिपी थी-हाथ में लेकर, काले, सुन्दर घने और घुँघुराले बालों वाला साँवला बालक, ब्रह्मचारी के वेष में ही गाँव की ओर चल दिया ।

"हा ! इतना अनर्थ और अधर्म होने पर भी भगवान् रुद्र त्रिशूल से इन अधर्मियों को क्यों नहीं वेध देते ? खड्गधारिणी दुर्गा अपने खड्ग से इनके टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं कर देती ? चक्रधारी विष्णु इन्हे चक्र से क्यों नहीं पीस डालते ? वरुण इन्हें पाश से बाँध क्यों नही देते ? हलधर बलराम हल से इनकी अवहेलना क्यों नहीं करते ? जम्भ के शत्रु इन्द्र इन अभिमानियों को वज्र मारकर समुद्र के जलस्तम्भो (एक विशेष तूफान के कारण समुद्र के जल का खड़े होकर खम्भों का रूप ले लेना)

रम्भेषु न पातयति ? अहह ! क इतोऽप्यधिकोऽनर्थो भविता यद् भगवानवतरिष्यति। शिव ! शिव !! न शक्यते द्रष्टुमपि यदेतैर्निर्दय-हृदयैः परमपूजनीयानां ब्राह्मणानामपि अत्यल्पवयस्का अपि बालिका अपह्रियन्ते। धिगेतान् ! धर्मादपि निर्भीकान् अभीकान्"-इति चिन्ता-सन्तान-वितानैकताने एव ब्रह्मचारि-गुरौ, सपद्येव न्यविशत श्यामवटुः सह देवशर्म्मणा वर्षीयसा ब्राह्मणेन। स तु बाष्प-क्षालितोपनयनः शोकाधिक-कम्पित-गात्रयष्टि प्रविश्यैव, दृष्ट्वैव तां बालिकां "कुतः कुत कोशले !" इत्युदीर्य तामङ्के जग्राह।

साऽपि प्रक्षिप्य दाडिम-खण्डम्, निरस्य च कोरक-स्तबक-

ताडनैः। अम्भोधे'=क्षीरनिधेः, जलस्तम्भानाम्, आरम्भेषु=उपक्रमेषु। क्वचिज्जलधिमारभ्य मेघपर्यन्तं जलस्तम्भा आविर्भवन्तीति पदार्थ-विद्या-वेदिना नाविदितचरम्। अनुप्रासः। धर्मादपि निर्भीकान्=धार्मिकभय-शून्यान्। अभीकान्=कामुकान्। "कम्रः कामयिताऽभीकः" इत्यमरः। चिन्तायाः सन्तानस्य=समूहस्य, वितानै=विस्तारीकरणे, एकतान'=स्थिर-चित्तः। न्यविशत=प्रविष्टः। वर्षीयसा=वृद्धेन। बाष्पेण=रोदनजलेन, क्षालितम्=धौतम्, उपनयनम्=उपनेत्रम्, 'चश्मा' इति हिन्दी, यस्य सः। शोकेन, अधिकम्, कम्पिता=वेपमाना, गात्रयष्टिः=शरीरं यस्य सः।

में क्यों नहीं फेंक देते ? उफ ! क्या इससे भी बढकर अनर्थ हो सकता है जब भगवान् अवतार ले। शिव ! शिव !! देखा भी नहीं जाता ये निर्दयहृदय वाले यवन परम पूजनीय ब्राह्मणों की भी कम उम्र की भी बच्चियों का अपहरण करते हैं।" ब्रह्मचारी गुरु इन्हीं चिन्ताओं से चिंतित हो रहे थे कि वृद्ध ब्राह्मण देवशर्मा के साथ साँवले ब्रह्मचारी ने प्रवेश किया। उस वृद्ध ब्राह्मण का चश्मा आँसुओं से धुल रहा था। प्रवेश करके और बालिका को देखकर ही उसने "कोशले ! कोशले ! तुम यहाँ कैसे ?" कहकर उसे गोद में उठा लिया।

वह भी अनार के टुकड़े और कलियों के गुच्छे—जिससे वह खेल

क्रीडनकम्, तं कराभ्यां कण्ठे गृहीत्वा मुक्तकण्ठं रुरोद ।

वृद्धोऽपि च एकं करं तत्पृष्ठे विन्यस्य, अन्येन च तस्याः शिरः परिमृशन् "कोशले ! कानि पातकानि पूर्वजन्मनि कृतवत्यसि ? यद् बाल्य एव त्वत्पिता सङ्ग्रामे म्लेच्छ-हतकैर्धर्मराज-नगराद्ध्व-न्यद्ध्वन्यः कृतः । माता च तव ततोऽपि पूर्वमेव कथावशेषा संवृत्ता, यमलौ भ्रातरौ च तव द्वादशवर्षदेश्यावेव आखेट-व्यस-निनौ महार्ह-भूषण-भूषितौ तुरगावारुह्य वनं गतौ दस्युभिरपहृता-विति न श्रूयते तयोर्वार्ताऽपि, त्वं तु मम यजमानस्य पुत्रीति स्वपुत्रीव मयैव सह नीता, वर्द्धिता च । अहह ! कथं वारं वारं

मुक्तः=अप्रतिहतः कण्ठो यस्या क्रियाया तदिति क्रियाविशेषणमिदम् । क्रियाविशेषणानामेकत्वं कर्मत्वञ्च स्वाभाविकप्रायम् ।

धर्मराजस्य=वैवस्वतस्य, नगरस्य, अध्वनि=मार्गे । अध्वन्य=पान्थः । मरण न वाच्यमितीत्थं कथयति । यमलौ=सहजातौ, द्वादश-वर्षदेश्यौ=आसन्नद्वादशवर्षौ । आखेटे = मृगयायाम्, व्यसनं ययोस्तौ । महार्हैः=बहुमूल्यैः, भूषणैः=अलङ्करणैः, भूषितौ ।

रही थी—को फेंक कर, उस वृद्ध के गले में बाहें डाल कर, फूट-फूट कर रोने लगी ।

वृद्ध भी एक हाथ उसकी पीठ पर रखकर दूसरे हाथ से उसका सिर सहलाता हुआ इस प्रकार करुण विलाप करने लगा,

"कोशले, तूने पूर्व जन्म में कौन-से ऐसे पाप किये थे कि तेरे पिता तेरे बचपन में ही युद्धस्थल में म्लेच्छों द्वारा मार डाले गये, तेरी माँ उससे भी पहले कथाशेष हो गई (मर गई) और तेरे दोनों जुडवाँ भाई—जो शिकार के शौकीन थे—बहुमूल्य आभूषण पहन कर घोड़ों पर सवार होकर वन में गये और दस्युओं द्वारा हर लिये गये तथा फिर उनकी चर्चा भी नहीं सुनाई दी । तू मेरे यजमान की पुत्री थी, इसलिये अपनी पुत्री के ही समान समझकर मैंने तुझे अपने साथ रखा और पाला-पोसा । आह !

बालैव सुन्दरकन्या-विक्रय-व्यसनिभिर्यवन-वराकैरपहियसे ? भगवदनुग्रहेण च कथं कथमपि मत्कर-मुक्ता पुन प्राप्यसे । परमात्मन् ! त्वमेव रक्षैनामनाथां दीनां क्षत्रिय-कुमारीम्"—इति सकरुणं विललाप ।

तदाकर्ण्य सर्वेऽपि चकिता' स्तब्धा अश्रुमुखाश्च संवृत्ता' । कुटीराध्यक्षो ब्रह्मचारी च निजमपि किञ्चिद् बन्धु-वियोग-दुःख स्मारित इव वाष्प-व्रजोद्गम-दुर्दिन-ग्लपित-मुख' कथं कथमपि धैर्यमाधाय वदनं पटेन परिमृज्य पुनरवदधे ।

तावत्कुटीराद् बहिः कस्मिंश्चित् कार्ये व्यासक्तो गौरवटुर्विलापेनैतेन कर्णयोराकृष्यमाण इव त्वरितमन्त प्रविवेश । पौन पुन्येन

बन्धुवियोगदुःखंस्मारित'=इष्टविरहक्लेशमनुभावित., वाष्पाणाम्= अश्रूणाम्, व्रजस्य = समूहस्य, उद्गमेन=प्रादुर्भावेण, यद् दुर्दिनम्, तत्तुल्यम्, "मेघच्छन्नेऽह्नि दुर्दिनमि" त्यमरः, तेन ग्लपितम्=ग्लानम्, मुखम्=आननम् यस्य सः । अविच्छिन्नाश्रुधाराम्लानमुख इत्यर्थः । अवदधे=सावधानोऽभूत् ।

सुन्दर कन्याओ के व्यापारी यवन दुष्टों के द्वारा कई बार तेरा अपहरण किया गया, पर भगवान् के अनुग्रह से किसी न किसी प्रकार उनसे छूटकर मुझे प्राप्त होती रही । भगवन् ! तुम्हीं इस अनाथ और दीन क्षत्रिय कुमारी की रक्षा करना ।"

यह सुनकर सभी लोग चकित और स्तब्ध रह गए तथा उन्हें आँसू आ गए । कुटी के अध्यक्ष ब्रह्मचारी को भी मानो अपने किसी बन्धु के वियोग के दुःख का स्मरण हो आया और उनका मुख निरन्तर बहने वाली अश्रुधारा से म्लान हो गया । किसी प्रकार धैर्य धारण कर मुँह को उत्तरीय वस्त्र से पोंछकर वह पुनः सावधान हुये ।

उस कुटी के बाहर किसी काम मे लगा हुआ गौर ब्रह्मचारी इस विलाप के कान में पडते ही अन्दर आ गया ।

दृष्ट्वा च तां कन्यां देवशर्म्माणं वृद्धं ब्राह्मणञ्च, परिपक्व-ताली-दलीभूत-कपोल-पालीकः, उदञ्चित-रोममाली, त्वरित-कोष्ण-श्वास-प्रश्वास-शाली, शारद-शर्वरी-सार्वभौम-किरण-किरणोद्भूतोद्भूत-कीलालाली-व्यालीढ-चन्द्रकान्त-जालीभूत-लोचनः, बाष्पावरुद्ध-कण्ठः, कमपि वृत्तान्तं स्मारित इव, कमपि चिरविनष्टं प्रेयांसं प्रापित इव, किमपि चिरानुभूतं दुःखं पुनरनुभावित इव च स्मारं स्मारमिव किमपि स्वसमानदशं श्यामवटुं सम्बोध्य कातरेण भव्य-

परिपक्वं यत्तालीदलं तत्समतामापादिता या कपोलपाली=गण्डप्रान्तो यस्य सः। शोकेनेषत्पीतगण्डस्थल इति भावः। उदञ्चिता=प्रोद्गता, रोम-माला=लोमावली यस्य सः। इनिः। त्वरिताभ्याम्=शैघ्रययुताभ्याम्, कोष्णाभ्याम्=ईषदुष्णाभ्या श्वासप्रश्वासाभ्या शालते=शोभते। इनिरत्रापि। शरदि भवा शारदी, सा चासौ शर्वरी=निशीथिनी, तस्याः शर्वरीसार्व-भौमस्य=शशाङ्कस्य, किरणानाम्=दीधितीनाम्, किरणेन=क्षेपणेन, उद्भूतोद्भूतम्=अत्यन्तं निर्यातम्, यत् कीलालम्=पानीयम्, "पयः कीलालममृतमि" त्यमरः, तस्य आली=पंक्तिः, तया व्यालीढः=भूषितः, यः चन्द्रकान्तः=तन्नामा मणिविशेषः, तस्य जालीभूते=समुदायभूते लोचने यस्य सः। स्रवद्बाष्प इत्यर्थः। शर्वरी-शर्वरी, किरण-किरणेत्यत्र यमकम्, अनुप्रासस्तु सर्वत्र। प्रसादो गुणः, गौडी रीतिः। प्रेयांसम्=अतिशय-प्रियम्। प्रापितः=लम्भितः। स्वेन समाना दशा=अवस्था यस्य

उस कन्या और देवशर्मा ब्राह्मण को बार-बार देखकर उसके गाल पके हुए तालपत्र के समान पीले हो गये, देह रोमाञ्चित हो गयी, वह जल्दी-जल्दी साँसें लेने लगा, उसकी आँखें शरत्काल की चन्द्रकिरणों के सस्पर्श से उत्पन्न जलकणों से व्याप्त चन्द्रकान्त मणि जैसी अर्थात् अश्रुपूर्ण हो गयीं और गला रुँध गया जैसे उसे कोई बात याद आ गयी हो, जैसे उसे किसी चिर अनुभूत दुःख की पुनः अनुभूति होने लगी हो, इस प्रकार कुछ स्मरण करता हुआ सा वह अपनी ही मनःस्थिति

मानेन कम्पमानेन च स्वरेणाचकथत्—

"श्याम ! श्याम ! शृणोषि शृणोषि ?" इति ।

अथ श्यामवटुरपि अश्रुभिः स्नातो गौरस्य करं गृहीत्वा "तात ! शृणोमि, सेयं सौवर्णी अस्मद्भगिनी, स चायं पूज्यपादः पुरोहितः" इति कथयन् गौरमपि प्रकटं रोदयन् रुरोद ।

तदाकर्ण्य क्षणं सर्वेऽपि कुटीरस्थाः काष्ठनिर्मिता इव चित्रलिखिता इव च संवृत्ताः ।

देवशर्माऽपि च स्तब्धीभूतामिव कन्यकां तस्मिन्नेव कुशासने उपवेश्य चक्षुषी स्थिरीकृत्य "वत्सौ ! किं वीरस्य खड्गसिंहस्य तनयौ युवाम् ?" इति कथयन् वली-पलितौ वार्द्धक्य-वेपमानौ बाहू प्रससार । तौ चाऽऽत्मनः पित्रोरपि पूजनीयं पुरोहितं साष्टाङ्गं प्रणे-

तम् । भज्यमानेन=भुग्नवता । कम्पमानेन=सवेपथुना । तात !=

वाले साँवले ब्रह्मचारी को सबोधित कर, कातर, लड़खड़ाते और काँपते स्वर में बोला—

"श्याम ! श्याम ! सुनते हो ? सुनते हो ? तदनन्तर आँसुओं से नहाया साँवला ब्रह्मचारी गोरे ब्रह्मचारी का हाथ पकड़ कर, "हाँ भाई ! सुन रहा हूँ, यही हमारी बहिन सौवर्णी है और यही हमारे पूज्यपाद पुरोहित हैं" यह कहता हुआ गोरे ब्रह्मचारी को भी प्रकट रूप में रुलाता हुआ रोने लगा ।

उस रोदन को सुनकर कुटी के सभी लोग थोड़ी देर के लिए कठपुतली के समान अथवा चित्रलिखित से (जड़वत्) हो गये ।

देवशर्मा ने भी निश्चल सी हुई उस कन्या को उसी कुशासन पर बिठा कर आँखें स्थिर करके "पुत्रो ! क्या तुम दोनों वीर खड्गसिंह के आत्मज हो ?" यह कहते हुए श्वेत रोमों से भरी और बुढ़ापे के कारण काँपती हुई बाँहें फैला दीं और उन दोनों ने अपने पिता के भी पूज्य पुरोहित को

मतुः । स च कथमप्युत्थाय, उत्थाप्य च तौ, समाश्लिष्य स्वनयन-वारिधाराभिस्तावभ्यषिञ्चन् ।

ततो मुहूर्त्तं यावत् परितः प्रसर्पिभिः करुणोद्गार-प्रवाहैरेव पर्यपूर्यत सा कुटी ।

अथ कथमपि रिङ्गत्तुङ्ग-तिमिङ्गिल गिल-परिवर्त्त-प्रसङ्ग-सङ्ग-समङ्ग-तरङ्ग-रङ्गप्राङ्गण-सोदरीभूतं हृदयं वशीकृत्य, अनुजा सुवर्ण-वर्णा सौवर्णीनाम्ना बाल्य एव प्रसिद्धां कोशलामङ्के संस्थाप्य,

---

भ्रातः, वलीपलितौ=जरसा शौक्ल्ययुतकेशौ । अभ्यषिञ्चत्=आर्द्रीकृतवान्, "प्राक्सितादड्व्यवायेऽपी"ति षत्वम् ।

प्रसर्पिभिः=विसारिभिः, करुणोद्गारस्य=करुणरसोद्गमस्य, प्रवाहैः=धाराभिः । उत्प्रेक्षा । पर्यपूर्यत=पूरिताऽभूत् ।

अथ कुटीराध्यक्षो गौरश्यामो समुवाचेति सम्बन्धः । रिङ्गन्=चञ्चलन्, यः तुङ्गः=सुमहान्, तिमिङ्गिलगिल=तन्नामा मत्स्यविशेषः । "अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम शतयोजनविस्तरः । तिमिङ्गिल-गिलोऽप्यस्ति तद्गिलोऽप्यस्ति राघवः" इति हनुमद्वचनम्, तस्य परिवर्तः=पार्श्वपरिवर्तनम्, तस्य प्रसङ्गस्य=अवसरस्य, सङ्गेन=संसर्गेण, समङ्गानाम्=समुच्छलितानाम्, तरङ्गाणाम्=वीचीनाम्, रङ्गप्राङ्गणस्य=नर्त्तनचत्वरस्य, सोदरीभूतम्=तादृशम् । भृशं व्याकुलं क्षुभितमिति यावत् । हृदयम्="हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मन" इत्यमरः । अनुप्रासः ।

साष्टांग प्रणाम किया । देवशर्मा ने किसी तरह उठकर और उन दोनों को उठा कर उनका आलिंगन कर उन्हें अपनी अश्रुधारा से नहला दिया ।

उसके बाद थोड़ी देर के लिये वह कुटी चारों ओर फैल रही करुणा की धारा से आप्लावित हो गई ।

तदनन्तर तिमिंगिल-गिल के चतुर्दिक घूमने से छिन्न हो जाने वाली तरंगों के नर्तन स्थल के समान अपने हृदय को किसी प्रकार सँभालकर अपनी सोने के से रंग वाली बचपन से ही सौवर्णी नाम से प्रसिद्ध

समुपविष्टे गौरे; श्यामेऽपि च तस्या एव समीपे समुपविश्य तस्या एव पृष्ठं परिमृजति; पूज्यपादे पुरोहिते च क्रियासमभिहारेणोद्गच्छतो बाष्पान् पटान्तेन परिहरति, कुटीराध्यक्षः कुतुक-परवश. सम्बोध्य गौर-श्यामौ समुवाच—

"वत्सौ गौर-श्यामौ ! जानेऽहं वां क्षत्रियोचिताचारेषु चातन्द्रितौ सनातनधर्म-विप्लवासहनौ नीतिकुशलौ परोपकार-व्यसनिनौ दुर्बलात्कार-परायण-तुच्छ-यवन-च्छेदेच्छोच्छलच्छटाच्छन्नौ, बाला-वप्यवालपराक्रमौ, सकल-कला-कलाप-कोविदौ गुणि-गण-गण-

प्रौढिरर्थगुणः। परिमृजति=हस्तस्पर्शं कुर्वति। क्रियासमभिहारेण=भृश पौनःपुन्येन च। कुतुकपरवशः=सकौतूहलः। सनातनधर्मस्य विप्लवासहनौ=विनाश प्रलयं वा असहमानौ। दुर्बलात्कारे=दुष्टसाहसे, परायणानाम्=निरतानाम्, तुच्छानाम्=नीचानाम्, छेदस्य=खण्डनस्य, इच्छया=अभिलाषेण, उच्छलन्त्या=उद्गच्छन्त्या, छटया=हार्दावस्थाविशेषेण, आच्छन्नौ=व्याप्तौ। अनुप्रासः। अवालपराक्रमौ=महाबलौ। बालौ कथमबालपराक्रमाविति विरोधाभासः। सकलस्य=भेदोपभेदसहितस्य, कलाकलापस्य=कलासमूहस्य,

कोशला नाम की बहिन को गोद में बिठाकर गौर ब्रह्मचारी के बैठ जाने पर, श्याम ब्रह्मचारी के भी उस कन्या के ही समीप बैठकर उसकी पीठ सहलाने लगने पर, तथा पूज्यपाद पुरोहित के बार-बार निकलने वाले आँसुओं को उत्तरीय के छोर से पोछने लगने पर कुतूहलाक्रान्त कुटीराध्यक्ष ने गोरे और साँवले दोनो ब्रह्मचारी को सम्बोधित कर कहा "वत्स गौर और श्याम! मैं जानता हूँ कि तुम दोनों आलस्यरहित होकर क्षत्रियों का-सा आचरण करने वाले, सनातन धर्म के ह्रास या विनाश को न सहन कर सकने वाले, नीतिकुशल, परोपकारी, अत्याचारी दुष्ट यवनों के काटने की अभिलाषा से उत्पन्न कान्ति से व्याप्त बालक होते हुये भी महापराकमी सभी कलाओं में निष्णात और गुणियों में गिने जाने

नीयौ च, किन्तु नाद्यावधि कदाऽपि भवतोर्जन्मस्थानादि-प्रश्न-प्रसङ्गोऽभूत्, आकर्ण्य च भवतोर्दुःखमयमपि विलापमयमपि चाऽऽलापं महत् कुतूहलमस्माकं वर्वर्ति। तत्समाश्वस्य धैर्यमाधाय संक्षेपेण कथ्यतां का भवतोर्जन्मभूः? कथमत्राऽऽगतौ? किमेषा सहोदरा स्वसा? सत्यमेव किं भुवं विरहय्य लोकान्तरं सनाथितवन्तौ युष्मत्पितरौ? क्व यौष्माकीण-पैतृपितामहिक्र-सम्पत्तिः? किं भवतोरुद्देश्यम्?" इत्यादि।

तदाकर्ण्य चक्षुषी विमृज्य मुखं प्रोञ्छय कण्ठं रुन्धतो बाष्पान् कथमपि संरुध्य इन्दीवरयोरुपरि भ्रमतो भ्रमरानिव लोचनयो-

कोविदौ = विज्ञातारौ। गुणिनाम् = कलाविदा, गणे = समुदाये, गणनीयौ = गण्यौ। समाश्वस्य = समाधाय। धैर्यमाधाय = धीरतामानीय। यौष्माकीणा = युष्मत्स्वामिका। पैतृपितामहिकी = वंशपरम्पराप्राप्ता, सम्पत्तिः।

लोचनयोरञ्चितान् केशानपसार्येति सम्बन्धः। उपमिनोति इन्दीवरयोः = कमलयोः, उपरि भ्रमतः = ऊर्ध्वं चलतः। भ्रमरानिवेति कचोपमानम्।

योग्य हो, लेकिन आज तक कभी भी तुम दोनों का जन्म स्थान आदि पूछने का प्रसंग नहीं आया, आज तुम्हारे दुःखपूर्ण और विलापपूर्ण वार्तालाप को सुनकर मुझे बहुत कौतूहल हो रहा है। इसलिये आश्वस्त होकर, धैर्य धारण कर संक्षेप में बताओ कि तुम्हारा जन्म स्थान कहाँ है? तुम यहाँ कैसे आये? क्या यह तुम्हारी सगी बहन है? क्या तुम्हारे माता-पिता सचमुच ही संसार को छोड़कर दूसरे लोक को सुशोभित कर चुके हैं? तुम्हारे पिता, पितामह आदि पूर्वपुरुषों की संपत्ति कहाँ है? तुम्हारा उद्देश्य क्या है?" इत्यादि।

यह सुनकर आँखों और मुँह को पोंछकर गला रूँधने वाले आँसुओं को किसी तरह रोक कर, नील कमल पर मँडराते भौंरों के समान घुंघराले

रञ्जितान् कुञ्चित-कुञ्चितान् मेचकान् कचानपसार्य निस्तन्द्रेण मन्द्रेण स्वरेण गौरसिंहो वक्तुमारभत—

"अस्ति कश्चन धैर्य-धारि-धुरन्धरैः, धर्मोद्धार-धौरेयैः, सोत्साह-साहस-चञ्चच्चन्द्रहासैः, सुशक्ति-सुशक्तिभिः, सद्यश्छिन्न-परिपन्थि-गल-गलच्छोणित च्छुरित-च्छन्न-च्छुरिकैः, भयोद्भेदनभिन्दिपालैः, स्व-प्रतिकूल-कुलोन्मूलनानुकूल-व्यापार-व्यासक्त-शूलैः, घन-विघ्न-

---

अपसार्य = अपवार्य । निस्तन्द्रेण = तन्द्राशून्येन, मन्द्रेण = गम्भीरेण ।

अस्ति कश्चन राजपुत्रदेश इति सम्बन्धः । देश विशिनष्टि- धैर्यधारिधुरन्धरैः = विशालधीरताशालिभिः । धर्मोद्धारे धौरेयैः= अग्रेसरैः । सोत्साहेन = साध्यवसायेन, साहसेन चञ्चन्तः = चलन्तः, चन्द्रहासाः = असयो येषां तैः । सुशोभनायाः, अकुण्ठितायाः, शक्तेः = कृपाण्याः, सुशक्ति = शोभनसामर्थ्यं येषां तैः । सद्यश्छिन्नेभ्य = तत्कालकृत्तेभ्यः, परिपन्थिनाम् = शत्रूणाम्, गलेभ्यः = कण्ठेभ्यः, गलताम् = स्रवताम्, शोणितानाम्, छुरितैः = बिन्दुभिः, छन्ना = लिप्ताः, छुरिका = असिधेनवो येषां तैः । भयोद्भेदना भिन्दिपाला येषां तैः । भिन्दिपाला = नालिकास्त्राणि, "पिस्तौल" इति हिन्दी । स्वप्रतिकूलानाम् = शत्रूणाम्, कुलानाम् = अन्वयानाम्, उन्मूलनानुकूलव्यापारेषु=विध्वंसनोचितकर्त्तव्येषु,व्यासक्तानि=संलग्नानि, शूलानि=कुन्ता येषां तैः । घनानाम्=विपुलानाम्, विघ्नानाम्=प्रत्यू-

---

काले वालों को हटा कर आलस्यहीन गम्भीर स्वर में गौरसिंह ने कहना प्रारम्भ किया ।

"धैर्य धारण करने वालों में अग्रगण्य, धर्म के उद्धार में अग्रसर, उत्साहपूर्ण साहस से चमकती तलवारों वाले, सामर्थ्यशाली कृपाणों वाले, शत्रुओं के ताजे कटे गले से बहने वाले रुधिर बिन्दुओं से लिप्त छुरों वाले, भय दूर करने वाली पिस्तौलों वाले, विपक्षियों के संहार में लगे शूलों वाले, भयकर घर्घर ध्वनि से विघ्न समूह को दूर करने वाली

विघट्टक-घर्घराघोप-घोर-शतघ्नीकैः, प्रत्यर्थि-शुण्डि-शुण्डा-खण्ड-नोद्दण्ड-भुशुण्डीकैः, प्रचण्ड-दोर्दण्ड-वैदग्ध्य-भाण्ड काण्ड-प्रकाण्डैः, क्षत्रियवर्यैरार्यवर्यैरर्यवर्यैश्च व्याप्तो राजपुत्र-देशः ।

यत्र कोप-पूरिताः काञ्चनमया इव सानुमन्तः, महार्ह-मणि-गण-जटिल-जाम्बूनद-भूषण-भूषिता गन्धर्वा इव जनाः, विचित्र-

हानाम्, शत्रुकृतोपद्रवाणा, विघट्टिकाः=विमर्दिका । सामानाधिकरण्यात् पुंवत्त्वम्, घर्घराघोषेण=घर्घरध्वनिना, अथवा घर्घर इति आघोषो यासा ताः, घोराः=भयावहाः, शतघ्न्यः=शतमारिकाः, येषा तैः, शतघ्नी लोके "तोप" इति कथ्यते । णभतुभ-हिंसायामित्यस्मान्निष्पन्न—"तोभ" शब्दाप-भ्रंशोऽसौ "तोप" शब्द इति "सप्तद्वीपा वसुमती" त्यादिभाष्यतत्त्ववेदिनः। प्रत्यर्थि-शुण्डिनाम्=शत्रुकरिणाम्, शुण्डानाम्=कराणाम्, आखण्डने=कर्तने, उद्दण्डा भुशुण्ड्यो येषां तैः । प्रचण्डदोर्दण्डवैदग्ध्य-भाण्डानि=प्रबलबाहुदण्डपाण्डित्यसदनानि, यानि काण्डप्रकाण्डानि=प्रशस्तबाणा येषा तैः । "प्रशंसावचनैश्च" इति प्रकाण्डपदस्य परनिपातः । प्रकाण्डं क्लीबमजहल्लिङ्गम् । आर्येषु वर्यैः = ब्राह्मणैः । क्षत्रियाणा प्रथमोच्चारणं तु तेषामेव तत्राधिक्यप्रदर्शनार्थम्, संग्रामे तेषामेव प्राबल्यबोधनार्थञ्च । ब्राह्मणा अपि देशरक्षणार्थं सन्नद्धा एवासन्निति तत्त्वम् । अर्याः = वैश्याः । "अर्यः स्वामिवैश्ययोः" विश्वः । कोपपूरिताः=निधानपूर्णाः । काञ्चनमया इव=हिरण्मया इव । सानुमन्तः=शिखरिणः । महार्हाणाम्=बहुमूल्यानाम्, मणीनाम्=हीरकादीनाम्, गणेन=समूहेन, जटितैः=मिलितैः, जाम्बूनदभूषणैः = सुवर्णालंकरणैः, भूषिताः=शोभिताः । गन्धर्वा इव=

तोपों वाले, शत्रुओं के हाथियों की सूँड काटने में दक्ष बन्दूकों वाले, तथा प्रबल भुजदण्डों की कुशलता के पात्र और प्रशस्त बाणों वाले क्षत्रिय-वीरों, ब्राह्मणश्रेष्ठों और वैश्यवरों से व्याप्त, एक राजपूताना नाम का देश है । जहाँ के सोने की खानों से पूर्ण पर्वत सुमेरु के समान और बहुमूल्य मणि-माणिक्य जटित स्वर्णाभूषण पहनने वाले मनुष्य गन्धर्वों

गवाक्ष-जालाट्टालिकाङ्गण-कपोतपालिका-चत्वर-गोष्ठ-भित्तिकाः, विश्वकर्मरचिता इव गृहाः, सादि-करस्थ-कशाग्र-चालन-सङ्केत-सञ्चलितसप्ति-समूह-शफ-सम्मर्द-समुद्धूत-धूलि-धूसरिताश्च मार्गाः। अस्ति तस्मिन्नेव राजपुत्रदेशे उदयपुरनाम्नी काचन राजधानी, यत्रत्याः क्षत्रियकुलतिलका यवनराज-वशंवदता-कर्दम-सम्मर्दनं कदाऽप्या-

---

देवयोनिविशेषा इव। विचित्रा = विविधाः गवाक्षाद्या येषु तादृशाः। गवाक्षः=वातायनम्, "खिडकी" "झरोखा" इति हिन्दी। जालम्= वायुप्रवेशार्थमार्गः, "जाली" इति हिन्दी। अट्टालिका = प्रस्तरादिनिर्मितं महासदनम्। अङ्गणम् = अजिरम्। कपोतपालिका = काष्ठरचित पक्षि-वासस्थान विटङ्कम्। चत्वरम् = लक्षणया चतुरस्रबोधकम्। अङ्गणस्य पृथगुच्चारणेन नात्र तद्वाचकतेति वेदितव्यम्। गोष्ठम्=गोशाला। भित्तिः =कुड्य येषा ते। विश्वकर्मणा=देवशिल्पिना, रचिता इव = निर्मिता इव। सादिकरस्थानाम्=अश्ववारहस्तस्थितानाम्, कशानाम्= अश्वताडनीनाम्, अग्रस्य = प्रान्तस्य, चालनसङ्केतेन=धावनप्रेरणेन, सञ्चलितस्य = गच्छतः, सप्तिसमूहस्य=वाजिनिवहस्य, शफसम्मर्दैः = खुरकुट्टनैः, समुद्धूताभिः=उच्छलिताभिः, धूलिभिः=रजोभिः, धूसरिताः =ईषच्छुभ्राः। 'ईषत्पाण्डुस्तु धूसरः' इत्यमरः। यवनराजवशंवदतैव कर्दमः,

---

के समान है। जहाँ के, नाना प्रकार की खिडकियों, झरोखों, रोशन-दानों, अटारियों, आँगनों, कबूतर पालने के दरबों, चबूतरों, गोशालाओं और दीवारों वाले महल, विश्वकर्मा द्वारा बनाये गये से लगते हैं, और जहाँ की सडकें घुडसवारों के हाथ को चाबुक से अग्रभाग के हिलने से चलने का सकेत पाकर द्रुतगति से दौडने वाले घोडों के खुरों से खुद कर उडने वाली धूल से व्याप्त हैं। उसी राजपूताना देश में उदयपुर नाम की एक राजधानी है, जहाँ के क्षत्रियकुलतिलक राजाओं ने, मुसलमान राजाओं की अधीनता रूप कीचड से अपने को कभी भी

त्मानं कलङ्कयामासुः" इति कथयत्येव गौरसिंहे; ब्रह्मचारिगुरुरपि कोष्णं निःश्वस्य—

"को न जानीते उदयपुर-राज्यम् ? यदीय-चित्रपूर-दुर्गे परस्सहस्रा क्षत्रिय-कुलाङ्गनाः, कमला इव विमला, शारदा इव विशारदाः, अनसूया इवानसूयाः, यशोदा इव यशोदाः, सत्या इव सत्याः,

तत्सम्मर्दैः = तल्लेपैः । न कलङ्कयामासु = न सदूषणं चक्रुः ।

चित्रपूरदुर्गे = "चित्तौड गढ" इति नितरां प्रसिद्धे । केचित् 'चित्रकूट' शब्दापभ्रंश मन्यन्ते "चित्तौड"शब्दम् । भगवद्रामभद्रतनयलववंशोद्या हि भूमिपाला उदयपुरीया इति रामविपिनचित्रकूटनाम्ना तत्प्रसिद्धतायामनुकूलस्तर्कः । अमरमङ्गले तर्करत्नभट्टाचार्यास्तु चितम् व्यूढम्, उरो यस्येति व्याख्याय "चितोरः" शब्दमवागदन्निति वेदितव्यम् । कमला इव=श्रिय इव । "कमला श्रीर्हरिप्रिये" त्यमरः । शारदा=सरस्वती । विशारदाः=पण्डिताः । शारदा कथं विगतशारदेति विरोधाभासः । अनसूया=अत्रिपत्नी । अनसूयाः=असूयारहिताः । असूया=गुणेषु दोषाविष्करणम् । यशोदा=कृष्णमाता । यशोदाः=यशोदायिन्यः । न केवलं पतिव्रताभिस्तासामेव कीर्तिरेधते अपि तु तत्पतीनामपि । "व्यालग्राही यथा व्यालं बिलादुद्धरते बलादि"ति मानवश्च शासनमत्र भवति । सत्या=सत्यभामाभिधाना श्रीकृष्णपत्नी, नामैकदेशग्रहणन्यायात् । सत्याः=सत्यभाषिण्यः । अर्श आद्यजन्तम् ।

कलंकित नहीं होने दिया। गौरसिंह ने इतना ही कहा था कि ब्रह्मचारी गुरु उष्ण निःश्वास लेकर, धीरे से बोले,

"उदयपुर राज्य को कौन नहीं जानता ? जिसके चित्तौड़दुर्ग में हजारों क्षत्राणियाँ जो लक्ष्मी के समान विमल, सरस्वती के समान बुद्धिमती, अनसूया के समान असूयारहित, यशोदा के समान यश देने वाली, सत्यभामा के समान सत्य बोलने वाली, रुक्मिणी के समान स्वर्णाभूषणों से

रुक्मिण्य इव रुक्मिण्य', सुवर्णा इव च सुवर्णा', सत्य इव सत्यः, सम्भाव्यमान-यवन-बलात्कार-धिक्कारोर्जस्वल-तेजस्काः, योगाग्निनेव पतिविरहाग्निनेव स्वक्रोधाग्निनेव च सन्दीपितासु ज्वाला-जालाञ्चितासु चितासु, स्मार स्मारं स्वपतीन्, पश्यतामेव स्वकीयाना परकीयाणां च क्षणात् पतङ्गतामङ्गीकृत्य, गङ्गाधरस्याङ्गभूषणतामगमन्"-इति मन्दं व्याजहार।

तदाकर्ण्य करुणया दुःखेन कोपेन आश्चर्येण वैमनस्येन

रुक्मिणी=कृष्णपत्नी। रुक्मिण्य.=सुवर्णवत्यः। सुवर्णा इव=कनकपदार्था इव। सुवर्णा=शोभनवर्णवत्यः। सुन्दर्य इति यावत्। सती=शङ्करगेहनी। सत्यः=पतिव्रताः। "सती साध्वी पतिव्रता" इत्यमरः। यशोदादिषु व्यक्तिमात्रवाचकेषु बहुत्व गौरवप्रदर्शनाय, तन्मुखेनोपमानोपमेयभावनिर्वाहाय च। सम्भाव्यमानस्य=अनुमीयमानस्य, यवनबलात्कारस्य, धिक्कारे=तिरस्करणे, ऊर्जस्वलम्=बलवत्, तेजो यासा ताः। सन्दीपितासु=सुप्रज्वलितासु। कीदृशाग्निहेतुकं प्रज्वलनमित्युत्प्रेक्षते—योगाग्निनेव=योगसामर्थ्यात्समुत्पन्नेनाग्निनेव। पत्युर्विरहाज्जायमानेन वह्निनेव। स्वक्रोधादुद्भूतदहनेव। ज्वालाजालाञ्चितासु=कीलसमूहसमवेतासु। "वह्नेर्द्वयोर्ज्वालकीलावि" त्यमरः। पतङ्गताम्=शलभताम्। गङ्गाधरस्याङ्ग भूषणम्=भस्म, तद्भावम्, भस्मताम्।

"पतिलोकमभीप्सन्ती" त्यादिभिः पतिलोकप्राप्ते फलस्य प्रदर्शितत्वेऽपि शिवधामप्राप्त्याद्यर्थोऽपि उपलक्षणविधया घटत एवेति मन्तव्यम्।

अलंकृत, सोने के समान रंगवाली, पार्वती के समान पतिव्रता थीं तथा जिनका तेज यवनों के सम्भावित बलात्कार को धिक्कारने में समर्थ था, मानो योगाग्नि, पतिविरहाग्नि या क्रोधाग्नि से प्रदीप्त की गई ज्वालाओं वाली चिता में अपने और परायों के देखते ही देखते, अपने पतियों का बार-बार स्मरण करती हुई, पतंग की तरह जलकर (शंकर के शरीर का भूषण बन गईं अर्थात्) भस्म हो गईं।"

यह सुनकर करुणा, दुःख, क्रोध, आश्चर्य, वैमनस्य और ग्लानि से,

ग्लान्या च क्षालित-हृदयेषु निखिलेषु गौरसिंहः पुन. स्व-वृत्तान्तं वक्तुमुपचक्रमे यत्—

तद्राज्यस्यैवान्यतमो भू-स्वामी खड्गसिंहो नामाऽस्मत्तात-चरण आसीत्।

खड्गसिंहनाम्ना परिचित इव ब्रह्मचारी समधिकमबाधित। स च पूर्ववदेव वक्तुं प्रावृतत्।

अस्मज्जननी तु बालावेवाऽऽवां स्तनन्धयामेव चास्मत्सहोदरीं सौवर्णीं परित्यज्य, भुवं विरहयाम्बभूव। अस्मत्तातचरणश्च कैश्चित्तुरुष्कैर्लुण्ठकप्रायैर्युद्ध-क्रीड़ां कुर्वन् पृष्ठतः केनापि विशालभल्लेनाऽऽहतो

करुणया क्षालितहृदयेष्वित्यादिरूपेण तृतीयान्तषट्कस्य क्षालनेऽन्वयः, क्षालनञ्चात्रोपचारेण व्यापनार्थकम्, करुणाद्यतिशयव्यञ्जनाय च तदाश्रयणम्, दीपकालङ्कारः।

समधिकम्=अत्यन्तम्, अबाधित=पीडामन्वभूत्। प्रावृतत्=प्रवृत्तः। स्तनन्धयाम्=पयःपानरताम्। शिशुमित्यर्थः। विरहयाम्बभूव=परितत्याज। तुरुष्कैः="तुर्क" इति हिन्दी। वीराणां गतिम्=उत्तमं लोकम्।

"द्वाविमौ पुरुषो लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ।
परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः॥" इति स्मृतिः।

सभी लोगों के हृदयों के धुल (व्याप्त हो) जाने पर, गौरसिंह ने पुनः अपना वृत्तान्त कहना प्रारम्भ किया कि, 'उसी राज्य के अन्यतम जमींदार खड्गसिंह हमारे पिता थे।'

खड्गसिंह के नाम से परिचित से ब्रह्मचारी ने अत्यधिक पीडा का अनुभव किया। वह पहले की ही भाँति कहता गया—

हम दोनों अभी बालक ही थे, और हमारी बहन सौवर्णा अभी दूध पीती बच्ची ही थी, कि हमारी माँ ने हमें छोड़कर, भूलोक को विरहित कर दिया (मर गई), हमारे पिता जी ने, कुछ लुटेरे तुर्कों से लडते हुए, पीछे

वीरगतिमगमत् । ततः पुरोहितेनैव पाल्यामानावावामपि यमलौ भ्रातरौ गौर-श्यामौ एकदा मित्रैः सहाऽऽखेटार्थं निःसृतौ तुरगौ चालयन्तौ मार्ग-भ्रष्टौ अकस्मात् काम्बोजीय-दस्यु-वारेणाऽऽवृतौ तेनैवापहृत-महार्ह-भूषणौ गृहीताश्वौ बद्धौ च सहैव वनाद्वनम-नायिष्वहि । "यद्यपि शत्रुसन्ताना निर्दयं हन्तव्या एव; तथाऽपि नासा-भूषण-मौक्तिके इव वीणा-तुम्बाविव श्यामकर्ण-हयाविव च मनोहर-रूपौ समानाकारौ समानवयस्कौ समान-परिणाहौ समान-स्वभावौ समान-स्वरौ समान-गुणौ केवलं वर्णमात्रतो भिन्नौ राम-कृष्णाविवामू गौर-श्यामौ बालकौ । तदवश्यं बहुमूल्याविति कुत्रापि

यमलौ=सहजौ । "जुड्वाँ" इति हिन्दी । मार्गभ्रष्टौ=विस्मृत-मार्गौ । काम्बोजीयदस्युवारेण=कम्बोजदेशीयतस्करसमूहेन । अपहृत-महार्हभूषणौ=लुण्ठितबहुमूल्यालङ्करणौ । बहुव्रीहिः । अनायिष्वहि=नीतौ । शत्रुसन्तानाः=रिपुवंशाः । "वंशोऽन्ववायः सन्तान" इत्यमरः । समानपरिणाहौ=समविशालतौ । वर्णमात्रतो भिन्नौ, ज्येष्ठस्य शुभ्र-त्वात् कनिष्ठस्य च श्यामलत्वात् ।

से, किसी के द्वारा भीषण भाले का आघात कर देने के कारण, वीरगति प्राप्त की । तदनन्तर पुरोहित के ही द्वारा पाले जाते हुए हम दोनों जुडवाँ भाई गौर और श्याम, एक दिन मित्रों के साथ शिकार खेलने निकले और घोडे पर चलते-चलते रास्ता भूल गए । अकस्मात् कम्बोज देश के लुटेरों ने घेर लिया, हमारे बहुमूल्य आभूषण और घोड़े छीन लिये, और हमें बाँध कर अपने साथ वे एक जगल से दूसरे जगल ले गए । वे आपस में बातचीत करते थे कि, 'यद्यपि शत्रुओं की सन्तान की निर्दयतापूर्वक हत्या कर देनी चाहिये, तथापि ये दोनों बालक नथ के दो मोतियों की भाँति वीणा की दो तुम्बियों की भाँति और दो श्यामकर्ण घोड़ों की भाँति सुन्दर रूप वाले हैं । समान आकार, वय, विशालता, स्वभाव, स्वर और गुणवाले केवल वर्ण मात्र से भिन्न ये दोनों गौर और श्याम बालक बलराम औ

कस्यचिदपि महाधनस्य हस्ते विक्रयणीयौ" इति तेषां घोरतरान् संल्लापान् शृण्वन्तौ "कथं पलायावहे? कथं वा मुच्यावहे?" इत्यनवरतं चिन्तयन्तौ कथं कथञ्चित् कञ्चित् समयमयापयाव।

अथैकदा कञ्चित्पान्थ-सार्थमवलोक्य तल्लुलुण्ठयिषया सर्वेष्वपि तस्य पन्थानमेवानुसृतेषु आवाभ्यामपि पलायनावसरो लब्धः। यावच्चाऽऽवा वस्त्राणि परिधाय, परिकरे असिधेनुकां बद्ध्वा, बाहुमूले निस्त्रिंशं चर्म्म च लम्बयित्वा, तद्भुशुण्डिकानामेवैकामेकामल्पीयसीमात्मोत्तोलन-योग्यां सज्जां करे धृत्वा, उपकारिकाया बहिर्निर्गतौ; तावद् दृष्टम्-यदेको रक्षकः खड्गहस्तो नौ बहिर्गमनाद् वारयतीति।

पान्थसार्थम् = पथिकव्रजम्। तल्लुलुण्ठयिषया = तस्य पान्थसार्थस्य धनापजिहीर्षया, परिकरे = गात्रबन्धे। "भवेत्परिकरो व्राते पर्यङ्कपरिवारयोः। प्रगाढगात्रिकाबन्धे विवेकारम्भयोरपी" ति विश्वः। असिधेनुकाम् = छुरिकाम्, "छुरिका चासिधेनुके" त्यमरः। बाहुमूले = कक्षे, निस्त्रिंशम् = खड्गम्। आत्मोत्तोलनयोग्याम् = स्वोत्थापनार्हाम्। सज्जाम् = गोलिकापूर्णाम्। सिद्धामिति यावत्। उपकारिकायाः = पटभवनात्। "उपकार्योपकारिके" त्यमरः। "तम्बू" इति हिन्दी।

कृष्ण के समान हैं। ये अवश्य ही बहुमूल्य हैं; अतः किसी बड़े सेठ के हाथ इन्हें बेच देना चाहिए, उनकी इस भीषण बातचीत को सुनते हुए, तथा 'किस प्रकार भगें? किस प्रकार छूटें?' इसी की निरन्तर चिन्ता करते हुए, हमने जैसे-तैसे कुछ समय बिताया।

एक दिन किसी पथिक समूह को आता देख, उसे लूटने की इच्छा से सभी के उसी ओर चले जाने पर हम लोगों को भागने का मौका मिल गया। कपड़े पहन कर, कमर में छुरा बाँधकर, बगल में ढाल तलवार लटका कर, उन्हीं की बन्दूकों में से अपने योग्य एक-एक छोटी (भरी) बन्दूक हाथ में लेकर, हम दोनों ज्यों ही खेमे के बाहर आये कि हमने देखा कि कोई पहरेदार जिसके हाथ में तलवार है, हमें बाहर निकलने से रोक रहा है।

अथाऽऽवाभ्यां भुशुण्डिकां सन्धायोक्तम्—"अलमलं कदर्य ! किमप्यधिकं वक्ष्यसि तत्स्थानात्पादमेकमपि च प्रचलिष्यसि चेत् ; क्षणेन परेतपति-पालित-पुरी-पान्थ विधास्यावः" इत्याकलय्य भयेन काष्ठभूते तस्मिन् मूढ-रक्षके, मयि च तथैव वद्ध-लक्ष्ये स्थिते; मदिङ्गितानुसारेण श्यामसिंहस्तस्या एवोपकार्य्याया. प्रान्ते बद्धानां फेनवर्षिणामश्वानां कौचिच्चण्डवेगौ श्यामकर्णावाजानेयौ उन्मुच्य, वल्गामायोज्य सर्वत. सज्जीकृत्य चैकमारुह्य रक्षकोपरि भुशुण्डिका तथैव सज्जीकृतवान्। ततश्चाहमप्यपरं हयमारुह्य तस्य ग्रीवामास्फोट्य नर्तयन् रक्षकं साम्रेडं तर्ज्जनैर्हतोत्साहं मृतप्रायं च विधाय, श्यामसिंहमिङ्गितवान् ।

परेतपतिना = यमेन, पालितायाः = रक्षितायाः, पुर्याः पान्थम्। मूढश्चासौ रक्षकः, तस्मिन्। भयेन काष्ठभूते "डर से काठ हुए" इति भाषायाम्। किञ्चिदकुर्वाणः कोलाहलमपि नाकार्षादिति मूढत्वम्। फेनवर्षिणाम्, भोजनकालोपरिष्टात् सुखोपविष्टाः फेनं वमन्त्यश्वा इति स्वभावः, आजानेयौ = कुलीनौ। "शक्तिभिर्भिन्नहृदयाः स्खलन्तश्च पदे पदे। आजानन्ति यतः संस्थामाजानेयास्ततः स्मृताः ॥" इत्यश्वशास्त्रम्। तर्जनै. = भर्त्सनैः। इङ्गितवान् = चेष्टया बोधितवान्, गन्तुमिति शेषः।

हम दोनों ने बन्दूक तान कर कहा, 'बस, बस, नीच ! यदि कुछ भी अधिक बोला, या उस जगह से एक कदम भी चला तो यमपुरी का अतिथि बना देंगे।' यह सुनकर वह पहरेदार डर से काठ हो गया, मैं वैसे ही निशाना साधे खड़ा रहा, मेरे इशारे के अनुसार श्यामसिंह ने उसी खेमे के पास बँधे, फेन उगल रहे घोड़ों में से दो शीघ्रगामी, अच्छी जाति के श्यामकर्ण घोड़ों को खोलकर, लगाम लगा कर, उन्हें सब तरह से सुसज्जित कर, एक पर चढ़कर, उस पहरेदार पर उसी तरह बन्दूक तान ली। उसके बाद मैंने भी दूसरे घोड़े पर बैठकर उसकी गर्दन थपथपा कर, उसे नचाते हुए, धमकियों से पहरेदार को निरुत्साहित और अधमरा सा कर के, श्यामसिंह को चलने का इशारा किया।

अथाऽऽवांद्वावपि वायुवेगाभ्यामश्वाभ्यामज्ञातेनैवापथा, उपत्यकात उपत्यकाम्, वनाद् वनम्, प्रान्तराच्च प्रान्तरमुल्लङ्घमानौ तेनैव दिनेन गव्यूति-पञ्चकं प्रयातौ। सायं समये च कामपि ग्रामटिकामासाद्य अन्यतमस्य गृहस्य द्वार गतौ। तच्च हनुमन्मन्दिरमवगत्य तस्मिन् प्रविष्टौ तदध्यक्षेण केनचित् साधुना च सस्वागतमाग्रहेण वासितौ, तत्रैव निवासमकृष्वहि।

अथ तत्प्रदत्तमेव हनूमत्प्रसादीभूतं मोदकादि समास्वाद्य, तस्यैव भृत्येनाऽऽनीतं यवस-भारं वाजिनोरग्रे पातयित्वा, मन्दिरस्यैव वहिर्वेदिकायामितस्ततः पर्यटन्तौ मुहूर्त्तमावामवास्थिष्वहि।

ततश्च दुग्धधाराभिरिव प्रथमं प्राचीं संक्षाल्य, भसितच्छुरि-

अपथा=कुमार्गेण, प्रान्तरम्=दूरशून्यो मार्गः। "प्रान्तर दूरशून्योऽध्वे" त्यमरः। "पातर" इति हिन्दी। वासितौ=स्थापितौ।

यवसभारम्=वासभारम्। अवास्थिष्वहि=स्थितौ, "समवप्रविभ्यः स्थ" इत्यात्मनेपदम्।

ततश्च समुदिते चैत्रचन्द्रखण्डे परितो दृक्पातमकार्षमिति सम्बन्धः।

हम दोनों हवा के समान तेज उन घोड़ों से, अनजाने रास्ते से ही, उपत्यका से उपत्यका, एक जंगल से दूसरे जंगल और एक उजाड़ मार्ग से दूसरे उजाड मार्ग होते हुए, उसी दिन दस कोस निकल गए। शाम को एक छोटे-से गाँव में पहुँचकर वहाँ के एक अच्छे घर के दरवाजे पर गये। उसे हनुमान का मन्दिर जानकर, उसमें घुस गए। उसके अध्यक्ष साधु ने स्वागतपूर्वक साग्रह हमें वहाँ रखा और हम वहीं रह गए।

मन्दिराध्यक्ष के द्वारा दिये गये हनुमानजी के प्रसाद के लड्डू आदि खाकर, और उन्हीं के नौकर द्वारा लाई गई घास को घोड़ों के आगे डाल कर, मन्दिर के बाहर के चबूतरे पर इधर-उधर घूमते हुए, हम कुछ क्षण रुके।

तदनन्तर, पहले प्राची दिशा को मानो दुग्धधाराओं से धोकर,

तामिव विधाय, चन्दनैरिव सचर्च्य, कुन्द-कुसुमैरिवाऽऽकीर्य, गगन-सागर-मीने इव, मनोज-मनोज्ञ-हंसे इव, विरहि-निकृन्तन-रौप्य-कुन्त-प्रांते इव, पुण्डरीकाक्ष-पत्नी-कर-पुण्डरीकपत्रे इव शारदाभ्र-सारे इव, सप्तसप्ति-सप्ति-पाद-च्युते राजत-खुरत्रे इव, मनोहरता-महिला-ललाटे इव, कन्दर्प-कीर्तिलताङ्कुरे इव, प्रजा-जन-नयन-कर्पूरखण्डे

सुधादीधितिदीधितिभिर्भासितत्वमुत्प्रेक्षते–दुग्धधाराभिरिवेति । भसितम्=भस्म, "भूतिर्भसितभस्मनी" इत्यमरः। तच्छुरितामिव=तद्भूषितामिवे-त्युत्प्रेक्षा, संचर्च्य = अनुलिप्य । देवीं विधिवत्सपूज्य जना उदयं प्राप्नुवन्ति यथा तथा सुधादीधितिः प्राचीं संपूज्योदयं लेभ इति ध्वनयति । चन्द्रखण्ड विशिनष्टि-गगनम्=नभ तदेव सागरः=समुद्रः तस्य मीने=मत्स्य इवेति रूपकानुविद्धोत्प्रेक्षा । मनोजस्य=मनसिजस्य, मनोज्ञे=चेतोहरे, हस इव । विरहिणाम्=वियोगिनाम्, निकृन्तनाय=कर्त्तनाय, रौप्यस्य=रजतवदवभासमानस्य, कुन्तस्य=भल्लस्य, प्रान्त इव पुण्डरीकाक्षपत्न्या = विष्णुस्त्रियाः लक्ष्म्या, करपुण्डरीकपत्रे = हस्तस्थकमलदले । शरदि भव शारदम्, अभ्रम्=मेघः, तत्सारे=तत्तत्त्वांशे । सप्तसप्तिः=सूर्यः, तस्य सप्तिः=अश्वः । तत्पादच्युते = तत्पादपतिते । राजते = रौप्ये च तस्मिन्, खुरत्रे = "नाल" इति लोके ख्याते । मनोहरस्य भावो मनोहरता = सुन्दरता, सैव महिला = वनितेति रूपकम्, तल्ललाटे। सुन्दर्याःस्त्रिया ललाट चन्द्रार्धखण्डसदृशमिति सुप्रसिद्धमुपमानोपमेयविदाम्। कन्दर्पकीर्त्तिरेव लता=व्रततिः, तदङ्कुर-तुल्ये । शशाङ्केन हि । कन्दर्पकीर्तिर्वर्ध्यते प्रजाजननयनानाम्, कर्पूर-

भस्म से लिप्त कर, चन्दन-चर्चित-सा कर, कुन्दकुसुमों से व्याप्त-सा कर, आकाश-समुद्र के मत्स्य के समान, कामदेव के सुन्दर हंस के समान, विरहियों को वेधने वाले चाँदी के भाले के अग्रभाग के समान, लक्ष्मी के हाथ के कमल की पँखुरी के समान, शरत्कालीन मेघों के सारभूत तत्त्व के समान, सूर्य के घोड़े के पैर से गिरी चाँदी के नाल के समान, सुन्दरता रूपी महिला के ललाट के समान, कामदेव की कीर्तिलता के

इव, तमो-तिमर-कर्त्तन-शाणोल्लीढ-निस्त्रिंशे इव च समुदिते चैत्र-चन्द्र-खण्डे; तत्प्रकाशेन स्फुटं प्रतीयमानासु सर्वासु दिक्षु, अहं परितो दक्पातमकार्षम्, अद्राक्षञ्च यदुत्तराभिमुखम्, वद् विशालं मन्दिर-मस्ति, तद्द्वारस्योभयतः सुधालिप्त-भित्तिकायां विशालैः सिन्दूराक्षरैः 'जयति हनुमान्' 'रामदूतो विजयतेतराम्' 'विजयतामक्षक्षयकारी'-इति बहूनि वाक्यानि गदादि-चिह्नानि च लिखितानि सन्ति। तत उत्तरस्यामेकः स्वल्पः शैलखण्डः, पूर्वस्यां गहनं वनम्, पश्चिमायां च स्वल्पमेकं पल्वलमासीत्। यद्यप्यसौ पर्वत-खण्डो नात्यन्तं भयानक इव, तथाऽपि विविधगण्डशैलावृतः, झर-झर्झर-ध्वनि-पूरित-

---

खण्डे = हिमवालुकाखण्डे। तमीतिमिरकर्त्तनाय = रात्र्यन्धकारनाशाय। शाणेन = कषेण, उल्लीढे = तेजिते, निस्त्रिंशे = खड्गे। यद्यपि खड्गधारा-श्यामतावर्णनमेव कविसमयख्यात्यनुकूलम्, तथापि शाणोल्लीढत्वस्य चमत्कृतिविशेषाधायकत्वेनेह इत्यमभिहितमिति वेदितव्यम्। प्रतीया-मानासु = दृश्यमानासु। सुधया = चूर्णेन, "चूना" इति हिन्दी, लिप्ताया भित्तिकायाम्। अतिशयेन विजयते विजयतेतराम्, "तिङश्चेति" तरपि "किमेत्तिङव्ययें" त्याम्। पल्वलम् = अल्पोदक

अंकुर के समान और लोगों की आँखों के लिए कपूर के समान चैत्रमास के बालचन्द्र के उदित हो जाने तथा उसके प्रकाश से सभी दिग्भागों के स्पष्ट दृष्टिगोचर होने पर मैंने चारों ओर दृष्टिपात किया और देखा कि उत्तराभिमुख जो विशाल मन्दिर है, उसके मुख्य द्वार के दोनों ओर, चूने से पुती हुई दीवारों पर, बड़े-बड़े अक्षरों में, सिन्दूर से 'जयति हनुमान्' 'रामदूतो विजयतेतराम्' 'विजयतामक्षक्षयकारी' इत्यादि अनेक वाक्य और गदा आदि चिह्न अंकित हैं। उस मन्दिर के उत्तर एक छोटी-सी पहाड़ी, पूर्व में, घना जंगल और पश्चिम की ओर एक छोटा-सा तालाब था। वह पहाड़ी यद्यपि बहुत भयानक-सी नहीं थी, फिर भी चट्टानों से घिरी, झरनों की झर-झर ध्वनि से दिशाओं को पूरित करने

दिगन्तरालः, महीरुह-समूह-समावृतः, उच्चावच-सानु-प्रचय-सूचित-विविधकन्दरश्चाऽऽसीत्। चन्द्र-चन्द्रिका-चारुचक्यात् स्फुटमवालोक्यन्तैतस्योपत्यकाः।

ततश्च झिल्ली-झङ्कारेणेव केनचित् विलक्षणेन अनाहतध्वनिनेव पर्य्यपूर्यत वसुधा, विचित्र एष कश्चन परस्सहस्र-तानपूर-षड्जस्वर-सोदरो वन-रात्रि-ध्वनिः, तमेव स्वरं गम्भीरं विशकलय्य आकर्णयता समश्रावि कीचकध्वनिरपि, तत्राप्यवदधता साक्षादकारि मधुकर-

---

सरः। झरस्य = वारिप्रवाहस्य, "वारिप्रवाहो निर्झरो झरः" इत्यमरः, झर्झरध्वनिना पूरितानि दिगन्तरालानि यस्य सः महीरुहाणाम् = वृक्षाणाम्, समूहेन समावृतः = आच्छन्नः, अतिघनीभूतवृक्षक इति भावः। उच्चावचानाम् = निम्नोन्नतानाम्, सानूनाम् = अद्रिनितम्बानाम्, प्रचयेन = समूहेन, सूचिताः = प्रकटीकृताः, विविधाः = अनेकाः, कन्दरा यस्य सः। चन्द्रचन्द्रिकाचारुचक्यात् = ज्योत्स्नादीप्तेः।

झिल्ली = भृङ्गारी, तस्या झङ्कारेण। रात्रावदृश्या स्वनति झिल्ली प्रावृट्काले। विलक्षणेन = विजातीयेन। अनाहतध्वनिना = अव्यक्तशब्देन, इवेन तुल्यत्वम्। वास्तविकोऽनाहतध्वनिस्तु योगिगम्य एव। परस्सहस्राणाम्, तानपूराणा यः षड्जस्वरः, तत्सोदरः = तत्तुल्यः। विशकलय्य = विविच्य। कीचकध्वनिः = वेणुविशेषशब्दः। "वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धता" इत्यमरः। समश्रावि = श्रुतः। अवदधता = ध्यानं ददता

वाली और वृक्षों के समूहों से व्याप्त थी तथा उसकी ऊँची-नीची चोटियाँ उसमें अनेक कन्दराओं के होने की सूचना देती थीं। चाँदनी की चमक में इसकी तलहटी के ऊँचे-नीचे भाग स्पष्ट दिखायी पड रहे थे।

उसके बाद, झिल्लियों की झकार के समान किसी अनाहतनाद की-सी विलक्षण ध्वनि से पृथ्वी पूर्ण हो उठी। हजारों तानपूरों के षड्ज-स्वर के समान, वनरात्रि की वह ध्वनि विचित्र थी। उसी स्वर की गम्भीरतापूर्वक विवेचना करके सुनने पर कीचक की ध्वनि भी सुनायी दी।

निकर-झंकारः,पुनरेकाग्रतामङ्गीकुर्वता समाकर्णि स्रोतस्संसरण-सर-स्कारः, तस्मिन्नपि च लयमिवाऽऽकलयता समन्वभावि समीरण-समीरित-किशलय-परिप्लवता-प्रभूत-स्वनः, तत्रापि च स्थिरतां विभ्रता प्रत्यक्षीकृतं सुधा-धारामप्यधरीकुर्वत्, वीणा-रणनमपि विगणयत्, मधु विधुरयत्, मरन्दं मन्दयन्, कल-काकली-कलन-पूजितं कोकिल-कुल-कूजितम् । ततश्च बहूनामेव मधुर-कण्ठानां

साक्षात्कारि=प्रत्यक्षीकृतः। मधुकरनिकरझङ्कारः=द्विरेफव्रातगुञ्जनम्, एकाग्रताम्=एकचित्तताम्। अङ्गीकुर्वता=स्वीकुर्वाणेन। स्रोतसाम्, संसरणस्य=वहनस्य। सवेगचलनस्येति भावः। सरत्कार=सरदित्यनुक्रियमाणःशब्दः। आकलयता=सम्मेलयता। समीरणेन=पवनेन, समीरितानाम्=सञ्चालितानाम्,किशलयानाम्=पल्लवानाम्, परिप्लवतया=स्फुरमाणतया, प्रभूत=प्रचुरः, स्वन। तत्रापि स्थिरतां विभ्रता प्रत्यक्षीकृतं कोकिलकुल-कूजितमिति सम्बन्धः। कूजितं विशिनष्टि-सुधाधारामिति। अधरीकुर्वत्=निम्नागे स्थापयत्, ततोऽपि मधुरतरमिति भावः। विगणयत्=अभिभवत्। मधु=क्षौद्रम्। विधुरयत्=तिरस्कुर्वत्। कला=मधुरा, या काकली=सूक्ष्मोऽव्यक्तध्वनि, "काकली तु कले सूक्ष्मे ध्वनौ तु मधुरास्फुट" इत्यमरः, तस्याः कलनेन=अनुरणनेन,

---

उस पर भी ध्यान देने पर भौंरों की झकार सुन पड़ी, पुनः एकाग्र होकर सुनने पर पानी के सोते के बहने की 'सर-सर' आवाज, और उसमें भी लीन हो जाने पर हवा से हिलने वाले कोमल पत्तो की मर्मर-ध्वनि सुनाई पड़ी। और अधिक स्थिर होकर ध्यान देने पर अमृत की धारा को भी नीचा दिखाने वाली, वीणा की ध्वनि का भी तिरस्कार करने वाली मधु की मिठास को लज्जित करने वाली, पुष्परस को भी अपमानित करने वाली, सुन्दर काकली से पूजित, कोयलो की कूक सुन पड़ो। उसके बाद मधुर कण्ठ वाले अनेक जंगली पक्षियों के जोर-जोर से और जल्दी-जल्दी

वन्य-पतत्रिणा स्थगित-मन्थराऽऽरावाः समाकर्णिषत । अथानुभवन् धीर-समीर-स्पर्श-सुखम्, साम्रेडमवलोकयंश्च तारकितं नभः, स्मारं स्मारं स्वगृहस्य, महाचिन्ता-पारावारे इवाह न्यमाङ्क्षम् । ततः पृष्ठतो भित्तिकामाश्रित्य, करौ कटि-प्रदेशे संस्थाप्य, साम्मुखीन-शिखरि-शिखरे चक्षुषी स्थिरयित्वा, आत्मानमपि विस्मृत्य व्यचारयं यत्—

अहह ! दुरदृष्टोऽस्मि !! धन्यावावयोः पितरौ; यौ सुखिनावेवाऽऽवां परित्यज्य दिवं सनाथितवन्तौ, न तयोरदृष्टे पुत्र-विश्लेप-दुःखं व्यलेखि धात्रा । नितान्त पापिनौ चाऽऽवाम् ; यौ बाल्य एवेदृशीपु दुरवस्थासु पतितौ । का दशा भवेत् साम्प्रतमावयोरनुजायाः

पूजितम्=सत्कृतम् । स्थगितमन्थरा.=मान्थर्यशून्याः । ताराः शीघ्राश्चेत्यर्थः । आरावा'=शब्दाः । समाकर्णिषत=श्रुताः । कर्मणि झे । तारकाः संजाता अस्मिन्निति तारकितम्=उडुगणसमेतम् । "तदस्य सजात तारकादिभ्य इतच्" । स्वगृहस्य, "अधीगर्थदयेशा कर्मणी" ति षष्ठी । महतीना चिन्ताना पारावारे=समुद्रे । न्यमाङ्क्षम्=निमग्नोऽभवम् । करयोः कटिप्रदेशे सस्थापन चिन्तामुद्रा । साम्मुखीनशिखरिशिखरे=पुरोवर्तिपर्वतशृङ्गे । आत्मानमपि विस्मृत्य, विचारैकताननताध्वननायेदम् । लोकोक्तिरेषा ।

होने वाले स्वर सुनाई दिये । तत्पश्चात् धीरे-धीरे बह रही हवा के स्पर्श के सुख का अनुभव करता हुआ, तारों भरे आकाश को बार-बार देखता हुआ और अपने घर की याद करता हुआ मैं चिन्तासागर में डूब गया । फिर दीवार से पीठ टिका कर हाथों को कमर पर रखकर, सामने वाले पर्वत की चोटी पर आँखें टिकाकर, अपने को भी भूल कर, मैं सोचने लगा,—"हाय, मैं बड़ा ही अभागा हूँ । हमारे माँ-बाप धन्य थे, जिन्होंने हम दोनों को सुखी छोडकर स्वर्गलोक को अलकृत किया । उनके भाग्य में विधाता ने पुत्र-वियोग का दुःख नहीं लिखा था । हम दोनों महापापी हैं जो बचपन में ही ऐसी दुर्दशा में पड़े हैं । इस समय हमारी बहिन

सौवर्ण्या. ? हन्त !! हतभाग्या स बालिका; या अस्मिन्नेव वयसि पितृभ्यां परित्यक्ता, आवयोरप्यदर्शनेन क्रन्दनै. कण्ठं कदर्थयति। अहह ! सततमस्मत्क्रोडैक-क्रीडनिकाम् , सततमस्मन्मुखचन्द्र-चकोरीम् , सततमस्मत्कण्ठ-रत्नमालाम् , सततमस्मत्सह-भोजिनीम् , बाल्य-लुलितैः, मधुर-मधुरैः, सुधा-स्यन्दनैः, दाद-दादेति-भाषणैः आवयोर्हृदयं हरन्तीम्. क्षणमात्रमस्मदनवलोकनेनापि बाष्प-प्रवाहैः कपोलौ मलिनयन्तीम् , कथमेनां वृद्ध पुरोहितः सान्त्वयिष्यति ? अस्मज्जनकाविशेषः पुरोहित एव वा कथं नौ विना जीविष्यति ? परमेश्वर ! तथा विधेहि; यथा जीवन्तं वृद्धं पुरोहितं सौवर्णी साक्षात्कुर्वः—

क्रन्दनैः = रोदनै. । "क्रन्दने रोदनाह्वाने" इत्यमरः । कदर्थयति = दूषयति, अस्मत्क्रोडमेवैकं क्रीडनकम् = खेलसाधनम् , "खिलौना" इति हिन्दी, यस्यास्ताम् । अस्मन्मुखचन्द्रस्य चकोरीम् , चकोरी यथा चन्द्रमसं निभालयति तथैव साऽस्मन्मुखम् । सुधास्यन्दनैः = अमृतप्रस्रवणैः, दाद-दादेति = "तात तात" इति संस्कृतम् , तदपभ्रंशः । प्राकृते ताद-तादेति । अस्माकम् , जनकाविशेष. = पितृतुल्य', नौ = आवाम् । "षष्ठी-

---

सौवर्णी की क्या हालत होगी । हाय, वह लड़की बड़ी अभागी है । इसी उम्र में उसे माँ-बाप ने छोड़ दिया और हम दोनों को भी न पाकर, रो-रोकर वह गला फाड़ रही होगी । हाय, हमारी गोद ही जिसका खिलोना थी, जो चकोरी की भाँति सदा हमारे मुँह की ओर ही देखा करती थी, जो हमारे गले की रत्नमाला है, जो सदैव हमारे साथ ही खाती थी, बचपन की सुधावर्षिणी तोतली और मधुर बोली में 'दाद ! दाद ! (तात ! तात !)' कह कर हमारा मन हरने वाली, क्षण भर भी हमें न देख पाने पर आँसुओं से गाल को गीला कर देने वाली उस सौवर्णी को वृद्ध पुरोहित सान्त्वना कैसे देंगे ? अथवा हमारे पिता के समान पुरोहित ही हम लोगों के अभाव में कैसे जी सकेंगे ? परमेश्वर ! ऐसा करो कि हम जीवित वृद्ध पुरोहित और सौवर्णी से मिल सकें ।'

इति चिन्ता-चक्रमारूढ एव आत्मनं विस्मृत्य भित्तिकासंसक्त एव शनैरस्खलम् । प्राप्तसञ्ज्ञश्च समपश्यं यत् श्यामसिंहो मन्दिर-पूजकाश्च मामुत्थापयन्ति—इति ।

अथाऽऽवां तेन साधुना मन्दिरस्यान्तर्नीतौ महावीर-मूर्ति-समीपे चोपवेशितौ ।

ततोऽवलोक्य तां वज्रेणेव निर्मिताम्, साकारामिव वीरताम्, गदामुद्यम्य दुष्ट-दल-दलनार्थमुच्छलन्तीमिव केशरि-किशोर-मूर्तिम्, न जाने कथं वा कुतो वा किमिति वा प्रातरन्धकार इव वसन्ते हिम इव बोधोदयेऽबोध इव ब्रह्मसाक्षात्कारे भ्रम इव च झटित्यपससार आवयोः शोकः । प्राकाशि च हृदये यद्—

चतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वानावौ" इत्यनेन नावादेशः, "पृथग्विनानानाभिस्तृतीयान्यतरस्याम्" इति समुच्चयाद् द्वितीया । सौवर्णीम्, चं विनाऽपि समुच्चयः, "गौरश्वः, पुरुषो हस्ती शकुनिर्मृगो ब्राह्मण इति" इति भाष्यादनुमीयते ।

भित्तिकासंसक्त एव=कुड्यसंलग्न एव । शनैः=मन्दं, अस्खलम्=अपतम् । प्राप्तसंज्ञः=प्राप्तचेतनः ।

वज्रेण=इन्द्रायुधेन । साकाराम्=शरीरधारिणीम् । केशरि-किशो-

इस प्रकार चिन्ताग्रस्त होकर मैं अपने को भी भूल गया और दीवार से टिका हुआ लुढ़क गया । होश में आने पर मैंने देखा कि श्यामसिंह और मन्दिर के पुजारी मुझे उठा रहे हैं ।

उसके बाद वह साधु हम दोनों को मन्दिर के अन्दर ले गया और हमें महावीर की मूर्ति के पास ही बिठा दिया ।

तदनन्तर, वज्र से बनी हुई-सी, साकार-वीरता-सी, गदा उठा कर दुष्टों के संहार के लिए उछल-सी रही उस हनुमान की मूर्ति को देखकर, न जाने कैसे, प्रातःकाल के समय अन्धकार की तरह, वसन्त ऋतु में हिम की तरह, ज्ञान हो जाने पर अज्ञान की तरह और ब्रह्मसाक्षात्कार हो जाने पर भ्रम की तरह, हमारा शोक दूर हो गया, और हमारे हृदय में इस प्रकार के भाव उठे कि—

"अलं बहुना चिन्ताभिः ! कश्चन पुरुषार्थः स्वीक्रियताम्, न खलु बुद्धयतां यदावामेव दुरदृष्टवशात् त्यक्त-कुटुम्बौ वने पर्य्यटावः-इति, किन्तु कोशलेश्वरतनयौ राम-लक्ष्मणावपि चतुर्दशवर्षाणि यावद् दण्डकारण्ये भ्रान्तवन्तौ ।"

ततः साधोश्चरणयोः प्रणम्य मयोक्तम्-भगवन् ! नास्त्यविदितं किमपि भवादृशानां सदाचार-दृढव्रतिनाम् । तत्कथ्यतां किमावां करवाव ? कुतो गच्छाव ? कथमावयोः श्रेयः-सम्पत्तिः स्याद् ? इति ।

ततो हनुमत्पूजकेन सर्वमस्मद्वृत्तान्तं पृष्ट्वा ज्ञात्वा च काष्ठपट्टिकायां घृतोन्मथित-सिन्दूरेण किमपि यन्त्रमिवोल्लिख्य, चन्दनैः

रस्य = केशरितनयस्य, मूर्तिम्, हनूमत्प्रतिमाम् । झटित्यपससार शोकः, इदमेव मूर्तिपूजारहस्यम् । हनुमद्दर्शनेन रामलक्ष्मणस्मरणं तयोश्च स्मरणेन तद्वनवासादीनाम् । प्राकाशि=स्फुरितम् ।

श्रेयःसम्पत्तिः=कल्याणावाप्तिः । काष्ठपट्टिकायाम् = दारु-फलके । "काठ की पटरी" इति हिन्दी ।

घृतेन=सर्पिषा, उन्मथितम्=मेलितम्, सिन्दूरं तेन । "महावीरी"

'अब अधिक चिन्ता न करके कोई पुरुषार्थ स्वीकार करो । यह मत सोचो कि हम ही दुर्भाग्य वश घर-बार छोड़ कर जंगलों में भटक रहे हैं, दशरथ के पुत्र रामलक्ष्मण भी चौदह वर्ष तक दण्डक वन में भटकते फिरे थे ।'

उसके बाद उस साधु के चरणों में प्रणाम कर मैंने कहा 'भगवन् ! सदाचार व्रत का दृढ़ता से पालन करने वाले आप जैसे महापुरुषों से कुछ भी छिपा नहीं है, अतः बताइये कि हम दोनों अब क्या करें ? कहाँ जायँ ? हमारा कल्याण कैसे होगा ?'

इसके बाद उस पुजारी ने हमारा सारा वृत्तान्त पूछ कर तथा जान कर, लकड़ी की पटरी पर घृतमिश्रित सिन्दूर (महावीरी) से एक यन्त्र-

संचर्च्य, कुसुमैराकीर्य, धूपेन धूपयित्वा, किमपि क्षणं ध्यात्वेव च मम हस्ते पूगीफलमेकं दत्त्वा, "वत्स ! अस्मिन् यन्त्रे कस्मिन्नपि कोष्ठे यथारुचि क्रमुकफलमिदं स्थापय" इत्यवाचि । तत एकतमे कोष्ठे निहित-क्रमुके मयि मुहूर्तम् अङ्गुलिपर्वसु किमपि गणयित्वेव स मामवादीत्—

वत्स ! कदाऽपि मा स्म गमो गृहं प्रति, यतो मार्गे पर्वततटीषु अरण्यानीषु च बहवः काम्बोजीया यवन-दस्यवो भवतोर्ग्रहणाय विचरन्ति । दस्युभिः क्रियासमभिहारेण चङ्क्रम्यमाणं देशमवलोक्य भवद्ग्रामवासिनः सर्वेऽपि स्वं स्वमालयं परित्यज्य इतस्ततो गताः ।

ततः 'सौवर्णि ! सौवर्णि ! पुरोहित ! पुरोहित !' इति सक्षोभं व्याहृतवतोरावयोः पुनः स साधुरवोचत्, यत्—

इति हिन्दी । प्रश्नप्रथेयम् । अङ्गुलिपर्वसु=हस्ताङ्गुलिग्रन्थिषु ।
मास्म गमः=मा याहि । अरण्यानीषु=महारण्येषु ।

सा बना कर, चन्दन, पुष्प और धूप से उसकी पूजा कर, क्षण भर कुछ ध्यान-सा करके मेरे हाथ में एक सुपारी देकर कहा, 'वत्स ! इस सुपारी को अपनी इच्छानुसार इस यन्त्र के किसी कोष्ठ में रख दो !' इसके बाद मेरे एक कोष्ठ में सुपारी रख देने पर, क्षण भर उँगुलियों के पोरों पर कुछ गिनता हुआ-सा वह मुझसे बोला—

'वत्स ! घर की ओर कदापि न जाना, क्योंकि रास्ते में पर्वतों की घाटियों और जङ्गलों में बहुत-से कम्बोज देश के यवन लुटेरे तुम्हें पकड़ने के लिए घूम रहे हैं । दस्युओं द्वारा स्वदेश पर निरन्तर आक्रमण होता देख तुम्हारे गाँव के सभी निवासी अपना-अपना घर छोड़कर इधर-उधर चले गये हैं ।'

इसके बाद हम दोनों के क्षुब्ध होकर, 'सौवर्णी ! सौवर्णी ! पुरोहित ! पुरोहित !' यह कह उठने पर वह साधु फिर बोला—

पुरोहितोऽपि युष्मद्रत्नादिनिधिं कचन संकेतित-भूमि-कुहरे स्थापयित्वा, एकां धात्रीं दास-चतुष्टयमेकं चाश्वं सह नीत्वा महाराष्ट्र-पञ्चानन-परिपूरितां कोङ्कणभूमिं प्रति प्रस्थितः ।

तदाकलय्य, "सत्यं सत्यमेवमेवम्" इति समस्तकान्दोलनं स्वीकृतवति पुरोहिते; 'ततस्ततः' इति मुखरीभूतेषु च कुटीरस्थ-सकल-जनेषु, भूयस्तदुक्तिं व्याजहार गौरसिंहो यद्—

न शोचनीयं भवद्भ्यां किमपि तयोर्विषये, गन्तव्यं च तस्मिन्नेव शिववीराधिष्ठिते गिरि-गरिष्ठे कोङ्कणदेशे । कियत्समयानन्तरं तत्रैव भगिन्या पुरोहितेन च सह साक्षात्कारोऽपि भविष्यतीति प्रावोचत् ।

सङ्केतितभूमेः कुहरे=विवरे । "कुहरं गह्वरं छिद्रे क्लीबं नागान्तरे पुमानि" ति कोषः । धात्रीम् = उपमातरम् । "धात्री स्यादुपमाताऽपि क्षितिरप्यामलक्यपी" त्यमरः । महाराष्ट्रा एव पञ्चाननाः = सिंहाः, तैः परिपूरिताम्=भरिताम् ।

तदुक्तिम्=हनूमत्पूजकोक्तिम् । अतिशयेन गुरुर्गरिष्ठः, गिरिभिर्गरिष्ठस्तस्मिन् ।

पुरोहित भी तुम्हारी रत्नादिक निधि को किसी संकेतित स्थान पर गाड़ कर, एक धाय, चार दास और एक घोडा साथ लेकर महाराष्ट्र-केसरी शिवाजी के कोंकण-प्रदेश की ओर चले गये हैं ।'

यह सुनकर, पुरोहित के सिर हिलाकर 'सच है, ऐसा ही है' कह कर स्वीकार करने और कुटी के सभी लोगों के 'फिर क्या हुआ' यह पूछने पर गौरसिंह उस पुजारी के कथन को पुनः कहने लगे—

"आप दोनों को उन दोनों के विषय में कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये और शिवाजी से रक्षित पर्वतबहुल कोंकणप्रदेश को चला जाना चाहिये । कुछ समय बाद अपनी बहिन और पुरोहित से तुम्हारा साक्षात्कार होगा, ऐसा उस पुजारी ने कहा ।"

ततस्तु भ्रमर-झङ्कारेणेव "अहो ! अहो ! आश्चर्यमाश्चर्यम्, धन्यो मन्त्राणां प्रभाव, धन्यमिष्टबलम्, चित्रा धर्मनिष्ठा, अवितर्क्यस्तप प्रताप, विलक्षणा नैष्ठिकी वृत्तिः" इति मन्द्र-स्वर-मेदुरेण श्रोतृजन-वचन-कलापेन झंकृते तस्मिन् निकुञ्जे, "ततः कथं प्रचलितौ ? कथमत्राऽऽयातौ ? का घटना घटिता ? क उपाय. कृत ? किमाचरितम् ?" इति कुतूहल-परवशे विस्फारितनयने उद्ग्रीवे समनुकूलितकर्णे विस्मृतान्यकथे कृतावधाने च परिकरवर्गे श्याम-सिंहस्याङ्के दत्तदृष्टिसौवर्णीं तदङ्के सस्थाप्य, पातितोभयजानु समुपविश्य, राजत-राजिका इव कपोलयोरुत्तरोष्ठे च समुद्भूताः

अहो ! अहो, "ओत्" इति प्रगृह्यसंज्ञा ततश्च प्रकृतिभाव. । कुतूहलपरवशे=कौतुकाधीने, विस्फारितनयने=विकासितनेत्रे । शुश्रूषातिरेकाद्दि सर्वम् । उद्ग्रीवे=उत्थितकण्ठे । समनुकूलितकर्णे=अभिमुखीकृतश्रोत्रे, विस्मृतान्यकथे=त्यक्तान्यप्रसङ्गे । पातितोभयजानु, क्रियाविशेषणम् । राजतराजिका इव=रौप्यकणिका इव ।

तदनन्तर, भौंरों की गूँज के समान, 'अहो ! अहो ! आश्चर्य ! महान् आश्चर्य ! धन्य है मन्त्रों का प्रभाव और धन्य है इष्टदेव की शक्ति ! धर्मनिष्ठा कितनी आश्चर्यजनक है ! तप का प्रताप कितना अवितर्क्य है ! ब्रह्मचर्य वृत्ति कितनी विलक्षण है !' श्रोताओं द्वारा मन्द्र स्वर में कहे गये इन वाक्यों से उस निकुञ्ज के गूँज उठने और फिर 'आप दोनों कैसे चले ? यहाँ कैसे आये ? कौन सी घटना घटी ? क्या उपाय किया ? क्या किया ?' यह जानने को उत्सुक होकर पास में बैठे सभी लोगों के आँखें फाड़ कर, गर्दन ऊँची करके, कान लगा कर, अन्य सारी बातें भूल कर सावधान हो जाने पर, श्यामसिंह की गोद की ओर देख रही सौवर्णी को उसकी गोद में बिठाकर, घुटनों के बल बैठकर, दोनों गालों और ओष्ठ के ऊपर की चाँदी के कणों के समान पसीने की बूँदों

स्वेदकणिका उत्तरीय-प्रान्तेन परिमृज्य पुनरात्म-वृत्तान्तं वक्तुं प्रारभत गौरसिंहो यद्—

अथ "भगवन् ! श्रूयते सुदूरमस्मात्स्थानात् कोङ्कणदेशः, मध्ये च विकटा अटव्यः, शतशः शैल-श्रेणयः, त्वरितधारा धुन्य , पदे पदे च भयानक-भल्लूकानामम्बूकृत-सङ्कुलानाम्, मुस्ता-मूलोत्खनन-घुर्घुरायित-घोर-घोणानां घोणिनाम्, पङ्क-परीवर्त्तोन्मथित-कासाराणां कासराणाम्, नरमांसं बुभुक्षूणां तरक्षूणाम्, विकट-करटि-

---

त्वरिता=द्रुतगामिनी, धारा=प्रवाहो यासां ताः। धुन्यः=नद्यः। भयानकानाम्=भीतिजनकानाम्, भल्लूकानाम्=ऋक्षाणाम्। अम्बूकृतैः=निष्ठीवसहितशब्दैः, "अम्बूकृत सनिष्ठीवमि" त्यमरः, सङ्कुलानाम्=व्याप्तानाम्। सर्वथा साक्षात्कारसम्भव इत्यनेनान्वयः। एवमितरषष्ठ्यन्तानामपि। मुस्तामूलोत्खनने=कुरुविन्दमूलोत्पाटने, घुर्घुरायिता घोणा=नासा, येषां तेषाम्। "कुरुविन्दो मेघनामा मुस्ता मुस्तकमस्त्रियामि" त्यमरः, घोणिनाम्=शूकराणाम्। पङ्कपरीवर्त्तेन=कीचोल्लुलनेन, उन्मथिताः=विलोडिताः, कासाराः=सरांसि, "कासारः सरसी सर" इत्यमरः, यैस्तेषाम्। कासराणाम्=महिषाणाम्। "लुलायो महिषो वाहद्विषत्कासरसैरिभा" इत्यमरः। नरमांसम्, बुभुक्षूणाम्=खादितुमिच्छूनाम्। "न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनामि" ति षष्ठीनिषेधः।

को उत्तरीय के छोर से पोंछ कर, गौरसिंह ने पुनः अपना वृत्तान्त कहना प्रारम्भ किया कि—

"भगवन् ! सुनते हैं कोंकण देश यहाँ से बहुत दूर है. बीच-बीच में भयानक जंगल हैं, सैकड़ों पहाड़ियाँ हैं, तीव्र वेग से बहने वाली नदियाँ हैं और पद-पद पर थूकने के साथ शब्द करने वाले भयंकर भालुओं, मोथे की जड़ खोदने में अपनी भयंकर नाक से घुर्र-घुर्र शब्द करने वाले जंगली सूअरों, कीचड़ में लोट-पोट कर तालाब को गन्दा करने वाले वनैले भैंसों, नरमांस खाने के इच्छुक चीतों, भयंकर हाथियों

कट-विपाटन-पाटव-पूरित-सहननानां सिंहानाम्, नासाग्र-विषाण-शाणन-च्छल-विहित-गण्डशैल-खण्डानां खड्गिनाम्, दोदुल्यमान-द्विरेफ-दल-पेपीयमान-दानधारा-धुरन्धराणां सिन्धुराणाम्, कृपा-कृपण-कृपाण-च्छिन्न-दीनाद्ध्नीन-गल-तल-गलत्पीन-धार-शोणित-बिन्दु-वृन्द-रञ्जित-वारबाण-सारसनोष्णीष-धारणा-कलिताखर्व-गर्व-बर्बराणां लुण्ठक-निकराणां च सर्वथा साक्षा-

---

तरक्षूणाम्, "स्यात्तरक्षुस्तु मृगादन" इत्यमरः। "चीता" इति हिन्दी। विकटा=उद्दामानः, करटिनः=हस्तिनः, तेषां कटः=गण्डः तस्य यत् विपाटनम्=विदारणम् तत्र यत् पाटवम्=कौशलम्, तेन पूरितं संहननम्=अङ्गं येषां तेषाम्। नासाग्रे=घोणाग्रे, विद्यमानस्य विषाणस्य=शृङ्गस्य, शाणनच्छलेन=तेजनव्याजेन, विहिता गण्ड-शैलखण्डा यैस्तेषाम्। खड्गिनाम्=गण्डकानाम्। "गैंडा" इति हिन्दी। दोदुल्यमानानाम्=अतिशयेन पुनः पुनर्वा समुत्पतताम्, "दुल उत्क्षेप" इत्यस्य रूपम्, द्विरेफाणां दलेन पेपीयमानया=पुनः पुनरास्वाद्यमानया, दानधारया=मदपङ्क्त्या, धुरन्धराणाम्=अग्रेसराणाम्। सिन्धुराणाम्=गजानाम्। "इभो मतङ्गजो हस्ती सामजः सिन्धुरः कपिरि"ति वैजयन्ती। कृपाकृपणैः=दयादरिद्रैः, कृपाणैः=असिभिः, छिन्नेभ्यः=कृत्तेभ्यः, गलतलविशेषणम्। दीनानाम् अध्वनीनानाम्=पथिकानाम्, गलतलेभ्यः=कण्ठस्थानेभ्यः गलत्पीनधारस्य=निपतत्स्थूलप्रवाहस्य शोणितस्य, बिन्दुवृन्देन=पृषतसमूहेन, रञ्जितानाम्, वारबाण-सारसनो-

---

के गण्डस्थलों को विदीर्ण करने की कुशलता से पूर्ण शरीर वाले सिंहों, अपनी नाक पर की सींग को तीखी करने के बहाने पर्वतों के टुकडे-टुकडे कर डालने वाले गैंडों, बार-बार उडने वाले भ्रमर-समूह द्वारा पान की जाने वाली मदधारा वाले हाथियों और निर्दय तलवार से कटे दीन-हीन पथिकों के गले से बहने वाली मोटी धारा के रक्तबिन्दुओं से रँगे कञ्चुक, मेखला और शिरस्त्राण धारण कर अत्यधिक अभिमान करने वाले

त्कार-सम्भवः। वालावावाम्, अविज्ञातोऽध्वा, भोग-समयो दुर्ग्रहाणाम्, अश्वावेव सहायौ, जन-पद-शून्यमेतत् प्रान्तरम्, तत्कथं गच्छेव ? कथं धैर्यं धारयेव ? कथं वा कोङ्कणदेशं प्राप्स्याव इति विश्रमेव ?" इति सचिन्तं विनिवेदितवति मयि; स साधुरावयोः पृष्ठे हस्तं विन्यस्य—

"हनूमान् सर्वं साधयिष्यति, मास्म चिन्ता-सन्तान-वितानैरात्मानं दुःखाकुरुतम्। यथा सरलेनोपायेन कोङ्कणदेशं प्राप्स्यथस्तथा प्रभाते निर्देक्ष्यामि। साम्प्रतमित आगम्यताम्, पीयतामिदमेला-गोस्तनी-केसर-शर्करा-सम्पर्क-सुधा-विस्पर्द्धि महिषी-दुग्धम्, दासा इमे पाद-संवाहनैस्तैल-सम्मर्दैर्व्यजन-चालनैश्च भवन्तौ

णोपाणाम्=कञ्चुक-मेखला-शिरस्त्राणानाम् धारणेन, आकलितः=आहितः, अखर्वः=विपुलः, गर्वः=अहङ्कारः, यैस्ते च ते वर्वराः=मूर्खाः, तेषाम्, दुर्ग्रहाणाम्=दुष्टखेचराणाम्।

मास्मेत्यत्र न माङ्, अपितु निषेधार्थको मेति निपातः। अत एव न लुङ्, दुःखाकुरुतम्=दुखिन विधत्तम्। "सुखप्रियादानुलोम्ये" इत्यत्रत्यवार्तिकात् "दुःखाच्चेति वक्तव्यमि" ति डाच्। एला=चन्द्रबाला,

---

वर्वर लुटेरों के समूहों का मिल जाना एकदम सम्भव है। हम दोनों अभी बच्चे ही हैं, रास्ता भी अनजाना है, बुरे ग्रहों के भोग का समय चल रहा है, हमारे सहायक केवल घोड़े ही हैं, इस ओर कोई बस्ती भी नहीं है, फिर हम कैसे जायँ ? कैसे धैर्य धारण करें ? कोंकण देश पहुँच ही जायँगे, यह, विश्वास कैसे करें ?" मेरे इस प्रकार चिन्तापूर्वक, निवेदन करने पर उस साधु ने हम दोनों की पीठ पर हाथ रख कर सान्त्वना देते हुए कहा—

"हनुमान जी सब पूरा करेंगे, चिंता कर के अपने को दुःखी न बनाओ। जिस सरल उपाय से तुम कोंकण देश पहुँच सकोगे वह सवेरे बताऊँगा। इस समय इधर आओ और इलायची, दाख, केसर और

विगतक्लमौ विधास्यन्ति। न किमपि भयमधुना वां हनूमतश्चरणयोः शरणमायातयो। सुखेन सुप्यताम्। असंशयमेव प्रातरेव हनूमत्पूजन-समये सर्वं कार्यं सेत्स्यति"—इति समाश्वासयत्।

आवां च तन्निर्दिष्टेनैव सोपानेन अट्टालिकामारुह्य एकस्मिन् गृहे प्रविष्टौ, तत्र च राजकुमार योग्या पर्यङ्कादि-सामग्रीमवलोक्य नितान्त-चकितौ प्रसन्नौ च अभूव। अथ भूयस्तत्प्रदत्तं मोदकादि किञ्चिद् भुक्त्वा, पयः पीत्वा, ताम्बूलं चर्वयन्तौ, दासैः पादयोः पीड्यमानौ, व्यजनैर्वीज्यमानौ, स्वभाग्योदय-सोपानं साधोः साधुता मनस्येव प्रशसमानावेव चाशयिष्वहि। अयं चिरकाला-

गोस्तनी=द्राक्षा, केसरम्=काश्मीरजम्, शर्करा=सिता, एतासां सम्पर्केण=सम्मेलनेन सुधाविस्पर्धि=अमृततुल्यम्, प्रतियोगिताकरम्, सदृशमिति यावत्। समाश्वासयत्=धैर्यमापादयत्।

स्वभाग्योदयस्य=स्वदिष्टप्रादुर्भावस्य, सोपानम्=अधिरोहिणी। "सीढ़ी" इति हिन्दी। नित्यक्लीबम्। अतएव नित्यस्त्रीलिङ्ग-साधुता-शब्दविशेषणत्वेऽपि न तल्लिङ्गता। अशयिष्वहि=अस्वाप्स्व।

शक्कर मिला हुआ, अमृत के समान भैंस का दूध पियो। ये दास पैर दाब कर, तेल मल कर और पंखा झलकर तुम्हारी थकान दूर कर देंगे। हनुमान् की शरण में आये हुये तुम दोनों को अब कोई भय नहीं है। सुखपूर्वक सोओ। प्रातःकाल होते ही हनुमत्पूजन के समय तुम्हारा सारा कार्य निश्चय ही सिद्ध हो जायगा।"

हम दोनों उसी साधु द्वारा निर्दिष्ट सीढियों से अट्टालिका पर चढ कर एक घर में प्रविष्ट हुए और वहाँ राजकुमारों के योग्य पलग आदि सामग्री देखकर अत्यधिक चकित और प्रसन्न हुए। उसके बाद पुजारीजी के ही द्वारा दिये गये लड्डू आदि खा कर और दूध पीकर पान खाया। दास पैर दबाने और पंखा झलने लगे, और हम अपने भाग्योदय की सीढ़ी तथा उस पुजारी की सज्जनता की मन-ही-मन प्रशंसा करते हुए सो गये।

नन्तरमावाभ्यां निःशङ्क-शयन-समयो लब्ध., इत्येकयैवाऽऽनन्दमय्या वितर्क-विचारादि-सम्पर्क-शून्यया असम्प्रज्ञात-समाधि-सोदरयेव निद्रया समस्तां रजनीमजीगमाव ।

ततः केनापि घमद्घमद्ध्वनिनेव बोधितौ, दक्षतो वामतश्च

आनन्दमय्या = आनन्दसंवलितया । गाढनिद्रायामानन्दानुभवाभावेऽपि समुत्थितौ "सुखमहस्वाप्सम्" इति समुल्लेखेन वृत्त्यन्तरशून्यायामेव तस्यामानन्दमयत्वं कल्प्यते । असंप्रज्ञातयोगस्य तु भूमानन्दमयता स्पष्टा योगशास्त्रे । वितर्क=विविध ऊहः, विचारः=कर्त्तव्याकर्त्तव्यत्वविवेकः, आदिना=कामादिः, तेषां सम्पर्केण = संसर्गेण, शून्यया = विरहितया । निद्रयेति विशेष्यम् । उत्प्रेक्षते—असम्प्रज्ञातसमाधिसोदरयेव । "वितर्कविचारानन्दास्मितानुगमात्संप्रज्ञातः" इति योगसूत्रानुसारेण वितर्कादिचतुष्टयविशिष्टः संप्रज्ञातः, इतरथा तु "विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः" इति सूत्रानुसारेणासम्प्रज्ञात इत्यसंप्रज्ञाते वितर्कादिसम्पर्कशून्यता । सूत्रे वितर्कादीनां प्रत्येकमनुगमेऽन्वयः । तथा च सवितर्क-सविचार-सानन्द-सास्मिताभिधभेदचतुष्टयसहितः, संप्रज्ञायते=सम्यग् ज्ञायते यस्मिन् स इति विग्रहार्थकः संप्रज्ञातः । विरामप्रत्ययस्य = वृत्त्युपरमकारणकस्य, अभ्यासः पौनःपुन्येन सम्पादनम्, तत्पूर्वः=तत्कारणकः संस्कारमात्रावशिष्टोऽसम्प्रज्ञात इति द्वितीयसूत्रार्थः । तदुक्तम्—

मनसो वृत्तिशून्यस्य ब्रह्माकारतया स्थितिः ।
असंप्रज्ञातनामाऽसौ समाधिरभिधीयते ॥ इति ।

अजीगमाव=अयापयाव ।

बहुत दिनों के बाद निश्चिन्त होकर सोने का अवसर मिला था अतः हमने वितर्क-विचार आदि रहित, आनन्दमयी असम्प्रज्ञात समाधि के समान एक ही नींद में रात बिता दी ।

उसके बाद किसी के धम-धम आवाज करने से जग कर, दायें-बायें

परिवृत्य, चक्षुषी परिमृज्य, साङ्गुलि-ग्रथन हस्त-प्रसारणं सस्नायु-पीडनं च विजृम्भ्य, भूमिं प्रणम्य, पर्यङ्कादुत्तीर्य, कोष्ठाद् वहिरागत्य, साञ्जलि मारुति-ध्वजमवलोक्य, करतले निरीक्ष्य, भित्तिकावलम्बित-मुकुरेष्वात्मानं साक्षात्कृत्य, भगवन्नामानि जपन्तौ, कांश्चित्प्रात स्मरण-श्लोकांश्च रटन्तौ, परस्परं "सुखमाथामस्वाप्स्व, प्रसन्नं नौ चेतः" इति शनैरालपन्तौ च, तस्मिन्नेव मन्दिरस्योर्ध्वे खण्डे शतपदीमकरवाव। तावदश्रूयत स एव वहुलीभूतो ध्वनिः। ततो

परिवृत्य=परिवर्त्तन कृत्वा। स्वभावोक्तिः। साङ्गुलिग्रथनहस्त-प्रसारणम्, करयोरङ्गुलीः परस्परं सयोज्य हस्तौ प्रसारयन्ति त्यक्तनिद्रा जना इति स्वभावः। विजृम्भ्य='जँभाई लेकर' इति भाषायाम्।

भूमिं प्रणम्य,

समुद्रवसने। चोर्वि। पर्वतस्तनमण्डले।।
विष्णुपत्नि। नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ॥

इति नैत्यिकविधानम्। भूमेर्मातृत्वकल्पनाया प्रातरेव स्मारिताया तद्दुःखप्रातवारणायोत्सुका भवेयुर्लोका इति तत्प्रचारकाणा सुमनीषा। कोष्ठम्='कोठरी' इति हिन्दी। करतले निरीक्ष्य, प्रभाते करतलदर्शनं श्रेयस्करमिति धर्मशास्त्रानुशासनम्। शत पदानि शतपदी=भ्रमणम्।

करवट लेकर, आँखें मलकर, अँगुलियों को गूँथ कर, हाथों को फैलाते हुए तथा स्नायुओं को तानते हुए जँभाई लेकर, भूमि को प्रणाम कर, पलँग से उतर कर, कमरे से बाहर आकर, हाथ जोड कर, हनुमानजी के झडे की ओर देखकर, हथेलियाँ देखकर, दीवारों में लगे शीशों में अपना प्रतिबिम्ब देखकर, भगवान् के नाम का जप करते हुए, प्रातःस्मरण के कुछ श्लोकों को दुहराते हुए और एक-दूसरे से 'हम सुख से सोये, चित्त प्रसन्न है' इस प्रकार वातचीत करते हुए हम मन्दिर के ऊपर वाले खण्ड में ही टहलने लगे। तब तक वही आवाज जोरों से सुनाई पडने लगी।

गवाक्षतो निकुञ्जीभूय दृष्टं यत् पञ्चपाः साधवो वस्त्र-वेष्टित-मस्तकाः समीप-स्थापित-जलपूर्ण-पात्राः पाषाण-खण्डैर्दन्तधावन-मुखं मृदूकरणाय कुट्टन्ति। अवलोकितं च यदस्मिन्नपि समये शर्वरी-तमांसि नाम्बरं साकल्येन जहति। स्वच्छाऽपि प्राची नाधुनाऽप्यरुणिमानमङ्गीकरोति। विराव-बहुलान्यपि वयांसि न सम्प्रत्यपि विहाय नीडाधिष्ठान-कुटानुड्डीयन्ते। गिरि-ग्रामटिका-गृहेभ्यो व्यावर्तमाना अपि विटपिनो न स्वफल-पुष्प-पत्राऽऽकार-परिचय-प्रदानैर्जातीः प्रकटयन्ति। उत्तरोत्तरतरस्तार-तार-तरै रुतै रतार्त्तिमीरयन्त्यपि तरुण-

"भुक्त्वा शतपदं गच्छेदि" त्यत्रापि तदेव तात्पर्यम्। पञ्च वा षड् वा पञ्चपा, "संख्ययाव्ययासन्नादूराधिकसख्याः संख्येये" इति बहुव्रीहिः। समासान्तोऽच्।

शर्वरीतमांसि=रात्र्यन्धकाराः। अम्बरम्=नभः कर्म, जहति=त्यजन्ति। अरुणिमानम्=लौहित्यम्। नीडस्य=कुलायस्य, अधिष्ठानानि=निवासभूमिता गतानि च ते कुटाः=वृक्षाः तान्। "अनोकहः कुटः शाल" इत्यमरः। व्यावर्त्तमानाः=भिन्नत्वेन प्रतीयमानाः। जातेर्व्यावर्त्तकत्वं स्वभावः। सम्यक् प्रकाशाभावात्। उत्तरोत्तरः=अधिकाधिकम्। तारतारतरैः=अत्युच्चैः। रुतैः=आरावैः। रतार्त्तिम्=कामपीडाम्। ईरयन्ती=कथयन्ती, तरुणतित्तिरी=युवक-तित्ति

मैंने झुककर झरोखों से देखा कि सिर में कपड़ा लपेटे और पास में पानी से भरा घड़ा रखे, पाँच-छः साधु, दातून के अग्रभाग (मुख) को मुलायम बनाने के लिए पत्थर के टुकड़ों से कूट रहे हैं। हमने देखा कि अभी रात के अँधेरे ने आकाश को पूरी तरह नहीं छोड़ा है। पूर्वदिशा स्वच्छ होती हुई भी अभी लाल नहीं हुई है, पक्षी कलरव तो बहुत कर रहे हैं, पर अभी अपने घोसलों वाले वृक्षों को छोड़कर उड़ नहीं रहे हैं, वृक्ष पहाड़ियों, गाँवों और घरों से भिन्न तो दिखाई देने लगे हैं, पर अभी अपने फल फूल और पत्तों के आकार के परिचय से अपनी जाति नहीं

तित्तिरी न तरोरवतरति । आलोकाऽऽलोक-कृत-किञ्चिच्छोकमोकोऽपि च कोको न वराकीं कोकीमुपसर्पति ।

अथेदृशीमेव मनोहारिणीं शोभामवलोकयन्तौ कम्पित-कुन्द-कलापस्य, उन्मीलन्मालती-मुकुल-मकरन्द-चौरस्य पाटलि-पटल-पराग-पुञ्ज-पिञ्जरितस्य शनैः शनैः फरफरायमाण-शुक-पिकादि-पतत्रोन्मथ्यमानस्य पलाशि-पलाशाग्र-विलुलत्तुषार-कणिकापहरण-

---

रिवधूः । स्वभावोक्तिः, अनुप्रासः । अलोकस्य=प्रकाशस्य, आलोकेन=विलोकनेन, कृतः=उत्पन्नः, कस्यचित् शोकस्य मोको यस्य सः । कोकः=चक्रवाकः, वराकीम्=दुःखिनीम् । 'बेचारी' इति हिन्दी ।

अथ समीरस्य स्पर्शसुखमनुभवन्तौ पर्यटन्तौ मुहूर्त्तमयापयावेति सम्बन्धः । समीर विशिनष्टि-कम्पितः=दोलितः, कुन्दकलापः=माध्यसमूहो येन तस्य । उन्मीलन्तीनाम्=विकाशमभ्यागच्छन्तीनाम्, मालतीनाम्=जातीनाम्, मुकुलानाम्=कलिकानाम्, मकरन्दस्य=पुष्परसस्य, चौरस्य=अपहर्तुः । पाटलिः="गुलाब" इति ख्यातः, तत्पटलस्य=तत्समूहस्य, परागपुञ्जेन=धूलिव्रजेन, पिञ्जरितस्य=पीतवर्णस्य । फरफरायमाणानाम्=पक्षास्फोटनं कुर्वताम्, शुकपिकादीनां पतत्रैः=पक्षैः उन्मथ्यमानस्य=विलोड्यमानस्य । वृद्धिं गमितस्येति यावत् । पलाशिपलाशाग्रेषु=वृक्षपत्राग्रेषु, विलुलताम्=विलुठताम्, तुषारा-

---

प्रकट कर रहे हैं, तरुण तित्तिरी उत्तरोत्तर उच्च और अधिक उच्च स्वर से बोल कर अपनी काम-पीडा का प्रकाशन तो कर रही है, पर अभी पेड से नहीं उतर रही हैं, और चकवा पक्षी ने प्रकाश देखकर कुछ शोक तो कम कर दिया है, फिर भी अभी बेचारी चकवी के पास नहीं जा रहा है।

तत्पश्चात्, इसी प्रकार की मनोहर शोभा देखते हुए, कुन्द पुष्पों को कँपा देने वाले, खिल रही मालती की कलियों के मकरन्द को चुराने वाले, गुलाबों के पराग से पीले हो गए, धीरे-धीरे पंख फड़फड़ा रहे शुक-पिक आदि पक्षियों से उन्मथित किये गये, और वृक्षों के पत्तों के

शीतलस्य समीरस्य स्पर्शसुखमनुभवन्तौ, तत्रैव पूर्वस्या अट्टालिकाया दक्षिणस्याम्, दक्षिणस्याश्च पश्चिमायाम्, पश्चिमाया अप्युत्तरस्याम्, ततश्च पुनः पूर्वस्यामिति पौनःपुन्येन पर्यटन्तौ मुहूर्त्तमयामयाव।

तस्मिन्नेव समये एकेन ब्रह्मचारिबटुनाऽऽगत्य निवेदितं, यत् "सपदि प्रभात-क्रिया निर्वहणीयेत्यादिशति तत्रभवान् साधु-शिरोमणिः" तदाकर्ण्य, बाढमित्यङ्गीकृत्य, षष्टिसहस्र-वालखिल्य-काषाय-वसन-विधूतायामिव, मन्देह-देह-शोणित-शोणितायामिव, अरुणा-

---

णाम्=अवश्यानाम्, कणिकानाम्=बिन्दूनाम्, अपहरणेन शीतलस्य। अयापयाव=अगमयाव।

प्राभातकालिकीं प्राचीं विशिनष्टि—षष्टिसहस्रस्य=तादृशसंख्यापरिमितानाम्, वालखिल्यानाम्=तदाख्यऋषिविशेषाणाम्, कषायैः=कषाय-राग-रक्तैः, वसनैः=वस्त्रैः, विधूतायामिव=उत्कम्पितायामिवेत्युत्प्रेक्षा। मन्देहानाम्=राक्षसविशेषाणाम्, देहस्य, शोणितेन शोणितायामिव=रक्तीकृतायामिव। स्वाभाविक शोणत्वं मन्देह-देह-शोणित-सम्पर्कजातत्वेनोत्प्रेक्षितम्। सायंकाले प्रत्यहं मरणं शरीराणामक्षयत्वञ्चेति विधिशाप-यन्त्रिता मन्देहाभिधा राक्षसाः सूर्यं खादितुमिच्छन्ति, तैश्च संग्राम करोति

अग्रभाग पर हिलती हुई ओस की बूँदों को ग्रहण कर शीतल हुए समीर के स्पर्श के सुख का अनुभव करते हुए हम दोनों ने वहीं उस अट्टालिका के पूर्व से दक्षिण, दक्षिण से पश्चिम, पश्चिम से उत्तर और उत्तर से पुनः पूर्व की ओर बार-बार टहलते हुए थोड़ा समय बिताया।

इसी समय एक ब्रह्मचारी बालक ने आकर कहा कि 'पूज्य साधुशिरोमणि की आज्ञा है कि आप प्रातःकृत्य से शीघ्र ही निवृत्त हो जायें।' यह सुनकर 'बहुत अच्छा' कह कर उसे स्वीकार कर साठ हजार वालखिल्यों के कषाय वस्त्रों से उत्कम्पित-सी मन्देह राक्षसों के शरीर के रक्त

रुणिम-रञ्जितायामिव, मोमुद्यमान-नरीनृत्यमान-परस्कोटि-ताम्र-चूड-चूडा-प्रतिबिम्ब-संवलितायामिव, पोस्फुट्यमान-स्वर्गङ्गा-कोकनद-पटल-व्याप्तायामिव, भक्तजन-भक्ति-प्रभाव-भाविताविर्भाव-च्छिन्न-मस्ताकन्धरोच्छल-च्छोणित-स्नातायामिव, वसन्तोत्सवोच्छालित-सिन्दूरान्धकारान्धीकृतायामिव, तातप्यमान ताम्रद्युति-चौराया

भास्करः, तत्कालक्षिप्तानि च गायत्र्यभिमन्त्रितानि वारीणि वज्रीभूतानि तान् घ्नन्तीत्यर्थवादः सूर्योद्देश्यकजलदानस्य ब्राह्मणग्रन्थेषु पुराणेषु च दृश्यते । एतदीय वास्तविकत्व पुराणमतदीपिकाया समवलोकनीयम् । अरुणस्य = सूर्यसारथेः, "सूरसूतोऽरुणोनूरुः" त्यमरः । अरुणिम्ना = लौहित्येन, रञ्जितायाम् । मोमुद्यमानानाम् = परमं हर्षमधिगच्छताम्, अत एव नरीनृत्यमानानाम् = अतिशयेन पुनः पुनर्वा नृत्यताम्, परस्कोटी-नाम् = कोट्यधिकानाम्, ताम्रचूडानाम् = कुक्कुटानाम्, चूडानाम् = शिखानाम्, प्रतिबिम्बेन, सवलितायाम्=प्रावृतायाम् । पोस्फुट्यमा-नानाम् = अत्यन्तं विकासमधिगच्छताम्, स्वर्गङ्गायाः=सुरदीर्घिकायाः, कोकनदानाम्=रक्तोत्पलानाम्, पटलेन व्याप्तायाम्=छन्नायाम् । भक्तजनानाम्=भागवतानाम्, भक्ते =सेवाया, प्रभावेण=सामर्थ्येन, भावित.=सम्पादितः, आविर्भाव =प्रकटीभवनम्, यया सा चासौ छिन्नमस्ता=तन्नाम्ना तन्त्रेषु प्रसिद्धा महाविद्यान्यतमा, तस्याः कन्धराया =ग्रीवाया, उच्छलता=उद्गच्छता, शोणितेन स्नातायामिव । वसन्तोत्सवे=होलोत्सवे, उच्छालितेन=उत्क्षालितेन, सिन्दूराणाम् । अन्धकारेण=तिमिरेण, अन्धीकृतायामिव । तातप्यमानस्य= द्रुतस्य, ताम्रस्य द्युते =शोभायाः, चोरायाम्=अपहारिकायाम् ।

से रक्त हुई सी, अरुण की अरुणिमा से रञ्जित-सी, प्रसन्न होकर नाच रहे हजारों मुर्गों की कलँगी के प्रतिबिम्बों से आवृत-सी, आकाशगंगा के खिल्ते हुए लाल कमलों से आच्छादित-सी, भक्तों की भक्ति के प्रभाव से प्रकट हुई छिन्नमस्ता की ग्रीवा से निकल रहे रक्त से नहाई हुई-सी और होलिकोत्सव में उडाये गये (गुलाल और) सिन्दूर के अन्धकार से अन्धी-सी, तपे हुए ताँबे के समान लाल कान्ति वाली प्राची दिशा

प्राचीनाम्, तत्प्रभया शोण-शोणैः सोपानैरवतीर्य, मारुतिमन्दिर-द्वारि मस्तक-मवनमय्य, झटित्येव स्नान-पूर्वाः क्रियाः समाप्य,तेनैव ब्रह्मचारिवटुना निर्दिश्यमान-मार्गौ, पूर्वावलोकित-वेशन्तादाराद्देव पश्चिमतः किञ्चिदमृतोदं नाम महासरः समासादितवन्तौ।

तत्र वरटाभिरनुगम्यमानानां राजहंसानाम्, पक्षति-कण्डूति-कषण-चञ्चल-चञ्चुपुटानां मल्लिकाक्षाणाम्, लक्ष्मणा-कण्ठ-स्पर्श-हर्ष-वर्ष-प्रफुल्लाङ्गरुहाणां सारसानाम्,भ्रमद्भ्रमर-झङ्कार-भार-विद्रावित-

---

पूर्वम्=प्राक्। अवलोकितात्, वेशन्तात्=अल्पसरसः। "अन्यारादित-रर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते" इति आराच्छब्दयोगे पञ्चमी।

वरटाभिः=हंसीभिः। "हंसस्य योषिद् वरटे" त्यमरः। राज-हंसानाम्, "राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणैर्लोहितैः सिताः। मलिनैर्मल्लिकाक्षास्त" इत्यमरः। पक्षस्य मूलं पक्षतिः, 'पक्षत्तिः' तत्र या कण्डूतिः=खर्जूः, तया कर्तृभूतया कषणम्=घर्षणम्, तेन चञ्चलाः=चपलाः, चञ्चुपुटा येषां तेषाम्। मल्लिकाक्षाणाम्=मलिनचञ्चुचरणहंसानाम्। उपरिष्टादमरः। लक्ष्मणायाः=सारसयोषितः, "सारसस्य तु लक्ष्मणे" त्यमरः, कण्ठस्पर्शेन यद् हर्षवर्षम्=आनन्दवृष्टिः, तेन प्रफुल्लानि=विकसितानि, अङ्गरुहाणि =लोमानि येषां तेषाम्। भ्रमताम्=सञ्चरताम्, भ्रमराणाम्, झङ्कार-

---

की प्रभा से लाल हो रही सीढ़ियों से उतर कर हनुमानजी के मन्दिर के मुख्य द्वार पर सिर झुका कर प्रणाम करके हम दोनों ने स्नान आदि नित्य कर्म समाप्त कर लिया। उस ब्रह्मचारी बालक द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से चलकर हम लोग पहले देखे हुए उस छोटे-से तालाब के पश्चिम थोड़ी ही दूर पर स्थित अमृतोद नाम के बहुत बड़े तालाब पर पहुँचे।

वहाँ राजहंसियों के द्वारा अनुगम्यमान राजहंसों, पंखों के मूल की-खुजली शान्त करने के लिये अपनी मलिन और चञ्चल चोंचों से उन्हें कुरेद रहे हंसों, सारसियों के कण्ठस्पर्श के आनन्द से रोमाञ्चित हुए शरीर वाले सारसों और उड रहे भौंरों की गूँज से दूर हो गई निद्रा

निद्राणां कारण्डवानाञ्च तास्ताः शोभाः पश्यन्तौ, तडागतट एव पम्फुल्यमानानां मकरन्दतुन्दिलानामिन्दीवराणां समीपत एव मसृण-पाषाण-पट्टिकासु कुशासनानि मृगचर्मासनानि ऊर्णासनानि च-विस्तीर्योपविष्टानाम्, गायत्री-जप-पराधीन-दशनवसनानाम्, कलित-ललित-तिलकालकानाम्, दर्भाङ्गुलीयकालङ्कृताङ्गुलीनां मूर्तिमता-मिव ब्रह्मतेजसाम्, साकाराणामिव तपसाम्, धृतावताराणामिव च ब्रह्मचर्य्याणां मुनीनां दर्शनं कुर्वन्तौ, कृतनित्यक्रियं परिपुष्ट-तुलसी-मालिकाङ्कित-कण्ठं सिन्दूरोद्ध्वपुण्ड्रमण्डित-ललाटं रामचरण-

---

भारेण=समधिकझङ्कारशब्देन, विद्राविता=उत्सारिता, निद्रा येषां तेषाम्। पम्फुल्यमानानाम्=विशरारूणाम्। विशरणार्थकाद् ञि-फला-धातोर्यङन्तात् शानच्। तुन्दमस्त्येषामिति तुन्दिलाः, 'तुन्दादिभ्य इलच्'। मकरन्देन=पुष्परसेन, तुन्दिलानाम्=पिचण्डिलानाम्, भरितानामिति यावत्। मसृणपाषाणपट्टिकासु=चिक्कणप्रस्तरपट्टिकासु। गायत्रीजप-पराधीने दशनवसने=ओष्ठौ येषां तेषाम्। कलिताः=धारिताः, ललिताः =शोभनाः, तिलकालकाः=तिलकाः, यैस्तेषाम्। "तिलकस्तिलकालकः" इत्यमरः। दर्भाङ्गुलीयकैः=कुशनिर्मिताङ्गुलिधारणीयैः, पवित्रैरिति यावत्, अलङ्कृताः=भूषिताः, अङ्गुल्यो येषां तेषाम्। मन्दिराध्यक्ष विशिनष्टि—

वाले कारण्डवों की उन-उन शोभाओं को देखते हुए, तालाब के किनारे ही, मकरद से भरे खिले कमलों के पास ही चिकनी प्रस्तर-शिलाओं पर कुशासन, मृगचर्मासन और ऊर्णासन बिछा कर बैठे हुए, गायत्री-जप में लगे होठों वाले, सुन्दर तिलक लगाये हुए, कुश की पवित्री से सुशोभित उँगलियों वाले, मूर्तिमान् ब्रह्मतेज, साकार तपस्या और अवतार धारण करके आये ब्रह्मचर्य के समान मुनियों के दर्शन करते हुए हम दोनों ने, नित्यक्रिया से निवृत्त हो गये, गले में बड़े दानों की तुलसी माला धारण किये, ललाट पर सिन्दूर का ऊर्द्ध्वपुण्ड्र लगाये तथा

चिह्नमुद्रा-मुद्रित-बाहुदण्ड-वक्षस्थलं हनूमन्मन्दिराध्यक्षं प्रणतवन्तौ।

तेन चाऽऽज्ञप्तम्—"यद्यायुष्मन्तौ सपदि महाराष्ट्रदेशं जिगमिषथश्चेदचिरेणैव मस्तके सम्मृद्य एतद् राम-रजः तडागे निमज्जतम्" इत्यवधार्य्य आवां तथैव व्यधिष्वहि।

तदाज्ञया वस्त्राणि परिधाय च, तत्समीपे समुपविश्य, तेन च समन्त्र-जपं कुश-जलेनाभ्युक्षितौ हनुमदङ्ग-रञ्जित-सिन्दूरेण विहित-तिलकौ स्वकीयौ सैन्धवौ समारुक्ष्व। ततः पञ्चापान् व्यूढ-वयस्कान् जटिलान् सुपरिणाहान् वाहानारूढान् आवाभ्यां सह गन्तुमाज्ञाप्य मन्दिराध्यक्षोऽभाषिष्ट—

"कुमारौ! इतः पुण्यनगर-पर्यन्त्तं प्रतिगव्यूत्यन्तरालं महाव्रता-

---

कृतनित्यक्रियामित्यादि। रामचरणचिह्नमेव मुद्रा=मुद्रणसाधनम्, तया मुद्रितम्=अङ्कितम्, बाहुदण्डवक्षःस्थलं यस्य तम्।

समारुक्ष्व = आरूढौ। व्यूढम्=पृथुलम्, वयो येषां तान् युवकानित्यर्थः। सुष्ठु परिणाहः=विशालता येषा तान्, वाहान् =

श्रीरामचन्द्र के चरणों के चिह्नों से अङ्कित बाहुदण्ड और वक्षःस्थल वाले हनुमान मन्दिर के अध्यक्ष को प्रणाम किया।

उन्होंने आज्ञा दी कि, 'यदि तुम दोनों अभी महाराष्ट्र देश को जाना चाहते हो, तो शीघ्र ही इस रामरज को मस्तक में लगा कर, तालाब के जल में प्रवेश करो।' यह सुनकर हम दोनों ने वैसा ही किया।

उनकी आज्ञा से वस्त्र पहिन कर हम उनके पास बैठ गये। उन्होंने मन्त्र पढ़ कर, कुश से हमारे ऊपर जल छिड़का और महावीर की मूर्ति के अंग में लगे सिन्दूर का तिलक लगाकर हम दोनों अपने घोड़ो पर सवार हो गए। फिर, जटाधारी और विशाल शरीर वाले पाँच-छः वयस्क घुड़सवारों को हम दोनों के साथ जाने की आज्ञा देकर मन्दिराध्यक्ष ने कहा—

'कुमारो! यहाँ से पूना नगर तक, प्रत्येक दो कोस के अन्तर पर,

श्रम-परम्परा. सन्ति । सर्वत्र कुटीरेषु संन्यासिनो भक्ता विरक्ताश्च निवसन्ति। कियद्दूरपर्यन्तं पञ्चषाः सहाया युवयो. सहचरा भविष्यन्ति, परस्ताच्छिथिलिते लुण्ठक-भये एकेनैव केनचिदश्वारोहेण प्रदर्शित-मार्गौ सुखेन यथाभिलषित देशं यास्यथः । सहायक-परिवर्त्तनं स्थाने स्थाने स्वयमेव भविष्यति, न तत्र युवयो. कयाऽपि विचिकित्सया भाव्यम् ,श्रान्तै.श्रान्तैराश्रमेषु विश्रमणीयम् , निद्रिद्रासद्भिः कुटीरेष्वेव निद्रा द्राघणीया, विलेपनाभ्यङ्गस्नान-पानाशन-संवाहनादि-सौकर्यं सर्वत्र सहायकाः साधयिष्यन्ति"—इति ।

ततस्तं प्रणम्य तथैव ससहायौ आवा प्रचलितौ । सहचर-

अश्वान् । विचिकित्सया = सशयेन । "विचिकित्सा तु संशयः" इत्यमरः । निद्रिद्रासद्भि = निद्रातुमिच्छद्भिः । द्राघणीया = दीर्घयितव्या । यापनीयेति यावत् । विलेपनम्=चन्दनकस्तूरिकादिचर्च्चनम् , अभ्यङ्ग. = उद्वर्त्तनम् , पिष्टसर्षपादिना, स्नानम् = निर्णेजनम् , पानम्, दुग्धादेः, अशनम्=भोजनम् , सवाहनम्=चरणमर्दनम् , एवमादीना सौकर्यम्=सौलभ्यम् ।

महाव्रत आश्रम हैं । सभी जगह कुटियों में सन्यासी, भक्त और विरक्त निवास करते हैं। कुछ दूर तक पाँच छः सहायक तुम्हारे साथ रहेंगे, फिर लुटेरों का भय कम हो जाने पर, तुम दोनों किसी एक ही अश्वारोही. के पथप्रदर्शन से सुखपूर्वक अभीष्ट स्थान पर पहुँच जाओगे । स्थान-स्थान पर सहायकों का परिवर्तन स्वय ही हो जायगा, इसमें तुम दोनों किसी प्रकार की शका मत करना । थक जाने पर आश्रमों में विश्राम कर लेना और सोने की इच्छा होने पर कुटीरों में ही सोना । तुम्हारे चन्दन, कस्तूरी और उबटन लगाने, नहलाने तथा पैर दबाने आदि का काम और खाने-पीने आदि की व्यवस्था सभी स्थानों पर सहायक कर देंगे ।

तदनन्तर, उन्हें प्रणाम कर, वैसे ही सहायको के साथ हम दोनों

निर्दिष्टेनैव सर्वैरविज्ञेयेन वन्य-द्रुम-जाल-रुद्धेन गण्डशैल-परिक्रमणाधित्यकाधिरोहणोपत्यका-परिलङ्घन-तटिनी-तरणाद्यायास-दीक्षा-दक्षेण पथा प्रचलन्तौ मध्ये मध्ये कुटीरेषु विरमन्तौ तत्र तत्र सुस्वादु-भोजनैः सकल-समुचित-सामग्री-साहाय्यैः सुखेन विश्रान्ति-सुख-मनुभवन्तौ तत्र तत्र परिवर्तितसहायकौ दिनकतिपयेनैकस्या नद्यास्तटमयासिष्व । तत्रैकस्य चिञ्चा-वृक्षस्य स्कन्धे प्रलम्ब-रज्ज्वा निजाजानेयावावध्य निकटस्थ-यूप-तरु-शाखायां च वस्त्रादीनि संलम्बय्य स्नातुं जलमवागाहिष्वहि । अस्मत्सहचरश्च निजाश्वस्य पृष्ठमार्द्रयन्निव तं वल्गायां गृहीत्वा पर्य्यटयितुमारब्ध ।

दिनकतिपयः=कियद्भिश्चन दिवसै । "पोटायुवतिस्तोककतिपये"ति कतिपयशब्दस्य परनिपातः। अयासिष्व=अगच्छाव। चिञ्चावृक्षस्य=तिन्तिडीवृक्षस्य। "तिन्तिडीचिञ्चे" त्यमरः। "इमली" इति भाषा। स्कन्धे=प्रकाण्डे "अस्त्री प्रकाण्डः स्कन्धः स्यान्मूलाच्छाखावधिस्तरो" रित्यमरः। अवागाहिष्वहि=प्रविष्टौ। पर्यटयितुम्=चालयितुम्।

चल दिये। साथियों द्वारा दिखाये गये उस मार्ग—जो सभी द्वारा नहीं जाना जा सकता था, जो जंगली पेड़ों के समूह से रुँधा था और जिसमें—पहाड़ों से गिरे विशाल शिलाखण्डों पर घूम कर जाने, अधित्यकाओं पर चढ़ने, घाटियों को लाँघने तथा नदियों को पार करने का कष्ट उठाना पड़ता था—से चलते हुए, बीच-बीच में कुटियों में आराम करते हुए, स्वादिष्ट भोजन और सारी समुचित सामग्री की सहायता से सुखपूर्वक विश्राम करते हुए, कुटीरों में परिवर्तित होते रहने वाले सहायकों के साथ, कुछ ही दिनों में हम दोनों भीमा नदी के किनारे पहुँच गए। वहाँ एक इमली के वृक्ष के तने में, लम्बी रस्सी से अपने घोड़ों को बाँध कर, समीप के यूप वृक्ष (शहतूत) की डाल पर कपड़े आदि टाँग कर, हम दोनों ने स्नान करने के लिये जल में प्रवेश किया। हमारे साथी ने अपने घोड़े की पीठ ठंढी करते हुए, उसकी लगाम पकड़ कर उसे फेरना (घुमाना) प्रारम्भ कर दिया।

ततो जलाद् बहिरागत्य, तिन्तिडी-शाखात उत्तार्य शुष्क-वस्त्रे परिधाय, इतस्तत. पर्यट्यापि च कां भूमिमायातौ—इति निश्चेतुं नापारयाव। तावदकस्माद् दृष्टं यद्-उत्तरतः खुर-धूलिभिः पार्श्व-परिवर्त्तिलता-कुसुम-परागान् द्विगुणयन्त लाङ्गूल-चामरेण वीजयन्तं मुखफेनैः पुष्पाणीव वर्षन्तं कञ्चित् श्यामकर्णं शारदाभ्रश्वेतं वाजिन-मारुह्य लोलत्खड्ग-चर्म्मोच्छन्न-पृष्ठदेश कवच-शिञ्जित-विजित-कोकिल-शावक-निकर-कूजितो वीर-वेशः कश्चिच्छ्यामो युवा समायातीति।

स च क्षणेनेवाऽऽगत्य, नौ सकलं वृत्तान्तं पृष्ट्वा, विज्ञाय च,

उत्तरतो वाजिनमारुह्य श्यामो युवा समायातीति सम्बन्धः। द्विगुणय-न्तम्=वर्धयन्तम्। लागूलमेव चामरम्=प्रकीर्णकम्, तेन। श्यामं विशिनष्टि—लोलद्भ्याम्=सञ्चलद्भ्याम्, खड्गचर्मभ्याम्=असित-प्रहाररक्षकाभ्याम्, छन्नः पृष्ठदेशो यस्य सः। कवचशिञ्जितेन=वार-बाणशब्देन, "भूषणानाञ्च शिञ्जितमि" त्यमरः, विजितं कोकिल-शावक-निकर-कूजितम्=परभृत-शिशु-समूह-रणित, येन सः।

उसके बाद, जल के बाहर आकर, (इमली) वृक्ष की शाखा से सूखे कपडों को उतार कर, पहिन कर, इधर-उधर घूम कर भी हम दोनों इस बात का निश्चय न कर सके कि हम कहाँ आ गये हैं। इसी बीच हमने एकाएक देखा कि उत्तर दिशा की ओर से, खुरक्षेप से उडने वाली धूल से समीप की लताओं के पुष्पों के पराग को दूना करते हुए, पूँछ का चँवर डुलाते हुए और मुख से निकलने वाले फेन के रूप में पुष्प-सा बरसाते हुए किसी काले कानों वाले, शरत्कालीन बादलों के समान सफेद घोड़े पर चढ़ा, पीठ पर हिलती हुई तलवार और ढाल डाले, कवच के शब्द से कोयलों के बच्चों की कूज को जीतने वाला,—वीरवेष-धारी कोई साँवले रंग का युवक आ रहा है।

वह क्षण भर में ही आकर, हम दोनो का सारा हाल पूछ कर और

प्रावोचत्-"अवगतम्, भवतोरेव विषये दृष्टस्वप्न. शिववीरो भवन्तौ स्मरति, तत्सपद्यश्वावारुह्य आगम्यताम्, न वां भयं किमपि, व्यतीतो भवतोर्दुःखमयः समयः"-इति ।

ततः साश्चर्यं सपदि वस्त्राणि परिधाय सहचरमाकार्य तेन सहाश्वावारुह्य तमनुसृत्य तत्प्रदिष्टं वासादि-सौकर्यमङ्गीकृत्य सपद्येव निविवृत्सन्तं जटिल-सहचरं साश्लेपमनुज्ञाप्य यथासमयं शिववीरं साक्षात्कृत्यावगतम्-यदेष एव महात्मा भटवेषेणास्मन्निकटे भीमा-नद्यास्तटं गत आसीदिति ।

तत्कालमारभ्याद्यावधि तस्यैव करकमलच्छायायां वसावः, भगिनी-वियोग-तापश्चिरादासीत्, सोऽप्यद्य निवृत्तः, पुरोहितचर-

---

निविवृत्सन्तम् = निवर्त्तितुमिच्छन्तम् । साश्लेषम् = सालिङ्गनम् । क्रियाविशेषणम् ।

जान कर बोला, 'मैं समझ गया, आप ही के विषय में स्वप्न देख कर वीर शिवाजी ने आप दोनों को याद किया है, अतः इसी समय घोडो पर चढ़ कर चलिये, अब आपको कोई भय नहीं है, आपका दुःखमय समय बीत गया ।'

उसके बाद आश्चर्यचकित होकर झट वस्त्र पहिन कर, साथी को बुलाकर उसके साथ घोड़ों पर बैठ कर, उसी का अनुसरण करते हुए, उसके द्वारा बताई गई निवास आदि सुविधाओं को स्वीकार कर, तत्क्षण ही लौटने के इच्छुक उस जटाधारी साथी को आलिङ्गन कर, उसे लौटने की अनुमति देकर, यथासमय शिवाजी से मिलने पर ज्ञात हुआ कि यही महापुरुष, सैनिक के वेष में भीमा नदी के किनारे हम लोगों के पास गये थे ।

उस समय से आज तक हम दोनों उन्हीं के कर-कमलों की छाया में रह रहे है । बहुत दिनों से बहिन के वियोग का कष्ट था, आज वह भी

णावपि दृष्टौ, इति सर्वं शुभमेव परस्तात् सम्भाव्यते—इत्येष आवयोर्वृत्तान्त. ।"

ततो मुहूर्तं सर्वेऽप्येतद्वृत्तान्तस्यैव पौर्वापर्य-स्मरण-पराधीना इवाऽऽसिषत । परिशेषे च पुटपाकवदन्तरेव दन्दह्यमानेन वाष्प-व्रातेन आविलस्यापि अप्रकटित-बहिश्चेष्टस्य ब्रह्मचारिगुरोः प्रार्थ-नया देवशर्मणा तोरण-दुर्ग-समीपे हनूमन्मन्दिरे एव निवासः स्वीकृत । तदैव च प्रबन्धु सर्वेऽपि कुटीरादुत्थिता ।

इति तृतीयो निश्वासः ।



आसिषत = स्थिताः, परिशेषे = पर्यन्ते । पुटपाकवत् = उभयतः पाकवत् । आविलस्य = कलुषस्य, क्षुभितस्येत्यर्थः । श्लोकः किंमूल इत्यग्रे स्फुटीभविष्यति ।

इति श्रीशिवराजविजयवैजयन्त्या तृतीयनिश्वासविवरणम् ।



दूर हो गया, पुरोहितजी के दर्शन भी हो गए और भविष्य में भी मंगल की ही सम्भावना है । यही हम दोनों का वृत्तान्त है ।

तदनन्तर क्षण भर सभी लोग इसी वृत्तान्त के पौर्वापर्य का स्मरण करते हुए से बैठे रहे । उसके बाद पुटपाक के समान अन्दर ही अन्दर जल रहे तथा अश्रुओं से क्षुभित होते हुए भी बाहर से शान्त ब्रह्मचारि-गुरु की प्रार्थना से, देवशर्मा ने तोरणदुर्ग के पास हनुमान् के मन्दिर में ही निवास करना स्वीकार कर लिया और उसी का प्रबन्ध करने के लिये सब लोग कुटी से उठ पड़े ।

शिवराजविजय के तृतीय निश्वास का हिन्दी-अनुवाद समाप्त ॥

"कार्यं वा साधयेयम्, देहं वा पातयेयम्"

—स्फुटकम्

मासोऽयमाषाढः, अस्ति च सायं समयः, अस्तं जिगमिषुर्भगवान् भास्करः सिन्दूर-द्रव-स्नातानामिव वरुण-दिगवलम्बिनामरुण-वारिवाहानामभ्यन्तरं प्रविष्टः। कलविङ्काश्चाटकैररुतैः परिपूर्णेषु नीडेषु प्रतिनिवर्तन्ते। वनानि प्रतिक्षणमधिकाधिकां श्यामतां कलयन्ति। अथाकस्मात् परितो मेघ-माला पर्वतश्रेणीव प्रादुरभूत्।

श्रीरघुवीरसिंह आवश्यकं वाचिक पत्रश्चादाय महता क्लेशेन तोरणदुर्गं विवेश प्रतिपत्रश्चानयदिति तुरीयनिश्वासीयकथाभाग श्रीशिवराजवीरीयदृढतम प्रतिज्ञयैवोपक्षिपति—कार्यमिति। आषाढर्क्षसंवलिता पूर्णमासी यस्मिन्मासे स आषाढः = शुचिः। सिन्दूरद्रवेण=नागोद्भवरसेन, स्नातानामिव=कृतस्नानानामिवेत्युत्प्रेक्षा। वरुणदिक्=पश्चिमा, तदवलम्बिनाम् = तदाश्रितानाम्। कलविङ्का = चटकाः "गौरैया" इति हिन्दी। चटकाया अपत्यानि चाटकैराः, "चटकाया एरग्"त्यपत्ये प्रत्ययः,तेषां रुतैः= शब्दैः। नीडेषु=कुलायेषु। प्रतिनिवर्तन्ते=परावर्तन्ते। पक्षिणः समग्र दिनमुड्डीय सायं स्वावासतरौ सम्मिलिता भूरि वाशित कुर्वन्तीतीय पक्षिजातिः। कलयन्ति=धारयन्ति। मेघमाला=वारिदराजिः। पर्वतश्रेणीव=

---

* श्रीः *

चतुर्थ निश्वास

"या तो कार्य सिद्ध कर लूँगा, या शरीर को नष्ट कर दूँगा।"

आषाढ का महीना है और सन्ध्या का समय। अस्ताचल पहुँचने के इच्छुक भगवान् सूर्य, पश्चिम दिशा में स्थित सिन्दूर से नहाये हुए से लाल रंग के बादलों में प्रविष्ट हो गये हैं। गौरैया पक्षी अपने बच्चों के कलरव से पूर्ण घोसलों में लौट रहे हैं। वन क्षण प्रतिक्षण अधिकाधिक अन्धकारपूर्ण (श्याम) होते जा रहे हैं। अकस्मात् चारों ओर से पर्वतमाला

क्षणं सूक्ष्मविस्तारा, परत. प्रकटित-शिखरि-शिखर-विडम्बना, अथ दर्शित-दीर्घ-शुण्ड-मण्डित-दिगन्त-दन्तावल-भयानकाकारा, ततः पारस्परिक-संश्लेष-विहित-महान्धकारा च समस्त गगनतल पर्यच्छदीत् ।

अस्मिन् समये एक. षोडशवर्षदेशीयो गौरो युवा हयेन पर्वत-श्रेणीरुपर्युपरि गच्छति स्म । एष सुघटित-दृढ-शरीर., श्यामश्यामै-र्गुच्छ-गुच्छै कुञ्चित-कुञ्चितै. कच-कलापै कमनीय-कपोलपालि ,दूरा-

भूधरपङ्क्तिरिवेत्युपमा। प्रकटितम्=प्रदर्शितम्, शिखरिशिखराणाम्= महीधरशृङ्गाणाम्। विडम्बनम्=अनुकृतिः, यया सा। दर्शितः=प्रकटी-कृतः, दीर्घेण=लम्बायमानेन, शुण्डेन=करेण, मण्डितस्य=भूषितस्य, दिगन्तदन्तावलस्य=दिक्करिणः, "दन्ती दन्तावलो हस्ती" त्यमरः, भया-नकः=भीतिप्रदः, आकारः=आकृतिः, यया सा। पारस्परिकसंश्लेषेण= इतरेतरमिलनेन, विहितः=उत्पादितः, अन्धकारः=अन्धतमस यया सा। पर्यच्छदीत्=व्याप्नोत्।

उपर्युपरि—"उपर्यध्यधसः सामीप्ये" इति द्वित्वम्। तद्योगे द्वितीया।

"उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु।

द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते" इत्युक्तेः।

गौरं युवानं विशिनष्टि-सुघटितदृढशरीर.=सुसम्पन्नपुष्टाग'।

के समान मेघमाला प्रादुर्भूत हो गई। यह मेघमाला थोडी देर कम विस्तृत रही, फिर पर्वतशिखरो के समान हो गई, तदनन्तर बडी-बडी सूँडों से सुशोभित दिग्गजों के समान भयानक आकारवाली हो गई, और उसके बाद उमड-घुमड कर (बादलों के परस्पर मिल जाने से) भीषण अन्ध-कार करके सारे आकाशमण्डल पर छा गई।

इसी समय लगभग सोलह वर्ष का एक गोरा युवक, घोडे पर चढा पर्वतमाला के ऊपर चला जा रहा था। सुडौल और दृढ शरीर वाला काले गुच्छेदार और घुँघराले केशों से सुशोभित कपोलों वाला, दूर से

गमनायास-वशेन सूक्ष्म-मौक्तिक-पटलेनेव स्वेद-विन्दु-व्रजेन समाच्छादित-ललाट-कपोल नासाग्रोत्तरोष्ठः,प्रसन्न-वदनाम्भोज-प्रदर्शित-दृढ-सिद्धान्त-महोत्साहः, राजत-सूत्र-शिल्पकृत-बहुल-चाकचक्य-वक्र-हरितोष्णीष-शोभितः, हरितेनैव च कञ्चुकेन प्रकटीकृत-व्यूढ-गूढचरता-कार्यः, कोऽपि शिववीरस्य विश्वासपात्रं सिंहदुर्गात् तस्यैव पत्रमादाय तोरणदुर्गं प्रयाति ।

तावदकस्मादुत्थितो महान् झञ्झावातः, एकः सायसमय-प्रयुक्तः

कमनीयकपोलपालिः = मनोहरगण्डस्थलः । सूक्ष्मभौक्तिकपटलेनेव = लघुमुक्तानिचयेनेवेत्युत्प्रेक्षा । स्वेदविन्दुव्रजेन = धर्मजलकणसमूहेन । "घर्मो निदाघः स्वेदः स्यादि" त्यमरः । समाच्छादितम् = व्याप्तम्, ललाटकपोलनासाग्रोत्तरोष्ठं यस्य सः । प्रसन्नेन = विकसितेन, वदनाम्भोजेन = मुखकमलेन, प्रदर्शितः, दृढः, सिद्धान्तमहोत्साह = कर्तव्यपरायणतामहाहर्षो येन सः । राजत-सूत्रस्य = रौप्यतन्तोः, शिल्पेन कृतम्, बहुलम् = प्रचुरम्, चाकचक्य यस्यैवम्भूतं वक्रम् = अनृजु, हरितम् = हरिद्वर्णम्, उष्णीषम् = शिरोवेष्टनम्, तेन शोभितः । प्रकटीकृतम्, व्यूढम् = अङ्गीकृतम्, गूढचरताकार्यम् = गुप्तचरताकृत्यम्, येन सः । विश्वासस्य, पात्रम् = भाजनम् । नित्यक्लीबम् । परिकरालंकारो विशेषणाना साभिप्रायत्वादत्र गद्ये द्रष्टव्यः ।

झञ्झावातः, "सवृष्टिको महावातो झञ्झावातः प्रकीर्तितः" । प्रपतन्त्य-

---

आने के कारण थकान से उत्पन्न हुए छोटे-छोटे मोतियों के समान पसीने की बूँदों से व्याप्त मस्तक, कपोल, नाक के अग्रभाग और ओष्ठ वाला, अपने प्रसन्न मुख-कमल से दृढ सिद्धान्त के महोत्साह को प्रकट करने वाला, चाँदी के तार के काम के कारण चमचमा रहे और टेढे बँधे हुए हरे साफे से सुशोभित, हरे कञ्चुक से गुप्तचर होने की सूचना देने वाला, शिवाजी का यह विश्वासपात्र युवक उन्हीं का पत्र लेकर सिंहदुर्ग से तोरणदुर्ग जा रहा है ।

तब तक अकस्मात् जोर से आँधी पानी आ गया । सायंकाल में होने

स्वभाव-वृत्तोऽन्धकारः, स च द्विगुणितो मेघमालाभिः। झंझावातोद्धूतै रेणुभिः शीर्णपत्रैः कुसुम-परागैः शुष्कपुष्पैश्च पुनरेप द्वैगुण्यं प्राप्त। इह पर्वत-श्रेणीतः पर्वतश्रेणीः, वनाद् वनानि, शिखराच्छिखराणि, प्रपातात् प्रपाताः, अधित्यकातोऽधित्यकाः, उपत्यकात उपत्यका, न कोऽपि सरलो मार्ग, नानुद्वेदिनी भूमिः, पन्था अपि च नावलोक्यते। क्षणे क्षणे हयस्य खुराश्चिक्कण-पाषाण-खण्डेषु प्रस्खलन्ति। पदे-पदे दोधूयमाना वृक्ष-शाखाः सम्मुखमाघ्नन्ति, परं दृढ-संकल्पोऽयं सादी न स्वकार्याद् विरमति। परित' स-हुडहुडा-शब्दं

स्मिन्निति प्रपात. = जलोत्पतनस्थानम्, "प्रपातस्त्वतटो भृगुरि"त्यमरः। अनुद्वेदिनी = दुःखादायिनी, सरलेति यावत्। चिक्कणपाषाणखण्डेषु = स्निग्धाश्मशकलेषु। प्रस्खलन्ति = प्रच्यवन्ते, "खसकते हैं" इति भाषायाम्। दोधूयमाना. = वारं वार चलन्त्यः, सम्मुखम् = अभिमुखम्। आघ्नन्ति= ताडयन्ति। "आङो यमहन" इत्यात्मनेपदस्य तु नात्र विषयता, अकर्मकात्स्वाङ्गकर्मकादेव च तद्विधानात्। सादी = अश्वारोहः। विरमति, "व्याङ्परिभ्यो रम" इति परस्मैपदम्। वाताघातेन सञ्जातः पाषाणपातो येषां तेषाम्।

वाला स्वाभाविक अन्धकार मेघमालाओं से द्विगुणित हो गया। आँधी से उठी धूल, गिरे हुए पत्तों, पुष्पों के पराग और सूखे फूलों से यह अँधेरा और भी दूना हो गया। यहाँ पर्वत-श्रेणी के बाद पर्वतश्रेणियाँ, वन के बाद वन, शिखर के बाद शिखर, झरने के बाद झरने, अधित्यका (पर्वत के पास की ऊँची भूमि) के बाद अधित्यकाएँ और उपत्यका (पर्वत के पास नीची भूमि) के बाद उपत्यकाएँ हैं। कोई सीधा रास्ता नहीं, कहीं समतल भूमि नहीं और रास्ता भी नही दिखाई देता है। घोड़े के खुर थोड़ी-थोड़ी देर बाद ही चिकने पाषाणखण्डों पर फिसलते थे। पद-पद पर, हिलती हुई वृक्षों की शाखायें सामने लड़ जाती थीं। परन्तु दृढसंकल्पवाला यह घुड़सवार अपने कार्य से विरत नहीं होता। सभी

दोधूयमानानां परस्सहस्र-वृक्षाणाम्, वाताघात-संजात-पाषाण-पातानां प्रपातानाम्, महान्धतमसेन ग्रस्यमानानामिव सत्त्वानां क्रन्दनस्य च भयानकेन स्वनेन कवलीकृतमिव गगन-तलम्। परं नैष वीरः स्वकार्याद् विरमति। कदाचित् किञ्चिद् भीत इव घोटकः पादाभ्यामुत्तिष्ठति, कदाचिच्चलन्नकस्मात् परिवर्त्तते, कदाचिदुत्प्लुत्य च गच्छति। परमेष वीरो वल्गां संयच्छन्, मध्ये मध्ये सैन्धवस्य स्कन्धौ कन्धरां च करतलेनाऽऽस्फोटयन्, चुचुत्कारेण सान्त्वयंश्च न स्वकार्याद् विरमति। तावदारब्धश्चञ्चच्चञ्चल-चामीकर-रेखाकाराभिश्चञ्चलाभिरपि स्व-चमत्कारः। यावदेकस्यां दिशि नयने विक्षिपन्ती,

---

प्रपातानाम् = भृगूणाम्। सत्त्वानाम् = प्राणिनाम्। अन्धकारे स्थिताना महान्धतमसग्रस्यमानत्वेनोत्प्रेक्षा, स्वतः सिद्धायाश्च शब्दव्याप्तेराकाशकवलीकरणत्वेन। अकस्मात् = सहसा, परिवर्त्तते = परावर्तते। संयच्छन् = आकर्षन्। सैन्धवस्य = घोटकस्य। स्कन्धौ = अंसौ, आस्फोटयन् = आस्फालयन्। सान्त्वयन् = आश्वासयन्, चञ्चच्चञ्चलस्य = विशिष्ट चाकचक्ययुतस्य, चामीकरस्य = सुवर्णस्य, रेखाणामिवाकारो यासा ताभिः। चञ्चलाभिः = विद्युद्भिः। "तडित् सौदामिनी विद्युच्चञ्चला चपला

और हहराने के शब्द के साथ हिलते हुए वृक्षों, वायु के आघात से गिर रहे पत्थरों वाले झरनों और घोर अन्धकार से ग्रस्त-से अन्य पशुओं के क्रन्दन के भयानक शब्द से आकाश व्याप्त हो गया। किन्तु यह वीर अपने कार्य से विरत नहीं होता। कभी-कभी कुछ डरा हुआ-सा घोड़ा दोनों पैर उठाकर खड़ा हो जाता है, कभी चलते-चलते अकस्मात् लौट पड़ता है, और कभी कूदकर चलता है। लेकिन यह वीर, लगाम को साधे हुए बीच-बीच में घोड़े के कन्धों को हाथ से थपथपाता हुआ, चुमकारियों से सान्त्वना देता हुआ, अपने कार्य से नहीं रुकता। तब तक चमचमाती हुई स्वर्णरेखाओं के आकारवाली चपलाओं ने भी अपना चमत्कार आरम्भ कर दिया। जब तक एक ओर नेत्रों में चकाचौंध पैदा करती हुई,

कर्णौ स्फोटयन्ती, अवलोचकान् कम्पयन्ती, वन्यांस्त्रासयन्ती, गगनं कर्त्तयन्ती, मेघान् सौवर्ण-कर्षणेव घ्नती, अन्धकारमग्निनेव दहन्ती, चपला चमत्करोति; तावदन्यस्यामपि अपरा ज्वालाजालेनेव बलाहकानावृणोति, स्फुरणोत्तरं स्फुरणं गर्जनोत्तरं गर्जनमिति परश्शत-शतघ्नीप्रचार-जन्येनेव कन्दरि-कन्दर-प्रतिध्वनिभिश्चतुर्गुणितेन महाशब्देन पर्यपूर्यत साऽरण्यानी। परमधुनाऽपि-"देहं वा पातयेयं कार्यं वा साधयेयम्" इति कृतप्रतिज्ञोऽसौ शिववीर-चरो न निजकार्यान्निवर्त्तते।

यस्याध्यक्षः स्वयं परिश्रमी; कथं स न स्यात् स्वयं परिश्रमी? यस्य प्रभुः स्वयं साहसी; कथं स न भवेत् स्वयं साहसी? यस्य

अपी" त्यमरः। अनुप्रासो वर्णसाम्यात्। अवलोचकान् = दर्शकान्। कर्त्तयन्ती = विदारयन्ती। अतिशयोक्तिरसम्बन्धे सम्बन्धाभिधानात्। सौवर्णकर्षणेव = हैरण्यशाणेनेवेत्युत्प्रेक्षा। "शाणस्तु निकषः कष." इत्यमरः। बलाहकान् = मेघान्। पर्यपूर्यत = परितः पूर्णाऽक्रियत।

कानों को फोड़ती हुई, दर्शकों को कँपाती हुई, वन में रहने वालों को डराती हुई, आकाश को काटती हुई, बादलों को सोने के कोड़े से मारती-सी हुई, अन्धकार को अग्नि से जलाती-सी हुई दामिनी दमकती है, तब तक दूसरी ओर भी विद्युत् मानो ज्वालासमूहों से बादलों को ढक लेती है। चमकने के बाद चमकना, गर्जन के बाद गर्जन, इस प्रकार सैकड़ों तोपों के छूटने से उत्पन्न स्वर के समान [illegible] कन्दराओं की प्रतिध्वनि से चौगुने हुए महाशब्द से वह जंगल गूँज उ[illegible]। लेकिन अब भी "या तो देह का नाश कर दूँगा या कार्य को सिद्ध कर लूँगा" यह प्रतिज्ञा किये शिवाजी का दूत अपने कार्य से विरत नहीं हो रहा है।

जिसका अध्यक्ष स्वयं परिश्रमी है, वह परिश्रमी कैसे न हो? जिसका स्वामी स्वय साहसी है, वह साहसी कैसे न हो? जिसका स्वामी स्वय

स्वामी स्वयमापदो न गणयति; कथं स गणयेदापदः? यस्य च महाराजः स्वयं सङ्कल्पितं निश्चयेन साधयति; कथं स न साधयेन् स्व-सङ्कल्पितम्? अस्त्येष महाराज-शिववीरस्य दयापात्रं चरः, तत्कथमेष झञ्झा-विभीषिकाभिर्विभीषितः प्रभु-कार्यं विगणयेत्? तदितोऽप्येष तथैव त्वरितमश्वं चालयश्चलति।

अथ किञ्चन् स्रोतस्समुल्लङ्घमानोऽस्य तुरङ्गः कस्यापि दोधूयमानतरोः शाखया तथाऽभिहतो यथोच्छलन् भूमौ पपात, सादिनं चैकतः समपीपतत्। किन्तु तत्क्षणादेव सादी समुत्थितो वाजिनो वल्गां गृहीत्वा, सचुचुत्कारं ग्रीवां पृष्ठं चाऽऽस्फोट्य, अज्ञासीद्-यदश्वः स्वेदैः स्नातोऽस्तीति। तच्चक्षुषी विस्फार्य, पार्श्वस्थ-पलाशिन

अभिहतः=ताडितः। उच्छलन्=उत्पतन्। "उछलते हुए" इति भाषायाम्। समपीपतत्=पातयामास। णिजन्तात् सम्पूर्वकात्पतेर्लुङि। विस्फार्य=विकास्य। पार्श्वस्थ पलाशिनम्=वृक्षम्। "पलाशी द्रुद्रुमा-

आपत्तियों को नहीं गिनता वह आपत्तियों को कैसे गिने? जिसका महाराज स्वयं सकल्प किये गये काम को निश्चयपूर्वक सिद्ध करता है वह अपने संकल्प को कैसे न पूरा करे? यह महाराज शिवाजी का कृपापात्र दूत है, फिर यह कैसे सभव है कि यह झञ्झा से डर जाय और प्रभु-कार्य की परवाह न करे? अब भी वह घोडा बढाता हुआ, उसी प्रकार तेजी से चला जा रहा है।

इसके बाद किसी सोते को पार करता हुआ इसका घोडा किसी हिलते हुए वृक्ष की शाखा से ऐसा लड गया कि चोट खाकर उछलता हुआ भूमि पर गिर पडा और सवार को एक ओर फेंक दिया। किन्तु सवार ने उसी क्षण उठ कर, घोड़े की लगाम पकड कर चुमकारते हुए, उसकी गर्दन और पीठ को थपथपा कर जान लिया कि घोडा पसीने से तर है। निकटस्थ वृक्ष को विस्फारित नेत्रों से सावधानीपूर्वक देखकर

निपुण निरीक्ष्य, तच्छाखायामेव कानिचिन्निजवस्तून्यासज्य, दक्षिण-कर-धृति-रश्मिरश्व शनै शनैः परिभ्रमयितुमारेभे। अश्वश्च फेनान् पातयन् कन्धरामुद्धूनयन् हेषा-रवैश्चिर-परिश्रमं प्रकटयन् प्रस्यन्द-जल-सिक्त-भूभाग:, समुत्सृष्ट-पुरीषः, शुष्क-स्वेदः, मुहूर्तार्द्धेनैव विस्मृत-परिश्रमः, सगति-स्तम्भं खुराग्रैर्भूमिमुत्खनन्, कर्णावुत्त-म्भयन्, लाङ्गूल लोलयन्, सादिनो दक्षिणदेशे पृष्ठ निकटयन्, पुनरेनं वोढु परतो धावितुं च समीहां समसूसुचत्।

तावदकस्मात् पूर्वस्यामतिरक्ताऽतिप्रलम्बाऽतिभयानका सकड-कडाशब्द सौदामिनी समदेदीप्यत, तच्चमत्कार-चकितं चाश्वमेष

गमा" इत्यमरः। फेनान्=डिण्डीरान्। उद्धूनयन्=कम्पयन्। प्रस्यन्द-जलेन=स्वेदाम्भसा, सिक्त=क्लिन्नता नीतः, भूभागो येन सः। समुत्सृ-ष्टम् = त्यक्तम्, पुरीषम् = गूथ येन सः। सगतिस्तम्भम् = सचलनाव-रोधम्। उत्खनन्=उत्पाटयन्। उत्तम्भयन्=ऊर्ध्वांकुर्वन्। लाङ्गूलम्= पुच्छम्। "लाङ्गूल पुच्छशेफयोरि"ति हैमः। निकटयन् = समीपयन्। वोढुम्=नेतुम्। समीहाम्=इच्छाम्। समसूसुचत्=प्रकटितवान्।

उसकी शाखा में ही अपनी कुछ वस्तुओं को लटका कर और दाहिने हाथ से लगाम पकड कर उसने घोडे को शनैः शनैः टहलाना आरम्भ किया। घोड़ा फेन गिराता हुआ, गर्दन कँपाता (हिलाता) हुआ, हिनहिनाहट से दर्घ-परिश्रम को प्रकट करता हुआ, पसीने के जल से उस भूभाग को आर्द्र बना कर, लीद करके, पसीने के सूख जाने पर, क्षण भर में ही अपने परिश्रम को भूल कर, टापों के अग्रभाग से भूमि को खोदता हुआ, कान उठाये हुए, पूँछ हिलाता हुआ, सवार के दाहिनी ओर अपनी पीठ बढाता हुआ, पुनः उसे सवार करने और फिर दौड़ने की अपनी इच्छा को सूचित करने लगा।

तब तक अकस्मात् पूर्व दिशा में अत्यन्त रक्तवर्ण की, बहुत लम्बी और अतिभयानक बिजली कडकडाहट के साथ चमक उठी। उसकी.

यावत्स्थिरयति; तावत्स-तडतडा-शब्दं पूग-स्थूलैर्बिन्दुभिर्वर्षितु-मारब्ध मघवा, परं राम-कार्यार्थं प्रतिष्ठमानेन मारुतिनेव न सह्यते कार्यहानिः शिववीर-चरेण। तत्क्षणमेवासौ पुनः सज्जीभूय समुत्प्लुत्य घोटक-पृष्ठमारुरोह। घोटकश्च पुनस्त्वरितगत्या प्रचलितः। यदा यदा विद्युद् विद्योतते; तदा तदा पन्था अवलोक्यते, तदनुसन्धानेनैव वाहोऽयं शिलातलानि परिक्राम्यन् लताप्रतानानि त्यजन् स्रोतांस्युल्लङ्घमानः गर्तांश्च परिजहदुच्चचाल। तावद् दूरत एवाऽऽलोक्यत तोरण-दुर्ग-दीपः, इतश्च चरस्यैतस्य दृढप्रतिज्ञतां निर्भीकतां सोत्साहतां स्वामिकार्य-साधन-सत्य-सङ्कल्पतां च परी-

---

अश्वस्वभाववर्णनम्। समदेदीप्यत=अत्यन्तं चमदकरोत्। पूगस्थूलैः=क्रमुकफलमहत्तरैः। मघवा=इन्द्रः। मारुतिना=मरुत्तनयेन हनूमता। मारुतिरूपोपमानस्य, शिववीरचरस्योपमेयस्य, कार्यहान्यसहत्वस्य साधारण-धर्मस्य, वाचकस्य चेवशब्दस्योपादानेन पूर्णोपमा। वाहः=अश्वः। परि-जहत्=परित्यजन्, "नाभ्यस्ताच्छतु" रिति नुम्निषेधः। आलोक्यत=

चकाचौंध से चकित घोड़े को जब तक सवार रोके तब तक तड-तड शब्द के साथ बादलों ने सुपारी के बराबर बूँदें गिराना शुरू कर दिया, लेकिन रामचन्द्र के कार्य के लिए चले हनुमान की तरह शिवाजी के दूत को भी कार्यहानि सह्य नहीं। वह उसी क्षण पुनः सुसज्जित हो, कूद कर घोड़े की पीठ पर बैठ गया और घोडा फिर तेज चाल से चल दिया। ज्यों ज्यो बिजली चमकती थी, रास्ता दिखाई पडता जाता था, उसी ज्ञान के आधार पर यह सवार, शिलातलों को लाँघता, लताओं के झुरमुटों को बचाता, सोतों को कूद कर पार करता और गड्ढों को बचाता हुआ चल दिया। दूर से ही तोरण दुर्ग का दीप दिखाई दिया और इधर उस दूत की दृढ-प्रतिज्ञता, निर्भीकता, उत्साहपूर्णता और अपने स्वामी के कार्य को सिद्ध करने की सत्यसंकल्पता की परीक्षा-सी करके

क्ष्येव प्रशशाम वृष्टिः। अम्ल-वलेन दुग्धमिव च खण्डशोऽभून्मेघमाला, ददृशे च पूर्वस्यां कलानाथः।

अथ क्षणेनैव पार्वत-नदी-वेग इव निर्जगाम झञ्झावातोत्पातोऽपि। ततो नूतन-वारिधारा-क्षालन-प्रकटित-परम-हारित्यानां परस्कोटिकीर-पटल-परीतानामिव समवालोक्यत लोचन-रोचिका-शोभा पलाशिनाम्। सादी च चञ्चच्चन्द्रचमत्कारेण द्विगुणितोत्साहः "मा भूद् द्वार-रोधो मद्गमनात् पूर्वमेव" इति सत्वर-सत्वर, झिल्ली-रव-मिश्रित-कवच-शिञ्जितः, वार्ष-वारि-व्रज-विधूत-स्वेद-

दृष्टः। प्रशशाम=शान्ताऽभूत्। वृष्टौ सत्यामपि कार्यं नावारुणचर इति तस्यास्तत्परीक्षात्वेनोत्प्रेक्षणम्। अम्लवलेन=दुग्धमिवेत्युपमा। ददृशे=दृष्टः। कर्मणि तङ्। कलानाथः=चन्द्रः।

क्षणेनैव झञ्झवातोत्पातो निर्जगामेति सम्बन्धः। उपमिनोति पार्वतनदीवेग इवेति। ततो लोचनरोचिका=नेत्रानन्ददायिनी, पलाशिनां शोभा समवालोक्यतेति सम्बन्धः। पलाशिनो विशिनष्टि-नूतनया=अभिनवया, वारिधारया=पानीयासारपातेन, क्षालनेन=निर्णेजनेन, प्रकटित परमहारित्यम्=हरिद्वर्णता,यैस्तेषाम्। उत्प्रेक्षते-परस्कोटिना कीरपटलेन परीतानामिव=व्याप्तानामिव। झिल्लीरवेण=भृङ्गारीशब्देन, "भृङ्गारी

वृष्टि शान्त हो गई। खटाई से दूध की तरह बादलों का समूह छिन्न-भिन्न हो गया और पूर्व दिशा में चन्द्रमा दिखाई दिया।

इसके पश्चात् क्षण भर बाद ही पहाडी नदी के वेग की तरह आँधी पानी भी निकल गया। फिर नवीन जलधारा से धुले होने के कारण अत्यधिक हरियाली को प्रकट करने वाले, करोडों शुक समूहों–से व्याप्त-से वृक्षों की नयनाभिराम शोभा दिखाई दी। चञ्चल चन्द्रमा की छटा से दूने हुये उत्साहवाला, "कहीं मेरे पहुँचने से पहले ही फाटक बन्द न हो जाय" यह सोचकर और भी जल्दी करता हुआ, झींगुर के स्वरों में अपने कवच की झकार को मिलाता, वर्षा के जल से धुली हुई पसीने की

विन्दु-सन्दोहः, साधुवाद-संवर्द्धित-हेषमाण हयोत्साहः सपद्येव तोरण-दुर्ग-यामिक-पादचार-परिमर्दितायां भुवि समाजगाम ।

अथ "को भवान् ? कुतो भवान् ?" इति यामिकेन पृष्टः, दत्त-निज-परिचयः, द्वारपालेनापि-"साधु ! साधु ! महता परिश्रमेण समायातोऽसि, उच्चैर्निश्वसिति तेऽश्व', स्विन्नानि तव गात्राणि, आर्द्राणि तव वस्त्राणि, धन्योऽसि, तथाऽपि खेदं नाऽऽवहसि, समये समागतोऽसि, अवेक्षते तवैव पन्थानं दुर्गाधीशः । प्रविश्यताम्, अश्व उन्मुच्यताम्, सत्वरमेव च तेनापि साक्षात्कारो

चीरुका चीरी झिल्लिका च समा इमा" इत्यमरः । मिश्रितम् = सपृक्तम्, वृद्धि गतमिति यावत्, कवचशिञ्जितम् = तनुत्राणध्वनिः, यस्य सः । कवचाना वीरभूषणत्वेन "भूषणानान्तु शिञ्जितमि" त्येनेन न विरोध इति ध्येयम् । वार्षेण = वर्षभवेन, वारिव्रजेन = जलनिचयेन, विधूतः = विगतः, स्वेदविन्दूनाम् = श्रमपृषताम्, सन्दोहः = समूहो यस्य सः । साधुवादेन=प्रशंसनेन । सवर्धितः=सम्यग् वृद्धिं नीतः, हेषमाणस्य= हेषानिरतस्य, हयस्योत्साहो येन सः । तोरणदुर्गस्य=तन्नामख्यातदुर्गस्य, यामिकानाम्=प्रहरिणाम्, पादचारैः = भ्रमणे', परिमर्दितायाम्= अतिक्षुण्णायाम् ।

बूँदों वाला, शाबासी दे-दे कर हिनहिनाते घोड़े के उत्साह को बढ़ाता हुआ, शीघ्र ही वह सवार तोरणदुर्ग के पहरेदार के (पहरा देने से) चरणों से मर्दित हुई भूमि पर आ पहुँचा ।

तदनन्तर 'आप कौन हैं ? कहाँ से आये हैं ?' इस प्रकार पहरेदार के द्वारा पूछे जाने पर, अपना परिचय देकर, द्वारपाल के द्वारा भी— "शाबाश ! शाबाश ! बड़े मिहनत से आये हो, तुम्हारा घोडा भी जोरों से हॉफ रहा है, तुम्हारे अग पसीने से तर हैं, वस्त्र भींग गये हैं, तुम धन्य हो, जो कि फिर भी नहीं थकते, समय पर आ गये हो, दुर्गाधीश तुम्हारा ही रास्ता देख रहे है, जाओ, घोड़ा खोल दो, शीघ्र ही उनसे

विधीयताम्" इति सादरमालप्यमानो दुर्गं प्रविवेश ।

अश्वमुन्मुच्य परस्सहस्र-पतग-पटल-कलकलोन्निद्रस्य सुदूर-वितत-काण्ड-प्रकाण्डस्य चैकस्य पनस-वृक्षस्य शाखायामाबध्य अविश्रान्त एव दुर्गाध्यक्ष-समीपमगमत् ।

तत्र तयोरेवमभूदालापः—

दुर्गाध्यक्षः–[दूरत एव] एहि, एहि, समये समायातोऽसि, मुहूर्तं नायास्यश्चेद् द्वारेषु रुद्धेषु बहिरेव समस्तां रजनीमवत्स्यः ।

सादी—विघ्नास्त्वभूवन्, परं माहात्म्यमेतत् प्रभु-प्रतापस्य,

परस्सहस्रपतगानाम् = असंख्यातपक्षिणाम्, पटलस्य = समूहस्य, कलकलेन=कोलाहलेन, उन्निद्रस्य = जाग्रतः । जाग्रताः शब्दं कुर्वन्तीत्युन्निद्रपदेन सशब्दत्वं लक्षितम्, तच्च सार्वकालिकशब्दवत्त्वव्यञ्जनद्वारा पक्षिणामसङ्ख्यातत्वपर्यवसायि । सुदूरं, वितता'=विस्तृताः, काण्डा'= शाखाः, प्रकाण्डाः = स्कन्धाः, यस्य तस्य । पनसवृक्षस्य = कण्टकितरोः, "कटहर" इति हिन्दी ।

नायास्य =नागमिष्यः । रजनीमित्यत्र "कालाध्वनो" रिति द्वितीया । अवत्स्यः = वासमकरिष्यः । हेतुहेतुमद्भावे लृङ् ।

भेंट करो" इस प्रकार आदरपूर्वक बात किये जाते हुये सवार ने दुर्ग में प्रवेश किया ।

वह घोड़े को खोल कर और उसे हजारों पक्षियों के कलकल से मुखर, दूर तक फैली शाखाओं और तने वाले एक कटहल के वृक्ष की शाखा में बाँधकर, बिना विश्राम किये ही दुर्गाध्यक्ष के पास चला गया ।

वहाँ उन दोनों में इस प्रकार बातचीत हुई :—

दुर्गाध्यक्ष— (दूर से ही) आओ, आओ, ठीक समय पर आ गये; अगर थोड़ी देर और न आते तो फाटक बन्द होने पर सारी रात बाहर ही गुजारनी पड़ती ।

अश्वारोही—अड़चनें तो बहुत हुईं, लेकिन प्रभु के प्रताप की महिमा

यत् तदीया विघ्नैर्न व्याहन्यन्ते ।

दुर्गाध्यक्षः—(तं शिरो नमयन्त जीवेत्युक्त्वा) उपविश, उपविश ।

ततो दुर्गाध्यक्षस्तु चुम्बित-यौवनामप्यत्यक्त-बालभावां तस्य मधुरामाकृतिं पश्यन्, सचकितं विचारयितुमारेभे, यत्—"कथं बाल एष प्रेषितः श्रीमता महाराष्ट्र-राजेन गुप्त-विषय-सन्धानेषु" क्षणमवस्थाय च "द्रक्ष्यामि प्रथमं किमेतेनाऽऽनीतं पत्रादिकम्"—इति निश्चित्य, "भगवन्! प्रभुणैकान्ते मामाहूय प्रदत्तमिदं पत्रमस्ति, तत् स्वीक्रियताम्" इति कटिबन्धनान्निःसार्य ददतो हस्तादादाय, उत्थाय च स्तम्भावलम्बित-दीप-प्रकाशेन तूर्ष्णीं मनस्येव पठित्वा, आकुञ्च्य, पूर्वोपविष्ट-मञ्चे उपविश्य, पुनः पुनःपुन्येना-

चुम्बितं यौवनं यया तामपि, न त्यक्त=न दूरीकृतः, बालभावः= अर्भकत्वं, यया ताम् । आकृतिम्=आकारम् । गुप्तविषयाणाम्=रहोविचार्याणाम् । सन्धानेषु=अनुसन्धानेषु ज्ञानेषु । अवस्थाय, तूष्णीमिति शेषः । द्रक्ष्यामि, सामान्यभविष्यति । मञ्चे=पर्यङ्के । "शयनं मञ्चपर्यङ्क-

है कि उनके लोग विघ्नों से बाधित नहीं होते ।

दुर्गाध्यक्ष—(नतमस्तक हुए सवार को 'जियो' ऐसा कहकर) बैठो, बैठो !

तब दुर्गाध्यक्ष तरुणाई को छूती हुई भी बालभाव का त्याग न करने वाली उसकी मधुर आकृति को देखते हुए विचारने लगे कि "श्रीमान् महाराष्ट्रराज ने ऐसे गुप्त विषयों के ज्ञान के लिए इस बालक को कैसे भेज दिया"। क्षणभर रुककर "पहले देखूँ क्या यह कोई पत्र आदि लाया है"—यह निश्चय करके, "श्रीमान्जी, स्वामी ने एकान्त में मुझे बुला कर यह पत्र दिया है, इसे स्वीकार कीजिये", यह कहकर कमरबन्द से पत्र निकालकर देने वाले उस अश्वारोही के हाथ से पत्र लेकर, उठकर, खम्भे पर अवस्थित दीपक के प्रकाश में चुपचाप मन में ही पढ़कर तथा मोड़कर, पहले जिस कुर्सी पर बैठे थे उसी पर

लि-पटल-विनिन्दकांस्तस्य कुञ्चित-कच-गुच्छान्, उत्पत्स्यमान-केशाङ्कुर-स्विन्नमुत्तरोष्ठम्, अतिमसृण-कमलोदर-किशलय-सोदरौ कपोलौ, उन्नतमंसम्, दीर्घौ बाहू, माधुर्य-वर्षिणी अक्षिणी, विनयभरेणेव विनतां कन्धराम्, तेजसेव गौरमङ्गम्, दाक्षिण्येनेवाङ्कितं ललाटम्, भद्रतयेव च स्नातं शरीरं विलोकयन्, वारं वारं विचिन्तयंश्च मशकैरप्यशङ्कनीयम्, मक्षिकाभिरप्यनीक्षणीयम्, समीरणेनाप्यनीरणीयम्, प्रकाशेनाप्यप्रकाशनीयम्, लेखन्याऽप्य-

पल्यङ्का"इत्यमरः। अलिपटलविनिन्दकान् = भ्रमरसमूहाभिभावकान्। कार्ष्ण्येन भ्रमरनिचयोऽपि पराजित इति नितान्तकार्ष्ण्यं व्यङ्ग्यम्। उत्पत्स्यमानेषु = उदेष्यमाणेषु। केशाङ्कुरेषु = श्मश्रुप्ररोहेषु। स्विन्नम् = आर्द्रम्। उत्तरम्=ऊर्ध्वञ्च, तदोष्ठम्। "ओत्वोष्ठयोः समासे वे' ति वृद्धि विकल्पः। अतिमसृणकमलस्य=सुचिक्कणपद्मस्य, उदरे=मध्ये, यत् किशलयम्=पलाशम्, तस्य सोदरौ = तुल्यौ। आर्थीयमुपमा। विनताम्=नम्राम्। कन्धराम्=गलम्। स्वभावतो विनतत्वस्य विनयभरेणेवेत्युत्प्रेक्षणम्। एवमुत्तरत्रापि। दाक्षिण्येन=औदार्येण। भद्रतया= शान्ततया। मशकैरपि, कर्णान्तिके स्वनद्भिरपि न शङ्कितुमर्हमिति ध्वनिः। अनीक्षणीयम्=अनवलोकनीयम्। अत्र वृत्तान्तगत गोप्यतमत्वं मशकैर-

बैठकर, दुर्गाध्यक्ष, भ्रमर समूह के विनिन्दक उस सवार के घुँघराले बालों के गुच्छों, जिन पर रेख निकल रही थी ऐसे स्वेद से आर्द्र होठ, अत्यन्त कोमल कमल के भीतरी पत्तों के सहोदर कपोलों, ऊँचे कन्धों, दीर्घ बाहुओं, माधुरी की वृष्टि करने वाली आँखों, मानों नम्रता के भार से झुकी हुई गर्दन, मानों तेज से गौर वर्ण वाले अङ्ग, उदारता से अंकित से मस्तक और शान्त भाव से स्नात से शरीर को बार-बार देखते हुए, तथा मच्छरों से भी अशङ्कनीय, मक्षिकाओं से भी न देखे जा सकने वाले, वायु से भी न हिलाये जा सकने वाले, प्रकाश से भी प्रकाशित न किये जा सकने वाले, लेखनी से भी न लिखे जा सकने वाले

लेखनीयम्, पत्रेणापि चाप्रकटनीयम्, गुप्ततमं वृत्तान्तम्, उपबर्ह-लग्न-पृष्ठः, भ्रूमध्य-स्थापिताचल-दृष्टिः, क्षणं समाधिस्थित इव विचारपरवशोऽभूत्।

ततश्च पुनः सादिन आननं समवलोक्य, समप्राक्षीत्—वत्स ! तत्रभवतः समीपात् कदा प्रचलितोऽसि ?

स ऊचे—भगवन् ! मार्त्तण्ड-मण्डले निम्लोचति।

तेनोक्तम्—कथं तर्हि प्रलम्बमुत्कटं चाद्ध्वानमुल्लङ्घ्य, वात्या विधूय, अल्पेनैव समयेन समायातोऽसि ?

स चाह—श्रीमन् ! ईदृश एवाऽऽसीदादेशोऽत्र भवतः।

प्यशङ्कनीयमित्यादिना प्रकारान्तरेणाभिहितमिति पर्यायोक्तमलङ्कारः। उपबर्हलग्नपृष्ठः=उपधानसंपृक्तपृष्ठाशः। "उपधानं तूपबर्हः" इत्यमरः। भ्रूमध्ये स्थापिता अचला दृष्टिर्येन सः। अत एव "समाधिस्थित इवे" त्युपमानोपमेयभावः।

निम्लोचति=अस्ताचलं गच्छति। आसन्नास्तमनसमय इति यावत्।

अत्रन्तम्।

वात्याः=वायुचक्राणि 'आँधी' इति हिन्दी। लोकोक्तिरलङ्कारः।

और पत्र से भी प्रकट न किये जा सकने वाले, अत्यन्त गुप्त विचारों के सम्बन्ध मे बार-बार विचारते हुए, मसनद में पीठ लगाये हुए, भौंहों के बीच अचल दृष्टि को स्थापित किये हुए, क्षण भर समाधि-स्थित से होकर विचारमग्न हो गये।

उसने फिर सवार के मुख को भलीभाँति देखकर पूछा—'वत्स ! पूजनीय शिवाजी के समीप से कब चले थे ?'

वह बोला—'भगवन्, सूर्य के अस्त होते समय।'

दुर्गाध्यक्ष ने पूछा—तो इतने लम्बे और उत्कट मार्ग को पार करके, आँधियों को चीर कर, इतने अल्प काल में ही कैसे आ गये हो ?

उसने भी कहा—'श्रीमन् पूजनीय प्रभु का ऐसा ही आदेश था।'

ततः परं च-"अस्मै गुप्तसन्देशाः कथनीया न वा ? एष स्वस्मादप्याच्छाद्य मदुक्तं प्रभुकर्णातिथीकरिष्यति न वा ? यतो लिपिः कस्यापि कर्णेजपस्य हस्तेऽपि पतेद्, इति वाग्भिरेवोदीरणीयो मम सन्देश, इति परीक्षेयैनं वाग्जालैः—"इति विविच्य दुर्गाधीशस्तेन बहुशः समालपत्। अन्ततश्च तं सर्वथा गुप्त-सन्देश-योग्यमाकलय्य, मनस्येव हर्षमनुभवंश्चिरं प्रशशंस शिवराजं यत्-"नैतेषु विषयेषु कदाऽपि सतन्द्रोऽवतिष्ठते महाराज', स सदा योग्यमेव जनं पदेषु नियुनक्ति, नूनं बालोऽप्येषोऽबालहृदयोऽस्ति, तदस्मै कथयिष्याम्यखिलं वृत्तान्तम्, पत्रं च केषुचिद् विषयेषु समर्पयिष्यामि ।" एवमालपच्च—

स्वस्मादपि, यदा स्वत एवाऽऽच्छादयति तदा किमु वक्तव्यं परस्मादिति ध्वनिः। एवञ्चाऽऽत्मवाची स्वशब्द इति तत्त्वम्। कर्णेजपस्य= सूचकस्य। "तत्पुरुषे कृति बहुलमि"ति विभक्तेरलुक्। परीक्षेय=परीक्षां कुर्याम्। तेन, "वृद्धो यूने"ति दर्शनेन सहार्थकशब्दाभावेऽपि तृतीया। तन्द्रया=आलस्येन, सहितः, सतन्द्रः।

उससे आगे भी—"इससे गुप्त संदेश कहने चाहिए या नहीं, यह मेरी कही हुई बातों को अपने से भी छिपाकर प्रभु के कानों तक पहुँचायेगा या नहीं ? लिखा हुआ पत्रादि किसी भी चुगलखोर के हाथ में भी पड सकता है। अतः अपना संदेश मौखिक ही कहना चाहिए। इसलिए वाग्जाल से इसकी परीक्षा कर लूँ"—यह विचार कर दुर्गाधीश ने उसके साथ बहुत कुछ बातचीत की। और अन्त में उसे सर्वथा गुप्त संदेश के योग्य समझ कर, मन ही मन हर्ष का अनुभव करते हुए, महाराज शिवाजी की बडी देर तक प्रशंसा की कि महाराज ऐसे विषयों में कभी भी असावधान नहीं रहते, वह सदा योग्य व्यक्ति को ही पदों पर नियुक्त करते हैं। अवश्य ही यह बालक होने पर भी अबाल हृदय वाला है, अतः इससे सारा वृत्तान्त कह दूँ और कुछ विषयों से सम्बद्ध पत्र भी दे दूँ। फिर ऐसी बातचीत की।

दुर्गाधीशः—मन्ये क्षत्रियोऽसि ।

सादी—आम् श्रीमन् !

दुर्गा०—[स्मित्वा] नान्येषामपत्यान्येवं तेजस्वीनि दृढ-हृदयानि प्रभुभक्तानि च भवन्ति । [पुनः सम्मुखमवलोक्य] किं ते नाम ?

सादी—[अञ्जलिं बद्ध्वा] आर्य ! मां रघुवीरसिंह इति वदन्ति जनाः ।

दुर्गा०—चिरञ्जीव [क्षणं विरम्य] अस्तु,सम्प्रति दुर्गात् बहिरेव साम्मुखीने हनूमन्मन्दिरे रात्रिमतिवाह्य, श्वस्तु किञ्चिदुदञ्चति मरीचिमालिनि अत्राऽऽगत्य पत्रादिकं गृहीत्वा महाराज-निकटे यातासि । रघुवीरः—'बाढम्' !

इति शिरो नमयित्वा, प्रतिनिवृत्य, पनस शाखातोऽश्वमुन्मुच्य,

दुःखेन गम्यत इति दुर्गलक्षणं तद्भेदादिकञ्च पुराणेषु द्रष्टव्यम् । साम्मुखीने = सम्मुखस्थे । अतिवाह्य = यापय,उदञ्चति = उदयं प्राप्नुवति । मरीचिमालिनि=सूर्ये,यातासि = गन्तासि । प्रापणार्थकाद् याते-

---

दुर्गाधीश—लगता है, क्षत्रिय हो ?

घुड़सवार—हाँ ! श्रीमन् ।

दुर्गाधीश—(मुस्करा कर) अन्य की सन्तानें ऐसी तेजस्विनी, दृढहृदय और प्रभुभक्त नहीं होतीं । (पुनः सामने देखकर) तुम्हारा नाम क्या है ?

सवार—(अञ्जलि बाँध कर) आर्य ! लोग मुझे रघुवीर सिंह कहते हैं ।

दुर्गाध्यक्ष—चिरञ्जीव ! (क्षण भर रुक कर) खैर, इस समय दुर्ग से बाहर ही सामने वाले हनुमानजी के मन्दिर में ही रात बिताओ, सवेरे सूर्य के कुछ निकलते ही यहाँ आकर पत्रादि लेकर महाराज के पास चले जाना । रघुवीर सिंह ने "बहुत अच्छा !" यह कह कर, प्रणाम कर, लौट कर,

दुर्गाध्यक्ष-प्रेषितस्य भृत्यस्यैकस्य हस्ते वल्गादान-पुरःसरं समर्प्य, अपर-दासेरकेण व्यादिष्ट-मार्गो नव-वारिद-वारि-बिन्दु-वृन्द-सम्पर्क-प्रकटित-सिन्धुर-सन्दोह-सन्तर्पण-मधुरगन्धि रजनीकर-कर-निकर-विरोचिता भूमिमालोकयन्, मन्दं मन्दमाससाद मारुति-मन्दिरम्। तत्र चाऽऽगन्तुकानामेव निवासाय कलित-यथोचित-साधनाना प्रकोष्ठानामन्यतमे प्रविश्य, गवाक्षानुन्मुद्र्य, वाताभिमुखं नाग-

---

लुँटि मध्यमपुरुषैकवचने। अपरदासेरकेण = इतरभृत्येन, व्यादिष्टमार्गः = प्रदर्शिताध्वः। नववारिदस्य = नूतनमेघस्य, वारिबिन्दूनाम् = जलकणानाम्, वृन्दस्य = समूहस्य, सम्पर्केण = संसर्गेण, प्रकटितः = प्रादुर्भावितः, सिन्धुरसन्दोहस्य = गजयूथस्य, सन्तर्पणः = तृप्तिजनकः, मधुरः = हृद्यः, गन्धो यस्यास्ताम्। रजनीकरस्य = शशिनः, कराणाम् = दीधितीनाम्, निकरेण = वृन्देन, विरोचिताम् = विशेषतः शोभिताम्। भूमेर्विशेषणद्वयमिदम्। आगन्तुकानाम् = अतिथीनाम्। कलितानि = सम्पादितानि, यथोचितम् = यथायोग्यम्, साधनानि = सामग्र्यः, येषु तेषाम्। प्रकोष्ठानाम् = कक्षाणाम्, "कमरा" पदवाच्यानाम्। गवाक्षान् = वातायनानि, "खिड़की" इति हिन्दी। उन्मुद्र्य = उद्घाट्य, "खोलकर" इति हिन्दी। नागदन्तिकासु = कीलिकासु, "खूँटी" इति हिन्दी।

कटहल की शाखा से घोड़े को खोल कर, दुर्गाध्यक्ष द्वारा भेजे गये एक नौकर के हाथ में उसकी लगाम देकर, दूसरे सेवक द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से नये बादलों के जलकणों के सपर्क से हाथियों के यूथों को तृप्ति देने वाली मधुर गन्ध को प्रकट करने वाली और चन्द्रमा की किरणमाला से सुशोभित भूमि को देखता हुआ रघुवीर सिंह धीरे-धीरे हनुमान-जी के मन्दिर तक आया। वहाँ आगन्तुकों के निवास के लिये ही सभी आवश्यक सामग्री से सम्पन्न कमरों में से एक कमरे में प्रवेश करके, खिड़की खोल कर, कवच और वस्त्रों को खूँटियों पर हवा के रुख की

दन्तिकासु वर्म वस्त्राणि चावलम्बय्य आसन्न-कूपाज्जलमुत्तोल्य हस्त-पादं प्रक्षाल्य, हनूमन्मूर्त्तिं दृष्ट्वा, कमपि नित्य-नियममिव निर्वाह्य, दुर्गाध्यक्षप्रेषितं किञ्चिदाहारादिकमुपगृह्य,ग्रीष्मसुखावहानां वातानां सुखमनुभवन्, कदाचिच्चन्द्रम्, कदाचित्तारकाः; कदाचिद् गिरि-शिखराणि, कदाचित् दुर्ग-प्राचीरम्, कदाचित् सुदूर-पर्य्यटद्यामिक-यातायातम्, कदाचिन्नतोन्नतभूभागान्, कदाचिच्चाभ्रङ्कषान् हनूम-न्मन्दिर-कलशान् अवलोकयन्, मन्दिरात् पश्चिमतः परिक्रमा-पर-पादाहति-पिच्छिल-पाषाण-पट्टिका-परिष्कृत-वेदिकायां पर्यटन्

अवलम्बय्य = लम्बयित्वा । उत्तोल्य = उद्धृत्य । हस्तपादम्, प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावः । नित्यनियमम् = सन्ध्यादिकम् । निर्वाह्येवेति सम्बन्धः । यात्रायामसमये समुचितरूपेण तदकरणमिवार्थव्यञ्जयम् । वातानाम् = वायूनाम् । दुर्गस्य प्राचीरम् = प्रान्ततो वृतिः, "प्राचीरं प्रान्ततो वृतिरि" त्यमरः । सुदूरं पर्यटता यामिकानाम् = प्रहरिणाम्, यातायातम् । अभ्रम् = मेघम्, "अभ्रं मेघो वारिवाहस्तनयित्नुर्बलाहक" इत्यमरः, कषन्ति = उल्लिखन्तीत्यभ्रंकषास्तान् । "सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कष" इति खच्, "खित्यनव्ययस्ये"ति मुम् । परिक्रमापराणाम् = प्रदक्षिणानिरता-नाम्, पादाहतिभिः = चरणताडनैः, पिच्छिलाभिः = पङ्किलाभिः, गमा-गमचिह्नमयीभिरिति यावत्, पाषाणपट्टिकाभिः = प्रस्तरखण्डैः, परि-

ओर लटका कर, पास के कुँए से पानी भर कर, हाथ पैर आदि धो कर, हनुमन्मूर्ति के दर्शन कर, कुछ नित्य-नियम-सा पूरा कर, दुर्गाध्यक्ष द्वारा भेजा गया भोजन खाकर, ग्रीष्मकाल में अच्छी लगने वाली वायु के स्पर्श-सुख का अनुभव करते हुए, कभी चन्द्रमा, कभी तारों, कभी पर्वत शिखरों, कभी दुर्ग की चहारदीवारी, कभी दूर तक गश्त लगाते हुए पहरेदार के गमनागमन, कभी नतोन्नत भूभाग और कभी आकाश चुम्बी मन्दिर के कलशों को देखते हुए, मन्दिर के पश्चिम ओर, परिक्रमा करने वाले लोगों के पैरों के आघात से पङ्किल और

कञ्चिन् समयमतिवाहयाम्बभूव ।

तावत् तेन पयः-फेनासार-च्छवि-विजित्वरया ज्योत्स्नया द्विगुणितोत्साहेन, धीर-समीर-स्पर्श-शान्त-श्रमेण, प्रस्फुरच्चन्द्रकला-कलिका-भ्रमद्-भ्रमर-झङ्कार-भर-मन्द्र-स्वर-पीयूष - शीकर-परिमार्जित-श्रवणेन समश्रूयन्त केचित् शुकीमूकयन्तः, हंसीर्ध्वंसयन्तः, सारिकाः सारयन्तः, कोकिलान् विकलयन्तः, वीणां च विगणयन्तः,काकली-

ष्कृतायाम् = भूषितायाम्, वेदिकायाम् = प्रतर्दिकायाम् । अतिवाहयाम्बभूव = गमयाञ्चकार ।

तावत्तेन स्वरालापाः समश्रूयन्तेति सम्बन्धः । तं विशिनष्टि—पयःफेनानाम् = दुग्धडिण्डीराणाम्, आसारस्य = धारासम्पातस्य, छवेः = शोभायाः, विजित्वरया = जयनशीलया, द्विगुणितोत्साहेन = प्रवर्द्धितहर्षेण । धीरसमीरस्य = मन्दवातस्य, स्पर्शेन शान्तः = अपगतः, श्रमः = खेदो यस्य तेन । प्रस्फुरन्त्या = चाञ्चल्यमुपगच्छन्त्या, चन्द्रकलया = चन्द्रिकया, विकसितासु कलिकासु, शाकपार्थिवादिगणीयमध्यमपदलोपिसमासः, भ्रमताम् = चरताम्, भ्रमराणां झङ्कारभरेण = गुञ्जनातिरेकेण, सञ्जातो मन्द्रस्वर एव पीयूषम् = अमृतम्, तस्य शीकरैः = कणैः, परिमार्जिते = शोधिते, श्रवणे = कर्णौ यस्य तेन । केचित् = कियन्तश्चित्, स्वरालापाः । शुकी-हंसी-सारिकादिस्वरविजेतृत्वेनातिश्रेष्ठत्वं निखिलस्वर-

प्रस्तरखण्डों से सुशोभित वेदी (चबूतरे) के ऊपर टहलते हुए कुछ समय विताया ।

तब तक दूध के फेन की छटा को जीतने वाली चाँदनी से द्विगुणित उत्साहवाले तथा मन्दवायु के स्पर्श से शान्त परिश्रम वाले एवं छिटकाती हुई चाँदनी से विकसित कलियों पर मँड़राते हुए भौरों के गुञ्जन भार से मन्द्रस्वर रूपी अमृत कणों से शुद्ध हुए कर्णों वाले, उस सवार ने, शुकों को मूक बनाने वाले, हसियों को विजित करने वाले, सारिकाओं को पलायित करने वाले, कोयल को विकल बनाने वाले और

कलमयाः स्वरालापाः। श्रवणेनैव तेनावगतं यत्, आलापा एते कस्या अपि बालिकायाः, सा च लज्जा-परवशा; यतो नोच्चैर्गायति, उच्च-कुलप्रसूता; यतो नान्यासामेवमुदारा वाक्, समीपवर्तिनी; यतः स्फुटः स्वरः, पूर्वस्यामुपविष्टा च; यतस्तत एव मूर्छन्ति मूर्च्छनाः।

अथ कर्णाविव गृहीत्वा आकृष्टो रघुवीरसिंहो मन्दिरं दक्षिणा प्रदक्षिणीकृत्य तयैव प्रदक्षिणा-वेदिकया तत्क्षणमेव मन्दिरस्याग्नि-कोणे कपोत-पोतक-गङ्कार-मधुर-कपोतपालिकाधस्तम्भारम्भ-

---

विलक्षणत्वञ्च ध्वनितम्। बालिकायाः=बाल्ययौवनसन्धौ विद्यमानायाः। लज्जापरवशा = अपाधीना। अप्राप्तपूर्णयौवनत्वात्त्रपापरवशता। कन्याना हि लज्जाधीनत्वं लक्षणकोटिप्रविष्टम्। यतः=यस्माद्धेतोः। मूर्च्छना इति पाठः "अचो रहाभ्यामि"ति छद्वित्वे चत्वें च तत्साधुत्वम्। तुकस्तु न सम्भावना, रेफव्यवधानेन छस्य दीर्घात्परत्वाभावादिति ध्येयम्।

कर्णाविव गृहीत्वाऽऽकृष्ट इत्यत्र लोकोक्तिरलङ्कारः। दक्षिणा=दक्षिणतः, आजन्तमव्ययम्, तद्योगे द्वितीया। कपोतपोतकानाम्=पारावत-शावकानाम्, गङ्कारेण=तज्जातीयशब्देन, मधुरायाः=मनोहरायाः, कपोतपालिकायाः=विटङ्कस्य, "कपोतपालिकायान्तु विटङ्कं पुन्नपुंसकमि"

वीणा को निन्दित करने वाले काकली ध्वनिमय स्वरों के आलाप सुने।

सुनने से ही उसने जान लिया कि ये आलाप किसी बालिका के ही हैं और वह लज्जा से दबी हुई है, क्योंकि ऊँचे स्वर से नहीं गा रही है तथा बड़े कुल में पैदा हुई है, क्योंकि औरों की वाणी इतनी उदार नहीं हो सकती एव वह यहीं समीप में ही रहती भी है, क्योंकि स्वर बिल्कुल स्पष्ट है, पूर्व दिशा में बैठी है, क्योंकि उधर से ही ये स्वर लहरियाँ आ रही हैं।

इसके बाद कान पकड कर खींचे गये से रघुवीरसिंह ने मन्दिर की दक्षिण ओर से प्रदक्षिणा करके, उसी प्रदक्षिणा की वेदी से, उसी क्षण, मन्दिर के अग्निकोण में स्थित कबूतरों के बच्चों के 'गुटरगूँ' के मधुर शब्द से कपोतपालिका (ढाबली)—के निचले खम्भे के

निकटे समुपतस्थे अवालोकयच्च—यत् पूर्वस्यामस्ति विशाला पुष्प-वाटिका, यस्यामतिमुक्त-लताः सौरभेण विष्णुपदमपि मदयन्ति, यूथिकाः सुगन्ध-तरङ्गैर्हरितामपि हृदयं हरन्ति, पाटलि-पटलानि अलि-पटल-रसनाश्चटुलयन्ति, मालतिकाश्च मरन्द-बिन्दु-सन्दोहैर्वसुमतीं वासयन्ति। तस्यां मन्दिर-पूर्वद्वार-सम्मुखे एवास्त्येका परम-रमणीया ज्योत्स्ना-स्पर्श-प्रगटित-द्विगुणतर-चाकचक्या

त्यमरः, अधः=निम्नांशे, स्तम्भारम्भस्य निकटे। अधस्तम्भेत्यत्र "खर्परे शरि वा विसर्गलोपः"। अतिमुक्तलताः=माधवीलताः, "अतिमुक्तः पुण्ड्रकः स्याद्वासन्ती माधवी लते" त्यमरः। सौरभेण=सौगन्ध्येन। विष्णुपदम्=नभः। "वियद्विष्णुपद वातु पुस्याकाशविहायसी" इत्यमरः। यूथिकाः=मागध्यः। "अथ मागधी। गणिका यूथिकाऽम्बष्ठे" त्यमरः। हरिताम्=दिशाम्। हृदयम्=मध्यम्। अन्तरालप्रान्तमिति यावत्। हरन्ति = स्वायत्तीकुर्वन्ति। पाटलिपटलानि = मोघासमूहाः। "पाटलिः पाटला मोघा काचस्थाली फलेरुहा। कृष्णवृन्ता कुवेराक्षी" त्यमरः। अलिपटलरसनाः = द्विरेफव्रातजिह्वाः। चटुलयन्ति = चञ्चलयन्ति। मालतिकाः=जातयः। "सुमना मालती जातिरि" त्यमरः। मरन्द-बिन्दु-सन्दोहैः=मकरन्दपृषद्गणैः। वसुमतीम्=वसुधाम्। वासयन्ति= सुगन्धयन्ति। परमरमणीया = नितान्तहृद्या। वेदिकाविशेषणमिदम्। ज्योत्स्नायाः = कौमुद्याः, स्पर्शेन = संसर्गेण, प्रकटित द्विगुणतर चाक-

---

निकट, खड़े होकर देखा कि—पूर्व में एक विशाल वाटिका है, जिसमें माधवी-लतायें अपने सौरभ से आकाश को भी मदमस्त बना रही हैं, जुही के पेड सुगन्धित तरङ्गों से दिशाओं के भी हृदय को हर लेते हैं, पाटरि के समूह भ्रमर कुलों की रसनाओं को चञ्चल बना रहे हैं और मालती लतायें मकरन्द बिन्दु के समूहों से पृथ्वी को सुगन्धित कर रही है। उस वाटिका में मन्दिर के पूर्व द्वार के सामने ही, एक परम सुन्दर, चाँदनी के स्पर्श से द्विगुणित चमचमाहट को प्रकट

सोपानत्रयालङ्कृत-चतुरवरोहा हंसपक्ष-वलक्ष-च्छवि-विजित्वर-धवल-ग्राव-वेदिका। अस्यामागन्तुकानामुपवेशाय रचिताः पापाणमया एव कतिचन मञ्चाः, तेषामन्यतमे उपविष्टा बालिकैका। सेयं वर्णेन सुवर्णम्, कलरवेण पुंस्कोकिलान्, केशै रोलम्ब-कदम्बान्, ललाटेन कलाधर-कलाम्, लोचनाभ्यां खञ्जनान्, अधरेण बन्धुजीवम्, हासेन ज्योत्स्नां तिरस्कुर्वती, वयसा एकादशमिव वर्ष

च्छव्यम् = कान्तिविशेषो यया सा। सोपानत्रयेण = आरोहणत्रयेण, "आरोहणं स्यात्। सोपानमि" त्यमरः, अलङ्कृता = विभूषिता, अत एव चतुर्षु = वेदसंख्याकस्थानेषु, अवरोहः = स्थितिस्थानं यस्याः सा। हंसपक्षाणाम् = कादम्बपत्राणाम्, "गरुत्पक्षच्छदाः, पत्रं पतत्रं च तनूरुहमि" त्यमरः, वलक्षायाः = सितायाः, छवेः = शोभायाः, विजित्वराणाम् = जयनशीलानाम्, धवलानाम् = स्वच्छानाम्, ग्राव्णाम् = प्रस्तराणाम्, वेदिका। मञ्चाः = उच्छ्रितभूमयः, उच्छ्रायार्थकान्मञ्चेर्घञ्, "वृद्धोऽन्धः पतिरेष मञ्चकगतः" इत्यादौ प्रसिद्धम्। बालिका, इयमेव कथानायिका। "वर्णेन सुवर्णं तिरस्कुर्वती" त्येवरूपेण सर्वत्रान्वयः। वर्णेन सुवर्णतिरस्कारोक्त्या सुवर्णरूपोपमानानादरप्रतीत्या प्रतीपालंकारः सहृदयजनसंवेद्यः। रोलम्बकदम्बान् = भ्रमरसमूहान्। बन्धुजीवम् = रक्तकम्, "रक्तकस्तु बन्धुको बन्धुजीवक" इत्यमरः। "दुपहरिया" इति हिन्दी। हासेन, हासस्य

करनेवाली तीन सीढ़ियों से शोभित, चार अवरोहवाली, हंस के पंख की-सी उज्ज्वल छवि को जीतनेवाले श्वेत पत्थरों से निर्मित, वेदी (चबूतरा) है। इस पर आगन्तुकों के बैठने के लिए पत्थर से ही बनी हुई कुछ कुर्सियाँ हैं जिनमें से एक पर एक बालिका बैठी है। यह बालिका अपने गौर वर्ण से सुवर्ण का, मधुर शब्द से पुरुष कोकिल का, बालों से भ्रमर-समूहों का, ललाट से चन्द्रमा की कला का, नेत्रों से खञ्जनों का, अधर से दुपहरी पुष्प का, हास से चाँदनी का तिरस्कार करती हुई, वय से

स्पृशन्ती, श्याम-कौशेय-वस्त्र-परिधाना, श्वेत-बिन्दु-सन्दोह-सङ्कुल-रक्ताम्बर-कञ्चुकिका,कण्ठे एकयष्टिकां नक्षत्रमालां बिभ्रती, सिन्दूर-चर्चा-रहित-धम्मिल्लेन परिशिष्टं पाणिपीडनमिति प्रकटयन्ती, हस्ते पाटलि-कुसुम-स्तबकमेकमादाय शनैः शनैर्भ्रामयन्ती, तमेवावलोकयन्ती च, अविदित-बहुल-तान-तारतम्यं मन्द-मन्दं मुग्ध-मुग्ध मधुर-मधुरं किञ्चिद् गायतीति ।

वर्णः श्वैत्यमय इति कविसमयख्यातिः। श्यामं कौशेयवस्त्रम् = पट्टवसनम्, परिधान यस्याः सा । श्वेतबिन्दूना सन्दोहैः=समूहैः, सङ्कुलस्य = व्याप्तस्य, रक्ताम्बरस्य = रक्तवस्त्रस्य, कञ्चुकी = चोलिका यस्याः सा । बहुव्रीहौ "शेषाद्विभाषे" ति कपि "केऽण" इति ह्रस्वः । एकावलीम् = एकयष्टिकाम् । नक्षत्रमालाम् = सप्तविंशतिमुक्तामयीम् । "एकावल्येकयष्टिका । सैव नक्षत्रमाला स्यात् सप्तविंशतिमौक्तिकैरि" त्यमरः । सिन्दूरचर्चारहितेन = कुङ्कुमसम्पर्कशून्येन, अनूढाः सीमन्ते सिन्दूरं न धारयन्तीति प्रथा । धम्मिल्लेन = संयतकेशसमूहेन, "धम्मिल्लः संयताः कचा" इत्यमरः । पाणिपीडनम् = विवाहः । परिशिष्टम् = अवशिष्टम् । स्तबकः = गुच्छः,तम् । अविदित बहुल ताननतारम्यम् = तानोत्कर्षापकर्षौ, यस्मिंस्तत् । क्रियाविशेषणम्, अग्रेतनानि च ।

एकादश वर्ष का स्पर्श-सा करती हुई, श्याम वर्ण के रेशमी वस्त्रों को पहने, सफेद बुँदियों के समूह से व्याप्त रक्त वर्ण की कञ्चकी धारण किये, गले में सत्ताईस मोतियों से बनी हुई एकलरी (आभूषण) पहने, सिन्दूर-सम्पर्क से शून्य सीमन्त (माँग) के द्वारा 'अभी इसका विवाह अवशिष्ट है' यह प्रकट करती हुई, हाथ में गुलाब के फूलों का एक गुच्छा लेकर उसे धीरे-धीरे घुमाती हुई और उसी को देखती हुई, तानों के क्रम-विचार से रहित कुछ मन्द-मन्द मनोहर-मनोहर और मधुर-मधुर गा रही है ।

यद्यपि नैतया सरस्वती-सरूपया अज्ञात-तातोत्सङ्ग-शयनातिरिक्त-सांसारिक-सुखया कदाऽपि गातुं शिक्षितम् , न वा गायकानां तास्ता' कर्ण-रसायन-मूर्छनाः कर्णातिथीकृता', तथाऽपि भज्यमानमपि, त्रुट्यमानमपि, आम्रेड्यमानमपि, अदर्शित-रागविशेषमपि, आरोहावरोह-ध्रुवाभोगालङ्कारादि-कथा-शून्यमपि, निज-कल्पनामात्रम् , तद्देशीय-ग्राम्य-स्त्री-गानानुकल्पम् , सुदीर्घ-स्वर-रणनं

अज्ञातं तातोत्सङ्गशयनादतिरिक्तं सांसारिकं सुखम्=विषयानन्दो यया तया । कर्णयोः=श्रोत्रयोः, रसायनानि=आनन्ददायिन्यः, मूर्छना । कर्णातिथीकृताः=श्रोत्रगोचरीकृताः । मूर्छनानां श्रोत्रगोचरत्वे स्थिते कर्णातिथीकरणरूपे भक्त्या समारोप इति समाधिर्नाम गुणः ।

गानमिदं परमसरसादि—आसीदिति सम्बन्धः । गानं विशिनष्टि-भज्यमानम्=स्खलत् । त्रुट्यमानम्=विच्छिन्नप्रायम् , पूर्वापरसम्बन्धशून्यमिति यावत् । आम्रेड्यमानम्=पुनः पुनरुच्चार्यमाणम् । यद्यपि गाने गुणताऽऽम्रेड्यमानतायास्तथाप्यनवसरे स्थितत्वे दोषत्वमेवेति वेदितव्यम् । न दर्शितः=न प्रकटीकृतः, रागविशेषः=ललिताद्यनेकभेदः, यस्मिस्तत् । आरोहः = स-रि-ग-म-प-ध-नीनामुच्चैस्त्वम् , अवरोहः = तन्नीचैस्त्वम् । ध्रुवः = स्थिरपदम् , आभोगः=रागविस्तारः, अलङ्कारः = रसादिः, तत्कथाशून्यमपि । तद्देशीयानां ग्राम्यस्त्रीणाम् = हालिकदाराणाम् ,

यद्यपि सरस्वती के समान रूपवाली तथा पिता की गोद में सोने के अतिरिक्त किसी भी सासारिक सुख को न जानने वाली इस बालिका ने न तो कभी गाना ही सीखा था और न गायकों को कानों में मधुर वर्षा करने वाली स्वर-लहरियों को ही सुना था, फिर भी स्खलिताक्षर होने पर भी, पूर्वापर सम्बन्ध शून्य होने पर भी, पुनः-पुनः उच्चारित होने पर भी, किसी विशेष राग से रहित होने पर भी, आरोह, अवरोह, ध्रुव (स्वर की स्थिरता), राग-विस्तार एव अलकार आदि के तत्त्व से शून्य होने पर भी, केवल अपनी कल्पना-मात्र, उस प्रान्त की कृषक-वधुओं के गाने के समान, ऊँची आवाज मे गाया यह गीत,

गानमिदं परम-सरस परममधुरं परमहारि चाऽऽसीत् ।

रघुवीरसिंहस्तु स्वरालाप-श्रवणेनैव परवशो विलोक्यैनां कोऽहम् ? क्वाहम् ? केयम् ? किमिदम् ? इत्यखिलं यौगपद्येनैव विसस्मार ।

अहो ! आश्चर्यम, य एष फणि-फणा-फूत्कारेष्वपि सक्रोध-हर्य्यक्ष-जृम्भारम्भेष्वपि मल्ल-तल्लजाग्र-परिस्पर्धि-खर-नखर-भल्ल-

गानस्य=गीतेः, अनुकल्पम्=तुल्यम् । सुष्ठु दीर्घाणाम्=ताराणाम्, स्वराणां रणनम्=ध्वनिः, यस्मिंस्तत् । परमहारि=अत्यन्ताकर्षकम् ।

अखिलम्=समस्तम् । यौगपद्येन=एककालम् ।

"विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा
प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः ।
तव स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो
विकारः कोऽप्यन्तर्जडयति च तापश्च तनुते ॥"

इति प्राचीनपद्यं तद्दशावधारणायानुचिन्तनीयम् ।

अहो आश्चर्यम्, "ओदि"ति प्रगृह्यत्व प्रकृतिभावश्च । फणिफणा-फूत्कारेषु = सर्पस्फटा–"फूँ"रवेषु । सक्रोधस्य = कुपितस्य, हर्य्यक्षस्य= केशरिणः, "हर्यक्षः केशरी हरिरि" त्यमरः, जृम्भारम्भेषु = मुखव्यादानोपक्रमणेषु । मल्लतल्लजानाम्=प्रशस्तमल्लानाम्, "मतल्लिका मचर्चिका प्रकाण्डमुद्धतल्लजौ । प्रशस्तवाचकान्यमूनी" त्यमरः । अग्रस्य परिस्पर्धिनः=प्रतिद्वन्द्विनः, खराः=कठोराः, नखराः=नखाः येषा ते च ते

परम सरस, परम मधुर और परम मनोहर था ।

रघुवीर सिंह उस स्वर लहरी के श्रवण मात्र से परवश होकर, उस बालिका को देख कर, 'मैं कौन हूँ ? कहाँ हूँ ? यह कौन है ? यह क्या है ?' इत्यादि सभी कुछ एक साथ ही भूल गया ।

अहो ! आश्चर्य है ! जिसने सर्पों के फनों की फुफकारों में भी, क्रोधाविष्ट सिंह की जमुहाई के समय भी, उत्तम भालों के प्रतिस्पर्धी तेज नाखून वाले रीछों के (मारने के लिये) दौड़ने के समय

धावनेष्वपि घन-घनाघन-घर्षण-विघट्टित-गैरिक-व्रात-जल-प्रपात-गिरि-गह्वारोत्फालेष्वपि तरलतर-तरङ्ग-तोयावर्त्त-शताकुल-तरङ्गिणी-तीव्रतर-वेगेष्वपि गण्डक-मण्डल-घोणा-घर्षण-घोर-घर्घराघोष-घोरतर-प्रान्तरेष्वपि च धैर्यं नात्याक्षीत्, कार्यजातं न व्यस्मार्षीत्, आत्मानं च न न्यगकार्षीत्; तस्याधुना स्विद्यन्त्यङ्गानि, एतते गात्र-

भल्लाः=ऋक्षाः, "भल्लो भल्लूकशस्त्रयोरि"ति कोषः, तेषा धावनेषु=मार्गार्थत्वरितगतिषु। घनानाम्=सान्द्राणाम्, घनाघनानाम् = वर्षनिरतवारिदानाम्, "शक्रो घातुकमत्तेभो वर्षुकाब्दो घनाघन" इत्यमरः, घर्षणेन=घट्टनेन, विघट्टितेषु=विदलितेषु, गैरिकव्रातेषु=गैरिकमिलितप्रस्तरखण्डेषु, जलप्रपाताः=आसाराः, येषु तादृशानि यानि गिरिगह्वराणि तेषाम्। उत्फालेषु = उत्कूर्दनेषु। तरलतराः = अतिचञ्चलाः, तरङ्गाः=ऊर्मयः, येषु तादृशाना तोयानाम् = वारीणाम्, आवर्त्तशतैः=असंख्यभ्रमरिकाभिः, आकुलानाम् = क्षुभितानाम्, तरंगिणीनाम्=नदीनाम्, तीव्रतरेषु = अतितीव्रेषु, वेगेषु = ओघेषु। गण्डकमण्डलस्य = खड्गिसमूहस्य, घोणानाम्=नासानाम्, "घोणा नासा च नासिके" त्यमरः, घर्षणेन, घोरः=भयावहः, यो घर्घराघोष· = घर्घररवः, तेन घोरतराः=अतिकठोराः, प्रान्तराः=दूरशून्याध्वानः, तेषु। अनुप्रासोऽत्र गद्यसमूहे। न-अत्याक्षीत्=न त्यक्तवान्। न व्यस्मार्षीत्=न विस्मृतवान्। न न्यगकार्षीत्=न न्यक्कारमकरोत्, न नीचैरमन्यतेति यावत्। स्विद्यन्ति=

भी, घने बरसते हुये बादलों के घर्षण से विदलित हुये और गेरू मिले हुये पत्थरों पर गिर रही जलधाराओं वाली पहाड़ी गुफाओं में कूदने में भी, अति चञ्चल तरंग वाले जल में विद्यमान सैकड़ों भँवरों से भरी हुयी नदियों के तीव्रतर वेग में भी, गैंडों के समूह की नासिकाओं के घर्षण से उत्पन्न घोर घर्घर शब्द के कारण भयानक, दूर तक फैले शून्य मार्गों में भी धैर्य नहीं छोड़ा, अपना काम नहीं भुलाया, अपने को पतित नहीं किया, इस समय उसी के अंग पसीने से तर हो रहे

यष्टिः, विमनायते हृदयम्, अञ्चन्ति रोमाणि, क्षुभ्यति च मनः। तत् कथमिदम्? किमिदम्? कुत इदम्? अहह! सत्यम्! वीर-बालोऽप्येष प्राप्यावसरम् आहतो मदन-मृगयुना।

तावदकस्माद् "रघुवीर! रघुवीर! त्वं शिववीरस्य चरोऽसि, गूढाभिसन्धिषु प्रेष्यसे, अल्पं तव वेतनम्, साधारणी तवावस्था, खड्ग-धारावलेहनमिव कष्टतरं तव कार्यम्, कैशोरं वयः, अवहु-

---

स्वेदवन्ति भवन्ति। एजते=कम्पते। विमनायते = वैक्लव्यमधिगच्छति। अञ्चन्ति=उद्गतानि भवन्ति। क्षुभ्यति=क्षोभमनुभवति। मदन एव मृगयुः=व्याधस्तेन। रूपकम्।

वीररसप्रधानेऽस्मिन् काव्ये तद्गतया विप्रलम्भशृङ्गारवर्णनमिदम्। सौवर्णीरघुवीरसिंहावालम्बनविभावौ, रघुवीरधैर्यध्वंससमुद्भूताः स्वेदगात्र-कम्पनादयोऽनुभावाः, निर्वेदादयश्चाग्रेवाच्या व्यभिचारिण इति विभावनीयम्।

तावदकस्मादन्तःकरणेन स्वयमेव प्रबोधितः पुनस्तामेवैक्षिष्टेति सम्बन्धः। "शिववीरस्य चरोऽसी" त्यनेनोच्चजनसपर्किणस्ते न युक्तमिदमिति व्यञ्जितम्। तथा च प्राक्तनं पद्यम्—"न गणित यदि जन्म पयोनिधौ, हरशिरस्थितिभू-रपि विस्मृता"। गूढाभिसन्धिषु = गुप्तकृत्येषु। अल्पम् = सस्त्रीकनिर्वा-हायोग्यम्। नाद्यत्व इव तदानीं दरिद्रा अलब्धभृतयश्चोद्वाह्य कामपि ललना स्वयं तस्याश्च जीवनं व्यर्थयन्ति स्मेति विशय्यते। साधारणी तवावस्था, लोकोक्तिरियम्। अवस्था=दशा। वयोऽर्थकत्वे तु—"कैशोरं वय" इत्यस्य वैयर्थ्यापात इति ध्येयम्। खड्गधाराया अवलेहनम् = रसनयाऽऽस्वादनम्।

हैं, मन खिन्न हो रहा है, रोमाञ्च हो रहा है, हृदय क्षुब्ध हो रहा है। तो यह कैसे है? यह क्या है? यह कहाँ से है? अरे! सचमुच इस वीर बालक को भी शिकारी कामदेव ने अवसर पाकर घायल कर ही दिया।

तब तक अकस्मात् "रघुवीर! रघुवीर! तुम शिववीर के दूत हो, गूढ कार्यों में भेजे जाते हो, तुम्हारा वेतन अल्प है, स्थिति साधारण है, तलवार की धार को चाटने की तरह अत्यन्त कठिन तुम्हारा काम है,

दर्शि हृदयम्, सर्वत्र जागरूको राजदण्डः, अवितर्कणीया च भाविनी घटना। तन्मा स्म त्वं मुखचन्द्रावलोकनैरधर-सीधु-तृपाभिः, कोमलाङ्गाऽऽलिलिङ्गिपाभिः, मधुरालाप-शुश्रूपाभिश्चाऽऽत्मानं विक्रोणीष्व"-इत्यन्तःकरणेन स्वयमेव प्रबोधितो नेत्रे प्रमृज्य, स्तम्भावष्टम्भं परिहाय, लोचनयोरुपरि स्फुरतः कुञ्चित-कचानपसार्य, शीतलं निःश्वस्य च, आत्मनो दशां स्मरन्नेव पुनस्तामेव कौमारात्परं वयश्चुचुम्बिपन्ती कुसुम-कुड्मल-घूर्णन-व्याजेन यूनां

'राजसेवा मनुष्याणामसिधारावलेहनम्।
पञ्चाननपरिष्वङ्गो व्यालीवदनचुम्बनम्॥"

इत्युक्तेः। जागरूकः = अनिद्रितः। सर्वत्र लब्धप्रसर इति यावत्। इयमपि लोकोक्तिः। मास्म मुखचन्द्रावलोकनादिभिरात्मान विक्रीणीष्वेति सम्बन्धः। अधरस्थितस्य सीधुनः = ऐक्षवमद्यस्य, तृपाभिः = तृष्णाभिः। कोमलाङ्गालिलिङ्गिपाभिः = मृदुतन्वाश्लेषवाञ्छाभिः, मधुरालापशुश्रूपाभिः = हृद्यशब्दश्रवणमनोरथैः। प्रमृज्य = प्रोञ्छ्य। स्तम्भावष्टम्भम् = स्थगितताम्। सौवर्णादर्शनोत्था जडतामिति यावत्। शीतलं निःश्वस्य, लोकोक्तिः। "ठण्डी सास लकर" इति लोके, स्वदशास्मरण-खेदसमुत्थमिदम्। कौमारात्परं वय = योवनम्। "कौमारं यौवनं जरे"

अभी किशोर वय है, अल्पदशा हृदय है और राजदण्ड सभा ओर सतर्क है तथा भविष्य अचिन्तनीय है। तो तुम मुखचन्द्र के अवलोकन से, अधर-वारुणी के पान की तृष्णा से, कोमल अङ्गो के आलिंगन की अभिलाषा से और मधुर शब्दो के सुनने की आकांक्षा से अपने को मत बेचो," इस प्रकार अन्त करण द्वारा स्वयं ही उद्बुद्ध होकर, आँखों को पोंछकर, उसके दर्शन से उत्पन्न जडता को त्याग कर, आँखों पर लहराते हुए घुँवराल बालों को हटाकर, ठंढी साँस लेकर, अपनी दशा का स्मरण करते हुए ही, फिर एक बार, उस यावन के चुम्बन की आकांक्षिणी पुष्पकलिका को घूरने के बहाने युवको के मन को

मनो घूर्णयन्तीं सौन्दर्य-सारावतार-स्वरूपामैक्षिष्ट।

अथ सा तु "सौवर्णि! सौवर्णि! तातस्त्वामाकारयति"—इति कस्यापि वटोरिव वाचमाकर्ण्य, "आम्! एषा आगच्छामि"—इति मधुरमुदीर्य, उत्थाय, वेदिकातोऽवतीर्य, वाटिकायामेव दक्षिणतः सुधा-धवलमेकं गृहं प्राविशत्।

रघुवीरसिंहस्य समीपत एव गतेति गमन-समये सचकितं सगति-स्तम्भं परिवृत्त-ग्रीव "कोऽयम्?" इत्येनं क्षणमवलोकया-मास। परतश्च "स्यात् कोऽपि" इति समुपेक्ष्य गृहं प्रविष्टेत्यपगेऽपि

त्यवस्थात्रितयाभिप्रायम्। चुचुम्बिषन्तीम् = चुम्बितुमिच्छन्तीम्। स्प्रष्टुम-भिलषन्तीमिति यावत्। कुसुमकुड्मलघूर्णनव्याजेन = सुमकलिकापरि-चालनकपटेन। घूर्णयन्तीम् = परिचालयन्तीम्। सौन्दर्यसारस्य = सुन्दरतातत्त्वस्य, अवतारस्वरूपाम् = देहधारिणीम्। पिण्डीभूतसौन्दर्या-मिति यावत्। आगच्छामि, वर्त्तमानसामीप्ये "वर्त्तमानवद्वा" सुधाधव-लम्=चूर्णकसितम्। चकितेन = विस्मयेन सह वर्त्तते यस्या क्रियायान्तत्। सगतिस्तम्भम् = सगमनावरोधम्, परिवृत्तग्रीवम् = परिवर्तितकन्धरम्।

घूरती हुई सौन्दर्य के सार की अवतार स्वरूपा उस (कन्या) को देखने लगा।

और वह "सौवर्णि! सौवर्णि! पिता जी तुम्हें बुला रहे हैं" इस प्रकार किसी बटु की सी आवाज सुनकर, "अच्छा आ रही हूँ" ऐसा मधुरता के साथ कह कर, उठकर तथा वेदी से उतर कर, वाटिका में ही दक्षिण की ओर स्थित एक चूने से पुते हुए स्वच्छ घर में घुस गई।

वह रघुवीर सिंह के पास से होकर ही गई। अतः उस समय उसे उसने कुछ चकित नेत्रों से निस्तब्ध हो, कुछ रुककर, गर्दन घुमाकर "यह कौन है? इस प्रकार क्षण भर रघुवीरसिंह को देखा, फिर "कोई होगा" इसी प्रकार उसकी उपेक्षा करके घर में घुस गई। यह (उस

जातो वशीकार-प्रयोग-प्रचारः ।

रघुवीरश्च ततः प्रतिनिवृत्य, पुनः स्वाधिकृत-कोण-कोष्ठ-मेवाऽऽयातः ।

तत्र च गवाक्ष-जाल-प्रसारितैः राजत-मार्जनी-निभैः कलानिधि-कर-निकरैः समूह्य संशोधित इवान्धकारे, पयः-पयोधि-फेनैरिवाऽऽस्तृते शयनीय-पीठे उपविश्य, कदाचिदध इव मुखं विदधत्, कदाचित् कपोलं करे कलयन्, कदाचिज्जाला-

---

क्रियाविशेषणानि । वशीकारप्रयोगप्रचारः=स्वायत्तीकरणविधानप्रसारः । रघुवीरविषयकमिदम् ।

स्वाधिकृतकोणकोष्ठम्=निर्दिष्टस्वावाससदनम् ।

गवाक्षजालप्रसारितैः=वातायनरन्ध्रव्याप्तैः । रजतस्येयं राजती=रौप्यमयी मार्जनी=बहुकरी "झाडू" इति हिन्दी, तत्तुल्यैः । कलानिधि-करनिकरैः=चन्द्रकिरणसमूहैः, समूह्य=सञ्चित्य । "इकट्ठा कर" इति भाषायाम् । संशोधिते=दूरीकृते । "नक्षत्रमृक्षं भं तारा तारकाऽप्युडु वाऽस्त्रियाम्" इत्यमरः । पयःपयोधिफेनैः=क्षीरवारिधिडिण्डीरैः । आस्तृते=विस्तीर्णे, शयनीयपीठे=पल्यङ्के । विदधत्=कुर्वाणः । "नाभ्यस्ताच्छतुरि"ति नुम्निषेधः । जालान्तरेण=वातायनरन्ध्रेण ।

युवक के लिए) एक और दूसरा वशीकरण के प्रयोग का अनुष्ठान हो गया ।

रघुवीर वहाँ से लौटकर फिर अपने अधिकृत कोने के कमरे में ही चला आया ।

और वहाँ पर खिडकियों की जाली से प्रविष्ट चाँदी की झाड के समान चन्द्रमा की किरणों के समूह से इक्ट्ठा करके अन्धकार के साफ-सा कर दिये जाने पर, दुग्ध-समुद्र के फेन की तरह बिछे हुए बिस्तर पर बैठकर कभी नीचे को ओर मुंह लटकाता, कभी हाथों पर

न्तरेण तारकमण्डलमवलोकयन्, कदाचित्किमिति मृषा-चिन्तनैरि-त्यात्मनैवाऽऽत्मानं सान्त्वयन्, कदाचिच्च 'निद्रे ! कुत्र इव विद्रुताऽसि ?' इत्यशान्ति बिभ्रत्, पार्श्वतः पार्श्वे परिवर्त्तमानो होरामेकामयापयत् ।

ततश्च "अहह ! शिववीर-कार्येष्वसम्पादितमेकमवशिष्यते" इति किञ्चित् संस्मृत्येव, कशयेव ताडित. सपद्युत्थाय 'मन्दिर-पुरोहित क ?' इति कांश्चिदापृच्छ्य, केनचिन्निर्दिष्टमार्गस्तस्यामेव वाटिकाया तदेव वालिकया प्रविष्टचर गृहं प्रविवेश ।

तत्र चैकस्मिन् प्रकाण्ड-कोष्ठे निरैक्षिष्ट यद्—एक.श्यामारकूट-

---

तारकमण्डलम्=भवनम् । सान्त्वयन्=समादधत् । विद्रुतासि=पलायितासि । पार्श्वत पार्श्वे परिवर्त्तमान', खेदस्वापे लोके "करवट बदलते हुए" इति समभिधीयते । लोकोक्तिः । होराम्=घटिकाम् । अयापयत्=अत्यवाहयत् । कशया=अश्वताडन्या, "चाबुक" इति भाषा । सपदि=सहसा, निर्दिष्टमार्ग =प्रदर्शितपथः ।

प्रकाण्डकोष्ठे=विशाले कोष्ठे । "बड़े कमरे में" इति हिन्दी । आर-

---

गाल रखता, कभी जाली के भीतर से तारामण्डल को देखता हुआ, कभी "ऐसे व्यर्थ के विचारों से क्या लाभ" इस प्रकार स्वय अपने को सान्त्वना देता और कभी "निद्रे ! तू कहाँ चली गई' इस प्रकार अशान्त होता हुआ, इधर-से उधर करवटें बदलता रहा । इसी प्रकार एक घण्टा बीत गया ।

तत्पश्चात् "अरे ! शिवाजी के कामों में एक अभी बाकी ही रह गया" इस प्रकार कुछ स्मरण-सा करके, रघुवीरसिंह कोड़े से प्रताड़ित-सा तुरन्त उठकर "मन्दिर के पुजारीजी कहाँ हैं ?" इस प्रकार कुछ लोगों से पूछ कर किसी के द्वारा मार्ग बतलाये जाने पर उसी वाटिका में, जिसमें वह बालिका गई थी उसी घर मे, प्रविष्ट हो गया ।

वहाँ पर एक बड़े कमरे मे देखा कि—पीतल की दायट में एक

दीपिकायां प्रदीप एको ज्वलति,कुश-काशासनान्यनेकानि आस्तृतानि आरक्त-वेष्टनेषु बहुशः पुस्तकानि पीठिका अधिष्ठापितानि, नागदन्तिकासु धौत-वस्त्राणि पट्टाम्बराणि च लम्बन्ते, एकस्मिन् शरावे मसीपात्रम्, लेखनी, छुरिका, गैरिकम्, उपनेत्रं चाऽऽयोजितमस्ति। पात्रान्तरे च खादिरं चूर्णम्, आर्द्र वस्त्र-वेष्टितानि नागवल्लीदलानि, पूगानि, शङ्कुला, देव-कुसुमानि, एलाः, जाति-पत्राणि, कर्पूरं च विन्यस्तमस्ति। तन्मध्यत एव च महोपबर्हमेकं पृष्ठत

कूटदीपिकायाम् = धातुविशेषदीपिकायाम्। "रीतिः स्त्रियामारकूट" इत्यमरः, दीपिका = दीपस्थापनार्थं निर्मितं वस्तु। "दीयट" इति हिन्दी। आरक्तवेष्टनेषु = ईषद्रक्तबन्धनवस्त्रेषु। "खारुओं का वेठन" इति हिन्दी। पीठिका अधिष्ठापितानि = उपवेशितानि; "अधिशीङ्स्थासां कर्म"ति कर्मत्वम्। शरावे = विस्तृत-पात्रे। "तस्तरी" इति हिन्दी। गैरिकम्, लिखितस्याशुद्धस्य दूरीकरणार्थम्। पात्रान्तरे = तथाविधेऽन्यपात्रे। नागवल्लीदलानि = ताम्बूलवल्लीपत्राणि। "ताम्बूलवल्ली ताम्बूली नागवल्ली" त्यमरः। पूगानि = क्रमुकाणि। शङ्कुला = पूगकर्त्री, "सरौता"इति हिन्दी। देवकुसुमानि = लवङ्गानि। एलाः = पृथ्वीकाः, "पृथ्वीका चन्द्रबालैला निष्कुटिर्बहुले" त्यमरः। जातिपत्राणि = मालतीपत्राणि। कर्पूरम् = घनसारः। महोपबर्हम् = महदुपधानम्। "मसनद" इति हिन्दी। सवा-

दीपक जल रहा है, कुश और कास के अनेक आसन बिछे हुए हैं; रक्त-वेष्टनों (खारुओं का वेठन) में बहुत-सी पुस्तकें चौकियों पर रखी हुई हैं, खूँटियों-पर धोती और दुपट्टे लटक रहे है, एक प्याले में दावात, कलम, चाकू, गेरू और चश्मा रखा हुआ है। दूसरे पात्र में कत्था, चूना, गीले कपडे में लपेटे हुए पान, सुपारी, सरौता, लवग, इलायची, मालती के पत्ते और कर्पूर रखा है।

उनके बीच में ही एक बड़े मसनद पर पीठ टेके हुए, पैरों को फैलाये

आश्रित्य पादौ प्रसार्य उपविष्ट एको वृद्धः, सम्मुखस्थश्च छात्र एकः पादौ संवाहयति, अपरश्च किञ्चित् तालीपत्र-पुस्तकं दीप-समीपे पठति, वृद्धश्च किञ्चिन्निद्रा-मन्थरश्छात्र-प्रश्नानुसारेण मध्ये मध्ये आलस्यमुन्मुच्य, किमप्यर्द्ध-विशिथिल-शब्दैरुत्तरयति—इति।

अथैनं पाद—संवाहन—परश्छात्रोऽवलोक्य 'को भवान्' इत्यपृच्छत्। एष च "श्रीमतां समर—विजयिनां महाराष्ट्र-राजाना भृत्योऽस्मि" इति मन्दमभ्यधात्। तदवधार्य वृद्धोऽपि नेत्रे विस्फार्य निद्रामन्थरेण स्वरेण "आस्यातामास्यताम्" इति प्रणमन्तमुवाच। सोऽपि प्रणम्य, समुपविश्य, दत्त-निज-परिचयः,

---

इनं करोति संवाहयति = मर्दयति। "संवाहनं मर्दनं स्यादि"त्यमरः। तालीपत्रपुस्तकम् = ताडपत्रपुस्तिकाम्। तदानीं नाद्यत्व इव कर्गजाधिक्यमासीत्। निद्रामन्थर' = निद्रयाऽलसः, निद्रोद्भूतालस्यवलितः। अर्धविशिथिलशब्दैः = स्वल्पस्रस्तैः पदैः कियदक्षरविच्छिन्नैः।

एनम् = रघुवीरसिंहम्। "निरैक्षिष्ट"क्रियाकर्तृत्वेनोपस्थितस्यावलोकनक्रियाकर्मत्वेन पुनरुपस्थित्याऽन्वादेशतेति द्रष्टव्यम्। एष च मन्दमभ्यधादिति

हुए एक वृद्ध बैठा हुआ है, सामने बैठा एक छात्र उसके पैर दबा रहा है और दूसरा किसी तालपत्र पर लिखी पुस्तक को दीपक के पास पढ़ रहा है, वृद्ध कुछ-कुछ निद्रा के आलस्य के वशीभूत होकर छात्र के प्रश्न के अनुसार बीच-बीच में आलस्य का त्याग कर टूटे-फूटे एवं ग्रस्ताक्षर शब्दों में कुछ उत्तर दे रहा है।

इसके अनन्तर पैर दबाने वाले छात्र ने इसे देखकर 'आप कौन हैं?' यह पूछा। 'मैं समरविजयी महाराष्ट्रराज का सेवक हूँ' उसने धीरे से यह उत्तर दिया। यह सुनकर वृद्ध ने भी आँखों को फैलाकर निद्रामन्थर स्वर से प्रणाम करते हुए रघुवीर सिंह से 'बैठो, बैठो' यह कहा। रघुवीर सिंह ने प्रणाम कर, बैठकर, अपना परिचय देकर कुशल

कुशलादि-वार्त्ता आलप्य, क्षणानन्तरं तदादेशानुसारेण करौ सम्पुटीकृत्य न्यवेदयत्—

"भगवन् ! प्रणम्य भवन्तं तत्रभवान् महाराष्ट्र-राजः कथयति यत्-साम्प्रतं शास्तिखान-द्वारा पुण्यनगरमपि हस्तितवता दिल्लीश्वरेण सह योद्धुमुपक्रान्तमस्ति।परमल्पीयसी अस्मत्सेना,असहयोगिनः पार्श्वस्थ-पृथिवीपतयः, अङ्ग-वङ्ग-कलिङ्गेष्वपि समुद्धूत-ध्वजाः परिपन्थिनः, शैशवादेव यवनवराकैर्महाप्रवृद्धं मम वैरम् ,सन्धेश्च कथामात्रमपि न सम्बोभवीति, यद्यप्यल्पेऽपि मामका युद्ध-विद्यासु कुश-

---

सम्बन्धः । अभ्यधात्=अकथयत् । करौ सम्पुटीकृत्य=हस्तौ संयोज्य । प्राञ्जलिर्भूत्वेति यावत् । नम्रतासूचकमिदम् ।

हस्तितवता=स्वायत्तीकृतवता । "हथियाना" इति हिन्दी, पार्श्वस्थ-पृथिवीपतयः=निकटस्थभूमिपालाः, असहयोगिनः = साहाय्याकारिणः, समुद्धूतध्वजाः = समुड्डीनपताकाः । तेष्वाधिपत्यं लब्धमिति भावः । ध्वजोद्धूननं हि विजयोपलक्षणम् । परिपन्थिनः = शत्रवः । सम्बोभवीति = अतिशयेन वारं वारं वा भवति । यङ्लुगन्तम् । तदच्छान्दसत्वम-

---

आदि की बात-चीत करके, क्षण भर के बाद, वृद्ध की आज्ञानुसार, हाथ जोड़ कर निवेदन किया—

"भगवन्, आपको प्रणाम करके माननीय महाराष्ट्र-राज कहते हैं कि इस समय शाइस्ता खाँ के द्वारा पूना नगर को हस्तगत कर लेने वाले दिल्लीश्वर के साथ हमारा युद्ध छिड़ चुका है। किन्तु हमारी सेना थोड़ी है और पड़ोसी लोग साथ नहीं दे रहे हैं। शत्रुओं ने अंग बंग और कलिंग में भी अपनी विजयपताका फहरा दी है, बचपन से ही इन यवन बेचारों के साथ हमारा वैर बढ़ता आया है और सन्धि की तो कथा मात्र की भी कभी सम्भावना नहीं है। यद्यपि थोड़े होने पर भी हमारे लोग युद्ध विद्या में कुशल हैं, फिर भी क्या होगा, यह बीच-बीच में

ला. सन्ति, तथाऽपि किं भावीति मध्ये मध्ये संशेते हृदयम्, भवांस्तु प्रसिद्धोऽस्मद्देशे दैवज्ञः, तद् विचार्य कथ्यतां किं भावि ?" इति ।

तदवगत्य, पादावाकुञ्च्य, "विजयतां शिवराज" इत्यभिधाय, ताम्बूल-वीटिकां रचयितु छात्रमेकमिङ्गितेनाऽऽदिश्य, पृष्ठस्थद्वाराभिमुख ग्रीवां परिवर्त्य, "वत्से ! सौवर्णि ! वत्से ! सौवर्णि !" इत्याकार्य, "इयमस्मि तात !" इत्यागतां च तां "वत्से ! तासां यूथिकामालिकानामेकां माला प्रसाद-मोदकं चैकमानय"-इत्यभिधाय, वाढमित्युक्त्वा तथा विहितवत्यां च तस्याम्, रघुवीराभिमुखं "गृहाण, भुक्त्वेदं प्रसाद-मधुरान्नं निद्रामनुभव, यादृशं च स्वप्नमवलोकयि-

---

भिहित प्राक् । संशेते=संशयमापद्यते दैवज्ञः=ज्यौतिपिकः । "इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः" । "दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिरि" त्यमरः ।

आकार्य=आहूय । यूथिकामालिकानाम्=मागधीस्रजाम्, प्रसादमोदकम्=भगवदर्पितमिष्टान्नम् । यद्यपि "प्रसादस्तु प्रसन्नते" त्यमरेण प्रसन्नताभिधायकत्वमेव, तथापि लोकप्रसिद्ध्या भगवदर्पितत्वार्थकत्वमेवेदृशेषु स्थलेषु । व्यवहारो हि सर्वतो बलीयान् पदार्थनिर्णायक इति ध्येयम् ।

मन में शंका होती है, आप हमारे देश के प्रसिद्ध ज्योतिषी हैं, तो विचार करके यह बताइये कि क्या होगा ?

यह जानकर, पैरों को सिकोड कर, "शिवराज महाराज की जय हो" यह कह कर, पान का बीडा बनाने के लिए इशारे से एक छात्र को आदेश देकर, पीछे के द्वार की ओर गर्दन घुमाकर, "पुत्रि सौवर्णि ! पुत्रि सौवर्णि !" कह कर कन्या को पुकार कर, "आई, पिताजी" कह कर उसके आने पर, उससे "पुत्रि ! उन जूही की मालाओं में से एक माला और एक प्रसाद का लड्डू ले आ" ऐसा कहकर, 'अच्छा' यह कह कर उसके वैसा कर लेने पर, उसके, रघुवीर की ओर मुख करके "लो इस प्रसाद के मधुर मिष्टान्न को खाकर सो जाओ, वैसा स्वप्न देखना, वैसा मुझे प्रातः बतलाना,

तासि; तथा प्रातरेव मां कथयितासि, व्येति रजनी, तद् गच्छ, शेष्व" इत्युदीर्य समागतां सौवर्णीमेव मोदकमर्पयितुं मालां च कण्ठे निक्षेप्तुमिङ्गितवान्।

सा चावलोक्य तमेव पूर्वावलोकितं युवानम्, व्रीडा-भर-मन्थराऽपि तातज्ञया बलादिव प्रेरिता ग्रीवां नमयन्ती, आत्मनाऽऽत्मन्येव निविशमाना, स्वपादाग्रमेवाऽऽलोकयन्ती, मोदक-भाजन-सभाजितं सव्येतर-करं तदग्रे प्रासारयत्। स चाऽऽत्मनो भावं कष्टेन संवृण्वस्तद्धस्तादुदतूतुलत्। पुनश्च सा अञ्चलकोणं कटि-कच्छ-प्रान्ते

मधुरान्नम्=मोदकम्। व्येति=याति। रजनी=निशीथिनी। शेष्व=स्वपिहि। उदीर्य=उक्त्वा। निक्षेप्तुम्=निधातुम्। इङ्गितवान्=चक्षुरादिचेष्टया बोधितवान्।

व्रीडाभरमन्थरा=लज्जाधिक्याधिगतमान्द्या। तातज्ञया बलादिव प्रेरिता, तथा चोक्तम्महाकविना कालिदासेन "आज्ञा गुरूणा ह्यविचारणीये" ति। निविशमाना, "नेर्विश" इत्यात्मनेपदत्वे शानच्। मोदकभाजनेन=मिष्टान्नभाण्डेन, सभाजितम्=पूजितम्। सहितमिति वाच्योऽर्थः। सव्येतरकरम्=दक्षिणं हस्तम्। आत्मनो भावम्, रतितामापन्नम्। संवृण्वन्=समाच्छादयन्, उदतूतुलत्=उत्थापयामास।

रात बीती जा रही है, तो जाओ, सो जाओ," यह कह कर वृद्ध ने, आई हुई सौवर्णी को ही मोदक देने और माला पहनाने के लिए संकेत किया।

वह उसी पहले देखे गये हुये युवक को देख कर, लज्जा के भार से धीरे-धीरे चलती हुई भी पिता की आज्ञा से बलपूर्वक प्रेरित की गई, गर्दन झुकाती हुई, अपने में ही सिमटती हुई सी, अपने पैर के अग्रभाग को देखती हुई, आगे बढ़ी और उसने लड्डू के पात्र से सुशोभित अपने दाहिने हाथ को बढ़ाया। रघुवीर सिंह ने कष्टपूर्वक अपने भाव को छिपाते हुए उसे उसके हाथ से ले लिया। फिर उसने

आयोज्य, हस्ताभ्यां मालिकां विस्तार्य नत-कन्धरस्य रघुवीरस्य ग्रीवायां चिक्षेप, ईषत्कम्पित-गात्रयष्टिश्च शनैर्यथागतं निववृते।

सैवेयं गौर-श्याम-सिंहयोरनुजा सौवर्णी, या शैशव एव यवन तनयेनापहृता; यस्याश्च वास्तविकं नाम कोशलेति, स चायं देव-शर्म्मा ब्राह्मणः, यो गौरसिंहस्य कुल-पुरोहित कोशलायाश्च रक्षकः।

तत' प्रणम्य, देवशर्म्मच्छात्रदत्तां वीटिकामादाय प्रतिनिवृत्य, रघुवीरोऽपि तथैव सुप्तः। को जानाति कोशलारघुवीरयोः कामि-

---

अञ्चलकोणम्=वस्त्रदशाम्। कटिकच्छप्रान्ते=कटिकच्छ-भागे, आयोज्य=निवेश्य। विस्तार्य=प्रसार्य। ईषत्=अल्पम्, कम्पिता=वेपमाना, गात्रयष्टिः=शरीरं, यस्याः सा। सात्त्विकभावोदयप्रदर्शनमिदम्। यथाऽऽगतम्, आगतम्=आगतिः, तदनतिक्रम्य यथागतम्। क्रियाविशे-षणम्। यथा समागता तथैव निवृत्तेति यावत्।

सैवेयमित्यादि-रक्षक—इत्यन्तं कविवाक्यं सौवर्णीपरिचयदानपरम्। अनुजा=अवरजा, शैशवे=बाल्ये।

को जानाति, क=ब्रह्मा, स एव जानाति, नान्यः कश्चिदसर्वज्ञ इति तत्त्वम्। काक्वा तथात्वे न कोऽपि जानातीत्यर्थः। आत्मनैव विज्ञातव्यत्वेन

आँचल के छोर को कमर में खोंसकर दोनों हाथों से माला को फैला कर, सिर झुकाये हुए रघुवीर के गले मे डाल दिया और थोड़ा-सा शरीर हिलाकर धीरे, जैसे आई थी वैसे ही चली गई।

यही गौरसिंह और श्यामसिंह की छोटी बहन सौवर्णी है, जिसे बच-पन में ही एक यवन युवक हर ले गया था और जिसका वास्तविक नाम कोशला है और यही वह देवशर्मा ब्राह्मण हैं, जो गौरसिंह के कुल-पुरोहित और कोशला के रक्षक हैं।

उसके बाद प्रणाम कर, देवशर्मा के छात्र द्वारा दिये गये पान के बीड़े को लेकर, लौटकर, रघुवीर भी वैसे ही सो गया। कौन जानता है

भावनाभिरद्यतनी रजनी व्यत्येतीति ।

अथोपस्येवोत्थाय नित्यकृत्यानि निर्वर्त्य, यावद्देवशर्म्मणः समीपमुपतिष्ठासते; तावद्दौर्गिक-दूतेनाऽऽकारितो दुर्गाध्यक्षमासाद्य, तद्दत्तं पत्रादिकं वाचनिक-सन्देशं चाऽऽदाय, पुण्यनगरमधिवसतः शास्तिखानस्य प्रकृत-वृत्तान्तं तत्प्रश्नानुसारं व्याहृत्य, निवृत्य, देवशर्म्माणं प्रणम्य, सङ्क्षिप्य स्व-स्वप्न-वृत्तान्तमकथयत्, यद्—

"यथा मया प्रभुणा च खड्गः समुत्तोलितः, शास्तिखानश्च दृष्ट्वैवैतत्पलायितः" इति ।

स चाङ्गुलिपर्वसु किमपि गणयित्वेव प्रोवाच-यद् "यवनैः सह विजयः, आर्यैश्च पराजयः ।"

नान्यो ज्ञातेति सूक्ष्मवेदिनः । भावनाभिः=विचारैः ।

उपसि=प्रातः । उपतिष्ठासते=उपस्थातुमिच्छति । दौर्गिक-दूतेन=दुर्गाध्यक्षभृत्येन । वाचनिकसंदेशम्=वाचिकम्, "सन्देशवाग् वाचिकं स्यादि" त्यमरः । अङ्गुलिपर्वसु=करजावयवेषु, पर्व="पोर" इति हिन्दी ।

कि कोशला और रघुवीर सिंह की आज की रात किन भावनाओं से बीत रही है ।

तत्पश्चात् सवेरे ही उठकर, नित्यकृत्य से निवृत्त होकर, देवशर्मा के समीप जाना ही चाहता था कि दुर्ग के दूत के द्वारा बुलाये जाने पर दुर्गाध्यक्ष से मिल कर उनके द्वारा दिये गये मौखिक सन्देश और पत्रादि को लेकर, पूना में स्थित शाइस्ता खाँ का समाचार दुर्गाध्यक्ष के प्रश्नों के अनुसार बता कर, लौटकर, देवशर्मा को प्रणाम कर रघुवीर ने सक्षेप में अपने स्वप्न का वृत्तान्त कहा कि "ज्यों ही मैंने और मेरे स्वामी ने खड्ग उठाया, शाइस्ता खाँ उसे देखते ही भाग गया ।"

उँगली के पोरों पर कुछ गिन-सा कर वह बोला, 'यवनों से युद्ध हो तो विजय होगी, आर्यों से हो तो पराजय ।' फिर प्रणाम करके जाने के

पुनश्च तं प्रणम्य, जिगमिषन्तमुवाच, यत—

"तावद् बहिरेवोद्याने पर्य्यट, यावद् हनूमत्प्रसाद-सिन्दूरं प्रेषयामि, यत्कृततिलको दुर्द्धर्षो भवति शत्रूणाम्" इति।

स च तथेत्युक्त्वा बहिरागत्य पर्य्यटन् पूर्वद्युः सौवर्ण्या सनाथितां वेदिकां समायात, स्मृतवांश्च पूर्वदिन-वृत्तान्तम्, अवालोकयच्च सौवर्ण्यध्युषित-चरं पाषाण-मञ्चम। तावन्निपुणं निरीक्ष्य दृष्टवान्–यदेका एकयष्टिका मौक्तिकमाला तत्र पतिताऽस्तीति, ताञ्चोत्थाप्य तस्या एवेयमिति निश्चित्य, तस्यै समर्पयामीति विचार्य, इतस्ततश्चक्षुर्निचिक्षेप।

अथ व्यलोकयद्–यद् वाटिकायामेव कोशलाऽपि कदलीदल-पुटकमेकं वामकरे संस्थाप्य, दक्षिण-कर-पल्लवेन कुसुमपतङ्गान्

सनाथिताम्=अधिष्ठिताम्। सौवर्ण्या, अध्युषितचरम्=पूर्वमुपविष्टम्। पाषाणमञ्चम्=प्रस्तरवेदिकाम्। एकयष्टिका=एकावली, मालाविशेषः, "एकावल्येकयष्टिके" त्यमरः। निचिक्षेप=निदधे।

कुसुमपतङ्गान्=पुष्पभ्रमरिकाः। "तितली" इति हिन्दी।

इच्छुक रघुवीर सिंह से कहा, "तब तक बाहर उद्यान में ही टहलिये, अभी हनुमानजी के प्रसाद का सिन्दूर भेजता हूँ जिसका तिलक लगा लेने पर व्यक्ति शत्रुओं के लिए दुर्द्धर्ष हो जाता है।"

रघुवीरसिंह 'बहुत अच्छा' कह कर, बाहर आकर, घूमता हुआ, पिछले दिन सौवर्णी से सनाथ की गई वेदी तक आया, पिछले दिन के वृत्तान्त को स्मरण किया और जिस पत्थर की चट्टान पर सौवर्णी बैठी थी उसके दर्शन किये। ध्यान से देखने पर देखा कि मोतियों की एक एकलरी माला वहाँ गिरी पड़ी है, उसे उठाकर, यह उसी की है यह निश्चय करके, 'इसे उसी को दे दूँ' यह सोचकर इधर-उधर दृष्टिविक्षेप किया।

उसके बाद उसने देखा कि कोशला भी बगीचे में ही बाएँ हाथ में केले के पत्ते का एक दोना लिए, दाहिने हाथ से तितलियों को उड़ाकर,

चद्धूय कुसुमान्यवचिनोति ।

ततश्च क्षणं विचार-भारैर्निरुद्ध-गतिरपि शङ्कातङ्कमपास्य, मालां हस्ते आदाय शनैस्तदभिमुखमेव प्रतस्थे । सा च तस्मिन्नति-समीपमायाते पादाहतिमाकर्ण्य अवालुलोकत् । तस्याश्चालि-चकितायामिव स्तब्धायामिव च रघुवीरोऽवादीत्—

"भगवति ! भवत्या इयं मालिका तत्र पतिता, मया लब्धेति प्रत्यर्पयितुमायातोऽस्मि—इति, अनुमन्यसे चेदेनां यथास्थानं निवेशयामि"

सा च व्रीडया कुलाङ्गनाङ्गीकृत-महाव्रतेन च स्तब्धवाग् न किञ्चन प्रावोचन । रघुवीरश्च वाचंयमतामप्यङ्गीकारभङ्गीमङ्गी-

निरुद्धगतिः=अवरुद्धगमनः। शङ्काऽतङ्कम्=सन्देह भयञ्च । प्रत्यर्पयितुम्=प्रतिदातुम् । त्वया ह्यो मह्यमर्पिता माला, मया चाद्य तुभ्यमर्प्यते इति विचार्य प्रत्यर्पणाभिधानम् । अनुमन्यसे=स्वीकरोषि । कुलाङ्गनाभिः=सदन्वय-स्त्रीभिः, अङ्गीकृतेन=स्वीकृतेन, महाव्रतेन=ब्रह्मचर्यरूपेण । शुश्रू-मायणस्यापि ब्रह्मचर्यविघातकृतेति मोनावलम्बनम् । वाच यच्छतीति तद्भावो वाचंयमता=तूर्ष्णीम्भवनम् । अङ्गीकारभङ्गीम्=स्वीकारप्रकारम् ।

फूल चुन रही है ।

विचार के भार से क्षण भर उसकी गति रुद्ध हो गई, पर सन्देह के आतङ्क को दूर कर, माला को हाथ में लेकर वह धीरे धीरे उसी की ओर चला । रघुवीर सिंह के बहुत समीप आ जाने पर उसकी पदचाप सुनकर, कोशला ने उसे देखा । कोशला के चकित और स्तब्ध-सी हो जाने पर रघुवीरसिंह ने कहा —

"देवि ! आपकी यह माला वहाँ गिर गई थी, मैंने इसे पाया है, अतः इसे लौटाने आया हूँ । यदि आपकी अनुमति हो तो इसे यथा-स्थान रख दूँ ।"

लज्जा और कुलाङ्गनाओं के महाव्रत से मौन कोशला कुछ न बोल सकी । रघुवीरसिंह ने उसके मौन को भी स्वीकृति का ही सूचक समझ

कृत्य तदन्तिकमागत्य, सौवर्णीचित्रं मानस-भित्तिकायामालिख्य नक्षत्रमालां तत्कण्ठे प्राक्षिपत्, पवित्रतमानि स्फुटतम-यौवनोद्भेद-लक्ष्म-रहितानि च तदङ्गानि नास्प्राक्षीत् ।

ततस्तस्यां मौनेनैवैकतःप्रयातायाम्, स्वयं पुनर्मन्दिरद्वारमागत्य देवशर्म्मणोऽन्यतमच्छात्रेणाऽऽनीतं सिन्दूरमादाय पुनरश्वमारुह्य, मारुत-नन्दनं सस्मृत्य तोरणदुर्गात् सिंहदुर्गं प्रतस्थे ।

इति चतुर्थो निश्वासः

इति प्रथमो विरामः

"मौन स्वीकारलक्षण" मित्युक्तत्वात् । नक्षत्रमालाम्=सप्तविंशतिमौक्तिकमयीं पूर्वोक्तामेकावलीम् । स्फुटतमस्य=नितान्तप्रकटस्य, यौवनस्य=तारुण्यस्य, उद्भेदस्य=आविर्भावस्य, लक्ष्मभिः=चिह्नैः, रहितानि=शून्यानि, न अस्प्राक्षीत्=स्पृष्टवान् । मारुतनन्दनम्=वायुसुतम् ।

प्राप्त-शास्त्र्याचार्य पदवीकेन धीमता ।
भगवत्या गर्भजेन विद्-भागवत-सूनुना ॥
विद्वत्त्रिपाठि-शिष्येण रामजीशर्मणा मया ।
शिवदत्तकृपादत्तन्यायशास्त्रावभासिना ॥
पाण्डेयशास्त्रीत्यपराभिधेयेन सदक्षरा ।
शिवराजस्य विजये वैजयन्ती विकाशिता ॥

इति श्रीशिवराजविजयवैजयन्त्या चतुर्थनिश्वासविवरणम् ॥

आदिमविरामविवरण समाप्तम् ।

कर, उसके पास आकर, मन की दीवार पर सौवर्णा का चित्र बना कर, उस मुक्तामाला को उसके गले में डाल दिया, पर स्फुट यौवन के स्पष्ट चिह्नों से रहित उसके पवित्र अगों का स्पर्श नही किया ।

तदनन्तर, कोशला के मौनपूर्वक ही दूसरी ओर चले जाने पर, स्वय पुनः मन्दिर के द्वार पर आकर, देवशर्मा के प्रिय छात्र द्वारा लाये गये सिन्दूर को लेकर, पुन. घोडे पर सवार होकर, हनुमानजी का स्मरण कर, तोरण दुर्ग से सिंह दुर्ग की ओर चल पडा ।

शिवराजविजय के चतुर्थ निःश्वास का हिन्दी अनुवाद समाप्त ।

❀ श्रीः ❀

अथ द्वितीयो विरामः

।। पञ्चमो निश्वासः ।।

"वयं नो ते विप्राः प्रतिदिवसमासाद्य कृपणान्,
धनं ये याचन्ते प्रतिगणित-नक्षत्र-तिथयः"

—जगन्नाथपण्डितराजः

वागीश्वर्यै नमः

मनोजमदमन्थनेन मदमादधानो भवः
स्वय भवति विष्टरो विनत एव यस्याः कृते ।
समर्चित–पदद्वया त्रिदश–मण्डली-मण्डनै-
स्तमालदल-भासुरा भवतु काऽपि बुद्धिप्रदा ।।

पञ्चमे निश्वासे हिन्दु-धर्म-ध्वस-विध्वंसन पटुना शिववीरेण साकं महा-कवेर्भूषणस्य सम्बन्धं विवर्णयिषुरुपक्षिपति पण्डितराजोक्तिम्—वयं नो ते विप्रा इति । यद्यपि तदात्वे बहवो ब्राह्मणब्रुवा धर्माधर्म-विवेक विधुरास्तात्कालिकावस्थितिमात्रदृष्टयोऽप्यभवन्, तथापि तेषामेव ब्राह्मणाना विशिष्टा संख्याऽऽसीद् ये जीविका-निर्वाह-प्रकारेऽदत्तदृष्टयस्त्यागिनो

---

* श्री *

पञ्चम निःश्वास

"हम तिथि-नक्षत्रादि गिनने वाले उन ब्राह्मणो में नहीं हैं जो प्रतिदिन कञ्जूसों के पास जाकर उनसे धन माँगते हैं ।"

—पण्डितराज जगन्नाथ

"हरेरद्य द्वारि शिव ! शिव ! शिवानां कलकलः"

—पण्डितराजजगन्नाथः

इतस्तु दृश्यतां किं भवति पुण्यनगरे इति । आखेट–यवनाखेट-व्यसनिनः शिववीरस्य शनैः शनैर्दिल्लीश्वरेणापि सह वैरं ववृधे । दिल्लीश्वरस्तु शास्तिखान–नामानं कञ्चिद् यवन–वीरं प्रेष्य पुण्यनगरं तद्धस्तादाचिच्छेद । सम्प्रति हि पुण्यनगरे शिववीराध्युषितचरे महाप्रासादे सपरिवारः शास्तिखानः प्रतिवसति । आसन्ने

धर्म-रक्षण मात्र गता इति सूचयति पद्यखण्डेनानेन । तस्य नाम दिल्ली-वल्लभ-पाणि पल्लवतले नवीनस्य वयसो यावक इति पदस्य वैशिष्ट्यम् । अपरा चात्र कथाऽभिव्यक्ति शिववीरहस्तात् "शास्तिखान–" नाम दिल्लीवल्लभेन स्वायत्त कृतस्य पुण्यनगरस्य, तत्र शिवराजहस्त शिवाजी-रस्य द्वारि शृगाल–सञ्चरणानातिविस्तृतं यवनानां कलकलायितं समुत्थितम् । द्वितीयेन तदीयेनेव पद्यखण्डेन–द्योत्यते । शिवानाम्—शृगाल-शृगालानाम् । "पुमान्स्त्रिया" इत्येकशेषः । आखेटानाम्=मृगयाव्यसनिनाम्, यवनानाम्, आखेटस्य व्यसनिनः । ववृधे=वृद्धिमाप । तद्धस्तात्=शिववीरकरात् । आचिच्छेद=प्रसह्य जग्राह । अध्युषितचरे इति यावत् । "छीन लिये" इति हिन्दी । "शिविर् द्वैधीकरणे" इत्यस्य लिटि रूपम् । अध्युषित भूतपूर्वमध्युषितचरम्, "भूतपूर्वे चरट्" इति चरट् ।

"शिव ! शिव ! आज सिंह के दरवाजे पर गीदड़ कोलाहल कर रहे हैं ।"

—पण्डितराज जगन्नाथ

इधर देखिये पूना नगर में क्या हो रहा है । आखेट यवनों का, शिकार खेलने के शौकीन महाराज शिवाजी का, धीरे-धीरे दिल्ली-सम्राट् औरंगजेब के साथ भी वैर बढ़ गया । औरङ्गजेब ने शाइस्ता खाँ नामक किसी यवन वीर को भेजकर शिवाजी के हाथ से पूना नगर छीन लिया । इस समय पूना नगर के उस राजमहल में जहाँ पहले महाराज शिवाजी रहा करते थे, सपरिवार शाइस्ता खाँ रह रहा है । समीप में ही स्थित

सिंहदुर्गे च ससेनः शिववीरो विराजते। परस्परं च च्छलाशङ्का युद्धाशङ्काश्च जरीजृम्भन्ते।

अथैकदा रजन्यां सिंहदुर्गाविदूर एव सुकोमल-शादायां कलित-प्रसादायां केकि-केका-विहित-प्रहरि-प्रातिनिध्यायां भुवि, निष्कृप-कृपाण-पाणिः, कञ्चुकाच्छादित-कठिन-कवचः, कलित-सैनिक-भट-वेषः श्रीशिववीरो गुप्तवेषेण परितः पर्य्यटन्, दुग्ध-धारयेव

शिववीरेणाध्युषितचरम् तस्मिन्निति विग्रहः। छलाशङ्का.=घ`र्त्यातङ्काः। जरीजृम्भन्ते=मुखं व्यादायेव वृद्धिमतिशयेन गच्छन्ति। "जृभी गात्रविनामे"इत्यस्य यङ्लुकि रूपम्। सुकोमला शादाः=हरिततृणानि यस्या तस्याम्। "शादो जम्बालशष्पयोरि"त्यमरः। कलित`=सम्पन्नः, प्रसाद`=नैर्मल्य यया तस्याम्। केकिकेकाभिः=मयूरवाणीभिः, "केका वाणी मयूरस्ये" त्यमरः। विहितम्=सम्पादितम्, प्रहरिणाम्=यामिका-नाम्, प्रातिनिध्यम्=प्रतिनिधिकर्म यस्या तस्याम्। "गुणवचन-ब्राह्मणादिभ्यः कर्मणी"ति ष्यञ्। भुवो विशेषणानि त्रीणि। शिववीरं विशिनष्टि—निष्कृप.=कृपाशून्यः, कृपाणः पाणौ यस्य सः। कञ्चुकेन=चोलकेन, आच्छादित.=प्रावृतः,कठिनः=दृढः, कवचः=तनुत्रं, यस्य सः। कलितः सैनिकभटस्य वेषः=नेपथ्य येन सः। "सेना-रक्षास्तु सैनिकाः" इत्यमरः, "सेनाया समवेता ये सैन्यास्ते सैनिकाश्च त" इति

सिंहगढ़ में अपनी सेना के साथ महाराज शिवाजी रह रहे हैं। शाइस्ता खाँ और शिवाजी में परस्पर छल, कपट और युद्ध की आशङ्काएँ बढ़ती जा रही हैं।

एक दिन रात में सिंहगढ से थोड़ी ही दूर पर सुकोमल हरी-हरी घास वाली निर्मल भूमि पर—जहाँ मयूर मानो बीच-बीच मे बोल कर पहरा दे रहे थे—हाथ में निर्दय कृपाण लिये, कञ्चुक के नीचे लोहकवच पहने, एक सैनिक के छद्मवेष में घूमते हुए महाराज शिवाजी, दूध की धारा

क्षालितैर्ज्योत्स्नया प्रकाशितैः पथिभिरासन्नात् शिवमन्दिरादारादा-जगाम। तत्र च द्वारि रेणु-रूषित-रोम-कुहरम्, शफोत्फालित-मृत्स्ना-स्नातम्, त्वरितगति-श्वास-प्रश्वास-सहचरित-हिणत्कार-सूचित-क्लमम्, उत्थायोत्थाय पृष्ठमुत्कम्प्य, ग्रीवामुद्धूय, पौनःपुन्येन पतित्वा, भुवि विलुण्ठन्तं कञ्चनाश्वमद्राक्षीत्। 'कस्यायम्? कुतोऽयम्?' इति मनसि विचिन्वंश्च समीपमागत्य, चुचुत्कारैरश्वं सान्त्वयन्तं

चामरः, "रक्षति" इति ठक्। जोत्स्नया=कौमुद्या। प्रकाशितैः= प्रद्योतितैः। उत्प्रेक्षते–दुग्धधारया=पयःप्रवाहेण। क्षालितैरिव=धौतैरिव।

"आराद्दूरसमीपयो" रित्यमरः, तद्योगे "अन्यारादि"ति पञ्चमी। तत्र च द्वारि कञ्चनाश्वमद्राक्षीदिति सम्बन्धः। अश्वं विशिनष्टि–रेणुभि = धूलिभिः, रूषितानि = छुरितानि, रोम्णां कुहराणि=छिद्राणि, यस्य तम्। शफोत्फालितया = खुरोद्धूलितया, मृत्स्नया=प्रशस्तया मृदा, स्नातम्= अनुलिप्तम्। त्वरितगतीनाम् = शीघ्रगमनानाम्, श्वासप्रश्वासानाम्, सहचरितेन = सहवासिना, हिणत्कारेण = हेषारवेण, सूचित = प्रकटीकृतः, क्लमः=दूरमार्गानुधावनोत्थः श्रमो येन तम्। अश्वाना दीर्घश्वासप्रश्वासौ हेषासहितावेव भवतः। उत्थायेत्यादि भुवि विलुण्ठन्तमित्यन्तं स्वभावोक्तिः। उत्कम्प्य=कम्पयित्वा। विवर्णवदनम्=

से धुले हुए से लगने वाले, चन्द्रमा के प्रकाश से प्रकाशित मार्गों से समीपवर्ती शिवमन्दिर के पास पहुँचे। मन्दिर के द्वार पर उन्होंने धूल-धूसरित रोमकूप वाले किसी घोड़े को देखा, जिसका शरीर खुरों से उछलने वाली मिट्टी से लथपथ था। उसकी श्वास-प्रश्वास की गति तेज थी, साथ-ही-साथ वह हिनहिनाता भी था, जिससे प्रकट होता था कि वह थका है। वह उठता था, पीठ हिलाता था, गर्दन उठाता था और पुनः पृथ्वी पर गिर कर लोटने लगता था। उसे देख कर मन ही मन यह सोचते हुए कि "यह घोड़ा किसका है", "कहाँ से आया है" शिवाजी ने समीप आकर, चुमकार कर उस घोड़े को सान्त्वना दे रहे और उसके आगे

हरित-तृण-भारं च पुरतः प्रक्षिपन्तं कमपि शूद्र-युवकमप्यवालोकयत्। तं च विवर्णवदनम, आजानु-धूलि-धूसरित-चरण-युगलम्, मन्थरितशरीरम्, स्वेद-क्लिन्नञ्चावलोक्य, "दूरतः कश्चन समायातोऽस्ति, तद्भृत्य एवायम्" इति निश्चित्य शनैरप्राक्षीत्-कस्यायमश्वः ? इति। सतु स्वकार्य-संलग्नोऽन्यमनस्क एव, "समायातः कोऽपि" इत्युदतरत्। पुनरपि "कुत आगता यूयम् ?" इति पृच्छति शिववीरे च, "किमिव निरर्थं प्रश्नानुद्दङ्कर्यासि, आलपितुमिच्छसि चेद् घटिका-युगलमतिवाह्य समायास्यसि, यथा पूरित-जठर-पिटकः, ताम्रक-धूमपानैर्गलनलं कवोष्णयन्, त्वया सह वार्त्ताभिरद्ध्व-परि-

---

खिन्नाननम्। आजानु = जानुपर्यन्तम्, धूल्या = रजसा, धूसरितम् = मलिनम्, चरणयुगलं यस्य तम्। मन्थरितम् = स्थगितम्, शरीरम् = देहो यस्य तम्। स्वेदेन = श्रमजलेन, क्लिन्नम् = आर्द्रम्। शूद्रयुवकविशेषणानीमानि। अन्यमनस्क इव = विमना इव। प्रश्ने प्रश्नकर्त्तरि च ध्यानमददेवेति यावत्। निरर्थम् = प्रयोजनशून्यम्। पूरितः = भरितः, जठरमेव पिटक = मञ्जूषा येन तादृशः। "पिटकः पेटकः पेटा मञ्जूषे" त्यमरः। गलनलम् = कण्ठरन्ध्रम्, कवोष्णयन् = ईषदुष्णं कुर्वन्।

हरी घास डाल रहे एक शूद्र युवक को भी देखा। उस शूद्र युवक का उतरा हुआ मुँह, घुटनों तक धूलधूसरित पैर और थका तथा पसीने से लथपथ शरीर देख कर महाराज शिवाजी ने यह समझ कर कि "कोई अश्वारोही दूर से आया है और यह उसका नौकर है" उससे पूछा 'यह घोडा किसका है ?' अपने काम मे लगे हुए उसने अन्यमनस्कतापूर्वक उत्तर दिया "कोई आया है।" पुनः महाराज शिवाजी के यह पूछने पर कि "तुम लोग कहाँ से आये हो ?" वह बोला, "क्यों बेकार के प्रश्न पूछ रहे हो। यदि बातचीत करना चाहते हो तो दो घडी बाद आना; तब अपना पेट-पिटारा भर कर, तम्बाकू पीता (अपनी कण्ठनली को कुछ गर्म करता) हुआ, तुम्हारे साथ बातचीत कर के रास्ते की थकावट दूर

श्रममल्पयिष्यामि।" तदाकर्ण्यान्तर्विहसन्निव शिववीरः "तथा करिष्याव, किन्तु कथय तावत्, कुत आगता यूयम्?"—इति पुनरपृच्छत्। स तु घोटके दत्तदृष्टिरेव सकोपमवादीत्—"कुत आगता यूयम्? कुत आगता यूयमिति कुत कारैः स्फोटितौ मे कर्णौ, वय दिल्लीत आगताः, दिल्लीतो दिल्लीतो दिल्लीतः, कथय किं गजं ददासि घोटकं वा?" तदाकर्ण्य, शिववीरस्तत्प्रकृतिं परिज्ञाय, शनैः परिवृत्य, मन्दिरस्य पश्चिमदेशे पर्य्यटितुमारेभे।

"कोऽयं, कुतोऽयं, चरो वा संदेशहरो वा, कपटपथिको वा, अस्मत्पक्षपाती वा, शत्रुपदातिर्वा, कोऽप्युभयपक्षोदासीनो वेति सद्य एव विज्ञेयम्" इति विचारयन् मन्दिर पाश्चात्त्य-प्राचीर-गवाक्षादायान्तं कञ्चिदस्पष्टालाप-ध्वनिमश्रौषीत्। क्षण विरम्य च, गवाक्ष समीपमा-

---

मन्दिरस्य=देवालयस्य, पाश्चात्त्यः=पश्चाद् भवः, यः प्राचीरगवाक्षः= प्रान्ततोवृत्ति वातायनम्, तस्मात् "प्राचीरं प्रान्ततो वृतिः" इत्यमरः। अस्पष्ट =अव्यक्तः यः, यथा कथचिदेवमेवमिति निश्चितः आलापस्य=

करूँगा।' यह सुन कर मन ही मन हँसते हुए शिवाजी ने पुनः पूछा "अच्छा, ऐसा ही करेंगे, पर तब तक यह तो बताओ कि तुम लोग आ कहाँ से रहे हो?" वह घोडे की ही ओर देखते हुए झुँझला कर बोला "तुम लोग कहाँ से आये हो, तुम लोग कहाँ से आये हो, 'कहाँ कहाँ' से तो तुम मेरे कान फोडे डाल रहे हो, हम दिल्ली से आये हैं दिल्ली-से-दिल्ली से, कहो, हाथी देते हो कि घोडा?" यह सुन कर शिवाजी उसका स्वभाव समझ कर, धीरे से लौट कर, मन्दिर के पश्चिम की ओर टहलने लगे।

"यह कौन है, कहाँ से आया है, गुप्तचर है या दूत, छद्मवेषी पथिक है या हमारे ही पक्ष का कोई व्यक्ति, शत्रुसेना का कोई सैनिक है या दोनों पक्षों से उदासीन कोई तटस्थ व्यक्ति, यह शीघ्र ही जानना चाहिये" यह विचार करते हुए शिवाजी ने मन्दिर की पश्चिम ओर की चहारदीवारी की खिड़की से आती हुई फुसफुसाहट (बातचीत की अस्पष्ट और मन्द ध्वनि) सुनी। क्षण भर रुक कर, खिड़की के पास आकर शिवाजी ने ध्वनि-

गत्य, ध्वनिप्रतिध्वनिभिरव्यक्तांश-बहुलामप्येवमुक्तिं निश्चिच्ये यत्—

"चिराय दिल्ली-वल्लभ-पाणिपल्लव-तल्लज-च्छायामध्युषितोऽस्मि। परं वयं कवयः कस्यापि राजत्वं वा प्रतापित्वं वा आढ्यत्वं वा नापेक्षामहे, न वा कस्यापि साभिमान-भ्रूभङ्गम् उत्तुङ्ग-कोपाञ्चिताखर्व-गर्व-वर्वरतां वा सहामहे। न तस्य तादृश भू-वलये राज्यं यादृशमस्माकं सारस्वत सृष्टौ। तस्य क्रीतदासा अपि न

पारस्परिकवार्तायाः, ध्वनिः, तम्। ध्वनिप्रतिध्वनिभिः=शब्दप्रतिशब्दैः, अव्यक्तांशबहुलाम्=अस्पष्टभागप्रचुराम्। निश्चिच्ये=निश्चिकाय।

चिरायेत्यारभ्य किं भावीत्यन्ता पथिकस्य कस्यचनोक्तिः। स चाय पथिको हिन्दीकविकुलमूर्धन्यो भूषण एवेत्यग्रे स्फुटीभविष्यति। दिल्लीवल्लभपाणिपल्लवतल्लजस्य=दिल्लीपति कर-किशलय-प्रशस्तस्य, छायाम्=आश्रयम्। "उपान्वध्याङ्वसः" इति सप्तम्यर्थे द्वितीया। अध्युषितः=कृतनिवासः। आढ्यत्वम्=धनित्वम्। अभिमानेन सहितः साभिमानः, स चासौ भ्रूभङ्गः=भ्रूविक्षेपः, तम्। उत्तुङ्गकोपेन=विपुलक्रोधेन, अञ्चिताम्=भूषिताम्, अखर्वगर्वाम्=अनल्पदर्पाम्, वर्वरताम्=मूर्खताम्। सरस्वत्या इयं सारस्वती=वाग्देवी, सा चासौ सृष्टिः=सर्गः, तस्याम्। क्रीतदासाः=

प्रतिध्वनि के कारण उस अस्पष्ट बातचीत के अधिकांश भाग के अव्यक्त होने पर भी उसके अधोलिखित उक्ति होने का निश्चय किया।

मैं बहुत दिनों तक दिल्ली सम्राट् औरंगजेब के प्रशस्त करपल्लव की छाया में रहा हूँ। पर हम कवि लोग न तो किसी के राजा, प्रतापी या धनी होने की ही परवाह करते हैं और न किसी का अभिमानपूर्वक भौंहें टेढ़ी करना, क्रोधपूर्ण दम्भ (गर्व) या बर्बरतापूर्ण व्यवहार ही सहते हैं। औरंगजेब का पृथ्वी पर वैसा राज्य नहीं है जैसा हमारा काव्य जगत् में।

तदीहा-समकालमेव बद्ध-कर-सम्पुटा यथोचितावस्थानाः पुरोऽवतिष्ठन्ते, यथाऽस्माक पदानि वाक्यानि छन्दांसि अलङ्कारा रीतयो गुणा रसाश्च । स दीनारसंभारैरपि न तथा परांस्तोषयितुमलम्, यथा वयं केवलं वचनभङ्गीभिरेव पारयाम.। अस्मच्छृङ्गाररस-रसायनकमास्वाद्य जित-राग-द्वेषो मुनिरपि प्रतीपदर्शिनीम-

स्वाधीनीकृता भृत्याः। न केवल वेतनमात्रभोगिनः। तदीहासमकालम् = तदिच्छासमसमयम्। बद्धकरसम्पुटाः=प्राञ्जलयः। यथोचितावस्थाना = समुचितस्थानस्थितयः। पदानि = सुबन्तानि तिङन्तानि च। "सुप्तिङन्तं पदमि"ति पाणिनिदर्शनम्। "एतानि चत्वारि पदजातानि नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्चे"ति भणतो निरुक्तकारस्याप्यत्रैव तात्पर्यम्। उपसर्गनिपातयोरपि सुबन्तत्वात्, नाम्नश्च सुबन्तत्वाविशेषादिति वैयाकरणाः। वाक्यानि=सुबन्तचया., तिङन्तचयाः, सुबन्ततिङन्तचयाश्च। "सुप्तिङन्तचयो वाक्यमि"ति अमरकारः। "एकतिङ् वाक्यमि"ति वदतः कात्यायनस्याप्यत्रैव तात्पर्यमित्याकरेभ्योऽवधारणीयम्। छन्दांसि = मात्रावर्णभेदभिन्नान्यार्या-भुजङ्गप्रयातादीनि। अलङ्कारा' = काव्यशोभाऽऽधायका अनुप्रासोपमादयः। रीतयः = पदसङ्घटनारूपा वैदर्भीप्रभृतयः। गुणा = रसधर्माः श्लेषाद्यन्यतमाः। रसाः=शृङ्गारादयः। "विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिरि"ति भरताचार्यसूत्रम्। एतदर्थः काव्यप्रकाशादिभ्योऽवधारणीयः। दीनारसम्भारैः=स्वर्णमुद्राकोटिभिः। तोषयितुम् = प्रसादयितुम्। वचनभङ्गीभि. = कथनप्रकारैः। कवित्वेनेति यावत्। अस्माक शृङ्गाररस एव रसायनकम् = सर्वश्रेष्ठमौषधम्। रागः = विषयाभिलाषः, द्वेषः = शत्रुता,

उसके खरीदे हुए गुलाम भी उसकी इच्छा होते ही तत्क्षण हाथ जोडकर उसके सामने आकर यथोचित स्थान पर वैसे नहीं खडे हो जाते, जैसे हमारी इच्छा होते ही पद, वाक्य, छन्द, अलङ्कार, रीति, गुण और रस आ उपस्थित होते हैं। वह करोडों दीनार देकर भी दूसरों को उतना प्रसन्न नहीं कर सकता जितना हम केवल अपनी वाग्विदग्धता से ही कर सकते है। हमारे शृगाररस रूप रसायन का स्वाद चख लेने पर वीतराग

नुकूलयितुमाकुलः कल्पेत । अस्मद्वैराग्य-कवितामाकर्ण्य रागोऽपि विरज्येत् । अस्मद्वीर-रस-कवितां चाऽऽकलय्य म्रियमाणोऽपि युद्धे उत्तिष्ठेत् । यस्य भाग्ये चिरावस्थायिनी कीर्तिः, समुद्र-कल्लोलाघात-सहं च यशः, स एवास्मानाद्रियते । न वयं पीनानिव

तौ जितौ येन तादृशः । मुनिः = मननशीलः । प्रतीपं द्रष्टुं शीलं यस्यास्ता प्रतीपदर्शिनी "प्रतीपदर्शिनी वामे" त्यमरः । अनुकूलयितुम् = वशयितुम् । आकुलः = विह्वलः ।

"शृङ्गारी चेत्कविः काव्ये जातं रसमयं जगत् ।
स एव वीतरागश्चेन्नीरसं निखिलं भवेत् ॥"

इति हि माननीयपाठाः । वैराग्यजनिका कविता वैराग्यकविता, ताम् । रागोऽपि विरज्येत् = विषयाभिलाषोऽपि विरागमागच्छेत् । रूपहानिरियं रागस्य विरागिता नाम । को हि नाम सचेताः—

"यदि नामास्य कायस्य यदन्तस्तद्बहिर्भवेत् ।
दण्डमादाय लोकोऽस्य शुनः काकांश्च वारयेत् ॥"

इत्यादि निशम्य बुद्ध्वा चैतदर्थं पुनः पाञ्चभौतिकदेहरक्षणसक्षणः स्यात् ? एवमन्यैष्वप्यूहनीयम् । म्रियमाणोऽपि = प्राणांस्त्यजन्नपि । अतिशयोक्ति । उत्तिष्ठेत् = उत्थितो भवेत् । "उदोऽनूर्ध्वकर्मणि" त्यात्मनेपदं न, ऊर्ध्वकर्मणो विवक्षितत्वात् । भाग्ये = भागधेये । चिरावस्थायिनी= बहुकालव्यापिनी । समुद्रस्य = अकूपारस्य, कल्लोलानाम् = लहरीणाम्, आघातस्य = ताडनस्य, सहम् = सोढुक्षमम् । समुद्रान्तव्याप्ता कीर्तिर्यस्येति वाच्योऽर्थः । आद्रियते=सत्करोति, पीनान्=स्थूलान् । कानिवेत्युपमिनोति ।

गतमत्सर मुनि भी वामाक्षियों को वश में करने के लिये व्याकुल हो जाय, हमारी वैराग्यकविता को सुनकर राग भी विरक्त हो जाय, और हमारी वीर रस की कविता सुनकर मरणासन्न व्यक्ति भी युद्ध करने को उठ बैठे । जिसके भाग्य में चिरस्थायिनी कीर्ति और समुद्र की लहरों की चोट को सहने वाला यश है, वही हमारा आदर करता है । हम ऐसे लोगों की

पीनान्, इभानिव तुन्दिभान्, भेकानिव निर्विवेकान्, वृषदंशकानिव कपट-हिंसकान्, काकानिवाऽऽस्वादित-दुर्विपाकान्, वलीमुखानिव चञ्चल-मुखान्, शृगालानिव कलित-धूर्त्ततामालान्, द्विजिह्वानिव च द्विजिह्वान्, सजीवानिवोपबर्हान्, आत्मस्तुतिमात्ररुचीन्, मूर्तिमत इवाभिमानान्, विद्या-शून्यान्, गुणि-गण-

---

एवमन्यत्राप्युपमालङ्कारो द्रष्टव्यः। इभान्=गजान्। तुन्दिलान्=स्थूलोदरान्। भेकान्=मण्डूकान्। निर्विवेकान=विचारशून्यान्। वृषदंशकान्=बिडालान्। "बिडालो मार्जारो वृषदंशक आखुभुगि" त्यमरः। कपटहिंसकान्=छद्महिंसालम्पान्। मार्जारा हि स्वं गोपित्वा मृगया कुर्वन्ति। काकान्=करटान्। आस्वादित-दुर्विपाकान्=भुक्तमलान्। वलीमुखान्=वानरान्। चञ्चलमुखान्=चपलमुखान्। अस्थिरवाच इति यावत्। शृगालान्=क्रोष्टून्। कलिता=गृहीता, धूर्त्ततायाः=वञ्चनस्य, माला=परम्परा, यैस्तान्। द्विजिह्वान्=सर्पान्। द्विजिह्वान्=पिशुनान्। सजीवान्=प्राणयुतान्, उपबर्हानिवेत्युत्प्रेक्षा। यथा स्थूल उपबर्हो भवति तथा जडान् स्थूलकायानिति तात्पर्यम्। आत्मस्तुतिमात्ररुचीन=स्वप्रशंसामात्राभिलाषान्। मूर्तिमत.=गृहीतदेहान्। अतिस्तब्धानित्यर्थः। गुणि-गण-गुण-ग्रहणासमर्थान्=कलावेदिव्रज वैशिष्ट्य-बोध विरहितान्। मिथ्यामोदे=मोहप्रायानन्दे,

---

सेवा मे स्वप्न मे भी नहीं रहते जो मछलियो की तरह मोटे, हाथियों की तरह तुन्दिल, मण्डूको की भाँति विचारशून्य, बिल्ली की तरह छलपूर्वक हिंसा करने वाले, कौओं की तरह अभक्ष्यभक्षक, बन्दरों की तरह चपल मुख वाले, शृगालों की तरह धूर्त (धूर्तता की माला धारण करने वाले) सर्पों की तरह दो जीभ वाले (अर्थात् झूठ और सच दोनों बोलने वाले चुगलखोर), सजीव तकिये से, केवल अपनी प्रशंसा में ही रुचि रखने वाले, मूर्तिमान अभिमान, विद्याविहीन, गुणियों के गुणो को न समझने

गुण-ग्रहणासमर्थान्, मिथ्या-मोद-रतान्, वाराङ्गना-व्रात-चरण-पाताघात-सहान्, मद्य-कीटान्, द्यूतानन्यभक्तान्, नृपम्मन्यान् स्वप्नेऽपि समुपास्महे। दिल्लीश्वर-पद-विडम्बनमपि चाहं तादृशेष्वेवान्यतममवगत्य क्षणेनैव तत्सम्बन्ध-सूत्रं त्रोटयित्वा रसिकान्तरं कमपि वीरमन्विष्यन् दक्षिणां दिशं प्रस्थितोऽस्मि। पथि चामेर-देशाधीशेन बहुशः प्रार्थ्यमानोऽपि स तस्यैव दिल्ली वलय-कलङ्कस्य लालाटिक इत्यवगत्य, शिववीर-कीर्त्तीश्च श्राव श्रावं कर्ण-

केवलं कल्पनयैव समुपस्थापिते, रतान्=संलग्नान्। वाराङ्गनाव्रातस्य=वेश्यानिकरस्य, चरणपाताघातम्=अङ्घ्रिनिपातताडनम्, सहन्ते ये तान्। मद्यकीटान्=आसवभृङ्गान्। अतिमात्र सुरापायिन इति यावत्। आत्मानं नृपं मन्यन्त इति नृपम्मन्यास्तान्। स्वप्नेऽपि=जाग्रदवस्थायास्तु चर्चैव का, निद्रायामपि नेदृशान् सेवामहे। रसिकान्तरम्=भिन्नं रसिकम्। नहि कवितानिवेदनमरसिकेषु युज्यते। तथा च प्राक्तन पद्यम्—

"इतरपापफलानि निजेच्छया विलिख तानि सहे चतुरानन!।
अरसिकेषु कवित्वनिवेदन शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख॥"

आमेरदेशाधीशेन=जयपुराधीश्वरेण। अद्यतनं जयपुरराज्यं तदानीम् "आमेर" इति ख्यातमासीत्। "अम्बर" इत्यपि व्यवहारस्तत्र। लालाटिकः=भालदर्शिसेवकतुल्यः। यथा कार्याकारिणः केवल प्रभुभालावलोक-

वाले, काल्पनिक आनन्द में ही रमण करने वाले, वेश्याओं के पादप्रहार को सहनेवाले, मदिराकीट और जुए के अनन्य भक्त हैं तथा अपने को राजा समझते हैं। दिल्लीश्वर पद की विडम्बना करने वाले औरंगजेब को भी उक्त प्रकार के नृपाभिमानियों में से ही एक समझकर, तत्क्षण उससे सम्बन्ध सूत्र तोड कर किसी अन्य वीर रसिक को खोजता हुआ दक्षिण दिशा की ओर चल पडा। रास्ते में आमेर (आधुनिक जयपुर) के राजा ने वार वार प्रार्थना की, पर उसे दिल्ली साम्राज्य के कलङ्क औरंगजेब का लालाटिक (भालदर्शी और असमर्थ सेवक) जानकर

योराकृष्ट इव इतः समायातोऽस्मि, द्रक्ष्यामि किं भावि ?"—

—इति वक्तारं कमपि कवि त्यक्त-दिल्लीश-द्वारं निजं दिदृक्षु-मत्राऽऽगतमूरीकृत्य, पुनः परिक्रम्य, द्वार-मार्गेण मन्दिरं प्रविश्य, शिवं प्रणम्य, घण्टामाहत्य, विल्व-दलमुत्थाप्य, नेत्रयोः संस्पृश्य शिखायां संस्थाप्य, मृत्तिका-शरावस्थं भस्मालिके विलिप्य, प्रद-क्षिणच्छलेन पान्थाध्युषित-प्रदेशमागत्य, तेनाऽऽलपन्तं शिवमन्दिरा-ध्यक्षं प्रणम्य, बद्धाञ्जलिरागन्तुकमपि-"कुतः श्रीमान् ? कः श्रीमान् ?"—इति सादरं समपृच्छत् ।

मात्र निरता भवन्ति कुत्सिता भृत्या एवमयमपि दिल्लीकलङ्कस्य क्रोधप्रसन्न-ताऽवधारणाय केवलं तदीयमालं समवलोकयति, न स्वतन्त्रतया किमपि विधातुं शक्नोति । सोऽयं दुर्वारः कलङ्को वज्रलेपायितो मानसिंहदुरन्वयजनुषां जयपुरीयाणां स्थास्यत्याप्रलयम् ।

निजं दिदृक्षुम्=शिववीरदर्शनाभिलाषिणम् । "न लोकाव्ययनिष्ठा-खलर्थतृनामि"ति षष्ठीनिषेधः । शिवम्=शङ्करम् । आहत्य=ताडयित्वा । वादयित्वेति यावत् । भस्म=भसितम् । अलिके=ललाटे । "ललाट-मलिकं गोधिरि" त्यमरः । आगन्तुकम्=प्राघुणिकम् ।

महाराज शिवाजी का यश सुनकर, उससे आकृष्ट होकर ही इधर आया हूँ, देखूँ क्या होता है ।" ऐसा कहने वाले किसी व्यक्ति को, दिल्लीश्वर औरंगजेब का दरबार छोड़कर, अपने (शिवाजी) को देखने के लिये यहाँ आया हुआ कोई कवि समझ कर, पुनः घूमकर, दरवाजे के रास्ते से मन्दिर में घुसकर, शिवमूर्ति को प्रणाम कर, घण्टा बजा कर, बिल्वपत्र उठा कर आँखों से लगाकर, शिखा में बाँध कर, मिट्टी के सकोरे में रखी भस्म को ललाट में लगाकर, प्रदक्षिणा के बहाने उस स्थल पर—जहाँ वह पथिक था—आकर, उस पथिक के साथ बातचीत करते हुए, शिव मन्दिर के अध्यक्ष को प्रणाम कर, हाथ जोड़कर, आगन्तुक से भी सादर पूछा, "आप कहाँ से आये हैं और कौन हैं ?"

मन्दिराध्यक्षस्तु स्वरेण आकृत्या च तं परिचिन्वन्नपि तन्नियमं सस्मृत्य न तथाऽचेष्टत; यथा स विज्ञातः स्यादपरैः ।

शिववीरस्तु तेन सह चिरमालप्य, तस्य वृत्तान्तमवस्थां प्रकृतिं चावगत्य, चिराय श्रुतचरं 'भूषण'-कविरित्यभिधानं चोररीकृत्य "श्वो द्रष्टा भवान् शिवराजम्" इत्यभिधाय न्यवर्त्तिष्ट ।

निवर्तमानश्च तेनापि "को भवान् ?" इति पृष्टः "एतद्देशीयः कोऽपि वीरोऽस्मि" इत्युदतीतरत् ।

प्रातरेव च नित्य-नियमान्निर्वर्त्य स्वेष्ट-जन-सहितः सभासंस्थ एव स्वभृत्येन भूषण-कविमाकारयत् ।

परिचिन्वन्=शिववीरत्वेन जानन् ।

प्रकृतिम्=स्वभावम् । अवगत्य=बुद्ध्वा । उररीकृत्य=स्वीकृत्य, ज्ञात्वेति यावत् । न्यवर्तिष्ट=निवृत्तोऽभूत् । गतवानित्यर्थः । वीरः=राजभटः । "सिपाही" इति हिन्दी । उदतीतरत्=उत्तरं दत्तवान् ।

मन्दिर के अध्यक्ष ने स्वर और आकृति से-शिवाजी को पहचान गया था, फिर भी शिवाजी के नियम की याद कर के उसने कोई ऐसी चेष्टा नहीं की जिससे अन्य लोग शिवाजी को पहचान सकें ।

शिवाजी ने उस पथिक के साथ काफी देर तक बातचीत कर के, उसका वृत्तान्त, अवस्था और स्वभाव जानकर, और उसका नाम 'भूषण' कवि—जिसकी प्रसिद्धि उन्होंने बहुत दिनों से सुन रखी थी—जान कर "आप कल शिवाजी के दर्शन करें" ऐसा कह कर लौट पडे । लौटते समय, भूषण कवि के "आप कौन है" यह पूछने पर, "इसी देश का एक सिपाही" यह उत्तर दिया ।

प्रातःकाल ही नित्यकर्म से निवृत्त होकर, अपने सभासदों के साथ सभा में बैठे शिवाजी ने सभा में ही अपने सेवक से भूषण कवि को बुलवाया ।

स तु बद्धमहोष्णीषः, पादाग्र-पर्य्यन्त-विलम्बमान-कञ्चुकः, नारिकेल-फल-सार-सहितं यज्ञोपवीत-युगलं हस्ते आदधानः, द्वार-पाल-दर्शितेन पथा सभां प्रविश्य "विजयतां महाराज."-इति सिंहगर्जनमवधीरयता स्वरेणोच्चैरुच्चार्य स्वोपहारं महाराजहस्ते आर्पयत्।

निर्दिष्टस्थान उपविश्य च, स एवायं पूर्वदृष्टो वीर इति निरीक्ष्य, "अहो! वीरो वीरो वीरः। वीरमेवान्विष्यन् दिल्लीत इतो यावत् समायातोऽस्मि, वीरमेव च प्राप्तवानस्मि। विजयता धर्मो-द्धारण-धीर, सपत्नोत्सारण-समीर., वीरो महाराज" इत्युदीर्य

नारिकेल फलस्य सारेण=तत्त्वांशेन, "गरी का गोला" इति हिन्दी, सहितम्। आदधान.=धारयन्। स्वोपहारम्=स्वोपायनम्। आर्पयन्= आदरेण दत्तवान्। "ऋ गतिप्रापणयोरि" त्यस्माण्णिचि "अर्त्तिह्रब्ली-रीक्नूयीक्ष्माय्याता पुङ्णावि"ति पुकि रूपम्। वीरो वीरो वार = सम्भ्रमेऽनेकशब्दोच्चारणमिति बहवः। सपत्नानाम्=शत्रूणाम्, "रिपौ वैरिसपत्नारिद्विषद्द्वेषणदुर्हृद" इत्यमरः। उत्सारणे=दूरीकरणे, समीर=

बड़ी-सी पगडी बाँधे, पैरों तक लटकने वाला लम्बा कुर्ता पहने, हाथ में गरी का गोला और यज्ञोपवीत की जोडी लिये महाकवि भूषण ने द्वारपाल द्वारा दिखाये गये रास्ते से सभाभवन मे प्रविष्ट होकर, सिंहगर्जन को भी तिरस्कृत कराने वाले गम्भीर स्वर से "महाराज की जय हो" यह कह कर अपना उपहार महाराज शिवाजी के हाथ मे रख दिया।

तदनन्तर दिखाये गये स्थान पर बैठ कर भूषण ने "यह तो वही पहले (कल) देखा हुआ वीर है" यह देखकर, "अहा वीर! वीर!! वीर!!! वीर की खोज में ही दिल्ली से यहाँ तक आया और वीर से ही आ मिला। जय हो, धर्म के उद्धार मे धीर, शत्रुओं को उखाडने में समीर के समान महाराज शिवाजी की जय हो" यह कह कर, कुछ

किंचित् स्मयमानस्य महाराजस्य मुखमवलोकयंस्तत्प्रशंसायां वीर-रसमयीं कवितामेकामपठत् ।

महाराजस्तु "साधु साधु" इति व्याहृत्य, पुनः पठितुमाज्ञप्तवान् । पठितवति च तस्मिन् सर्वेषु प्रसन्नेषु पुनरप्यादिशत् । इत्येवं विंशतिवारं तेन सा व्रज-भाषामयी 'कवित्वकाम'-नामिका वृत्तिरपाठि । महाराजेन च तस्मै गजानां विंशतिर्वितीर्णा-इत्यद्यापि प्रसिद्धं कविता-रसिकानां मण्डले ।

तदेव च दिनमारभ्य तेन भूषण-कविः स्व-सभायां संस्थापितः ।

अथ दृश्यतां ततः शास्तिखानस्य काऽवस्थेति ।

वायुः । स्मयमानस्य=ईषद्धास्यनिरतस्य । व्रजभाषामयी=व्रजभाषायां निर्मिता । तुलसीदासजन्मन. पूर्वं व्रजभाषैव कविताभाषात्वेन गणिता । बहोः कालादनन्तरमपि तस्यास्तद् गौरवं सुरक्षितमेवाभवत् । अधुना तु प्रायो हिन्द्यामेव कविता कुर्वन्ति । कवित्वकामनामिका=लोके "कवित्त" इत्यपभ्रंशतया ख्याता । वृत्तिः=छन्दः । विंशतिः, "विंशत्याद्याः सदैकत्वे सर्वाः सङ्ख्येय-सङ्ख्ययोरि"त्यमरः । गजशब्दस्य प्रथमान्तत्वेऽपि गजा विंशतिरित्येव ।

मुस्कराते हुए महाराज शिवाजी के मुख की ओर देखते हुए उनकी प्रशंसा में एक वीररसमयी कविता पढ़ी ।

महाराज ने "साधु साधु" कह कर पुनः पढ़ने की आज्ञा दी । भूषण के पढ़ने पर तथा सबके प्रसन्न होने पर पुनः आज्ञा दी । इस प्रकार भूषण ने बीस बार व्रजभाषा का कवित्त सुनाया । महाराज ने उसे बीस हाथी दिये, यह बात आज भी कविता-रसिकों की मण्डली में प्रसिद्ध है । उसी दिन से महाराज ने भूषण कवि को अपनी सभा में रख लिया ।

अब देखें, उधर शाइस्ता खाँ की क्या हालत है ।

अस्तमिते भगवति मरीचिमालिनि, अन्धकारेण व्याप्तासु हरित्सु, किञ्चित् किञ्चिच्चमत्कुर्वत्सु नक्षत्रेषु, शिववीरेणाध्युषित-चरस्य महाप्रासादस्याट्टालिकायामात्मीयैः शास्तिखान' समुप-विष्टोऽस्ति। परितश्चानेके योद्धारो मौद्गलाः वातिष्ठन्त। परितो दीपमाला चकास्ति। पुष्पवाटिकाभ्यश्च प्रस्फुटदतिमुक्तकुसुमसौ-रभमादाय धीरः समीरः प्रवहति। शास्तिखानस्तु महदुपधाने पृष्ठेनाऽऽक्रम्य, सम्मुखस्थ-रत्न-जटित-धूमपान-यन्त्र-नलिकां हस्ते

अस्तमिते=अस्ताचल गते। व्याप्तासु=सङ्कुलासु। हरित्सु=दिक्षु। चमत्कुर्वत्सु=प्रभा वितरत्सु। नक्षत्रेषु=उडुगणेषु। महाप्रासादस्य=विशाल राजमन्दिरस्य। अट्टालिकायाम्=तलिन्याम्, "अटारी" इति हिन्दी। आत्मीयैः=स्वीयैः। मौद्गलाः=मौद्गल्याः। "मोगल" इति हिन्दी। पूर्वप्रदर्शिततर्करत्नमते मौद्गल्यगोत्रा इमे क्षत्रिया इति मन्तव्यम्। साहित्याचार्यरामावतारशर्मादयोऽप्येतत्पथपथिका इति न विस्मरणीयम्। पर्यवातिष्ठन्त=परितः स्थिता अभूवन्। चकास्ति=दीप्यते। प्रस्फुटताम्=विकसताम्, अतिमुक्तकुसुमानाम्=माधवीपुष्पाणाम्, सौरभम्=शोभनं गन्धम्। सम्मुखस्थस्य=पुरःस्थापितस्य, रत्नजटितस्य=हीरकादिखचितस्य, धूमपानयन्त्रस्य="हुक्का" इति ख्यातस्य, नलिकाम्="नली" इति लोके ख्याताम्। यूथिकाकोरकाणाम्=मागधीक-

---

भगवान् सूर्य अस्ताचल को ओर गमन कर चुके है, दिशाओं में अन्धकार फैल गया है, तारे कुछ कुछ टिमटिमाने लगे है। शाइस्ता खाँ उसी राजप्रासाद में, जिसमें पहले महाराज शिवाजी रहा करते थे, अपने मुसाहिबों के साथ बैठा है। चारों ओर अनेक योद्धा मुगल बैठे है। चारों ओर दीपक जल रहे है। फुलवाडी से, खिलते हुए माधवी पुष्पों की सुगन्धि लेकर, मन्द-मन्द वायु चल रही है। शाइस्ता खाँ एक बडे मसनद पर पीठ रखे, सामने रखे हुए रत्नजटित हुक्के की नली को हाथ में

दधन्, मध्ये मध्ये च यूथिका-कोरक-पङ्क्ति-परिवेष्टित-नलिका-ग्रतः सगुडगुडाशब्दं ताम्रक धूममाकर्षन्, पार्श्वस्थ-ताम्बूलवाहक-हस्ताद्वीटिकामपि गृह्णन्, उशीर-जल-सिक्त-व्यजन-वातैर्वीज्यमानः, परितः संस्थापित-सतोय-भाजनस्थ-कुसुम-स्तबकैः सुरभीक्रियमाणः केनचन कार्यवाहेण सहैवमालपत्।

शाइस्तखानः-[मुखात् ताम्रक-धूमं फूत्कुर्वन्] बदरदीन ! कथय कीदृशस्ते प्रबन्धः पुण्यनगरे ?

लिकानाम्, पङ्क्तिभिः=पालिभिः, परिवेष्टितायाः=सर्वतो भूषितायाः, नलिकाया अग्रतः। "गुडगुडा" इत्यनुक्रियमाणः शब्दः गुडगुडाशब्दः, तेन सहितम्। ताम्रकस्य="तम्बाकू" इति ख्यातस्य, धूमम्। पार्श्वस्थः=निकटे तिष्ठन्, यः ताम्बूलवाहकः तद्धस्तात्। वीटिकाम्=ताम्बूलीदलीम्। "बीड़ा" इति हिन्दी। उशीरजलेन=नलदाम्भसा, सिक्तस्य=आर्द्रीकृतस्य, व्यजनस्य वातैः। ग्रीष्मे शैत्यपारिमल्याधानार्थं पानीये उशीर ("खस" इति भाषाया) निक्षिपन्ति जनाः। वीज्यमानः=ह्रेल्यमानः, परितः संस्थापितेषु=सर्वतो निहितेषु, सतोयेषु=पानीययुतेषु, भाजनेषु=पात्रेषु, स्थितैः कुसुमस्तबकैः=पुष्पगुच्छैः, "गुलदस्ता" इति ख्यातैः। कार्यवाहेण=कृत्यसम्पादकेन। अनुचरेणेति यावत्।

बदरदीन ! सम्बुद्ध्यन्तम्। "बदरुद्दीन" इति लोकख्यातं तन्नाम।

लिये बैठा है। वह बीच-बीच में, माधवी पुष्प की कलियों की माला से विभूषित उस नली के अग्रभाग से, गुडगुड शब्द करते हुए, तम्बाकू का धुआँ खींचता है और बीच बीच में पास में खड़े ताम्बूलवाहक के हाथ से पान का बीड़ा भी ले लेता है। उसे खस के जल से भिगोये गये पत्तों की हवा और चारों ओर रखे जलयुक्त पात्रों में लगे गुलदस्तों की सुगन्ध मिल रही है। वह अपने किसी कार्यकर्ता से इस प्रकार बातचीत कर रहा है—

शाइस्ता खाँ—(मुख से तम्बाकू का धुआँ निकालता हुआ) बदरुद्दीन ! कहो, पूना नगर में तुम्हारा कैसा प्रबन्ध है ?

बदरदीन—[करौ सम्पुटीकृत्य] चमूपते, सर्वं सुष्ठु ! प्रतिश्रृङ्गाटकं प्रतिविपणि प्रतिगोपुरं प्रतिपल्लि च दोधूयन्ते दिल्लीश्वरस्य विजय-पताकाः। विनाऽऽदेशं न कश्चिद् रुष्टतम-सोदर्योऽपि शक्तो गोपुरावग्रहणीं पदा स्प्रष्टुमुल्लङ्घितुं वा। औद्वाहिक-वर-यात्रार्थं वा, मृतकोद्वहन-निमित्तं वा, श्रीमदादेश-मुद्रापत्रं विना ससमारोहं न केऽपि पारयन्ति सर्पितुम्। साधारणतोऽपि

श्रृङ्गाटकं श्रृङ्गाटकं प्रतीति प्रतिश्रृङ्गाटकम्। "अव्ययं विभक्ती" त्यादिना वीप्सायामव्ययीभावः। एवमग्रेऽपि प्रतिविपण्यादौ। श्रृङ्गाटकम्=चतुष्पथम्। "चौराहा" इति हिन्दी। विपणिः=पण्यवीथिका, "बाजार" इति हिन्दी। गोपुरम्=पुरद्वारम्, "पुरद्वारन्तु गोपुरमि" त्यमरः। पल्लिः=कुटी। आभीरादिगेहमिति यावत्। "कुटीकुग्रामयोः पल्लिरि"ति शाश्वतः। दोधूयन्ते=अतिशयेन कम्पन्ते। रुष्टतमसोदर्यः= "रुस्तम" इति ख्यातस्य भ्राता। महान् बलशाली रुस्तम-नामा कश्चिद् यवनः पूर्वमासीत्। अवग्रहणीम्=देहलीम्। पदा=अङ्घ्रिणा। उल्लङ्घितुम्=अतिक्रमितुम्। औद्वाहिकी=विवाहसम्बन्धिनी या वरयात्रा="बारात" इति ख्याता, तस्यै। मृतकोद्वहननिमित्तम्= शववहनसंस्कारहेतुकम्। श्रीमदादेशस्य=भवदाज्ञायाः, मुद्रापत्रम्= मुद्राङ्कित पत्रम्। ससमारोह=जनसम्मर्देन सहित यथा स्यात्तथा। सर्पितुम्=गन्तुम्। साधारणत=सामान्यरूपेण। नि समारोहमिति

बदरुद्दीन—(हाथ जोड कर) सेनापते! सब ठीक है। प्रत्येक चौराहे, प्रत्येक बाजार, नगर के प्रत्येक बहिर्द्वार, और प्रत्येक गाँव में दिल्लीपति औरंगजेब की विजयपताकाएँ फहरा रही हैं। बिना अनुमति के कोई रुस्तम का भाई भी, नगर के बाहरी दरवाजे की देहली को पैर से छू या लाँघ नहीं सकता। आपकी अनुमति की मुहर से चिह्नित आज्ञापत्र के बिना कोई विवाह की बारात या मृतक की अर्थी भी समारोहपूर्वक नहीं

च द्वित्राधिका न सह पर्य्यटितुं शक्नुवन्ति जनाः। प्रतिप्रत्यूषं प्रत्यस्तमनवेलं प्रतिमध्याह्नं प्रतिनिशीथञ्च मज्जित-स्थानेभ्यः समुत्थिता मौलिवि-वर्य्यैर्निपाद-स्वरेणोच्चैरुच्चारिता धमद्धमद्ध-मकितदिगन्तराला ध्वन्यन्तर-निपातनं "अल्ला, अल्ला, अल्ला"-इति ध्वनयः प्रतिगृहम्, प्रतिप्रासादम्, प्रतिहट्टम्, प्रत्यट्टम्, प्रत्यङ्गणम्, प्रतिशालम्, प्रतितडागम्, प्रत्याराम चोत्थितैः प्रतिशब्दैः सहस्र-गुणभूता नभोमण्डलं तरङ्गयन्ति। न जानीमो

यावत्। द्वौ वा त्रयो वा द्वित्राः, तेभ्योऽधिकाः। चत्वारस्तदधिका वा जना न मिथः संयुज्य वार्त्तालापादिकं कुर्युरिति साम्प्रतिक भारत-विधान-शास्त्रीय- (ताजीरात हिन्द) चतुश्चत्वारिंशदधिकशततम—(१४४) धाराया अर्थः। स यवनकालसमारब्ध एवेति हृदयम्। मज्जितस्थानेभ्यः= "मसजिद" नामकभवनेभ्यः मौलौ=शिरसि, विरिव पक्षीव, येषा ते मौलिवयः="मौलिवी" इति ख्याताः, तेषा वर्यैः=श्रेष्ठैः। ध्वन्यन्तर-निपातनम्=इतरनादमभिभूय। क्रियाविशेषणम्। धमद्धमदिति ध्वन्यनुकरणम्। अल्ला=मातेत्यर्थः संस्कृतशब्दस्यास्य। यवनाः सर्वेश्वर-वाचकं मन्यन्ते। सागरपारस्थिताः क्षत्रिया महामायाया भक्तार आसन्निति तर्करत्नमतानुयायिनः। अट्टम्=अट्टालिका। प्रतिशब्दैः=प्रतिध्वनिभिः। नभोमण्डलं तरङ्गयन्ति=व्याप्नुवन्ति। उदृढभ्राष्ट्र=अतितप्ताम्बरीषाणि।

ले जा सकता। वैसे भी दो-तीन से अधिक लोग साथ साथ नहीं घूम सकते। प्रतिदिन सुबह, शाम, दोपहर और आधीरात को मस्जिदों से उठने वाली, मौलवियों द्वारा निषाद स्वर से जोर-जोर से की गयी, धमद्-धमद् शब्द से दिशाओं को गुँजाने वाली, अन्य ध्वनियों को अभिभूत कर देने वाली, "अल्ला, अल्ला, अल्ला" की ध्वनियाँ, प्रत्येक घर, प्रत्येक महल, प्रत्येक बाजार, प्रत्येक अट्टालिका, प्रत्येक आगन, प्रत्येक शाला, प्रत्येक तालाब और प्रत्येक उपवन से उठने वाली प्रतिध्वनियों से हजारगुनी होकर आकाशमण्डल को तरङ्गित करती हैं। भट्ठी के समान जलते हृदय

वराकाः काका इव कुत उड्डीना उद्ढ-भ्राष्ट्रा इव दु:ख-दन्दह्यमान-हृदया महाराष्ट्राः ।

शास्तिखान'–[प्रसन्नाना स्मयमानाना पार्श्वस्थाना मुखान्यवलोक्य, सकपट-हासम्] अहो ! अहो ! एवं किम् ?

वदरदीनः—[सादरम्] श्रीमन् ! एवमेव। हता हता इति हता हिन्दु-हतकाः।

शास्तिखानः-अथ शिव-वियोगेन प्रजाः सीदन्ति प्रसीदन्ति वा।

वदरदीन.—भगवन् ! सर्वोऽप्यत्यानन्दितः समालोक्यते पुण्य-नगर-निवासी जनः। सायं समय आसन्न एव जलैः सिक्तासु रथ्यासु क्षणे क्षणे सखडखडाशब्दं पुष्परथाः प्रधावन्ति। बहव

"क्लीवेऽम्बरीष भ्राष्ट्रो ना" इत्यमरः। दुःखेन=पराजयप्राप्तिखेदेन, दन्दह्यमानम्=अतिशयेन दह्यमानम्, हृदयं येषा ते।

सीदन्ति=क्लेशमनुभवन्ति। प्रसीदन्ति=प्रसन्नतामनुभवन्ति। पुष्परथा.=उत्सवादिषु सुखभ्रमणाय यानानि। "असौ पुष्परथश्च-

वाले वेचारे दुःखसन्तप्त मराठे कौओं की तरह न जाने कहां भाग गये हैं।

शाइस्ता खॉं— (पास में बैठे प्रसन्न तथा मुस्कराते हुए लोगों के मुख की ओर देख कर कपट की हँसी से) अहा हा, क्या—ऐसा है !

वदरुद्दीन—(आदरपूर्वक) हाँ हुजूर, ऐसा ही है। इन गये-गुजरे काफिरों को मरा ही समझिये।

शाइस्ता खॉं—हॉं तो शिवाजी वियोग से प्रजा दु खी है या प्रसन्न ?

वदरुद्दीन—हुजूर ! पूनानिवासी प्रत्येक व्यक्ति प्रसन्न दीख पड़ता है। शाम होते ही पानी छिड़की हुई सड़कों पर क्षण क्षण भर मे पुष्परथ

एतद्देशीया अन्यदेशीयाश्च स्वच्छ-परिधाना सुसूक्ष्म-वसनाङ्ग-रक्षिकोत्तरीयाः वीटिका-राग-रञ्जिताधराः सुवर्णादि खचित-विविध-यष्टिकान्दोलन-चञ्चल-कराः प्रतोलीषु पर्यटन्ति। केचिद् "उत्तरीयाणि भोः! उत्तरीयाणि, नारङ्गाणि नारङ्गाणि, रम्भा रम्भाः, व्यजनानि व्यजनानि, मालिका मालिका, पाचकं पाचकम्, मुरलिका मुरलिकाः, क्रीडनकानि क्रीडनकानि, मोदका मोदकाः, परिमलं परिमलम्"-इति विविधभङ्गीभिः सुस्वरं स्व स्व-वस्तूनि विक्रीणते। कुत्रश्चिदाकुञ्चितनिरस्करिणीषु अट्टालिका-गवाक्षिकासु

क्रयानं न समराय यदि" त्यमरः। प्रतोलीषु=रथ्यासु। पाचकम्=कोष्ठशोधकमौषधम्। विक्रेतारश्चतुष्पथादिषु प्रायः कदलीनागरङ्गादिरण्यवस्तुघोषणपूर्वं मिलन्तीति ननु दृष्टिगोचरम्। मुरलिकाः=वंश्यः। क्रीडनकानि= "खिलौना" इति हिन्दी। परिमलम्=सौगन्धिकम्। "इत्र" इति हिन्दी। विविधभङ्गीभिः=नाना-परिपाटीभिः। विक्रीणते=विक्रयं कुर्वते। आकुञ्चितासु=ईषद्दूरीकृतासु, तिरस्करिणीषु=यवनिकासु, "पर्दा" इति हिन्दी। अट्टालिकागवाक्षिकासु="अटारी की खिडकियों में"

(बग्घियाँ) खड़-खड शब्द करते हुए दौडने लगते हैं। साफ सुथरे वस्त्र पहने, महीन कपड़ों के कुर्ते और उत्तरीय धारण किये, पान की पीक से लाल हो रहे अधरोष्ठ वाले, चञ्चल हाथों में स्वर्ण आदि जटित विभिन्न छडियाँ लेकर उन्हें हिलाने वाले, इस प्रदेश तथा अन्य प्रदेशों के भी अनेक व्यक्ति सडकों पर घूमने लगते हैं। कुछ "उत्तरीय लो उत्तरीय, नारङ्गी लो नारङ्गी, केले लो केले, पंखे लो पंखे, माला लो माला, पाचक चूर्ण लो पाचक चूर्ण, बाँसुरी लो बाँसुरी, खिलौने लो खिलौने, लड्डू लो लड्डू, इत्र लो इत्र," इस प्रकार नाना प्रकार की भावभंगियों से मधुर स्वर में बोलते हुए, अपनी-अपनी वस्तुएँ बेचने लगते हैं। कहीं सिमटी हुई चिकों वाली अट्टालिकाओं की खिडकियों में बैठी, नाना प्रकार के

विविध-भूषण-विहित-प्रबल-चाकचक्याः प्रसाधित-केशाः अञ्जन-रञ्जित-नयनाञ्चला: सुवर्ण-कुसुमाङ्कित-पट्टाम्बर-धरा मद-विघूर्णित-लोचना: उद्भिन्न-यौवना उन्नत-कुचा मसृण-कपोलाः कपोत-कण्ठ्यो वाराङ्गनाः कटाक्ष-जाल-वागुराभिर्नव-युवक-मृगान् पाशयन्ति। किमिव कथयामि? क्वचिदापान-गोष्ठ्यः, क्वचिद् मृदङ्गादि-ध्वनयः, क्वचिद् द्यूतकोलाहलाः, क्वचिद् वारवधू-तौर्यत्रिकमित्यखिलमानन्दमयमवलोक्यते।

इति हिन्दी। विविधैः, भूषणैः=अलङ्करणैः, विहितं प्रबलं चाकचक्यं यासां ताः। प्रसाधितकेशाः=कङ्कतिकया कृतसीमन्ताः। अञ्जनेन=कज्जलेन, रञ्जितानि=भूषितानि, नयनाञ्चलानि=नेत्रप्रान्ताः, यासां ताः। सुवर्णकुसुमैः=हिरण्मयतन्तुरचितकुसुमाकृतिभिः, अङ्कितानि=चिह्नितानि, पट्टाम्बराणि=कौशेयवासांसि, यासां ताः। उद्भिन्नयौवनाः=विकसिततारुण्याः, मसृणकपोलाः=चिक्कणगण्डस्थलाः। कपोत-कण्ठ्यः=पारावतकन्धराः। कटाक्षजालमेव वागुराः=मृगबन्धनानि, "वागुरा मृगबन्धिनी" इत्यमरः। ताभिः। नवयुवका एव मृगा इति रूपकम्। पाशयन्ति=बन्धयन्ति। वशं कुर्वन्तीति यावत्। आपान-गोष्ठ्यः=मद्यपानसभाः। वारवधूनाम्=वेश्यानाम्, तौर्यत्रिकम्=नृत्यगीतम्।

आभूषणों से चकाचौंध उत्पन्न करने वाली, सँवारे हुए बालों वाली, काजल लगे नेत्रों वाली, सोने के फूल कढ़ी रेशमी साड़ी पहनने वाली, मदमत्त नेत्रों से घूरने वाली, विकसित यौवना, उन्नत कुच, चिकने गाल और कबूतर की-सी गर्दन वाली वेश्याएँ अपने कटाक्ष जालों से नवयुवक रूप मृगों को फाँसती हैं। क्या क्या कहूँ? कहीं मद्यपानगोष्ठियाँ, कहीं मृदङ्ग आदि की ध्वनियाँ, कहीं जुए का कोलाहल, कहीं वेश्याओं का नाचगाना, सब आनन्द ही आनन्द दिखाई देता है।

शास्ति०—तत्किं शिवसहचरा महाराष्ट्रा अपि प्रसादमेवाऽऽसादयन्ति, न तु विषादम् ?

बद०—भगवन् ! स्यान्नाम विषादस्तेषां हृदये, किन्तु बहिः प्रसादमेव दर्शयन्ति ।

इत्याकलय्य अन्येऽपि श्लाघकाः-"भगवन् ! को नाम जिजीविषुः प्रसादं न दर्शयेत् ? प्रकटित-शिव-वियोग-विषादस्तु बलाद् विषाद एव क्रियेत"-इत्याहुः ।

आसीत् तत्रैवोपविष्ट एको वृद्धो वीरश्चान्द्रखान-नामा । स तु केवलं रोचकमिदं मिथ्या-प्रशंसनमाकर्ण्य, कर्णयोस्तोद्यमान इव ग्रीवामाकुञ्च्य, भ्रू-युगं सन्नमय्य, ओष्ठ-युगं कम्पयन्, मनस्येव—

जिजीविषुः=जीवितुमिच्छुः। प्रकटितः शिववियोगस्य विषादः=क्लेशः येन सः । विषमत्तीति विषादः=विषभक्षी । इन्येतास्माभिरिति तात्पर्यम् ।

चान्द्रखान-नामा="चाँद खाँ" इति नाम यस्य सः । तोद्यमानः=कण्टकादिना वेद्यमानः । भ्रूयुगम्=भ्रूयुगलम् । सह्युञ्जते=संयुक्ता

शाइस्ता खाँ—तो क्या शिवाजी के साथी मराठे भी खिन्न न होकर, प्रसन्न ही हो रहे हैं ?

बदरुद्दीन—हुजूर, वे दिल में भले ही सर्क्षाटा हों पर बाहर तो खुशी ही प्रकट करते हैं ।

यह सुनकर और भी खुशामदी बोल पड़े—"हुजूर, जिन्दगी चाहने वाला कौन-सा ऐसा आदमी है जो प्रसन्नता न प्रकट करेगा । जो शिवाजी के वियोग के विषाद (दुःख) को प्रकट करेगा, उसे बलपूर्वक विषाद (विषभक्षक) ही बना दिया जायगा अर्थात् मार डाला जायगा ।

वहीं चाँद खाँ नाम का एक बूढ़ा वीर बैठा था । इस रोचक झूठी तारीफ को सुनकर, मानो उसके कानों में पीड़ा होने लगी हो इस प्रकार, गर्दन सिकोड़ कर, भौंहें नीची कर, अधरोष्ठों को कँपाता हुआ, वह मन

"धिगेतांश्चाटुकार-हतकान्, ये प्रशसाभिरेव प्रभूनन्धयन्ति । प्रतिक्षणमधिक जाज्वल्यते शिव-तिरस्कार-जन्या ज्वाला महाराष्ट्राणा हृदये । गानेषु पानेषु नृत्येषु कुकृत्येषु चास्मत्सजातीया एव सह युञ्जते; न तु महाराष्ट्र-सिंहा । यावदारभ्य चिक्कनदुर्गोऽस्माभिर्गृहीतस्तावदारभ्य महाराष्ट्र-बालकोऽप्यस्मांश्चिचर्वयिषुरिव सभ्रुकुटि पश्यति न त्वधीन इति बिभेति । पर्वत-प्रायस्य कोङ्कणदेशस्य केशरिण एते । को जानीते कदाऽऽक्रम्यास्मान् कर्तयित्वा क्रव्यादेभ्यो विकिरिष्यन्ति, परन्तु कृतघ्ना एते मिथ्या-प्रलापैरेव चमूपतिं वञ्चयन्ति"—इत्यालपत् ।

अथ पुनरारब्धवानालपितुं शास्तिखानः ।

भवन्ति । सम्मिलन्तीति यावत् । चिक्कनदुर्ग="चाकन दुर्ग" इति प्रसिद्धः । चिचर्वयिषुः=चर्वयितुमिच्छुः । कर्तयित्वा=छित्वा । क्रव्यादेभ्यः=मासभक्षकेभ्यः सिंहादिभ्य । शतघ्न्यः=तोपा ।

ही मन कहने लगा—"इन गये-गुज़रे खुशामदियों को धिक्कार है जो झूठी तारीफों से मालिक को इस प्रकार अन्धा बनाए दे रहे हैं । मराठों के हृदय में शिवाजी के अपमान से उत्पन्न होने वाली ज्वाला क्षण-प्रतिक्षण बढ़ती ही जा रही है । गान, पान, नाच और कुकृत्यों में तो हमारी ही जाति के लोग इकट्ठे होते हैं, न कि मराठे वीर । जब से हमने 'चाकन' दुर्ग छीना है तब से मराठा बच्चा भी, "मैं मुगलों के अधीन हूँ" यह सोचकर डरने के बजाय, हम लोगों की ओर क्रोध से भौंह तान कर ही देखता है, मानों हमें चबा जाना चाहता हो । ये कोंकण के पहाड़ी प्रदेश के शेर ही हैं । कौन जाने कब आक्रमण कर के काट-काट कर मासभक्षी सिंहादिकों के आगे फेंक दें । परन्तु ये कृतघ्न खुशामदी झूठी बकवादों से सेनापति को धोखा दे रहे हैं, ठग रहे हैं ।"

फिर शाइस्ता खाँ ने इस प्रकार बातचीत शुरू की ।

शा०—अथ कः प्रबन्धश्चिक्नदुर्गस्य ?

ब०=श्रीमन् ! तत्रापि परितो नीलध्वजाः समुद्धूयन्ते । यथा-स्थानं शतघ्न्यः । संस्थापिताः, द्वारेषु च भटा नियुक्ताः सन्ति, अन्तश्च सानन्दं सेना निवसति ।

चान्द्रखानः—[मनस्येव] सानन्दम्, न तु सतर्कम् ?

शास्ति०—[स्वयं किञ्चद् विचार्येव, सोत्प्रासम्] सम्मुखयुद्धं प्राप्येत चेद्विजये एव को विलम्बः ?

तावत्तत्रस्थः कश्चिच्चाटुकारो महामदगणि–नामा सगात्रविक्षेपं प्रावोचत्—

भगवन् ! महाराष्ट्राः स्वप्नेऽपि न पारयन्ति सम्मुखं योद्धुम्, तथा साहसं कलयितुञ्च ।

सोत्प्रासम्=सोल्लुण्ठनम् । सोपहासमिति यावत् ।

महामदगणि-नामा=मुहम्मदगनी-नामधेयः । सगात्रविक्षेपम्=शरीरं प्रकम्प्य । हर्षातिरेकादिदम् ।

शाइस्ता खाँ—अच्छा, चाकन दुर्ग का क्या प्रबन्ध है ?

बदरुद्दीन—हुजूर, वहाँ भी चारों ओर नीले झण्डे फहरा रहे हैं। यथोचित स्थानों पर तोपें रखी हैं, द्वारों पर योद्धा नियुक्त हैं और अन्दर सेना आनन्दपूर्वक रह रही है।

चाँद खाँ—(मन ही में) आनन्दपूर्वक, न कि सतर्कतापूर्वक ।

शाइस्ता खाँ—(स्वयं मानो कुछ सोच कर, हँसता हुआ) यदि सम्मुख युद्ध करने को मिल जाय, तब तो हमारी विजय में कुछ भी देर नहीं है ।

इसी बीच वहाँ बैठा हुआ मुहम्मद गनी नाम का कोई खुशामदी प्रसन्नता से शरीर हिलाता हुआ बोला—"हुजूर ! मराठे सपने में भी सम्मुख युद्ध नहीं कर सकते, तथा साहस भी नहीं कर सकते ।"

चान्द्रखानस्तु असहमानः शनैरवोचत्-अहं तु मन्ये, ते उभयं कर्तुं पारयन्ति ।

शास्ति०—कथम् ?

चा०—किं न स्मर्यते चमूपति-चरणैर्यद् गत-वत्सरे चिक्कनदुर्गं प्रविश्याऽऽस्माकीनसेनां ते कथमिव वीरतया साहसेन प्राबल्येन च पश्यतामेवास्मदीय-वीरम्मन्यानां खण्डशः समकार्षुः ? किं नैतत्सम्मुखं युद्धम् ? न वैतत् साहसम् ? भगवन् ! अहं तैः सह युद्धे बहुवारमासम् । किन्तु समसेनैरपि मौद्गलैर्युद्धे प्रवृत्ते तेषामेव ध्रुवो जयः—इति मे निश्चयः ।

महामदगणि —[चमूपतेश्चान्द्रस्य च मुखमालोक्य] आः !! तत्किं वयं दुर्बला वा, असाहसा वा, अचतुरा वा, कातरा वा ? यत्समबलानामपि तेषामेव जयो भवेदिति ।

चाँद खाँ से न सहा गया, वह धीरे से बोला—"मैं समझता हूँ वे दोनो कर सकते हैं, सम्मुख युद्ध भी और साहस भी ।"

शाइस्ता खाँ—कैसे ?

चाँद खाँ—क्या हुजूर को याद नहीं है कि पिछले साल मराठों ने चाकन दुर्ग में प्रवेश कर, अपने को वीर मानने वाले हमारे सिपाहियों के देखते-ही देखते, किस प्रकार वीरता, साहस और प्रबलता से हमारी फौज के टुकड़े-टुकड़े कर डाले थे ? क्या यह सम्मुख युद्ध नहीं है ? अथवा यह साहस नहीं है ? हुजूर, मैं मराठों के साथ युद्ध मे कई बार रहा हूँ, किन्तु मराठों की सेना के बराबर मुगल सेना होने पर भी युद्ध में मराठों की ही जीत तय है, ऐसा मेरा पक्का विश्वास है ।

मुहम्मद गनी—(शाइस्ता खाँ और चाँद खाँ का मुँह देखकर) अरे, तो क्या हम दुर्बल हैं, साहसहीन हैं, डरपोक हैं, या हम में चालाकी या वीरता नहीं जो समान सेना होने पर भी उन्हीं की जीत होगी ?

चा०—नैवम्, किन्त्वल्पाऽपि परिपन्थि-सेना द्वैगुण्येनैव आक्रमणीया-इत्येषोऽस्माकमभ्यासः। तेषां च द्विगुणाऽपि चतुर्गुणाऽपि च शत्रुसेना कतिपयैरेव सादिभिर्योद्धव्या, निरोद्धव्येति च विलक्षणो वीर-स्वभावः।

शा०—[धूममाकृष्य हसित्वेव] चान्द्रखानो वयोवृद्ध इति साम्प्रतं पार्वतेभ्य उन्दुरुभ्योऽपि बिभेति। (चान्द्रस्तु कोष्ण-किरात-स्वरसमिव क्रोधमवगीर्य तूष्णीक एव तस्थौ)

महामदगणिः—आम्, आम्, आम्, सम्यगाज्ञप्तमार्यैः। उन्दुरव इवैव ते गिरि-कुहरेषु निवसन्ति।

बद०—हुं हुं हुम्, अन्धकारेषु बहिर्भवन्ति, ताड्यमानाश्च पलायमानाः पुनः कुहराणि श्रयन्ते।

पार्वतेभ्यः=पर्वतीयेभ्यः। उन्दुरुभ्यः=मूषकेभ्यः। "उन्दुरुर्मूषकोऽप्याखुरि"त्यमरः। कोष्णः=ईषदुष्णः, किरातस्वरसः=भूनिम्बकषायः, तमिव। "चिरायते का काढा" इति हिन्दी। अतितिक्तोऽयम्।

चाँद खाँ—नहीं, यह बात नहीं है। फिर भी, हमारा अभ्यास थोड़ी-सी भी शत्रुओं की सेना पर दुगुनी सेना से आक्रमण करने का है और उनका दुगुनी और चौगुनी सेना से भी कुछ ही घुड़सवारों से भिड़ जाने और रोक लेने का अद्भुत वीरस्वभाव है।

शाइस्ता खाँ (धुआँ खींचकर, हँस कर) चाँद खाँ बुड्ढा हो गया है इसलिए अब पहाड़ी चूहों से भी डरने लगा है। (चाँद खाँ गरम चिरायते के काढे की तरह क्रोध पीकर चुपचाप बैठा रहा)

मुहम्मद गनी—जी हाँ, जी हाँ, जी हाँ, हुजूर ने ठीक फरमाया। ये चूहों की तरह ही पहाड़ों की खोहों में रहते हैं।

बदरुद्दीन—हूँ, हूँ, हूँ, अँधेरे मे बाहर निकलते हैं और पीटे जाने पर फिर बिलों में घुस जाते हैं।

चान्द०—आम् सत्यम् ! किन्तु उन्दुरव एतेऽस्मद्भवजान् कञ्चुकान् उष्णीषांश्च खण्डशो न कुर्य्यु, अस्मदालयभित्तिका-तलानि जर्जरितानि न विदध्युः, पुण्यनगर-बहिःप्रदेशादेतत्पर्य्यन्तं चान्तरन्तरेव महागर्त्त विधाय, अकस्मान्न पातयेयु ।

शा०-इह बहवो यवन-बिडाला सन्ति, न भयमुन्दुरुभ्य ।

(ततः सर्वेऽपि चाटुकाराः सकरतल-ध्वनि अहसन्, चाटुकारा एव च विजिग्यिरे ।)

ततश्चिरं यावद् महाराष्ट्र-भटै सह कथं योद्धव्यमित्येव विचारो जातः । किन्तु चिक्कनदुर्ग-जय-समये महता कष्टेन महाराष्ट्राः पराङ्मुखीकृता -इति दुर्गयुद्धायानुत्सहमान. शास्तिखानः प्रावोचत्-

पर्वतमयोऽयं समन्ताद् दुर्गमयः कोङ्कणदेशः । तदेकैकं

विजिग्यिरे=विजय प्राप्तवन्तः । "विपराभ्या जेरि"त्यात्मनेपदम् ।

चाँद खाँ—हाँ, सच है । किन्तु ये चूहे कहीं हमारे झडो, कुर्तों और पगडियों को टुकड़े टुकड़े न कर डालें, हमारे घरों की दीवारों की नींव जर्जर न कर दें, पूना के बाहर वाले प्रदेश से लेकर यहाँ तक अन्दर ही अन्दर खोखला बनाकर कहीं एकाएक गिरा न दे ।

शाइस्ता खाँ—यहाँ बहुत से यवन-योद्धा रूप बिडाल रहते हैं, इसलिये चूहों से कोई डर नहीं है । (यह सुनकर सभी चापलूस ताली बजाकर हँस पडे, और जीत चापलूसों की ही हुई ।)

फिर देर तक यही विचार होता रहा कि मराठे सिपाहियों से कैसे लडना चाहिये । किन्तु चाकन दुर्ग की विजय के समय मराठो को बडी मुश्किल से भगाया जा सका था यह सोचकर, दुर्गयुद्ध के लिये अनिच्छुक शाइस्ता खाँ ने कहा—कोकण प्रदेश पर्वतबहुल है और इसके चारों ही

दुर्गजयोद्योगः क्रियेत चेत्, "पादाङ्गुष्ठ-शिरीषाग्निः कदा मौलिमवाप्स्यति ?–" इति प्रतीक्षा–विडम्बना स्यात्। तस्मात् तिष्ठन्तु नाम दुर्गेषु कारागारेषु निगृहीता इव महाराष्ट्रा एव। अस्माभिस्तु साम्मुखीन–युद्धार्थमेव यतनीयम्। चान्द्रखानस्तु एतद्विषयेषु अत्यन्तं सप्रतिभ आसीत्। स तु किञ्चिद्विचार्य्येव करौ सम्पुटीकृत्य, नीतिपरिपूर्णमुपदिदेश यत्—

चमूपते ! दुर्गाण्येव महाराष्ट्राणां बलानि। प्रायस्ते व्यर्थमिति मत्वा कमपि प्रशस्तं भूभागं रणाङ्गणीकृत्य ध्वजान् समुद्धूय भेरीराहत्य न योत्स्यन्ते। किन्तु परितः पर्वतदरीषु महारण्येषु गिरिगणावृत-दुर्गेषु च निर्भया अवस्थास्यन्ते। अस्मांश्च यदा कदाचिद्दे-

'पादाङ्गुष्ठशिरीषाग्नि. कदा मौलिमवाप्स्यति ?' लोकोक्तिः। एकतस्तु पदाङ्गुष्ठतले विद्यमानः सोऽपि च शिरीषाग्निः, तस्य सार्धत्रिहस्तोर्ध्वस्थितशिरःपर्यन्तगमने कियान् विलम्ब इति सम्भाव्यमेव। शिरीषम्= पुष्पविशेषः कोमलोपमानत्वे प्रसिद्धः। सप्रतिभः=नवनवोन्मेषशालिन्या

और किले हैं। यदि एक-एक किला जीतने का प्रयत्न किया जायगा तो इसमें काफी समय लगेगा, तब तक शिवाजी को जीतने की प्रतीक्षा विडम्बना ही होगी। पैर के अगूठे के नीचे विद्यमान शिरीष-पुष्पों की अग्नि, सिर तक कब पहुँचेगी इसकी प्रतीक्षा विडम्बना ही है। अतः मराठे दुर्ग रूप जेलों में कैदी की भाँति पड़े रहें, हमें तो सम्मुख युद्ध के ही लिये प्रयत्न करना चाहिये। चाँद खाँ इन विषयों में अत्यधिक प्रतिभाशाली था। उसने कुछ विचार-सा करके, हाथ जोड़ कर, यह नीतिपूर्ण उपदेश दिया—

सेनापति ! दुर्ग ही मराठों की शक्ति हैं। वे किसी सुन्दर भूभाग को युद्धस्थल बनाकर, ध्वज फहराकर, भेरी बजाकर, लड़ने को व्यर्थ समझकर, प्रायः इस प्रकार का युद्ध नहीं करेंगे। किन्तु चारों ओर पहाड़ों की कन्दराओं में, घने जंगलों में, और पहाड़ियों से घिरे दुर्गों में निर्भय

वासावधानानाकलय्य पशुमारं मारयिष्यन्तीति शनैः शनैरेकैक-दुर्ग-ग्रहणार्थमेवोद्योग करणीयः—इति मे मतिः। सम्मुख च युद्धा-योपस्थिता अपि पलायिष्यन्ते चेद् उच्चावचोपत्यकासु गण्ड-शैल-मय-निबिडारण्य-कुञ्झटिकासु दुरूहारोहावरोह-पद्धतिषु सानुषु च तेषा कथामात्रमपि न प्राप्स्यतेऽस्माभिः।

शास्तिखानस्तु चिक्कन-दुर्गाधिकार-युद्ध-स्मरणेन हतहृदयः पुनस्तादृशं रोम-हर्षण युद्धमविधित्सुः कातरतरान्तरात्मा समुवाच—महाराष्ट्रा युद्धक्षेत्रमपास्य पलायिष्यन्ते चेत् किमस्माकोना नानु-

---

युद्धयाविर्भूषितः। असावधानान्=प्रमत्तान्। पशुमारं मारयिष्यन्ति=यथा पशून् मारयिष्यन्ति तथेत्यर्थः। अनायासेनेति यावत्। "उपमाने कर्मणि चे"ति णमुल्। उच्चावचोपत्यकासु=निम्नोन्नतासु पर्वतासन्न-भूमिषु। गण्डशैलमयानि निबिडानि=घनानि, अरण्यान्येव कुञ्झ-टिका=दुरवगाहनीयभूमयः, तासु। दुरूहाः=दुर्विज्ञेयाः, आरोहाव-रोहपद्धतयः=ऊर्ध्वाधोगमनमार्गा येषु तादृशेषु। सानुषु=पर्वतनितम्बेषु, "नितम्बोऽद्रेः स्नु प्रस्थः सानुरस्त्रियामि" त्यमरः।

अविधित्सु=अचिकीर्षुः। कातरतर=अत्यन्तत्रस्तः, अन्तरात्मा=अन्तःकरण, यस्य सः। अत्यन्तकातरत्वादेव प्रयोगे वारद्वयं किमं प्रयुक्तवान्।

होकर रहेंगे और ज्यों ही हमें असावधान देखेंगे जानकर की मौत मार डालेंगे। अतः मेरे मत से धीरे-धीरे एक-एक दुर्ग पर अधिकार करने के लिये प्रयत्न करना चाहिये। सम्मुख युद्ध के लिये उपस्थित होने पर भी यदि वे भागे तो ऊँची-नीची घाटियों, पहाड़ियों वाले घने जंगलों, कठिन उतार-चढाव वाले रास्तों और पहाड़ों की चोटियों में हम उनके निशान भी न पा सकेंगे।

चाकन दुर्ग पर अधिकार करते समय हुए युद्ध के स्मरण से साहसहीन, और पुनः उस प्रकार का रोमाञ्चकारी युद्ध करने को अनिच्छुक, अधीर-हृदय शाइस्ता खाँ ने कहा—यदि मराठे युद्धस्थल छोड़ कर भागेंगे तो

धाविष्यन्ति ? अस्मत्सेनास्वश्वारोहा न सन्ति ? ते किं घोटक-खुर-खडखडा-शब्द-श्रवणेनैवार्द्धमृतप्रायान् कन्दरि-कन्दरेष्वर्द्ध-प्रविष्टानेव शक्ति-प्रोतान् न करिष्यन्ति ?

चान्द्रखानः-महामान्य ! सक्ष्वेडं महाराष्ट्राः सम्मुखमायाताश्चेद् दिल्लीवल्लभस्य निश्चितो जयः, पलायिता अपि च गृह्येरंश्चेद्वश्यमेव जयः, परं पलायितानामेषामनुधावनमेव कठिनम् ।

शास्ति०—तत्कथम् ?

चान्द्र०—भगवन् ! अस्माकं स्थूलकायाः सरल-भूभाग-मात्र-धावनाभ्यासिनो हयाः, तदुपरि च महाकवचाः शस्त्रास्त्रमहाभारभृतः सादिन'—इति ते न शक्नुवन्ति उद्घातिनीषु उपत्यकासु तथा अश्वांश्चा-

---

शक्तिप्रोतान्=शक्तिनामकशस्त्रविद्धान् ।

सक्ष्वेडम्=ससिंहनादम् । "क्ष्वेडा तु सिंहनादः स्यादि"त्यमरः ।
गृह्येरन्=गृहीता भवेयुः । अनुधावनम्=अनुसृत्य धावनम् ।

महाकवचाः=विशालतनुत्राणाः । उद्घातिनीषु=स्खलनयोग्यासु

क्या हमारे सैनिक उनका पीछा न करेंगे ? क्या हमारी सेना में घुड़सवार नहीं हैं ? क्या वे घोड़ों के खुरों के खड़-खड़ शब्द सुनने से ही प्रायः अधमरे हो गए, पहाड़ों की खोहों में आधे ही घुसे हुए मराठों को बर्छों से छेदकर मार न डालेंगे ?

चाँद खाँ—महामान्य ! यदि मराठे सिंहगर्जन कर सामने आ जायँ तो दिल्लीपति की जय निश्चित है, भागते हुए भी यदि पकड़ लिये जायँ तो भी जीत अवश्य होगी; पर भागते हुए मराठों का पीछा करना ही तो कठिन है ।

शाइस्ता खाँ—वह कैसे ?

चाँद खाँ—हुजूर ! हमारे मोटे-ताजे और केवल मैदान में ही दौड़ने के अभ्यस्त घोड़ों पर बैठे, बड़े-बड़े कवचों और शस्त्रास्त्रों का बोझ सँभालने वाले भारी-भरकम घुड़सवार ऊँची-नीची घाटियों में घोड़ों को वैसे नहीं

लयितुं यथा महाराष्ट्रा लघुभिः पार्वतघोटकैरुन्दुरव इव कुहरेषु निविशन्ते, मर्कटा इव सानुमत्सानून्यारोहन्ति, पक्षिण इवोपत्यकात उपत्यकामुड्डीयेव गच्छन्ति, शशका इव च तरुलतास्वपस्मानमाच्छाद्य तिष्ठन्ति। तत् सपदि सेना आयोज्य सिंहदुर्गं पर्यावनीयः। तस्मिन्नेव शिवोऽस्ति, मासेन मासद्वयेन वा दुर्गमेतद्धस्तगत भविष्यति, शिवश्च बन्दीकरिष्यते, दिल्लीश्वरस्य च विजयपताकाः सर्वत्रापि कोङ्कणप्रदेशे दोधूयिष्यन्ते। इदमेवाध्यवस्यति मम तुच्छा बुद्धिः। श्रीमते च यथा रोचेत तथा विधेयम्।

शा०—[सभ्रुकुटि] कथमिव साहसमुन्मुच्य सम्मुखयुद्धाद् विरज्यसि। [परितोऽवलोक्य] किं कोऽपि नास्ति साहसिकोऽस्म-

विषमासु। उन्दुरवः=मूषका इव, उपमालङ्कारः। अग्रेऽप्येवम्। निविशन्ते, "नेर्विशः" इत्यात्मनेपदम्। सानुमत्सानूनि=पर्वतनितम्बान्। उड्डीयेवेत्युत्प्रेक्षा। आयोज्य=सज्जय्य। अवनीयः=अवैरतिक्रमणीयः। "तेनातिक्रामति"। अध्यवस्यति=निश्चिनोति। उन्मुच्य=परित्यज्य। विरज्यसि = विरक्तो भवसि।

दौड़ा पाते वैसे मराठे छोटे छोटे पहाड़ी टट्टुओं से चूहों की तरह कन्दराओं में घुस जाते हैं, बन्दरों की तरह पहाड़ की चोटियों पर चढ़ जाते हैं, पक्षियों की तरह एक घाटी से दूसरी घाटी को मानों उड़कर चले जाते हैं और खरगोशों की तरह वृक्षलताओं के पीछे अपने को झट से छिपाकर बैठ जाते हैं। अतः जल्द ही सेना तैय्यार कर सिंह दुर्ग को घुड़सवारों से घेर लेना चाहिये। महीने-दो महीने में यह दुर्ग अपने हाथ आ जायगा, शिवाजी बन्दी बना लिया जायगा, और दिल्लीश्वर की विजयपताकाएँ सारे कोकण प्रदेश में फहराने लगेंगी। मेरी तुच्छ बुद्धि तो यही निश्चय करती है, आगे हुजूर को जैसा अच्छा लगे वैसा करें।

शाइस्ता खाँ—(भौंहें तान कर) छिः छिः, क्या साहस छोड़ कर सम्मुख युद्ध से भागते हो। (चारों ओर देखकर) क्या हमारी सेना में

त्सेनासु यत् त्वं रण-प्राङ्गण-समर-विरुद्धं सन्त्रयसे। [ततो 'वयं रणाङ्गणयुद्धमीहामहे' इति परितश्चाटुवादिनोऽब्रुवन्]

चा०—[शोककोपोन्मथितहृदयो मुखमधः कृत्वा निःश्वस्य च] न सामर्थ्यं मम मन्त्रणस्य, किन्तु श्रीमद्भिरेव स्थिरीक्रियताम्, यथा चाऽऽज्ञापयिष्यते तथा विधास्यति दास एषः।

इति सम्प्रधार्य, धूमपान-नलिका-मुखं पार्श्वस्थोपबर्हे संस्थाप्य ताम्बूलिक-दत्तां वीटिकां दन्तैः सन्दश्य, सम्मुख-संस्थापित-राजत-पात्रस्थ-कुसुम-गुच्छानामन्यतममुत्थाप्य जिघ्रति तस्मिन्; अकस्मात् प्रतीहारेण प्रविश्य सजयध्वनं अभिवाद्य करौ सम्पुटीकृत्य कथितम्—दीनबन्धो ! सिंहदुर्गात् पण्डित एकः समायातोऽस्ति।

साहसिक=साहसवान्। मत्वर्थीये ठनि तस्य चेकि रूपम्।

ताम्बूलिकदत्ताम्=ताम्बूलवाहिदत्ताम्। यद्यपि ताम्बूलं पण्यमस्येति विग्रहे "तदस्य पण्यमि"ति ठकि साधुत्वेन ताम्बूलविक्रेत्रर्थे युक्तः प्रयोगः, किन्तूपचारेण ताम्बूलदायकेऽपि प्रयोगः कार्य इति ग्रन्थकृदभिप्रायः।

कोई साहसी वीर नहीं है जो तुम इस प्रकार युद्धस्थल में युद्ध करने के विरुद्ध राय देते हो ! (तब सब ओर से चापलूस बोलने लगे, "हम युद्धस्थल में सम्मुख युद्ध चाहते हैं।")

चाँद खाँ—(शोक तथा क्रोध से उन्मथित हृदय, मुँह-नीचा कर के निःश्वास पूर्वक) आपको राय दे सकने की शक्ति मुझ में नहीं है, आप ही निश्चय करें, जैसी आपकी आज्ञा होगी वैसा ही यह दास करेगा।

यह सुनकर शाइस्ता खाँ हुक्के की नली के मुँह को पास की मसनद पर रखकर ताम्बूलवाहक (खवास द्वारा दिये गये पान के बीड़े को दाँतों से काट कर, सामने रखे चाँदी के पात्रों में वर्तमान फूल के गुच्छों में से एक गुच्छा उठाकर सूँघ ही रहा था कि एकाएक द्वारपाल ने प्रवेश कर, जयध्वनि के साथ अभिवादन कर के हाथ जोड़ कर कहा—

"गरीबपरवर ! सिंहगढ से एक पण्डित आया है।"

तदाकर्ण्य, आ ! एवम् ! एव तु चिरात् प्रतीक्ष्यते मया। प्रवेशय प्रवेशय–इति साम्रेडमुक्तवान् शास्तिखानः।

तावत् सर्वेषु तत्पथमेव प्रविलोकयत्सु प्रतीहारेण सह सात्त्विकवेषः पण्डित एकः प्रविवेश।

तञ्च श्यामवर्णम्, चन्दन-त्रिपुण्ड्राङ्कितम्, आरक्तचक्रोष्णीषम्, सुन्दर-श्वेत-कञ्चुकम्, पीतोत्तरीय-शोभित-कन्धरम्, किञ्चित्खर्वाकृतिमपि अपीच्यदर्शनमवलोक्य सर्वे सभासदस्तथैवावास्थिषत।

"आगम्यतामिह समीपे स्थीयताम्" इति स्थानं निर्दिशति शास्तिखाने सोऽपि प्रह्वीभूय किमप्यादर-सूचक-वचनमुच्चार्यैव समुपाविक्षत्। ततस्तेन तेषामेवमभूदालापः।

सात्त्विक वेष प्रदर्शयति-तञ्चेत्यादिना। चन्दनत्रिपुण्ड्रेणाङ्कितम्। ललाटे तिसृभी रेखाभिः सूच्यमान त्रिपुण्ड्रम्। आरक्तम्=ईषद्रक्तम्, चक्रम्=वृत्ताकृति, उष्णीषं यस्य तम्। "गोल टोपी" इति हिन्दी। किञ्चित्खर्वाकृतिम्=ईषद्वामनम्। अपीच्यदर्शनम्=शोभनावलोकनम्। सुन्दरमिति यावत्। अवास्थिषत=स्थिता बभूवुः।

यह सुनकर शाइस्ता खाँ ने "अच्छा, भेजो, भेजो। उसी का तो मैं कितनी देर से इन्तजार कर रहा था" कहा।

सभी लोग पण्डित की राह देखने लगे, इसी बीच प्रतीहारी के साथ सात्त्विकवेष में एक पण्डित ने प्रवेश किया।

साँवले रंग वाले, चन्दन का त्रिपुण्ड लगाये हुए, गुलाबी गोल पगडी और सुन्दर सफेद कुर्त्ता धारण किये हुए, कन्धे पर पीला उत्तरीय डाले, कुछ ठिंगने होने पर भी देखने में सुन्दर लगने वाले महादेव पण्डित को देखकर सभी दरबारी ज्यों-के त्यों बैठे रहे।

शाइस्ता खाँ के "आइये, इधर पास में बैठिये" इस प्रकार स्थान निर्देश करने पर, वह पण्डित भी नम्रतापूर्वक कुछ आदरसूचक वाक्य कह कर बैठ गया। तब उस पण्डित से उन लोगों की इस प्रकार बातचीत हुई।

शास्तिखान'—पण्डित ! तव किं नाम ?

पण्डित.—नास्ति देहोऽपि गेहमपि नामापि मम किञ्चन । आम्, लोकास्तथाऽपि भापन्ते [सकासनम्] मां महादेव इति । भगवन् ! अस्मिन्नसारे संसारे देहो वा गेहं वा नाम वा, तादृश किमस्ति यदह ममेति कथयामि । तथाऽपि मां जनाः "महादेवो महादेवः" इति कथयन्ति ।

[तदाकलय्य सर्वेऽपि पण्डिताना भाषण-भङ्गमभिननन्दुः]

शा०—अथ को वृत्तान्तः सिंहदुर्गस्य ?

नास्ति देहोऽपि, गेहमपीत्यादिना तस्य वेदान्तिता प्रकटिता । सकासनम्="खाँसी के साथ" इति हिन्दी । कासश्वासादिप्रकरणे वैद्यकग्रन्थेषु बहुश ईदृशेऽर्थे व्यवहृतोऽय धातुः । धातोरनेकार्थतायाः सर्वसम्मतत्वेन निर्वाहः । असारे संसार इति ते बहुया कथयन्ति ये ससारार्णवे चिराय निमग्नाः पुत्रकलत्रादिरक्षणमात्रपराः सस्कृताक्षरदुर्दशाकरणपटव इति सोपहासमुक्तिः । अत एवाग्रे—"पण्डिताना भाषणभङ्गीम्"—इति बहुत्वं प्रायुङ्क्त कविरिति वर्णस्वारस्यवेदिनः ।

शाइस्ता खाँ—पण्डित ! तुम्हारा नाम क्या है ?

पण्डित—न तो शरीर ही मेरा है, न घर ही, और न मेरा कोई नाम ही है । फिर भी लोग मुझे (खाँसते हुए) 'महादेव' कहते हैं । भगवन् ! इस सारहीन संसार में, शरीर, घर या नाम ऐसी कौन-सी चीज है जिसे मै अपना कह सकूँ । फिर भी लोग मुझे "महादेव", "महादेव" ऐसा कहते हैं । (यह सुनकर सभी ने पण्डित की भाषणशैली की प्रशंसा की)

शाइस्ता खाँ—अच्छा, सिंहगढ़ का क्या समाचार है ?

महादेवः—

"रसयन् गोस्तनी-कन्दम्, स्थितोऽपि स्वर्ण-पञ्जरे।

[किञ्चित् कासित्वा]

रसालवन-वियोग-ज्वालाभिर्दह्यते एव कोकिलः ॥"

शास्तिखान—किम् ?

महा०—भगवन् ! यद्यपि सुवर्ण-रचिते पञ्जरे कोऽपि कोकिलस्तिष्ठेत्, यद्यपि च द्राक्षायाः कन्दं प्रत्यहं खादेत्, तथाऽप्याम्रवन-वियोग-दुःखेन दुःखी भवत्येव।

शा०—किं तात्पर्य्यम् ?

महा०—चमूपते ! एतदेव यद्, यद्यपि सिंह-दुर्गे सिंह-सदृशै-

गोस्तनी=द्राक्षा। रसालवनेत्यत्र छन्दोभङ्गः, स च विस्मृत पद्य-खण्ड स्वय यथा तथा निर्माय पपाठेति द्योतयति। अत एव मध्ये कासन-मप्युपपद्यते। विस्मृत्य हि जनाः कासनादिना समयमतिवाहयन्ति।

किमिति पृष्टः श्लोकार्धमेव प्रकटयामासेति द्वितीया पण्डितानां भाषण-शैली। ते यदि किमपि वक्तुमुद्यता भवन्ति तदा घुष्ट श्लोकं निवेद्य तादृशै-रेवाक्षरैस्तदर्थं समुपस्थाप्य विरमन्ति।

महादेव—द्राक्षारस का पान करता हुआ और सोने के पिंजरे में रहता हुआ भी (कुछ खाँस कर) कोयल पक्षी, आम्रवन के वियोग की ज्वाला से जलता ही रहता है।

शाइस्ता खाँ—क्या ?

महादेव—भगवन् ! यदि कोई कोयल सोने के पिंजरे में भी रहे, और प्रतिदिन अंगूर भी खाये, फिर भी उसे आम्रवन के वियोग का दुःख तो होता ही है।

शाइस्ता खाँ—क्या मतलब ?

महादेव—सेनापते ! यही कि यद्यपि शिवाजी सिंहगढ में सिंह समान

वीर-भटैर्युतो रत्न-जटित-कनक-दण्डैः श्वेत-चामरैर्वीज्यमानः शिववीरः सुखेन वसति, तथाऽपि पुण्यनगर-वियोगस्य चिक्कन-दुर्ग-वियोगस्य च दारुणं व्रणमिव दुःखं स बिभर्त्ति ।

शा०—सत्यम्, किन्तु तस्य व्रणस्य का चिकित्सा ? दुःसाध्योऽयं रोगः ।

महा०—सोऽप्यसाध्यं न मनुते, किन्तु दुःसाध्यमेव ।

शा०—तत्किं प्रधानं चिक्कन-दुर्गं कोङ्कण-देश-रत्नमिव च पुण्यनगरं हस्तीकृतवत्यपि मयि शिवोऽधुना मया सह युयुत्सते ? युद्धेन वा महारोगस्यैतस्योपायं चिकीर्षति ? एवं चेज्जम्बुकस्य बुभुक्षित-केसरि-खर-नखराक्रान्तोरण-जिघृक्षा विफला ।

हस्तीकृतवति=वशीकृतवति । जम्बुकस्य=शृगालस्य । बुभुक्षितस्य=क्षुधार्त्तस्य, केसरिणः खरनखरैः=तीक्ष्णाङ्गुलिप्रान्तैः, आक्रान्तस्य=आस्कन्दितस्य, गृहीतस्येति यावत् । उरणस्य=मेषस्य, जिघृक्षा=ग्रहीतुमिच्छा । यथा शिवकर्तृकतादृशोरणग्रहणेच्छाया वैफल्यं, तथैव शिववीरस्य चिक्कनदुर्गादिलब्ध्यभिलाप इति तत्त्वम् ।

वीर सैनिकों के साथ सुखपूर्वक रह रहे हैं, और उन्हें रत्नजटित, सोने के दण्ड वाले, सफेद चँवरों से हवा की जा रही है, फिर भी पूना नगर और चाकन दुर्ग का वियोग उन्हे दारुण घाव की तरह कष्ट दे रहा है ।

शाइस्ता खाँ—सच है, पर उस घाव का इलाज क्या है ? यह रोग तो दुःसाध्य है ।

महादेव—शिवाजी भी इस रोग को असाध्य नही, दुःसाध्य ही मानते हैं ।

शाइस्ता खाँ—तो क्या प्रधान चाकन दुर्ग और कोंकण देश के रत्नभूत पूना नगर के मेरे हथिया लेने पर भी शिवाजी मुझसे लडना चाहता है ? या इस महारोग का इलाज युद्ध से करना चाहता है ? यदि ऐसा है तो गीदड की, भूखे शेर के पैने नाखूनों से दबोचे गये भेडे को छीन लेने की कोशिश बेकार ही होगी ।

महा०—चमूपते !

"न कुर्य्याच्चातको मुग्धश्चेत्स्ववाञ्छित-सूचनम् ।
न पूरयति किं मेघस्तत्तृष्णां जल-वृष्टिभिः ?॥"

शा०—किम् ?

महा०—प्रभो ! यदि चातक-नामा पक्षी याचितुं न जानीयात्; तत्किं मेघो जलवृष्टिभिस्तत्तृष्णां न शमयति ? अर्थात् यदि सम्मुख-युद्ध-पराभव-लज्जितो महाराष्ट्र-राजः स्वमुखेन सन्धये न प्रार्थयेत्, तत्किं भवान् स्वयमेव स्वोदारतया यथोचित-दानाऽऽदानैस्तेन सह न सन्दध्यात् ?

शा०—[सन्धि-प्रस्तावं श्रुत्वा सानन्दः] तत्किं सन्धित्सते शिवः ?

न कुर्याच्चातको मुग्ध इत्यत्र शिववीरशास्तिखानचरिते प्रस्तुतेऽप्रस्तुत-चातकमेघादिवर्णनादप्रस्तुतप्रशंसा ।

दानादानैः=दानप्रतिग्रहैः । न सन्दध्यात्=न सन्धिं कुर्यात ? काका कुर्यादेव । "शेषे प्रथमः" इत्यनेन भवत्पदयोगात् प्रथमपुरुषत्वम् ।

महादेव—सेनापते ! यदि भोलाभाला चातक पक्षी अपनी अभिलाषा सूचित न करे, तो क्या मेघ जलवृष्टि द्वारा उसकी पिपासा शान्त नहीं करता ?

शाइस्ता खाँ—क्या !

महादेव—हुजूर ! यदि चातक नामक पक्षी माँगना न जानता हो तो क्या बादल पानी बरसा कर उसकी प्यास नहीं बुझाते ? अर्थात् यदि सम्मुख युद्ध में हार जाने के कारण लज्जित महाराज शिवाजी अपने मुँह से सन्धि की प्रार्थना न करें तो क्या आप स्वयं ही अपनी उदारता से कुछ ले देकर उनसे सन्धि नहीं कर सकते ?

शाइस्ता खाँ—(सन्धि का प्रस्ताव सुनकर आनन्दपूर्वक) तो क्या शिवाजी सन्धि करना चाहता है ?

महा०—चमूपते ! दिल्लीश्वरेण योद्धुं कोऽभिमन्येत ? सम्प्रति तु महाराष्ट्र-मण्डले प्रतिगेहं प्रतिभित्ति प्रतिमुख च सन्धिः सन्धि-रित्येव श्रूयते महाध्वनिः ।

शा०— [हसन्, चान्द्रखानप्रति सामर्षम्] ह ह ह ! पश्य, महा-राष्ट्राः सम्मुख-युद्धाद्भीता ? आहोस्विद् दुर्ग-रोधाद् ? साम्रेडं कथयाम्येतैः कदर्य्य-हतकैः सम्मुखं योद्धव्यमिति । त्वं तु नैजानेव स्वप्नान् पश्यसि ।

तदाकर्ण्य चान्द्रखानः क्रोधारक्त-वदनोऽप्यधोमुखः समतिष्ठत । महादेवश्च महाराष्ट्र-निन्दां सकष्टमश्रौषीत् । शास्तिखानः पुनर्महा-देवाभिमुखीभूय तं सम्बोध्य सोत्प्रासमुवाच—

"साधु, साधु, पण्डित ! साधु, तव पाण्डित्येऽतितरां प्रसीदामि ।"

समतिष्ठत, "समवप्रविभ्यःस्थ" इत्यात्मनेपदत्वम् । सोत्प्रासम्=

महादेव—सेनापते ! दिल्लीनरेश से युद्ध करने का अभिमान कौन कर सकता है ? इस समय तो महाराष्ट्र देश में हर घर, हर दीवार और हर मुँह से "सन्धि सन्धि" यही कोलाहल सुनाई दे रहा है ।

शाइस्ता खाँ—(हँसता हुआ, चाँद खाँ की ओर क्रोधपूर्वक) ह ह ह, देख मराठे सम्मुख युद्ध से डरे हैं या किले घेरने से ? बार-बार कहता हूँ कि इन क्षुद्र कायरों से सम्मुख-युद्ध करना चाहिये, पर तुम अपने ही सपने देखा करते हो ।

यह सुन कर चाँद खाँ का मुँह गुस्से से लाल हो गया, पर वह मुँह नीचा किये ही बैठा रहा । महादेव ने बहुत कष्टपूर्वक मराठों की निन्दा सुनी । शाइस्ता खाँ पुनः महादेव की ओर मुँह कर उसे संबोधित कर बोला—

"ठीक है, ठीक है पण्डित जी ! आपकी विद्वत्ता से मैं बहुत खुश हूँ" ।

चाटुकाराः—आम्, आम्, साधु, साधु, महानेष पण्डितः।

शा०—अहो! माधुर्य्यं संस्कृत-भाषायाः।

चाटु०—ओः! अपूर्वमेव माधुर्य्यमिदम्!!

शा०—तत्किमायातो भवान् सन्धि-विषयक-वार्त्तां कर्तुम्?

महा०—एवम्!

शा०—अथ दर्शय किमपि प्रमाणपत्रम्, यथा त्वं शिवेनास्मिन् विषयेऽधिकृतोऽसीत्यहं निश्चिनुयाम्।

महा०—तथा [इति पत्रं दर्शयामास] ततः शास्तिखाने पत्रं हस्ते गृहीतवत्येव कश्चन भृत्यो जाज्वल्यमान-दीपाश्रित-काच-मञ्जूषा हस्ते समादाय, सम्मुख आगत्य, पत्रोपर्य्युनुकूल-प्रकाशमकरोत्। स च द्विस्त्रिः पठित्वा, मुद्रादिकं सावधानतयाऽवलोक्य,

---

चापलूस लोग—हाँ हाँ, ठीक है, ठीक है, यह बहुत बड़े विद्वान् हैं।

शाइस्ता खाँ—अहा, संस्कृत भाषा कितनी मधुर है।

चापलूस लोग—वाह, अपूर्व माधुर्य है!

शाइस्ता खाँ—तो क्या आप सन्धि के सम्बन्ध में बातचीत करने आये हैं?

महादेव—हाँ, यही बात है।

शाइस्ता खाँ—अच्छा तो कोई प्रमाणपत्र दिखाइये जिससे मुझे यह निश्चय हो सके कि शिवाजी ने आपको सन्धिसम्बन्धी बातचीत करने का अधिकार दिया है।

महादेव—अच्छा (यह कह पत्र दिखा दिया)। तदनन्तर, शाइस्ता खाँ के हाथ में पत्र लेते ही, एक नौकर ने हाथ में लालटेन (शीशे की मञ्जूषा, जिसमें जलता दीपक रखा था) लेकर, सामने आकर, पत्र के ऊपर उचित प्रकाश कर दिया। शाइस्ता खाँ ने पत्र को दो-तीन बार पढ़ कर, उसकी मुहर आदि का सावधानीपूर्वक निरीक्षण

पत्रं भुवि संस्थाप्य, "भद्रम्, ज्ञातमिदम्, अस्ति भवानधिकृतोऽस्मिन् विषये, तदारभ्यताम्"—इत्यब्रूत।

महा॰—चमूपते! "वयमादौ पराजिताः, पुनश्च शोणित-शोण-धाराभिः क्षोणी-क्षालनं व्यर्थम्"—इति निवेदयति प्रभुः।

शा॰—आम्!

महा॰—अतः स सन्धित्सते।

शा॰—तथाऽस्तु।

महा॰—तत् कैर्नियमैः सन्धेयमिति स विवित्सति।

शा॰—आदौ दिल्लीश्वरस्य वशवदता कर-प्रदता चाङ्गीकरणीया, अपि रोचत इदं भवत्प्रभवे?

मन्दस्मितेन सह। शोणित-शोणधाराभिः=लोहित-लोहित-प्रवाहैः। क्षोणी=पृथिवी।

विवित्सति=वेत्तुमिच्छति।

कर, उसे जमीन पर रखकर कहा—"हाँ समझ गया। आपको सन्धि-सम्बन्धी बातचीत करने का अधिकार दिया गया है। अच्छा तो प्रारम्भ कीजिये।"

महादेव—सेनापते! हमारे महाराज निवेदन करते हैं कि "हम पहिले ही हार गए हैं, फिर खून की लाल धाराओं से जमीन को धोना बेकार ही है।"

शाइस्ता खाँ—हाँ।

महादेव—इसीलिये वे सन्धि करना चाहते हैं।

शाइस्ता खाँ—तो ऐसा ही किया जाय।

महादेव—वे जानना चाहते हैं कि सन्धि-किन नियमों से होगी?

शाइस्ता खाँ—पहले तो दिल्लीनरेश की आधीनता और करप्रदता (कर देना) स्वीकार करनी होगी, क्या आपके मालिक को यह पसन्द है?

महा०—तस्मै किं रोचते, का वा तस्य सम्मतिरिति वक्तुं नाधिकृतोऽस्मि, किन्तु यदादेक्ष्यतेऽत्रभवद्भिस्तदेवास्मै निवेदयिष्यामि, स चोरीकारमनूरीकारं वा स्वयं प्रकटयिष्यति।

शा०—अस्तु, कथ्यतां तस्मै यत्-प्रथमतो दिल्लीश्वराज्ञावाहकता तत्करदता चाङ्गीकरणीया। द्वितीयतो यानि दुर्गाणि स्थानानि चास्माभिर्जितानि, तेषां पुनरादित्सा न विधेया। तृतीयतश्चान्यान्यपि सिंहदुर्ग-प्रभृतीनि कानिचित् दुर्गाणि दिल्लीश्वरायोपहरणीयानि।

महा०—[किञ्चिद् विचार्येव] सिंहदुर्गादीनि कानि कानि ?

शा०—तानि विविच्य परस्तात् पत्रद्वारा सूचयिष्यामि।

महा०—नान्यत् ?

आदेक्ष्यते=आदेशः करिष्यते। ऊरीकारम्=स्वीकारम्।
आदित्सा=आदातुमिच्छा। उपहरणीयानि=उपायनीकरणीयानि।

महादेव—उन्हें क्या पसन्द है या उनकी क्या राय है, यह कहने का मुझे अधिकार नहीं दिया गया है, किन्तु जो कुछ आप आज्ञा करेंगे मैं उनसे निवेदन कर दूँगा, स्वीकृति या अस्वीकृति तो वे स्वयं ही प्रकट करेंगे।

शाइस्ता खाँ—अच्छी बात है तो उनसे कह दीजिये कि पहले तो दिल्लीश्वर की आज्ञा मानना और उन्हें कर देना स्वीकार करना होगा, दूसरे वे उन दुर्गों या स्थानों को लेने की कोशिश न करें जिन्हें हमने जीत लिया है और तीसरे सिंहगढ आदि कुछ दुर्ग दिल्लीश्वर को उपहार में देने होंगे।

महादेव—(कुछ विचार-सा करके) सिंहगढ इत्यादि कौन-कौन से ?

शाइस्ता खाँ—उन्हें विचार-विमर्श कर बाद में पत्र द्वारा सूचित करूँगा।

महादेव—और कुछ नहीं ?

शा०—नान्यत्। इदमेव तस्मै कथ्यताम्, तत्सम्मतिश्च मह्यं सोमूच्यताम्।

महा०—अथास्मिन् विषये यावत् पत्रालापः, नियम-व्यवस्थापनं च भवेत्, तावत् युद्धं शाम्यतु-इत्यपि निवेदयति प्रभुः।

शा०—अलमुत्कीर्त्यापि तत्। यावन्नियमः स्थिरो न भवति तावद् यवन-वीरा यत्रैव महाराष्ट्र-सेना द्रक्ष्यन्ति, तत्रैव तैर्योत्स्यन्ते। गम्यतामधुना, कथ्यतामेष विषयः स्वप्रभुं।

तदाकर्ण्य, "तथाऽस्तु" इति व्याहृत्य सप्रह्वभावमुत्थाय न्यवर्तत महादेवः।

चान्द्रखानस्तु महादेवस्य वार्त्ताः श्रावं श्रावम् "अप्येष स्वयं

उत्कीर्त्य=कथयित्वा। वक्तव्यमपि नेत्यर्थः। सप्रह्वभावम्=सनम्रतम्।

शाइस्ता खाँ—और कुछ नहीं। उनसे जाकर यही कहो और उनकी राय से मुझे सूचित करो।

महादेव—हमारे स्वामी का यह भी निवेदन है कि जब तक सन्धि-विषयक पत्र-व्यवहार चले और जब तक इस सम्बन्ध में नियमों की कोई निश्चित व्यवस्था न हो जाय तब तक युद्ध बन्द रहे।"

शाइस्ता खाँ—उसका तो नाम भी न लीजिये। जब तक सन्धि के नियम स्थिर नहीं हो जाते तब तक मुगल सैनिक जहाँ कहीं भी मराठी सेना देखेंगे वहीं उनसे लड़ेंगे। अब आप जाइये और यह बात अपने मालिक से कह दीजिये।

यह सुनकर महादेव पण्डित "ऐसा ही होगा" यह कह कर नम्रतापूर्वक उठकर लौट पड़े।

महादेव पण्डित की बातें सुन-सुन कर—"क्या यह स्वयं शिवाजी

शिववीर, अपि वा तस्यैव कश्चिदनुजः सहचरो वा ? यतः संवादिनी आकृतिरनुकारिणी च वागस्ति"–इति सशयान, मुहुर्मुहुः परामर्शपराभ्यां नयनाभ्यां तं निपुणं निरीक्षमाणः, चमूपतिरन्यादृश इति स्वाभिप्रायं प्रकटयितुमप्यनीहमान, उत्थित एवास्मिन्स्वयमप्युत्तस्थौ।

महादेवस्तु मुकुर–चित्र–पट्टिका–स्तम्भ–वितान–द्वार–कपाटाद्यवलोकन-च्छलेन शनैः शनैर्निश्रेणीः कोष्ठानि प्राचीराणि शस्त्रागार रक्षकावासं च यथाशक्ति गम्भीरमवालोकयत्। "किमिवेतस्ततः पश्यसि ?" इति पृष्टवति चान्यतमे रक्षके, "न किमपि, अस्मिन्नेव पूर्वं शिववीर उवास, अधुना च सर्वं युष्माभिराक्रान्तमित्येव स्मृत्वा भवदैश्वर्यं विलोकयामि"–इत्युवाच।

संवादिनी=सदृशा। अनुकारिणी=तुल्या। परामर्शपराभ्याम्=अनुसन्धानासक्ताभ्याम्। अन्यादृशः=पर इव स्वविषये। अनीहमानः=अनिच्छन्। निःश्रेणी=अधिरोहिणीः।

है या उसीका कोई छोटा भाई या साथी है, क्योंकि इसकी आकृति तो शिवाजी की-सी ही है और बोली भी उसकी बोली के समान ही है" यह संशय करता हुआ, पण्डित को खोजपूर्ण नेत्रों से सावधानीपूर्वक बार-बार देखता हुआ, "सेनापति शाइस्ता खाँ तो कुछ दूसरा ही समझते हैं" यह सोचकर अपने अभिप्राय को प्रकट करने को अनिच्छुक चाँद खाँ भी महादेव पण्डित के उठते ही खुद भी उठ पड़ा।

महादेव पण्डित ने शीशों, चित्रपटों, खम्भों, तम्बुओं, दरवाजों और किवाड़ों को देखने के बहाने धीरे-धीरे सीढ़ियों, कमरों, चहारदीवारियों, शस्त्रागार और रक्षकों के निवासस्थान को भी यथाशक्ति भली-भाँति देख लिया। किसी प्रहरी के—"इधर-उधर क्या देख रहे हो" यह पूछने पर "कुछ भी नहीं, पहले इसी किले में शिवाजी रहते थे, अब तो सब कुछ तुम लोगों ने दबा लिया है, यही सोचकर आपका ऐश्वर्य देख रहा हूँ" यह कहा।

अथ "गच्छ, यत्र शिवोऽधुना वसति तस्मिन्नपि वयमद्य श्वो वा, एवमेव विचरिष्यामः। किमिव गत शोचसि ? तद्रक्षार्थमेव यतनीयमिति प्रभवे निवेदय"-इति प्रौढं भाषमाणे रक्षके अङ्गार-प्रतिमाभ्यां चक्षुर्भ्यां तं दहन्निव, आपादमामस्तकञ्च द्वित्रिरवलोक्य "यदाज्ञाप्यते वीरै" इति सव्यङ्ग्यमाभाष्य, द्वारदेहलीमुल्लङ्घ्य, तत्रत्यानि पञ्चषाणि सोपानान्यवतीर्य घण्टापथेन यातायातं कुर्वतां मनुष्याणां प्रवाहे मिश्रितो बभूव।

इति पञ्चमो निश्वासः।



प्रौढम्=उच्चैः। घण्टापथेन=राजमार्गेण। "दशधन्वन्तरो राज-मार्गो घण्टापथः स्मृतः" इति चाणक्यः।

इति श्रीशिवराजविजयवैजयन्त्या पञ्चमनिश्वासविवरणम्।



तदनन्तर, प्रहरी के, जोर से "जाइये, जहाँ इस समय शिवाजी रह रहा है वहाँ भी हम आज या कल मे इसी तरह घूमेंगे। व्यर्थ बीती बातों को क्या सोचते हो ? जाकर मालिक से कहो कि जहाँ हैं उसी को बचाने की कोशिश करें।" यह कहने पर, अपने अंगारसदृश नेत्रों से उसे जलाते हुए से महादेव पण्डित, उसे सिर से पैर तक दो-तीन बार देख कर, व्यंगपूर्वक "वीरवर को—जो आज्ञा" कह कर, दरवाजे की देहली पार कर, वहाँ की पाँच-छः सीढियाँ उतर कर सडक पर यातायात करते हुए लोगों की भीड में मिल गये।

शिवराजविजय के हिन्दी भाषान्तर का पञ्चम निःश्वास समाप्त।

"बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ?"

—पञ्चतन्त्रम् ।

आसीत् शिववीरस्य परम-मित्रं नीति-निष्णातो वीरवरः परम-साहसी विविध-युद्धेषु विहित-शिव-साहचर्यः, खड्ग-चालन-विद्या-कुशलो माल्यश्रीकनामा । स च महादेव-पण्डित-वेषमाकलय्य दूतताच्छलेन शत्रुभवनं प्रविविक्षुं शिववीरमालोक्य तदनुमत्या गृहीत-यवन-भिक्षु-वेषः, नील-निचोलाञ्चलाधस्तिरोहित-तीक्ष्णतर-च्छुरिकः, कटि-पर्य्यन्त-विलम्बमान-मेचक-कुञ्चित-केशः, सुशोभित-कृत्रिम-श्मश्रु-कूर्चः, हरित-परिधानः, करेणैकेन तीव्रतम-शङ्कूकृत-दण्डम्, नारङ्गाकृति-मुखम्,

---

शिववीरेण महादेवपण्डितात्मना योधपुराधीश्वरः श्रीयशवन्तसिंहः स्वमनीषाप्रभावाद् वशीकृत इति कथोपक्षेपक पञ्चतन्त्रीय प्रतीकमुद्धरति बुद्धिर्यस्येति । परमञ्च तन्मित्रम् । मित्रशब्द. नित्यक्लीवः सहचररूपेऽथ । नीतिष्णात =राजनीतिकुशलः । विविधयुद्धेषु-विहितं शिवस्य साहचर्यं येन स । नित्यसापेक्षत्व विधानस्य केन कथं कुत्राद्यर्थं इति न सविशेषणाना वृत्त्यभावानुचिन्ता । प्रविविक्षुम् = प्रवेष्टुमिच्छुम् । गृहीतः = अङ्गीकृतः, यवनभिक्षो = यवनयाचकस्य, "फकीर" इति ख्यातस्य, वेषः= नेपथ्य येन सः । नीलनिचोलस्य = नीलरक्तकञ्चुकस्य, अञ्चलाध = कोणनिम्नभागे, तिरोहिता = गुप्ता, तीक्ष्णतरा = खरतरा, छुरिका = कृपाणिका, येन सः । कटिपर्यन्तम् =श्रोणीपर्यन्तम्, विलम्बमानाः =समायाताः, मेचकाः =श्यामाः, कुञ्चिताः =वलिताः, केशाः=बालाः, यस्य सः । हरितपरिधानः =हरितवासाः । यवनसाधवः प्रायो हरितवाससः एव भवन्ति । वाद्य विशिनष्टि—तीव्रतम =अत्यन्त-कठोरः, शङ्कूकृतः =कीलकीकृतः, दण्डो यस्य तत् । नारङ्गाकृति=नारङ्गा-

विलम्बित-विविध-सुसूक्ष्म-शृङ्खला-खण्डम्, झणज्झणद्-ध्वनि-रुचिरं वाद्यमेकं वादयन् भिक्षाटनार्थमिव तत्पश्चादेव प्रचलितः। यवन-भिक्षुकाणां च नाऽऽसीत्तथा निरोधः-इति गोपुराध्यक्षेण किञ्चिदालप्यैवान्तः प्रवेष्टुमाज्ञप्तः सपदि प्रविश्य पारस्यभाषया कानिचिच्छन्दांसीवाऽऽम्रेडयन्, कर्हिचित् प्रपद-पातित-दृष्टिः, कदाचिद् गगनतलं समीक्षमाणः, निरपेक्ष इव, ब्रह्मानन्दनिमग्न इव च महादेव-पण्डित-वेषं शिववीरमेव कश्चित् किञ्चिद् दूरतोऽनुगच्छन्, कर्हिचिद्धस्तग्राह्यमनुसरन्, स्वयमपि शास्ति-स्थानाध्युषित-प्रासादस्य द्वारपर्य्यन्तमायातः। शिववीरे प्रासादान्तः प्रविष्टे च स्वयमेव तत्रैव पर्य्यटन्, प्रासादं भू-भागादट्टालिका-पर्य्यन्तं निपुणं निरीक्षमाणः, द्वार-पालानां रक्षकाणां च तानि तानि निवेशनानि समीक्षमाणः, भवनमेतत् परितः पूर्णतया दिदृक्षुः परितो विस्तीर्णायां पुष्प-वाटिकायां प्रविष्टः।

कारम्, अर्थाद् गोलाकृति मुखं यस्य तत्। विलम्बितानि=आलम्बमानानि, विविधानि सुसूक्ष्माणि शृङ्खलाखण्डानि यस्मिंस्तत्। झणज्झणद्ध्वनिना रुचिरम्=श्रोतृचित्ताकर्षकम्। भिक्षाटनार्थमिव भिक्षाटनिवेषप्रदर्शन-मात्रं न तु भिक्षार्थमटनम्-अत एवेवसार्थक्यम्। तथा, यथा हिन्दूनामिति शेषः। उक्तिवैचित्र्यार्थमनुक्तिः। गोपुराध्यक्षेण=पुरद्वाराधिकारिणा। किञ्चिदेवालप्येत्यन्वयः। छन्दांसि-"गजल"प्रभृतीनि। प्रपदे=पादाग्रे "पादाग्रं प्रपदमिति"इति कोषः, पातिता=स्थापिता दृष्टिर्येन सः। निरपेक्ष-ताव्यञ्जकमिदम्। सापेक्षा हि पथि गच्छतो धनिनो विचित्रया दृशा निभालयन्ति। हस्तग्राह्यम्=हस्तेन ग्रहीतुं योग्यो यथा स्यात्तथा। स्वयमेव= आत्मनाऽपि। एवकारोऽप्यर्थे। अत एव न समानार्थकशब्दद्वयस्यैकवाक्य-घटकत्वम्। द्वारपालानाम्=दौवारिकाणाम्। रक्षकाणाम्=प्रहरिणाम्। निवेशनानि=आवासकोष्ठकानि। समीक्षमाणः=सम्यक् पश्यन्। परितः= सर्वतः। सदनमिति शेषः। पुष्पवाटिकायाम्=गृहोपवने।

प्रथमतः सघन-हरित-लता-वेष्टित-द्रुमावलिः, द्वितीयतस्तमोबहुला तमी, तृतीयतश्च नील-निचोलोऽयं जटिलः—इति वीक्षमाणैरप्यवीक्ष्यमाणः, प्रासादं परिक्रम्येव, सर्वाणि स्वाभिमतगुप्तस्थानानि सम्यगवलोक्य सप्रसादं मनस्येवाचकथत् यत्—

अहो ! न दुर्घटमाक्रमणमेतस्य शास्तिखान-वराकस्य । नगराद्बहिरेतस्य सेना, प्रासादरक्षका अपि च प्रासादादस्माद् दूरतो मन्दुरासु वसन्ति, यथासमयं च पञ्चषाः समागत्य द्वारि तिष्ठन्ति, प्रासादस्य पृष्ठांशे विशालमुद्यानम् । नात्र रात्रौ कोऽपि मनुष्यो विचरति । उद्यान परितस्तु लोह-दण्ड-प्रावारः, यमुल्लङ्घ्य यतस्तत एव प्रविविक्षुः प्रवेष्टुमर्हति, यत्राऽऽच्छन्नशरीराश्च परस्सहस्राः परैरलक्ष्यमाणाः समस्तां रात्रिमतिवाहयितुं पारयन्ति । प्रासादे च बहवो गवाक्षा ग्रीष्मकालेऽस्मिन्नुन्मुद्रिता एवोपेक्ष्यन्ते । "कः समायाति ? परास्तो महाराष्ट्र-हतकः"—इति विश्वसन्तः प्रहरिणो रक्षकाश्च निर्निस्त्रिंशा एव निश्चर्माण एव च सोपेक्ष परस्परं हसन्तो

सघनाभिः=ससान्द्राभिः, हरिताभिः=हरिद्वर्णमयीभिः, अशुष्काभिरिति यावत्, लताभिः=व्रततिभिः, वेष्टिता=वलयिता, द्रुमाणाम्, आवलिः=पङ्क्तिः । तमोबहुला=अन्धकारप्रचुरा । तमी=तमिस्रा । नीलनिचोलः=कृष्णप्रच्छदः । जटिलः=जटायुतः । "लोमादि-पामादि-पिच्छादिभ्यः शनेलचः" । वीक्षमाणैः=पश्यद्भिः । अवीक्ष्यमाणः=अनवलोक्यमानः । सप्रसादम्=सप्रसन्नतम् । अचकथत्, लुङ् ।

मन्दुरासु=वाजिशालासु । प्रासादरक्षकाणा प्रासादस्थितिरपेक्षिता सा नेति सोपहाससूक्तिः । पृष्ठदेशे=पाश्चात्यभागे । लोहदण्डप्रावारः=आयसदण्डवृतिः । आच्छन्नशरीराः=प्रावृतदेहाः । परैः=शत्रुभिः । अलक्ष्यमाणाः=अज्ञायमानाः । उन्मुद्रिता=उद्घाटिताः । उपेक्ष्यन्ते=निर्विचार त्यज्यन्ते । निर्निस्त्रिंशाः=खड्गशून्याः । निश्चर्माणः=त्यक्तफलकाः, "फलकोऽस्त्री फलं चर्म" त्यमरः । सोपेक्षम्=उपेक्षया सहित

ह्रासयन्तश्च स्व-प्रहरमतिवाहयन्ति । प्रासादान्तःस्थितानां चमूपतेः सहवासिनां च पानैरेव शयनैरेव च तथा समयो व्यत्येति, यथा ते का प्राची ? का प्रतीची ? कः परकीयः ? क आत्मीयः ? दिनं वा ? रजनी वा ? शयामहे वा ? उद्बुध्यामहे वा ? श्वेतो वा ? कृष्णो वा ? इत्यादि चिरेण विदन्ति—इति ।

पुनः परावृत्य प्रधान-द्वारमागत्य तदधिकृतस्य प्रतीहारस्यैकस्य सम्मुखमागत्य वाम-हस्तेन वाद्यं झणज्झणत्कुर्वन् तस्यैव मुखमण्डले दत्तदृष्टिरनिमेषपातमवलोकयन्नस्थात् ।

स च—स्वामिन् ! किं कथ्यते ?—इति द्वित्रिश्चापृच्छत् । अस्मिश्चोत्तरमददत्येव तथैवावलोकयति ; स्वामिन् ! अपि भोक्ष्यते किमपि ?—इति सादरमुवाच ।

स तु किञ्चित् मस्तकं कम्पयन्, मौनेनैव प्रतिनिवृत्य, निवर्तनमार्ग एव कतिपयानि पदानि गत्वा, घण्टापथस्य प्रान्तस्थायामेक-

---

यथा स्यात्तथा । स्वप्रहरम्=स्वयामम् । पानैः=मद्यगोष्ठीभिः । शयनैः=रतिफलकैः स्वापैः । व्यत्येति=व्यतिक्रामति । परस्यायं परकीयः=अनात्मीयः । गहाद्यन्तर्गणसूत्रेण कुक्छश्च । आत्मनोऽयमात्मीयः । गहादित्वाच्छः । श्वेतो वा कृष्णो वा, लोकोक्तिरेषा । एतद्विवरणफलकान्येव पूर्वोक्तपदानि ।

परावृत्य=यथागतमागत्य । अनिमेषपातम्=निमेषानप्यपातयित्वेत्यर्थः । क्रियाविशेषणम् । अस्थात्=निवृत्तगतिकोऽभूत् । स्थाधातोरत्रैवार्थे मुख्य प्रयोगः । "तिष्ठतु भवानि" त्यागन्तुक प्रति पण्डितराजशिवकुमारमिश्रकथने "किमपराद्धं मये"ति तदागन्तुककथाऽत्रानुसंधातव्या । स्वामिन् !="साईं" इति हिन्दी । यवनसाधोः सम्बोध्यमानत्वात् ।

स तु तूष्णीकः समतिष्ठतेति सम्बन्धः । मस्तकं कम्पयन्, न भोक्ष्यामीति बोधनायेदम् । निवर्त्तनमार्ग एव=येन पथा निवृत्तस्तेनैव कियद्दूरं गत्वेत्याशयः । घण्टापथस्य=राजमार्गविशेषस्य । प्रान्तस्थायाम्=समीप-

स्यामुन्नत-वेदिकायां पश्चिमाभिमुख उपविश्य पातितोभयजानु स्थित्वा वाद्यं पुरस्तात् संस्थाप्य मुखमध कृत्य तूष्णीक समतिष्ठत। तथास्थितस्यैव तस्य हृदये विचाराकूपारस्य तरङ्गा इव बहुभङ्गमाकलयन, यद्—

"अहह! कथमिव समायातोऽयं दुर्भाग्यमय. समयः कोङ्कणदेशस्य, यद् यत्र गरुडाङ्किता महाध्वजाः समद्धूननंगगन-तलोद्धूयमान-पवनमपावयन्; तत्र भारताभिजन-सघन-कलङ्का इव नीलध्वजाः समद्धूयते, यत्र कोटि-जन्मार्जित-महापातक-दीर्घ-दाव-दावानल-ज्वाला-मालाभिरिव हरि-नाम-घोषणाभिर्व्यापूर्यत वसुधा, तत्र कर्ण-कषायाः, चीत्कारमयाः, हरि-हर-निन्दा-नादा कर्णा

वर्तिन्याम्। उन्नतवेदिकायाम्=उच्चाया परिष्कृतभूमौ। पातिते उभयजानुनी यस्या तदिति क्रियाविशेषणम्। विचाराकूपारस्य=भावनासागरस्य। बहुभङ्गमिव=आघातप्रतिघातमिव। आकलयन्=अधुः। स विविधविचार कृतवानित्यर्थः।

गरुडाङ्किताः=गरुडचिह्निताः। विष्णुमन्दिरस्थत्वात्। गगनतले=छायापथे, उद्धूयमानम्=सञ्चरन्तम्, पवनम्=समीरणम्, स्वयमपि पवित्रताहेतुमिति पवनशब्दव्यङ्ग्यम्। अपावयन्=पूतमकार्षुः। भारताभिजनस्य=भारतदेशस्य, सघना =सान्द्रीभूताः, कलङ्का इव। स्वभावत एव नीलध्वजपटस्य भारतीयसघनकलङ्कत्वेनोत्प्रेक्षणम्। नीलध्वजाः=कृष्णपताकाः, सचन्द्रा हरिद्वर्णा यवनध्वजा भवन्ति। कोटिजन्मभिः=असंख्यातजननैः, अर्जितानि=सञ्चितानि, यानि महापातकानि=ब्रह्महत्यादीनि—

> "ब्रह्महत्या सुरापान स्तेय गुर्वङ्गनागमः।
> महान्ति पातकान्याहु संसर्गश्चापि तै. सह" ति—

मानवं शासनम्, तान्येव दीर्घदाव=महाकाननम्, तस्य दावानलः=वनाग्निसदृशाः, रूपकम्। भस्मीकरणं रूपणहेतुः, तस्या ज्वालामालाभिरिव=अर्चिस्ततिभिरिवेत्युत्प्रेक्षा। हरिनामघोषणाभिः=भगव-

स्फोटयन्ति । यत्र कदा जन्माष्टमी ? कदा रामनवमी ? कदैकादशी ? कदा प्रदोष' ?—इति पृच्छा समश्रूयत पण्डित-मण्डलेषु; तत्र हि कदा 'मोहरम. ? कदा रामयानम् ?'—इत्यादिराकर्ण्यते आरव्य-भाषामयो मौलिवीनां वचन-विन्यासः। यत्र विपणिषु सर्वदा द्राक्षा रम्भा आम्राणि नारिकेलानि दाडिम्बानि बीजपूराणि जम्बीराणि लिकुचानि पनसानि च व्यक्रीयन्त; तत्राधुना वर्तिकाः तित्तिरा. कुक्कुटा. लावा कलविङ्काः सारसाः श्येनाः उलूकाः तत्तदण्डानि च विक्रीयन्ते । यत्र विशालतिलकाः कलित-रुद्राक्ष-तुलसी-कमलाक्ष-मालिका, ऊर्णा-कौशेय-मात्र-वसनाः,

---

नामोच्चारणैः। नाम्नि दहनत्वं तदुच्चारणे च ज्वालमालात्वमारोपितमिति ध्येयम् । व्यापूर्यत=पूरिता । कर्णकषायाः=श्रोत्रवेधकाः। श्रवणानर्हा इति यावत् । चीत्कारमयाः=शब्दविशेषमयाः। अत्र "बाग" इति यावनप्रसिद्धे तात्पर्यम् । हरिहरनिन्दानादा'=देवगर्हणाशब्दाः। उपलक्षणं हरिहरपदं देवमात्रस्य । रमयतीति रमः, मोहस्य रमो मोहरम इति संस्कृतशब्दता । "मुहरम" इति लोके । एतद्दिन एव मोहमदो घातितः । रामयानम्="रमजान" इति लोके । नारिकेलानि=कूर्चशीर्षकाणि । "नारिकेलो दृढफलो लाङ्गलीकूर्चशीर्षकः" दाडिम्बानि=लोहितपुष्पकाणि, "दाडिमः करको दन्तबीजो लोहितपुष्पकः" बीजपूराणि=मातुलुङ्गानि । "बीजपूरो मातुलुङ्गो रुचकः फलपूरकः" । लिकुचानि=डहुफलानि । "लिकुचो लकुचो डहुरि" त्यमरः । "बडहर" इति हिन्दी । पनसानि=कण्टकिफलानि, "कटहर" इति हिन्दी । वर्तिकाः="बटेर"इति हिन्दी । लावाः=लघुवर्तिकाः। कलविङ्काः=जलपक्षिणः । विशालतिलकं येषा ते । कलिताः=धारिताः, रुद्राक्षस्य तुलस्याः कमलाक्षस्य च मालिका यैस्तैः। ऊर्णा=मेषादिलोम, कौशेयम्=कृमिजम्, तन्मात्राण्येव वसनानि=वासांसि येषां ते। ऊर्णादिवस्त्राणां वातसंसर्गमात्रत. शुद्धयभिधानात्पूजाभोजनादिषु प्रायो व्यवह-

काष्ठ-पादुकारोहिणः, भगवन्नामामृत-रस-रसन-रसिक-रसनाः, विहित-तीर्थ-सार्थ-सञ्चरण-चरणाः, स्वोचिताचाराचरण-मात्र-व्यसनिनो महात्मान सप्रश्रयं सस्तवं सपादस्पर्शं च प्राणम्यन्त; तत्र

रन्ति तान्येव धार्मिकाः। काष्ठपादुकामारोढुं शीलं येषा ते। काष्ठपादुका= "खडाऊँ" इति हिन्दी। भगवन्नामैव अमृतरस =सुधारसः, तस्य रसने= आस्वादने, रसिका'=सलग्नाः, रसनाः=जिह्वा येषा ते। अनुप्रासोऽत्राग्रे च।

"नाम्नोऽस्ति यावती शक्ति पापनिर्हरणे हरे।
तावत्कर्तुं न शक्नोति पातक पातकी जन ॥"
साङ्केत्य पारिहास्य वा स्तोम हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदु ॥"
"अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः।
पुमान् विमुच्यते सद्य सिंहत्रस्तमृगैरिव ॥"

इत्यादिविधायकवचनसमूहेन नामोच्चारणविधिः प्रदर्शित इति ज्ञेयन्। नात्रत्यफलश्रुतेरर्थवादतेति श्रीकरपात्रिचरणानां सङ्कीर्त्तनमीमासायां स्फुटम्। विहित तीर्थसार्थेषु=बदरी-जगन्नाथ-रामेश्वर-द्वारिकादिपूततमस्थानसमूहेषु, सञ्चरणम्=भ्रमणम्, यैस्तादृशाः, चरणाः=पादाः, येषा ते। तीर्थभ्रमणस्य स्वर्गापवर्गादिफल शतशः पुराणेतिहासेषु निरूपितम्। स्वोचितानाम्= स्वस्ववर्णाश्रमादियोग्यानाम्, वेदशास्त्रविहितानाम्, आचाराणाम्=शौचस्नानसन्ध्यावन्दनादिनित्यनैमित्तिककाम्यानुष्ठानानाम्, आचरणमात्रम्= पालनमेव, व्यसनम्=प्रतिदिवसकृत्यम्, येषा ते। यथा मद्यादिदुर्व्यसननिरता न कदाचिदपि परित्यजन्ति तानि तथा न कदाचिदपि नैत्यिकाद्यनुष्ठानं नानुतिष्ठन्तीति भावः। व्यसनपदस्वारस्येन चैतदेवैक सत् व्यसन नतु मद्यपानादिव्यसनमिति ध्वनयति। महान् = सत्त्वातिशयसम्पन्नः, आत्मा=जीवात्मा येपा ते। आत्मनि महत्त्वञ्च निर्दूषणत्वम्। नित्यमुक्तस्वभावो हि जीवः कर्मपाशबद्धोऽशुद्धाशबद्ध इव लक्ष्यते, स्वस्ववर्णाश्रमोचितकर्तव्यसततमनुष्ठानेन चाज्ञानहाने स्वस्वरूप परिचिनोति। तत्र कृतश्रमाश्च

त एवाधुना वीथीषु, राजपथेषु, तडाग-तटेषु, उद्यानेषु, विपणिषु, समाजेषु च महामास-डक्कार-पूतिगन्ध-सम्बन्धान्धीकृत-पारिपार्श्विकैः, चिर-जलानवगाहनोद्भूत-महामलावलि मलीमसैः, मद्य-स्वेद-निष्ठ्यूत-कर्णकिट्ट-सिङ्घाण-दूषिकादि-विविध-मल-लिप्त-चिराक्षालित-मलिन वसनैः, वारवधूच्छिष्ट-भोजिभिः, दुराचार-हतकैरवहेल्यन्ते, अवधीर्यन्ते, गालि-प्रदान-पुरःसरं तिरस्क्रियन्ते, क्वचन ताड्यन्ते, निःसार्यन्ते च ।

महात्मान इत्युच्यन्ते । अथवाऽऽत्मपदमन्तःकरणपरमाश्रित्य ऋजुबुद्धिमोदाय व्याख्येयम् । सप्रश्रयम्=सनम्रतम् । सस्तवम्=स्तुतिपूर्वकम् । प्राणम्यन्त=समभिवाद्यन्त । कर्मणि प्रत्ययः । वीथीषु=लघुपथेषु । "गली" इति हिन्दी । समाजेषु=मानवसङ्घेषु । महामासस्य=गोमासस्य, डक्कारैः=उद्गारैः, "ढेकार" इति हिन्दी, यः पूतिगन्धः=दुर्गन्धः, तत्सम्बन्धेन=तत्संसर्गेण, अन्धीकृताः=व्यर्थचक्षुष्कीकृताः, पारिपार्श्विकाः=समीपवर्त्तिनः, यैस्तैः । चिरजलानवगाहनेन=बहोः कालाद्वारिनिमज्जनाभावेन, उद्भूतानाम्=सञ्जातानाम्, महामलानाम्=अतिमलिनतानाम्, आवलिभिः=पङ्क्तिभिः, मलीमसैः=मलिनैः । मद्यस्वेदः=सुराघर्मः । निष्ठ्यूतम्=थूत्कारः । कर्णकिट्टम्=कर्णमलम् । सिङ्घाणम्=नासिकामलम् । दूषिका=नेत्रयोर्मलम् । परस्परमेतेषु द्वन्द्वः । एतदादिभिः विविधैः=नानाप्रकारैः, मलैः लिप्तानि=व्याप्तानि, चिरात्=बहोः कालात्, अक्षालितानि=अधौतानि, अत एव च मलिनानि=अत्यधिकमलिनताभाञ्जि, वसनानि=वस्त्राणि, येषां तैः । "दूषिका नेत्रयोर्मलम् । नासामलन्तु सिङ्घाणम्" इत्यमरः । वं भत्सरसः । वारवधूनाम्=वेश्यानाम्, उच्छिष्टानि=भुक्तावशिष्टानि, भोक्तुं शील येषां तैः । दुराचारहतकै=आचारविरहितैः पापिभिः । अवहेल्यन्ते=तिरस्क्रियन्ते । अवधीर्यन्ते, इत्यपि तदर्थकम् । तिरस्कारातिशयद्योतनाय त्रितयप्रयोगः । ताड्यन्ते=प्रहियन्ते । निःसार्यन्ते=बहिः क्रियन्ते, गेहादिभ्यः । स्थानशून्याः क्रियन्त इति यावत् ।

अहह ! सम्प्रति बहव. सरोदनं सकष्टं तिलकादिधारण-मर्य्यादां त्यक्तवन्त, अपरे च व्याघ्र-वदनाघ्राण-साहस-सोदर्य-साहसोपबृंहिता, कृपाण-धारास्विव धावन्त, प्राणानगणयन्तोऽधुनाऽपि "हरे! कृष्ण! दामोदर! महादेव! गधावर! सीताराम! नारायण! वामन! वैकुण्ठ! रमापते! गौरीपते!" इत्यादीनि कलि-मल-मथनानि अधरीकृत-सुधा-माधुर्याणि सवीणा-वादं नारदेन रसनीयानि भगवन्नामानि उच्चारयन्त, कलिन-परम-पवित्र-वेषाः,

व्याघ्रवदनाघ्राणम् = शार्दूलमुखचुम्बनम्, एव साहसम् = बलकर्म, तत्सोदर्यम् = तत्समानोदरे शयितम्, तुल्यमिति यावत्, यत्साहसम् = बलकर्म तेन–उपबृंहिता. = सबलिता., व्याघ्रमुखनिपतनेऽपि भयशून्या इति यावत्। कृपाणधारासु = असिधारासु। धावन्त: = त्वरया गच्छन्तः। अतिशयोक्तिर्लोकोक्तिश्च। हरति पापानीति हरिस्तत्सम्बुद्धौ हे हरे! "हरि-र्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृत" इति पुराणम्। कृषतेर्नडि कृष्णः, पापानि कर्षतीति व्युत्पत्तिः। औपनिषदा अपि "कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचक। तयोरैक्यं पर ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयत" इति। दाम = रज्जुः, उदरे = कटौ, यस्य तत्सम्बुद्धौ। कृष्णो बद्धो गोपिकया यशोदयेति ब्रह्मवैवर्तादिषु स्फुटम्। सीतया सहितो रामः सीताराम-स्तत्सम्बुद्धौ। मायाप्राबल्यबोधनाय सीताशब्दस्याद्यता। नारायण != "आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनव। ता यदस्यायन पूर्वं तेन नारायण स्मृत" इति निरुक्तिः। वैकुण्ठ ! = विष्णो ! "वैकुण्ठो विष्टरश्रवा" इत्यमरः। कले = तुरीययुगस्य, मलानाम् = पापानाम्, मथनानि = दूरीकरणानि। "हरेर्नामैव नामैव नामैव गतिरुच्यते। कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा" इति वचनात्। अधरी-कृतम् = निम्नं कृतम्, सुधायाः माधुर्यं यैस्तानि। नारदेन = ब्रह्मसूनुना परमभागवतेन। मनस एव नारदसंज्ञा पौराणिकैः कृता, तस्य च चञ्चलत्व-मभिलक्ष्यैकत्रास्थायित्व द्विघटीतोऽधिककाल शापादिना प्रतिपादितमिति पुराणमतदीपिकायामस्माभिः स्पष्टीकृतम्। रसनीयानि = सरसास्वदं

सहमाना अपि वाचाटानामरुन्तुदा वाचः, कथं कथमपि स्वधर्मं निर्वहन्ति ।

अहह ! धिगस्मान् ! ये दुराचाराणामीदृशमात्म-धिक्कार-मीक्षामहे, सहामहे जीवामश्च । म्लेच्छा एव भारत-साम्राज्य-सिंहासनमधितिष्ठन्तु, धर्मेण च शासनमूरीकुर्वन्तु । "नराणां च नराधिपः"—इति मुद्रया स्वभाव-सिद्धाऽस्माकं राजभक्तिरुद्रेक्ष्यति, किन्तु केयं व्यर्थं प्रजा-हत्या, लुण्ठनम्, बलात्कारश्च । नहि लुण्ठकेषु कस्याऽपि प्रीतिर्भवति । (निःश्वस्य)

अहह ! ग्रहा एव प्रतिकूलाः, विधिरेव वामः, समय एवाशुभमयः, अदृष्टमेव निकृष्टम्, भवितव्यमेव निन्दितव्यं भारत-

---

गेयानि । कलितपरमपवित्रवेषाः=स्वीकृतातिपूतनेपथ्याः । वाचाटानाम्= असद्बहुभाषिणाम्, "आलजाटचौ बहुभाषिणि" सू० "कुत्सित इति वक्तव्यमि" त्येतत्सूत्रस्य वार्त्तिकम् । सम्यग् यो बहु भाषते स तु वाग्मी । अरूंषि तुदन्तीत्यरुन्तुदाः=मर्मवेधकाः । "अरुन्तुदन्तु मर्मस्पृगि" त्यमरः ।

दुष्टा आचारा येषां तेषां—दुराचाराणाम्=सदाचारविरहितानाम् । ईक्षामहे=पश्यामः । दर्शकास्तूदासीना अपि भवन्तीति सहामहे । अथ किमपि कर्तुमशक्नुवानैः सोढव्यमेव-तत्राह जीवाम इति । अशक्तैर्जीवनं त्याज्यम् । "सता माने म्लाने मरणमथ वा दूरसरणमि"ति हि मनस्विगता प्रतीतिः । म्लेच्छाः=अपशब्दभाषिणः । असंस्कृतभाषाभाषिण इति यावत् । धर्मेण=मानवादि-प्रदर्शितशासनविधानेन । ऊरीकुर्वन्तु=अङ्गीकुर्वन्तु । स्वभावसिद्धा=प्राकृतिकी । भारतीया हि प्रायः प्रकृत्या राजप्रवणा आसन् । यद्यपि समये समये दुष्टराजमारणमपि कृतमेव तैः, यथा वेनेतिवृत्तं मनुनैव प्रदर्शितं स्पष्टम् । उद्रेक्ष्यति=एधिष्यते । लुण्ठकेषु=राजनामधारिषु चौरेषु ।

ग्रहाः=शनैश्चरादयः । विधिः=दैवम् अदृष्टम्—भागधेयम् । नहि सर्वज्ञातिरिक्तः कोऽपि द्रष्टुं शक्नोति तत् । भवितव्यम्=अवश्यभावि । नीलकण्ठनमत्वादिना तदवार्यता स्फुटा । आत्मानं भट मन्यत इति भट-

वर्षस्य। अन्यथा को वा भटम्मन्यो भारतीय-क्षत्रियाणां बालस्यापि क्रीडा-चन्द्रहास-चमत्कारमपि सोढुमलम्। परन्तु ऐक्यमेव न भवत्यस्मद्देशीयानाम्, यदि नाम सर्वेऽपि भारताभिजन-वीर-वराः सहयुञ्जेरन्, तद्वयं क्षणेन पारावारमपि मरूकुर्मः; बन्धुभिरपि कृत-वैरस्य महानीचस्य एतस्य मर्दनं तु को नाम कठिनो व्यापारः? परन्तु राजपुत्र-देशीय-महाराजानामन्यतम. प्रधान-वीरोऽयं महाराजो मरु-धराधीश्वरो यवनानामेव पार्श्व-प्रहृतामङ्गीकृत्य अस्माभिरेव सह योद्धु ध्वजानुद्धूय, पुण्यनगरनेदीयस्येव प्रकाण्डभूभागे शिविराण्यधितिष्ठति। राजपुत्र-गण-शिरोमणिरामेर-देशाधीशश्च दिल्लीश्वरस्यैव पृष्ठ-पोषकः। अयोध्या-प्रान्तस्थाः क्षत्रियकेसरिणश्च पूर्णतया परवन्तः संवृत्ता -इति श्रूयते। कोङ्कण-देशे तु विजयपुरादीनां प्रधानतम-स्थानानां यवना एवाध्यक्षाः, वङ्गदेशे तु प्रायः क्षत्रिया एव न सन्ति, सन्तोऽपि च युद्ध-विद्यां न जानन्ति। केवलमेक आयुष्माञ्छिववीर एव धर्मे बलात्कारमेतमसहमानः सर्वदा यवनैर्युद्धाय सज्जति, न चैतस्य ऋते परमात्मनः कोऽपि साहाय्यं विदधाति।

हा भारत! किं लुण्ठकैरेव भोक्ष्यसे? हा वसुन्धरे! किं दीनप्रजानां रक्तैरेव स्नास्यसि? हा सनातनधर्म! किं विलयमेव यास्यसि? हा चातुर्वर्ण्य! किं कथावशेषमेव भविष्यसि? हा मन्दिर-वृन्द! किं धूलिसादेव सम्पत्स्यसे? हा साङ्गवेद! किं भस्मतामेव प्राप्स्यसि? अहह!! धिग् धिग्! रे! कलिकाल! यस्त्वं रक्षकानेव भक्षकान् विदधासि!

म्मन्यः। "आत्ममाने खश्च"। क्रीडा चन्द्रहासचमत्कारम्=लीलाखड्गसञ्चालनकौतुकम्। मरूकुर्मः=शुष्कतामापादयामः। पार्श्वप्रहृताम्=पक्षपातिताम्। प्रकाण्डभूभागे=विशालप्रदेशे, नात्र प्रशंसावाच्यस्य येन परनिपातः सम्भाव्येत। आमेरदेशाधीश.=अम्बराधिपतिः। क्षत्रियकेसरिण=सिंहसदृशा राजानः, परवन्त=पराधीनाः।

हन्त भगवन्! "महति दुराचारे प्रवृत्तोऽवतरामि" इति प्रतिज्ञातवानसि, तत्किमितोऽप्यधिकं दुराचारमपेक्षसे? अहह!! परस्कोटयो मूर्त्तयो भज्यन्ते, असङ्ख्यानि मन्दिराणि भूमिसात्क्रियन्ते, राशीकृतानि वेदादि-पुस्तकानि ज्वाला-जालैर्ज्वल्यन्ते, कुलीनानामपि कन्यकाः कदर्य्यहतकैः कुत्सिताभिप्रायेण बलादाच्छिद्यन्ते। शिरश्छेदानाम्, नयनोत्पाटनानाम्, करकर्तनानाम्, जिह्वा-कर्षणानाम्, उदरविदारणानाम्, शूलारोपणानाञ्च क्रीडा इव क्रियन्ते। याः प्रजाः पूर्वै राजभिरौरस-प्रजा इव प्राणाधिक-प्रेम्णा समपाल्यन्त, ता अधुना निरर्थं निर्दयं लुण्ठ्यन्ते, पात्यन्ते, घात्यन्ते, ज्वल्यन्ते च। अहह! नाधुनाऽपि तव हृदये दया संचरति? भगवन्! किमिति दीनबन्धु-पदेन सम्बोध्यसे? यासां भारतीय-प्रजानां दीनतामवलोक्य ग्रावाणोऽपि रुदन्ति; तासामुपरि करुणामयीं दृष्टिमपि न क्षिपसि? हन्त! कियच्छर्यिष्यसे? अहह! अस्माकं महाक्रन्दन-कोलाहलैरपि न विद्राव्यते तव निद्रा? हा! तवापि कथं व्यामोहः? गरलं तु धूर्जटिना पीतम्, मधु च दानवैरास्वादि, किंतु चित्रं यद्, एष विलक्षणस्त्वयि दृश्यते व्यामोहः। त्वं हि राजत-प्रासादो वा

अवतरामि=मानवे लोके गृहीतदेहो भवामि।

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्॥'

इति हि भगवदीया प्रतिज्ञा। कदर्य्यहतकैः=पापात्मभिः। कुत्सिताभिप्रायेण=बलात्कारकरणाभिलाषेण। उरसो जाता औरस्य, ताश्च ताः प्रजा औरसप्रजाः=स्वोत्पन्नसन्तानानि। "हृदयादधिजायते" इति श्रुतिः। इवेनोपमा। ग्रावाणोऽपि रुदन्ति, अतिशयोक्तिः। गरलम्=विषम्। धूर्जटिना=शम्भुना। मधु=मद्यम्। आस्वादि=कवलीकृतम्। व्यामोहः=मदातिरेकजन्या विचारशून्यता। कार्यकारणयोर्भिन्नदेशत्वादसगतिरलङ्कारः। रजतस्य विकारो राजतः, स चासौ प्रासादः=हर्म्यम्। क्षीरस्य सागर।

क्षीर सागरो वा दन्ति-दन्त-पर्यङ्को वा कुंडलितानन्तभोगाऽऽभोगो वा इति किमपि न वेविक्षि। अगणित-फणावलि-फूत्कृतैरिव वीज्यमानो विमल-कमलोदर-सोदर-सौन्दर्याभ्यां कमल-कोमल-कमला-करतलाभ्यां पादयोः पीड्यमानो निःशङ्कं तस्मिन्नेव कोमलतमवेषे शेषे शेषे। तत्किं जगतः शेषे तव निद्रया भङ्क्ष्यते ? अथवा तस्यैव महागरलस्य महामद्यस्य च भगिन्या कनकाङ्गिन्या समालिङ्गित इति पन्नग-कुल

दन्तिदन्तस्य = करिकरस्य, पर्यङ्कः = पल्यङ्कः। कुण्डलित.=कुण्डला-कृतिमुपगतः, अनन्तभोगः = शेषदेहः, स एव आभोगः=अधिष्ठानम्। वेवेक्षि = पृथक्पृथग् विचारयसि। "विजिर् पृथग्भावे"। इतिना निपाते-नाभिहितत्वान्न राजतप्रासादादिशब्देषु द्वितीया। एषु टीकाकृता बहुत्र्रीहि-प्रदर्शनं किमर्थकमिति बुद्धिमद्भिरवधारणीयम्। अगणितैः=असंख्यातैः, फणावलीनां फूत्कृतैः=फूत्कारशब्दैः। वीज्यमान इव=आसेव्यमान इव। उत्प्रेक्षा। विमलस्य = निर्मलस्य, कमलस्य पद्मस्य, उदरसोदरम्= मध्यतुल्यम्, सौन्दर्यम्=सुषमा, ययोस्ताभ्याम्। कमलवत् कोमलाभ्यां कमलायाः = लक्ष्म्याः, करतलाभ्याम्। निश्शङ्कम्, अनेन फणा-वलिवायुसहनक्षमता ध्वनिता। कोमलतमः=नितान्तमृदुः, वेषः = नेपथ्य, यस्य तस्मिन्। वेषमात्रं कोमलं कृत्यन्तकोमलमिति ध्वनिः। शेषे=अनन्ते, शेषे=स्वपिषि। अगणितैरित्यारभ्यानुप्रासः शब्दालङ्कारः। विमलकमलोदर-सोदरसौन्दर्याभ्यामित्यनेन कमलाकरतलयोर्लालित्यमीषद्रक्तवर्णत्वञ्च व्यञ्जितम्, कमलकोमलेत्यनेन च मृदुत्वम्, कोमलतमाभ्यामपि ताभ्यां सम्पर्के भगवच्च-रणयोः पीडैव सञ्जायते नितान्तकोमलत्वादिति। जगतः = संसारस्य। शेषे=समाप्तौ। भङ्क्ष्यते = नङ्क्ष्यते। "भञ्जो आमर्दने" भावे लृट्। तस्यैव = पुराणादिषु सुप्रसिद्धस्यैव। महागरलस्य=सागरोत्थस्य हालाहलस्य। महामद्यस्य=वारुण्याः। भगिन्या=सहोदरया। समुद्रमन्थने हालाहलादिभिः साकं लक्ष्मीरपि निःसृतेति पुराणेषु स्फुटम्। कनकाङ्गिन्या = सुवर्णशरीरया। अतिगौरवर्णयेति यावत्। "धत्तूरः कनकाह्वयः" इति धत्तूरवाची कनकशब्दः। धत्तूरवद्विषमिश्रिताङ्गयेति ध्वन्यमानोऽर्थः। इति = हेतोः। मूर्च्छां मत्ततां च कलयसीत्यनेन

मूलस्य शेष-नागस्य गरलावलीढैर्निश्वासैः प्रतिरोम-कुहरं रञ्जित इति च कलयसि काञ्चन मूर्च्छाम्, मत्ततां च। कथमन्यथा क्षीरधि-वेष्टित एव क्षीरधि-कन्यया रमेथाः? किं तु मैवम्, क्षमस्वैना-मनल्प-जल्प-कल्पनाम्। सर्वत्रैवासि, सर्वान् पश्यसि, सर्वं वेत्सि, सर्वेषां दयसे—इति सन्त्यत्र परस्सहस्राणां प्रामाणिकानां वचनानि। येषु विश्वस्य तव सत्ताऽङ्गीक्रियते; कथं तेष्वेव विश्वस्य तवेदृग्गुणिता नाङ्गीकरिष्यते? परमहह! पश्यन्नपि विदन्नपि न दयसे, हन्त! किं कथ्यते, जगदीश्वरोऽसि! तत् किं गजोद्धार-धावन-स्थगितोऽसि? यन्न धावसि। विप्र-रावण-हनन-वनवास-व्रीडितोऽसि? यन्नावतरसि।

सम्बन्धः।' इतरथा हेतुमाश्रयति—पन्नगकुलमूलस्य = सर्पान्वयप्रसूतेः। शेषनागस्य = अनन्तस्य। गरलावलीढैः = विषमिश्रैः। प्रतिरोमकुहरम् = सर्वेषु लोमच्छिद्रेषु। रञ्जितः = व्याप्तः। काञ्चन = अनिर्वाच्याम्। केवलानुभवैकशरणम्। पित्रा समुद्रेण वलयितस्य हरेः तत्कन्यकया रमणं मत्तताकृत्यान्नातिरिच्यते। अनल्पजल्पकल्पनाम् = बहुविधभाषणरचनाम्। सर्वत्रैवासि, विभुत्वात्। सर्वान् पश्यसि, सर्वद्रष्टृत्वात्। सर्वं वेत्सि, सर्वज्ञत्वात्। सर्वेषां दयसे, "अधीगर्थदयेशाम्" इति षष्ठी, अत्र = विभुत्वसर्वज्ञत्वादिगुणगणनिलयस्य भगवतः सत्तायाम्। प्रामाणिकानाम् = वेदादीनाम्। नाङ्गीकरिष्यते, यदि वेदादिनिवेद्यमाना तदीया सत्ता सती, तर्हि तन्निवेद्यमानास्तदीया गुणा अपि सन्त्येवेति तात्पर्यम्। जगदीश्वरोऽसि = महाप्रभुरसि। महाप्रभुत्वादेव स्वतन्त्रोऽसीत्यत एव वचनानर्होऽसीति व्यंग्यपरम्परा।

पाणिनेर्न नदी गङ्गा यमुना न स्थली नदी।
प्रभुः प्रभुत्वमापन्नः स्वातन्त्र्यमवलम्बते॥

इत्यादिष्वयमर्थो व्यक्तीकृतः। गजोद्धारे = हस्तिरक्षायाम्, धावनेन = शीघ्रगत्या, स्थगितः = खिन्नः। विप्रस्य = ब्राह्मणस्य, रावणस्य = पौलस्त्यस्य, हननेन वनवासेन च व्रीडितः = लज्जितः। ब्रह्महत्या हि परं व्रीडा-

कंसच्छेदनायास-स्मरणेन वा तूष्णीकोऽसि ? चिरन्तन इति वली-पलित-विग्रहो वा सम्पन्नोऽसि, न ज्ञायते तत्त्वम्। यादृशं तादृशमेव त्वा वयं नमस्कुर्मः।

हा विश्वम्भर! काश्यां विश्वनाथ-मन्दिरं धूलीकृतमेतैः। हा माधव! तत्रैव बिन्दुमाधव-मन्दिरस्य बिन्दुमात्रमपि चिह्नं न प्राप्यते! हा गोविन्द! तव विहार-भूमौ श्रीवृन्दावने गोविन्द-देव-मन्दिरस्यापि इष्टकावृन्दं स्वच्छन्दं भपकैराक्रम्यते। प्रभो! दयस्व दयस्व, कदा तव कौमोदकी मोदं जनयिष्यति? कदा तव चापस्तापं विलयं यापयिष्यति? कदा तव नन्दको नन्दयिष्यति? कदा तव चक्रं दुष्टचक्रं चङ्क्रमिष्यते? मा स्मास्मदपराधान् स्मार्षीः, पाहि, पाहि, भगवन्! पाहि—

एवं भावयत एव तस्यान्तर्दुःखमिव जलरूपेण द्रावयन्ती, कपोलं क्षालयन्ती, श्मश्रुप्राद् बिन्दूभूय कूर्चं सिञ्चन्ती, भूतलमाविलं चकाराश्रु-जल-धारा।

जनिका। चिरन्तनः=पुरातनः। वलीपलितविग्रहः=जराजायमानश्वै-त्योपलक्षितदेहः। न ज्ञायते तत्त्वम्, अतिदुरूहत्वाद्भगवन्मायायाः।

इष्टका.=अश्मविशेषाः। "ईंट" इति भाषायाम्। क्षिपकादि-गणपाठादित्वाभावः। भपकैः=कुक्कुरतुल्यैर्म्लेच्छैः। कौमोदकी= भगवद्गदा। चापः=शार्ङ्गम्। नन्दकः=भगवत्खड्गः। चक्रम्= सहस्रारः सुदर्शनः। दुष्टचक्रम्=दुष्टसमूहम्। अत्र "अहह कथमिव समायात" इत्यारभ्य करुणरसप्रवाहः। म्लेच्छमन्दिरभञ्जनादय आलम्बनविभावाः, धर्मध्वंसन-मूर्तिखण्डन-भारतीयपीडनादय उद्दीपनविभावाः। दैवोपालम्भनिः-श्वासवैवर्ण्यादयोऽनुभावाः। निर्वेदग्लान्यादयो व्यग्यतया स्थिता व्यभिचारिणः। एतैरभिव्यक्तोऽसौ चर्वणता गतः।

तदास्वादनिरतदशां दर्शयति—एवं भावयत इति। भावयतः= भावनया चित्तगोचरता नयतः। कूर्चम्=दाढिका।

तं तथा ध्याननिष्ठमिव यवन-यतिं मन्यमाना बहवोऽध्वन्याः परितोऽवातिष्ठन्त। एक ऊचे महानेष महात्मा, अपर उवाच-अत एव भगवत्स्मरणेन पुलकितोऽस्ति, अन्योऽभापत-ईदृश एव विचित्रो भवत्यानन्दः परमात्मस्मरणतः, तथेतरोऽब्रूत—तर्हि सर्वैस्तूष्णीकैरेव स्थेयं न स्याद् यथा ध्यानभङ्ग एतस्य—इति मन्दस्वरेणाऽऽलपतामेवैतेषां तस्य ध्यानभङ्गो जातः। नेत्रे उन्मील्य च भावना-सहस्रैर्येषु वर्द्धित-महामर्ष-ज्वाला-जटाल आसीत्; तानेवापश्यत् लशुन-गन्धैः श्वास-प्रश्वासैर्वमिमुत्तेजयतः परिपन्थिपथिकान्। ततो द्विगुणितकोपो ज्वलदङ्गारप्रतिम-नयनो वाद्यमुत्तोल्य सहुङ्कारं ताडयितुमिवोदस्थात्। तेषु चेतस्ततः पलायन-परेषु शास्तिखान-भवनान्निवृत्तो महादेव-पण्डितोऽप्यकस्मादुपस्थाय "किमिव स्वामिन्! किमिति कुपितोऽसीति" पर्यप्राक्षीत्। स तु तमेव ताडयितुमिव वाद्यमुदतूतुलत्। महादेवस्तु भीत इव पलायितः काञ्चन महान्धकारा-वृत-वीथिं प्रविष्टः; तत्पश्चादेव चायमपि तस्मिन्नेवान्धकारसमुद्रे निमग्नः।

ध्याननिष्ठम्=समाधिनिरतम्। अध्वन्याः=पथिकाः। परितोऽवातिष्ठन्त=परिवारितवन्तः।

पुलकितः=रोमाञ्चितः। भावनासहस्रैः=बहुविधविचारणाभिः। येषु=यवनेषु। वर्द्धितस्य=वृद्धिं प्रापितस्य, महामर्षस्य=महाक्रोधस्य, ज्वालाभिः=अर्चिर्भिः, जटालः=संवलितः। लशुनस्य=रसोनस्य गन्धो येषु तैः। वमिम्=उद्गीर्णिम्। उत्तेजयतः=उद्दीपयतः। परिपन्थिपथिकान्=सपत्नाध्वनीनान्। ज्वलता=दीप्यता, अङ्गारेण प्रतिमा=सादृश्यम्, ययोस्तादृशे। उत्तोल्य=उत्थाप्य। सहुङ्कारम्=हुंशब्दसहितम्। ताडयितुम्=प्रहर्तुम्। अकस्मात्=सहसा। उपस्थाय=समीपमागत्य। पर्यप्राक्षीत्=पृष्टवान्। तमेव=महादेवपण्डितमेव। अन्योन्यानभिज्ञानबोधनायेदम्, भीत इव, इदमपि प्रदर्शनफलकम्। महता=प्रबलेन, अन्धकारेण=तमसा, आवृताम्=सञ्छन्नाम्, वीथिम्=मार्गम्। "वीथिः पङ्क्तौ गृहाङ्गे च रूपकान्तरवर्त्मनोरि"ति मेदिनी।

प्रधान-मार्गमपहाय ध्वान्त-मार्गेण सानुसन्धान प्रतिनिवर्त्तनमेव महादेवस्याभीष्टमासीत्, तदेव च मुद्रयाऽनयाऽनायासेन सम्पन्नम् ।

ततस्तु वीथिकातो वीथिकाम्, मार्गान्मार्गमुल्लङ्घमान: स ःद्येव दूरमायात' । अथ महादेव' स्थित्वा कञ्चित्काल यवनयतिमपेक्षाञ्चकार । तस्मिन्ननागच्छति चान्धकारे मार्गभ्रष्टोऽयमन्यतो गत·—इति निश्चित्य, "आस्ता तावत्, सङ्केतितस्थले तेन सह योक्ष्यामि" इति मनस्येवावधार्य, निर्भयोऽन्धकार एव नगरस्य वर्त्तमानदशामवलोकयन्निव प्रचलित ।

अस्मिन्समये प्रायश एतद्वीथि-वासिन' सर्वेऽपि सुप्ताः, द्वारो रुद्धा·, स्थाने स्थाने विचरन्त· प्रहरिणो वा तदुच्चाह्वानोद्बुद्धा अट्टालिकासु पिञ्जरावलम्बिता' शुकसारिकादयो वा क्वचित् क्वचित् शब्दायन्ते । सर्वत' सरणिषु ससणत्कारं समीरणः सरति ।

गाढोऽयमन्धकार· कज्जलस्य रेणु-पटलमिव सर्वत उड्डीयते । गगन मसीमिव वर्षति । महादेवस्तु परिचित-सकल-पुण्यनगर-

---

प्रधानमार्गम् = राजपथम् । ध्वान्तमार्गेण=अन्धकारच्छन्नेन पथा । सानुसन्धानम् = गम्भीरावलोकनपुरस्सरम् । मुद्रयाऽनया=अनेन प्रकारेण व्याजात्मना । अनायासेन = निष्परिश्रमम् ।

यवनयतिम्=म्लेच्छभिक्षुवेष माल्यश्रीकम् । अनागच्छ.त = अप्राप्नुवति । अन्यत्र=अन्तम् । योक्ष्यामि = युक्तो भविष्यामि ।

द्वार·=द्वारणि । तेषाम्=प्रहरिणाम्, उच्चेन = तारेण, आह्वानेन= आकारणेन, उद्बुद्धाः=जागृताः । सरणिषु = मार्गेषु । ससणत्कारम्= सणदित्यनुक्रियमाणशब्देन सह । समीरणः = वायुः । सरति = गच्छति ।

कज्जलस्य=अञ्जनस्य । रेणुपटलम्=धूलिनिकरः । इवेत्युत्प्रेक्षा । मसीमिवेत्यत्रापि । परिचितम्=पूर्वज्ञातम्, सकलम्=समस्तम्, पुण्य-

मार्गजालः, वीथिकान्तरं प्रविष्टः। पूर्वं पूर्णतया पर्य्यटितचरमिदं नगरमिति अन्धतमसेऽपि सुखेन पर्य्यटितुमशक्त्। तत्रैकस्मिन् गृहे, गवाक्षे दीप एको मन्दं मन्दं ज्वलति। तस्मिन्नवतमसे तत एव गच्छन्, तद्द्वार-सम्मुख-द्वार-वेदिकायां पुञ्जीभूतमन्धकारमिव, मूर्छितं भल्लूकमिव, सुप्तं वायस-समूहमिव, राशीकृतं कृष्ण-सर्प-सङ्घातमिव, आकुञ्च्य स्थापित कृष्ण-कम्बलमिव च किमपि श्याम-श्याममद्राक्षीत्। निकट आगत्य निपुणं निरीक्षमाणश्च दृष्टवान्, यदेक' प्रहरी स्वपिति, दिल्लीश-नामाङ्कित-रजतपट्टिका-भूषितं तस्यो-ष्णीषमेकतोऽर्द्धस्खलितं विशीर्यते। खड्गः शिरसः समीपे दूरत एव स्थापितोऽस्ति, उपानदेका वेदिका-प्रान्त-लम्बित-पाद-च्युता अधः पतिता। मुख-निर्गताभिर्लालाभिः सिक्तो बाहु, धूलि-धूसरितानि

नगरस्य मार्गजालम्=वर्त्मसमूहो येन सः। अन्धतमसे=गाढान्धकारे। पर्य्यटितुमशकत्=भ्रमितुं समर्थोऽभूत्। गवाक्षे=वातायने। ज्वलति, स्मेत्यध्याहृत्येदृशेषु स्थलेषु व्याख्येयम्। तात्कालिकी वर्त्तमानतामाश्रित्य वा प्रयोगः। एवमन्यत्रापि। यथा पञ्चतन्त्रे "अस्ति गोदावरीतीरे विशालः शाल्मलीतरुरि"त्यादौ। अस्तीत्यस्य विभक्तिप्रतिरूपकस्याव्यस्य सर्व-कालप्रयोगविषयस्य सत्त्वे तु तत्र निर्वाहेऽप्यत्र प्रकृतोक्तरीत्यैव कार्यमिति वेदितव्यम्। तस्मिन्नवतमसे किमपि, श्यामाश्याममद्राक्षीदिति सम्बन्धः। अवतमसे=क्षीणान्धकारे, दीपप्रकाशात्। उत्प्रेक्षते–पुञ्जीभूतमन्ध-कारमिव। मूर्च्छितम्=विसंज्ञम्। आकुञ्च्य=मोटयित्वा। दिल्लीश-नाम्नाऽङ्किता रजतनिर्मिता। पट्टिका="पेटी" इति भाषा, तया भूषितम्। एकतः=एकस्मिन् पार्श्वे। सार्वविभक्तिकस्तसिः। अर्धस्खलितम्=अर्धभ्रष्टम्। विशीर्यते=विकीर्यते। शिथिलबन्धनं भवतीति यावत्। उपानत्=पादुका। "अथ पादुका। पादूरुपानत् स्त्री" त्यमरः। वेदि-कायाः=उपवेशस्थानस्य, प्रान्ते=निम्नभागे, लम्बितात्। पादात्=अङ्घ्रेः, च्युता=पतिता। लालाभिः=सृणिकाभिः। "सृणिका स्यन्दिनी

नील-वसनानि च स्वेदैराक्लिद्यन्ते। तदालोक्य किञ्चिद्धसन्निव महादेवो—"मूर्खोऽयं यातैक-यामायामेव यामिन्यां सुप्तः"—इति मनस्येवोक्त्वा शनैस्तस्योष्णीषं खड्गं चापजहार।

ततश्च दक्षिणतो वणिग्वीथौ प्रविश्य यावत् किञ्चिन् प्रयाति; तावत् पृष्ठतः समश्रावि कश्चित् पादध्वनिः। दत्तकर्णोऽवधार्य च संशयितवान् यत्—किमेतदपहरन्तं मां कोऽप्यद्राक्षीत् ?

अथ दिल्लीश-नामाङ्कित-रजत-पट्टिकामादाय कक्ष-गुटिकायां संस्थाप्य, उष्णीषिकामेतामेकस्यां गवाक्षिकायामुत्क्षिप्य खड्गं कोपान्निस्सार्य स्वयमेकस्मिन् निविडान्धकारे कोणे परिपन्थिनः पन्थानमवेक्षमाणः समस्थित। ततो मुहूर्त्तं यावन्नाश्रूयत कोऽपि ध्वनिः; निपुणं निरीक्षमाणेनापि च नाऽऽलोकि कश्चन जनः।

ततस्तु नैज एव भ्रम इति विभाव्य पुनरग्रे प्रातिष्ठत, न्यविशत च वीथिकातो वीथिकाम्। तावदकस्माद् वामत उपवीथिकायामेव कस्यचन जागरूकस्य, "जाग्रत ! भो जाग्रत ! सन्तमसमिदं निबिडम्" इत्याद्याम्रेड्य वदतस्तारध्वनिमश्रौषीत्। मा स्म मामीक्षिष्टेति च दक्षत एकामुपवीथिकां प्राविक्षत्, किन्तु दैवाद् यामि-

लाले" त्यमरः। धूलिधूसरितानि=रजोमिश्राणि। स्वेदैः=घर्मजलैः। आक्लिद्यन्ते=आर्द्रीक्रियन्ते। यातैकयामायाम्=व्यतीतैकप्रहरायाम्।

वाणिग्वीथौ=वणिजामावासमार्गे। दत्तकर्णः=अवहितश्रोत्रः। अपहरन्तम्=मुष्णन्तम्। अद्राक्षीत्=दृष्टवान्।

कक्षगुटिकायाम्=बाहुमूलस्थापितलघुपोटलिकायाम्। गवाक्षिकायाम्=वातायनिकायाम्। कोपात्=असिबन्धात्। निबिडोऽन्धकारो यस्मिन् तादृशे=घनतमसि। कोणे=गृहैकदेशे, अवेक्षमाणः=प्रतीक्षां कुर्वन्। समस्थित=स्थितोऽभूत्। नैजः=स्वीयः। भ्रमः=भ्रान्तिः। न्यविशत=प्रविष्टः। उपवीथिकायाम्=उपपदव्याम्। जागरूकस्य=जागरणशीलस्य। आम्रेड्य=द्विस्त्रिरुद्घुष्य। तारध्वनिम्=उच्चैः शब्दम्। मा स्म मामीक्षिष्ट=मा स्म मावलोकयत्, "माङि लुङ्"। दैवात्=अदृष्टात्।

कोऽप्येष घुणाक्षर-न्यायेन तामेव प्रविष्टः।

महादेवस्तु, अग्रे रुद्धो मार्गः, पश्चाच्चोच्चैश्चीत्कुर्वन् यामिकहतकः समायातीति कान्दिशीकः, मार्गान्तरमलभमानः, उच्चामेकां वेदिकामारुह्य, निष्कोष-निस्त्रिंश-हस्तः सतर्कः समतिष्ठत। तावत् प्रहरी तु तथैवाऽऽम्रेडमाम्रेडं तार-स्वरेण रटन्, पार्श्वस्थ-गृहिणां च कपट-क्षुत-डक्कार-च्छिक्काः शृण्वन्, कर-कलित-काच-मञ्जूषाऽन्तःस्थ-दीप-प्रकाशेन पादाग्रस्थ-हस्त-चतुष्टयमात्र-परिमाणामिव भुवं पश्यन् अलसनयनः, "कदेयं होरा समाप्नुयात्? कदा वा गत्वा शयीय?"—इतीव चिन्तयन् महादेवाध्युषित-वेदिकाया दूरादेव निवृत्तः। महादेवस्तु "नैतस्य जीवनमधुना समाप्तम्, चिरायुरेषः" इति मनस्येव निर्धारयन्, पुनर्मार्गान्तरं प्रविश्य, झटिति आकुलाभ्यामिव पद्भ्यां गच्छंस्तडागमेकमाससाद। यत्र चोच्चावचायां भुवि भग्न-मन्दिरेष्वेकं शिव-मन्दिरमिव प्रविश्य, "अस्ति कश्चिदत्र संन्यासी?" इत्यपृच्छत्। ततस्तु तस्मादेकस्स एव यवन-भिक्षुः, अपरौ च द्वौ संन्यासिनौ निर्गतौ। तैश्च सह

चीत्कुर्वन्=चीत्कारं कुर्वन्। कान्दिशीकः=भयद्रुतः। मार्गान्तरम्=अन्यं पन्थानम्। निष्कोपनिस्त्रिंशहस्तः=नग्नखड्गकरः। सतर्कः=सावधानः। पार्श्वस्थगृहिणाम्=समीपस्थगृहस्थानाम्। कपटेन = व्याजेन, क्षुतादयः। क्षुतम् = कासः। "खांसना" इति हिन्दी। छिक्का = "छींक" इति भाषायाम्। करे = हस्ते, कलिता = धारिता, या काचमंजूषा=रक्तवर्तिका, तदन्तः स्थितस्य = तदन्तरालवर्तमानस्य, दीपस्य प्रकाशेन। पादाग्रस्थम्=पुरो विद्यमानम्, हस्तचतुष्टयमात्रपरिमाणं यस्यास्तादृशीम् = चतुर्हस्तमिताम्। अलसे = निद्रातुरे, नयने यस्य सः। होरा=घण्टा। निर्दिष्टकाल इत्यर्थः। समाप्नुयात्=समाप्तिं गच्छेत्, शयीय=स्वापं कुर्याम्। न समाप्तम्, अन्यथा समीपमागमिष्यत्। तडागम्=जलाशयम्। उच्चावचायाम्=निम्नोन्नतायाम्। शिवमन्दिरमिव, कतिपयचिह्नानुमेयशिवमन्दिरत्वम्। अत एवेवकारसार्थक्यम्।

तत्रैवैकस्मिन् पाषाणे उपविश्य बहुश आलप्य एकेनैवं समालपत्—

महा०—उद्वाहः कदा भविता ?

संन्या०—श्वः।

महा०—अथ वरयात्रा-समयः कः ?

सन्या०—यातैक-यामाया यामिन्याम्।

महा०—कति सहचरा अनुमता नगराधिकारिभिः ?

संन्या०—वादकाद्यतिरिक्तास्त्रिंशत्।

महा०—भद्रम्, वयमपि सह योक्ष्यामः।

तावदकस्मात्, महान्तेवस्य कण्ठमिव लक्ष्यीकृत्य क्षिप्तः किञ्चिदेव लक्ष्यभ्रष्टः, कश्चिद् भयानक-भल्लः स्कन्धे निपपात वाण एकः। स्कन्धस्थोत्तरीयवस्त्रे ओत-प्रोतमिवैनमालोक्य यावत् सर्वे सचकितमुत्तिष्ठन्ति, तावच्छक्तिरप्येका महादेव-वक्षस्थलं चुचुम्ब। ताञ्च कञ्चुकान्तःस्थित-वर्म्माघातेन सझणत्कारं परतः पतितामालक्ष्य यावत् ते पश्यन्ति, तावद् धृतखड्गमेकं प्रांशुं पिचण्डिलं यवनमपश्यन्।

स च—"तिष्ठ रे महाराष्ट्र-कुल-लाञ्छन! कपट-दूत! सर्वां

एकेन, साकमिति शेषः। विनाऽपि सहार्थशब्दयोगं तृतीयेति 'वृद्धो यूना' निर्देशवेद्यम्।

योक्ष्यामः=सम्मिलिता भविष्यामः। भयानकभल्लः=तीक्ष्णाग्रभागः। बहुव्रीहिः। स्कन्धे तिष्ठतीति स्कन्धस्थ तादृशञ्चोत्तरीयवस्त्रम्=उपरि धारणीय प्रावरणम्, तस्मिन्। ओतप्रोतम्=विद्धानुविद्धम्।

सचकितम्=साश्चर्यम्। शक्तिः="नेजा" इति, "बरछी" इति वा भाषा। कञ्चुकान्त स्थितम्=चोलकान्तर्निहितम्, यद् वर्म=कवचम्, तदाघातेन सझणत्कारम्=झणत्कारशब्दसहितं तथा स्यात्तथा धृतखड्गम्=गृहीतासिम्। प्रांशुम्=प्रोन्नतम्। पिचण्डिलम्=तुन्दिलम्। "तुन्दिलस्तुन्दिभस्तुन्दी बृहत्कुक्षिः पिचण्डिलः" इत्यमरः।

शृणोमि ते दुर्वृत्त-वार्त्ताम् । किन्तु चान्द्रहासे जीवति न त्वादृशा जम्बुक-वराकाः कृतकार्या भवन्ति" इत्याक्ष्वेड्य सचन्द्रहासः श्येन इवाभिपत्य खड्गं तद्वाम-वाहौ प्राक्षिपत् ।

परं महादेवस्तु न 'टिड्ढाणञ्' पण्डितः, किन्तु युद्ध-पण्डितः, खड्ग-विद्यायां च तथा निष्णातोऽस्ति, यथा महाराष्ट्र-देशे एतस्य परस्सहस्राः शिष्या अपि निज-निस्त्रिंश-बलेन रिपूणां शतेन सह योद्धुमभिमन्यन्ते । यद्यपि पाञ्चालाः सैन्धवाः मारवाः राजपुत्र-देशीया अपि च असि-चालन-विद्यायां जगत्प्रसिद्धाः सन्ति, तथा च निपतन्ति तेषां प्रबला असयः; यथा सुबहून् कदलीस्तम्भान् क्रमेलक-पादास्थीनि, किमधिकं लोह-दण्डानपि च ते सकृदसि-क्षेपणेन निकृन्तन्ति, परं झटितिकारितेयं महाराष्ट्राणामेव । येऽति-सत्त्वरतया चन्द्रहास-चालनपरा हैहया इव बहुबाहवः समा-

---

दुर्वृत्तवार्त्ताम्=दुर्व्यवहारवृत्तान्तम् । 'दुर्वृत्त' इति पृथक् सम्बोधनं वा । जम्बुकवराकाः=दयनीयशृगालसदृशाः । भवन्ति, "वर्त्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा" । सचन्द्रहासः=सासिः । श्येन इव=शशादन इव । "अथ शशादनः । श्येनः पत्री" त्यमरः । उपमालङ्कारः ।

टिड्ढाणञ्पण्डितः="टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः" इति समग्रं सूत्रं ङीब्विधायकं दु खोच्चारणम् । ईदृक्सूत्रमात्ररटनपटुः पण्डितो मन्यतेऽद्यत्वे, अयं न तादृशशुष्कपण्डित इत्याकूतम् । युद्धपण्डितः=सङ्ग्रामविद्याभिज्ञः । निष्णातः=कुशलः, "निनदीभ्यां स्नातेः कौशले" । रिपूणां शतेन सह, एकाकीति शेषः । अन्यथा परस्सहस्राणां रिपुशतेन युद्धकरणं किं वैशिष्ट्यमाश्रयेत् । अभिमन्यन्ते=अभिमानं वास्तविकं कुर्वन्ति । पाञ्चालाः=पञ्चालदेशराजाः । सैन्धवाः=सिन्धुदेशीयाः । मारवाः=मरुदेशीयाः । सुबहून्=अत्यधिकसङ्ख्याकान् । क्रमेलकपादास्थीनि=उष्ट्रचरणकीकसानि । सकृदसिक्षेपणेन=एकवारं खड्गप्रहारेण । निकृन्तन्ति=खण्डयन्ति । झटितिकारिता=शीघ्रकरणम् । अतिसत्वरतया=नितान्तशीघ्रतया । हैहया इव=कार्त्तवीर्या इवेत्युपमा । सहस्रं बाहवो हि कार्तवीर्यस्याऽऽसन् । बहुबाहवः=अनेकभुजाः । महाराष्ट्रदेशीयाना वीर-

लोक्यन्ते। सर्वश्चैष महाराष्ट्र-देशीय-वीरता महिमा शिववीरकृत एवेति सोऽयं चञ्चल-चपला-चमत्कारमिव चपलस्वरु-सारेणेव सृष्ट कल्पान्त-सप्तजिह्वस्येवैकं जिह्वा-विशेषं निज-कर-कलितं महाचन्द्रहासं तथा प्राहिणोद्; यथा चान्द्रखानस्यासिं कन्धरां च एकेनैवाऽऽघातेन द्विरकरोत्। उक्तवांश्च यद्-"अरे रे शास्तिखान! मिथ्या-तिरस्कारेणैवाद्य यवन-वीर-श्मश्रूपममेतं चान्द्रखानं धर्मराजाध्वन्यध्वनीनं कारितवानसि। एक एवाऽऽसीदेष त्वत्पार्श्वे विचार्यकारी नीतिज्ञश्च, तदस्मिन् मदसि-विलीढे को नाम कठिनो वारवधू-कर-शराव-चुम्बन-चञ्चुरस्य तव विजयः?"—इति।

ताया महिमा=महत्त्वम्। चञ्चलचपलाचमत्कारमिव=चपलविद्युद्विस्फुरणमिव। चपलश्चासौ स्वरुः=वज्रम्, "शतकोटिः स्वरुः" त्यमरः, तस्य सारेण=तत्त्वांशेन। सप्त जिह्वा यस्य सः सप्तजिह्वः=दहनः, ताश्च—

काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा।
स्फुलिङ्गिनी विश्वरूपी च देवी लेलिह्यमाना इति सप्त जिह्वा॥

इति मुण्डके प्रसिद्धा.। कल्पान्ते सप्तजिह्वस्येति विग्रहः। कल्पान्तविशेषणेन भीषणताऽऽधिक्य प्रतिपादितम्। एकम्=अद्वितीयम्। जिह्वाविशेषमिवेत्युपमा। निजकरकलितम्=स्वहस्तधारितम्। प्राहिणोत्=अक्षिपत्। असिम्=चन्द्रहासम्। कन्धराम्=ग्रीवाम्। उत्थितहस्तस्थितासिना साक ग्रीवाकर्तनेन सुमहद्वैलक्षण्यमसिचालने प्रदर्शितम्। द्विरकरोत्=खण्डद्वयमकार्षात्। अरे रे शास्तिखान! बुद्धया सन्निधापितस्य तस्य सम्बोद्धयमानता। यवनवीराणाम्=यवनभटानाम्, श्मश्रूपमम्=ओष्ठस्थलोमतुल्यम्। अतिप्रधानमित्यर्थः। "यवनवीरों की मूँछ के समान" इति हिन्दी। धर्मराजाध्वनि=यममार्गे। अध्वनीनम्=पान्थम्। विचार्यकरोतीति तथाभूतः। मदसिना=मत्खड्गेन, विलीढे=आस्वादिते। मारित इति यावत्। वारवधूनाम्=वेश्यानाम्, करस्थिताना शरावाणाम्=मद्यभाण्डानाम्, चुम्बने=आस्वादने, चञ्चुरस्य=चपलस्य। वेश्याभिः सम मद्यपानाऽऽसक्तस्येति यावत्।

तदालोक्य च चकितेनेव यवन-भिक्षुणा कथितं परमेष विघ्न इव विभात्यस्मद्विवाहोत्सवस्य; यतः प्रमुखोऽयं राजसभायाम्, श्व एवैतद्विपक्षे घण्टा-घोषो भविष्यति।

श्रुत्वैतद् महादेव उवाच—"मा स्म भूद् विचिकित्सा काऽपि। अद्यायं राजसभायामनादृतः कानिचिद्दिनान्यगच्छत्यप्यस्मिन् न कोऽपि सन्धेक्ष्यति एतस्य जीवन-विषये। तत्सत्वरमेष आसन्नेऽस्मिन् शुष्क-कूपे निक्षेपणीयः, उपरिष्टाच्चास्य पाषाण-कर्पर-मृत्पिण्ड-खण्डान् निपात्य, तथाऽऽच्छादनीयो यथा निपुणं निरीक्षणेनापि न स्याच्छक्योऽवलोकयितुम्।"

तदाकर्ण्य च सपद्येव ते तथा विदधिरे। महादेवश्च शनैः शनैः पुनरप्यालप्य, कतिभिश्चिच्छोणित-शोण-बिन्दुभिरङ्कितं दक्षिणबाहु-मूलमुत्तरीयेणाऽऽवृत्य पुनर्मार्गाद् मार्गान्तरं प्रविशन्, घण्टापथ-मासाद्य, गोपुराभिमुखं प्रचलन्, केनचित् सन्दिह्यमानश्च शास्ति-खान-हस्ताक्षराङ्कितं पत्रं दर्शयन्, कुशलेन गोपुराद् बहिराजगाम। अग्रे एव कुटपटलीषु निलीयमान एव घनच्छायस्यैकस्य वट-वृक्षस्य तले मर्मर-श्रवण-स्तब्ध-कर्णम् अनिमेष-नयनाभ्यां सम्मुखमव-लोकयन्तम् अश्वमेकमारूढ वीरवेषमात्मानं प्रतीक्षमाण गौर-सिंहमद्राक्षीत्। तत्समीपे च दासेरकेणैकेन गृहीत-वल्गमपरमपि

विचिकित्सा=संशयः। अनादृतः=तिरस्कृतः। सन्धेक्ष्यति=सन्देहं करिष्यति। आसन्ने=समीपस्थे। पाषाणानाम्=प्रस्तराणाम्, कर्पराणाम्=शकलितमृद्भाण्डानाम्, मृत्पिण्डानाम्=लोष्टानाम्, खण्डान्।

शोणितशोणबिन्दुभि=रक्त-रक्तपृषतैः। अङ्कितम्=चिह्नितम्। उत्तरीयेण=प्रावरणेन। आवृत्य=आच्छाद्य। घण्टापथम्=राजमार्ग-विशेषम्। गोपुराभिमुखम्=अनुपुरद्वारम्। कुटपटलीषु=वृक्षसमूहेषु। घना=निबिडा, छाया यस्य तस्य मर्मरस्य=शुष्कपर्णध्वनेः, श्रवणेन=आकर्णनेन, स्तब्धौ=शङ्कूभूतौ, कर्णौ यस्य तम्। अनिमेषनय-नाभ्याम्=निमेषपतनोत्पतनशून्यनेत्राभ्याम्। आत्मानम्=महादेवपण्डित-रूपं शिववीरम्। प्रतीक्षमाणम्=प्रतिपालयन्तम्। दासेरकेण=दास्या अपत्यं पुमान् दासेरकस्तेन भृत्येन। गृहीतवल्गाम्=धारितकविकम्।

निजार्थमानीतमाजानेयमपश्यत्। ततस्तेन किञ्चिदालप्य, अविगणित-परिश्रमः स्नातोत्थित इव स्फूर्ति-स्फुरित-गात्रोऽनूनोत्साहः स्मयमानमुखो वामहस्तेन रश्मि संयम्य दक्षेणाश्व-ग्रीवामास्पृश्याऽविलक्षितोत्पतन सपदि तत्पृष्ठमारूढ। "रात्रौ कश्चनास्मत्पण्डितः समायास्यतीति पत्रद्वारा प्राप्तास्मत्सन्देश शिविरस्थो यशस्विसिंह-महाराज पण्डितं प्रतीक्षते" इति कुशल-प्रश्नाद्यनन्तरं गौरेणोक्तश्च, तेन सह मन्दं मन्दमालपन् कृतायासोऽप्यनायस्तः तामेव दिश प्रातिष्ठत। × × ×

तत्र राजपुत्र-राजो यशस्विसिंह शिविरान्तः पट-भवनेष्वन्यतमे कलितोपबर्हाश्रयः, केनचिद् भृत्येन मन्द मन्दं वीज्यमानः, उपधान-स्थापित-बाहुमूले कमल-दल इव दक्ष-कर-तले, ईषद्-

आजानेयम् = कुलीनमश्वम्। अविगणितपरिश्रम. = अज्ञातखेदः। पूर्वं स्नातः पश्चादुत्थित इति स्नातोत्थितः। "पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेने' ति समासः। स इवेत्युपमा। स्फूर्त्या = स्नानादिजन्यलाघवविशेषेण, स्फुरितम् = चञ्चलता गतम्, शीघ्रकार्यकरणशीलता प्राप्तम्, गात्रम् = शरीरं यस्य सः। अनूनः = अधिकः, उत्साहो यस्य सः स्मयमानमुख =ईषद्धास्ययुताननः। रश्मिम् = वल्गाम्। सयम्य= सस्तभ्य। आस्पृश्य = स्पर्शं कृत्वा। अविलक्षितम् = अनवलोकितम्, उत्पतनम् = अश्वपृष्ठोत्पतनम्, यस्य सः। यशस्विसिंहमहाराज = "जशवन्तसिंह" इति लोके ख्यातो योधपुर-शासकः। कृतायासः = विहितपरिश्रमः। अनायस्त. = श्रमशून्यः। तामेव दिशम् = यशस्विसिंहाध्युषित-दिशमेव।

राजपुत्रराज. = "राजपूताना" नाम्ना प्रसिद्धस्य देशस्य नरेशः। शिविरस्य = सेनानिवेशस्य, अन्त =मध्ये, यानि पटभवनानि=उपकार्याः, तेषु। कलितोपबर्हाश्रयः = कृतोपधानावलम्बः। वीज्यमान. = व्यजनवायुना सेव्यमानः। उपधाने स्थापित बाहुमूल यस्य तस्मिन्। कमलदल इव = पद्मपलाश इव। दक्षकरतले=दक्षिणहस्ततले। ईषदरुणपा-

रुण-पाण्डुरं सायंसमय-मृगाङ्क-मण्डलमिव वदनं संस्थाप्य, पुरः-स्थित-खड्गमालोकमालोकं वामहस्ततर्जन्यङ्गुष्ठाभ्यां च वाम-श्मश्र्वग्रं परिमृजन्नेवमचिन्तयत्—

"समायातं घोरं कलियुगम्, नात्र संशयः। यैराततायिह्रतकै-र्दृशाऽप्यवलोकितमन्नादि अस्मत्पूर्वजैः शुनकेभ्यो वितीर्णम्; तेऽधुना साञ्जलि जयजयध्वनिपुरस्सरमभिवाद्यन्ते। येभ्यश्चर्मकार-मण्ड-लेष्वस्माभिर्वासभूमिरदीयत; तेषां विजय-पताका अधुना वङ्गेषु, कलिङ्गेषु, अङ्गेषु, मगधेषु, मत्स्येषु, मैथिलेषु, काशीषु, कोशलेषु, कान्यकुब्जेषु, चोलेषु, पाञ्चालेषु, काञ्चीषु, शौरसेनेषु, सिन्धुषु,

ण्डुरम्=किञ्चिद्रक्तपीतम्। सायंकालिकः शशाङ्क उभाभ्यामपि वर्णाभ्यां भूषितो भवत्येव। मुखञ्च कोपेन रक्तम्, खेदेन च पीतम्। सायंसमय-मृगाङ्क-मण्डलमिव=सूर्यास्तवेलोदितचन्द्रबिम्बमिव। वदनम्=आननम्। आलोकमालोकम्=दर्शं दर्शं। णमुलन्तम्। "नित्यवीप्सयोरि" ति द्वित्वम्। तर्जनी चाङ्गुष्ठश्चेति द्वन्द्वः। वामहस्तस्य तर्जन्यङ्गुष्ठाभ्याम्। यद्यपि "द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानामि" त्येकवद्भावः समपेक्षितस्तथाऽपि सर्वद्वन्द्वस्थलीयैकवद्भावस्य वैकल्पिकत्वमतमनुसृत्येदमभिहितमिति न च्युत-संस्कृतिदोषोद्भावनं युक्तम्। चस्य परिमृजन्नित्यनेन सम्बन्धः। वामश्म-श्र्वग्रम्=वामभागीयमुखकेशप्रान्तम्। आततं यथा स्यात्तथा-अयितुं शील-मेषामित्याततायिनः—वधोद्यताः, "सन्नद्धे त्वाततायी वधोद्यत" इत्यमरः।

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः।
क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते आततायिनः॥

दृशाऽप्यवलोकितम्=नेत्रेणापि दृष्टम्। स्पर्शादेस्तु कथैव का। शुनकेभ्यः=कुक्कुरेभ्यः, वितीर्णम्=दत्तम्। चाण्डालादिदृष्टान्नपानादि-परित्यागस्यापि मानवाद्यभिहितत्वेन "न नीचो यवनात्पर" इति स्मृत्या सर्वथा गर्हितैर्यवनैर्दृष्टानामन्नादीनां सर्वथा भोजनाभाव एव युक्त इति विवेकः। अभिवाद्यन्ते=नमस्क्रियन्ते। चर्मकारमण्डलेषु=पादूकृत्समु-दाये। "पादूकृच्चर्मकारः स्यादि" त्यमरः, वासभूमिः=निवासस्थानम्।

सौराष्ट्रेषु च दोधूयन्ते। येऽस्मदिष्टदेव-निन्दकाः सजिह्वाच्छेद-मस्माभी राज्याद् निरवासिषत, तेऽद्य जीवतामेव चास्माकं काश्यादिषु मन्दिराणि मर्दयन्ति तीर्थान्यापानभूमीकुर्वन्ति। कमला इव विमलाचारा कुलीन-कन्याः कदर्थयन्ति। सगात्र-कम्पं साश्रुपातं सकरुणं "त्रायस्व-त्रायस्वेति" आम्रेडन-पराणां परम-पूज्यपाद-वेद-विदुषामपि शोणितैर्भुवं शोणयन्ति। अहह! धिगस्मादृशान् क्षत्रिय-कुलकलङ्कान्, ये तेषां मानवाकाराणां क्रव्यादानां रुधिरैर्देवान् पितॄंश्च न तर्पयाम, अपितु तत्साहाय्य-दानेन स्वधर्म-रक्षण-परान् स्वबन्धूनेव चिक्लेशयिषामः। हा! सर्वोऽप्यस्मद्देशः परतन्त्र एव संवृत्तः। केवल महाराष्ट्र-देशे स्वातन्त्र्यस्य उद्यानं विकसितमव-

---

इष्टदेवनिन्दकाः=इन्द्राग्न्यादिनिन्दारताः। सजिह्वाच्छेदम्=सरसनोत्कर्तनम्। न येन पुनरेवमविनयं कुर्युः। निरवासिषत=निस्सारिताः। आपानभूमीकुर्वन्ति=सुरापानशालीकुर्वन्ति। कमला इव=श्रिय इवेत्युपमा। विमलाचाराः=सदाचारिण्यः। कुलीनानाम्=सद्वंशजातानाम्, कन्याः=अविवाहिता बालिका। (प्रायो यवना अविवाहिता एवागृह्णन् बालिका इत्यत एव "अष्टवर्षा भवेद् गौरी" त्यादि वचासि धर्मशास्त्रे सम्मेल्य तदानीन्तना बुद्धिमन्तो बाल-विवाहं प्रचारितवन्त इति वेदितव्यम्)। सगात्रकम्पम्=सशरीरवेपनम्। क्रियाविशेषणम्। आम्रेडनपराणाम्=वारं वारं कथयताम्। परमपूज्यपादाश्च ते वेदविद्वांसस्तेषाम्=नमस्करणीयचरणश्रोत्रियाणाम्। भुवम्=धराम्। शोणयन्ति=रक्तां कुर्वन्ति। मानवाकाराणाम्=मनुष्य-शरीरधारिणाम्। क्रव्यादानाम्=आममांसभक्षणतत्पराणाम्, रक्षसाम्। रुधिरैर्देवान् पितॄंश्च न तर्पयाम=एतेषां हननेन देवानाञ्च पितॄणाञ्च महती तृप्तिः स्यादित्येवमुक्तिः। तत्र दोषलेशाभावसूचनाय तु तर्पयाम इत्यभिहितम्। एवं कृते पुण्यमेव भवेदिति वास्तवं तत्त्वम्। स्वधर्मरक्षणपरान्=हिन्दुधर्मरक्षानिरतान्, शिवराजप्रभृतीन्। स्वबन्धून्=देशभ्रातॄन्। चिक्लेशयिषामः= क्लेशयितुमिच्छामः। परतन्त्रः=पराधीनः। उद्यानम्=वाटिका। विकसितम्=कुसुमितम्।

लोक्यते । अहह ! तदप्येतेऽनुदारा भूदारा इव उल्लुलूषन्ति, परन्तु न्यक्कार-विषया वयमेव; ये तुच्छानामेषामुच्छलतां म्लेच्छ-हतकानां चाटुकारा इव, किमिदमित्यविगणय्य, प्राप्त-सङ्केता एव स्वबन्धु-सर्वस्वमेव कृत्रिम-कोप-ज्वालाभिर्दिधक्षामः। अथवा किं कुर्मः ? पूर्वज-चरणा एवास्माकं महा-महिम-मर्यादामुल्लङ्घिरे । आसीदेष आमेराधीशो वीरवरो महामानो मानसिंह एव; यो बहूनां पैतृकीं पारम्परीणां प्राणाधिक-मूल्यां सर्वस्व-हानेनापि रक्षणीयां धर्मार्थ-काम-मूलभूतां स्वतन्त्रतासम्पत्तिं बलादाच्छिद्य खड्ग-धारासारैरखिलान् आत्मानं चान्धीकृत्येव दुराचार-यवनराज-हस्ते समर्पयति स्म । अथवा कस्तस्य दोषः ? क्रूरतमोऽयं कलिः, अभद्राणि भाग्यानि, अभव्यं भाव्यम्, पतनोन्मुखी सम्पत्तिः, विधूतप्रायो धर्मः, ध्वस्ता धीरता, चञ्चला चक्रवर्त्तिता, स्रस्ता च

अनुदारा=उदारताशून्याः । भूदारा इव=वराहा इव । "क्रोडो भूदार" इत्यमरः । उल्लुलूषन्ति=लवितुमिच्छन्ति । न्यक्कारविषयाः=तिरस्कार-पात्राणि । तुच्छानाम्=अतिनीचानाम् । उच्छलताम्=उच्छृङ्खलानाम् । चाटुकारा इव=मिथ्या श्लाघका इव । प्राप्तसङ्केता एव=आदेशप्राप्तिस-कालमेव । कृत्रिम-कोप-ज्वालभिः, वास्तविकक्रोधकारणाभावादिति भावः । दिधक्षाम=दग्धुमिच्छामः । महामहिम्नाम्=अतितेजस्विनाम्, मर्यादाम् । सीमाम् । उल्लङ्घिरे=अतिचक्रमुः । आमेराधीश=अम्बराधिपतिः । पारम्परीणाम्=परम्पराप्राप्ताम्, मूलपुरुषक्रमायातामिति यावत् । प्राणा-धिकमूल्याम्=जीवनतुल्याम्, आधारभूतामिति यावत् । सर्वस्वहाने-नापि=निखिलत्यागेनापि । रक्षणीयाम्=पालनीयाम् । स्वतन्त्रतासम्प-त्तिम्=स्वातन्त्र्यलक्ष्मीम् । बलात्=प्रसह्य । आच्छिद्य=सङ्खण्ड्य । खड्गधारासारैः=असिपतनवर्षैः । अन्धीकृत्येव=विचारविरहिती-कृत्येव । अभद्राणि=अमङ्गलानि । अभव्यम्=अशोभनम् । भाव्यम्=भवितव्यम् । पतनोन्मुखी=विनाशप्रवणा । विधूतप्रायः=विध्वस्तकल्पः । चक्रवर्त्तिता=साम्राज्यम् । "चक्रवर्ती सार्वभौम" इत्यमरः । स्रस्ता=पतिता ।

स्वतन्त्रता, तद् महतां विनिन्दनेन व्यर्थोऽयं वदन-मलिनीकार:" इत्यादि बहुशश्चिन्तयत एव तस्य कतिभिश्चिदश्रुबिन्दुभिः श्मश्रुमूलम-सिच्यत। यावच्चैष उपधानं परित्यज्य, जानुद्वयं सम्पात्योपविश्य, करपृष्ठाभ्यां नेत्रे सम्मृज्योत्तरीयाञ्चलेन बाष्पमपाकृत्य सम्मुख-मवलोकयति, तावदन्यतम प्रतीहारः प्रविश्य, सजयध्वनि करौ सम्पुटीकृत्य प्रावोचद्–"देव! शिववीर-प्रेषितो महादेव-पण्डितो दिदृक्षतेऽत्रभवत"। तदूरीकृत्य च, 'ओम्! प्रवेशय' इत्युक्तवति महाराजे प्रतीहारोऽपि तथाऽकरोत्। तत प्रतीहारेण सह प्रविष्ट-मात्रे महादेव-पण्डिते, यशस्विसिंह प्रणम्य आसन्न-स्थानमुपवेशार्थं दक्षकरेण निर्दिष्टवान्। तं च स्वेदात् क्लिन्नवदनमवलोक्य सम्यगु-पवीजयितुं व्यजनिनमिङ्गितवान्। तेन वीज्यमानमपगत-परिश्रमं च कुशलादिकमपृच्छत्। स च यथोचितमालप्य विशेष-वार्ता आल-पितुं राजप्रश्न प्रतीक्षमाण इव तस्थौ।

ततस्तयोरेवमभूदालाप'।

यशस्विसिंह:—पण्डितवर! महाराष्ट्र-राजस्य पत्रन्तु प्राप्तवाने-वास्मि। तत्र तेन यद्यदलेखि तत्तत् पठितवानस्मि। तदधिकं भवतः किं प्रस्तोतव्यमिति निरूप्यताम्।

महादेवपण्डित:—महाराज! नाहं तत्रभवता किमपि प्रस्तोतुं प्रेषितोऽस्मि, अपि तु शोकं प्रकाशयितुम्।

वदनमलिनीकार'=मुखकालिमानयनम्।

श्मश्रुमूलम्=कूर्चिकाग्रम्। असिच्यत = सिक्तमक्रियत। शोकाद-श्रुपतनमारब्धमिति यावत्। अथ शोकावस्था दर्शयति–यावच्चैष इति। अन्यतम'=अनेकेष्वेकः। सजयध्वनि = जय-शब्दपुरस्सरम्। सम्पु-टीकृत्य = संयोज्य। अत्रभवत' = पूजनीयान्। ऊरीकृत्य = स्वीकृत्य। आसन्नस्थानम् = समीपवर्तिदेशम्। "समीपे निकटासन्नावि" त्यमरः। दक्षकरेण = दक्षिणहस्तेन। स्वेदात् = घर्मजलात्। क्लिन्नवदनम्= आर्द्राननम्। उपवीजयितुम्=व्यजनेन सेवितुम्। व्यजनिनम्=व्यजन-चालकम्। इङ्गितवान = चेष्टया बोधितवान्। अपृच्छत्-पृच्छधातोर्द्विकर्म-कत्वात् परिश्रम कुशलादिकमित्यत्र च द्वितीया। प्रस्तोतव्यम् = वक्तव्यम्।

यश०-तत् किं पुण्यनगरेण सह प्रधानचिक्कन-दुर्गोऽपि हारित इति शोकः ?

महा०-तस्य हस्ते बहवो दुर्गाः सन्ति-इति दुर्गार्थं न खिद्यते।

यश०-अथ किं भारत-चक्रवर्त्तिना दिल्लीश्वरेण युद्धरूपा महती विपदुपतिष्ठते-इति शोकः ?

महा०-क्षत्रियराज! विपत्समये धीरतात्यागः शिवेन नाभ्यस्तः।

यश०-तत् किमिति शोकः ?

महा०-[उच्चैर्निरश्वसत्]

यश०-कथ्यतां कथ्यतां किमिति शोकः ?

महा०-भगवन्! यः क्षत्रियता-धूर्धरः, येन राजन्वतीयं भूः, योऽस्मादृशानामभिमान-भाजनम्, यस्मिन् धर्म-धुरन्धरा आग्रह-ग्रहिलाः, यं पीयूष-पूरमिव चक्षुश्चषकैश्चिराय पिपासामहे, यः सनातन-धर्मरक्षाया एकमात्रं शरणम्, यश्च भारतीय-वीरकुल-मुकुट-मणिः;तमेवाद्य कदर्य्य-हतकानां पाटच्चराणां जाल्मानां धर्म-ध्वंसिनामेतेषां दासपदलाञ्छनमालोक्य शोकाकुला महाराष्ट्र-राजः!

क्षत्रियराज,क्षत्रिय एव केवल न, राजाऽपि। किमिति=कस्माद्धतोः।

उच्चैर्निरश्वसत्, महान् शोको यो वाचामगोचर इति दर्शयितु किमप्यनभिधाय निश्वासग्रहणम्। क्षत्रियतायाः=क्षात्रस्य, निखिलविपन्नरक्षणरूपस्य, धुरम्=भार धरतीत्येवम्भूतः, अनित्यत्वात् 'ऋक्पूरब्धूरि' त्यादिना समासान्ताभावः। राजन्वती=सुराजवती, "राजन्वान् सौराज्ये"। "सुराज्ञि देशे राजन्वानि" त्यमरः। अभिमानभाजनम् = अभिमानकारणीभूतः। यस्मिन्, सति। भावसप्तमी। धर्मधुरन्धराः = धार्मिकाः। आग्रहग्रहिलाः=धर्मपक्षपातिनः। पीयूषपूरम्=अमृतप्रवाहम्। चक्षुश्चषकैः=पानपात्राभेदतां गतैर्नयनैः। एकमात्रम् = अद्वितीयम्। भारतीयवीरकुलस्य = हैन्दवीयवलिसमूहस्य, मुकुटमणिः=मस्तकरत्नम्। पाटच्चराणाम्=चौराणाम्। जाल्मानाम्=असमीक्ष्यकारिणाम्, धूर्त्तानाम्। दासपदलाञ्छनम् = भृत्यशब्दचिह्नितम्। एतादृशापवादगोचरतामुपगत-

ततो यशस्विसिंहस्तु स्फुटमेप मां धिक्करोतीति किञ्चित् कुपितः, सतां न्यक्करणीयमेव भारत-विद्रोहि-यवन-वशवर्त्तिताकार्यं करोमीति ग्लानः, विचित्रेयमुत्थानिकैतत्प्रस्तावस्येति चकितः, मामेव निरुत्तरयतीति ह्रीणः, किमितोऽपि कथयेदिति च सकुतूहलः, स्वेदापसारणच्छलेन विविध-भाव-भङ्ग-तरङ्गितमाननं पटान्तेन साच्छादनं प्रोञ्छन्, उपधानं क्रोडे संस्थाप्य, तदुपरि च स्थापित-कफोणिः, यावत् पुरः वक्ष्यति; तावत्पुनरारभत तथैव वक्तुं महादेवः—महाराज ! दिक्करि-कर-दोधूय्यमान-यशःपुञ्ज-पुण्डरीकस्य स्वातन्त्र्य-पोत-कर्णधारस्य क्षत्रिय-कुल-कमल-दिनेशस्य उदयपुराधीश-श्रीप्रताप-

मिति यावत् । सतां न्यक्करणीयम्=सद्भिस्तिरस्करणीयम् । "कृत्यानां कर्त्तरि वे"ति वैकल्पिकषष्ठी । भारतविद्रोहिणाम्=आर्यावर्त्तघातिनाम्, यवनानाम्, वशवर्तिता=अधीनतास्वीकरणम्, सैव कार्यम् । ग्लानः=क्षीणहर्षः । "ग्लै हर्षक्षये" इत्यस्माद् "गत्यर्थाकर्मके"ति कर्त्तरि क्तः, "संयोगादेरातो धातोर्यण्वत" इति नत्वम् । उत्थानिका=भूमिका । चकितः=भीतः । निरुत्तरयति=उत्तरशून्यं करोति । ह्रीणः=लज्जितः । इतोऽपि, अधिकमिति शेषः । स्वेदापसारणच्छलेन=घर्मजलदूरीकरणव्याजेन । विविधानाम्=अनेकेषाम्, भावानाम्=शोकग्लान्यादीनाम्, भङ्गैः=आविर्भावतिरोभावैः, तरङ्गितम्=समुत्पन्नलहरिम्, आकुलीभूतमिति यावत् । साच्छादनम्=सगोपनम्, प्रोञ्छन्="पोंछते हुए" इति हिन्दी । क्रोडे=भुजाभ्यन्तरे । स्थापितकफोणिः=धृतकूर्परः । "स्यात्कफोणिस्तु कूर्परः" इत्यमरः । दिक्करिणाम्=दिङ्मातङ्गानाम्, करैः=शुण्डादण्डैः, दोधूय्यमानम्=वारं वारं सञ्चाल्यमानम्, यद् यशःपुञ्ज एव=कीर्त्तिव्रात एव, पुण्डरीकम्=सिताम्भोजम्, यस्य तादृशस्य । समस्तभूखण्डव्यापियशस इति वाच्योऽर्थः । स्वातन्त्र्यमेव=स्वतन्त्रतैव, पोतः=नौः, तत्कर्णधारस्य=तन्नाविकस्य । क्षत्रियकुलमेव=क्षात्रान्वय एव, कमलम्=पद्मम्, तद्दिनेशस्य=तदुदयकारणस्य खेचराधिनायकस्य । उदय-

सिंहस्य कुल-प्रसूतं स्त्री-रत्नं यस्याद्धाङ्गम्, विद्युद्विनिन्दक-कृपाण-करैः, घनश्मश्रु-कूर्च-समाच्छन्न-कन्धरैः, वाम-पाद-कलित-राजतैक-कटकैः, दक्षकर-कलित-कनकवलय-द्वयैः, पीतरक्त-श्यामारुणार्जुन-कर्बुर-पाण्डुर-धूसर-पाटल-चित्र-विचित्रोष्णीषैः, विविध-मणिमय-हाटक-माला-सङ्घट्ट-किरणाङ्किताधिक-विकट-वक्षस्थलैः, रणाङ्गण-विपोथित-प्रत्यर्थि-सार्थ-मुकुट-मौक्तिक-मण्डलारचित-कुण्डलैः, सिंह-

पुराधीशश्चासौ श्रीप्रतापसिंहस्तस्य। श्रीप्रतापः सुप्रतापः सूर्यवंश्यः क्षत्रिय आसीदकबर-साम्राज्यकाले। तत्पितृव्यजस्य श्रीमानसिंहस्य भगिनी "जोधाबाई" अकबर (अकबर) पट्टमहिष्यभूदिति श्रीप्रतापदेवो मानसिंहमपमानितवान् कदाचिदसहभोजनेनेति सुमहान् सङ्ग्रामो हल्दीघट्टे सञ्जात इत्यादि सुप्रसिद्धमेव भारतीयेतिवृत्तेषु। स्त्रीरत्नम्=स्त्रीषु श्रेष्ठा। "रत्नं स्वजातिश्रेष्ठेऽपी"ति नानार्थेऽमरः। अर्द्धाङ्गम्=अर्द्धदेहः, स्त्रीत्यर्थः। विद्युद्विनिन्दकानि = चपला-जुगुप्सा-कारणानि, कृपाणानि = असयः, करे येषां तैः। घनेन=सान्द्रेण, श्मश्रुणा=दाढिकया, कूर्चेन=उत्तरोष्ठस्थकेशेन, च समाच्छन्नाः=व्याप्ताः, कन्धराः येषां तैः। वामपादे दक्षिणेतरचरणे, कलितः=धारितः, राजतः=रजतनिर्मितः, एकः = अद्वितीयः, कटको यैस्तैः, इय तत्रत्यप्रथेति भाति। दक्षकरे=दक्षिणहस्ते, कलितं कनकवलयद्वयम्=हिरण्यकङ्कणयुगलम्, यैस्तैः। पीतादिभिश्चित्रान्युष्णीषाणि येषा तैः पीतादीनि चित्राणि उष्णीषाणि येषा तैरिति वा। अरुणम्= ईषद्रक्तम्, अर्जुनम्=धवलम्। "वलक्षो धवलोऽर्जुनः" इत्यमरः। कर्बुरम्=चित्रम्, अनेकवर्णमिश्रणरूपन्न तु स्वतन्त्रम्। पाण्डुरम्=ईषत्पीतम्, श्वेताभम्, धूसरम्=मृन्मिश्रश्वेतम्, "भूरा" इति हिन्दी। पाटलम् = पाटलपुष्पवर्णम्। "इति हिन्दी। विविधानाम्=अनेकप्रकाराणाम्, मणिमयहाटकमालानाम्=हीरकादिजटितसुवर्णस्रजाम्, सङ्घट्टस्य=व्रातस्य, किरणैः=मयूखैः, अङ्कितम्=लाञ्छितम्, अत एव अधिकम्=बहु, विकटम्=निम्नोन्नतम्, वक्षस्थलम्=उरःस्थलं येषा तैः। रणाङ्गणे=सङ्ग्रामभूमौ, विपोथितानाम्=विनाशितानाम्, प्रत्यर्थिनाम्=शत्रूणाम्, सार्थस्य=व्रजस्य, मुकुटानाम्=उष्णीषाणाम्, मौक्तिकमण्डलैः=मुक्ताप्रकरैः, आरचितानि=निर्मितानि, कुण्डलानि

संहननैः, मधुनयनैः, परश्शत-वीरवरैः सजयजयध्वनि व्रियमाणं मरुदेश-राजसिंहासनं पदा समाक्रम्य यो विराजते, यत्कथोपकथनै राजपुत्र-देश-कामिन्यो बालकान् शाययन्ति, एप दिल्ली-कलङ्कोऽवरंगजीवोऽपि सिप्रातीरे यद्बाहुविक्रममवलोक्य, क्षणमनिमेपो विस्मृतात्मदेहो विस्मितस्तस्थौ; सदैव यतो बिभेति, साहाय्यं च समपेक्षते, अस्मिन् विश्वस्मिन्नपि भारते वर्षे, नगरे नगरे ग्रामे ग्रामे गृहे गृहे मन्दिरे मन्दिरे च यस्य क्षेमाय विजयाय बलवृद्धयै राज्यसमृद्धयै विपुलसम्पत्त्यै रिपु-निकर-हृत्यै च द्विजवरा हस्तावुन्नमय्य,सनाम-सकीर्त्तनमाशीराशीनुच्चारयन्ति, 'अस्मास्वपि केचन वीरा ऊर्जस्वलयशसस्ते महापुरुषाः सन्ति' इति यं वारं वारं स्मारं स्मारं वयं सर्वेऽप्यभिमन्यामहे, स एव महावीरः, स एव भारत-रत्नम्, स एव राजकुल-भूषणम्, स एव च धर्मधारिधौरेयः, अद्य यवनानां पक्षमवलम्ब्य स्वकीयानामेव शिरांस्युच्छेत्तुं चतुरङ्गिणीं सज्जितवानस्तीत्यवलोक्य क्षुभितं महाराष्ट्र-राजस्य हृदयम्।

येषां तैः। सिंहसंहननैः=वरागरूपेपेतैः। "वरागरूपोपेतो यः सिंहसंहननो हि सः" इत्यमरः। अतीव सुन्दरैरित्यर्थः। मधुनयनैः=मत्तनेत्रैः। परश्शतैः=अगणनीयैः, वीरवरैः=श्रेष्ठैर्बलिभिः, व्रियमाणम्=स्वीक्रियमाणम्। यत्कथानाम्=यच्चरितानाम्, उपकथनैः=वर्णनैः। बालकान् शाययन्ति, तच्चरितक्रूरतां निशम्य भीता बालाः स्वपन्तीति तत्त्वम्। सिप्रातीरे=सिप्रातटे। उज्जयिनीभूषणायिता मालवविहारिणी सिप्रा नदी। विस्मृतात्मदेहः=अविगणितस्वशरीरः। विस्मितः=विलक्षः। विश्वस्मिन्नपि=सम्पूर्णेऽपि। क्षेमम्=कल्याणम्, लब्धसंरक्षणरूपम्। रिपुनिकरस्य=शत्रुव्रजस्य, हृतिः=मरणम्, तस्यै। हृत्यै, इत्यत्र "अनचि चे"ति वैकल्पिकं द्वित्वम्। ऊर्जस्वलयशसः=विपुलकीर्त्तयः। धर्मधारिधौरेयः=धार्मिकाग्रेसरः। स्वकीयानामेव=स्वदेशीयानां स्वगोत्राणाञ्च। उच्छेत्तुम्=कर्त्तितुम्। क्षुभितम्=आविलम्, व्याकुलमित्यर्थः।

यशस्विसिंहं किञ्चिल्लज्जया तिर्यग्वदनं विमनायमानमिवावलोक्य पुनः—

वीरवर ! साधारणोऽहं दूतः, महाराजैः सह कथमालपनीयमिति भाषण-परिपाटीमपि न जानामि—इति भाषण-भङ्गीवैधुर्य्य-प्रयुक्तोऽपराधो भवेच्चेत् क्षन्तव्यः, किन्तु निरीक्ष्यतां किमर्थेयं रण-सज्जा ? किमर्थं एष महोपकार्या-सन्निवेशः ? किमिति भयानक-भल्ला भासन्ते ? किमिति चञ्चलाश्चन्द्रहासाश्चमत्कुर्वन्ति ? कमश्वयितुमेते सादिनः ? कञ्च भस्मसात् कर्तुं ज्वालाजटिल एष भवत्कोप-दावानलः ? किं ये भवन्तमाशिषो ब्रुवन्ति, तेषामेव रक्तै रेणुकाराशिमरुणयितुम् ? ये भवन्माहात्म्य-समाकर्णनेन मोदन्ते; तेषामेव मेदोभिर्मेदिनीं मेदस्विनीं निर्मातुम् ? ये भवन्तं निजकुलावतंसं मन्यन्ते; तेषामेव वंशं ध्वंसयितुम् ? ये निरर्थं दीनान् लुण्ठन्ति, कुलीन-कन्या अपहरन्ति, मन्दिराणि निपातयन्ति, सद्यो वृक्णैः प्रजानां मस्तकैर्नयनैश्च चिक्रीडन्ति; तानेव वैदिक-मर्य्यादा-विलोपन-व्रतिनो वैरिहतकान् वा वर्द्धयितुम् ? महाराज ! यथा

तिर्यग्वदनम्=साचीकृतमुखम् । भाषणपरिपाटीम्=कथनशैलीम् । भाषणभङ्गीवैधुर्य-प्रयुक्तः=कथन-प्रकार-शून्यताजन्यः । किमर्था=किम्प्रयोजनिका । महोपकार्यासन्निवेशः=महाशिविरविन्यासः । अश्वयितुम्=अश्वैराक्रमितुम् । सादिनः=अश्वारोहाः । भस्मसात्कर्त्तुम्=दग्धुम् । ज्वालाजटिलः=ज्वालावर्द्धितः । ब्रूञो दुह्यादित्वेन भवन्तमाशिष इत्युभयस्यापि कर्मत्वं बोध्यम् । रेणुकाराशिम्=धूलिव्रातम् । अरुणयितुम्=रक्तयितुम् । मेदोभिः=विस्रैः । "मेदस्तु पलतेजः पलोद्भवम् । विस्रमस्थिकरं स्नेहवरं गौतममित्यपी"ति वैजयन्ती । मेदिनीम्=धरणीम् । मेदस्विनीम्=विस्रमयीम् । निर्मातुम्=कर्त्तुम् । निजकुलावतंसम्=स्वान्वयसम्भूतम् । निरर्थम्=निष्प्रयोजनम् । लुण्ठन्ति=चोरयन्ति । सद्यो वृक्णैः=तत्कालकृत्तैः । चिक्रीडन्ति=वारं वार क्रीडा कुर्वन्ति । वैदिकमर्यादायाः=आर्यपद्धतेः, विलोपनम्=विनाशनमेव, व्रत तद् येषामस्तीति तान् । "अत इनिठनौ" । वर्द्धयितुम्=वृंहयितुम् । श्येनः=पक्षिघाती

१९

श्येना वज्र-निष्पेष-निष्ठुरैर्निज-चञ्चु-चरणाघातैर्दीनान् भय-विह्वलान् पतत्रिणो निहत्य व्याधाय समर्पयति, स्वयं च वधमात्रफलभाग् भवति; तथाभूत त्वं न शोभसे श्रीमति, यन्निरर्थं स्वतन्त्रा अपि प्रजा विजित्य, केवलमविचार-व्यभिचार-प्रचाराय धूर्तानामेषां यवनानां हस्ते समर्पयन्ते। क्षत्रिय-व्याघ्र! किमहं कथयामि? स्वयमेव विवेच्योऽस्य विषय।

अथ काश्चिन् क्षणान् शिरःकण्डूयनेनैव यापयित्वा किञ्चिद् व्रीणोऽपि त्रपां संवृण्वन्निव शनैरवादीद् महाराज।

यशस्वि०—दूतवर! साधु, तव भाषण-भङ्गीमत्यन्त प्रशंसे। न तव भाषणे गौरवमवगूर्यते, पदवैधुर्यं ध्रियते, प्रसादो निरस्यते, संशयापादक-पद-प्रचयो वा प्रचीयते। विलक्षण तव पाटवमालापेषु, गहन-गहनैः, कोमल-कोमलैः, मधुर-मधुरैः, वाचा विला-

---

पक्षी। वज्रनिष्पेषनिष्ठुरैः=कुलिश-पतन-कठोरैः। निजचञ्चु-चरणाघातैः=स्वत्रोटिपादमारणैः। भयविह्वलान्=भीतिकातरान्। पतत्रिणः=पक्षिणः। द्वितीयान्तम्। व्याधाय=मृगयवे। समर्पयति=ददाति। व्याधाः श्येनान् पालयन्ति तद्द्वारा चाखेटं कारयन्तीति लोकप्रसिद्धम्। वधमात्रस्य=केवलमारणस्य, फलं भजति तथाभूतः। अविचारस्य=अविवेकस्य, व्यभिचारस्य=मर्यादालङ्घनस्य, च प्रचाराय। क्षत्रिय-व्याघ्र!=राजन्यश्रेष्ठ! विवेच्यः=विचारणीयः।

शिरःकण्डूयनेन=शिरःखर्जनेन। लज्जितस्योत्तरदौर्बल्ययुतस्य च सूचकमिदम्। त्रपाम्=ह्रियम्। संवृण्वन्=आच्छादयन्। गौरवम्=श्रैष्ठ्यम्। अवगूर्यते=हिनस्ति। पदवैधुर्यम्=उचिताकाङ्क्षाशमनाय समपेक्षितपदशून्यता। न ध्रियते=नावतिष्ठते। प्रसादः=स्पष्टार्थतात्मा गुणः। निरस्यते=क्षिप्यते। "असु क्षेपणे"। संशयापादकानाम्=सन्देहजनकानाम्, पदानाम्, प्रचयः=आधिक्यम्। प्रचीयते=वर्धते, निरर्थकपदराहित्यमिति यावत्। पाटवम्=पटुता। गहनगहनैः=अति-

सैर्मनो हरसि । यदेव वक्तुं प्रवर्त्तसे; तन्मूर्तिमिव पुरो विलिखसि, यदेव वक्तुमीहसे; तदासार-प्रसारैरिव परितः प्लावयसि । धन्य. शिवो यस्त्वादृशान कल्पना-केसरिणो दूतत्वे नियुनक्ति । त्वदुक्ति-श्रवण–विरिरंसैव न भवत्यस्माकम् '

महा०–महाराज ! एष साधारणोऽस्ति दूतो न जानीते उचितमनुचितं वेति सर्वथा क्षमा–भिक्षुरेष जन । (इति नतकन्धरः समास्थित) ।

यश०–अथ प्रकृतमाकलय । न खल्वस्माभो राजपुत्र-देशीय-क्षत्रियैर्भयेन वा, लोभेन वा, कस्याप्युपचिकीर्षया वा, अपचिकीर्षया वा यवन-हस्तेष्वात्मा समर्पित. । अस्माभिरेव वारसहस्रं यवना. खड्गः खण्डश कृता',अस्माभिरेव वारं वारं ते आसिन्धु-कूलं विद्राविता., पारतन्त्र्य–कलङ्कमसहमानानामस्माकमेव नव–नीत-कोमला रमण्यो ज्वाला-जाल-जटालेषु ज्वलनेषु आत्मानं ज्वलयाम्बभूवु । एवमेवाऽऽपदोऽनुभवतामस्माकं वत्सराणां शतकानि व्यतीतानि । न जानीमहे किमिवेहितं भगवत्या महामायाया:,

---

गम्भीरार्थैः । तन्मूर्त्तिम् = तत्स्वरूपम् । ईहसे = वाञ्छसि । तदासार–प्रसारै=तद्धारासम्पातप्रपातैः । "धारासम्पात आसार" इत्यमरः । कल्पनाकेसरिणः = नवनवविचारमृगेन्द्रान् , तादृशविचारपटूनिति यावत् । त्वदुक्तेः=त्वद्भाषणस्य, श्रवणात्=आकर्णनात् , विरिरंसा=विरन्तुमिच्छा ।

क्षमाभिक्षु' = क्षमाप्रार्थी । नतकन्धरः=नमितग्रीवः । समास्थितः= स्थितोऽभूत् । "समवप्रविभ्यः स्थः" इत्यात्मनेपदत्वम् ।

उपचिकीर्षया=उपकर्तुमिच्छया । अपचिकीर्षया=अपकर्तुमिच्छया । वाराणां सहस्रं वारसहस्रम्=अनेकवारम् । आसिन्धुकूलम् = सिन्धुनदतटपर्यन्तम् । अभिविधावाङ् । विद्राविताः = उत्सारिताः । पारतन्त्र्यम्=पराधीनतैव, कलङ्कः, तम् । नवनीतकोमला. = हैयङ्गवीन-मृदङ्ग्यः । ज्वालाजालैः = कीलमालाभिः, जटालेषु = उपचितेषु । ज्वलनेषु = दहनेषु । ईहितम् = चेष्टितम् । महामायायाः = "अजामे-

यदितोऽपि अधिकार-वैशिष्ट्यमेव कलयति भारत-विद्रोहि-सन्दोहः। वयं च अनिच्छन्तोऽपि आत्मनस्तद्धस्तगतानेव पश्यामः। अधुना तु विश्वस्मिन्नपि राजपुत्रदेशे तेषां तथाऽधिकारोऽस्ति; यत् केवलमात्मोच्छेदायैव तै. सह विरोध स्यात्—इति किमिव क्रियेत ? भाग्यै रे-तेषां कदर्य्याणां परस्परमैक्यमपि नास्ति अस्माकम्। तद् यथोचितं निर्वहामः।

महा०—महाराज! सम्यगवैमि, मा स्म भूद्राजपुत्रदेशे तादृशं यौष्माकीण-बलम्, परमस्मिन् देशे तु यवनानामधुनाऽपि तथा प्रबलोऽधिकारो न संवृत्तोऽस्ति। शतशो दुर्गाणि सन्ति, यवन-रुधिर-तृषित-खड्ग-प्रचयोद्भासित-भुजाः सहस्रशो महाराष्ट्र-व्याघ्राः सञ्चरन्ति। एषां च सर्वोऽपि वीरता-धुरन्धरान् क्षत्रिय-कुलमणीन् भारत-गौरवाश्रयान् दत्त-म्लेच्छ-हस्तावलम्बनान् युष्मानवलोक्य रोदिति। युष्मदग्रे सर्वोऽपि बद्ध-कर-सम्पुटः।

कामि" ति श्रुतायाः सकलजगदुद्भवस्थितिनिरोधलीलाया अगणितगुणगण-समुचितकलेवराया अपि त्रिगुणात्मिकायाः। अधिकारवैशिष्ट्यम् = विशिष्ट-मधिकारम्। कलयति = धारयति। भारतविद्रोहिसन्दोह =हैन्दव-प्रत्यर्थि-निकरः। आत्मोच्छेदाय=स्वविध्वसनाय। कदर्य्याणाम् = कुत्सिता-चरणानाम्। निर्वहामः = समयं यापयामः।

युष्माकमिदं यौष्माकीणं तच्च तद् बलम् = सामर्थ्यम्। शैषिकेऽणि "तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकावि"ति युष्माकादेशः। यवनानाम् = म्लेच्छानाम्, रुधिरस्य=लोहितस्य, तृषितानाम् = पिपासितानाम्, खड्गानाम् = असीनाम्, प्रचयैः = निकरैः, उद्भासिता. = चश्चद्भासः, भुजाः = बाहवो येषा ते। महाराष्ट्रव्याघ्रा =श्रेष्ठा महाराष्ट्रदेशीयाः। सर्वोऽपि, अस्य 'मध्ये' इत्यादौ, 'जनः' इति चान्ते शेषः। दत्तम्ले-च्छहस्तावलम्बनान् = यवनसाहाय्यकारिणः। बद्धकरसम्पुट.=कृत-

राज्यमेतदखिलं भावत्कम्, शिववीरोऽपि भवता स्वसेनापतिष्वेवान्यतमोऽङ्गीक्रियताम्, दिल्लीश्वरेण च सह युद्धमारभ्यताम्। यो यौवराज्य-समय एव महासमरे चित्रार्पित इव चकितीकृतो भवता, यः प्राप्त-साम्राज्य-सिंहासनोऽपि बिभ्यदिव श्रीमन्तमितस्ततो महायुद्धेषु सम्प्रेष्य श्रीमदानिष्टं शुश्रूषते; स सर्वदा दण्डेनैव शिक्षणीय आर्यैः। अस्मिन् महाकार्ये श्रीमत्प्रतिवेशी आमेर-देशाधीशो न सह युङ्क्ते भवता चेन्निजभक्तो महाराष्ट्रराज एव विधेयो विधीयताम्। ऐक्यं नास्तीति मा स्म भूच्छोकः श्रीमताम्। उद्योगेनैक्यमारभ्यताम्।

शिवो भारतीयानां पारतन्त्र्यं नावलुलोकयिषति। राज्यलोभस्तु तस्य नास्ति—इति विजये राज्यमिदमप्यत्र भवतामेव भवेत्, किन्तु यथा भारत-द्रुहां यवनानां प्राबल्येन प्रत्यहं धर्मलोपो न स्यात्, तथैव शिवस्याभिप्रायः।

यश०—राज्यं त्वस्माकमपि बह्वस्ति। वयमपि गर्द्धाभिभूता न स्मः। शिवस्योद्देश्यं चाखिलं प्रशस्यमस्ति। वयमपि शिवमवलोक्य क्षत्रियकुलस्य च सारवत्तामाकलय्य मोदामहे, किन्तु शिवस्य व्यापा-

---

हस्ताञ्जलिः। भावत्कम् = भवदीयम्। अङ्गीक्रियताम् = स्वीक्रियताम्। सेनापतिमेव जानीहीति यावत्। यौवराज्यसमये = राज्याधिकारप्राप्त्यवसरे। चित्रार्पित इव = चित्रलिखित इव। चकितीकृत• = साश्चर्यीकृतः। यशस्विसिंहेनावराङ्गजीवस्य चादौ प्रत्यक्षं युद्धमभूत् पश्चादपि चान्तःकलह आसीदितीतिवृत्तेषु प्रसिद्धम्। प्राप्तसाम्राज्यसिंहासनोऽपि = लब्धचक्रवर्तित्वपदोऽपि। बिभ्यदिव = भयं कुर्वाण इव। भवत इति शेषः। शुश्रूषते = श्रोतुमिच्छति। दण्डेनैव, न तु सामादिभिः। श्रीमत्प्रतिवेशी = भवत्पार्श्वदेशस्थः। सहयुङ्क्ते = सहयोगं करोति। विधेयः = आज्ञाकारी।

पारतन्त्र्यम् = वैदेशिकाधिपत्यम्। अवलुलोकयिषति = द्रष्टुमिच्छति। भारतद्रुहाम् = हैन्दवद्रोहकारिणाम्। क्विबन्तम्। प्रत्यहम् = प्रतिदिनम्।

गर्द्धया = अतिलोभेन, अभिभूताः = तिरस्कृताः। प्रशस्यम् = अतिश्लाघ्यम्। सारवत्ताम् = बलयुक्तताम्। व्यापारेषु = कार्येषु।

रेष्वेकमेवास्मभ्यं न रोचते, यत्ते चौराणा लुण्टकानाञ्च वृत्तमनुसरति–इति ।

महा०—महाराज ! मैवम् , किं कुत्रापि कुतश्चिदपि समश्रौषीत् श्रीमान् , यद् निरपराधान् पथि कान् लुण्ठति महाराष्ट्रराज. ? आहोस्वित् कस्यापि भित्ति भित्त्वा धनमपजहार श्रीमान् ? किन्तु लुण्ठकानामेषामत्याचारमसहमानो लुण्ठका यथा न लुण्ठेयुस्तथैतान् दण्डयति । सन्ति प्रबला. परिपन्थिनः, भवादृशाश्च तेषामेव दत्त हस्तावलम्बनाः । धर्मो हि सर्वथा रक्षणीय. । सतीत्वध्वंसनमन्दिरावपातादिरूपो घोरतरो दुराचार. सर्वथा प्रतिरोद्धव्य' । आततायिनश्चावश्यमेव दण्डनीया.—इति कचन परवशतया नीतिविशेषस्यापि आश्रयोऽपेक्ष्यत इति किमिव लुण्ठकता ?

दिल्ली-कलङ्कस्तु प्राधान्येन श्रीमन्तमेव द्वेष्टि । श्रीमानपि तद्दु-

---

अस्मभ्यं न रोचते=अस्मत्प्रीतिकरो न भवति । "रुच्यर्थाना प्रीयमाण" इति सम्प्रदानसंज्ञा ।

समश्रौषीत्=सम्यक् श्रुतवान् । निरपराधान्=दोषरहितान् । भित्तिम्=कुड्यम् । भित्त्वा=त्रोटयित्वा । सन्धिं कृत्वेति यावत् । अपजहार=चोरयामास । एषाम्=यवनानाम् । दण्डयति =पीडयति । परिपन्थिन.=विरोधिनः । सतीत्वध्वंसन-मन्दिरावपातादिरूप.=पातिव्रत्यविनाशन-देवालयविध्वंसरूपः । आततायिनश्चावश्यं दण्डनीया' ।

"आततायिनमायान्त हन्यादेवाविचारयन् ।
नाऽऽततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ॥"

"आततायी वधार्हण" इत्यादिभि शतशः स्मृतिपुराणेतिहासवचनैस्तेषा दण्डनीयत्वं सुव्यक्तम् । परवशतया=परवत्तया, आवश्यकतयेति यावत् । नीतिविशेषस्य,

"व्रजन्ति ते मूढधिय. पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः" इत्येवरूपस्य ।

राचारमसहमानः शिवापेक्षयाऽप्यधिकतरस्तच्छत्रुः। श्रीमताऽपि शठे शाठ्यमिति मुद्रया कूटनीतिरङ्गीक्रियेत चेत्; किमियं लुण्ठकता स्यात्?

यश०—[दीर्घमुष्णं निःश्वस्य] अथ मां किमभिदधाति शिवराजः?

महा०—मरुराज! स श्रीमतः साहाय्यमभय च वाञ्छति।

यश०—दिल्लीश्वरेण सह कृतप्रतिज्ञः कथमन्यथा विधास्यामि?

महा०—भगवन्! ये हि रोदं रोदं पादयोर्विलुण्ठतामपि "त्रायध्वं त्रायध्वम्" इति सहाहाकार-चीत्कारै रोदसी रोदयतामपि दारा अपहरन्ति, इष्टदेव-प्रतिकृतीश्चूर्णयन्ति, बालान् वृद्धांश्च सकष्टं घ्नन्ति; तेषामेषां दुर्विनीतानामाततायिनां बलेनापि च्छलेनापि च दण्डनं परम-पुण्यमेव, न पापम्। स्वयमेव धर्म-मर्म-गौरव-लाघवाभ्यामालोचनीयोऽयं विषयः।

यश०—[चिरं तूष्णीं चिन्तयित्वा, आत्मनोऽप्यवरङ्गजीवस्य राज्य-प्राप्तेरपि पूर्वसमयमारभ्याद्यावधि अन्तरेव जाज्वल्यमानं क्रमतो गुप्तरूपेणैव

अधिकतरः=श्रेष्ठतरः। तच्छत्रुः, "शठं प्रति चरेच्छाठ्यमि"ति समाश्रयतः शत्रुत्वं मित्रव्याजाच्छन्नं न दोषावहम्।

"रामकृष्णेन्द्रादिदेवै कूटमेवाऽऽदृत पुरा"

इत्यादिवचनशतेन नीतिकारैः सेतिहासप्रदर्शनं समर्थितमावश्यकञ्चेद-मिति मन्तव्यम्।

रोदं रोदम्=रुदित्वा रुदित्वा। रोदसी=द्यावापृथिव्यौ। रोदयताम्=विलापयताम्। दाराः=स्त्रीः। हेमचन्द्रानुसारि-पूर्वप्रदर्शित-दारन्तस्य शसि। "पुं भूम्नि दाराः" इति कोशोक्तस्य तु दारानित्येव। इष्टदेवप्रति-कृतीः=रामादिप्रतिमाः। छलेनापि=कूटनीत्याऽपि धर्ममर्मगौरवलाघवाभ्याम्, धर्मस्य हि सूक्ष्मा गतिः, कियन्तोऽधर्मत्वेनाऽऽपाततो भासमाना धर्माः, कियन्तश्च धर्मत्वेन भासमाना अधर्मा इति शतशः स्मृतिवचनैः स्पष्टीकृतम्।

जाज्वल्यमानम्=अतितरा ज्वलत्। क्रमतः=शनैः शनैः।

प्रवर्द्धमानं क्वचित् क्वचित्स्फुटमुपदृश्यमानं कथञ्चमपि वीरवर-जयसिंहादिभिरुपशम्यमान महावैरं विचार्य नैजमपि च महादेव-सदृशमेव सिद्धान्त विभाव्य सर्वं मनस्येव निगीर्य्य प्रकृतानुरूपमाह]

दूतप्रवर ! दिल्लीश्वरं "महाराष्ट्रैः सह योत्स्ये"—इति कथयित्वा समायातोऽस्मि, तद् योत्स्ये ।

महा०—सत्यं योत्स्यते, स्व-वंश-जातानामेव क्षत्रिय-बालकाना वक्षश्छुरिकाभिर्विदारयिष्यते । सद्यश्छिन्न-ब्राह्मण-कन्धरा-विगलद्रुधिरप्रवाहैर्भगवती वसुमती स्नपयिष्यते । यवनहस्तेषु अधिकारं समर्प्य महामांस-दिग्धा च भारतभूर्द्रक्ष्यते—

इति प्रस्फुरिताभ्यामधराभ्यामरुणिमाञ्चिताभ्यां च प्रस्फारिताभ्यां नयनाभ्यामचकथत् ।

यशस्विसिंहस्तु तदाकर्ण्य स्थगित इव चकित इव ह्रीत इव अवहेलित इव आक्षिप्त इव पुत्तलीकृत इव क्षणमध' क्षण पुरः

प्रवर्द्धमानम् = वृद्धिं गच्छत् । उपशम्यमानम्=निर्वाप्यमाणम् । निगीर्य्य= निपीय । गोपयित्वेति यावत् । प्रकृतानुरूपम्=स्थित्यनुकूलम् । दिल्लीश्वरम्, कथयित्वेत्यस्य कर्म ।

वक्षः=उरःस्थलम् । छुरिकाभि =कृपाणीभिः । विदारयिष्यते= भेत्स्यते । सद्यश्छिन्नेभ्यः=तत्कालकृत्तेभ्यः, ब्राह्मणकन्धराभ्यः= विप्रग्रीवाभ्यः, विगलताम्=पतताम्, रुधिराणाम्=लोहितानाम्, प्रवाहैः=धाराभिः । वसुमती=धरणी । स्नपयिष्यते, रक्तरञ्जिता विधास्यत इति यावत् । महामांसेन=गोमांसेन, दिग्धा=क्लिन्ना । द्रक्ष्यते=अवलोकिष्यते ।

प्रस्फुरिताभ्याम्=प्रचलद्भ्याम् । अरुणिमाञ्चिताभ्याम्=लौहित्यभूषिताभ्याम् । प्रस्फारिताभ्याम्=विकासिताभ्याम् । अचकथत्=कथयामास ।

स्थगित इव=निश्चेष्ट इव । चकित इव=साश्चर्य इव । ह्रीत इव= लज्जित इव । "ह्रीणह्रीतौ तु लज्जित" इत्यमरः । अवहेलित इव= तिरस्कृत इव । आक्षिप्त इव = निरस्त इव । पुत्तलीकृत इव=कृत्रिम-

क्षणं त्रिवली-मण्डिते महादेव-ललाटे क्षण च नासाग्रे दत्तदृष्टिः अवागिव स्तब्धवागिव मन्त्रित इव च तूष्णीमेव तस्थौ।

महा०—धर्म-मर्मज्ञ ! प्रार्थनामात्रमस्माद्दक्षाणाम्, कार्यस्वीकारे तिरस्कारे वा प्रभव एव प्रमाणम्।

यश०—पण्डित ! भवादृशा वा भवादृशानां मन्त्रणा वा तिरस्करणीया न भवन्ति। किन्तु स्वच्छेन हृदा स्वाभिप्रेतं प्रकटयति महाराष्ट्र-राजे, नीति-गर्भं सधर्मोपदेशं च मन्त्रयमाणे भवादृशे वाग्मिनि, अहमपि हृद्गतानां निज-विचाराणामाच्छादनमयुक्तं मन्ये-इति तथा कथितवानस्मि। शिवस्य सर्वोऽप्युद्देशो मह्य रोचते, परं भवानेव विचारयतु। प्रतिज्ञाविरुद्धाचरणं महता कार्यं वा ?

महा०—महाराज ! यं भवान् दिल्लीश्वर इति ब्रूते, तस्यैव राक्षसोचितानि कर्म्माणि दृश्यन्ताम्—आत्मनो जनन-पोषण-हेतु-भूतस्य वली-पलितस्य सक्रन्द-नयनजल-सिक्त-श्वेत-श्मश्रु-

---

मानवाकृतीकृत इव। त्रिवलीमण्डिते=रेखात्रयभूषिते। अवागिव= मूक इव। स्तब्धवाक्=जडीकृतभाषः। मन्त्रितः=मन्त्रैः कीलितः। तूष्णीम्=अभाषणपरः। किं वा भाषेत, तादृशीं भाषां निशम्य। भारतीयत्वाभिमानिभिः श्रोतव्येयमेकदा संस्कृतपण्डितवचनावली।

मन्त्रणा=विचारणा। तिरस्करणीयाः=अनादरणीयाः। भवादृशाः, मन्त्रणा-इत्युभयत्रान्वयार्थं तिरस्करणीया इत्यत्र पुस्त्रियोरेकशेषः। स्वच्छेन=पूतेन, स्वाभिप्रेतम्=निजाभिमतम्। नीतिगर्भम्=नयमिश्रम्। आच्छादनम्=गोपनम्। कार्यं वा ? नीचाना वेति शेषः। वास्तवं धर्म्यं पन्थानमविज्ञायापाततो निरूपयतीति स्पष्टमेव।

राक्षसोचितानि=राक्षसैरेव कर्तुमर्हाणि। जननस्य=उत्पत्तेः, पोषणस्य=रक्षणस्य च हेतुभूतस्य=कारणता गतस्य। वलीपलितस्य= जठरे भङ्गीरूपरेखया धावल्येन च युक्तस्य। "पलितं जरसा शौक्ल्यम्" इत्यमरः। क्रन्देन=रोदनेन, सह यन्नयनजलम्= यदस्रम्, तेन सिक्तौ श्वेतश्मश्रुकूर्चौ यस्य तस्य। साव-

कूर्चस्य पितुः सावहेलं निगृह्य कारागारे स्थापनं महत्तां कार्यं वा ? यैः सह जननी-करस्थ-मोदकमहमहमिकया समाच्छिद्य भुक्तम्, तात-तातेति-भाषणैः क्रीडा-कौतुकैश्च पूर्वं वयो व्यत्यायितम्; तेषामेव सोदर्याणां सच्छलं सदर्पं सक्रौर्यं च मारणम्, ईदृशीभिर्हिंसाभिरपि सोहण्डभावं लज्जानावहनञ्च महत्तां कार्यं वा ? केवलमार्य-स्वभावानामार्य-जनानां क्लेशनार्थमेव गो-हिंसनम्, प्रतिमा-खण्डनम्, दीन-हीन-सनातन-वैदिकधर्म-शरणानामेवास्माकं "जीव-जीवं" करग्रहणं महत्ता कार्यं वा ? वाराणस्यादि-देव-तीर्थेषु बलात् पातितानां मन्दिराणां भग्नावशेषैः कपाट-देहली-पाषाणेष्टकादि-प्रचयैरेव स्वमज्जित-रचना च महत्ता कार्यं वा ? अन्तस्थं किञ्चन पुरातनं वैरं सस्मृत्य खरतरयुद्धेष्वत्रभवत एव प्रेषणं भवदनिष्टचिन्तनञ्च महत्ता कार्यं वा ? यशस्वि-शिवयोर्यतर एव महावीरो महाराष्ट्र-युद्धेऽस्मिन् शयिष्यते, ततर एव गिरि-गुरु-महाभार इव भारतमहाचोरः प्रशममेष्यति-इति विचार्य्यैव श्रीमतोऽत्र प्रेषणं महत्तां कार्यं वा ?

हेलम्=सतिरस्कारम्। कारागारे=बन्दिगृहे। जननीकरस्थ-मोदकम्=मातृहस्तस्थमिष्टान्नम्। अहमहमिकया=अहंकारेण "अहमहमिका तु सा स्यात्परस्परं यो भवत्यहंकारः" इत्यमरः। क्रीडाकौतुकैः=लीलाकौतूहलैः। व्यत्यायितम्=यापितम्। सोदर्याणाम्=भ्रातृणाम्। सोद्दण्डभावम्=सक्रूरतम्। लज्जानावहनम्=त्रपाया अनङ्गीकरणम्। आर्यस्वभावानाम्=उदारप्रकृतीनाम्। जीवंजीव-करग्रहणम्=हिन्दुभ्यो "जजिया" नामकं राजस्वं गृह्यते स्मावरङ्गजीवनकाल इति नेतिवृत्तिविदां तिरोहितम्। कपाटस्य=अररस्य, देहल्याः=गृहावग्रहण्याः, पाषाणस्य=प्रस्तर-खण्डस्य, इष्टकादेश्च, प्रचयैः=समूहैः। स्वस्य मज्जितम्="मस्जिद्" इति ख्यातं यावनदेवस्थानम्, तस्य रचना। खरतरयुद्धेषु=भयङ्करतरसङ्ग्रामेषु। यतरः=ययोरेकः। गिरिगुरुमहाभार इव=हिमालयभार इव।

येषां दुराचाराणां दलनाय क्षमाऽपि क्षमां त्यजति, समुद्रोऽपि मर्य्यादामुल्लङ्घते, भगवान्नारायणोऽपि च करुणां जहाति; तेषां दुर्वृत्तानां दण्डनं भवादृशानां महाराजानामुचितम्, उत प्रतिज्ञा-पालन-व्याजेन महापातकवर्द्धनम् ? इति स्वयमेव विविनक्तु श्रीमान् !!

यश०—[किञ्चिद्विचिन्त्य] दूतवर ! तव वाग्मिता मां बलेन वाचंयमं विधत्ते, किन्तु शिवस्य वञ्चकता कर्ण-परम्परयाऽस्मद्देशेऽपि प्रतिगृहं प्रसृताऽस्ति । तत् कथमहमेतस्य प्रस्तावेषु विश्वसिमि ?

महा०—[सक्रोधमिव] महाराज ! महाराज !! खलु खलु प्रोच्यैवम् !!! मा स्म सनातन-धर्मैक-शरणं महाराष्ट्रराजमेवं मिथ्या-कलङ्क-पङ्केनाङ्कय । को ब्राह्मणः, क्षत्रियः, वैश्यः, शूद्रो वा तेन वञ्चितः ? म्लेच्छेष्वेव वा सज्जनः कोऽवमानित. ? अपि तु धर्म-मर्यादा-घस्मराणामपि प्रत्यर्थिनां व्यर्थहिंसा सदैव एतेन निवार्यते । अहह ! देव ! न शोभते युष्मादृक्षाणां मुखादेवं कलङ्क-नम्—इत्युक्तवत एव महादेव-पण्डितस्य चक्षुषी वाष्प-बिन्दु-द्वयमुदगिरताम् । महादेवश्च पटप्रान्तेन प्रामार्ट् ।

क्षमा=पृथिवी । क्षमाम्=क्षान्तिम् । मर्यादाम्=वेलाम् । प्रतिज्ञा-पालन-व्याजेन=स्वीकृत-निर्वहण-च्छद्मना । विविनक्तु=विचारयतु । न धर्मस्य वास्तविक गौरव लाघवञ्च त्वया विचारितमिति मतम् ।

वाग्मिता=सती भाषणशैली । वाचंयमम्=मौनिनम् । वञ्चकता=कपटपटुता । अस्मद्देशेऽपि=राजपुत्रस्थानेऽपि । सकलभारतस्यैकदेश-त्वकल्पना न तेषामासीदित्यपि पारस्परिककलहकारणम् ।

सक्रोधमिव, सत्यपि क्रोधकारणे नीतिनिपुणतया न क्रोध वस्तुतोऽ-ङ्गीकृतवानितीवव्यंग्यम् । मिथ्याकलङ्कपङ्केन=असत्यापवादकर्दमेन । अङ्कय=चिह्नितं कुरु । धर्ममर्यादाघस्मराणाम्=सनातनसीमाविध्व-सिनाम् । वाष्पबिन्दुद्वयम्=अश्रुपृषद्द्वयम्, उदगिरताम्=बहिर्निरसा-रयताम् । पटप्रान्तेन=वसनकोणेन । प्रामार्ट्=परिमार्जितवान् ।

तदालोक्याकस्मादेव मरुराजस्यापि प्रेम-पारावार-पूराप्लुतमिव हृदयम्, वाष्पोद्गारेण सिक्तमिव पक्ष्म-पङ्क्ति-युगलम्, पुलकोदञ्चित-रोम-राजिभिः कण्टकितमिव शरीरम्, उत्साहसुधासारैश्च मुदितमिव मनः समजनि ।

ततश्च महाराज उन्नतं वीरासनेन स्थित्वा, "पण्डित ! क्षम्यताम्, अद्यावधि मित्रं मे महाराष्ट्रराजः, साम्प्रतमहं तमालिलिङ्क्षिपामि, तत् सपदि दर्शय तं क्षत्रिय-कुलावतंसम्"—इति भाषितवान् ।

महादेवस्तु तदाकर्ण्य, व्यजनिनो मुखमवलोक्य, महाराजं चावलोक्य, शनैः प्रोक्तवान् यद् "अचिरादेव शिवः समुपस्थास्यते श्रीचरणयोरन्तिके" । महाराजस्तु तृतीयेनाश्रवणीयं किञ्चन वचनीयमवशिष्यते इत्याकलय्य, व्यजनिनं भ्रू-सञ्ज्ञया बहिर्यापयित्वा, पुनर्महादेव-पण्डितमपृच्छत्—"कथय, कथय, कदाऽहं प्रियस्य शिवराजस्य परिष्वङ्गेन म्लेच्छ-पक्षावलम्बन-ग्लानि-ग्लपितमात्मानं मोदयिष्ये—" इति ।

मरुराजस्य=यशस्विसिंहस्य । प्रेमपारावारपूराप्लुतमिव=स्नेह-समुद्र-प्रवाह-ब्रुडितमिव । वाष्पोद्गारेण=अश्रुप्रवाहेण । पक्ष्मपङ्क्ति-युगलम्=नेत्र-लोमराजि-द्वयम् । पुलकोदञ्चित-रोमराजिभिः= हर्षोच्छ्रितलोमावलिभिः । उत्साहसुधासारैः=उत्साहपीयूषसम्पातैः ।

उन्नतम्=उच्चैः, क्रियाविशेषणम् । वीरासनेन=कल्पालिस्थितिप्रकार-विशेषेण । आलिलिङ्क्षिपामि=आलिंगितुमिच्छामि । सपदि=शीघ्रम् ।

व्यजनिनः = व्यजनचालकस्य । उभयमुखनिरीक्षणेन व्यजनी श्रोष्यतीति न वच्मि किमपीति सूचितवान् । अश्रवणीयम् = अश्रोतव्यम् । वचनीयम् = वक्तव्यम् । यापयित्वा = प्रापय्य । परिष्वङ्गेन = आलिङ्गनेन । म्लेच्छानाम्=यवनानाम्, पक्षावलम्बनेन=पक्षग्रहणेन, या ग्लानि = घृणाविशेष, तया ग्लपितम् = क्षीणहर्षम् । मोदयिष्ये = हर्षयिष्ये ।

अथ महादेवस्तु नम्रीभूय, को जानीते किमिव तस्य कर्णे अचकथत्। यशस्विसिंहश्च तदाकर्ण्य सचकितं सम्प्रफुल्लनयनं द्विस्त्रिश्चाऽऽमस्तकमापादं च महादेवं निपुणं निरीक्ष्य ससम्भ्रममुत्थाय, तथैवोत्थितं महादेवं बाहू प्रसार्य सानन्दं परिपस्वजे। द्विस्त्रिर्गाढमालिङ्ग्य च स्वाधिष्ठितोन्नत-तूलिकास्तरणे उपधान-समीपे महादेवेन सहोपविश्य मुहूर्त्तं यावत् सगोपनं शनैः शनैर्बहु संललाप। तावत् निशीथ-समय-सूचको भेरीनादः समश्रावि। महादेवस्तु समाकर्ण्य तत् प्रतिनिविवृत्सुरिवोदतिष्ठत्, सपदि सप्रश्रयं महाराजं न्यवेदयच्च—करुणाकर! श्वो रात्रौ पुण्यनगरात् कियत्क्रोशान्तराले एव केनापि व्याजेन स्थीयतां महाराजेन।

मरुराजः समपृच्छत्—तत् किं पुण्यनगरमाचिक्रंसते भवान् श्वः?

महा०—औद्वाहिकी वरयात्रा भवित्री।

यश०—बाढम्! अहमपि श्वो वाताहत-भीमा-शीकर-शीतलीकृते क्रमुक-कानने मृगयाभिरात्मानं विनुनोदयिषामि।

नम्रीभूय तस्य कर्णेऽचकथदिति सम्बन्धः। किमचकथत् तत्राह-को जानीते किमिवेति—भाषणचातुर्यं शिवस्य ग्रन्थकर्तुश्च।

सम्प्रफुल्लनयनम्=सविकसितनेत्रम्। आमस्तकम्=शिरःपर्यन्तम्। आपादम्=चरणमारभ्य। ससम्भ्रमम्=सशीघ्रतम्। परिपस्वजे=आलिलिंग। द्विः=वारद्वयम्। त्रिः=वारत्रयम्। सुजन्ते इमे। स्वेनाधिष्ठिते, उन्नते=उच्चे, तूलिकास्तरणे=तूलवद्विष्टरे। उपधानसमीपे=उपबर्हान्तिके। मुहूर्त्तम्=क्षणम्। संललाप=सम्यगालापं कृतवान्। प्रतिनिविवृत्सुः=प्रतिनिवर्तितुमिच्छुः। सप्रश्रयम्=सविनयम्।

आचिक्रंसते=आक्रान्तुमिच्छति, औद्वाहिकी=विवाहसम्बन्धिनी, वरयात्रा "बरात" इत्यपभ्रंशीभूतो लोके।

वाताहतायाः=वायुसञ्चालितायाः, भीमायाः=तन्नाम्न्या नद्याः, शीकरैः=जलकणैः, शीतलीकृते क्रमुककानने=पूगविपिने। विनुनोदयिषामि=विनोदयितुमिच्छामि।

महा०—आम् ! अतिसमीचीनमद ।

यश०—[मन्दं स्मयमानो महादेवमुखमवलोक्य] धन्योऽसि पण्डित ! खरतर-फक्किकासु विप्रतिपत्तिषु च ते महाभ्यासः ।

महा०—[कन्धरां नमयित्वा स्मित्वा च] असंख्यावच्छेदकताऽनल्प-कल्पन-कल्पतरौ तर्कशास्त्रे एव मम महान् अभ्यासः, येन खड्गा आस्माकीना अवच्छेदका, दुरात्मानो यवन-म्लेच्छाश्च अवच्छेद्या इति शिक्षितवानस्मि ।

यश०—किन्तु च्छात्रतां चिरं त्यक्तेति तद्विद्या-शैथिल्यमपि सम्भावयामीति ।

महा०—महाराज ! भवत्कृपया छात्रतां त्यक्त्वा अध्यापकतामङ्गीकृतवानस्मि । साम्प्रतं परस्सहस्रा मम च्छात्रा एव विवादे विजयमासादयितुमलम् । चिरत्यक्ताध्ययनस्यापि मे विद्यया दिल्लीश्वरोऽपि विस्मितवानस्ति ।

अथ द्वावपि हसन्तौ मन्दमन्दमालपन्तौ द्वारपर्य्यन्तमायातौ । निवर्त्तमानं महादेवमनुमन्यमानः श्रीमान् मरुधराधीशः पुनः प्रोवाच- "द्रष्टव्यम्, युद्धविषये यथाऽऽलापो जातस्तथैव विधेयम् ।"

अतिसमीचीनम्=अतिशोभनम् । अद=मृगयाविनोदनम् ।

खरतरफक्किकासु=कठोरपङ्क्तिषु । विप्रतिपत्तिषु = विरुद्धकोटिद्वयोपस्थापकेषु शब्देषु विपत्तिषु च । असङ्ख्यानाम्=अनेकासाम्, अवच्छेदकतानाम्=विशेषकनिष्ठधर्माणाम् खण्डकतानां वा, अनल्पस्य= अत्यधिकस्य, कल्पनस्य=आविष्करणस्य, कल्पतरौ=कल्पवृक्षे, भूरिकल्पक इति भावः, तर्कशास्त्रे=न्यायशास्त्र इत्यर्थः । अवच्छेदका =खण्डका । अवच्छेद्या. = खण्ड्याः ।

छात्रता = छात्रस्य भावः । पराधीनतेति तत्त्वम् ।

अध्यापकताम्=शासनकारितां स्वतन्त्रताञ्च ।

विवादे=विरुद्धे वादे, शास्त्रार्थे सङ्ग्रामे च ।

महा०—आम्, श्रीमन्! तथैव विधातुं विनिवेदयिष्यामि तत्र भवन्तम्।

यश०—आ! एवम्, विस्मृतवानस्मि। तथैव विधातुं महाराष्ट्र-राष्ट्र-सृष्टि-परमेष्ठी निवेदनीय श्रीमान् शिववीर.।

ततो बाढमित्यभिदधद् महादेवः प्रचलितः, मरु-मेदिनी-परिवृढोऽपि च किञ्चित् स्मयमानोऽन्तः प्रविवेश।

इति षष्ठो निश्वासः।



महाराष्ट्राणा राष्ट्रस्य सृष्टेः=उत्पत्तेः, परमेष्ठी=पितामहः। मरुमेदिनीपरिवृढः=मारवधराधिनाथः। अभिदधत्=कथयन्, अन्तः=मध्ये, उपकार्याया इति शेषः।

इति श्रीशिवराजविजयवैजयन्त्या षष्ठनिश्वासविवरणम्।



अयं रेवा-कुञ्जः कुसुमशर-सेवा-समुचितः
समीरोऽयं वेला-दर-विदलदेला परिमल. ।
इय प्रावृड् धन्या नव जलद-विन्यास-चतुरा
पराधीनं चेतः सखि ! किमपि कर्तुं मृगयते ॥

—कविरत्नभानुदत्तः

सप्तमे निश्वासे सौवर्ण्या भविष्यतः सम्बन्धस्य प्रथमपरिच्छेदरूपमनुराग-मौत्सुक्यञ्च वर्णयिष्यति, तदुपक्षिपति कविरत्नभानुदत्तवचसा–अयं रेवाकुञ्ज इति। अयम् = पुरो दृश्यमानः। रेवायाः = एतन्नामिकायास्तरंगिण्याः, कुञ्जः = लतादिपिहितगृहविशेषः। एतेन परकीयचक्षुरविषयत्वसूचनद्वारो-द्दीपकत्व ध्वनितम्। विशिनष्टि कुञ्जम् कुसुमानि = पुष्पाणि, शराः = बाणा यस्य मन्मथस्य। सेवायै=उपासनायै, समुचित = अत्यन्तमुपयुक्तः। रहसि हि सेविता देवा मनोऽभिलषितमानन्दं समुपस्थापयन्तीति देवप्रियजन-प्रतीतिः। वस्तुतस्तु कुसुमशरसेवा पुङ्कर्तृक कामिनासन्तर्पणमेव, स्त्रीकर्तृकं च कामुकसन्तर्पणमेवेति वेदितव्यम्। तदुत्थश्चानन्दो ब्रह्मानन्दसहोदर इति नाविदितचर विदितवेदितव्यानाम्। वेलायाम् = तटे, दरम् = ईषत्, विदलन्तीनाम् = विकसन्तीनाम्, एलानाम् = चन्द्रबालानाम्, परि-मल. = सौगन्ध्यम्, यस्मिन् तादृशः। समीर = पवनः। अस्याप्युद्दीपकत्वं स्फुटमेव। इयम् = एषा। प्रावृट्=वर्षाकालः। धन्या = रमणीया। कथम्भूता प्रावृडित्याह–नवानाम् = नवीनानाम्, जलदानाम्=वारिदा-नाम्, विन्यासेषु=विभिन्नरूपेणोपस्थापनेषु, चतुरा=दक्षा। सखि != हे आलि ! एतेन हार्दिकभावप्रकटीकरणयोग्यत्वं ध्वनितम्। चेत.=मानसम्। पराधीनम् = परस्य मनसैवेष्टस्य, आयत्तीकृतम्। किमपि = अनिर्वाच्यम्। कर्तुम् = विधातुम्। मृगयते = अन्विष्यति। विरहिण्या उक्तिः। अनुप्रासः।

"गज गर्ज क्षणं मूढ ।"

—चण्डी

क्रामन्त्यः क्षत-कोमलाङ्गुलि-गलद्रक्तैःसदर्भाः स्थलीः
पादैः पातित-यावकैरिव गलद्बाष्पाम्बु-धौताननाः ।
भीता भर्तृ-करावलम्बित करास्त्वद्वैरि-नार्योऽधुना
दावाग्नि परितो भ्रमन्ति पुनरप्युद्यद्विवाहा इव ॥

—स्फुटकम्

अत्रैव निश्वासे शास्तिखानस्य पराजयमपि दिदर्शयिषुरिति सप्तशतीसं-गृहीतं महामायाभिहितं मन्त्रैकखण्डमपि स्मारयति—"गर्ज गर्ज क्षणं मूढ ।" तत्र महिषासुरो वाच्यः ।

पराजिते शास्तिखाने तदीयवनितानां क्रन्दनादिकमपीहैव वर्णनीयमिति तदप्युपक्षिपति—क्रामन्त्य = इति । कवेरुक्तिः कमपि नरपतिं प्रति । अधुना=सम्प्रति । त्वद्वैरिनार्यः = त्वदीयशत्रुवनिताः । पुनरपि=भूयो-ऽपि । उद्यद्विवाहा इव = समुपस्थितविवाहा इव । दावाग्निम् = वनाग्निम् । परितः = सर्वत्र । भ्रमन्ति, लाजहोमे वह्निप्रदक्षिणा प्रसिद्धा साङ्गुष्ठहस्तग्रह-णञ्च । वनिता विशिनष्टि क्षताभ्यः=कुशादिना विदारिताभ्यः, कोमलाभ्यः, अङ्गुलिभ्यः = चरणजाभ्यः, गलत्=पतत्, रक्तम् = लोहित, येषु तैः । पादैः = चरणैः । उत्प्रेक्षते—पातितयावकैरिव = लिप्तालक्तकैरिव । सदर्भाः = कुशकाशमयीः । स्थलीः = स्थण्डिलभूमीः । होमेऽपि वेदिकाम-भितः कुशाः प्रस्तीर्यन्त इति न विस्मर्त्तव्यम् । क्रामन्त्यः=लंघयन्त्यः । गलता = प्रच्यवता, वाष्पाम्बुना=अस्रजलेन, धौतम्=प्रक्षालितम्, आननम्=मुखं यासां ताः । होमकाले धूमव्याप्तदृष्टित्वाद्रोदनमिह च खेदात् । भीताः=भयाश्रयीभूताः । इह रिपोस्तत्र च वरादिगुरुजनादिति ध्येयम् । भर्तृणाम् = पतीनाम्, करेषु=हस्तेषु, अवलम्बिताः, करा यासां ताः ।

अहह ! चिरान्नाय भ्रान्तमस्मन्मनः पुण्यनगरान्धतमसवीथिकासु । क्षणं तोरणदुर्गोपत्यकोद्यान-भ्रमणैरात्मा विनोदनीय इति दृश्यतां कीदृश आनन्द-सन्दोहोऽत्रेति । तोरण-दुर्ग-समीपे एव सुदृढं सुन्दरं मारुति-मन्दिरम्, ततोऽपि पूर्वतः क्रोशार्द्धं यावद्विस्तृतं रमणीयमुद्यानम् । अर्द्धव्यतीतोऽयमाषाढः, कदाचिज्जलदपटलाच्छन्नम्, कर्हिचिच्च निर्मेघमपि सान्द्र-नीलं गगनतलमालोक्यते । क्वचिन्मयूर-नृत्यानि, क्वचिच्चातक-विरावाः, क्वचिज्जल-प्रवाहाः, क्वचिद्धारासाराः, क्वचनेन्द्रगोप-संसर्गाधिक-मनोहराणि शाद्वलानि प्रतिभान्ति । पञ्चषाणि दिनानि चण्डकर-करैः संसारं सन्ताप्य अद्य कैश्चिन्मेघ-खण्डैः किमपि व्याप्तं नभः—इत्युष्णता किञ्चित् कृशिमानमालम्बते ।

अहह !, कवेरुक्तिः । ऐदंयुगीनेयमेका । चिरान्नाय=चिरम् । अव्ययम् । पुण्यनगरस्य,अन्धतमसवीथिकासु=गाढान्धकारव्याप्तलघुपथेषु । तोरणदुर्गस्य, उपत्यकायाम्=अद्रेरासन्नभूमौ, उद्यानस्य=वाटिकायाः, भ्रमणैः=पर्यटनैः । आत्मा=अन्तःकरणम् । विनोदनीयः=आनन्दयितव्यः । आनन्द-सन्दोह=आह्लादसमूहः । सुदृढम्=सुघटितम्, त्रोटयितुमनर्हमिति यावत् ।

विस्तृतम्=विस्तीर्णम् । आषाढः=शुचिः,मासविशेषः । जलदपटलाच्छन्नम्=मेघसमूहप्रावृतम् । सान्द्रनीलम्=घनीभूतनीलम्, अतिनीलम् । चातकस्य विरावाः=शब्दाः । धारासाराः=धाराप्रपाताः । इन्द्रगोपानाम्=वर्षाकालिकरक्तवर्णकीटविशेषाणाम्, संसर्गेण=सम्पर्केण, अधिक-मनोहराणि=नितान्तरम्याणि । शाद्वलानि=शादवन्ति क्षेत्राणि । "नडशादाड्ड्वलच्" । "शाद्वलः शादहरित" इत्यमरः । प्रतिभान्ति=शोभन्ते । चण्डकरकरैः=भास्करदीधितिभिः । कृशिमानम्=कृशताम् । "पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा" । "रऋतो हलादेर्लघोः" ।

मारुतिमन्दिरात् किञ्चिद् दूरं वाटिकामध्ये सुदृढौ द्वौ स्तम्भौ, तयोरुपरि तिर्य्यग् विन्यस्तो दारु-स्तम्भः, एतन्मध्यत एव विलम्बमानं शृङ्खला-युग-द्वयम्, एतत्प्रान्ते च विलम्बमाना प्रतिकोणासक्तैक-शृङ्खला सुरुचिरा पीठिकेति सुभगेयं दोलिका। सर्वतोऽप्यस्यां शिल्पि-शिल्प-चमत्कारः। विविधा लताश्च स्तम्भौ वेष्टयित्वा पारस्परिक-सर्वाङ्गीण-संश्लेषेणेव प्रफुल्लास्तथाऽवतिष्ठन्ते; यथा विविध-कुसुममयी भ्रमद्-भ्रमर-निकर-झङ्कृता दोलिकेयं दर्शनमात्रेण चक्षुष्मतां मनो हरति। एतद्दोलिकाधिष्ठित-शाद्वलस्य मध्ये मध्ये श्वेत-श्यामादि-पाषाण-निर्मिता रमणीया आसन्द्यः, प्रत्यासन्दि चोभयतः प्रफुल्लसुमाः क्षुपाः, प्रतिक्षुपमालवालेष्वपि सकोरका विविधा अङ्कुराः शोभन्ते। वर्तुल-क्षेत्रं चैतत् परितः

सुदृढौ=सुपुष्टौ। तिर्य्यक्=तिरश्चीनः। "पट्ट" इति हिन्दी। दारु-स्तम्भः=काष्ठस्थूणा। शृङ्खलायुगयोर्द्वयम्, द्वे द्वे शृंखले स्थानद्वय इति भावः। एतत्प्रान्ते=शृंखलान्तभागे। विलम्बमाना=तत्साहचर्येण निम्नभागे स्थिता। कोणंकोणं प्रतिकोणम्, आसक्ता=लग्ना एका शृंखला यस्याः सा। सुभगा=शोभना। दोलिका=क्रीडार्थदोलायन्त्रम्। शिल्पिशिल्प-चमत्कारः=कारुनिर्माणकौशलम्। पारस्परिकेण=अन्योन्यजातेन, सर्वाङ्गीणेन=निखिलशरीरभवेन, सर्वविधेनेति यावत्, संश्लेषेण=ससर्गेण। प्रफुल्लाः=पूर्णतया विकसिताः। भ्रमताम्=सञ्चलताम्, भ्रमराणा निकरैः झङ्कृता=निनादिता। चक्षुष्मताम्=वास्तविकरूपेण द्रष्टुं शक्तिमताम्, रसिकानामिति यावत्। अरसिकास्तु काष्ठकुड्याश्मसन्निभाः सत्यपि नेत्रद्वये किमवलोकयेयुः। एतया दोलिकयाऽधिष्ठितस्य शाद्वलस्य=तृणहरितस्य। आसन्द्यः=आसनविशेषाः। "कुर्सी" इति हिन्दी। प्रफुल्लानि सुमानि=कुसुमानि येषु ते क्षुपाः=ह्रस्वशाखा द्रुमाः। आलवालेषु=जलाधारेषु वृक्ष परितो रचितेषु। सकोरकाः=सकलिकाः। अङ्कुराः=नूतनोद्भिदः। वर्त्तुलं चैतत् क्षेत्रम् =

कुसुमिता कदम्बकुटाः, तेषां चकमन्तरा महाफला माकन्द-द्रुमाः, मध्ये मध्ये च विहित-पार्श्वस्थ-पादपाश्लेषा मन्दमन्दमनिलालोला लता लसन्ति ।

अमू दोला समवयस्कास्तिस्रश्चुम्बितयौवना सुन्दर्यः समारूढा । एका हस्ताभ्यां शृङ्खले धृत्वा मध्ये समुपविष्टा, इतरे च धृतशृङ्खले अभितः समुत्थिते स्वोपवेशाघातैर्दोला दोलयतः ।

वासांस्यासां महाराष्ट्र-कन्योचितानि अतिरमणीयानि । ये एते उत्थायमुत्थायं दोला चालयतः, तयोर्दक्षतो वामतश्च विभज्य प्रसाधिताः केशाः, पीत-रक्त-कौशेय-सूत्र-ग्रन्थन-पाटवाङ्किता कबरी, विविध-मणि-जटित-बालपाश्या, कनककुसुमालंकृतं शिरः, सुवर्ण-

---

गोलस्थलम् । परित'=सर्वत' । तद्योगे द्वितीया । कदम्बकुटाः = कदम्बवृक्षाः । महाफला. = बहुफलमयाः । माकन्दद्रुमा' = आम्रवृक्षाः । विहित-पार्श्वस्थ-पादपाश्लेषा.=कृतासन्नवृक्षसम्पर्का ।अनिलेन=वायुना, आलोलाः=ईषच्चञ्चलाः । लता = प्रततयः । लसन्ति = शोभन्ते । द्रुमाणां लतानाञ्च प्रस्तुते सम्पर्के समभिधीयमानेऽप्रस्तुताना नायकनायिकानामालिङ्गनादिप्रतीतेः समासोक्तिः ।

समम्=समानम्, वयः = अवस्था यासां ताः । चुम्बितम् = लब्धम्, यौवनम्=तारुण्यं याभिस्ताः । सुन्दर्य'=अभिरामाः । स्वोपवेशाघातै'=मध्ये मध्ये समुपवेशेन जातैस्ताडनैः, दोलयत = चालयतः ।

महाराष्ट्रकन्योचितानि = महाराष्ट्रीयबालिकार्हाणि । ये एते, "ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्" इति प्रगृह्यता "प्लुतप्रगृह्या" इत्यनेन प्रकृतिभावश्च । उत्थायमुत्थायम्=ऊर्ध्वं स्थित्वा स्थित्वा । दक्षतः = दक्षिणतः । प्रसाधिता.=विरचिताः । पीतञ्च तद्रक्तं पीतरक्तम्, तच्च कौशेयसूत्रम्=पट्टसूत्रम्, तस्य ग्रन्थनपाटवेन=गुम्फनचातुर्येण, अङ्किता= भूषिता "कबरी = केशवेशः" । एवमेवामरः । विविधमणिभि. = अनेकप्रकाररत्नैः, जटिता = मिलिता, बालपाश्या = सीमन्तभूषणम् । 'कनककुसुमै. = सौवर्णपुष्पैः, अलंकृतम् = भूषितम् । शिर. = शीर्षम् ।

सूत्र-वेष्टनाविष्कृत-बहुल-सुषमा कुण्डलीकृत्य वेष्टिता वेणी।

सिन्दूर-रेखाङ्किता कबरी-मध्य-रेखा, मौक्तिक-गुच्छाङ्कित-सुवर्णाभरणालङ्कृता नासा। आरक्त-कौशेय-कूर्पासक-समाच्छन्नमारब्ध-कुचोन्नति-महोत्सवमवलोचक-नयन-वशीकरणं वक्षः। कर्णिका-युगल-चोचुम्ब्यमानं दोलन-श्रमोद्भूत-स्वेद-कणिका-पटल-परिलसितं समीर-सरणान्दोलित-चूर्ण-कुन्तल-वीजितं कपोल-युगलम्। सौवर्ण-मौक्तिक-राजि-राजित-ग्रैवेयकाङ्किता कम्बुग्रीवा, दोला-

सुवर्णसूत्रवेष्टनेन=हिरण्यतन्तुवलनेन, आविष्कृता=प्रकटीकृता, बहुला=प्रचुरा, सुषमा=शोभा, यस्याः सा। कुण्डलीकृत्य=कुण्डलाकृतिं प्रापय्य, वेष्टिता=जूटिता। वेणी=केशबन्धनम्। सिन्दूररेखया=नागोद्भव-लेखया, अङ्किता=लिखिता। कबरीमध्यरेखा=केशवेशान्तरालगत-लेखा। मौक्तिकगुच्छेन=रत्नस्तबकेन, अङ्कितम्=युतम्, यत् सुवर्णाभरणम्=हिरण्यरचितमाभूषणम्, तेन, अलङ्कृता=मण्डिता। नासा=नासिका। आरक्तेन=समन्ततो रक्तवर्णेन, कौशेयकूर्पासकेन=पट्टवस्त्रचोलकेन, समाच्छन्नम्=नितान्तगोपितम्। आरब्धः=उपक्रान्तः, कुचयोः=स्तनयोः, उन्नतिमहोत्सवः=उद्गमनोद्भवः, यस्मिंस्तत्। अवलोचकानाम्=द्रष्टॄणाम्, नयनानाम्=नेत्राणाम्, वशीकरणम्=आयत्तीकरणम्। वक्षः=उरस्थलम्। कर्णिकायुगलेन=कर्णभूषणद्वयेन, "कर्णिका कर्णभूषण" इति हैम०, चोचुम्ब्यमानम्=वारं वारं स्पृश्यमानम्। दोलनश्रमेण=दोलाखेलनश्रान्त्या, उद्भूतानाम्=जातानाम्, स्वेदकणिकानाम्=घर्मजलबिन्दूनाम्, पटलेन=समूहेन, परितः, लसितम्=शोभितम्। समीरसरणेन=वायुचलनेन, आन्दोलितैः=सञ्चलितैः, चूर्णकुन्तलैः=अलकैः। "अलकाश्चूर्णकुन्तला" इत्यमरः। वीजितम्=कृतव्यजनम्, सेवितमिति यावत्। सौवर्णानाम्=सुवर्णतन्तूनाम्, मौक्तिकानाम्=मणीनाञ्च। राजिभिः=श्रेणिभिः, राजितम्=लसितम्, यद् ग्रीवाया भव ग्रैवेयकम्=कण्ठाभरणम्, "कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः श्वास्यलङ्कारेष्वि"ति ढकञ्। तेन, अङ्किता=मण्डिता। कम्बुग्रीवा=

दोलन-दोदुल्यमान-ललित-ललन्तिका-लालितमुरः, पञ्च-कच्छ-भङ्ग्या परिहितं हरितं परिधानम्, हंसक-काञ्ची-कङ्कणादि-मण्डितान्यङ्गानि। या चेयं मध्यतः समुपविष्टा सा तदपेक्षयाऽप्यल्पं वयो जुपमाणा, धम्मिल्ल-समुल्लसन्मूर्द्धभागा, कुङ्कुम-बिन्दु-सुन्दर-ललाटा, कज्जलाञ्जन-रञ्जित-लोचन-युगला, नागवल्ली-दल-रसना-संरक्ताधर-विवर्द्धित-रसिकजन-पिपासा, वृन्ताक-श्यामा, कौशेय-

शङ्खाकारा शिरोधरा। दोलादोलनेन=दोलिकाहिल्लोलनेन, दोदुल्यमानया=वार वार चलन्त्या, ललितया=शोभनया, ललन्तिकया=आनाभिलम्बितया कण्ठिकया, लालितम्=शोभितम्। उरः=वक्षः। पञ्चानाम्=पञ्चसङ्ख्याकानाम्, कच्छानाम्=वस्त्रग्रन्थानाम्, भङ्ग्या=प्रकारेण। महाराष्ट्रदेशीया परिधानीय तथा परिदधति यथा पञ्च कच्छा जायन्त इति तात्पर्यम्। तत्र पश्चाद्भागे कच्छमेकं त्रिधा बध्नन्तीति त्रयम्, नीवी तुरीया, उपरिधारणीयभाग स्कन्धप्रदेशेनाऽऽनीय बध्नन्तीति पञ्चतयीत्यनुभवरसिकाः। परिहितम्=धारितम्। हरितम्=हरिद्वर्णम्। परिधानम्=वासः। हंसकेन=नूपुरेण, काञ्च्या=रशनया, कङ्कणादिभिः=वलयादिभिश्च, मण्डितानि=भूषितानि, अङ्गानि=चरणाद्यवयवाः। तदपेक्षया=तयोर्दोलाचालिकयोरपेक्षया। जुपमाणा=सेवमाना। धम्मिल्लेन=संयतकेशव्रातेन, समुल्लसन्=शोभमानः, मूर्धभागो यस्याः सा। "धम्मिल्लः संयताः कचा" इत्यमरः। कुङ्कुमबिन्दुना सुन्दरम्=मनोहरम्, ललाटम्=गोधिर्यस्याः सा। "ललाटमलिकं गोधिः" इत्यमरः। कज्जलाञ्जनेन=कज्जलविन्यासेन, रञ्जित लोचनयुगलं यस्याः सा। नागवल्लीदलस्य=ताम्बूलीपत्रस्य, रसनेन=आस्वादनेन, आ=समन्तात्। संरक्ताभ्याम्=अतिलोहिताभ्याम्, अधराभ्याम्=दन्तच्छदाभ्याम्, विवर्द्धिता=वृद्धिं नीता, रसिकजनपिपासा यया सा। स्वभावतो रक्तयोरोष्ठयोस्ताम्बूलभक्षणेनातितरां लौहित्यमिति विशेषणसार्थक्यम्। असंरक्तेति छेदे विपरीतार्थाभास इति "ताम्बूलीदलरसना"—इति पदस्य पार्थक्यमाश्रित्य व्याचक्षणास्तु भिक्षुकागमनानुचिन्तया स्यात्मनधिश्रयणपटवो बटवो न कस्य नमस्याः? कञ्चुकी विशिनष्टि—वृन्ताकश्यामाम्=भण्टाकीकृष्णाम् "बैगनी रंग की" इति हिन्दी।

सूत्र-रचितां समावृतार्द्धबाहुं सुवर्णसूत्र-रचित-लता-वितान-रोचित-प्रान्तां कञ्चुकीमभिनव-समासादित-मांसल-भावेन वक्षसा बिभ्रती, दोला-दोलन-वेग-भङ्ग-परवशतया उच्छालमुच्छालमुरसि निपतन्तीं नक्षत्रमालां कुच-प्रदेशाधस्तात् परिवेष्टित-शोण-चैलाञ्चलापातिनीमपि तदुपरिभागे प्रत्यक्षतो दरीदृश्यमान-पूर्वार्द्धां धारयन्ती, सुवर्ण-विजित्वर-वर्णा, मूर्तिमतीव शोभा, धारितदेहेव प्रेम-परम्परा, कलितावतारेव च रतिरासीत्।

"वृन्ताके स्त्री तु वार्त्ताकुर्भण्टाकी भाण्टिकाऽपि चे"ति निघण्टुः। कौशेयसूत्ररचिताम् = पट्टतन्तुनिर्मिताम्। समावृतम्=समाच्छन्नम्, अर्धं बाह्वोर्यया ताम्। अर्धबाहुकामिति यावत्। "अधबहिया" इति हिन्दी। सुवर्णसूत्रैः=हैरण्यतन्तुभिः, "जरी" इति हिन्दी, रचितानाम्=निर्मितानाम्, लतानाम्=वल्लीनाम्, वितानेन=विस्तारेण, रोचितः=भ्राजमानः, प्रान्तः=कोणभागो यस्यास्ताम्। कीदृशेन वक्षसा, तत्राह—अभिनवः=नूतनः, अभिनवमिति समासादनक्रियाविशेषणं वा। समासादित=प्राप्तः, मांसलभावः=स्थूलता येन तेन। समुत्पद्यमानकुचौन्नत्यवतेति यावत्। नक्षत्रमाला धारयन्तीति बालिकाविशेषणम्। कीदृशीं नक्षत्रमालाम्, तत्राह दोलादोलनेन=दोलायन्त्रहिल्लोलनेन, यो वेगभङ्गः=जवरोधः, तत्परवशतया=तदायत्ततया। उच्छालमुच्छालम्=उच्छाल्योच्छाल्य। "उछल उछल कर" इति हिन्दी। उरसि = वक्षसि। निपतन्तीम् = स्खलन्तीम्। नक्षत्रमालाम् = सप्तविंशतिमौक्तिकमयीं हारयष्टिकाम् "नक्षत्रमाला स्यात्सप्तविंशतिमौक्तिकैः" इत्यमरः। कुचप्रदेशाधस्तात् = स्तनतलाधोभागात्। परिवेष्टितम्=वलितम्, यत् शोणम्=रक्तम्, चैलम् = वसनम्, तस्य, अञ्चले=कोणे, आपातिनीम्=पतनशीलाम्। तदुपरिभागे=चैलाञ्चलोपरिप्रदेशे। प्रत्यक्षतो दरीदृश्यमानम्=भृशं समवलोक्यमानम्, पूर्वार्धं यस्यास्ताम्। धारयन्ती = बिभ्रती। सुवर्णस्य विजित्वरः=जयनशीलः, वर्णो यस्याः सा। अतिगौरीत्यर्थः। मूर्तिमती=रूपधारिणी। धारितदेहा=गृहीतशरीरा। कलितावतारा=कृतावतरणा। रतिः = कामपत्नी।

ञ्ने, शनैर्दोलाया वेगो ववृधे। एकतो गच्छन्ती दोला याव-न्निवर्तते; तावत्तस्यां दिशि स्थिता साङ्गहारमुपवेश-मुद्रया दोलां तथा हन्ति; यथा सा साधिकवेगं परतो निवर्तते स्म। ततोऽप्यव-धिपर्य्यन्तं गतायां च तस्यां तद्दिशि सज्जा इतराऽपि तथैवानुकरोति। द्वयोरपि गत्योरन्तरेषु मञ्जीर-रशनादीनां विलक्षणशिञ्जनं भवति। प्रतिगत च प्रत्यागतञ्च तासां सर्वासां वासांसि वारमेकमेकतः परतश्च परतः समुड्डीयन्ते। कर्णाभरणीकृतानां पाटलि-कुसुमानां केशेषु व्यासञ्जितानां मल्लिका-कोरकाणां सर्ववस्त्राणामुपरि लम्ब-मानानां च विशिथिलदलानि परिस्खलन्ति स्म। एवं दोला-दोलनासक्ताभिरेव ताभिरारब्धा महामधुर-माध्वीक-मधुरिम-धिक्काराधिकार-वारिणी प्रफुल्लोल्लास-तल्लज-मल्लार-रागानुसारि-

---

ववृधे=एधाञ्चक्रे। साङ्गहारम्=अङ्गाक्षेपसहितम्। क्रियाविशेषणम्। उपवेशमुद्रया=आसनप्रकारेण। हन्ति=ताडयति। साधिकवेगम्=अतिज-वेन सह। अवधिपर्यन्तम्=यावद् गन्तु शक्नोति तावल्लायन्विता सती तत्सी-मानं यावत्, सज्जा=सन्नद्धा, हन्तुम्। अनुकरोति, हन्ति इति यावद्। मञ्जीरर-शनादीनाम्=नूपुरकाञ्चीप्रभृतीनाम्। विलक्षणम्=अलौकिकम्, शिञ्जनम्=भूषणशब्दः। "भूषणानाञ्च शिञ्जितम्" इत्यमरः। प्रतिगतम्=प्रतिगमनम्। प्रत्यागतम्=प्रतिपरावृत्ति। कर्णाभरणीकृतानाम्=श्रवोभूषणीकृतानाम्। पाटलिकुसुमानाम=अमोघापुष्पाणाम्। व्यासञ्जितानाम्=निबद्धानाम्, चितानामिति यावत्। मल्लिकाकोरकाणाम्=मालतीमुकुलानाम्। सर्व-वस्त्राणाम्=निखिलवाससाम्। लम्बमानानाम्, सुमानाम, विशिथिल-दलानि=विचलितबन्धनानि पत्राणि। परिस्खलन्ति स्म=पेतुः। दोला-दोलनासक्ताभिः=दोलासञ्चालननिरताभिः। आरब्धा=प्रस्तुता। महा-मधुरस्य=अतिस्वादुनः, माध्वीकस्य="महुआ" इति भाषाया प्रसिद्धस्य, मधुरिम्णः=माधुर्यस्य, धिक्कारे=तिरस्करणे, योऽधिकारः=स्वाम्यम्, तस्य वारिणी। अनुप्रासः। एवमन्यत्राप्यनुचिन्तनीयः। लोकोत्तरमाधुर्य-वतीति भावः। प्रफुल्ल=विकसनशीलः, उल्लासतल्लजः=प्रकृष्टोल्लासः, बहुव्रीहिरुत्तरपदलोपो वा, यो मल्लाररागः=मल्लारीत्यभिधीयमाना

गीयं गीतिर्गातुम् । तथा हि—

घन-पटली बहु वर्षति तोयम्,
घन-पटलीनमुखः पथिकोऽयम् ।
बहुधारासाराश्च समुदिताः
बहुधा रागै रसिका मुदिताः ॥

एवं कियत्कालगानेनैव श्रान्तयोस्तयोः पार्श्व-परिवर्तिन्योः स्वेदैः कपोलौ क्षालितौ, वसनमार्द्रितम्, कञ्चुकी कुचयोर्दृढं संलग्ना, वपुर्वेपथुना चुम्बितम्, श्वास-प्रश्वासयोर्गतिस्त्वरिता, आनन-

मेघरागस्य रागिणी, तदनुसारिणी=तदनुकूला, गीतिः, प्रधानारब्ध-क्रियानिरूपितस्य कर्मत्वस्याभिधानान्न गीति-निरूपिताऽप्रधानकर्मत्वाश्रया द्वितीयेति स्वादुमिसूत्रस्थभाष्यानुसारी पूर्वाभिहितः पन्थाः ।

घनपटली=मेघराजिः । बहु=अधिकम् । अयम्=साक्षाद् दृश्य-मानः । पथिकः=यात्रिकः, घनपटे=मेघखण्डे, लीनम्=संलग्नम्, मुखम्=वदनं यस्य सः । सर्वथा मेघे दत्तदृष्टिरिति तात्पर्यम् । अथवा घने=सान्द्रे, पटे=वस्त्रे, लीनम्=छन्नम्, मुखं यस्य सः । मेघस्योद्दीपकत्वात्तद्दर्शनं पथिकः परिहरतीति भावः । बहूनां धाराणा-मासाराः=सम्पाताः । समुदिताः=सम्यगुदयं प्राप्तवन्तः, मेघेभ्यः प्रादुर्भूता इति यावत् । रसिकाः=रागिणः । बहुधा=अनेकधा । रागैः=विषया-भिलाषैः । मुदिताः=प्रसन्नता गताः । प्रथमचरणे "घनपटली" ति सार्थकम्, द्वितीये च निरर्थकम् । प्रथमद्वितीयपादयोर्यमकत्वे "मुखम्" नाम यमकम्, तृतीयचतुर्थयोश्च "पुच्छम्" नामेति तयोः संसृष्टिः । अन्त्या-नुप्रासोऽपि ।

कियत्कालगानेन=स्वल्पसमयलयकलनेन । पार्श्वपरिवर्तिन्योः=पार्श्व-परिवर्तनकारिण्योः । स्वेदैः=घर्मबिन्दुभिः । क्षालितौ=धौतौ । वसनम्=वस्त्रम् । आर्द्रितम्=क्लेदितम् । कञ्चुकी=अर्धबाहुका । संलग्ना=ससक्ता । वपुः=शरीरम् । वेपथुना=कम्पेन । चुम्बितम्=स्पृष्टम् । त्वरिता=वेगवती । जातेति शेषः । आननच्छटा=मुखच्छविः । यद्यपि

च्छटा च काञ्चन कमनीयां शोणता-शोभामकल्पयत्। ललिता-विशाखाभ्यां विमानेन गगनतलं नीयमाना गगनश्रिया इवापरा दोलापट्टिकोपविष्टा नीपशाखादि-गुम्फित-दोला-वेगमसहमाना कदा-चिद् भुवम्, कदाचिद् आस्मानम्, कदाचन द्रुमपाणीन्, कदाचन समीरवेगाहत-निज-वसनाञ्चल-ताड्यमान-दोलावलम्बि-शृङ्खलाम्, कदाऽपि तारस्वर-गान-श्रवण-विद्रावित-निद्रान्, कदम्ब-शाखा-सन्धि-विलम्बि-नीडान्तराल-रिङ्गणान्, सित-पीत-नीलवर्णान्,

---

प्राकृतेऽस्य 'छटा'-शब्दः सङ्घेऽर्थे प्रयुज्यते किन्तु संस्कृतेऽपि छटाशब्दः संघे प्रयुज्यत इति वेदितव्यम्। काञ्चन = कामपि अनिर्वचनीयाम्, कमनीयाम् = रुच्याम्। शोणताशोभाम् = रक्तवर्णत्वम्। अकल्पयत् = अजनयत्। ललिताविशाखाभ्याम् = तन्नामिकाभ्यां सखीभ्याम्। विमानेन = वायुयानेन। नीयमाना = प्राप्यमाणा। गगनश्रीः = गगनशोभा। इयम् = एषा, अपरा = द्वितीया, संरचना। दोलायाः पट्टिकायाम् = फलके, उपविष्टा = स्थिता। नीपशाखाया = कदम्बशाखायाः, आगुम्फितायाः, दोलायाः, वेगम् = जवम्। असहमाना = सोढुमशक्नुवती।

कदाचिद् भुवम् इत्यादि अग्रे सम्बन्धी लिखितानामपि पदानां ... वर्तीति सम्बन्धः। भुवम् = पृथिवीम्। आस्मानम् = स्वम्, द्रुमपाणीन् = वृक्षशाखाः। समीरवेगाहतस्य = पवनजवताडितस्य, निजवसनस्य = स्ववस्त्रस्य, अञ्चलेन = प्रान्तेन, ताड्यमानायाम् = आहन्यमानायाम्, दोला-याम्, अवलम्बिनीम् = लग्नाम्, शृङ्खलाम् = लौहदाम। कदाचिदि-कथावकानिति मध्ये सम्बन्धः। पिकशावकान् निश्चिनोति-तारस्वरेण = उच्चस्वरेण, पञ्चमनादेनेति यावत्, यद् गानम् = गीतिः, तस्य श्रवणेन = कर्णातिथितामापादनेन, विद्राविता = दूरीकृता, निद्रा = स्वापो येषां तान्। कदम्बशाखानाम् = नीपद्रुमावयवानाम्, सन्धिषु = कोटेषु, विलम्बि-नाम् = लम्बमानानाम्, नीडानाम् = कुलायानाम्। अन्तरालेषु = मध्येषु, रिङ्गणम् = भ्रमणम्, येषां तान्। सिताः = श्वेतवर्णाः, पीताः = पीतवर्णाः,

अप्राप्त-पक्षति-पुष्टीन्, अर्धोन्मिषित-लोचनान्, विहित-मञ्जीरानुकारि-रावान्, पिक-शावकान्; क्वापि दोलान्दोलन-दोल्यमान-दोलाग्र-विलम्बि-लता-प्रतान-निपात्यमान-कुसुम-स्तबकान् अवलोकयन्ती, भ्रमरिका-कलित-दृष्टिः, प्रतिगतिभेदं पतन्तीव, कम्पमानेव, आहृतेव भीतभीतेव मुग्धा क्रियासमभिहारेण वक्तुमारब्धवती—"अलमलम्, विरमतं विरमतम्, पतामि पतामि"—इति।

अथ तयोरेका—सौवर्णि! किमिव बिभेषि? आवयोर्मध्ये स्थिताऽसि, शृङ्खला-ग्रहणासक्तां मुष्टिं मा शिथिलय, न पतिष्यसि। साम्प्रतमेव विहिताभ्यासा चेत् पत्या समं सुखेन दोला-विहार-रसं रसयिष्यसि—इति सस्मितमालपत्।

सृक्किण्यः = ओष्ठप्रान्तभागाः, येषान्तान्। अप्राप्ता=अनधिगता, पक्षतीनाम् = पक्षमूलानाम्, पुष्टिः = उड्डयनसामर्थ्यम्, यैस्तान्। अर्धोन्मिषिते = किंयदुन्मीलिते, लोचने येषां तान्। विहिताः, मञ्जीरानुकारिणः = नूपुरध्वनितुल्याः, रावाः = शब्दाः, यैस्तान्। पिकशावकान् = कोकिलशिशून्। दोलान्दोलनेन = दोलिकासञ्चालनेन, दोल्यमानानाम् = सञ्चाल्यमानानाम्, दोलाग्रविलम्बिनीनाम् = दोलिकाप्रान्तप्रतायमानानाम्, लतानाम् = व्रततीनाम्, प्रतानेभ्यः = कुटिलतन्तुभ्यः निपात्यमानान्, कुसुमाना, स्तबकान्=गुच्छान्। भ्रमरिकाभिः = ललाटस्रस्तकेशैः, आकलिता = व्याप्ता, दृष्टिः, यस्याः साः। प्रतिगतिभेदम् = प्रतिगतागतम्। पतन्तीव = स्खलन्तीव। कम्पमानेव = वेपमानेव। आहृतेव=ताडितेव। भीतभीतेव = अतिभयाक्रान्तेव। मुग्धा = अल्पवयस्का। क्रियासमभिहारेण = पुनः पुनः। वक्तुम् = लपितुम्। अनुप्रासो यत्र तत्रानुचिन्तनीयः। विरमतम्, लोटो मध्यमपुरुषद्विवचनम्।

विहिताभ्यासा = कृतवारंवारानुभवा। दोला-विहार-रसम्=दोलाक्रीडानन्दम्। रसयिष्यसि = अनुभविष्यसि।

सौवर्णी च—चारुहासिनी ! अलं हासैः। भ्रमति मे चक्षुः, क्षुभ्यति मनः, तत्सपदि स्थिरीकुरु दोलाम्। अये विलासिनि ! नास्ति मम तथा क्षमता यथा भवत्योः, तत् न पारयामि, विरम विरम—

इत्युभयतो ग्रीवा परिवर्त्य, मन्दं सक्षोभमिवाचकथत्। ततस्तृतीयाऽपि—प्रियसखि ! किमिव क्षुभ्यसि ? पश्य, विरतमावाभ्याम्, दोला च क्रमतो मन्दीभूता स्वयमेव स्थिरा भवित्री—इति सप्रेम समवादीत्।

अथ प्रेमालाप-परायणास्वेव तासु स्थिरीभूतायां दोलायां चारुहासिनी विलासिनी च पूर्वमवतीर्णे, तद्धस्तावलम्बनेनैव च सभयं सौवर्ण्यप्यवतीर्णा। क्षणं चक्षुषी निमील्य चारुहासिनी-स्कन्धमेव गृहीत्वा सावेगं स्थितवती। परस्तात् प्राप्तधैर्य्या सम्मुखस्थाऽऽसन्द्या समुपाविशत्। चारुहासिनी विलासिनी च महाराष्ट्र-महिले इति दोलारोह एतयोः स्वाभाविकः। दोलन-प्रयुक्तं वैकल्यं वा शैथिल्यं वा चक्षुर्भ्रमरिकां वा मनोग्लानिं वा एते न जानीतः

सौवर्णी चाचकथदिति सम्बन्धः। किन्तत्राह—चारुहासिनि ! इति विलासिनि इति च सम्बोधनपदे सखीनाम्नोः। अलम् हासैः = क्ष्वेलाभिः साध्यं नास्ति। "क्रिया गम्यमानाऽपि कारकविभक्तौ निमित्तम्" इत्युक्तेस्तृतीया। भ्रमति = घूर्णते। "घूमती है" इति हिन्दी। क्षुभ्यति= सञ्चलति। क्षमता = सोढुं शक्तिः। न पारयामि = न शक्ता भवामि। ग्रीवाम् = शिरोधराम्। परिवर्त्य = वक्रयित्वा। सक्षोभम् = सकृत्रिमक्रोधम्। मन्दीभूता = वेगशून्या सती। भवित्री = भाविनी। सप्रेम = सस्नेहम्।

प्रेमालापः = नर्मोक्तिः, तत्परायणासु = तन्निरतासु। सावेगम् = दोलाखेलनभ्रमरिका ("घुमरी" इति भाषा) सहितम्। प्राप्तधैर्या = लब्धस्थैर्या। सम्मुखस्थायाम् = पुरः स्थापितायाम्, आसन्द्याम् = वेत्रासने। दोलनप्रयुक्तम् = दोलाखेलसमुत्थम्। वैकल्यम् = विकलताम्। शैथिल्यम् = श्लथतामत्यधिकश्रमजन्याम्। चक्षुर्भ्रमरिकाम् = नेत्रभ्रमम्।

स्म । ते खिन्नस्विन्न-सर्वाङ्गिण्याविति कदली-दल-खण्डेनाऽऽत्मानं वीजयन्त्यौ पर्य्यटितुमारेभाते । एवमितस्ततः शाद्वले पर्य्यटन्त्योस्तयोः पार्श्वस्थ-मल्लिका-स्तवक-परिक्रम-परवश-मिलिन्द-वृन्द-दत्तदृष्टेः सौवर्ण्याश्चैवमभूवन्नालापाः ।

विलासिनी—अस्माकं सौवर्णी न किमपि वेत्ति ।

चारुहासिनी—[समन्दस्मितम्] आम् ! न किमपि, यतो मुग्धा ।

विला०—अज्ञातयौवना च ।

चारु०—[सहासम्] सत्यं दुग्धमुखीयम् ।

[उभे सौवर्णीमालोकमालोकं जहसतुः]

सौवर्णी—[सकपट-कोपम्] भवतीभ्यामेव रोचन्ते भवत्योः क्ष्वेलनानि ।

विला०-मैवं, मैवं, क्षमस्व, त्वं सर्वं वेत्सि ।

चारु०—इयं रासपञ्चाध्यायीं पठन्ती आत्मानमपि विस्मरति ।

मनोग्लानिम्=चेतःक्लान्तिम् । खिन्नम्=क्लान्तम्, स्विन्नम्=घर्मजलार्द्रम् । सर्वाङ्गम्=निखिलशरीरं ययोस्ते । णिन्यन्तात् ङीप् । कदलीदलखण्डेन=रम्भाच्छदशकलेन । पर्य्यटितुम्=भ्रमितुम् । पार्श्वस्थमल्लिकास्तबकस्य=समीपस्थजातीगुच्छस्य, परिक्रमपरवशे=भ्रमणसलग्ने, मिलिन्दवृन्दे=द्विरेफव्राते, दत्तदृष्टेः=संस्तम्भितनयनायाः । आलापाः, अत्र हासमया वेदितव्याः ।

मुग्धा=बाला । अज्ञातयौवना=अविदिततारुण्या । यौवनक्रियमाणं हावभावं न वेत्तीति भावः ।

दुग्धमुखी=पयोमुखी । "दुधमुँही" इति हिन्दी । आलोकमालोकम्=दृष्ट्वा दृष्ट्वा ।

भवतीभ्याम्, चतुर्थ्या द्विवचनम् "रुच्यर्थाना प्रीयमाण" इति चतुर्थी । क्ष्वेलनानि=नर्मवाक्यानि ।

रासपञ्चाध्यायीम्=श्रीमद्भागवते सन्दर्भविशेषः कृष्णविलासप्रदर्शनापरो रासपञ्चाध्यायी । रागिणस्तदर्थं रागपरतया, पण्डिताश्च कामविजय-

गीतगोविन्दस्य च 'उरसि मुरारेरुपहितहारे'—इत्यादि-गीतानि गायन्त्येव वाष्पप्रवाहेणाञ्जनम् अधर-रागं वक्षः रोमराजीं च क्षालयति, तत् किं न वेत्ति ? किन्त्वस्मदग्रे आत्मानं मुग्ध-तममेव परिचाययति । [पुनरुभे अहसताम्]

सौवर्णी–सख्यौ ! यदि मामेवं ह्रेपयथस्तदहं गच्छामि । युवा-मेवात्र विहरतम् । [इति उदतिष्ठत्] ।

विला०—[सौवर्ण्या बाहु गृहीत्वा] उपविश उपविश । नाऽऽवा-मेवं परस्तादालपिष्यावः ।

[सौवर्णा तूष्णीमुपाविशत्]

चारु०–[समीपस्थायामासन्द्यामुपविश्य, विलासिनीं चोपवेश्य]

सौवर्णि ! सत्यं कथयति विलासिनी । यदि नाम तुभ्यं प्रेम-वार्ता आत्मीयोचितालापाश्च न रोचन्ते, तत्किमग्निहोत्रविधिं वा योग–साधन–पद्धतिं वा कथयावः ? तथैव चेत् तव तात एव वेदा-न्तोपदेशैस्त्वामपरां गार्गीं विधास्यति, किमस्मत्साहचर्यैः ? किं वा

परतया सङ्गमयन्ति । अत्र च "तप्तस्तनेषु परिधेहि" "च्छिन्धि हृच्छयाग्निम्" इत्यादिभिस्तात्पर्यम् ।

उरसि मुरारेरुपहितहारे घन इव तरलवलाके ।
तडिदिव पीते रतिविपरीते, राजसि सुकृतविपाके ॥

इति समग्रं पद्यम् । वाष्पप्रवाहेण=अश्रुधारया । अधररागम्= ओष्ठलौहित्यसाधनम् । रोमराजीम्=लोमपङ्क्तिम् । क्षालयति= धावयति ।

ह्रेपयथ=लज्जयथः । विहरतम्=क्रीडतम् ।

अग्निहोत्रविधिम्=यागविशेषविधानम् । योगसाधन-पद्धतिम्= चित्तवृत्तिनिरोधात्मकस्य योगस्य यानि साधनानि यमनियमासनप्राणायाम-प्रत्याहारधारणाध्यानसमाध्यात्मकानि तेषां पन्थानम् । वेदान्तोपदेशैः= ब्रह्मविद्याकथनैः । गार्गीम्=वाचक्नवीम् । जनकससदि याज्ञवल्क्येन कृत-ब्रह्मविद्याविवादा विशिष्टा विदुषी बृहदारण्यके श्रुता । अस्मत्साहचर्यैः =

'सखि सखि' इति मुधैवाऽऽवां सम्बोध्य वञ्चनैः ?

विलाः—प्रिये ! मा स्म उपेक्षिष्ठाश्चारुहासिन्या वचनम् । आवामेव तव प्रीतिपात्रे, अन्तरङ्गित्व-गर्विण्यौ सख्यौ । आवयोरप्यग्रे कदाऽपि किमपि न वक्षि । अन्तरेव कञ्चनानुरागमिव वहसि, कदाचिद्विमनायसे, अस्माभिः शृङ्गार-रस-स्नातानां बहूनामाननान्यवलोकितानि सन्ति, त्वं तु सदैवास्माभिः सह क्रीडसि । कथं त्वया गोपितोऽप्यप्रकटो भवेत् तवानुराग-प्रवाहः ? त्वमेव केवलं स्पष्टं न ब्रूषे, किं तु तव नवाभ्यस्तापाङ्ग-प्रसारे दृशौ, आलीढ-ताली-दलच्छविः कपोल-पाली, सह्रीस्तम्भ-निःश्वास-मान्थर्य-माधुर्य्य-स्वर-भङ्गा आलापाश्च सर्वे स्फुटयन्ति । तदलमितोऽपि बाह्यैरालापशतैः । सत्यं कथय, किमिव चिन्तयसि ? केन च महाभाग्येन सहचरितां स्वमूर्तिं स्वापेषु पश्यसि ?

आवयोः सान्निध्यैः । मुधैव=व्यर्थमेव । वञ्चनैः=प्रतारणैः । समदुःखसुखे सखीजने रहस्यस्य निवेदनीयत्वादिति भावः ।

मा स्मोपेक्षिष्ठाः=उपेक्षा मा काषीः । "माङि लुङ्" "न माङ्योगे" इत्याभ्यां लुङडागमाभावौ । प्रीतिपात्रे=स्नेहस्थाने । अन्तरङ्गित्वस्य=रहस्यज्ञत्वस्य, गर्विण्यौ=अभिमानयुक्ते । न वक्षि=न कथयसि । अनुरागम्=व्यक्तिविशेषे प्रेम । शृङ्गार-रसस्नातानाम्=वैषयिकधारायां कृतमज्जनानाम् । अनुभूतविषयाणामिति यावत् । गोपितोऽपि=यत्नादाच्छादितोऽपि । अप्रकटः=अविस्पष्टः । दुर्ज्ञेय इति यावत् । नवः=नूतनः, अभ्यस्तः=शिक्षितः, अपाङ्गप्रसारः=कटाक्षपातप्रकारः, याभ्यां ते । आलीढा=अङ्गीकृता, तालीदलच्छविः=द्रुमविशेषपत्रकान्तिर्यया सा, पाण्डुरिति यावत् । कपोलपाली=गण्डप्रान्तः । ह्रीस्तम्भेन=लज्जावरोधेन, जातेन, निश्वासेन=दीर्घश्वासेन, यद्-मान्थर्यमाधुर्यम्=आलस्यलालित्यम्, तेन स्वरभङ्गो येषु तादृशाः । स्फुटयन्ति=प्रकटयन्ति । बाह्यैः=बहिरङ्गभूतैः । महाभाग्येन=विशिष्टभागधेयेन । सहचरिताम्=एकत्रावस्थिताम् । स्वापेषु=स्वप्नेषु । प्रत्यक्षं साहचर्य्यमनुभवन्त्या अपि, अनिच्छन्त्या

[सौवर्णा पादाङ्गुष्ठ-नखेन भुवमालिखन्ती तूर्णीमेव समतिष्ठत]

चारु०—सौवर्णि ! तव दु:खेन दु:खिते आवामिति विश्वसिहि ॥ त्वां हि कदाचित् सर्वा अस्मान् विहाय उद्यानं प्रविश्य एकान्ते तरुतले उपविशन्तीम्, क्वचन रहसि शिलासु उपविश्य करतले कपोल संस्थाप्यानिमिषाभ्यां दृग्भ्यां किमपि चिन्तयन्तीम्; कर्हिचित् कुञ्जान्त' प्रविश्य गज-दन्त-फलके कस्यापि प्रतिमूर्तिमिव लिखन्तीम्, कदाचन पाण्डु-गण्ड-तल-विसृत्वराण्यश्रूणि पट-प्रान्तेन मार्जयन्तीम्, क्वचित् लुण्ठितेनेव वञ्चितेनेव प्रनष्टेनेव अपहृतेनेव च हृदा कञ्चिद् धवलिमानमिवाङ्गेषु वहन्तीं दर्शं दर्शं

अपि च स्वापेषु साहचर्यं भवतीति न ते दोष इति गूढव्यङ्ग्यम् ।

पादाङ्गुष्ठनखेन, भूलिखनं लज्जितानां जातिः । अस्मान्=सहचरीः । एकान्ते=रहसि, उपविशन्तीम्=आसीनाम् । उपवेशश्चायं न निरर्थक इत्यभिलाषाख्या प्रथमा स्मरदशा सूचिता । स्मरदशा हि दशसंख्याकाः, तथा च साहित्यदर्पणे—

> अभिलाषश्चिन्ता स्मृतिगुणकथनोद्वेगसम्प्रलापाश्च ।
> उन्मादोऽथ व्याधिर्जडता मृतिरिति दशात्र कामदशा. ॥

चिन्तात्मिका द्वितीया दशा दर्शयति क्वचनेत्यादिना-चिन्तयन्तीमित्यन्तेन । शिलासु=प्रस्तरखण्डेषु । दृग्भ्याम्=नेत्राभ्याम् । चिन्तयन्तीम् =विचारयन्तीम् । गजदन्तफलके=हस्तिदन्तनिर्मितपीठे । प्रतिमूर्त्तिम् =प्रतिच्छविम् । लिखन्तीम्=रचयन्तीम् । एतेन स्मृतिनाम्नी तृतीया दशा प्रत्यक्षीकृता, गुणकथनञ्च मानसमेनैव बोध्यम्—नहि विना गुण-विचारं प्रतिकृत्युल्लिखनं सम्भवि ।

पाण्डु-गण्डतल-विसृत्वराणि=पीत-कपोलस्थल-प्रसरणशीलानि । अश्रूणि=रोदनाम्बूनि । पटप्रान्तेन=वसनाग्रेण । मार्जयन्तीम्= प्रोञ्छन्तीम् । लुण्ठितेनेव=चोरितेनेव । एभिश्चतुर्भिरुन्मादादयश्चतस्रो दशा दर्शिताः । मृतिपदेन च न मरणं ग्राह्यम् इति जानन्त्येव सुधियः । धवलिमानम्=श्वैत्यम् । वहन्तीम्=धारयन्तीम् । दर्शं दर्शम्=दृष्ट्वा

भिद्यत इवाऽऽवयोर्हृदयम् । किमिव कुर्वः ! शतधा पृष्टाऽसि, सहस्रधा विश्वासमार्पिताऽसि, न वक्षि, न च सूचयसि । किन्तु विश्वासपात्रेऽस्मादृक्षे सखीजनेऽनुचितमेतत् । सर्वतः संवृतोऽग्निरधिकं तापयति, अनुद्गीर्णं विषं प्राणानपहरति, असूचितो व्याधिरप्रतीकरो वर्द्धते, तदयमीदृशो दृढो निरोधस्तेऽनुरागस्याधिकमेव त्वां दुःखाकरिष्यतीति सहाये सखीजने किमिव नान्तर्ज्वरं विभजसि ? यथाऽऽवामपि सम-दुःख-सुखे भवेव ।

सौवर्णी तु करस्थं कुसुम-स्तबकं क्षिप्त्वा, दक्ष-करतले एव कपोलं संस्थाप्य, निरन्तर-परिक्रमण-क्रम-क्लान्तं मुखं कमलपल्लवोदरे सुप्त कलानाथमिव कदर्थयन्ती, विरह-जन्मना धवलिम्ना भस्मनेव रूषिता, वदर-पाण्डुना गण्डेन, उष्ण-श्वास-प्रश्वासाघात-

---

दृष्ट्वा । आर्पिता = लम्भिता । न वक्षि = न कथयसि । न च सूचयसि = न बोधयसि । संवृतः = अवरुद्धः । अधिकम् = भृशम् । अनुद्गीर्णम् = अवान्तम् । विषम् = हालाहलादि । असूचितः = अबोधितः, परेभ्योऽप्रकटीकृतः । अप्रतीकारः = अप्रतिक्रियः । दृढः = प्रबलः । निरोधः = गोपनम् । दुःखाकरिष्यति = खेदवती विधास्यति । सहाये = सहायताकारिणि । अन्तर्ज्वरम् = मानसिकं दुःखम् । ज्वरपद कामज्वरोत्स्थापकतया किमपि वैशिष्ट्यमाश्रयतीति स्वारस्यवेदिनः । विभजसि = विभाग करोषि । 'सविभक्त हि दुःखं सह्यवेदनं भवती'ति कालिदासः ।

कुसुमस्तबकम् = पुष्पगुच्छम् । क्षिप्त्वा = भूमौ निपात्य । निरन्तर-परिक्रमण-क्रम-क्लान्तम् = सतत-परिभ्रमण-खेद-खिन्नम् । कमलपल्लवोदरे = पद्मकिसलयाभ्यन्तराले । सुप्तम् = निद्रितम् । कलानाथम् = शशिनम् । इवेत्युत्प्रेक्षा । कदर्थयन्ती = तिरस्कुर्वती । विरहजन्मना = वियोगसमुत्थेन । धवलिम्ना = धवैत्येन । भस्मनेव = भसितेनेव । रूषिता = छुरिता । वदरवत् पाण्डुना = पीतेन । गण्डेन = कपोलेन । लुप्तोपमा ।

[illegible] । [illegible] ।
रोदयन्तीम्=[illegible] । [illegible] । दह्यमान-
हृदयेन । विवर्णेन=धूसरेण । वदनेन=मुखेन । [illegible],
अङ्गयष्ट्या=देहेन । अतिलघूकृत-प्रिय-विरह-क्लेशाम्, अङ्गी-
कृत-प्रेयो-वियोग-रोदाम् । आकल्पम्=[illegible] । परवशताम्=
पराधीनताम् । अङ्गीकुर्वत्=स्वीकुर्वत् । भज्यमानाम्=[illegible] ।
रुध्यमानम्=अनिर्गमच्छ्वासम् । वेपमानम्=कम्पमानम् । विषमम्=

मिव विग्रहम्, प्लाव्यमानमिव च चक्षुः, कथं कथमिव स्ववशंवदं विधाय ते अश्रु-मार्जनैः कदली-दल-वीजनैः शान्त-वचनैश्च सान्त्वयामासतुः।

अथ क्षणानन्तरमात्मानमात्मनेव स्थिरयित्वा चारुहासिनीं विलासिनीं च सम्बोध्य वक्तुमारभत सौवर्णी—

भगिन्यौ! भवत्यावेव मम जीवने, भवत्यावेव ममाऽऽधारौ, भवत्यावेव च सर्वथा बन्धू इति भवत्यौ विहाय कोऽन्योऽस्ति; यदग्रे मानसं सुखं वा दुःखं वा प्रकटयेयम्; किन्तु वित्थ एव भाग्यहीनाया मम व्यतीतं वृत्तान्तम्। नाहं जननी-क्रोड-क्रीडासुखं स्मरामि। नाहं तात-लालन-सुखस्य स्वप्नमपि पश्यामि। नाहं स्वदेशस्य स्वजन्मभुवश्च कथामपि शृणोमि, न वाऽहं चिरविनष्टयोर्भाग्यैः पुन. प्राप्तयोरपि भ्रात्रोः सहवास-सुखमनुभवामि। अहह! मातापितृ-विहीनाया भाग्य-हीनाया दीनाया मम भ्रातरावेव त्वाधारभूतौ। हन्त! तयोश्च प्रत्यहं सम्मुखस्था खड्गधारा,

---

शरीरम्। प्लाव्यमानम्=स्नप्यमानम्। स्ववशंवदम्=स्वाधीनम्। ते=सहचर्यौ।

आत्मानम्=स्वम्। आत्मनैव=स्वयमेव। स्तम्भयित्वा=अवरोध्य।

जीवने=प्राणने। आधारौ=आश्रयौ। सर्वथा=सर्वप्रकारेण। बन्धू=भ्रातृकल्पे, कल्याणकारिण्याविति यावत्। मानसम्=मनस्संबंधि। वित्थः=जानीथः। लटो मध्यमपुरुषस्य द्विवचनम्। भाग्यहीनायाः=भागधेयशून्यायाः, दुर्भाग्याया इति यावत्। व्यतीतम्=विगतम्, वृत्तान्तम्=प्रवृत्तिम्। जननीक्रोड-क्रीडा-सुखम्=मात्रङ्क-परिष्वङ्ग-मोदम्। तात-लालन-सुखस्य=जनक-पालनानन्दस्य। स्वप्नमपि पश्यामि, साक्षात्कारस्य तु कथैव का। चिर-विनष्टयोः=अत्यधिककालादृष्टयोः। सहवास-सुखम्=एकत्र स्थिति-मोदम्। मातापितृ-विहीनायाः=जननीजनकशून्यायाः। 'आनङ् ऋतो द्वन्द्वे' इत्यानङ्। सम्मुखस्था=पुरोवर्तिनी।

प्रतिक्षणञ्च पार्श्व-परिवर्तिनः प्रत्यर्थिनः । द्वार-देशमालोकयन्ती वासरं व्यत्यापयामि । हन्त ! स्वप्नेष्वपि रणाङ्गण-गताविव सोदरौ पश्यामि—इति नास्ति मे कदाऽपि सुख-लेशः । मृगतृष्णासु, तृष्णाभिरापतन्ती मृगीव च यं प्राणनाथं मन्यमाना, —इत्यर्द्धोक्तावेव निःश्वस्य व्यरमत् । ततस्तयोः —"कथय, कथय, मा स्म रोदीः, कस्मिन् मनोऽनुरक्तम् ? कः प्राणनाथता-सनाथितः ? को भवत्या मनोमन्दिरं प्रविष्टः ?"—इति साम्रेडं कथयन्त्योः पुनराह सौवर्णी—

यं च प्राणनाथं मन्यमाना मनोरथ-सन्तान-वितानैरात्मानं व्यथयामि, तस्य मासान् यावत् कथामात्रमपि न लभे । आवसथमपि न वेद्मि । पात्रेऽयमभिलाषः, सुपरिणामोऽयं चित्तबन्ध इत्यपि न जाने । केवलमेनं प्रातिपदिकं चन्द्रमिव कदाचित् क्षणाय

खड्गधारा=असिधारा । पार्श्वपरिवर्त्तिनः=वामे दक्षे च स्थिताः । प्रत्यर्थिनः=अरयः । व्यत्यापयामि=अपयामि । रणाङ्गगतौ=सङ्ग्रामभूमिं प्राप्तौ । सुखलेशः=अल्पमपि सुखम् । मृगतृष्णासु=मरीचिकासु । पिपासिता मृगा निदाघे सौरीभिर्भाभिर्भासमानेषूषरेषु दूरस्थेषु जलभ्रान्त्या धावन्ति, तत्र गत्वा जलमलब्ध्वा पुनर्दूरे तथाविधमेव स्थलान्तरं वीक्ष्य धावन्तीत्येव क्रमेणातपसन्तप्ता म्रियन्ते । तदेतन्मृगतृष्णापदेनाभिधीयते । यम्=पौरुषधौरेयकमपि । प्राणनाथम्=प्राणेश्वरम् । अर्द्धोक्तौ=अर्द्धमेव कथिते । व्यरमत्=भाषणाद् विरताऽभूत् । "व्याङ्परिभ्यो रमः" इति परस्मैपदता । लज्जाशोकातिरेकान्मध्ये तूष्णींभावः । अनुरक्तम्=सप्रेम । प्राणनाथतया=पतित्वेन, सनाथितः=वृतः । मनोमन्दिरम्=चेतःपूजालयम् ।

मनोरथ-सन्तान-वितानैः=अभिलाषसमूहप्रसारणैः । व्यथयामि=पीडयामि । आवसथम्=गृहम् । पात्रे=योग्ये । सुपरिणामः=अन्ते सुखप्रदः, चित्तबन्धः=मनोनिवेशः । प्रतिपदि भवं प्रातिपादिकम्=आद्यतिथ्युदितम् । यद्यपि द्वितीयाशशिन एव चक्षुर्गोचरता, तथापि तमेव प्रतिपच्चन्द्रत्वेनाश्रित्य कवयः उपमानभावं कल्पयन्ति । तथा च दामोदरो भारविः—"प्रतिपच्चन्द्रमिव प्रजा नृपम्" "प्रतीपच्चन्द्रनिभोऽ-

दूरतोऽवलोक्य चिर-दाह-दग्धं हृदय-हतकं शीतलयामि। दुःख-कथा-कथन-समये दुःखमधिकमधिकं वर्द्धते-इति भवतीभ्यां पृष्टाऽपि न ब्रवीमि, अनुरुद्धाऽपि चापवृणोमि। तत् सख्यौ! अलं मादृक्षाया हतभाग्याया मुखमप्यवलोक्य। परश्शता रत्नभूता रणाङ्गणेषु प्रत्यहं शेरते। मम तु विधिना मृत्युरपि ललाटे नालेखि—इति कथयन्त्या एव तस्या हस्तं गृहीत्वा चारुहासिनी समवादीत्—

हला! मा स्म वदस्तत्। मातापितृ-सुखं सर्वे सदा नानुभवन्ति, विरह-दुःखमननुभूय न कोऽपि प्रेयसा संयुङ्क्ते, केनापि पारावार-तरङ्ग-रिङ्गणाघातमसोढ्वा मुक्ता नाऽऽप्यन्ते, शतशः शङ्कुलाभिरनुत्कृत्ता देवमूर्तिः सुसिंहासनार्हा सुषमां न कलयति। तत् समाश्वसिहि।

ततश्चिराय तासां बहुविधो मदं मन्दमालापो जातः। अथाकस्मादेव समश्रावि कस्यापि बालस्येव—“अत्तिके! अत्तिके!”-इति दूराहूतिः।

यमात्मजः” इति कालिदासश्च। चिर-दाह-दग्धम्=तीव्रवियोगानलज्वलितम्। अनुरुद्धा=अनुरोधविषयङ्गमिता। अपवृणोमि=आच्छादयामि। मादृक्षायाः=मत्तुल्यायाः।

हला!, सखीनाम्पारस्परिक सम्बोधनमिदम् “हण्डे हञ्जे हलाऽऽह्वानम्” इत्यमरः। मा स्म वदः=मृत्युप्रभृतिविषये न किमपि निवेदय, अमङ्गलत्वात्। विरह-दुःखम्=वियोगखेदम्। अननुभूय=अनुभवगोचरमविधाय। प्रेयसा = प्रियतमेन। संयुङ्क्ते = सम्मिलति। पारावार-तरङ्ग-रिङ्गणाघातम्=समुद्र-लहरि-सञ्चलन-ताडनम्। मुक्ताः=मणयः। नाप्यन्ते=न लभ्यन्ते। शङ्कुलाभिः=प्रकृते टङ्कैः। अनुत्कृत्ता=अनुल्लिखिता। सुसिंहासनार्हाम्=शोभनविष्टरस्थितियोग्याम्। सुषमाम्=शोभाम्। “सुषमा परमा शोभा” इत्यमरः। समाश्वसिहि = धैर्यमाश्रय।

अत्तिके! = भगिनि!। “अत्तिका भगिनी ज्येष्ठा” इत्यमरः

ततः सौवर्ण्या "चारुहासिनि ! तवानुजस्त्वामाह्वयति" इति अवाचि। चारुहासिनी च विलासिनीमपि "उत्तिष्ठ प्रजावति ! गच्छाव"—इति कथयित्वा, "गोपाल ! एषाऽऽयामि, तद् गच्छ, अम्बां कथय"इति तमप्युक्त्वा, सौवर्णीं बहु सान्त्वयित्वा, सोत्प्रासमनुमतिमासाद्य प्रचलिता। तामेव च विलासिन्यप्यनुससार।

अनयोरेका मन्दिराध्यक्ष-महाराष्ट्र-ब्राह्मणस्य पुत्री, अन्या च पुत्रवधूः।

तयोर्गतयोः पुनरेकलैवोपविश्य स्वकटि-पट-प्रान्तासञ्जितमेकं गज-दन्त-पट्टिका-फलकमुत्सार्य करे धृत्वा, तत्र स्वयमेव लिखिता रघुवीर-मूर्तिमालोकयन्ती, स्वयमपि चित्रलिखितेव यावत्कांश्चन क्षणानतिवाहयति, तावत् पृष्ठतः परिवृत्य च तमेव चिर-चिन्तितं प्राणाधारं रघुवीरमपश्यत्। चकित-चकितेव च झटिति समुत्थाय, मुदिता, मोहिता, कम्पिता, भीता, व्रीता, चैकतो नतमुखी फलकं

दूराहूतिः=दूरादाह्वानम्। सम्बोधनमिति यावत्। अवाचि=उक्ता। अवोचीति प्रयुञ्जन्तस्तु विस्मृत-"वच उम्" सूत्रार्था एवेति न तिरोहितम्। प्रजावति !=भ्रातृजाये ! "प्रजावती भ्रातृजाया" इत्यमरः। अम्बाम्=मातरम्। सोत्प्रासम्=सेषद्धास्यम्। अनुमतिम् = अनुज्ञाम्। अनुससार= अनुसृतवती।

अनयोरित्यनेन एते परिचाययति पाठकेभ्यः कविः, तयोरिति। पुत्रवधूः=स्नुषा। "वधूर्जाया स्नुषा स्त्री च" त्यमरः।

एकला=एकाकिनी। स्व कटि-पट-प्रान्तासञ्जितम्=निज-मध्य-भागशाटिकाञ्चलनिबद्धम्। गजदन्त-पट्टिका-फलकम्=हस्तिदन्त-पीठिका-खण्डम्। उत्सार्य=निःसार्य। क्षणान्=मुहूर्त्तान्। अतिवाहयति= यापयति। श्वासभङ्गम्=उच्छ्वासम्। चकितचकितेव=भीतभीतेव, इवेन भयस्याकिञ्चित्करत्वं द्योतितम्। मुदिता=प्रसन्ना। मोहिता= विक्षिप्ता। भावशाबल्यं अकस्माद्दर्शनेन हर्षाधिक्यात्। फलकम्=पट्टकम्।

गोपयन्ती समवतस्थे। रघुवीरस्तु तस्मिन्नेवावसरे वेगेन हयेन समायातो मुहुरत्राऽऽयातीति केनापि सवैलक्ष्यमवीक्षितः, सपदि वृक्षस्यैकस्य शाखायामाजानेय-वल्गामायोज्य, उपवन-पर्य्यटनेन स्वेदानपनेतुमकस्मादितः समायातः-इत्यधुनाऽपि स्विन्न-कपोलयोर्ललाटे च चूर्णकुन्तला भ्रमरकाश्च श्लिष्टा एव। श्मश्रु-प्ररोह-स्थली मौक्तिक-व्रातेनेव स्वेद-विन्दु-व्रजेनाङ्कितैव। ततोऽपि चाकस्माच्चिर-सन्दृष्टा चिराभिलषिता च प्रेयसी रहसि सन्दृष्टेति पुनरुद्वेल्लित इव स्वेद-प्रवाहः।

रघुवीरो हि यदैवास्मिन् प्रान्ते समायाति; तदैव केनापि व्याजेन हनूमन्मन्दिरस्यापि परिक्रमान् करोत्येव, एतद्वाटिकाया अपि धीर-समीर-स्पर्श-सुखमनुभवति, यथासम्भवं सौवर्णीसाक्षात्कारेण च चिरतृपिते नयने सन्तर्पयति। एतेन सौवर्ण्या सह समालापस्यापि पञ्चषा अवसराः प्राप्ताः-इति नायमालापस्य प्रथमः क्षणः। रघुवीरेणैतस्याः कमलोदरसोदरे करे दन्ति-दन्त-फलका-

---

गोपयन्ती=आच्छादयन्ती। समवतस्थे=आसाञ्चक्रे। वेगेन=जवेन। सवैलक्ष्यम्=सविस्मयम्, "विलक्षो विस्मयान्विते" इत्यमरः। अवीक्षितः=अनवलोकितः। आजानेयवल्गाम्=सदश्व-कविकाम्। उपवन-पर्यटनेन=उद्यानभ्रमणेन। अकस्मात्=सहसा। चूर्णकुन्तलाः=अलकाः। भ्रमरकाः=वर्वरीकाः। "घुंघराले बाल" इति हिन्दी। श्मश्रु-प्ररोहस्थली=ओष्ठोर्ध्वरोमोद्गम-स्थलम्। मौक्तिकव्रातेन=मुक्ताव्रजेन। स्वेद-बिन्दु-व्रजेन=घर्मपृषद्गणेन। चिरसन्दृष्टा=बहुकालावलोकिता। प्रेयसी=प्रियतमा। उद्वेल्लित इव=उच्छलित इव। स्वेदप्रवाहः=घर्माम्बुपूरः।

प्रान्ते=देशैकदेशे। परिक्रमान्=परिभ्रमणानि। धीर-समीरस्य=मन्दमारुतस्य, स्पर्शसुखम्=सम्पर्कमोदम्। सौवर्णीसाक्षात्कारेण=सौवर्णीदर्शनेन। चिरतृषिते=चिररात्राय पिपासिते। समालापस्यापि=वार्त्ताकरणस्यापि। पञ्च वा षड् वा पञ्चषाः। क्षणः=कालः। कमलो-

लिखिता स्वप्रतिकृतिरपि साक्षात्कृता, प्रेयस्या विलुलित-वारि-बिन्दु-व्रजे लोचने अपि चाऽऽलोकिते, तदेना स्वविरह-दुःख-दुःखितामाकलय्य, स्वयमपि दुःखितः प्रोवाच—

प्रिये ! किमेतत्, अहह ! किमिति ताम्यसि ? शुष्यसि, ग्लायसि, खिद्यसे च। मुधा मादृशे पथिकजने पराधीने रज्यसे। हन्त ! अहमेव वा किं करोमि, अश्व-पृष्ठमेव मे गृहम्, असिरेव मम कुटुम्बम्, परिश्रम एव मे धनम्, स्वामिभक्तिरेव मे यशः, तत् कथं मादृशमशरणमव्यवस्थञ्च चिन्तयन्ती चेतश्चञ्चलयसि ? प्रत्यहं शुष्यन्तीं तव गात्रयष्टिमालोक्य स्वप्नेष्वप्युद्विजे। कतिवारं "सौवर्णि ! सौवर्णि ! मा स्म खेदयथा आत्मानम्" इति स्वप्ने चाऽहं चीदकरवम्, व्यलपम्, उदस्थाम्, करौ प्रासारयम्, अरोदिषञ्च। सप्रश्रयं प्रार्थये—विरम विरम, मा स्म जटालाभिश्चिन्ता-ज्वालाभिः कुसुमानीव कोमलान्यङ्गानि धाक्षी —इति।

सौवर्णी तु पटान्तेन चक्षुषी परिमृशन्ती, परिवर्तितवदना

दरसोदरे=पश्चान्तरालतुल्ये। स्वप्रतिकृतिः=निजप्रतिमूर्तिः। विलुलितः=विच्छुरितः, वारिबिन्दुव्रजः=जल-कण समूहः, ययोस्ते। आलोकिते=दृष्टे।

ताम्यसि=दुःखिनी भवसि। शुष्यसि=शोषमेषि, दुर्बलीभवसीति यावत्। ग्लायसि=क्षीणहर्षा भवसि। खिद्यसे=खेदमनुभवसि। रज्यसे=अनुरागं करोषि। अश्वपृष्ठमेव—घोटकपृष्ठमेव, सर्वदा तत्स्थत्वात्। कुटुम्बम्=बन्धुजनः। अशरणम्=अनाथम्। अव्यवस्थम्=अनिश्चितावासम्। चञ्चलयसि=चपलयसि। शुष्यन्तीम्=कार्श्यमाश्रयन्तीम्। उद्विजे=खेदमनुभवामि। चीदकरवम्=चीत्कारमकार्षम्। व्यलपम्=विलापमकरवम्। उदस्थाम्=उत्थितोऽभूवम्। करौ=हस्तौ। प्रासारयम्=क्रोडीकरणार्थम्। अरोदिषम्=अक्रन्दम्। सप्रश्रयम्=सनम्रतम्। जटालाभिः=जटामयीभिः, विपुलाभिरिति यावत्। अङ्गानि=अवयवान्। मा स्म धाक्षीः=मा दह।

परिमृशन्ती=परिमार्जयन्ती। परिवर्तितवदना=अन्यतः कृतानना।

मन्दं मन्दमभ्यधात्—वीर ! अभाग्य एष जनः, अस्वायत्तं हृदयम्, विगलितं धैर्य्यम्, पराधीनं चित्तम्, अस्थिर आत्मा, दुर्निवारः प्रेमप्रवाहः, दुरन्तोऽभिलापः, अप्रतिरोधा कर्मरेखा, तत् किमिव वच्मि ? किमिव भावयामि ? न जाने कीदृशं वज्रादपि निष्ठुरं हृदयं भवादृशानां व्यरचि विधात्रा; ये स्वसमर्पित-जीवनानामनन्यशरणानां वचनमात्रेणापि विश्वासमापाद्य, सुधासारासारैरिव ज्वलज्जीव-जीवन-जीवातुभूतैरालापैरालोकैरपि च दुःखदाव-दन्दह्यमानं देहं न शीतलयन्ति—।

इति कथयित्वा, अश्रूणि मुञ्चन्ती स्वप्राणाधारभूतामालोक्य विस्मृतात्मा, सपदि समीपमागत्य, स्वकक्ष-गुटिकातः पट-खण्डं निरसार्य स्वहस्तेन तद्वाष्पाणि अपहरन्, छिन्नैर्मौक्तिकैरिव च स्वचक्षुः-

---

अभ्यधात् = अकथयत् । अस्वायत्तम् = अस्वाधीनम् । विगलितम् = विनष्टम् । आत्मा = अन्तःकरणम् । दुरन्त = असुखपरिणामः । अभिलाषः = मनोरथः । अप्रतिरोधा = रोद्धुमनर्हा, अवारणीयेति यावत् । भावयामि = करोमि । वज्रादपि = अशनेरपि । निष्ठुरम् = कठोरम् । भवादृशानाम् = लोकोत्तराणाम् ।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति ॥

इत्युत्तररामचरिते भवभूतिः । स्वसमर्पितजीवनानाम् = स्वसमुत्सृष्टप्राणानाम् । अनन्यशरणानाम् = अनितरनाथानाम् । सुधासारासारैरिव = पीयूषधारावर्षैरिव । ज्वलताम् = दहताम् । जीवानाम् = प्राणिनाम्, जीवनस्य = प्राणनस्य । जीवातुभूतैः = जीवनौषधिभिः । आलापैः = मधुरभाषणैः । आलोकैः = दर्शनैः । दुःख-दाव-दन्दह्यमानम् = क्लेशाग्निजाज्वल्यमानम् । न शीतलयन्ति = न शिशिरयन्ति ।

अश्रूणि मुञ्चन्तीम् = रुदन्तीम् । स्वप्राणाधारभूताम् = स्वजीवनाश्रयभूताम् । स्वकक्ष-गुटिकातः = निजबाहुमूलान्तरालस्थापितपोटलिकातः । पटखण्डम् = कर्पटम् । मौक्तिकैरिव, इत्युपमा । कवोष्णैः =

पतितैः कवोष्णैर्बिन्दुभिस्तद्धम्मिल्ल-मतल्लिकामासिञ्चन्, भग्नेन स्वरेण मन्दमगादीद् रघुवीरः—

किमत्र संशेषे ? कोऽत्र सन्देहः ? काऽत्र विचिकित्सा ? कौमार-ब्रह्मचर्य–महाव्रतेनैव गात्राणि जर्जरयिष्यामि, त्वामेव वा परिणेष्यामीति सुदृढा मे नियमः। त्वं क्षत्रिय-कन्याऽसि, सुक्षत्रिय एवैष जनः। त्व राजपुत्र-देशीयाऽसि, तद्देशीय एव चाहम्। अनुरागश्चोभयतः, तद् यदि तवाग्रजौ पूज्यपुरोहितश्चानुमन्येरन् तत्प्रकटमेव तूर्णमेव च स्यात् परिणयः—

इति वदत्येव तस्मिन्–"सौवर्णि ! कुतोऽसि ? अग्रजस्त्वां प्रतीक्षते,आगच्छ-आगच्छ"-इति देवशर्म-च्छात्र-विशेष-विहितेव दूराहूतिराकर्णि। सद्य एव च तौ कर्णयोः किमप्यालप्यैव, एकतः सौवर्णी, परतश्च रघुवीरः—इति द्वावपि शाद्वलमेनद् रिक्तमकुरुताम्।

❀ ❀ ❀

ईषदुष्णैः। "कवञ्चोष्ण" इति कवादेशः। धम्मिल्ल-मतल्लिकाम्= प्रशस्तं सयतकचम्। "मतल्लिका मचर्चिका प्रकाण्डमुद्धतल्लजौ। प्रशस्त-वाचकानि" इत्यमरः। "प्रशसावचनैश्च" इति परनिपातः। भग्नेन= त्रुटितेन।

संशेषे=संशयं करोषि। विचिकित्सा=सशयः। "विचिकित्सा तु संशयः"। दार्ढ्याय पुनरुक्तिः। कौमार-ब्रह्मचर्य-महाव्रतेन=आबाल-ब्रह्मचर्य-रूपेण महता नियमेन। जर्जरयिष्यामि=जीर्णयिष्यामि। परिणेष्यामि=विवाहयिष्यामि। क्षत्रियस्य कन्या=बालिका। सुक्षत्रियः=शोभनः क्षत्रियः। विवाहयोग्यतासूचकमिदम्। अग्रजौ=ज्येष्ठौ भ्रातरौ। प्रकटम्=प्रत्यक्षम्। तूर्णम्=शीघ्रम्।

देवशर्म-च्छात्र-विशेष-विहिता=देवशर्म-शिष्यान्यतमकथिता। दूरा-दाहूतिः=आह्वानम्। शाद्वलम्=घासमयं स्थानम्। रिक्तम्=शून्यम्। अकुरुताम्=व्यधत्ताम्। ततोऽगच्छतामिति भावः।

× × ×

तत्र तु गौरसिंहो देवशर्मणः पुरोहितस्योपवेश-भवने समुपविष्टो देवशर्म्मणैवमालपति स्म।

गौरसिंहः—गुरो! अद्यापि प्रधानभूता काचन घटना भवित्रीति श्रीमत आशिषमेव ग्रहीतुमायातोऽस्मि।

देवशर्म्मा-[प्रणमतः पृष्ठं संस्पृश्य] विजयी भूयाः!

गौरसिंहः-आर्य! अपि मे भगिनी सौवर्णी प्रसीदति?

देवः—आम्, प्रसन्नाऽस्ति। अथवा किमिव प्रसीदेत्? राजवंश-जातापि मातापितृ-विहीना भ्रातृ-साहचर्य-सुखमप्यननुभवन्ती वृद्धस्य मे सेवया कथं कथमपि दिनानि गमयति! अधुना तु तस्या विवाह-चिन्ताऽपि भवद्भयामावहनीया। कन्यका हि श्वशुरालये क्लेशिता अपि वरम्, न चान्यत्र सुखिन्योऽपि।

गौर०-आर्य! आवयोरपि मनसि वारं वारमुदेत्येष विषयः, किन्तु कोऽपि योग्यो वर एव न हृदयमारोहति। अपि स्मरति भवान् तातेन कस्मैचिद्दातुमेषा मनसि कृता?

देव०—स्मरामि, अम्बराधीशानां कुलजातः कश्चिद् वीरसिंहो नामान्यतमो भूस्वाम्यासीत्। स चैकदा सपुत्रस्तव तातेनोत्सवविशेषे समाकारितो बभूव। तत्पुत्रेण रामसिंहेन सह सौवर्णी चिर-

---

उपवेश-भवने=वार्तादिकरणार्थके सदने। 'बैठक' इति हिन्दी।

प्रणमतः=प्रणतिं कुर्वतः, शतुष्षष्ठ्या रूपम्।

प्रसीदति=प्रसन्नाऽस्ति।

राजवंशजाताऽपि=नृपान्वयोद्भवाऽपि। दिनानि=अहानि। गमयति=क्षपयति। आवहनीया=धारणीया। क्लेशिताः=क्लेशं प्रापिताः।

उदेति=उदयं प्राप्नोति। आरोहति=समागच्छति। अनुरूपो वरो न दृश्यत इति भावः।

कुले=अन्वये, जातः=उत्पन्नः। कुलपदस्य सविशेषणत्वेऽपि नित्यसाकाङ्क्षत्वात्समासः। भूस्वामी="जमींदार" इति हिन्दी। समाका-

मक्रीडत् । अन्यै समवयस्कैर्बालैश्च क्रीडास्वेव तयोर्विवाह-खेला व्यधायि । तदाकर्ण्य प्रीतः खड्गसिंहः, स्वमित्रं सुचरित वीरं प्रत्यज्ञासीत् यद्–"यद्युभौ चिरं जीवेताम्; तर्हि कोशला रामाय दास्यते"—इति ।

गौर०—अपि ज्ञायते सन्ति ते कुशलिनः ?

देव०—[निःश्वस्य] विचित्रा घटना भगवतः । तस्य सेनानिवेश-शैथिल्यमेकदा समवलोक्य, अम्बराधीशेन जयसिंहेन तस्याखिला भू-सम्पत्तिरपहृता । पत्नी चैतस्य विसूचिकापीडिता पुत्रमुखे दत्तदृष्टिरेव चरमं निरश्वसत् । वीरश्च सपुत्र-पुरोहितो रामेश्वरयात्रायै गतो नाद्यापि ज्ञायते क्वास्तीति ।

एवमालपत्स्वेव तेषु सौवर्ण्यपि समायाता, प्रफुल्लनयना च गौरस्य समीपे समुपविष्टा । गौरोऽपि तत्पृष्ठे दत्तहस्त- कुशलादिकं पृष्ट्वा यावत्किमप्यालपति, तावदकस्माद् रघुवीरोऽपि तत्राऽऽगत्य, देवशर्माणं प्रणम्य, सादरं गौरमुवाच—

आर्य ! क्षम्यतां किञ्चन अत्यावश्यकं निवेदयिष्यामि ।

अथ तयोरेवमभूदालाप' ।

रित =समाहूतः । अक्रीडत् = खेलामकार्षात् । समवयस्कै =तुल्यावस्थाकै. । विवाहखेला=क्रीडात्मकः परिणय' । व्यधायि=कृता । प्रीत =प्रसन्नः । प्रत्यज्ञासीत्=प्रतिज्ञामकाषात् । कोशला=साम्प्रतिकी सौवर्णी । रामाय=रामसिंहाय । वचनभङ्ग्या तदावश्यक निवेदितम् ।

सेनानिवेशे=सैन्यसग्रहे, शैथिल्यम्=त्रुटिम् । भू-सम्पत्तिः=गृहभूम्याद्यात्मकमैश्वर्यम् । विसूचिकया=तन्नामकेन रोगविशेषेण, महामार्यपरपर्यायेण, पीडिता=क्लेशिता । चरमं निरश्वसत् = अन्तिमं श्वासमग्रहात्, चरममिति क्रियाविशेषणम् । मृतेति यावत् । रामेश्वरस्य = भगवद्रामभद्रसस्थापितस्य दक्षिणभारतस्थस्य लङ्काविजयलक्ष्मभूतस्य धामचतुष्टयान्यतमाधीशस्य, यात्रायै=दर्शनार्थगमनाय ।

प्रफुल्लनयना=विकसितनेत्रा ।

गौर०—कथय कथय किं कथयसि ?

रघु०—इतः पश्चिमतो गव्यूत्यन्तराले कतिभिश्चन यवनसादिभिरावृता बहुभिर्भल्लहस्तैर्धानुष्कैः शाक्तीकैश्च सुरक्षिता शिबिकैका नीयते । निरचैषमवेदिषं च यत् कस्मैचित् प्रयोजनाय गोलखण्डपर्यन्तं दिल्लीश्वरः समायातोऽस्तीति—तत्साक्षात्काराय तद्दुहिता रसनारी यातीति । तदत्राऽऽर्याः प्रमाणम् ।

गौर०—आ ! किमुक्तम् ? दिल्ली-कलङ्कस्य कन्या ?

रघु०—एवम् ।

गौर०—योऽसावार्याणां दारानपहरति, सतीर्दूषयति; तस्यैव कन्याऽद्य महाराष्ट्र-सिंहानां कन्दर-द्वारि मृगीव स्वयमापतिता ?

रघु०—एवमेव निश्चीयते ।

गौर०—आर्यपुरोहित ! सौवर्ण्यपहारक-यवन-युवक-हत्ययाऽपि न शाम्यति मे क्रोधः, तदद्य पर-वधू-कन्या-हरणं कथमिवारुन्तुदमिति 'अवरङ्गजीव'-हतकमनुभावयिष्यामि । तदनु-

पश्चिमतः = पश्चिमाया दिशि । गव्यूतेः = क्रोशद्वयस्य, "गव्यूतिः स्त्री क्रोशयुगमि" त्यमरः । अन्तराले = मध्ये । यवनसादिभिः = म्लेच्छाश्वारोहिभिः । भल्लहस्तैः=बाण प्रहरणवद्भिः । धानुष्कैः = धनुर्धारिभिः । शाक्तीकैः = शक्ति-प्रहरणवद्भिः । शिबिका = नरवाह्या पालंकी । निरचैषम् = निणातवान् । अवेदिषम्=अज्ञासिषम् । गोलखण्डपर्यन्तम् = "गोलकुण्डा" स्थानान्तम् । दिल्लीश्वरः = अवरगजीवः । तद्दुहिता = तत्पुत्री, रसनारी = "रोशन आरा" इति ख्याता ।

आर्याणाम्=हिन्दूनाम् । दूषयति = पांसुलयति । कन्दरद्वारि = गुहामार्गे । मृगीव=हरिणीवेत्युपमा, दैन्यं द्योतितम् ।

सौवर्ण्याः, अपहारकस्य = चोरयितुः । यवनयुवकस्य, हत्यया=मारणेन । परेषाम्=अन्येषाम्, वधूनाम्=स्त्रीणाम्, कन्यकानाम्=अविवाहितानां बालिकानाम् । कथमिव = केन प्रकारेण । अरुन्तुदम् = मर्मपीडकम् । अनुभावयिष्यामि = अनुभवगोचरतामानयिष्यामि । अनुमन्यताम् =

मन्यतां त्वरितमार्यैः ।

इति प्रणम्य सह रघुवीरेण सपदि निवृत्त· तोरणदुर्गात् कांश्चि-दपि चतुरान् सैन्धवारोहान् सह नयन्, स्वाधिष्ठितचरकुटीरतः कटि-पटाच्छन्न-च्छुरिकान्, सान्तर्भल्ल-कृत्रिम-दण्डहस्तान्, शतं मस्करिवेषान् वीरान् सह नीत्वा येन पथा सा शिविका समानीयते तस्मिन्नेवैकत्र पर्वत-प्रान्ते गण्ड-शैलावृत-स्थले वर्षा-वारि-पूर्णमे-कमल्प कुण्डमालोक्य विपाक्तं विधाय, तत्प्रान्त-प्ररूढ-कुसुम-स्त-बकेष्वपि घ्राणमात्रेण मूर्च्छावहं गरलमायोज्य, तत्परिसरवनभागे एव सर्वे समाच्छन्ना समतिष्ठन्त ।

तावत् समायातास्ते सगणा' शिविकावाहाः । "अहो ! रम्यमिदं स्थानम्, क्षणं विरम्यताम्, उदकादिकं पीयताम्, परतो यास्यते"

अनुज्ञायताम् । त्वरितम्=शीघ्रम् ।

सपदि=तत्कालम् । सैन्धवारोहान्=सादिनः । स्वाधिष्ठित-चरकुटीरतः=स्वाध्युषितकुटीरात् । 'भूतपूर्वे चरट्' । कटिपटेषु=मध्यभागी-यवसनेषु, आच्छन्नाः=गुप्ततया स्थापिताः, छुरिका'=असिधेनवः यैस्तान् । सान्तर्भल्लाः=सगुप्तशल्याः, कृत्रिमा·=निर्मिताः, दण्डाः = "गुप्ती" इति ख्याताः, हस्ते येषा तान् । शतम् = शतसङ्ख्याकान् । मस्करि-वेषान्=परिव्राजकवेषधारिणः । "भिक्षुः परिव्राट् कर्मन्दी पाराशर्यपि मस्करी" इत्यमरः । पर्वतप्रान्ते=गिर्येकदेशे । गण्डशैलैः, आवृते = सञ्छन्ने, स्थले = भुवि । वर्षा-वारि-पूर्णम् = प्रावृड्-जल-भरि-तम् । अल्पम् = क्षुद्रम् । कुण्डम् = पल्वलम् । विपाक्तम्=हालाहला-दिमिश्रम् । तत्प्रान्त-कुसुम-स्तबकेषु=तद्देश-सञ्जात-पुष्पगुच्छेषु, घ्राण-मात्रेण = केवलेन गन्धग्रहणेन, मूर्च्छावहम् = विचेतनतापादकम् । गरलम्=विषम् । आयोज्य=सम्मिश्र्य । तत्परिसर-वनभागे = तद-न्तिकविपिनैकदेशे । समाच्छन्नाः=निलीनाः । समतिष्ठन्त = स्थिताः ।

सगणाः=ससैन्याः । रम्यम्=हृद्यम् । क्षणम्=मुहूर्त्तम् । परत'=

इति वदन्तः, उपविशोपविश, तिष्ठ तिष्ठ, रुन्धि रुन्धि, इति सर्वे तत्रैव विरेमुः। यावत्ते किमपि बुभुक्षव इव, इतस्ततः समवलोकयन्ति; तावदकस्मादेको वृद्धः करधृत-गात्रावलम्ब-दण्डः पिटकमेकं वहन् दृष्टः। "अरे! रे! दशमिहतक! किमास्ते पेटायाम्? कुतो यासि?" इति पृष्टोऽसौ ईषत्त्रस्त इव; "न न न न किमपि, भ भ भगवन्!" इति कथयन् त्वरितं चलितः। ते तु सर्वे गृह्णीध्वं गृह्णीध्वं, हरध्वं हरध्वम्, लुण्ठत, लुण्ठत, हत हतेति त वराकमहम्पूर्विकया लुलुण्ठुः। स च कृत्रिम-पथिकः सकपट-क्रन्दन-गलज्जलैर्मुखं क्षालयन् तिरोबभूव।

एते च तत्पेटकाद् मधुर-मोदक-वृन्दमाप्य, परस्परं विभज्य, बुभुजिरे। तत्र प्रत्येकं मूर्छक-द्रव्यमयमास्वाद्य सर्वेऽप्यशयिषत। तन्मण्डलाध्यक्षस्य तु समीपे शूलाकृतं मांसं काच-पात्र-परि-

---

पश्चात्, यास्यते = गमिष्यते। रुन्धि-रुन्धि = स्थगितो भव, स्थगितो भव। सम्भ्रमे द्विरुक्तिः। विरेमुः = यात्रा स्थगितामकार्षुः। बुभुक्षव इव = भोक्तुमिच्छव इव। अकस्मात् = सहसा। करधृतगात्रावलम्बनदण्डः = हस्तगृहीतशरीरालम्बदण्डः। पिटकम् = मञ्जूषाम्। वहन् = नयन्। दशमिहतक = दशमीमवस्था गत! वृद्ध नीच। नवतितः शतवर्षपर्यन्तमायुषः दशमीति सञ्ज्ञा। ईषत्त्रस्त इव = किञ्चिद्भयाक्रान्त इव। हरध्वम् = चोरयध्वम्। हत = ताडयतेत्यर्थकम्। अहम्पूर्विकया = अहं पूर्वमहं पूर्वमिति मनीषापूर्वम्। लुलुण्ठुः = बलाच्चोरयामासुः। सकपटम् = सव्याजम्, यत् क्रन्दनम् = रोदनम्, तस्मिन् गलद्भिः = स्रवद्भिः, जलैः = अश्रुभिः। तिरोबभूव = अन्तर्हितः।

मधुर-मोदक-वृन्दम् = सरसमिष्टसमूहम्। आप्य=लब्ध्वा, आङ्प्रश्लेषोऽत्र ध्येयः। मूर्छकद्रव्यमयम् = मोहकविषमिश्रम्। आस्वाद्य=रसयित्वा। अशयिषत = निद्रामलभन्त। तन्मण्डलाध्यक्षस्य = सेनापतेः, शूलाकृतम्=शूले पक्वम्। काचपत्रे=वर्तुले, "बोतल" इति हिन्दी। परिपूरितम्=

पूरितं मद्यं चाऽऽसीदिति स तदास्वादनमात्रासादिततृप्तिः केवलं जागर्ति स्म ।

अथाकस्मात् सतडतडाशब्दं वर्षन् कश्चन मेघखण्ड उपरिष्टात् समायातः । न कोऽप्युदस्थादित्यवलोक्य, अत्यन्त समशयिष्टा-ध्यक्ष. । स्वयं स्वास्तरणमेकस्याऽऽसन्नस्य च्छायातरोर्मूल आकृष्य, वाहकानाह्वयमानां शिविकान्तस्थां रसनारीम्—"मन्ये न कोऽपि जागर्ति, सर्वेऽत्यन्तगाढ—निद्रया सुप्ता एते दास्याः पुत्राः"—इति वोधयित्वा, अखिलान् पादाघातेन कराकर्षणेन चाऽऽलोक्य सत्यं मूर्च्छितानवगत्य, शीतलयितुं सुगन्धि-कुसुमानि जिघ्रापयिषु', पार्श्वपरिवर्ति-क्षुपाग्रात् गुच्छकमेकमाचिनोत् । तत्समीपे समागच्छंश्च नव-कुसुम-स्तवक-रूप-दर्शन-मोहितो गाढं स्वयमेवाघ्रात् । तत्क्षणाच्च भूमौ पतितो मुमूर्च्छ । वृष्टिरप्यकस्मात् प्रशममाप ।

भरितम् । मद्यम् = सुरा । तदास्वादनमात्रेण = तत्स्वादनपानमात्रेण, आसादिता = लब्धा, तृप्तिः = परितोषः, येन सः । केवलम् = एकाकि, क्रियाविशेषणम् ।

सतडतडाशब्दम् = सविद्युत्स्तनितद्ध्वनि । समशयिष्ट = स्वापम-कृत । स्वास्तरणम् = स्वविष्टरम् । च्छायातरो = च्छायादायिवृक्षस्य । वाहकान् = शिबिकावोढॄन् । अत्यन्तगाढनिद्रया = प्रबलस्वापेन । दास्याः पुत्रा = नीचा. । "षष्ठ्या आक्रोशे" इति षष्ठ्या अलुक् । पादाघातेन = चरणताडनेन, कराकर्षणेन = हस्ताकृष्ट्या । शीतलयितुम् = शिशिरयितुम् । निद्रा दूरयितुमिति यावत् । सुगन्धिकुसुमानि = आमोदिपुष्पाणि । जिघ्रापयिषु = घ्रापयितुमिच्छु. । पार्श्वपरिवर्तिनः = समीपस्थस्य, क्षुपस्य = ह्रस्वशाखिनः, अग्रात् = प्रान्तात् । गुच्छकम् = स्तबकम् । आचिनोत् = अत्रोटयत् । नवकुसुमस्तवकस्य, रूपदर्शनेन = शोभानिरीक्षणेन, मोहित. = वशीकृतान्तरङ्गः । अघ्रात् = घ्राणविषयमकृत । मुमूर्च्छ = मूर्च्छामधिगतवान् । प्रशमम् = शान्तिम् । आप = लेभे ।

तत्क्षणादेव संन्यासि–कदम्ब–संवलितः कतिपयैः सादिभि-रनुगतो गौरसिंहः समाजगाम। एते कपट-संन्यासिनस्तु यवन-स्पर्शे घृणामावहन्तोऽपि क्षात्र–धर्ममाकलय्य, झटिति तत्कञ्चुकैर्दिल्ली-श्वर–नामाङ्कित–रजत–फलकालङ्कृतोष्णीषैस्तादृश–पित्तल–पट्टिका-ङ्कित-कटिबन्धैश्चाऽऽत्मानमलञ्चक्रुः। एवं केचन तरुशाखालम्बि-तान् वाजिन उन्मुच्य, वल्गादि–योजनैः सज्जीकृत्य, वलित–वार-बाणाः, सुप्त–सादि-शस्त्रैरेव धानुष्काः, काण्डीराः, शाक्तीकाः, याष्टीकाः, पारश्वधिकाः, प्रासिकाः, नैस्त्रिंशिकाः, कौन्तिकाः, फलक-पाणयश्च भूत्वा तानारुरुहुः। अपरे तथैव परिवर्तितवेषा जङ्घालाः, इतरे च वाहकतामङ्गीकृत्य पालङ्कीमुत्थाप्य, सर्वे सह तोरणदुर्गा-भिमुखमेव चल चलेति चेलुः। एव रसनारीमेनां तोरण-दुर्गे संस्थाप्य, दुर्गाध्यक्षं च यथोचितादरैस्सत्कर्तुं रक्षितुं च प्रार्थ्य, जवन निज-माजानेयमारुह्य, तन्निगालमास्फोट्य, सह रघुवीरेग कचिदास्क-

संन्यासि-कदम्ब-संवलित.=मस्करि-व्यूह-समेतः। घृणाम्=जुगुप्साम्। झटिति=त्वरया। तत्कञ्चुकैः=तेषां वसनैः। दिल्लीश्वरनाम्ना, अङ्कितैः=चिह्नितैः, रजतफलकैः=रौप्यपट्टिकाभिः, अलंकृतैः=भूषितैः, उष्णीषैः=शिरोवेष्टनैः। तादृशीभिः, पित्तलपट्टिकाभिः=रीतिफलकैः, अंकितैः,कटिबन्धैः=परिकरबन्धैः। अलञ्चक्रु.=भूषयामासुः। तरुशाखाल-म्बितान्=वृक्षस्कन्ध-निबद्धान्। वल्गादीनाम्=कविकादीनाम्, योजनैः=संश्लेषणैः। वलिताः=धारिता.,वारबाणा=कवचानि यैस्ते। सुप्तसादिशस्त्रैः=निद्रालु-घोटकवाहासिप्रभृतिभिः। धानुष्काः=धनुर्धारिणः। काण्डीराः=बाणवन्तः। शाक्तीकाः=शक्तिप्रहरणाः। याष्टीकाः=यष्टिप्रहरणाः। पार-श्वधिकाः=परश्वधप्रहरणाः। प्रासिकाः=प्रासप्रहरणाः। नैस्त्रिंशिका.=खड्गप्रहरणा। कौन्तिका=भल्लधारिणः। फलकपाणिनः=चर्महस्ताः। तान्=अश्वान्। परिवर्त्तितवेषाः=अंगीकृतराजभटनेपथ्याः। जङ्घालाः=वेगेन धावकाः। वाहकताम्=शिबिकावोढृताम्। पालङ्कीम्=शिबि-काम्। "पालकी" इति हिन्दी। जवनम्=वेगवन्तम्। आजानेयम्=शोभनमश्वम्। तन्निगालम्=तद्गलोद्देशम्। आस्कन्दितैः=उत्प्लुत्यो-

न्दितैः, क्वचिद् धौरितकैः; क्वचिद् वल्गितैः, प्लुतैः, निम्लोचति-मार्तण्डमण्डले सपदि-सिंहदुर्गमायातो गौरसिंहः ।

अस्मिन् समये पश्चिमाशा-कुण्डलमिव मार्तण्ड-मण्डलमस्ताचल-चूडा-शोणोष्णीपता भेजे। सिंहदुर्ग-प्राचीराऽभ्यन्तर एव निःशब्द वीरा युद्धसज्जां विदधति स्म। भूषणकविर्वीररस-कविता-पाठैरखिलानामुत्साहं द्विगुणयति स्म। वीरा अन्तर्लौहं वर्म्म परिधाय, तदुपरि माङ्गलिक-वर्णैर्वारवाणैरङ्गरक्षिकाभिश्चाऽऽत्मानमाभूष्य, सारसन बद्ध्वा, आयस-शीर्षच्छादकस्योपरि स्वदेशीयं चक्रोष्णीप धारयन्ति स्म।

अथोच्चाया एकस्या वेदिकाया उपरि समारूढो महाराष्ट्रराजः शिववीर समवालोकयत्—यत् पूर्वस्यां रिङ्गत्तरङ्ग-भङ्गाहत-तीरा शीतल-समीरा धलद्धलद्-ध्वनि-धीरा गम्भीरा नीरानाम्नी नदी

प्लुत्य गमनैः। "पाईया" हिन्दी। धौरितकैः=वेगात् गमनैः। वल्गितैः=उच्छालनविशेषैः। "आस्कन्दित धौरितक रेचित वल्गित प्लुतम्। गतयोऽमूः पञ्चे"ति कोशेऽश्वगतिः पञ्चप्रकारा प्रदर्शिता। निम्लोचति=अस्तं गच्छति। मार्त्तण्डमण्डले=भास्करबिम्बे।

पश्चिमाशायाः=वारुण्या दिश, कुण्डलमिवेत्युपमा। अस्ताचलस्य=चरमगिरेः, चूडाया=मस्तकस्य, शोणोष्णीपताम्=रक्तशिरोवेष्टनताम्। भेजे=स्वीचकार। सिंहदुर्गस्य, प्राचीरस्य=प्रान्ततो वृतेः। अभ्यन्तरे=अन्तराले। युद्धसज्जाम्=सङ्ग्रामसन्नाहम्। अन्तः=निम्नाङ्गे। लौहम्=लोहनिर्मितम्। माङ्गलिकवर्णैः=पीतादिभिः। वारवाणैः=कवचैः। अङ्गरक्षिकाभिः=शरीररक्षयित्रीभिः। आभूष्य=भूषयित्वा। सारसनम्=कटिबन्धनम्। आयसस्य=लोहनिर्मितस्य, शीर्षच्छादकस्य=शिरस्त्राणस्य। स्वदेशीयम्=भारतनिर्मितम्। चक्रोष्णीपम्=गोल शिरोवेष्टनम्। रिङ्गत्तरङ्गभङ्गैः=समुच्छलल्लहरिच्छेदैः, आहतम्=ताडितम्, तीरम्=तटप्रदेशो यस्याः सा। शीतलसमीरा=शिशिरवायुसमवेता। धलद्धलद्ध्वनिना=धलदित्यनुश्रूयमाणशब्देन,

प्रवहति। दक्षिणा प्रतीच्यां च गिरिराजीनां परतो गिरि-राजयः, स्वकीयैरभ्रलिहैरुच्चोच्चैः सानुभिरधित्यकास्थैररण्यानी-संस्थानै-र्मेघमाला-मण्डल-भ्रममुत्पादयन्ति। उदीच्यां च सुदूर-विस्तृतं हरित-शाद्वलम्, ततश्च पुण्यनगरमवलोक्यते। दुर्गमिदं शैल-शिख-रस्थमिति दूर-वीक्षण-नलिकातो वीक्षणेन विलिख्य स्थापितं चित्रमिव साकल्येन नगरमिदमालोक्यते स्म। शिववीरः, तेन सह द्वित्राणि मित्राणि च, सतर्कं सविविध-भाव-भङ्गं नगरमेनदा-लोकयन्ति। रजन्यामेतस्मिन् नगरे केव दुर्घटा घटना भविन्त्रीति च पर्य्यालोचयन्ति स्म।

अस्मिन् मण्डले वहुदर्शी शिव-पितृ-करपल्लव-च्छायाया यापित-बाल्य-वयस्को युद्ध-विद्या-निष्णातः श्रीमुरेश्वराख्य एको वीरवर आसीत्। अपर आबाजीस्वर्णदेवाभिधो ब्राह्मणः, येन स्ववाहुवलेन सर्वोऽपि कल्याणप्रदेशः कल्याणदुर्गं च शिवस्य वशमानीतमा-

धीरा = मन्दगमना। गम्भीरा = अगाधजला। दक्षिणा = दक्षिणस्याम्। आनन्तमव्ययम्। प्रतीच्याम् = पश्चिमायाम्। गिरिराजीनाम् = पर्वतश्रेणी-नाम्। स्वकीयैः = नैजैः, अभ्रंलिहैः = मेघस्पर्शिभिः। सानुभिः = शृङ्गैः। अधित्यकास्थैः = पर्वतोर्ध्ववर्तिभिः। अरण्यानी-संस्थानैः = महारण्य-निवेशैः। मेघमालामण्डलभ्रमम् = नीरदराजिबिम्बभ्रान्तिम्। उदी-च्याम् = उत्तरस्याम्। सुदूरविस्तृतम् = अतिविस्तीर्णम्। हरित-शाद्वलम् = हरिद्वर्णघासमयम्। दूरवीक्षणनलिकात् = "दूरवीन" इति प्रसिद्धयन्त्रेण। वीक्षणेन = अवलोकनेन। विलिख्य = चित्रीकृत्य। स्थापितम् = रक्षि-तम्। साकल्येन = सम्भूय। सतर्कम् = सविचारम्। दुर्घटा = अभूत-पूर्वा। घटना = दशा। पर्य्यालोचयन्ति स्म = व्यचारयन्।

वहुदर्शी = दीर्घदर्शी। शिव-पितृ-कर-पल्लव-च्छायायाम् = शिव-वीर-जनक-हस्त-किसलय-च्छायायाम्। तदाश्रये इति भावः। यापितम् = क्षपितम्, बाल्यम् = आद्यम्, वयः = अवस्था येन सः। युद्ध-विद्यायाम् = संग्रामकलायाम्, निष्णातः = निपुणः, श्रीमुरेश्वराख्यः = "मोरेश्वर,

सीत् । इतरश्च "अन्नजीवदत्त."; येन स्ववीर्येण वर्षचतुष्टयात् प्राक् पानाल्य-दुर्गं यवन-दुर्गं च शिवस्य हस्तगतं कृतम् । तदेते त्रयोऽपि सम्मुखमायाता एवमालापमकार्षु ।

सुरेश्वर.-आर्य ! सत्यमेव स्थिरीकृत यदद्य वा श्वो वा स्वर्गमेवं या न सह नेष्यति श्रीमान् ?

शिवराज.-वीरवर ! क्षम्यताम्, नाहं युष्माकं धैर्यं गाम्भीर्यं चातुर्यं वीर्यं वा विस्मरामि । परमलमनुरोधेनश्च । केवलमाशीर्भिरेव संवर्द्धयतामेष जन । निश्चयेनाह युष्मदाशी. सवर्द्धितो विजेष्ये । दैवाद् वीरगतिं गतश्चेद् भवन्तु कुशलिनु पुनरपि स्वतन्त्रमेव महाराष्ट्र-राज्यम्, पुनरपि प्राप्तशरणो वैदिको धर्म, पुनरपि च कम्प एव वक्ष सु भारत-प्रत्यर्थि-पत्नीनाम् । युष्मासु मया सह भारतभुवं विरहयत्सु च कस्मिन् धुरं धारयिष्यति धर्मः ? कमालम्बिष्यते भारताभिजन-स्वातन्त्र्य-भार: ? कस्याग्रे च रोदिष्यति नवोन्नतिमासादयन्ती महाराष्ट्र-जाति ? तदलमालापान्यत् ! सहसहचराय मे स्वस्त्युच्यताम्, यथा लीलयैवेतान् प्रमत्त-हतकान् विजये ।

मोरोपन्त" इति प्रसिद्धः । अन्नजीवदत्त = "अण्णाजीव, दत्तोजी" इति ख्यातः । स्ववीर्येण = स्वबलेन ।

धैर्यम् = धीरताम् । गाम्भीर्यम् = गूढप्रकृतिताम् । चातुर्यम् = कौशलम् । वीर्यम्=बलम् । विस्मरामि=विस्मृतिपथमानयामि । सवर्द्धयताम् = प्रोत्साह्यताम् । युष्माकम् = भवताम्, आशीर्भि = सदाशसनै., संवर्द्धितः = वृद्धिं गमित. । वीराणा गतिम् = सूर्यमण्डलं भित्त्वोर्ध्वगतिम् । प्राप्तशरण' = लब्धरक्षणः । "शरणं गृहरक्षित्रोः" इत्यमरः । भारतप्रत्यर्थिपत्नीनाम् = हैन्दवशत्रुस्त्रीणाम् । विरहयत्सु = विरहिता कुर्वत्सु । धुरम् = भारम् । भारताभिजनस्वातन्त्र्यभार =हैन्दवदेशस्वतन्त्रताधुरा। नवाम् = नवीनाम्, उन्नतिम् = वृद्धिम् । आसादयन्ती = प्राप्नुवती । सह सहचराय = सहगणाय । "नमः स्वस्ती" ति चतुर्थी स्वस्तियोगे । "प्रकृत्याशिषि" इत्यनेन सादेशनिषेधः । विजये = विजय करोमि ।

ततस्तेष्वाशीराशीन् वदत्सु सपदि प्रविश्य प्रणनाम गौरसिंहः। शिवेन सप्रेमाऽऽशीराश्युदन्तं पृष्टश्चोवाच—"भगवन्! वरयात्रा-प्रस्थानात् प्रागेव वधू-प्रवेशो जातः"। अथ "किमिति? किमिति?" पृच्छति सर्व-वीर-मण्डले, स विशकलय्य सर्वमकथयद् रसनारी-लाभचरितम्, कुशलेन तोरणदुर्गे स्थापन-वृत्तान्तञ्च। तदाकर्ण्य चात्यन्त-प्रमुदिताः सर्वे—"अतिमाङ्गलिकमिदं, मूर्तिमतीयं जयश्रीः, निश्चितो जय आर्यचरणानाम्"—इति प्रोचुः।

शिवराजस्तु—"गौर! यद्यप्यल्पं ते वयः, तथाऽपि युद्धकार्येष्वनियुक्तोऽपि बहुधा मां तोषितवानसि, तदस्मिन् युद्धयात्रा-समये मङ्गलमाचक्षाणोऽवश्यं पुरस्कार्य"—इति सादिनां पञ्चसहस्र्या अध्यक्षतायां त्वां विनियुनज्मि, अङ्गीकुरु"—इत्यगादीत्।

अथ समस्तक-नमनमङ्गीकुर्वति गौरे शिवेङ्गितेन तत्पदार्हाणि वासांसि विश्राणयति सुरेश्वरे, तत्पदसूचकमेकं सुवर्ण-पट्टकं वक्षसि, ससुवर्णकोशं खड्गं च कटिप्रदेशे शिवः स्वहस्तेन स्वयमायोजयत्। तदुदारता—वर्णन—कविता रचयन्तं पठन्तं च भूषणं मौक्तिक—मालया सम्मान्य यावत् पुरः पश्यति; तावद् दृष्टम्—

"विपराभ्यां जेरिः" त्यात्मनेपदम्। सप्रेमाशीराशि = सस्नेहमङ्गलोक्ति-पुरस्सरम्। उदन्तम् = वृत्तान्तम्। विशकलय्य = स्पष्टीकृत्य। रसनारी-लाभचरितम् = "रोशन आरा" प्राप्तिवृत्तम्। जयश्रीः = विजयलक्ष्मीः।

अनियुक्तोऽपि = अप्रेरितोऽपि। आचक्षाणः = कथयन्। पुरस्कार्यः = पारितोषिकदानार्हः। अध्यक्षतायाम् = स्वाम्ये, सैनापत्ये। विनियुनज्मि = स्थापयामि।

तत्पदार्हाणि = तत्स्थानयोग्यानि। तादृशसेनापतिधारणीयानीति यावत्। विश्राणयति = ददति। सुवर्णपट्टकम् = हैरण्यपट्टिकाम्। ससुवर्णकोशम् = सुवर्णनिर्मितेन आच्छादकेन सहितम्। आयोजयत् = योजितवान्। तदुदारतायाः = तदीयमुक्तहस्तविश्राणनस्य, वर्णने, कविताः=

पुरतश्चिर-सहचरा माल्यश्रीका नयन-जल-क्षालित-कपोलः सहग-मनानुमतिं वाञ्छतीति। तन्निषेधमनुचितं मन्यमानस्तत्प्रार्थनामङ्गी-कृत्य चरणयोः पतितं रघुवीरमपश्यत्। "किं किं? कथनीयं वा किमपि?"—इति पृष्टः स प्रावोचत्-महाराज! तद्दिने तोरण-दुर्गान् सपदि पत्रादिकमानीतवन्तं मामवलोक्य प्रसन्नः पारितोषिकं प्रत्यज्ञासीदार्य।

तत शिवराज प्राह—सत्यं दास्यते, किन्तु त्वरासमये साम्प्रत-मसाम्प्रतं तद्याचनम्। तथाऽपि कथय किं याचसे?। रघुवीर उवाच—भगवन्निदमेवाभ्यर्थये यदनुगन्तुमाज्ञाप्योऽयं विधेयः। तदाकर्ण्यात्यन्तचकित शिवराज प्राह—चित्रम्! सन्देश-हर-पदे नियुक्तोऽसि, अतिशिक्षित-वीर-कार्य-प्रवाहे च पतितुं साहस-माधत्से! कथमेतत्?

रघुवीर आह—महाराज! स्वकुटुम्बेऽहमेकोऽस्मि, विनष्टं माम-वगत्य न कोपि रोदिष्यति, प्रभु तोषयितुं शक्ष्यामि चेत् आयतिर्मे मङ्गलमयी।

शिवस्तु विलम्बस्यानवसरमाकलयन् झटित्योमित्युवाच। स

काव्यानि। नयनजलेन=अस्रण, क्षालितौ=धौतौ, कपोलौ=गण्ड-स्थले यस्य सः। प्रत्यज्ञासीत्=प्रतिज्ञातवान्।

असाम्प्रतम्=अयुक्तम्। "युक्ते द्वे साम्प्रत स्थाने" इत्यमरः। आज्ञा-प्य =आदेशयितव्यः। चित्रम्=आश्चर्यम्। सन्देशहर-पदे=वार्त्ताहर-स्थाने। अतिशिक्षिताना वीराणा कार्यप्रवाहे=कर्त्तव्यधारायाम्। साहसकार्ये इति यावत्।

विनष्टम्=अदृष्टम्। मरणन्तु नार्थो मङ्गलवेलायाममङ्गलाभिधानस्य कविसमख्यातिविरुद्धत्वात्। आयति=उत्तरकालः। "उत्तरः काल आयति" रित्यमरः।

अनवसरम्=असमयम्। आकलयन्—विचारयन्। ओम्, अङ्गीकार-

च शिरसा भुवं स्पृशन् प्रणम्य गुरुमतोऽभूत् । अथाऽऽशिषप्रक्षि-पमाणं गौरं सम्बोध्य शिवराजेनाभाणि—

त्वं तु साद्रिनां पञ्चशतीं सह नीत्वा गुप्तनगरस्य पूर्वतः प्रतीक्षस्व, यदि रक्तोल्काभिपुष्पं गगने समुड्डीयमानं पश्येः, तदन्वं बलात् प्रविश्य प्रत्यर्थिनामाक्रमणं विधास्यसि, इतश्च पश्चिमतः स्वर्णदेव आर्यः।

स च तथेत्युक्त्वा तथा कर्तुं प्रचलितः, स्वर्णदेवोऽपि चोमिति स्वीचकार ।

शिवराजोऽपि-प्रतीक्ष्यताम्, जननीं प्रणम्याऽऽगच्छामि-इति व्याहरन्नन्तः प्रविष्टो मुहूर्तानन्तरं च पटान्तेन चक्षुषी परिमृजन् निरगात्, आलापीच ।

शिवः—अपि सज्जा यूयम् ?

मान्यश्रीकः—आम् ! प्रस्तुता वयम् ।

शिवः—अथ विजयतां त्रिपुरमथनो देवदेवः ।

सर्वे—विजयते महादेवः ! विजयतं सनातनधर्मः ! विजयते च

ब्राह्मणा —[कुङ्कुमाक्षत-दान-पुरःसरम्]

"अक्षतान् विप्रहस्तेभ्यो नित्यं विन्दन्ति ये नराः ।
तेषां विवृद्धिमायान्ति लक्ष्मीरायुर्यशो बलम् ॥"

'शत्रवः पराभवं यान्तु, शाम्यन्तु घोराणि, शाम्यन्तु पापानि, हताश्च ब्रह्मद्विषः, हताश्च परिपन्थिनः, हताश्च विघ्नकर्तारः, श्रीरस्तु" ।

माल्यश्रीक —"यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः"—एवं सर्वे इष्टदेवं स्मरन्तो माङ्गलिक-शब्दानुच्चारयन्तो महता कोपेन रिपु-निकरं दिधक्षन्त इव दुर्गादवातरन् ।

सिंहदुर्गात् पुण्यनगरपर्य्यन्तं शिवराजेन तूष्णीमदीपप्रकाशा अवाग्विलासा सेना सन्निवेशिता । स्वयं च पञ्चविंशतिं वा त्रिंशद् वा उत्साहधनान् धीरान् वीरान् सह नीत्वा, पुण्यनगर-प्रवेश-द्वार-समीपे एव गहने गाढान्धकारे आम्रवणे प्रतीक्षमाण समतिष्ठत ।

तावत् "ढं ढ ढम्" इत्यश्रावि वाद्य-निनदः, आलोकिषत च स्थूलवर्तिका महाद्युतयो दीपाः । परस्परमालोक्य तैः कथितमियं सा वरयात्रेति । अथ समीपमायाते तस्मिन् वरयात्रामण्डले शनैः शनै रेते सर्वेऽपि तैरेव सह मिलिताः सुखेन पुण्यनगरं प्रविष्टाः ।

अक्षतान्=क्षतशून्यान् तण्डुलकणान् । "लाजाः पुंभूम्नि चाक्षताः" इत्यमरः । विप्राणाम्=ब्राह्मणानाम्, हस्तेभ्यः । नित्यम्=सततम् । विन्दन्ति=प्राप्नुवन्ति, "विद्लृलाभे" । विवृद्धिम्=विपुलां वृद्धिम् । शाम्यन्तु=शान्तिं गच्छन्तु । घोराणि=उपद्रवरूपाणि । ब्रह्मद्विषः=वेदयवनो ब्राह्मणशत्रवश्च ।

रिपुनिकरम्=शत्रुव्रातम् । दिधक्षन्त=दग्धुमिच्छन्तः ।

अदीपप्रकाशा=आलोकरहिता । अवाग्विलासा=भाषणरहिता । सन्निवेशिता=सम्थापिता । उत्साहधनान्=सोत्साहान् । धीरान्=धैर्यशालिनः । गहने=अविरलवृक्षके । गाढोऽन्धकारो यस्मिंस्तस्मिन् । आम्रवणे=रसालविपिने ।

वाद्यनिनदः=भेरीध्वनिः । आलोकिषत=दृष्टाः । स्थूलवर्त्तिकया महाद्युतयः=विशिष्टकान्तिशालिनो दीपाः="मशाल" इति ख्याताः ।

यत एव सपादाता', सवाडवा', घाण्टिक–चाक्रिकायुधिक–वैजयन्तिक–वादकादि–सहिताः कृशानुक्रीडा–कलन–कौतुकिन एते यान्ति स्म, तत एव गवाक्षेभ्यः क्रोड–स्थापित–स्तनन्धया गृहिण्यः, उच्चकुचाग्रास्फालित–गवाक्ष–दण्डाः स्वप्रेमपात्र–प्रियजन–दन्तक्षत-व्रण–विषम–ताम्बूलराग–रञ्जिताधराश्चिरण्ट्यः अङ्गुल्या इदमिद-मिति निर्दिशन्त्य' पश्यन्ति स्म ।

शनैरायात एष समारोहः शास्तिखानाध्युषित-गृह-द्वार-पर्य्यन्तम् । शास्तिखान-सीमन्तिन्योऽपि धमद्धमद्ध्वनि-समाकर्णन-जात-कुतूहलाः, निरादृततन्द्राः, मन्दाक्ष-मन्द-प्रचारा प्रतिसीराः अपसारमपसारम्, लशुन–पलाण्डु–गन्ध–कटुभिर्जम्भा–परम्पराभिर्नासा – मौक्तिकानि

सपादाताः=सपदातिसैनिकाः, सवाडवाः=सघोटकाः । घाण्टिकाः= घण्टया चरन्तः, चाक्रिकाः=चक्रेण चरन्तः, आयुधिकाः=आयुध-जीविनः, वैजयन्तिकाः=ध्वजधारकाः । वादकाः=वाद्यवादनपटवः, एतदादिभिः सहिताः=समेताः । कृशानुक्रीडायाः="आतिशबाजी" इति ख्यातायाः, कलने=करणे, कौतुकिनः=सकुतूहलाः, यान्ति स्म= अगच्छन् । क्रोडस्थापितस्तनन्धयाः=भुजाभ्यन्तरनिवेशितपयःपायिबालाः, उच्चकुचाग्रै=उन्नतचूचुकैः, आस्फालिताः=ताडिताः, गवाक्षदण्डाः= वातायनदण्डा याभिस्ताः । स्वप्रेमपात्रस्य=स्वस्नेहाधारस्य, प्रियजनस्य दन्तक्षतव्रणेन=दशनखण्डनव्रणेन, विषमाः=उच्चावचाः, चिह्निता इति यावत्, ताम्बूलरागेण=ताम्बूलभक्षणजेन लौहित्येन, रञ्जिता'= रक्तिमातिशयं प्रापिताः, अधरा यासां ताः । चिरण्ट्य'=वधूट्यः । "चिरण्टी तु स्ववासिनी" इत्यमरः ।

समारोह=जनसम्मर्दः । शास्तिखानस्य, सीमन्तिन्यः=सुकेशवेशवत्यो वनिताः । 'नारी सीमन्तिनी' इत्यमरः । धमद्धमद्ध्वनेः समाकर्णनेन=श्रव-णेन, जातम्=उत्पन्नम्, कुतूहलम्=कुतुकं यासां ताः । निरादृता=परित्यक्ता, तन्द्रा=आलस्यं याभिस्ताः । मन्दाक्षेण=लज्जया, मन्दः, प्रचारः=सञ्च-रणं यत्र तत्र, यासां ताः । प्रतिसीराः=यवनिकाः । अपसारमपसारम्=

मलिनयन्त्यः, लोलत्कुण्डलाः, दोलल्ललन्तिकाः, स्खलद्वसनाः, वलद्धसनाः, मदव्याघूर्णितनयनाः, विहित-मेचक-कुञ्चित-कच-प्रचय-सञ्चयनाः, अञ्जनरञ्जिताभिर्दृग्भिरिन्दीवरमाला इव वर्षन्त्यः, रोलम्ब-कदम्बमिव क्षिपन्त्यः, वीक्षितुमारेभिरे। समारोह एष शनैः शनैः परतो निर्यातः, किन्तु अन्यूनास्त्रिंशद्वीरास्तद्भवन-नेदिष्ठ-वाटिका-विटपान्धतमस-च्छायास्वेव समलीयन्त।

वरयात्रा-कलकल शान्तः, स्त्रियः पुनः स्व-शयनीयेषु शयिताः। अन्धकारो ववृधे। नागरिक-जनरवोऽस्तः। पथि पथिकानां गतागतं निवृत्तम्। श्याम-श्यामैर्मेघैस्तिमिर-सान्द्रता द्विगुणिता। झिल्ली-

---

दूरीकृत्य दूरीकृत्य। लशुनस्य=रसोनस्य, पलाण्डा="प्याज" इति ख्यातस्य, गन्धेन कटुभिः। जम्भापरम्पराभिः=गात्रविनामसमूहैः। नासामौक्तिकानि=नासिकामणीन्। मलिनयन्त्यः=मलिनता नयन्त्यः। लोलत्कुण्डलाः=चलत्कर्णभूषणाः। दोलल्ललन्तिकाः=हिल्लोलत्कण्ठिकाः। स्खलद्वसनाः=गलद्वस्त्राः। वलद्धसनाः=एधमानहासाः। मदव्याघूर्णितनयनाः=मद्यादिपानभ्रमन्नेत्राः। विहितम्=सम्पादितम्, मेचकस्य=श्यामस्य, कुञ्चितस्य=गुच्छितस्य, कचप्रचयस्य=केशसमूहस्य, सञ्चयनम्=बन्धनम्, याभिस्ताः। अञ्जनरञ्जिताभिः=कज्जलाक्ताभिः, इन्दीवरमालाः=पद्मश्रेण्यः। वर्षन्त्य इव=प्रकिरन्त्य इवेत्युत्प्रेक्षा। रोलम्बकदम्बमिव=द्विरेफव्रातमिवेत्युत्प्रेक्षा। क्षिपन्त्यः=प्रसारयन्त्यः। वीक्षितुम्=द्रष्टुम्। आरेभिरे=प्रारब्धवत्य। परतः=अन्यस्यां दिशि। तद्भवनस्य=तत्सदनस्य, नेदिष्ठायाः=नितान्तान्तिकस्थायाः, वाटिकायाः=उद्यानस्य, विटपानाम्=द्रुमाग्राणाम्, अन्धतमसच्छायासु=गाढान्धकारप्रतिबिम्बेषु। समलीयन्त=अन्तर्हिताः।

स्वशयनीयेषु=स्वपर्यङ्केषु। ववृधे=एधामास। अस्तः=समाप्तिङ्गतः, पथिकानाम्=यात्रिणाम्। श्यामश्यामैः=अतिमेचकैः। तिमिरसान्द्रता=अन्धकारघनता। द्विगुणिता=ववृधे। झिल्लीरवानुसृत =

रवानुसृतो नैशीथः स्वभावसिद्धोऽनाहतानुकारी ध्वनिरश्रूयत। प्रतीहारा अपि गृहीतभित्तिकाश्रयाः घुरघुरायित-घोर-घोणाः श्लथत्करवालाः समशयिषत।

अथार्द्धसुप्ताभिर्महामद-महिलाभि: प्रासाद पृष्ठतः सीत्कारमयं खटखट-प्रधानं किञ्चन शब्दजातमिवाश्रावि, किन्तु निद्रया गाढमाक्रान्ताभिर्नापार्य्यतोत्थातुं निर्णेतुं वा। धमधमाध्वनिरेष द्वैगुण्यं प्राप्तः महानस-गृहे, इष्टकाग्रावपात इव चान्वभावि। ततस्तु भीताः स्त्रिय उत्थाय पल्यङ्केपूपविश्य—किमिदं कुतः ?—इति परस्परमालप्य दासीं प्रोचु—"हण्डे ! हण्डे ! गत्वाऽवधेहि, रन्धन-गृहे किमिव सशब्दमास्खलितम्"।

सा तु निद्रा-भर-मन्थरा प्रावोचत्-भट्टिनि ! शेष्व, कोऽपि बिडाल आखुं गृह्णन् समापतितो भवेत्।

झिण्टिकाशब्दपृष्ठगः। नैशीथः=आर्धरात्रिकः। स्वभावसिद्धः=प्राकृतिकः। अनाहतस्य=योगशास्त्रप्रसिद्धध्वनिविशेषस्य, अनुकारी = अनुकरणशीलः। प्रतीहाराः=दौवारिकाः। गृहीतभित्तिकाश्रयाः=लब्धकुड्याधाराः। घुरघुरायितघोरघोणाः=घुरघुरशब्दनिस्सरणभयकरनासाः। गाढनिद्राक्रान्ता इति भावः। श्लथत्करवालाः=स्थानभ्रष्टतरवारयः। समशयिषत = सुप्ताः।

अर्धसुप्ताभिः=अपूर्णस्वापाभिः, महामदमहिलाभिः=शास्तिखानयोषाभिः। प्रासादपृष्ठतः=हर्म्यपश्चाद्भागे। शब्दजातमिव=ध्वनिसमूह इव। अश्रावि=श्रुतम्। आक्रान्ताभिः=व्याप्ताभिः। नापार्यत=न पारितम्। द्वैगुण्यम्=बाहुल्यम्। महानसगृहे=पाकस्थाने। इष्टकाना ग्राव्णाञ्च पात इव=पतनमिव। अन्वभावि=अनुभूतः। पल्यङ्केषु=पर्यङ्केषु। हण्डे, दास्यादिनीचसम्बोधनम्। अवधेहि = जानीहि। रन्धनगृहे=महानसे। सशब्दम् = सध्वनि। आस्खलितम् = पतितम्।

निद्राभरमन्थरा = स्वापभारसालस्या। शेष्व=शयनं कुरु। आखुम् = मूषकम्। समापतितः = कूर्दितः।

क्षणानन्तरं पुनराकर्णि तथैवेष्टका-पात-घातः। अथ द्वित्राः स्त्रियो भीत-भीता रन्धनालय-द्वार-देशमुद्घाट्य मन्दालोकेन दीपेनाऽऽलुलोकन्त—यत् पञ्चषा महाराष्ट्र-वीरा भित्तिं भित्त्वा, अन्तरायाता. सन्ति, अन्ये चैकस्मात् परम्-अपर, ततोऽपि परमपरः— इति विकोशखड्गा प्रविशन्ति। तास्तु सचीत्कारं प्रतिनिवृत्ताः, गृहावग्रहणी-समुद्घाताहत-प्रपदा' प्रघाणे निपतन्त्यः कान्दिशीका अट्टेष्वितस्ततो धावन्त्यो घोरनिद्रया सुप्त सेनान्यं समबूबुधन्नचकथश्च यद्—"नग्नासिहस्ता महाराष्ट्रा गृहे प्रविष्टा."—इति।

सेनानीस्तु महादेव-पण्डितालापं स्मरन् सुप्त—इति स्वप्नेऽपि बद्धकरसम्पुटं सन्धिं प्रार्थयमानं स्वाग्रत स्थितं शिवराज पश्यन्नासीत्। अकस्मादुत्थापितश्च क्षणमुपधानम्, क्षणं पल्यङ्क-पट्टिकाम्, क्षणं सीमन्तिनी-जन-ग्रीवा समालिङ्गन्, परत. प्राप्तचेतनः समज्ञासीद्—यत् पुण्यनगरं वशवदं विधाय महाराष्ट्रा अन्त'— पुराक्रमणमपि व्यधुरिति। अथैष सपदि समुत्थाय येनैव पथा पलायितुमियेष, तत एव सखड्गं महाराष्ट्र-वीरं मूर्तिमन्तमिव मृत्युमुपस्थितमवलोक्य पुनः प्रविश्य स्वाधिष्ठित-विशाल-कोष्ठस्य प्रधान-

मन्दालोकेन=अल्पप्रकाशजनकेन, शयनसमयार्थरक्षितेन। भित्तिम् = कुड्यम्। भित्त्वा=विदार्य, सन्धिं कृत्वेति यावत्। अन्त.=अभ्यन्तरे। एकस्मात्परमपर'="एक के बाद दूसरा" इति हिन्दी। विकोशखड्गा.=नग्नासयः। गृहावग्रहणीषु=सदनदेहलीषु, समुद्घातेन=समुच्छलनेन, आहतानि=ताडितानि, प्रपदानि=पादाग्राणि यासा ताः। प्रघाणे = बहिर्द्वारप्रकोष्ठके। कान्दिशीका =भयद्रुताः। अट्टेषु=अट्टालिकासु। सेनान्यम्=सेनापतिम्। समबूबुधन्=अजागरयन्।

बद्धकरसम्पुटम् = कृताञ्जलिम्। पल्यङ्कपट्टिकाम्=पर्यङ्कस्य वामीयं दक्षीय वा काष्ठम् "पाटी" हिन्दी। सीमन्तिनीजनस्य = नारीवर्गस्य, ग्रीवाम्=कन्धराम्। समालिङ्गन्=समाश्लिषन्। वशवदम्=स्वाधीनम्। व्यधु'=कृतवन्तः। स्वेन, अधिष्ठितस्य=अध्युषितस्य, विशालप्रकोष्ठस्य

द्वारं पक्ष-द्वाराणि च प्यधात्। स्त्रीभिः सहितः स्वयमेकल एव च पुरुषोऽन्तःस्थः प्रच्छन्नतया पलायितुं व्यचेष्टिष्ट।

इतस्तु कञ्चित् कोलाहलमिवाऽऽकर्ण्य द्वार-देशस्था रक्षकाः पार्श्व-कोष्ठेषु चन्द्रशालासु मण्डपेषु च सुप्ता अपरे वीराः समुत्थाय श्येना इव समापतन्। महाराष्ट्रैः—"हरहर महादेव"—इति, यवनैश्च—"अल्ला अल्ला अल्ला"—इति युद्धारम्भसूचको महानिनदोऽक्रियत। तस्मिन् घोरेऽन्धकारे दीप-प्रकाश-साक्षिकं कुट्टिमेऽट्टे प्राङ्गणे च खड्ग-खणत्कार-क्ष्वेडा-हुङ्कार-ध्वनि-प्रतिध्वनि-धर्षित-प्रतिवेशि-निचयं मुहूर्त्तं यावत्तुमुलं युद्धमभूत्। "आक्रान्तमाक्रान्तम्, जितं-जितम्"—इति वर्द्धितोत्साहैर्महाराष्ट्रैः-"आक्रान्ता आक्रान्ताः, जिता जिताः"—इति भग्नोत्साहा यवनाः परितो विशस्यमानाः स्वमज्जरुधिरमेदोनिचयैर्मेदिनीं मेदस्विनीं पङ्किलां च समकार्षुः।

=महत्याः शयनकक्षायाः। प्रधानमार्गम्=गमागमपथम्। पक्षद्वाराणि= "खिडकी" इति ख्यातानि। प्यधात्=अर्गलितवान्। एकलः=एकाकी। अन्तस्थ. = कोष्ठस्थः, लुक्कायित इति यावत्। प्रच्छन्नतया = गुप्ततया। व्यचेष्टिष्ट=यतितवान्।

पार्श्वकोष्ठेषु=द्वारपार्श्वयो रक्षकनिवासाय रचितेषु लघुसदनेषु। चन्द्रशालासु=शिरोगृहेषु। मण्डपेषु = अङ्गनान्तरालशयनीयसदनेषु। तृणादिनिर्मितेषु लोकप्रसिद्धस्य तादृशसदनमात्रे प्रयोग इति बोधयति। महानिनादः=विशिष्टो ध्वनिः। दीपप्रकाशसाक्षिकम्=प्रदीपालोकसम्मुखे। कुट्टिमे=निबद्धभूमौ। "कुट्टिमोऽस्त्री निबद्धा भूः" इत्यमरः। प्राङ्गणे= चत्वरे। 'अङ्गणं चत्वराजिरे' इत्यमरः। खड्गखणत्कारस्य=असिखडखडाशब्दस्य, क्ष्वेडायाः=सिंहनादस्य, हुङ्कारस्य=हुंशब्दस्य च, ध्वनिप्रतिध्वनिभिः = शब्दप्रतिशब्दैः, धर्षितः = भयाकुलीकृतः। प्रतिवेशिनिचयः= पार्श्वसदनीयजनव्रातो यस्मिन् कर्मणि तादृशम्। येन तदिति युद्धविशेषण वा। मुहूर्त्त-यावत्=घटिकाद्वयपर्यन्तम्। तुमुलम् = सङ्कुलम्। भग्नोत्साहाः= विनष्टहर्षाः, विशस्यमाना. = हिंस्यमानाः। मज्जा = धातुविशेषः, रुधिरम् = लोहितम्, मेदः = अस्थिसारो धातुविशेषः, तेषा निचयैः= समूहैः। मेदस्विनीम् = मेदसा बहुलाम्। पङ्किलाम् = कर्दमवतीम्।

तावत्प्रासादवहिर्भागे एकमग्निमयं रक्त कुसुमाकारं स्फुलिङ्गनिकुरम्बकमपि गगनं चुचुम्ब ।

शिवराजस्तु सेनापतिमेवान्विष्यन् शुद्धान्तदिश्यापतितो मार्गमवरुध्य स्थित द्वाविंशति-वर्षदेश्यमेकं सुन्दरं यवनयुवकमवलोक्य चान्द्रेण संवादिनीमिव तदाकृतिं निर्धारयन् उक्तवान्—यद् "मन्ये, चान्द्रखानस्य पुत्रोऽसि" । स ऊचे—'ओम्' इति ।

शिवोऽभाणीद्-अपसरापसर, किमिति मृपा स्वपितृ-शोणित-दिग्ध-मत्करवाल-धारा-तीर्थे शरीरं विसिसृक्षसि ? समालोक्य तव मुग्धं मुखमण्डल करुणा-परवश. क्रौर्यमाचरितुं नोत्सहे—

इति कथयत एव तस्याकस्मादुत्प्लुत्य शितधारं खड्गं मूर्द्धनि प्राहिणोत् स रिपुबाल. । शिवस्तु स्तिमित उत्प्लुत्य यावदेकतस्तिष्ठन् स्व-खड्ग-त्सरुं दृढ करेणाऽऽकलयति; तावदद्राक्षीद्-यद् भयानकशल्यया कयाचित् हृदयं भित्त्वा परतोऽपि निस्सृता-

---

कुसुमाकारम् = पुष्पाकृति । स्फुलिङ्गनिकुरम्बकम् = अग्निकणव्रजः । गगन चुचुम्ब = नभः पस्पर्श । पूर्वनिश्चयानुसारं दूरस्थितभटसूचनाय सकेतोऽयम् ।

शुद्धान्तदिशि=अन्तःपुरमार्गे । आपतितः = वेगाच्चलितः । द्वाविंशतिवर्षदेश्यम् = प्रायो द्वाविंशतिहायनवयस्कम् । चान्द्रेण = चान्द्रखानेन । सवादिनीम् = सदृशीम् । तदाकृतिम् = तदाकारम् । ओम् = एवम् । अङ्गीकारेऽयं शब्दः ।

स्वपितृशोणितेन = त्वज्जनकलोहितेन, दिग्धे = छुरिते, मत्करवाल-धारातीर्थे = मत्खड्गधारा-पुण्यस्थले । विसिसृक्षसि = विस्रष्टुमिच्छसि । यदि नापसरसि नून तदा मया हन्यसे इत्यर्थः । मुग्धम् = सुन्दरम् । करुणापरवश = दयाधीनः । क्रौर्यम् = क्रूरताम् ।

उत्प्लुत्य = उच्छाल कृत्वा । शितधारम् = तीक्ष्णाग्रम् । प्राहिणोत् = प्रैरयद् । रिपुबालः = शत्रुसूनुः । स्तिमितः = स्तब्धो भूतः । स्वखड्ग-त्सरुम् = स्वासिमुष्टिम् । दृढम् = अशिथिलम् । भयानकम् = भीतिजनकम्, शल्यम = भल्लम्, यस्यामेवम्भूतया शक्त्येति विशेष्यम् । हृदयम = वक्षः । भित्त्वा = विदार्य । परतोऽपि = हृदयद्वितीयपार्श्वेऽपि, पृष्ठेऽपीति यावत् ।

ग्रया शक्त्या तीव्रं विद्धो भूमौ शायितोऽस्ति शत्रुरिति। तावद् दृष्टवान्—यन् पिचण्डिल एकोऽपरः कृष्ण-कूर्च-प्रचय-चुम्बित-वक्षोभागो ज्वलद्भ्यामिव विस्फारिताभ्यां नयनाभ्यां दिधक्षन्निव सक्ष्वेडम्—अरे रे! अपसद! शास्तिखान-पुत्र-हस्तेनैव ते निधनं स्थिरीकृतं धात्रेति प्रकटमवलोकयन्तु सर्वे—इति कथयन् शक्तिमुद्-तूतुलत्। तच्छक्तिं छेत्तुं खड्गं सज्जीकुर्वन्नेव च केनापि भूमौ निपात्य च्छुरिका-विदार्यमाण वेपमानावयव शत्रुमपश्यत्।

एवमुत्थितं च विघ्न-हर्तारं शत्रु-शोणित-शोणीकृत-करद्वयम् इन्द्रगोप-द्युति-द्योतित-बिन्दु-वृन्दाच्छादित-वारबाणं निपुणमवलोक्य 'रघुवीर' इति पर्य्यचेष्ट।

ततश्च "साधु रघुवीर! साधु, न विस्मरिष्यामि ते वीरता-कार्यमिदम्"—इति व्याहृत्य प्रणमतः पृष्ठं स्पृष्ट्वा पुनरग्रतो यावज्जि-गमिषति; तावदकस्माद्‌ट्टालिकातो भटानां विंशतिरिव सोत्फालं शिवस्य परितः समापतत्।

निःसृताग्रया = समुद्गताग्रभागया। विद्ध = क्षतः। पिचण्डिलः= दीर्घोदरः। "बृहत्कुक्षिः पिचण्डिलः" इत्यमरः। कृष्णकूर्चप्रचयेन = कालबालसमूहेन, चुम्बितः=स्पृष्टः, वक्षोभागो यस्य सः। ज्वल-द्भ्यामिव=वह्निमुद्गिरद्भ्यामिव। दिधक्षन्निव = दग्धुमभिलषन्निव। सक्ष्वेडम्=ससिंहनादम्। उदतूतुलत्=उदस्थापयत्। छेत्तुम्=द्विधा कर्तुम्। सज्जीकुर्वन्=सन्नह्यन्। शिववीर इति कर्ता। छुरिकया= असिधेन्वा, विदार्यमाणं=स्फार्यमाणं वेपमानावयवम्=कम्पमानगात्रम्।

विघ्नहर्त्तारम्=प्रत्यूहवारकम्। शत्रुशोणितशोणीकृतकरद्वयम्= रिपुलोहितरक्तीकृतहस्तयुगलम्। इन्द्रः, गोपाः=रक्षको यस्य सः, इन्द्रगोपः= वर्षाकालिको रक्तः कीटविशेषः, तद्द्युतिद्योतितैः=तत्कान्तिभासितैः, बिन्दुवृन्दैः=पृषद्व्रजैः। आच्छादितम्=प्रावृतम्, वारबाणम्=कवचो यस्य तम्। निपुणम् = विचारपूर्वकम्। पर्य्यचेष्ट=परिचितवान्।

जिगमिषति = गन्तुमिच्छति। विंशतिरिव=प्रायो विंशतिसख्याकाः। अपरिगणितत्वादिवः। सोत्फालम्=सकूर्दनम्।

शिवस्तु चन्द्रहास-चालने अद्वितीय इति झटिति केषाञ्चिदवि-हितोत्फालानामस्पृष्टतलाना गगन एवोदर सविदरमकार्षीत । परेषां परिपत्योत्तिष्ठासतामेव शिरोधरामशिरोधरां व्यधित । अन्येषां मेदो-मास-पिच्छिल-कर्दम-चलितान् चरणानसञ्चरणान् कुर्वन्, इतरेषा च खड्गोत्क्षेपणायोत्क्षिप्तान् करान् निजासि वृक्ण-बाहु-मूलानुदक्षेप्सीत् । क्रमतश्च रघुवीरोऽपि द्वित्रानपातयत् । तस्मिन् समिद्धक्रोधा पञ्चषा युगपदेव परितः समापतन यवन-भटा. । तं चाभिमन्युमिव महारथैराक्रान्तमालोक्य सगर्जनं चन्द्रहास-चक्रेणेव समावृतः समापतत् शिववीरः । चन्द्रहास-चालन-चातुरी-महिम्ना च खड्गेनैव तेषामाघातान् प्रतिरुन्धन्, तेषु बहून् यम-सदनमनैषीत् । तावदन्येऽपि महाराष्ट्राः परित. श्येना इवा-भिपत्य काकोलानिवातिलोलास्तान् दोला-योग्यानकार्षु. । एवं

चन्द्रहासचालने=असिमारणे । अस्पृष्टतलानाम्=भूतलमनुपेयुषाम । गगनएव=नभस्येव । सविदरम्–विदीर्णम् । परिपत्य=ऊर्ध्वाद् भूमिमागत्य । उत्तिष्ठासताम्=उत्थातुमिच्छताम् । शिरोधराम्=ग्रीवाम् । अशिरोध-राम्=शिरोधारणकर्मरहिताम् , खण्डितामिति यावत् । व्यधित=अकार्षात् । मेदोमासपिच्छिले कर्दमे चलितान्=स्खलितान् । चरणान्=पदः, "पदङ्घ्रि-श्चरणोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः। असञ्चरणान्=गन्तुमनर्हान् । खड्गोत्क्षेपणाय= करवालसञ्चालनाय, उत्क्षिप्तान्=उत्थापितान् । निजासिना वृक्णम्= खण्डितम् , बाहुमूल येषा तान् । उदक्षेप्सीत्=उत्क्षिप्तवान् । अपातयत्= अपोथयत् । तस्मिन्=रघुवीरे । समिद्धक्रोधा =विवृद्धकोपा. । अभि-मन्युमिव =उत्तरागर्भजमर्जुनसूनुमिवेत्युपमा । महारथैः = अतिबलै. । य एकल एव हस्त्यश्वरथपादातैरनेकसङ्ख्यैर्योद्धुं शक्नोति स महारथ इति पारि-भाषिकाः । चन्द्रहासचक्रेणेव=करवालसहस्रेणेव । चन्द्रहासचालने या चातु-री=कुशलता । तन्महिम्ना=तत्प्रभावेण । श्येना इव=पक्षिमारका इवेत्युपमा। काकोलान् = कृष्णकाकान् । "डोम कौआ" इति हिन्दी । अतिलोलान्= परमचञ्चलान् । दोलायाः=शिबिकायाः, "डोली" इति हिन्दी, योग्यान् ।

हतेषु बहुषु, परेषु पतितेषु, आर्तनादेन प्रासादं ध्वनयत्सु, उपद्रवः प्रशशाम । पुनरग्रेऽवरोधमवरोद्धुं प्रचचाल महाराष्ट्रमण्डली-मण्डनः । तत्र रुद्धान्यरराणि पादाघातैः प्रासनिपातैश्च भित्त्वा, "हर हर महादेव" इति गर्जनैरन्तर्निविश्यापश्यत्–यद् गवाक्षि-कातः सर्वाः स्त्रियः पूर्वमुत्तार्य पश्चात्सेनानीरप्युत्तरतीति । शिव-राजस्यैकेन चरेण खड्ग' क्षिप्तः । तस्य च प्रसारित–करस्याङ्गुलिद्व-यमेव च्छिन्नम्, तावत् सोत्फालमन्धकार–महोदधौ निमग्न. ।

इतस्तु दानवा इव मानवान् महाराष्ट्रा म्लेच्छान् घ्नन्तीत्या-लोक्य व्यर्थ–हत्या शिवेन निवारिता । "विजितं सनातनधर्मेण, विजित महाराष्ट्रराजेन" इति महानभूज्जयध्वनिः ।

"सम्प्रति साधनीयम्, पलायित. शास्तिखानो नाऽऽ-यास्यति सम्मुखमिति क्षिप्रं सिंहदुर्गं आसादनीय."–इति शिवेनाऽऽ-ज्ञप्तास्त्यक्त–रुधिरारक्त–वसना., प्रासाद–नागदन्तिकावलम्बितैरेव बहुभिर्वसनैर्वेष्टिता, कतिचन प्रत्यर्थि-परिचारक-वसन-पट्टिका-

स्वयंचलितुमसमर्थत्वादिति भावः । आर्तनाद'=पीडितानां क्रन्दनध्वनिः । उपद्रवः=हिंसादिरूपः, अवरोधम्=अन्त पुरम् । महाराष्ट्रमण्डली-मण्डनः=मरहट्टसमुदायभूषणः । अरराणि=कपाटानि । "कपाटमरर तुल्ये" इत्यमरः । प्रासनिपातैः = भल्लपातनैः । गवाक्षिकातः=वाताय-निकातः । स्त्रियः=नारीः । चरेण=दूतेन । तस्य=सेनापतेः शास्तिखा-नस्य । सोत्फालम् = सकूर्दनम् । अन्धकारमहोदधौ=तमोवारिधा । दानवाः = दनुतनया राक्षसाः । इवेनोपमा । व्यर्थहत्या=अनावश्यक-मारणम् । जयध्वनिः = जयशब्दः ।

साधितम्=विहितम् । साधनीयम्=कार्यम् । आसादनीय.= प्राप्तव्यः, त्यक्तानि = दूरीकृतानि, रुधिरारक्तानि = लोहितप्लुतानि, वसनानि यैस्ते । प्रासादस्य=हर्म्यस्य, नागदन्तिकासु = कीलिकासु, अवलम्बितैः=स्थापितै., वेष्टिता:=परिहितवसनाः, प्रत्यर्थिनः= शत्रोः, परिचारकाणाम् = भृत्यानाम्, वसनपट्टिकाशस्त्रैः । आलोचका-

शस्त्रैरालोचकानां यवन-भृत्य-भ्रममुत्पादयन्तः, निर्भयाः सर्वेऽपि घोरान्धकारायां यामिन्यां प्रचलिताः। निर्विघ्नं पुण्यनगराद्बहिरागत्य, यथासङ्केतमाक्रमणेन विजित-बाह्य-सेना-सन्निवेशं सम्यगुन्मुद्रित-सर्वगोपुरं सस्थापित-निज-यामिक-द्वार-रक्षकं स्वर्णदेव-गौरसिंहाधिष्ठितं बलं साक्षात्कुर्वन्तः, गव्यूति यावदन्धतमस एवोच्चावचं पाणिन्धममध्वान व्यतीत्य, तत' शतशो दीपान् सज्ज्वल्य, पुण्यनगरस्थै' कान्दिशीकैः पराजितप्रत्यर्थिभि. प्रजाभिश्च वीक्ष्यमाणा कुशलेन सिंहदुर्गमारुरुहु ।

इति सप्तमो निश्वासः।



नाम्=द्रष्टृणाम् । यवनभृत्यभ्रमम्=म्लेच्छपरिचारकभ्रान्तिम् । यामिन्याम्=रात्रौ । निर्विघ्नम्=निष्प्रत्यूहम् । विजितबाह्यसेनासन्निवेषम्=स्वायत्तीकृतबहिर्गतबलशिबिरम् । उन्मुद्रितसर्वगोपुरम्=उद्घाटितनिखिलपुरद्वारम्। बलम्=सेनाम्। अन्धतमसे=गाढान्धकारे। उच्चावचम्=निम्नोन्नतम्। पाणयो ध्मायन्ते सर्पाद्यपनोदाय यस्मिंस्तम्, पाणिन्धमम्। अध्वानम्=मार्गम्। पाणिन्धमपदार्थकुक्षौ नाध्वप्रवेशो योगमात्रार्थप्रवृत्तिनिमित्तकत्वात्। कान्दिशीकै.=भीतैः। पराजितैः=परास्तैः, प्रत्यर्थिभिः=शत्रुभिः । प्रजाभि', सानन्दाभिरति शेषः, कुशलेन=शिवेन। आरुरुहु.=आरूढवन्तः।

इति श्रीशिवराजविजयवैजयन्त्या सप्तमनिश्वासविवरणम्।



"वेधा द्वेधा भ्रमं चक्रे कान्तासु कनकेषु च ।
तासु तेष्वप्यनासक्तः साक्षाद्भर्गो नराकृतिः ॥"

—कुवलयानन्दे

तोरणदुर्गे तु रसनारी काभिश्चन मूर्छितप्रायाभिरुत्थाप्य समानीताभिः पुनः प्राप्तसंज्ञाभिः चेटीभिः सहिता, मञ्चासन्दी-पल्यङ्क-वितान-तूलिकोपवर्हादि-सकल-परिच्छद-परिष्कृतायाम् अति-रम्य-हर्म्याट्टालिकायामवरुद्धा—'काऽऽयाता ? केन संयता ? किं

अष्टमेऽवरङ्गजीवतनयाया रसनार्याः श्रीशिववीरेऽनुरागं विवाहेच्छाञ्च वर्णयिष्यति कविः, तत्र च नायकोदात्तत्वरक्षणाय सत्यमेव श्रीशिववीरान-ङ्गीकरणं प्रदर्शयिष्यति, तदेतदुपक्षेप्तुं कुवलयानन्दीय पद्यमुपक्षिपति वेधा इत्यादि । वेधाः=जगन्निर्माता । द्वेधा=द्वाभ्या प्रकाराभ्याम् । भ्रमं चक्रे=भ्रान्तिमुत्पादयामास । कान्तासु=आपाततो रमणीयासु रमणीषु । कनकेषु=धत्तूरविषविषायमाणेषु हिरण्येषु च । तासु=रमणीषु । तेषु= कनकेषु । अपि=समुच्चये । अनासक्तः=असलग्नः । नराकृतिः= मानवदेहधारी । साक्षात्=प्रत्यक्षताङ्गतः भर्जयति कामादीनिति भर्गः=शङ्करः । नोभयोरणुतरोऽपि भेद आकृतिविभिन्नत्वातिरिक्त इति तत्त्वम् । रूपकालङ्कारः ।

तोरणदुर्गे तु रसनारी न वेत्ति स्मेति सम्बन्धः । मूर्च्छितप्रायाभिः= प्रायो गतचैतन्याभिः । प्राप्तसंज्ञाभिः=लब्धचैतन्याभिः । मञ्चः= लघुसुखासनिका, "मचिया" इति हिन्दी, आसन्दी="कुर्सी" इति ख्याता, पल्यङ्कः=पर्यङ्कः, वितानम्=उल्लोचः, "चन्दोवा" इति हिन्दी। तूलिका=तूलविष्टरम्, उपबर्हः=उपधानम्, एवमादिभिः सकल-परिच्छदैः=समस्तावश्यकवस्तुजातैः, परिष्कृतायाम्=भूषितायाम् । अतिरम्यायाम्=अतिहृद्यायाम्, हर्म्याट्टालिकायाम्=प्रासादाट्टे । अवरुद्धा=निगृहीता । संयता=बद्धा । बन्दीकृतेति यावत् ।

भावि ?'–इति किमपि न वेत्ति स्म। तत्परिचर्य्यायामितरा महाराष्ट्र-देशीया अपि दास्य आसन्, किन्तु ता अपि रसनार्या बहुश प्रलोभिता अपि सप्रश्रयं पृष्टा अपि तेषु तेषु विषयेषु वाचमेव न यच्छन्ति स्म।

रसनारी हि नित्यं प्रातर्निर्मल कोष्णं यूथिका–मल्लिका–चन्द-नादि-वासितम् आनीय स्थापितं स्नानीयं पानीयम्, कर्पूर-काश्मीर-पाटीर-क्षोद-रचितमुद्वर्त्तनञ्च रजत-पात्रेषु विन्यस्तम्, पटवास-वासितानि सुसूक्ष्माणि सौवर्ण-प्रान्तानि नानावर्ण-कौशेय-कुसुम–रचना–विचित्रितानि वासांसि प्रसाधनीं दर्पणं धूपं सिन्दूरं

तत्परिचर्य्यायाम् = तत्सेवायाम्। दास्य = भृत्याः। प्रलोभिता = गर्द्धिताः। सप्रश्रयम् = सविनयम्। तेषु विषयेषु = प्रश्नगोचरेषु। यच्छन्ति स्म = ददति स्म। मौनिन्योऽवर्तन्तेति भावः।

निर्मलम् = पवित्रम्, कोष्णम् = ईषदुष्णम्। शिरोऽतिरिक्तस्य शरीरस्य पावनाय कोष्णमेव वारि भवत्युपयुक्तम्, रोमच्छिद्रप्रविष्टमलापकर्षकत्वात्। शिरसो धावनन्तु शीतलवारिणेति वैद्यकग्रन्थेषु स्फुटम्। यूथिकादिभिः, वासितम् = सुरभीकृतम्। आनीय = सम्प्रापय्य। स्थापितम् = निहितम्। स्नानीयम् = स्नानयोग्यम्। कर्पूरः = हिमवालुका, काश्मीरम् = कश्मीर-देशोद्भवं केसरम्।

> सहोदरा कुङ्कुमकेसराणां भवन्ति नूनं कविताविलासाः।
> न शारदादेशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोहः॥

इति विह्लणः। पाटीरम् = चन्दनम्। एतेषां क्षोदेन = चूर्णेन, रचितम् = निर्मितम्। उद्वर्त्तनम् = देहनिर्मलीकरणद्रव्यम् "उबटन" इति हिन्दी। रजतपात्रेषु=रौप्यभाजनेषु। विन्यस्तम्=स्थापितम्। पटवासैः = वसनवासकैः कुंकुमादिचूर्णविशेषैः। वासितानि = कृतसुगन्धीनि। सौवर्ण-प्रान्तानि = सुवर्णविकारतन्तुनिर्मितदशानि। "सुनहली जरी की किनारी" इति हिन्दी। नानावर्णानाम्=अनेकरङ्गाणाम्, कौशेयकुसुमानाम् = पट्ट-सूत्ररचितपुष्पाणाम्, रचनया, विचित्राणि = दर्शनीयानि, प्रसाधनीम = कङ्कतिकाम्, "कंघी" इति हिन्दी। दर्पणम् = आदर्शम्। धूपम् = केशवा-

कुसुममालाः अङ्गरागं चूडाबन्धं च प्रस्तुतमेवावलोकयति स्म। विविधासु दासीषु सतैलाभ्यङ्गं मोत्सादनमर्दनं सकेशमार्जनं च स्नानसेवां विहितवतीषु, धारितकौशेया द्राक्षा-द्रव-दाडिम्ब-दुग्धादि-महामधुर-महोपस्कारमयीमाहार-सामग्रीमुपलभते स्म। क्षणे क्षणे जातीपत्र-केसर-कर्पूर-लवङ्गैला-सुवासितानि ताम्बूलानि, प्रहरे प्रहरे च पाटल-सुगन्धि-ताम्रक-पिष्टकाङ्गारक-परिपूर्ण-साच्छादनक-हाटकामत्रिकालङ्कृतोर्ध्वभागं केतक-तोय-पूरित-पयःपात्र-परि-लसित-मूलं काञ्चन-चञ्चु-चमत्कृत-प्रलम्ब-नलिका-संवलितं

सकम्। अङ्गरागम्=शरीरानुलेपनद्रव्यम्। चूडाबन्धनम्=जूटिकाबन्ध-नम्। सतैलाभ्यङ्गम्=तैलमर्दनपूर्वकम्। सोत्सादनमर्दनम्=सोद्वर्त्तन-लेपनम्। "उद्वर्त्तनोत्सादने द्वे" इत्यमरः। सकेशमार्जनम्=सकचक्षाल-नम्। धारितकौशेयाः=परिहितपट्टवस्त्राः। द्राक्षाद्रवः=गोस्तनीरसः, दाडिम्बम्=दाडिमीफलम्, दुग्धम्=पयः, एवमादिका, महामधुरा=अतिमिष्टा, महोपस्कारमयी=विशिष्टोपकरणयुता, ताम्। आहारसाम-ग्रीम्=भोजनपदार्थम्। जातीपत्रम्=जातीदलम्, केसरः=काश्मीरजः, कर्पूरं=हिमवालुका, लवङ्गम्=देवकुसुमम्, एला=चन्द्रवाला, आभिः, सुवासितानि=सुरभीणि। पाटलसुगन्धि=आशुव्रीहिसुरभि, यत् ताम्रकम्="तमाखू" इति ख्यातम्, तस्य, पिष्टकस्य="टिकिया" इति ख्यातस्य, अङ्गारकेण="अङ्गार" इति हिन्दीप्रसिद्धेन। परिपूर्णया=युतया, साच्छादनिकया=सप्रावरणिकया, "ढकी हुई" इति हिन्दी, हाटकामत्रिकया=सुवर्णनिर्मितधूमपानसाधनिकया, "सोने की चिलम" इति हिन्दी, अलंकृतः=भूषितः, ऊर्ध्वभागो यस्य तत्। केतकतोयेन="केवड़ा" इति प्रसिद्धपुष्पवासितेन वारिणा, पूरितेन=भरितेन, पयः-पात्रेण=जलपात्रेण, परिलसितम्=अतिशोभितम्, मूलं यस्य तत्। काञ्चनचञ्च्वा=सुवर्णनिर्मिताग्रभागेन, चमत्कृतया=सुसज्जितया, प्रलम्बया=सुदीर्घया, नलिकया=धूमाकर्षिकया, "हुक्के की नली"

धूमपानयन्त्रम्, सर्वदा च व्यजन-चामर-पतद्ग्राह-हस्ता दास्य.— इत्यखिलं सुसज्जमेवावलोकयति स्म।

क एवमाद्रियते? कस्य कक्षे आपतिता? कोऽधुनाऽपि मर्यादां न भनक्ति?—इति तया किमपि ज्ञातुं न शक्यते स्म।

पुरुषः कोऽपि निकट एव नाऽऽयाति। निज-चेटी-द्वारा कथं कथमपि पृष्टश्च मूक इव न किमपि वक्ति, इति विचित्रं चरित्रं पश्यन्ती 'विलक्षणमिदं कारागारम्, अलौकिका अत्रत्या मानवा'— इति मनस्येव तर्कवितर्कैश्चिर-चिन्ता-निमग्ना अभूत्।

अथैकदाऽट्टालिकाया पर्यटन्त्या, दक्षिणस्यां सुदूरं विस्तृतानां काननानाम्, अभ्रंलिहानां शैल-शिखराणाम्, कालिन्दी-सलिल-सौन्दर्य्य-विजित्वरातिहरित-वनौषधि-वृन्द-व्याप्तानामुच्चावच-तलान्तः-स्रवत्-प्रस्रवण-स्रोतस्समीप-नरीनृत्यमान-मेघनादानुलासि-लास्य-

---

इति हिन्दी, सवलितम्=विशिष्टम्। धूमपानयन्त्रम्="हुक्का" इति प्रसिद्धम्। व्यजन चामर-पतद्ग्राहा हस्ते यासा ताः। पतद्ग्राह=पतद्ग्रहः, "पतद्ग्राहः पतद्ग्रह" इत्यमरः। "पीकदान" इति हिन्दी। सुसज्जम्=सन्नद्धम्। अवलोकयति स्म=अपश्यत्।

आद्रियते=आदर करोति। कक्षे=बाहुमूले। सर्वविधाधिकार इति यावत्। मर्यादाम्=सीमानम्, परदारदूषणरूपाम्। न भनक्ति=न त्रोटयति। मूक इव=वाक्शक्तिशून्य इव। विलक्षणम्=विचित्रम्, अलौकिकाः = दिव्याः। असाधारणा इति यावत्।

अथैकदाऽट्टालिकाया पर्य्यटन्त्या बहूना पादध्वनिरिवाश्रावि-इति सम्बन्धः। सुदूरम्=अतिविस्तीर्णप्रदेशम्। अभ्रंलिहानाम्=मेघस्पर्शकारिणाम्। अत्युच्चानामिति यावत्। शैलशिखराणाम्=पर्वतश्रृङ्गाणाम्। कालिन्दी-सलिल-सौन्दर्य-विजित्वरेण=यमुनाम्भोलावण्यविजयकारिणा, अतिहरितेन=अवितरा हरिद्वर्णेन, वनौषधिवृन्देन व्याप्तानाम्, उच्चावचतलानाम्=निम्नोन्नतभूभागानाम्, अन्तः, स्रवताम्=प्रवहताम्, प्रस्रवणानाम्=निर्झराणाम्, स्रोतसाम्=प्रवाहाणाम्, समीपे=अन्तिके, नरीनृत्यमानानाम्=नृत्यताम्, मेघनादानुलासिनाम्=

ललितानामुपत्यकानाम्, द्रुमाद् द्रुमम्, शाखात् शाखाम्, गण्ड-शैलाद् गण्ड-शैलम्, दन्तकाद् दन्तकम्, पादाच्च पादम्, सपत्र-कम्पनम्, सचञ्चु-चाञ्चल्यम्, सग्रीवाभङ्गम्, सपक्षति-कण्डूयनम्, सतनूरुह-स्फुरणम्, सकूजनं च प्रडीनोड्डीन-सण्डीनै-रुड्डीय गच्छतां कलविङ्कानाम्, कर्करेटूनाम्, किकीदिवीनाम्, कपोतानाम्, कोकानाम्, काकानाम्, कीराणाम्, क्रौञ्चानाम्, कुरराणां च शोभाः पश्यन्त्या अकस्मादश्रावि पादध्वनिरिव बहूनाम्।

झटिति तत आगत्य द्वारोपरिस्थ-गवाक्षाच्चाऽऽलोकितवती—यदेक ईषच्छ्यामलः सुन्दरो विधृत-मौक्तिक-माणिक्य-मरकत-

---

मयूराणाम्, "मेघनादानुलास्यपि" इत्यमरः। लास्यैः=नर्त्तनै', ललितानाम्=मनोहराणाम्। दन्तकात्=अद्रिकटकात्। "दन्तोऽद्रिकटके कुञ्जे दशनेऽथौषधौ स्त्रियामि"ति। पादात्=प्रत्यन्तपर्वतात्। सपत्र-कम्पनम्=पक्षधूननसहितम्। सचञ्चुचाञ्चल्यम्=सत्रोटिचापल्यम्। सपक्षति-कण्डूयनम्=सपक्षमूल-खर्जनम्। सतनूरुह-स्फुरणम्=सरोमहर्षम्। सकूजनम्=सशब्दम्। प्रडीनोड्डीनसण्डीनैः=पक्षिणा गतिविशेषैः। "प्रडीनोड्डीनसण्डीनान्येताः खगगतिक्रियाः" इत्यमरः। कलविङ्कानाम्=चटकानाम्। कर्करेटूनाम्=करेटूनाम्। "कर्करेटुः करेटुः स्यादि" त्यमरः। किकीदिवीनाम्=चाषाणाम्। "अथ चाषः किकीदिविरि" त्यमरः। कपोतानाम्=पारावतानाम्। कोकानाम्=चक्रवाकाणाम्। काकानाम्=वायसानाम्। कीराणाम्=शुकानाम्। क्रौञ्चानाम्=चक्रवाकविशेषाणाम्। कुरराणाम्=उत्क्रोशकारिणा पक्षिणाम्। पादध्वनिः=चरणशब्दः। बहूनामिव=अनेकेषामिव। अदृश्यत्वादनुमेयत्वं बहुत्वस्येतीवशब्दः।

झटिति=त्वरितम्। द्वारोपरिस्थगवाक्षात्=निर्गममार्गोपरिविद्यमानाद्वातायनात्। ईषत् श्यामल'=किञ्चित्कृष्णवर्णः। विधृतम्=शिरसि

गुच्छाङ्कितोष्णीपः सौवर्ण-सूत्र-रचित-कञ्चुको जाम्बूनद-कौशेय-कुसुम-चित्राञ्चित-प्रावार-परिलसित-वामस्कन्धो महार्ह-वज्रक-प्रचयाकलित-कोशस्थ-चञ्चच्चन्द्रहासावलम्बित-कटितटो मरकतमणि-महामाला-लसित-गल-कमनीयो युवाऽऽगच्छतीति । तस्याग्रे पश्चात् पार्श्वयोश्च समागच्छत शतशो भुशुण्डिका-तोमर-पट्टिश-सौवर्ण-दण्ड-कलित-करान् भटान्, अपरांश्च च्छत्र-चामर-वेत्र-व्यजन हस्ताननुचरान् आलोक्य निश्चितमेष एवाध्यक्षो दुर्गस्यैतस्य, एष एव च सम्बोभोत्ति परिवृढोऽस्मल्लुण्ठकगणस्येति मन्यमाना, किञ्चिद् भीतेव, स्तब्धेव, खिन्नेव, क्षुभितेव, उद्विग्नेव च सा समवित्त ।

स्थापितम्, मौक्तिकमाणिक्यमरकतगुच्छैः, अङ्कितम्, उष्णीषम्=शिरोवेष्टनम्, येन सः । मौक्तिकम्=हस्त्यादिलब्धमणिः । माणिक्यम्=खनिप्राप्तमणिः । मरकतस्य मणिविशेषत्वेऽपि ब्राह्मणवशिष्ठन्यायेन पृथगुक्तिः । सौवर्णसूत्ररचितकञ्चुक=हैरण्यतन्तुनिर्मितचोलकः । जाम्बूनदैः=सुवर्णरचितैः, कौशेयैः=पट्टसूत्ररचितैश्च, कुसुमचित्रैः=पुष्पाकृतिकनिर्माणैः, अञ्चितेन=भूषितेन, प्रावारेण=उत्तरासङ्गेन, "द्वौ प्रावारोत्तरासङ्गौ" वित्यमरः, परिलसित.=शोभितः, वाम=दक्षेतरः, स्कन्धो यस्य सः । महार्हवज्रकप्रचयेन=बहुमूल्यहीरकव्रजेन, आकलिते=युते, कोशे=असिधान्याम्, तिष्ठतीति तथाभूतेन, चञ्चता=चमत्कुर्वता, चन्द्रहासेन, अवलम्बितम्=लसितम्, कटितट यस्य सः । मरकतमणिमहामालया, लसितेन=मण्डितेन, गलेन कमनीयः=मनोहरः । भुशुण्डिका="बन्दूक" इति ख्याता, तोमरम्, पट्टिशम्, सौवर्णदण्डाः=हैरण्ययष्टयः, एभिः आकलिताः करा येषा तान् । सम्बोभोत्ति=अतिशयेन भवति । परिवृढ=प्रभुः । "प्रभौ परिवृढः" । अस्माक, कर्मणि षष्ठी, लुण्ठकाय=चोरशिशुः, गणस्य=समूहस्य । भीता=भयाक्रान्ता । अन्तिमनिर्णयकर्त्ताऽऽयाति, किमनुष्ठास्यतीति विचारेण । स्तब्धा=निश्चेष्टा । खिन्ना=खेदाक्रान्ता । क्षुभिता=सञ्चलिता । व्याकुलेति भावः । उद्विग्ना=मानसिकोद्वेगवती । समवित्त=अशासीत् ।

अथ रसनारी स्वोपवेश-देशं प्रविश्य स्विन्नां गण्डस्थलीं यावत्पटान्तेन परिमार्ष्टि; तावत्प्रतिसीरामुत्क्षिप्य झटिति प्रविश्य शिरोनमन-पुरःसरमादराचारं विदधदवलोकितः स एव वीरवरः। इयं तमादरेङ्गितैः, तद्वचन-सुधाधारा-पिपासिताभ्यामिव कर्णाभ्यां परमैकतानता-जडीकृताभ्यामिव नयनाभ्यां चित्रार्पितेवाभूत्। महाराष्ट्राजस्तु बद्धकरसम्पुटः समवर्तत। न च विन्दुमपि विसर्गमपि चाब्रूत। ततः पराधीना तदाकार-सौजन्य-लावण्य-गाम्भीर्यादराचाराद्यवलोकन-मोहिता रसनारी स्वयमेवाऽऽरभ्य एवमालपत्।

रसनारी—आगम्यतामियमासन्दी सनाथ्यताम्।

स्वोपवेशदेशम्=स्वावासभूमिम्। स्विन्नाम्=चिन्तासञ्जातघर्मजलवतीम्। गण्डस्थलीम्=कपोलपालिम्। परिमार्ष्टि=प्रोञ्छति। प्रतिसीराम्=यवनिकाम्। "प्रतिसीरा यवनिका स्यात्तिरस्करिणी च सा" इत्यमरः। उत्क्षिप्य=उत्थाप्य। शिरोनमनपुरस्सरम्=मस्तकनतिपूर्वकम्। आदरेङ्गितैः=आदरसूचकचेष्टाभिः। तद्वचनसुधाधारापिपासिताभ्यामिव=तदुक्तिपीयूषप्रवाहपानाभिलाषुकाभ्यामिव, उत्प्रेक्षा। परमैकतानता-जडीकृताभ्यामिव=अत्यन्तैकाग्र्याकृतिनिश्चेष्टीकृताभ्यामिव। "एकतानोऽनन्यवृत्तिः" इत्यमरः। चित्रार्पितेव=चित्रलिखितेव। बद्धकरसम्पुटः=कृताञ्जलिः। विन्दुमपि विसर्गमपि=उच्चारयितुमनर्हः केवलो बिन्दुरूपोऽनुनासिको बिन्दुद्वयरूपो विसर्जनीयश्चापि यदा नोक्तस्तदा वर्णसमूहरूपपदाद्युच्चारणचर्चैव केति कैमुतिकन्यायेन किमपि नाकथयदित्यत्र तात्पर्यम्। भाषणभङ्गीपाटवप्रदर्शनाय त्वेवमभिधानम्। अनुनासिकविसर्जनीययोः किंचिच्च बिन्द्वात्मिका, तौ तु वर्णविवेतरयोगवाहनामसु शर्षु चेति संख्यानेन भाष्ये दर्शितमित्यादिकं शाब्दिकशैलीविदां नातितिरोहितमिति शम्। पराधीना=अस्वतन्त्रा। तदाकारस्य=तदाकृतेः, सौजन्यस्य=सज्जनताया, लावण्यस्य=सौन्दर्यस्य, गाम्भीर्यस्य=प्रकृष्टस्वभावस्य। आदराचारादेश्च=आदरातिशयाचरणादेश्च, अवलोकनेन, मोहिता=वशीकृता।

आसन्दी=आसनविशेषः। सनाथ्यताम्=सस्वामिकीक्रियताम्। उपविश्यतामिति यावत्। आदरातिशयद्योतनायैवमुक्तिः।

शिवराजः—यदाज्ञाप्यतेऽत्रभवत्या ।

(इत्येकस्यामासन्द्यां महाराष्ट्रराज , अपरस्यां च रसनारी, सार्द्ध-हस्तोच्छ्रायाया कौशेय-वसनाच्छन्नाया सजल-कुसुम-स्तवकालङ्कृत-मध्याया वर्तुल-पीठिकाया. प्राक् प्रत्यक् चोपाविक्षताम् ।)

रसनारी—वीर ! अतिसमादृताऽपि सुखं स्थापिताऽपि दुःखिताऽस्मितमाम्, यतो यत्नैरपि न ज्ञातुमशकं निज-धन्यवाद-भाजनं धन्य-धन्यं कमपि मान्य-वदान्यम्, यत्प्रदत्तं द्राक्षा-दाडिम-जातमास्वादमास्वादं केकि-केका-कोकिल-कूजितानि श्रावं श्राव दर्शं दर्शं चोपत्यका-शाद्वलेषु शम्बर-शल्लकी-शशक-शिवा-पलायनानि दिनानि गमयामि ।

शिवराज—आर्ये ! अपि कस्यापि महाराष्ट्र-वीरस्य शिवराजः इति नामधेयं श्रीमत्या. कर्ण-शष्कुलीमस्पाक्षीत् ?

रस०—[क्षण चिन्तयित्वेव] किं पार्वतोन्दुरु. शिव इति ?

शिवराज—[“दिल्ली-कलङ्का वराका एते मां पार्वतोन्दुरुमेवाऽऽख्यान्ति”

आज्ञाप्यते=आदिश्यते । अतिशयनम्रताध्वननायेदम् ।

सार्धहस्तोच्छ्रायाया.=अर्धेन सह विद्यमानो हस्तः, अर्धादिकः, उच्छ्राय.=अ.न्नत्य यस्यास्तस्याः । कौशेयवसनाच्छन्नायाः=पट्टवस्त्रप्रावृतायाः । सजलकुसुमस्तबकैः=सवारिपुष्पगुच्छैः, अलंकृत मध्यम्=मध्यभागो यस्यास्तस्याः । वर्तुलपीठिकाया=गोलाकृतिकाष्ठपीठिकायाः, “मेज” इत्याङ्ग्लशब्दस्य हिन्दीप्रयोगविषयस्याभिधेयायाः । उपाविक्षताम्=आसिषाताम् । केकिकेकाः=मयूररुतानि, कोकिलकूजितानि=परभृतरणितानि । श्रावं श्रावम्=श्रुत्वा श्रुत्वा । शम्बरस्य=मृगविशेषस्य, शल्लक्याः=श्वाविधः, “साही” इति हिन्दी, शशकस्य, शिवायाः=श्रृगाल्याश्च पलायनानि=धावनानि । दिनानि गमयामि=दिवसान् क्षपयामि । निरर्थं यापयामि कालमिति यावत् ।

कर्णशष्कुलीम्=श्रवणशिल्लीम् । श्रोत्ररन्ध्रमिति यावत् । पार्वतोन्दुरु=पर्वतीयाखुः । आख्यान्ति=कथयन्ति ।

इति स्वगतमेव विचार्य किञ्चिद् ह्रीण इव पुनरुन्नतीभूय] भद्रे ! महाराष्ट्र-राजः शिववीरः ।

रसनारी-[समीक्ष्यन्] तत् किं पार्वतोन्दुरुः कोऽप्यन्यः ?

शिव०---अत्र भवती न वेत्ति मर्म्मैतस्य । अस्माकं सदैव युद्धानि भवन्ति श्रीमत्यास्तातचरणैः सह । वयं सदैव तान् विजयामहे । तदीयानि कदर्य्याणि आचरणान्यवलोक्य च 'दिल्ली-कलङ्का इमे' इति कथयामः । ते च दग्धहृदया अस्मान् 'पार्वतोन्दुरून्' प्रचक्षते, परन्तु यथा तव तातस्तत्र राजा, तथा शिववीरोऽत्र राजा । तव तातस्य प्रजासु तु, येषां दारा अपह्रियन्ते; येषां देव-मन्दिराणि निपात्यन्ते; येषां च तीर्थस्थानानि बलाद्विलोप्यन्ते; ते प्रतिप्रभातं प्रतिसायं च वाष्प-वारि-बिन्दु-सन्दोहैराननं क्षालयन्तः, दग्धहृदयाः, धमद्धमद्धमनी-धावमान-रुधिर-धारा-दुर्धर्ष-वदनाः, हस्तावुन्नमय्य तव तातस्योच्छेदाय शपन्ते, शिव-राज्ये तु प्रजाः प्रतिक्षणमाशीराशीनुच्चारयन्ति । त्वत्पितृराज्यं बहिरेव; न तु प्रजानामन्तःकरणे । शिवस्य तु राज्यं महाराष्ट्र-देशीय-प्रजानामन्तर्बहिश्च ।

मर्म्म = रहस्यम् । कदर्य्याणि = अतिनिन्द्यानि । आचरणानि = कर्त्तव्यानि । दग्धहृदयाः = ज्वलितान्तःकरणाः । प्रचक्षते = कथयन्ति । दाराः = वनिताः । अपह्रियन्ते = चोर्यन्ते । विलोप्यन्ते = अदृश्यतां नीयन्ते । प्रतिप्रभातम् = प्रतिप्रातः । प्रतिसायम् = प्रतिसूर्यास्तमनवेलम् । वाष्पवारिबिन्दुसन्दोहैः = अस्रजलपृषत्समूहैः । क्षालयन्तः = धावयन्तः । धमद्धमन्तीषु = भीत्याऽतितरां धडत्कुर्वतीषु, धमनीषु = नाडीषु, धावमानस्य = शीघ्रगतेः, रुधिरस्य, धाराभिः = प्रवाहैः, दुर्धर्षाणि वदनानि = रूपनानि येषान्ते । उच्छेदाय = नाशाय, शपन्ते = अनिष्टमाशसन्ते । उन्नमय्य = ऊर्ध्वीकृत्य । आशीराशीन् = आशीर्वादततीः । अन्तःकरणे = चेतसि ॥

रस०–[सलज्जम्] तत् किं शिवराज्ये यवना अपि मोदन्ते ?

शिव०–सर्वासां प्रजानां समान एव मोद', न भवति शासन-काले जातिनामाद्युट्टङ्कनमावश्यकम् ।

रस०–तत किमित्यहमपहारिताऽस्मि ?

शिव०–मा स्म भूच्छ्रीमत्या. काचन बलात्कार-भीतिः । बहुभी रुधिर-प्रवाहैर्भगवती विश्वम्भरा स्नापिता, बह्वश्च युद्धाहत-वीर-रमण्यो रोदिता –इति यदि भवतीमाश्रित्य भवत्याः पित्रा सह सन्धातुं शक्येत, तद्यत्नायैव समानीता मङ्गलमय्यत्र भवती । नैतद् मौद्गल-राज्यम्, यत्र प्रजानामपि भवेद् बलात्कार-साध्व-सम् । अत्र तु महाराष्ट्राणां राज्यम्, यत्र परिपन्थिनामपि युव-जन-मनो-मोहनेनातिमधुरेण कौमारात् परेण वयसाऽऽलिङ्गिता अपि सौन्दर्य-सार-विरचिता इवापि दुहितर सम्मान्यन्ते, न त्वव-हेल्यन्ते । अत्रभवत्येवात्र प्रमाणम् ।

रस०–[तदाकर्ण्य शिरो नमयित्वा, अपाङ्ग क्षिप्त-लोल तारकेण

मोदन्ते = प्रसन्नतामनुभवन्ति । शासनकाले = रक्षणवेलायाम् । जाति-नामादीनाम्, उट्टङ्कनम् = प्रकटीकरणम् । अपहारिता = चोरिता ।

विश्वम्भरा = धरणी । स्नापिता=निर्णेजिता । युद्धे, आहतानाम् = मारितानाम्, वराणाम्, रमण्य =स्त्रियः । मङ्गलमयी=माङ्गल्यकारिणी । बलात्कारात् साध्वसम् = भीतिः । परिपन्थिनाम् = लुण्ठकानाम् । युवजनमनोमोहनेन = नववयस्कचेतस्समाकर्षकेण । कौमारात्परेण = यौवनेन । आलिङ्गिताः = आश्लिष्टाः । नवयुवत्य इति यावत् । सौन्दर्य-सारविरचिताः = लावण्यतत्त्वनिर्मिताः । दुहितर. = कन्यकाः । अवहे-ल्यन्ते = तिरस्क्रियन्ते । अत्रभवती = माननीया । अत्र = अस्मिन् विषये । अतो न पौनरुक्त्यम् । प्रमाणम् = प्रमाकरणम् । मदुक्तिसत्यतासाधकमिति यावत् ।

अपाङ्गे = नेत्रप्रान्ते, क्षिप्ता = प्रेरिता, लोला = चञ्चला, तारका =

लोचनेन शिव-मुखमसकृदीक्षमाणा, उरोजयोः स्रंसदिव वस्त्रं पुनः स्कन्धयोः क्षिप्त्वा] अथ कासौ महाराष्ट्र–राजो मोदित-सकल-समाजो रणधीरः शिववीरः ? तं दिदृक्षत एष जनः ।

शिव०–[समुत्थाय] एषोऽत्र भवत्याः सम्मुख एव बद्धकर-सम्पुट उपतिष्ठते शिवः, तदाज्ञाप्यतां काचन सेवा ।

रस०–[ससम्भ्रममुत्थाय] आ ! एवमेतत् ? अपि श्रीमानेव महाराष्ट्रराजः, यो मामेवं धृष्टवादिनीं मनोरमैर्नम्रालापैर्लज्जयते ? उपविश्यतामुपविश्यताम् । मनसाऽप्यकल्पनीयोऽयमीदृश. स्वभावः, यत् सपत्नोऽप्यादरेष्वेव सयत्नो भवान् ।

ततः परमुपविष्टयोर्मुहूर्तं यावद् बहव आलापास्तयोः परस्परं चकितयोर्मुदितयोरनुरक्तयोश्चाभूवन् ।

अथ समार्दवं तदनुमतिमासाद्य, सिंहदुर्गं प्रति निवर्तमानो मार्ग एव महता हिमगिरि-खण्डेनेव कर्पूर-पूर-निर्मितेनेव चन्द्र-

---

कनीनिका, यस्य तेन, लोचनेन=नयनेन । असकृत्=अनेकवारम् । ईक्षमाणा=अवलोकयन्ती । उरोजयो.=स्तनयोः । स्रंसदिव=स्खलदिव । इवेन न स्वयं वस्त्रस्खलनमपि तु शिवासक्तिसूचनाय रसनायैव पातितमिति ध्वनितम् । स्कन्धयो=असयोः । क्षिप्त्वा=अस्तव्यस्तं सस्थाप्य । "फेंक कर" इति हिन्दी ।

मोदितसकलसभाज.=प्रसन्नीकृतसमस्तजनसमूहः । दिदृक्षते=द्रष्टुमिच्छति ।

धृष्टवादिनीम्=धाष्टर्येन भाषमाणाम् । मनोरमैः=चेतोहरैः । नम्रालापै.=कोमलभाषणैः । लज्जयते=लज्जिता करोति । अकल्पनीयः=अननुमेयः । सपत्नः=अरिः । आदरेषु=सम्मानेषु । सयत्नः=सश्रम ।

चकितयोः=साश्चर्ययोः । मुदितयोः=प्रसन्नयोः । अनुरक्तयोः=अन्योन्यासक्तिमतोः । सर्वत्रात्र 'पुमान् स्त्रिया' त्येकशेषो बोध्यः ।

समार्दवम्=सकोमलतम् । हिमगिरिखण्डेनेव=प्रालेयाचलांशेनेव । कर्पूरपूरनिर्मितेनेव=हिमवालुकाधूलिरचितेनेव । चन्द्रचन्द्रिका-चय-

चन्द्रिका-चय-रचितेनेव मूर्तेनेव महाराष्ट्र-यशसा दुग्ध-धवलेन घोटकेन धावमानः, कतिभिश्चन सप्रसाद-नयनैरुत्साहमिव वमद्भिः, प्रत्यर्थि-प्रतापमिवारुण-रश्मि-बन्धं सव्येन करेण वशयद्भिः, निज-विजय-ध्वजेनेव मन्दमाघूर्णमानेन कशाग्रेण हयान् हेषयद्भिः, कटितट-विलम्बि-विलोल-करवालैरुष्णीष-पट्ट-प्रान्त-दोदुल्यमानानिल-चल-विलोल-बाल-जालैः सादिभिरनुगम्यमानो माल्यश्रीकः समागच्छन्नालोकि। समीपमागतास्ते सर्वे 'जय जीव!' इत्युच्चैः शिवराजमाचाराशीराशिभिः सममानयन्। माल्यश्रीकस्तु— "विजयतां श्रीमान्! प्रतिहतममङ्गलम्, हताः परिपन्थिनः"—इत्युदीर्य किञ्चन रहस्यं निवेदनीयं न्यवीविदत्।

अथ शिवेङ्गितमासाद्य सर्वेष्वश्वारोहेषु धनुषां विंशत्यामिव दूरतः कृतमण्डलेषु, मन्दमन्दं तुरग-निगालास्फोटन-पुरस्सरं

रचितेनेव = शशाकदीधितिनिकरनिर्मितेनेव। दुग्धधवलेन = पयःश्वेतेन। सप्रसादनयनैः = प्रसन्ननेत्रैः। वमद्भिः = उद्गिरद्भिः। प्रकटयद्भिरिति यावत्। प्रत्यर्थितापमिव = शात्रवतेज इव। अरुणम् = ईषद्रक्तम्, रश्मिबन्धम् = प्रग्रहम्। सव्येन = वामेन। वशयद्भिः = स्वायत्तीकुर्वद्भिः। पुष्टतया गृह्णद्भिरिति यावत्। निज-विजय-ध्वजेनेव = स्वजयवैजयन्त्येव। आघूर्णमानेन = सञ्चलता। कशाग्रेण = अश्वताडनीप्रान्तेन। हेषयद्भिः = हिणत्कारं कारयद्भिः। कटितट-विलम्बि-विलोल-करवालैः = मध्यभागावलम्बिचञ्चलचन्द्रहासैः। उष्णीषपट्टप्रान्ते = शिरोवेष्टनद्वितीयाञ्चले, दोदुल्यमानस्य = अतिशयेनोड्डीयमानस्य, अनिलस्य = वायोः, बलेन विलोलानि = चञ्चलानि, बालजालानि = केशवृन्दानि, येषान्तैः। आलोकि = दृष्टः। प्रतिहतम् = विध्वस्तम्। अमङ्गलम् = अशुभम्। न्यवीविदत् = न्यबोधयत्।

शिवेङ्गितम् = शिववीरचेष्टाम्। धनुषां विंशत्यामिव = प्रायो विंशतिधनुःपरिमितायामिव। कृतमण्डलेषु = विहितपरित स्थितिषु। वर्तुलाकारेणोपविष्टेष्विति यावत्। तुरगनिगालास्फोटनपुरस्सरम् = अश्वगलो-

प्रचलत्सु, शिवस्य वामतः शनैः स्वमश्वं चालयन् मन्द मन्दमगा दीन्माल्यश्रीकः ।

माल्यश्रीकः—[जनान्तिकम्] न्यवेदयमेव ह्यो रात्रौ श्रीमच्चरणेषु यत् पुरुषमयं पारावार-प्रवाहमिव सह नयन् दिल्लीकलङ्कस्यावरङ्गजीवस्य तनयो मायाजिह्मो महाराष्ट्रैः सह योद्धुमायातीति ।

शिव०—आम् ! ततः परमुच्यताम् !

माल्य०—स स्थितो गव्यूति—सप्तकान्तराल एवोपकार्य्याः समासज्यावसरं प्रतीक्षमाण आसीत् ।

शिव०—आसीदस्ति वा ?

माल्य०—प्रभो ! आसीदेव, सम्प्रति तु श्रीमच्चरणानां वशंवदः सञ्जातः—इति विशकलय्य निवेद्यते ।

शिव०—[सप्रसादं हसन्निवाऽऽकाशे दृष्टिं बद्ध्वा] अहह ! अरे रे ! अवरङ्गजीव ! महाराष्ट्रान् वञ्चयितुमिच्छसि ? न वेत्सि अस्मदीया बाला अपि त्वादृशांस्तृणाय मन्यन्ते । [माल्यश्रीकाभिमुखम्] अपि सत्यं निगृहीत एषः ?

माल्य०—महामान्य ! कोऽत्र संशय. ? स भवान्, यस्य प्रतापो नृसिंहस्य सटाम्, कपर्दिना जटाम्, फणिराजस्य

देशास्फालनपूर्वकम् । जनान्तिकम्—

त्रिपताककरेणान्यानपवार्यान्तिके जनान् ।
अन्योन्यामन्त्रणं यस्माद् जनान्ते तज्जनान्तिकम् ॥ इत्युक्तम् ।

पुरुषमयम् = मानवप्रचुरम् । पारावारप्रवाहमिव=सिन्धुधारामिव । मायाजिह्मः = "सुल्तान मुअजिम" इति प्रसिद्धः ।

गव्यूतिसप्तकान्तराले = चतुर्दशक्रोशमध्ये । उपकार्य्याः = शिबिराणि । समासज्य=सम्यगायोज्य । प्रतीक्षमाणः = प्रतीक्षा कुर्वन् ।

हसन्निव=हासं कुर्वन्निव । महता हासो नोग्रतामाश्रयतीति ध्वननायेतीवाभिधानम् । तृणाय, "मन्यकर्मण्यनादरे" इति चतुर्थी ।

प्रतापः = तेजः । नृसिंहस्य=हिरण्यकशिपुहन्तुरवतारविशेषस्य । सटाम् = केशरम् । कपर्दिनः = शिवस्य । फणिराजस्य=

स्फटां च स्पृशन् जाज्वल्यते ।

शिव०—अथ विशकलय्य क्रमतः कथ्यताम् ।

माल्य०—आर्य्य ! विनिवेदयामि भूतार्थम् । मायाजिह्म एष लम्पटराजस्य पुत्र—इति कथं नानुहरेत्स्वपितरमिति—महाराष्ट्र-देशे आगतमात्र एव "एतद्देशीयाः कीदृश्यो वारवनिताः ? कीदृश आसां वेषः ? कीदृश गानम् ? कीदृक्च नृत्यम् ?"—इति लाम्पट्य-गर्भमभिलाषं प्रकटितवान् ।

शिव०—ततस्ततः ।

वृत्तान्तममु पाञ्चसाहस्रिको गौरसिंहः समाकर्ण्य मायाजिह्मे मायां रचितवान् ।

शिव०—आचार्य्य एष माया-कल्पनेषु । ततस्ततः ।

माल्य०—प्रभो ! गौर प्रकृत्यैवातिसुन्दर, तत्रापि-दिवाकीर्ति-माहूय मसृणमुख' सवृत्य, अधररागमञ्जन-रञ्जन वारवधू-योग्यमा-भरण-जातं प्रच्छद-पटं च धारयित्वा, पटवास-वासित-दिगन्तर.,

---

शेषस्य । स्फटाम्=फणाम् । भवान् सुदूरव्यापिप्रताप इति यावत् । विशकलय्य=विविच्य ।

भूतार्थम्=व्यतीत सत्यं वस्तु । लम्पटराजस्य=परस्त्रीलोलुपाधि-नाथस्य । नानुहरेत्=नानुकुर्वात । वारवनिताः=वेश्याः । वेषः= नेपथ्यम् । लाम्पट्यगर्भम्=परस्त्रीलोलुपतामिश्रम् ।

पाञ्चसाहस्रिक=शरसहस्रसेनापतिः । पञ्चसहस्रभटाध्यक्ष इति यावत् ।

दिवाकीर्त्तिम्=नापितम् । एतद्वाचकशब्दाना रात्रौ नोच्चारण कार्य-मन्यथा मरणाशौचापात इति मैथिलेषु प्रसिद्धिः । सा चैतदभिधानमूलिका युक्ता चेति वेदितव्यम् । मसृणमुख'=चिक्कणाननः । सवृत्य=भूत्वा । अधररागम्=ओष्ठलौहित्यकारक रञ्जनद्रव्यम्, अञ्जनरञ्जनम्=कज्जलेन शोभासम्पादनम्, अक्ष्णोरिति शेषः । प्रच्छदपटम्=आवरकवस्त्रम् । पट-वासवासित-दिगन्तर.=वसनसौगन्ध्यसुरभितहरिदन्तरालः । रतिप्रतकृति-

रति-प्रतिकृतिरिव स्मितैः कटाक्ष-क्षेपैः, मधुर-वचनैः, सजघनकम्प-पाद-क्षेपैः, सकृत्रिम-कुच-वेपन-वलित-वलि-भङ्ग-ललित-कञ्चुकिका-दर्शनैः, यूनां मनो मन्मथोन्मथितं विदधत्, ब्रह्मचारि-कुटीर-वासि-संन्यासिनामेव परिवर्तितवेषैः, कैश्चित् कलितमृदङ्गैः, अपरैस्तानपूरिका-ताल-झर्झर-करैः, अन्यैर्व्यजन-पतद्ग्रह-ताम्बूलकरङ्क-मञ्जीर-पोटलिकादि-वाहकैः, इतरैश्च पञ्चषैः कलित-दासीरूपैरनुगम्यमानः सौवर्णप्रच्छदाच्छन्नामतिरमणीयामेकां शिबिकामारुह्य, धीरैरेवाऽऽकलित-भारवाह-वेषैरुह्यमानः, तदीय-शिविर-मण्डलमासाद्य—"पद्मिनीनाम्नी जगत्प्रसिद्धा महाराष्ट्र-देशीया वाराङ्गना समागच्छति"–इति समसूसुचत् ।

शिव०—तत. ।

माल्य०—ततो नामश्रवणमात्रेण पुलकितः प्रफुल्लितः स्विन्नः

रिव=कामपत्नीप्रतिमूर्तिरिव । स्मितैः=ईषद्धास्यैः । कटाक्षक्षेपैः=भ्रूभङ्गसञ्चालनैः । मधुरवचनैः = कोमलभाषणैः । सजघनकम्पपादक्षेपैः = जघन-वेपनपुरस्सरमभिन्यासैः । कृत्रिमयोः = निर्मितयोः, कुचयोः, वेपनेन = कम्पेन, वलितैः=उपचितैः, वलिभङ्गेन = त्रिवलीभङ्गेन, ललितैः =सुन्दरैः, कञ्चुकिकादर्शनैः = चोलिकाप्रकटनैः । मन्मथोन्माथितम् = काममर्दितम् । विदधत् = कुर्वाणः । परिवर्तितवेषैः =नवीकृत-नेपथ्यैः । कलितमृदङ्गैः=धारितमृदङ्गैः । व्यजनम्=तालवृन्तकम्, पतद्ग्रहः=निष्ठ्यूतग्रहः ताम्बूलकरङ्कम्=ताम्बूलधारपात्रम्, "पान-डब्बा" इति हिन्दी, मञ्जीरपोटलिका="घुँघुरुओं की पोटला" इति हिन्दी, इत्यादीना वाहकैः=प्रापकैः, भृत्यैः । कलितदासीरूपैः=गृहीतभृत्यानेपथ्यैः । सौवर्णेन=हैरण्येन, प्रच्छदेन=आच्छादनपटेन, "ओहार" इति हिन्दी, आच्छन्नाम्=परितःपिहिताम् । आकलित-भारवाह-वेषैः= धारितशिबिकोद्वाहकनेपथ्यैः । उह्यमानः=नीयमानः । वाराङ्गना= गणिका । समसूसुचत्=समबूबुधत् ।

पुलकितः = सरोमाञ्चः । प्रफुल्लितः=विकसितः । स्विन्नः=आर्द्र

२४

आनन्दितश्च मायाजित्स रङ्ग-शिविरं प्रवेष्टुमादिदेश ।

शिव०—रङ्ग-शिविरम् ?

माल्य०—प्रभो ! लम्पटानां शिविर-सन्निवेशेषु रङ्ग-शिविरमपि भवति; यत्र केवलं दुरोदरं वा वारवधू-विलासो वा नर्मशर्माणि वा पान-परम्परा वा भवति । तत्र न सर्वेऽपि निविशन्ते, किन्तु कैश्चिदेवात्यन्तमन्तरङ्गैर्विषय-भोग-भाजो भवन्ति भट्टारकाः ।

शिव०—एवम् ! ततः किमभूत् ?

माल्य०—आर्य ! तन्निदेशेन रङ्गशाला-द्वारि शिबिकामास्थाप्य सह सर्वैरनुचरैरन्तः प्रविवेश पद्मिनी । तत्र कराऽऽकीर्णा वितस्त्युच्छ्राया कनक-सूत्रमयी तूलिका । तदुपरि स्थापितास्ताद्दशा एव त्रय उपबर्हाः । सम्मुखतः सौवर्णं वर्तुलास्तरणे सुसज्जितं प्रलम्बनलं कटु-मधुरामोदामोदित-दिगन्तरं धूमपानयन्त्रम् । एकतो राजत-पीठिकायां विन्यस्तानि, अन्तःस्थ-रक्त-पीतारुण-द्रवाभाभार-धारा-स्नपितास्तरणानि, मध्यस्थ-दीप-द्योत-द्योतित-दीप्ति-

वपुः । आनन्दितः = प्रसन्नीकृतः । रङ्गशिविरम् = नृत्योत्सवस्थानम् । शिविरसन्निवेशेषु = सेनानिवेशदेशेषु । दुरोदरम् = द्यूतम् । नर्मशर्माणि = हास्यादिसुखानि । पानपरम्परा = मद्यपानान्यासः । भट्टारका = अधिपतयः सेनादीनाम्, ऋतुराजा वा 'राजा भट्टारको देव' इत्यमरः । आस्थाप्य = संस्थाप्य । अनुचरैः, साकमिति शेषः । वितस्त्युच्छ्राया = हस्ताधोच्छ्रितिः । वितस्ति = "बित्ता" इति हिन्दी । कनकसूत्रमयी = सुवर्णतन्तुशिल्पसमेता । तूलिका = "गद्दी" इति हिन्दी । उपबर्हा = उपधानानि । वर्तुलास्तरणे = गोलमञ्चिकाशिरे । प्रलम्बनलम् = दीर्घधूमाकर्षकम् । कटुमधुरामोदमोदितदिगन्तरम् = अतितिक्ष्णसुगन्धिसुरभितहरिदन्तरालम् । राजतपीठिकायाम् = रौप्यपीठे । अन्तःस्थानाम् = अन्तर्वर्तमानानाम्, रक्तपीतारुणद्रवाणाम्, अर्थात्तद्वर्णानां सुराणाम् । आभायाः = भासः, भारधारया = गुरुतरस्रोतसा । स्नपितानि = क्षालितानि, तत्तद्रागरञ्जितानीति यावत्, तद्गुणालङ्कारः । आस्तरणानि = वर्तुलाच्छादनवसनानि यैस्तानि । मध्यस्थदीपद्योतेन = अन्तरालस्थापितदीपप्रकाशेन, द्योतितः = प्रकाशितः, यो दीप्तिप्रचयः = स्वस्वच्छविसमूहः,

प्रचय-विहित-बहुल-चाकचक्यानि, अधोमुख-विन्यस्त-विविध-काच-चषक-वृत्तानि माध्वीक-मैरेय-जगल-वारुण-परिपूरितानि, ऊर्ध्वमुखानि काचपात्राणि, परितोऽष्टापद-रचितमष्टापदम्, रत्न-निर्मिताः शारिवाटिकाः, दन्ति-दन्त-सार-रचिताः पाशकाः, परितो विलम्बमानेषु नानावर्ण-काच-कुसुम-स्तवकेषु ज्वलन्त' शतशो दीपा, कोणेषु तूष्णीं स्थिता व्यजनयुजो भरणण्यभुजश्चाऽऽसन्।

शिव०—ओम्।

माल्य०—तत्र प्रविश्यैकतः स्थित्वा किञ्चित्प्रतीक्षमाणायामेव पद्मिन्याम्, झटिति द्वित्रैर्वयस्यैर्वृतः, ताम्बूल-चर्वण-चञ्चल-रदन-

---

तेन विहितम्=सम्पादितम्, बहुलम्, चाकचक्यम्=चमत्कृतिर्येषु तानि। अधोमुखानि=निम्नाननानि, विन्यस्तानि=स्थापितानि, विविधानि=अनेकानि, काच-चषक-वृत्तानि=काचनिर्मित-पान-भाजनानि। माध्वीकम्=मधूकपुष्पजातं मद्यम्, मैरेयम्="मिरा" नामकौषधनिर्मित आसवः, जगल.=मद्यकल्कः, "मेदको जगलः समावि" त्यमरः, वारुणी=सुरा, एताभिः परिपूरितानि=भरितानि। ऊर्ध्व-मुखानि=उन्मुखानि, काचपात्राणि=वर्तुलानि, "बोतल" इति हिन्दी। अष्टापदेन=सुवर्णेन, रचितम्=निर्मितम्। अष्टापदम्=पाशक्रीडार्थ-शारिकाधारस्वरूपं चतुष्पाटीनामकं वसनम्। "चौपड" इति हिन्दी। शारिवाटिका'=पाशकप्रक्षेपार्थं निर्मितानि कोष्ठकानि। दन्तिदन्त-साररचिताः=करिदशनमध्यनिर्मिताः, पाशकाः='पासा' इति हिन्दी। विलम्बमानेषु=अधोमुखेषु स्थितेषु। नानावर्णानाम्, काचानाम्, कुसुमस्तवकेषु=कुसुमचित्रितगुच्छत्रदवभासमानेषु। व्यजनयुज.=तालवृन्तकवाहिनः। भरण्यम्=वेतनम्, भुञ्जत इति भरण्यभुजो वैतनिककर्मकराः।

वयस्यैः=समानावस्थाकैर्मित्रैः। ताम्बूलचर्वणे=वीटिकास्वादने, चञ्चलाः=चपलाः, रदनाः=दन्ताः यस्य तादृशं वदनं यस्येति बहुव्र.हि-र्गिभतबहुव्रीहिः। अथवा रदनाः वदनं च यस्येति केवलो बहुव्रीहिर्वा।

वदन, विस्फारिताभ्यामिव नयनाभ्यां पिबन्निव, विविध-परिमल-परिमर्दिताग्रया घोणया जिघ्रन्निव च मायाजिह्मः प्रविश्य पद्मिनी-दत्त-दृष्टिरेव तूलिकामलञ्चकार।

अथ ताम्बूल-परिमलैला-लवङ्ग-पत्रक-पटवास-दानादानैरेव कियन्तं समयमतिवाह्य, सहास सस्मितं सानुराग सकटाक्ष-विक्षेपणं सभ्रूभङ्ग-सकन्धरा-परिवर्त्तनं च पद्मिन्या सहाऽऽलाप्य, मुहूर्तं ससाधुवादं तद्गानानन्दं चानुभूय, पारितोषिकं निजकण्ठहारं समर्प्य, रजन्याः प्रथम-प्रहर-व्यत्यय-सूचकं समुरलीरणनं भेरी-नादमाकर्ण्य, सहचरान् विसृज्य, एकाकी संवृत्य, किञ्चित् समीप-मुपसृत्य शनैः पद्मिनीं पान-गोष्ठी-सहचार-स्वीकार-भिक्षां ययाचे। सा च स्मयमानेव लज्जमानेव सग्रीवा-भङ्गमवनत-मुखी, कपटह्रिया स्वयं स्वस्मिन्नेव निविशमाना, तूष्णीङ्कारेणैवाङ्गीकारमाचक्षाणा चूर्णकुन्तल-मूलं कण्डूयितुमारेभे।

शिव०—ततः ?

माल्य०—ततो भ्रूभंगेन पद्मिनीसहचरानपि पुरुषान् द्वारदेशे प्रतीक्षितुमाख्याय, तेषु गतेषु, द्वित्रासु पद्मिन्याश्चेटिकास्वेव वर्त्तमानासु, मायाजिह्मो हाटकामत्राादुत्थाप्य पञ्चषा एलाः पद्मिन्यै

विविध-परिमल-परिमर्दिताग्रया=नानासौरभपरिमथितप्रान्तया। घोणया = नासिकया। पद्मिनीदत्तदृष्टिः=पद्मिनीनिरीक्षणनिरतः।

ससाधुवादम्='साधु गीतम्' इत्यादिकथनपुरस्सरम्। पारितोषिकम्=प्रसन्नेन सता दीयमानम्। प्रथम-प्रहर-व्यत्यय-सूचकम्=आदिमयामस-माप्ति-बोधकम्। एकाकी=अद्वितीयः। संवृत्य=भूत्वा। पानगोष्ठीसह-चारस्वीकारभिक्षाम्=मद्यसमासम्मिलनाङ्गीकरणयाञ्चाम्। स्मयमानेव=ईषद्धास्यनिरतेव। अवास्तवत्वादिवोक्तिः। कपटह्रिया=कृत्रिमत्रपया। तूष्णीङ्कारेणैव=मौनेनैव, 'मौनं स्वीकारलक्षणम्' इति न्यायात्। चूर्णकुन्तलमूलम्=कुटिलकेशमूलम्।

चेटिकासु=भृत्यासु। वर्त्तमानासु=तिष्ठन्तीषु। हाटकामत्रात्=

करे आर्पयत् । साऽपि सखीहस्तादेकं रजत-सम्पुटमादाय, ततो वीटिका-द्वयं सुवासितं पूग-चूर्णं ताम्रक-सार-लेहं च तस्मै प्रायच्छत् ।

शिव०—साधितं पद्मिन्या । ततः ?

माल्य०—भगवन् ! स तु वीटिकामास्वादयन्नेव प्रेम-वार्ता विदधदेव, शनैः शनैस्तन्द्रा-परवश इव, विनैव मैरेय-शराव-चुम्बनं मदपराधीन इव, उपबर्हं पृष्ठेनाऽऽश्रयीकृत्य, शनैः शिरोऽपि तस्मिन् समासज्य निद्रापरवशोऽभूत् ।

पद्मिनी तु मूर्छक-महौषध-मिश्रितं किञ्चित् परिमलं नासा-पुटयोः संयोज्य तमधिकं मूर्छयित्वा, तस्य वस्त्राण्यपहृत्य स्वकीयेनांशुकेन तदङ्गमावृत्य, स्वयं च पोटलिकास्थेनापरेण दासीयोग्येन वाससा दासीभूय, बहुरूपविद्यया क्षणेन स्वाकृतिं तदाकृतिं च परिवर्त्य, मायाजिह्मपटैरुपबर्हमेकं संशृङ्गार्य शाययित्वा, उत्तरीयेण चैकत आच्छाद्य, चेटीभिः सह कलित-पद्मिनी-वेषं मायाजिह्ममुत्थाप्य, बहिरानीय, पश्यतामेव भ्रान्तानां द्वारपालानां—"अहो !

सुवर्णपात्रात् । रजतसम्पुटम्=रौप्यनिर्मितं ताम्बूलाधारभाजनं लघुभूतम् । ताम्रकसारलेहम्="किमाम" इति प्रसिद्धम्, ताम्बूलोपयोगिद्रव्यम् ।

तन्द्रा=निद्रापूर्वरूपम्, आलस्यविशेषात्मकम् । मदपराधीन इव=मदवशग इव । तस्मिन्=उपबर्हे । समासज्य=संयोज्य ।

मूर्छकम्=मूर्छाजनकम्, यत् महौषधम्=श्रेष्ठौषधिः, तन्मिश्रितम्=तत्संपृक्तम् । परिमलम्=सुगन्धिद्रव्यम् । अपहृत्य=दूरयित्वा । अंशुकेन=प्रावरकेण वाससा । दासीभूय=दासीनेपथ्यभूषिता भूत्वा, बहुरूपविद्यया=अनेकस्वरूपधारणकलया । क्षणेन, एतेन तद्विद्यायामतिपाटवं बोधयति । परिवर्त्य=विनिमय कृत्वा । उपबर्हम्=उपधानम् । संशृङ्गार्य=अलंकृतं विधाय । शाययित्वा=प्रस्वाप्य । आच्छाद्य=संगोप्य । भ्रान्तानाम्=भ्रमे निपतितानाम् । द्वारपालानामित्यत्र "षष्ठी

महानद्यं विहितः सरकः, कादम्बरीयमतितीक्ष्णा, अवदंशमप्यास्वाद-यितुं न पारयसि, प्रविश, शेष्व पालङ्क्यामेव"—इति सहचरीरालपन्ती शिबिकायामतिष्ठिपत्।

एका चेटी द्वारपालमेकं शनैरकथयत्—"अत्रभवान् युवराजः शेते, तद् निर्मक्षिकमेव विधेयं भवद्भिः" इति। स च "अस्माकमन्तः प्रवेष्टुं नाधिकारः, वयं नग्नचन्द्रहासा अत्रैव पर्यटितुं नियुक्ताः"—इत्युदतारीत्।

वाहकाश्च पल्यङ्कीमुत्थाप्य चल चलेति चेलुः, अनुचराश्च सहैव गच्छत गच्छतेति जग्मुः।

शिव०—[आकाशे दृष्टिं बद्ध्वा] धिक् त्वां रे मायाजिह्म! सम्यग् गृहीतोऽसि।

माल्य०—भगवन्! ततो नल्व-द्वयान्तराले प्रतीक्षमाणानश्वानारुह्य त्यक्त-चेटो-वाहकादि-वेषा वीराः सावधानतया मायाजिह्ममुं ब्रह्मचारि-कुटीरे समानीतवन्तः सन्ति। तदत्र प्रभुचरणा एव प्रमाणम्।

शिव०—अथ काऽवस्था तत्सेना-सन्निवेशस्य?

चानादरे" इति षष्ठी। सरकः = सुरापानम्। कादम्बरी = वारुणी। अवदंशम् = भक्षणम्, "अवदंशस्तु भक्षणमि" त्यमरः, मद्येन सह भक्ष्यमाणं व्यञ्जनादि। शेष्व = स्वपिहि। पालंक्याम् = शिबिकायाम्। सहचरीः = चेटीः। आलपन्ती = कथयन्ती। अतिष्ठिपत् = अस्थापयत्। गृहीतदासीनेपथ्या कन्या, ग्राहितपद्मिनीवेषा च कर्मत्वाश्रयीभूतेति वेदितव्यम्।

मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकम्=जनसञ्चारशून्यम्। अन्तःप्रवेष्टुम्=अन्तराले गन्तुम्। नियुक्ताः = अधिकृताः। उदतारीत्=उत्तरयाम्बभूव।

नल्वयोः = चतुश्शतहस्तमितदेशयोः, "नल्वः किष्कुचतुश्शतमि" त्यमरः, द्वयम्, तदन्तराले।

माल्य०—वीर ! प्रातरेव ते प्रनष्टं मायाजिह्ममालोक्य, विवर्णाः पृप्रुत एव प्रस्थितवन्त इत्यश्रौषम् ।

शिव०—अथासौ माया-भवने स्थापनीयो भोजनासनादिभिश्च सत्कारणीयः, अहमेनमवसरे द्रक्ष्यामि ।

अथोमित्युक्त्वा कुटीराभिमुखं प्रस्थिते माल्यश्रीके, सिंहदुर्गाभिमुखं च पुनः प्रचलति महाराष्ट्रभूपरिवृढे, पश्चिमघट्ट–महापर्वत–श्रेणीतः समुत्तीर्य, समुद्धूत–ध्वजाः सन्देशहराः पञ्च सादिनः फेनाविलवल्गैः, ह्रेषा-विहित-जयध्वनि-प्रातिनिध्यैः, सचामरैरिवोत्थितपुच्छैः, कलित-कमल-दल-द्वयरिवोर्ध्वकर्णैः, हर्ष-वर्ष-स्नातैरिव खिन्नैः, घोटकैर्धावमाना दूरादेव जय जयेति वादिनः समागताः। कोङ्कणेश्वरश्च तान् समासादित–शुभ–संवादानवगत्य, निजाजानेय–रश्मिमाकृष्य स्वगतिं निरुरोध, भ्रूसंज्ञयैव च किमिति पप्रच्छ। तेषु जयध्वनि–धाराभिर्धराधरं धाराधरं धराञ्च ध्वनयत्सु, तेषामेकः समुपसृत्य साञ्जलि-बन्धं प्रणम्य प्रावोचत्—

प्रनष्टम्=अदर्शनताङ्गम् । "नशेः षान्तस्ये"ति णत्वनिषेधः । विवर्णाः=म्लानाः । दुःखिन इति यावत् । मायाभवने=कूटागारे ।

अथ ओम्=ततः स्वीकृत्य। "ओमाङोश्च" इति पररूपम् । महाराष्ट्र-भुवः परिवृढे=प्रभौ । पश्चिमघट्टे "घाटी" इति हिन्दी, ये महान्तः पर्वताः, तेषां श्रेणीतः=परम्परातः, समुद्धूतध्वजाः=समुच्चालितवैजयन्तीकाः । फेनाविलवल्गैः=डिण्डीरसंपृक्तकविकाभिः । ह्रेषया=हिणत्कारेण, विहितं जयध्वनिप्रातिनिध्यं यैस्तैः । उत्थितपुच्छैः, उत्थितं पुच्छम्=लाङ्गूलं येषां तैः । सचामरैरिवेत्युत्प्रेक्षा । कलित-कमलद्वयैरिव=धारितपद्मद्वितयैरिवेत्युत्प्रेक्षा । ऊर्ध्वकर्णैः=उद्गतश्रोत्रैः । हर्षवर्षस्नातैरिव=आनन्दवृष्टिनिर्णिक्तैरिव । पञ्चसादिनः=पञ्चसङ्ख्याका अश्वारोहाः । समासादितशुभसंवादान्=समानीतहर्षसंदेशान् । अवगत्य=बुद्ध्वा । धराधरम्=पर्वतम् । धाराधरम्=जलधरम् । धराम्=पृथिवीम् । समुपसृत्य=अन्तिकमागत्य ।

"भगवन् ! विजयस्व, विजयस्व, सर्वोऽपि खान-देशः, सकलोऽपि च पोत-परम्परा-प्रधावमान-सांयात्रिक-सकौतुक-वीक्षित-पारावार-वीचि-व्रज-मार्जितः कोङ्कणदेशः श्रीचरणाना हस्तगतः सम्पन्न । सागर-ससर्पि-प्लव-कूपकानां मस्तकेष्व पि महाराष्ट्रमण्डलाऽऽखण्डलस्यैव जय-पताका गगन-तलं विलोडयन्ति । विजयतां विजयतां विजयता महाराज । सेनापतिना पत्रमिदमर्पितम्"-इति कक्ष-गुटिकातो निस्सार्य पत्रमेकमार्पयत् ।

शिव०—[पत्रावरणमुन्मुञ्चन्] अपि जानास्यवस्थां सुरतयुद्धस्य ?

सन्देशहर —विजयता भट्टारक' । एकेनैवाह्ना विजिताः सर्वेऽपि भारतद्रुह. । साम्प्रत सुरत-नगरस्यापि गृहे गृहे चत्वरे चत्वरे प्राङ्गणे प्राङ्गणे च देवस्यैव विक्रम-कथा जेगीयते ।

शिव०—[पत्रं प्रसार्य मुद्रा विलोक्य, सहचराश्चाऽऽनन्दद्दशा सम्भाव्य] विलिखत्येतद् धीरेन्द्रसिंहो विजयध्वजापरनामा ।

तदाकर्ण्य सर्वेऽपि शिव-सहचरा' सगुल्फाहति सवल्गा-

पोतपरम्पराभिः = नौकाश्रेणीभिः, प्रधावमानै. = शीघ्रगतिभिः, सांयात्रिकै = पोतवणिग्भिः, सकौतुकम् = सकौतूहलम् , वीक्षितः = दृष्टः। पारवारवीचिव्रजमार्जित. = जलधिलहरिव्रातधौतः । सागरे संसर्पिणाम् = ससरताम् । प्लवानाम् = पोतानाम् , ये कूपका = "गुणवृक्षकाः" इत्यमर' । "मस्तूल" इति हिन्दी । जयपताका =विजयवैजयन्त्यः । विलोडयन्ति = सङ्घर्षयन्ति । कक्षगुटिकात = बाहुमूलस्थपोटलिकातः ।

पत्रावरणम् = "लिफाफा" इति प्रसिद्धम् । सुरते = गुर्जरदेशैकदेशे "सूरत"-इति नाम्नाऽधुना प्रसिद्धे, यद् युद्ध तस्य ।

भट्टारक. = स्वामी । अह्ना = दिवसेन । देवस्य = भवतः । विक्रमकथा = पराक्रमवार्ता । जेगीयते=वारं वारमुद्गीयते । मुद्राम्=राजचिह्नम् , स्वीयाम् । सगुल्फाहति = गुल्फैःश्वताडनपुरस्सरम् । एव कृतेऽश्वाः शीघ्रतया

स्फालनं च सप्तीन् समीपमानीय—किमिति किमितीति सोत्कण्ठाः समस्थिपत। ततस्त्वरितया दृशोर्द्धमधश्चालोक्य सहचरस्यैकस्य हस्ते दत्त्वा, समन्दस्मितं पठितुमाज्ञप्तवान्, सोऽपि च—"महाराष्ट्रराजस्य नास्ति लेखपोठादिषु पाटवम्"—इति स्मरन्, सपदि तद्धस्ताद् गृहीत्वा, वारमेकं मनसैव पठित्वा झटिति पठितुमारब्धवान् यद्—

"विजयतां पाथोधि–पयःपूर–परिवर्ति–परश्शत–पोतस्थ–सांयात्रिक–समूह–जेगीयमान–कीर्तिचन्द्रिका–चुलुकन–चकोरीभूत–कोङ्कण–कल्याण–खानदेशादि–महामण्डल–प्रजागणः, सद्यश्छिन्न–प्रत्यर्थि–पृथिवीपति–कन्धरा–विगलत्कवोष्ण–शोण–शोणित–प्रवाह–परितर्पित–शाकिनी–डाकिनी–भूत–प्रेत–मण्डली–विलोडित–ताम्र–श्मश्रु–गण्ड–मुण्ड–माला–मण्डित–चण्डीकः, सनातन–धर्म–रक्षण-

---

चलन्ति। सवल्गास्फालनम् = सकविकाऽऽकर्षणम्। सप्तीन् = हयान्। सोत्कण्ठाः = उत्काः। समन्दस्मितम् = अत्यल्पमन्दहाससहितम्। पाटवम् = दाक्ष्यम्।

पयोधिपयःपूरे = वारिधिवारिप्रवाहे, परिवर्त्तिषु = सञ्चलितेषु, परश्शतेषु = शताधिकेषु, पोतेषु, सांयात्रिकाणाम् = पोतवणिजाम्, "सांयात्रिकः पोतवणिक्" इत्यमरः। समूहेन, जेगीयमानायाः = वारं वारमुद्घोष्यमाणायाः, कीर्त्तिचन्द्रिकायाः = यशःकौमुद्याः, चुलुकने = चुलुकीकरणे, पाने चकोरीभूतः = चकोरपक्षिता गतः, कोङ्कण-कल्याण-खानदेशादिमहामण्डलप्रजागणो यस्यैवम्भूतः। सद्यश्छिन्नाभ्यः = तत्कालकृत्ताभ्यः, प्रत्यर्थिपृथिवीपति-कन्धराभ्यः = विरोधि-भूपालग्रीवाभ्यः, विगलता = क्षरता, कवोष्णेन = ईषदुष्णेन, शोणेन = रक्तवर्णेन, शोणितप्रवाहेण = रुधिरधारया, परितर्पितया = सन्तोषितया, तृप्तिमानीतया, डाकिनी-शाकिनी-भूत-प्रेत-मण्डल्या, विलोडितानाम् = मथितानाम्, ताम्रश्मश्रुगण्डानाम् = रक्तवर्णकूर्चकपोलानाम्, यवनानाम्, मुण्डमालाभिः = छिन्नमस्तकस्रग्भिः, मण्डिता = भूषिता, चण्डी = तमोगुणप्रधाना शक्तिरखिल-

सक्षण', रिपु-निकर-सम्पत्ति-सीमन्तिनी-धम्मिल्ल-वेल्लित-मल्लिका-मतल्लिका-माल्य-सुवासित-करपल्लव-तल्लज , परस्सहस्र-श्रीसवलित श्रीमहाराष्ट्रमण्डलाऽऽखण्डलः ।

श्रीचरणेषु विविध-प्रणति-तति-पुरस्सरं सजयध्वनि सविजय-ध्वजान्दोलनञ्च विनिवेदयत्येष विजयध्वजनामा सेनापति-पद-सनाथितः यद्-"ये हि कलित-मर्कयात्रि-वेषा वारं वारं हीनदीन-प्रजा बाधमाना महाराष्ट्रैर्युयुत्सव आसन् ; तेषु शतशो महाराष्ट्र-रिष्टि-धारा-तीर्थे मुक्ति गता , अपरे च पलायिता.। अत्राल्पीयसी दिल्ली-कलङ्केन प्रेषिता, अपरा च सुरताधिष्ठितैर्यवन-वणिग्भिर्योजिता चमूरप्यस्माभिर्योद्धु चन्द्रहासान् कोशेभ्य' कर्षितवती । तया सह

भुवनधक्षणसामर्थ्यशालिनी, येन सः । "नद्यृतश्चे" ति कप् । डाकिन्यादयो वायवीय शरीरोपेताः श्रुतौ तदर्थभूतेषु पुराणेषु लोककथासु च चिरप्रसिद्धाः।' एतदनंगीकरणनिपुणास्तु लोकायतमात्रदृष्टय इति पुराणमतदीपिकायां विस्तरेण प्रतिपादितम् ।

सनातनधर्मरक्षणे, सक्षण =सोत्सवः । रिपुनिकरस्य=शत्रुसमूहस्य, सम्पत्तिरेव=श्रीरेव, सीमन्तिनी=वनिता, तस्याः धम्मिल्ले = केश-बन्धे, वेल्लितस्य = दोलितस्य, मल्लिकामतल्लिकामाल्येन=प्रशस्तमल्लिका-स्रजा, सुवासितः = सुरभितामापादितः, करपल्लवतल्लजः = प्रशस्तहस्त-किसलयं यस्य सः । परस्सहस्रश्रीसंवलित =अत्यधिकशोभाशाली ।

सविजयध्वजान्दोलनम् = विजयवैजयन्तीहिल्लोलनपुरस्सरम् । सेना-पतिपदेन=सेनानीपदव्या, सनाथित.=सनाथीकृतः । कलित-मर्कयात्रिवेषाः=धारित मर्कपान्थनेपथ्याः । मर्क "मक्का" इति प्रसिद्धयवन-तीर्थम् । पुरा हिन्दूना तीर्थमिदमासीत् । अधुनाऽपि तत्र शिवलिंग दृश्यते, तदेव च पूजयन्ति तत्र गता यवना इति श्रोत्रपरपरानुस्यूता वार्ता । बाध-माना =पीडयन्तः, महाराष्ट्राणा रिष्टिधारातीर्थे=खड्गधारापूतस्थले । मुक्ति गता.=मृताः । पलायिता =युद्धमपहाय दूर गताः । सुरता-धिष्ठितै ="सूरत" नगरनिवासिभिः । योजिता=सकलिता । चमू = वाहिनी । कोशेभ्य'=असिधानीभ्यः । कर्षितवती, सम्रामोद्यताऽभूदिति

श्रीमच्चरणौ स्मृत्वाऽस्मद्वीरैर्युद्धमारब्धम्। मुहूर्तं तुमुलमभूज्जन्यम्। परतश्चोद्यतखड्गैरस्मद्भटैर्वेभिद्यमानाः केचन पुरन्दर-मन्दिरम्, अपरे च गिरिकन्दरं भेजुः। साम्प्रतमस्मद्धस्तगताः शतं पोताः, सुरतनगरम्, खानदेशः, निखिलश्च कोङ्कणदेशोऽस्ति। तदत्र श्रीचरणाः प्रमाणम्"—इति।

तदाकर्ण्यातिप्रसन्नः क्षणमालप्य, "अथाऽऽगम्यताम्, सिंहदुर्गे लप्स्यत उत्तरपत्रम्" इति कथयित्वा, इङ्गितज्ञैः, समीरं प्रसद्भिरिव विपदङ्गणरिङ्गणमीहमानैरिव तुरङ्गैः सपदि सिंहदुर्गमायातः।

❀ ❀ ❀

संन्यासिकुटीरे तु दिल्लीश्वर-तनयं तथाऽऽनीतमालोक्य, ब्रह्मचारिगुरुणा सह सर्वेऽपि तत्ताऽवस्था मुमुदिरे। गौरं च पर्यायतः सर्वेऽपि सानन्दं परिपस्वजिरे। गौरस्तु सुप्तस्यैव तस्य पुरुषरूपं परिवर्तयामास।

यावत्। मुहूर्तम् = कियत्कालपर्यन्तम्। तुमुलम्=अविरलम्, जन्यम् = युद्धम्। उद्यतखड्गैः = उच्छ्रितासिभिः। वेभिद्यमानाः = चेच्छिद्यमानाः। पुरन्दरमन्दिरम्=इन्द्रसदनम्, स्वर्गम्। गिरिकन्दरम्=पर्वतदरीम्। पोताः = महानौकाः। जलयानानीति यावत्।

लप्स्यते = प्राप्स्यते। इङ्गितज्ञैः=अभिप्रायवेदिभिः। समीरम्= वायुम्। प्रसद्भिः=छिदद्भिः। वायुतोऽप्यधिकत्वरितगतिभिरिति यावत्। विपदङ्गणे=विपत्तिचत्वरे, रिङ्गणम्=भ्रमणम्। ईहमानैः = चेष्टमानैः। तुरङ्गैः=घोटकैः।

× × ×

पर्यायतः=क्रमतः। परिपस्वजिरे=पर्यालिलिङ्गुः। पुरुषरूपम्= नरवेषधनम्।

तस्मिन् गततन्द्रे च सर्वेऽपि सादरं 'जय जीव !' इति कथयन्तः, "आज्ञाप्यतां काऽपि सेवा दिल्ली-वल्लभ-कुमारेण"—इति प्रोचुः ।

स च वारं वारमाश्चर्यपुषी तन्द्रा-सम्पर्क-जुषी चक्षुषी चिरालस्य-मन्थराभ्यां हस्ताभ्या सम्मर्द्य, क्षणमात्मानम्, क्षणं कुटीरम्, क्षणं परितः परिसर्पिणो जनान्, क्षणं सान्द्र-श्यामता-श्यामीकृत-दिग्वलयं वनम्, क्षण च क्वचन कलित-विकोश-खड्गैर्भटैः, क्वचन ब्रह्मपाठ-परैर्ब्रह्मचारिभि, क्वचन श्मश्रु-कूर्च-केश-जाल-जटालैर्जटिलै, क्वचन बाहुयुद्धमभ्यस्यद्भिः खड्ग-चालन-चातुरीमासादयद्भिर्व्यायामोत्तेजितोच्छ्वासैर्धूलि-धूसरैः पटुभिर्वटुभिर्विहित-विविध-क्रीड शाद्वलम्, क्वचन सदक्षाक्षिकुञ्चनं भुशुण्डीमुत्तोलमुत्तोल चिञ्चाकिशलयाग्रेषु लक्ष्यमनुसन्दधतो वीराश्चाऽऽलोकमालोकं चकितचकितो भीतभीतो लज्जितलज्जितो वाचंयम एवावतिष्ट ।

गततन्द्रे = विनष्टमोहे, विधूतालस्ये । आज्ञाप्यताम् = आदिश्यताम् । "मिता ह्रस्वः" इति ह्रस्वः । आश्चर्यपुषी = विस्मयाकुले । तन्द्रा-सम्पर्क-जुषी = निद्राद्यावस्थासंसर्गसेविके । चिरालस्येन मन्थराभ्याम् = शिथिलप्रायाभ्याम् । सम्मर्द्य = मर्दनं विधाय । आत्मानम् = स्वम् । परिसर्पिण = गच्छतः । सान्द्रया = घनीभूतया, श्यामतया = कार्ष्ण्येन, श्यामीकृतम् = कृष्णतामापादितम्, दिग्वलयम् = हरित्समूहो यस्मिंस्तादृशम् । कलितविकोशखड्गैः = धारितनग्नासिभिः । ब्रह्मपाठपरै = वेदाध्ययननिरतैः । जटिलै = जटायुतैः साधुभिः । बाहुयुद्धम् = नियुद्धम्, "कुस्ती" इति प्रसिद्धम् । आसादयद्भि = प्राप्नुवद्भिः । व्यायामोत्तेजितोच्छ्वासै = शरीरपुष्ट्यर्थकविधिविशेषवर्धितोच्छ्वासैः । सदक्षाक्षिकुञ्चनम् = दक्षिणनयनसङ्कोचनपुरस्सरम् । उत्तोलमुत्तोलम् = उत्थाप्योत्थाप्य । चिञ्चाकिसलयाग्रेषु = तिन्तिडीदलाग्रेषु । लक्ष्यम् = शरव्यम् । चिञ्चादलाना तनुत्वात् तान्येव लक्ष्यता नीत्वा प्रावीण्य लब्धुमभिलषन्तीति भावः । अनुसन्दधतः = गवेषयमाणान् । वाचंयमः = मौनी । अवतिष्ट = स्थितः ।

तावदागत्य माल्यश्रीको गौरमालिङ्ग्य मुहूर्तमालप्य युवराजमपि "श्रीमतो निवासाय प्रासाद एकोऽतिरुचिरः प्रस्तुतोऽस्तीति शिविकां सज्जीकृत्याऽऽनीतवानस्मि, करुणया सनाथ्यताम्। तत्रैव च यथोचितसेवाऽऽदेशैरस्मादृशोऽनुगृह्यताञ्च"–इति सादरमालपत्।

स तु हाटक–करहाट–च्छवि–कपोलो लोलतारको मुखमवनमय्य, विविधभाव-भावना-भङ्ग-भज्यमान-भावो नोमिति, अथ वा नेति अचकथत्, तन्निर्दिष्टां शिविकामेव चाऽऽरोहत्।

एवं तं सह नीत्वा याते माल्यश्रीके, शाद्वले कटमास्तीर्योपविष्टेषु सब्रह्मचारिगुरुषु तत्रत्येष्वखिलेषु, प्रजागर-मन्थरोऽपि क्रियासमभिहारेणाऽऽहूयमानो गौरसिंहस्तत्राऽऽगत्य गोष्ठीमध्यं भेजे।

कथमिव किमिव सवृत्तं गतयामिन्याम्? कैः कौशलैः काभिर्मायाभिः कैरुपायैः काभिर्विद्याभिः कैर्नियोगैः काभिः प्रवञ्चनाभिः कैः प्रकारैः काभिश्च घटनाभिः आनीतवानसि मायाजिह्ममेतम्? कथं दीपोद्योत-विद्योत-चतुर्गुणित–चाकचक्य–

आलिङ्ग्य = आश्लिष्य। प्रासादः = हर्म्यम्। करुणया = दयया। सव्यङ्ग्यं विनयप्रदर्शनम्। यथोचितसेवादेशैः = यथायोग्यशुश्रूषणादेशैः। अनुगृह्यताम् = अनुग्रहपात्रं क्रियताम्।

हाटक–करहाट–च्छवि–कपोल. = सुवर्ण-शिफाकन्द-कान्तिकगण्ड–स्थलः। "कराहटः शिफाकन्द" इत्यमरः। पीतगण्डस्थल इति यावत्। विविधभावानाम्=अनेकविधविचाराणाम्, भावनानाम्=वासनानाम्, भंगेन = तरङ्गेण, भज्यमान. = खण्डयमानः, भावः = अभिप्रायो यस्य सः। नानाप्रकारविचाराविर्भावतिरोभावाभ्या अप्रकटितनिजाभिप्राय इति भाव.। तन्निर्दिष्टाम्=तत्प्रदर्शिताम्।

प्रजागरेण = दीर्घया जागृत्या, मन्थर.=अलसः। क्रियासमभिहारेण=पौनःपुन्येन। आहूयमान =आकार्यमाणः। भेजे=सिषेवे।

कौशलैः=चातुर्यैः। मायाभि' = छलैः। नियोगैः = अनुष्ठानैः। प्रवञ्चनाभि. = प्रतारणाभिः। दीपोद्योतस्य=दीपप्रकाशस्य, विद्योतेन= =प्रभया, चतुर्गुणितचाकचक्यानाम् = वृद्धिंगतचमत्कृतीनाम्, चञ्च-

चञ्चच्चन्द्रहास-भासा भयानकानां प्रहरिणां चक्षुःषु रेणुका-राशि-माहितवानसि ? कथ वा गगनोद्भेदाभ्यासेनेव निशिततरैर्वाता-घात-क्षालितैरिव चमत्कुर्वद्भिः परितः प्रसर्पिभिर्मयूख-पूरैरिव विहितातपत्र-विडम्बनैर्भल्लैर्भयङ्करकरान् प्रतीहारान् मोहितवानसि ? इति सकुतूहलं सोल्लासं सादरं साश्चर्यं च पृष्टवत्सु तेषु, संक्षिप्यैव "एवमेवमिति" सर्वं यथातथ सूचितवान् । तदाकर्ण्य साधुवाद-वर्षैः कुटीरमापूरयत्स्वखिलेषु, ब्रह्मचारिगुरुराह-कथं न स्याः ? 'परमवीरवरस्य खड्गसिंहस्य पुत्रोऽसि, पिता तव बाल्य एव व्याघ्र-मृगया-व्यसनी समभूत्, यौवने च बहुभिश्शत्रुगुणवलैरयुध्यत, वार्द्धके च रणाजिर एव वीरगतिं गतो मार्तण्ड-मण्डलं भित्त्वा नन्दनवनविहारमाससाद ।

ततस्तु अतिकुतूहल-समाविष्टेन गौरेण सह तस्यैवमभूवन् वाचां प्रचाराः ।

गौर०—अपि मम तातचरणैः सहाऽसीदार्याणा परिचय. ?

ताम्, चन्द्रहासानाम्=खड्गानाम्, भासा=तेजसा । भयानकानाम् =भीतिप्रदानाम् । प्रहरिणाम्=यामिकानाम् । रेणुकाराशिम्=धूलिनि-करम् । आहितवान्=दत्तवान् । "आँखमें धूल झोंका" इति हिन्दी । गगनोद्भे-दाभ्यासेनेव=नभोमण्डल-विदारणपरिशीलनेनेव । निशिततरैः=अतितो-क्ष्णैः । वाताघातक्षालितैरिव=वायुताडननिर्णिक्तैरिव । मयूखपूरैः= दीधितिव्रजैः । विहितातपत्रविडम्बनैः=कृतच्छत्रानुकृतिभिः, भल्लैः = अस्त्रविशेषैः । भयङ्करकरान्=भयानकहस्तान् । सोल्लासम्=सहर्षम् । संक्षिप्य=तनूकृत्य । साधुवादवर्षैः=धन्यवादवृष्टिभिः । आपूरयत्सु= भ्रनयत्सु । व्याघ्रमृगयाव्यसनी=व्याघ्राखेटनिरतः । वार्द्धके=वृद्धा-वस्थायाम् । रणाजिरे=सङ्ग्रामाङ्गणे । मार्त्तण्डमण्डलम्=भानुबिम्बम् । भित्त्वा=द्विधा कृत्वा । तत एव मार्गादित्यर्थः । नन्दन-वन-विहारम = इन्द्रकाननक्रीडाम् । आससाद=प्राप ।

ब्रह्मचारिगुरुः—[किञ्चिद् निःश्वस्य] आसीदतितराम् ।

गौरः—[अधिकाधिक-कौतुक-ग्रस्तानामखिलाना मुखमवलोक्य] आर्य ! क्षम्यतां प्रौढिरेतस्य भवदनुकम्पापात्रस्य । एष चिररात्राय भवन्तं ब्रह्मचारिगुरुनामधेयं महाराष्ट्रराजस्य शुभोदयोदर्काभिलाषिणं कोङ्कण-पृथिवी-परिवृढस्य परमस्नेहपात्रं विक्रम-व्यापार-व्यत्यायित-यौवनं सदा सदाचार-प्रचार-परं हविष्यभोजनं विविध-देवाराधनाऽनुष्ठानैकतानं कञ्चन क्षत्रिय-कुल-कलशं मन्यते । महाराष्ट्रभाषाञ्चैवं मधुरतया सुस्पष्टमुच्चार्य्याऽऽलपति भवान्, यन्न भवत्यल्पीयस्यपि मे विचिकित्सा भवतो महाराष्ट्रदेशीयत्वे । महाराष्ट्रदेशीयमहाशयेन च सहोदयपुर-निवासिनो मम तात-पादस्य दुर्घटः परिचयः । तद्यावद् विशकलय्य नोच्यते तावन्न शाम्यत्युद्वेगः शङ्कापङ्कपङ्किलस्य हृदयस्य । तद् यदि नाम न भवेत् किमपि गोपनीयं नीतिविरुद्धं वा, तन्मादृशानुचरानुरोधात्

अतितराम्=अत्यन्तमधिकम् ।

प्रौढिः=धाष्टर्यम् । चिररात्राय=चिरम् । ब्रह्मचारिगुरुः इति नामधेय यस्य तम् । ननु । नामान्तर किमप्यस्ति विज्ञातमस्माभिः । शुभोदयोदर्काभिलाषिणम् = उत्तरकालिकाभ्युदयकामनावन्तम् । "उदर्कः फलमुत्तरम्" इत्यमरः । कोङ्कणपृथिवीपरिवृढस्य=कोङ्कणधराधिनाथस्य । विक्रमव्यापारेषु=पराक्रमकर्त्तव्येषु, व्यत्यायितम्=क्षपितम्, यौवनं येन तम् । सदा=सर्वस्मिन् काले । सताम्, आचाराणाम्, प्रचारपरम्=विवर्धनरतम् । विविधानाम्=अनेकेषाम्, देवानाम्=हनूमन्महादेवादीनाम्, आराधने=सेवायाम्, अनुष्ठाने=मन्त्रादिजपे, एकतानम्=तत्परम्, "एकतानोऽनन्यवृत्तिः" इत्यमरः । विविधपदस्य आराधनानुष्ठानान्यतरविशेषणत्व वा । क्षत्रियकुलकलशम्=क्षात्रान्वयावतंसम् ।

अल्पीयसी=अतिन्यूना । विचिकित्सा=संशयः । दुर्घटः=दुःखेन भवितुं योग्यः । विशकलय्य=स्पष्टीकृत्य । उद्वेगः=मानसमौत्सुक्यं जिज्ञासासमुत्थम् । गोपनीयम्=रहस्यम्, अवाच्यमिति यावत् ।

कृपया निर्वचनीयोऽयं वृत्तान्तः–इत्यभिधाय मौनमाकलयति गौरे, सकुतूहलमेकाग्रेषु चाखिलेषु, क्षणं स्थिरीभूय, उच्छ्वस्य च समारभत व्याहर्तुं ब्रह्मचारिगुरुः।

ब्रह्म०—नास्म्यहं महाराष्ट्रदेशीयः। जनिर्भूर्मम राजपुत्रदेशः। महाराज-श्रीजयसिंह-निर्मिताद् जयपुर-नगराद् आराद्देवाऽऽश्वीन एको 'जितवार'-नामा ग्रामोऽस्ति, तदध्यक्ष एवाहमासम्। मथुरा-यात्रां कुर्वत खड्गसिंहस्य मम च पित्रोः स्नेहः प्रगाढो जात इति तन्मूलक एवाऽऽवयोरपि परमः प्रेमा बभूव। सोऽपि बहुवारं मम भवनं सनाथितवान्, अहमपि चानेकशस्तत्र गतः—इति।

गौर०—अप्यापृच्छे ? अपि कथयिष्यति कथमिहाऽऽयातो भवान् ? कथं वा त्यक्तवान् निजमाधिपत्यम् ?

ब्रह्मचारिगुरुः—गौर ! वयं महाराज जयसिंहस्य अधीना बान्धवाः सेनानियमेन भूमिभुजः। अकस्माज्ज्वरितेषु कतिपयेषु सादिषु

निर्वचनीयः=निःसन्दिग्धं वक्तव्यः। एकाग्रेषु=संयतमनःसु। उच्छ्वस्य=दीर्घश्वासं गृहीत्वा। व्याहर्तुम्=वक्तुम्।

जनिभूः=जन्मभूमिः।

महाराजेन, जयसिंहेन, निर्मितात्=निर्मापितात्, वासितादिति यावत्। आश्वीनः= अश्वेनैकेन दिनेन गन्तुं योग्यः। "त्रिष्वाश्वीनं यदश्वेन दिनेनैकेन गम्यते" इत्यमरः। "अश्वस्यैकाहगमः" इति खञ्। "जितवार" नामा=साम्प्रतं "जट्वारा" इति ख्यातः, पिता च पिता च=पितरौ, तयोः। प्रकृतेऽस्यैवार्थस्य विवक्षितत्वात् "पुमान् स्त्रिया" इति नैकशेषः। प्रगाढः=अत्यधिकः, प्रेमा=स्नेहः। "प्रेमा ना प्रियता हार्दं प्रेम" इत्यमरः।

अपि=पुनरपि। आपृच्छे=पृच्छामि। "आङि नु पृच्छयोरि" त्यात्मनेपदम्। वर्तमानसामान्ये लट्। आधिपत्यम्=ग्रामाधीशताम्।

भूमिभुजः= "जागीरदार" इति ख्याताः। ज्वरितेषु=ज्वरग्रस्तेषु,

बहुभिः कर्णेजपैरीर्ष्यापरवशैः किमप्युक्तोऽसूचितयात्रा महाराजः समायातः। सादिसङ्ख्यामूनामवलोक्य विनैव विचारं मम सर्वस्वमाहर्तुं स्वसभायामकथयत्। मम पत्नी तु ततोऽऽपि पूर्वमेव स्मृतिमात्र-विषया संवृत्ता। ततोऽहं दशवर्षदेश्यं रामसिंह तनयं सह नयन् रामेश्वर-दर्शनार्थं प्रचलितः।

गौरो रामेश्वर-यात्रा-समाख्यया तनयस्य नाम रामसिंह इति स्वयं च खड्गसिंहस्य गेहं बहुवारं गत इति च निष्कृष्टार्थं शृण्वन् देवशर्म्मणा कथिताञ्च नूत्नामेव कथां स्मरन्, समाधिस्थ इवैकतान उदन्तमेतं शुश्राव।

ब्रह्मचारिगुरुः—ततः परं यत् संवृत्तं तस्य तु कथनेनापि स्मरणमात्रेणापि च कम्पते मे हृदयम्। तथाऽपि किं कुर्याम्? वज्रेण रचितं हृदयं मानवानाम्; यस्य स्मरणमात्रेण रोमाण्यञ्चन्ति, वपुर्वेपते, मनो मथ्यते, चित्तं चञ्चल्यते, लोचने लोलतः, जीवनञ्च जर्जरीभवति; तदेव दुःखम्, तदेव व्यसनम्,

---

ज्वलितेषु वा पाठः। कर्णेजपैः=पिशुनैः, निन्दाकारिभिः। ईर्षापरवशैः= गुणेषु दोषाविष्करणपरायणैः। असूचितयात्रः=अबोधितागमनः। ऊनाम्= अल्पाम्। सर्वस्वम्=निखिलं वित्तजातम्। स्मृतिमात्रविषया=केवल-स्मरणगोचरा। मृतेति यावत्।

रामेश्वरयात्रायाः समाख्यया=नाम्ना। निष्कृष्टार्थम्=निर्गलिता-भिप्रायम्। नूत्नाम्=नव्याम्। समाधिस्थः=चित्तनिरोधार्थकक्रियानिरतः। एकतानः=अनन्यमनस्कः। उदन्तम्=वृत्तान्तम्।

रोमाणि=तनूरुहाणि। अञ्चन्ति=उद्गच्छन्ति। चञ्चल्यते=अति-तरां चञ्चलं भवति। लोलतः=चञ्चले भवतः। जर्जरीभवति= क्षीयते। करुणरसप्रवाहोऽत्र गद्ये। वैदर्भी च रीतिः स्फुटैव।

दुःखव्यसनयोरिह समानार्थत्वेऽपि दुःखिनाभिहितमिति न पुनरुक्तदोषः,

तामेव च यन्त्रणाम् अनुभूयापि जीवामि-इति वदन्नेवोच्छ्वस्य अपाङ्गसङ्गिनो द्वित्रान् वाष्प-विन्दून् पटप्रान्तेन अपाहरत् ।

गौर०—तात ! परिवर्त्ती संसारः, अवितर्कणीया दैवघटना, अवश्यम्भाविनो भावा, सुखदुःखमय एव च संसारः, कस्य दु खासम्भिन्नं सुखम् ? कस्य निःशेषं पूर्णा अभिलाषाः ? कस्य अपरिचित-पश्चात्ताप-संघर्षं हृदयम् ? तत् पौर्वापर्य्येणाऽऽलोच्य धैर्यमेव धारणीय धर्म-धारि-धौरेयैः ।

ब्रह्मचारिगुरु—[वाष्पं निरुध्य] अथाकस्मादेव सहडहडा-शब्दमाकुलयितुमारब्धवती वात्या । पारावारश्च पयसः पर्वतानिव तरङ्ग-भङ्गान् रचयितुमारब्धवान्, पोतेन चास्माकमारब्धं दोलयेव दोलितुम् । तावदुद्विग्नानिव कर्णधारानालोक्य महान्तं क्रन्दन-कोलाहलं कलितवन्त सकला यात्रिनिकरा. । ततो भय-भ्रान्त-नयनस्य रामबालस्य करं गृहीत्वा समागत पुरोहितो मां झटित्यवादीत्—

प्रत्युत गुणः । यन्त्रणाम्=मानसव्यथाम् । उच्छ्वस्य=दीर्घं निश्वस्य । अपाङ्गसङ्गिनः=नेत्रप्रान्तलग्नान् । अपाहरत्=अदूरयत् ।

परिवर्त्ती=परिवर्त्तनशीलः । अवितर्कणीया=असम्भाव्या । दैव-घटना=भाग्यकृतिः । भावा.=भवनीयाः पदार्थाः, दुःखेन, असम्भिन्नम्=असपृक्तम् । नि.शेषम्, यथा स्यात्तथा । अभिलाषा.=मनोरथाः । अपरिचित-पश्चात्ताप-सङ्घर्षम्=अविज्ञातानुतापसङ्घट्टम् । बहुव्रीहिः । धर्मधारिधौरेयै.=धार्मिकाग्रेसरैः ।

आकुलयितुम्=क्षुभित विधातुम् । वात्या=वातसमूहः । पारा-वार.=अम्भोधिः । पयस, पर्वतानिवेत्युत्प्रेक्षा । तरङ्गभङ्गान्=वीचिखण्डान् । रचयितुम्=विन्यस्तुम् । दोलयेव=दोलायन्त्रेणेव । दोलितुम्=हिल्लोलितुम् । उद्विग्नान्=भीतिग्रस्तचेतस. । कर्णधारान्=नाविकान् । क्रन्दनकोलाहलम्=रोदनकलकलम् । कलितवन्तः=कृतवन्तः । भयभ्रान्तनयनस्य=भीतिचचलनेत्रस्य ।

"प्रभो ! नायमवसरः शुष्क-चिन्तया क्षणमप्यतिवाहयितुम् । अस्मिन्नुडुपे बहवः कार्पास-भाराः सन्ति, तेषामेकं दृढं कराभ्यां धृत्वा, भवता प्लव-प्रान्तस्थेन भाव्यम् । भवान् किञ्चित् तुन्दिभ इति न पारयिष्यते बालमेनं रक्षितुम्, तदहं पृथुकमेनमात्मना सह गोपायिष्यामि"—इति व्याहृत्य, स्वपृष्ठदेशे उत्तरीयेणातित्रस्तं रामसिंहं दृढं बद्ध्वा, कार्पास-भारमेकमानाय्य, तद्दत्त-हस्तावलम्बनस्तस्थौ । अहमपि च तथैव विहितवान् । द्वावपि चाऽऽवां परमेश्वरं स्मरन्तौ, परितो दोधूयमानस्योदन्वतो दोदुल्यमानैर्लोलल्लोलैः कल्लोलैश्चङ्क्रम्यमाणौ, कर्हिचित् लोकालोकमाकृष्य लोकालोकमिवोल्लिलङ्घयिषुमस्ताचल-चूडा-चुम्बिनं लोकलोचनमालोकमालोकम्, कदाचिद् वाष्प-बिन्दु-स्नात-श्मश्रुं पुरोहितम्, रोरुयमाण-

---

शुष्कया=कर्तव्यशून्यया, वृथाप्रायया । चिन्तया=विचारधारया । अतिवाहयितुम्=क्षपयितुम् । उडुपे=नावि । कार्पासभाराः=तूलभाराः । प्लवप्रान्तस्थेन=नौकासमीपवर्त्तिना । तुन्दिभः=तुन्दिलः । "तुन्दिलस्तुन्दिभस्तुन्दी" त्यमरः । रक्षितुम्=गोपयितुम् । पृथुकम्=बालम् । "पृथुकौ चिपिटार्भकावि"त्यमरः । व्याहृत्य=कथयित्वा । उत्तरीयेण=प्रावरणेन । अतित्रस्तम्=परं भीतम् । तस्मिन्=कार्पासभारे, दत्तम्, हस्तावलम्बनम्=कराश्रयो येन तथाभूतः । दोधूयमानस्य=अतितरां कम्पमानस्य । उदन्वतः=वारिनिधेः । दोदुल्यमानैः=अत्यन्तं चलद्भिः । लोलल्लोलैः=अतिचञ्चलैः । प्रथमविशेषणं तावदुद्गच्छतां कल्लोलानां
१ द्वितीयं तूद्गतानां तेषामिति न पौनरुक्त्यम् । कल्लोलैः=महालहरिभिः । "महत्सूल्लोलकल्लोलौ" इत्यमरः । चङ्क्रम्यमाणौ=अतितरामुच्छाल्यमानौ । लोकस्य=संसारस्य, आलोकम्=प्रकाशम् । आकृष्य=अपकृष्य । लोकालोकम्=चरमाचलान्तिकगिरिम् । उल्लिलङ्घयिषुम्=उल्लङ्घयितुमिच्छुम् । अस्ताचलस्य=चरमगिरेः, चूडाचुम्बिनम्=उन्नतभागाश्लेषिणम् । अस्तं यान्तमिति यावत् । लोकलोचनम्=संसारनेत्रं सूर्यम् । आलोकमालोकम्=दृष्ट्वा दृष्ट्वा वाष्पबिन्दुस्नातश्मश्रुम्=अश्रुक्लिन्नमुखकेशम् । पुरोहितम्=सर्वश्रेष्ठहितकारकम्, वैदिककार्यनिर्वाहकं ब्राह्मणम् । रोरुय-

मस्माभिः स्वयं रोदनोन्मुखैरपि कथमपि बोबुध्यमानं बालकं च दर्शं दर्शं युगमिव मन्वन्तरमिव कल्पमिव च कश्चित् क्षणानजीगमाव।

अथ बलवत्तरेण तरंगाऽऽघातेन क्षणं विस्मृतात्मानौ परतश्च चक्षुषी उन्मील्य आवां दृष्टवन्तौ, यत्र स पोतः, न तत्स्थानम्, न वा ते तथाभूता सहचरा। विक्षुभितेनापि मया धैर्यमाधायादर्शि-यद् धृतकार्पासभारोऽहं कदाचित्तरंगोत्तमांगे कदाचिच्च तरंग-तले तरामि, अपरे च तथैव कार्पासभारान्, अभ्रीः, क्षेपणीः, सेचनानि, आनायान्, कुवेणीश्च धृत्वा सचीत्कारं तरन्ति। तेषामेव च मध्ये मम पुरोहितोऽपि क्रन्दमानः रामं पृष्ठे वहन्, वीचिभंगैराहन्यते–इति क्षणत एव च तरंगभंगैराहतो न वेद्मि—के कुतः प्रयाताः? पञ्चषा एव च वयं तथाभूता अवशिष्टाः।

एवमतिलोलं कोलमकूपारस्य तलं प्रवेश्य, प्रशान्तो झञ्झावातः। उदन्वानपि तरंगोच्छालन-वेगं कथमपि मन्दमकार्षीत्। तदा मया केवलं पुरोहित एव धृत-कार्पास-भारः सम्मुखमालोकि। इतरे च,

मानम् = वारं वारं रुदन्तम्। बोबुध्यमानम् = "मा भैः, पारं प्रापयाम-स्त्वामचिरेणै"त्यादिशिक्ष्यमाणम्। युगमिव=कलिप्रभृतिमिव। मन्वन्तरमिव = "मन्वन्तरन्तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिरि" त्यमरः। कल्पम् = एकसहस्रमहायुगात्मकं कालम्। अजीगमाव = अक्षपयाव।

तथाभूताः = मज्जन्तः। आधाय=अवलम्ब्य। अदर्शि = दृष्टम्। तरंगोत्तमांगे = लहरिशिरसि। तरामि = प्लवामि। अभ्रीः =काष्ठकुद्दालान् नौमलक्षालनार्थकान्, "अभ्रिः स्त्री काष्ठकुद्दाल" इत्यमरः। क्षेपणीः = नौदण्डान्। "नौकादण्डः क्षेपणी" इत्यमरः। सेचनानि=नौकागत-जलदूरीकरणभाण्डानि। अनायान्=जालानि। कुवेणीः =मत्स्याधानीः। "आनायः पुंसि जालं स्यात्, मत्स्याधानी कुवेणी स्यादि"ति चामरः। आहन्यते=ताड्यते। तथाभूता =तरङ्गभङ्गाहताः।

कोलम्=प्लवम्। अकूपारस्य=क्षीरधेः। तलम्=अन्तरालम्। झञ्झावातः=सवृष्टिको महावायुः। तरंगोच्छालनवेगम् = लहरिहिल्लो-

नावेदिषं वीचि-पात-घातैः कुतो नीता इति । इतः सूर्य्यस्यास्तमन-समयः, ततः समागच्छन्ती घोरा रजनी, तदस्य कथाऽऽपि नाऽऽसीत्, उपरि गगनम्, अधश्च सागरः, परितः प्रसर्पिणो वातवाताः, परिकलितालिपृष्ठाकारा अपि भयानकास्तरंगभंगाः ।

अथ शनैः शनैः समुद्रेणाहमेकतोऽपसारयितुमारब्धः, पुरोहित-श्च परतः । उभयोरनिच्छतोरप्यन्तरालमावयोरवर्धिष्ट । क्षणानन्तर-मेव च स मम चक्षुषोः पन्थानमतीतः । ततोऽहं कदाचिद् रामम्, कर्हिचित् पुरोहितं च स्मरन्, कर्हिचित् व्यतीतं निजजीवनं चिन्तयन्, कदाचित् समाप्तमिदं दुःखान्तमायुरिति भावयन्, कर्हिचित् सक्रन्दं परमात्मानं ध्यायन्, प्रतिपद पयःपूरेण प्लाव्य-मान इव, तिमिंगिलैर्गीर्यमाण इव, ग्राहैर्ग्रस्यमान इव, सामुद्रिक-सत्त्वैरास्वाद्यमान इव, परीवाहैरुह्यमान इव, यमेन नियम्यमान इव, कालेन काल्यमान इव, मृत्युना च मार्यमाण इव, तारकितं

लनञ्जवम् । नावेदिषम्=नाज्ञासिषम् । समागच्छन्ती=आयान्ती । घोरा=भीतिप्रदा । वातवाताः=समीरताडनानि । परिकलितालिपृष्ठा-काराः=धारितलघुतमाकृतयः ।

एकतः=एकस्या दिशि । अपसारयितुम्=दूरीकर्तुम् । अन्तरा-लम्=व्यवधानम् । अवर्धिष्ट=एधिष्ट । सः=पुरोहितः सबालः । व्यती-तम्=भूतम् । दुःखान्तम्=क्लेशान्तम् । भावयन्=विचारयन् । सक्रन्दम्=सरोदनम् । प्रतिपदम्=पदे पदे । पयःपूरेण=वारिप्रवा-हेण । प्लाव्यमानः=निमज्ज्यमानः । तिमिंगिलैः=महामत्स्यैः । गीर्यमाण इव=उदरे क्रियमाण इव । ग्राहैः=नक्रैः । ग्रस्यमान इव=कवलीक्रिय-माण इव । सामुद्रिकसत्त्वैः=यादोभिः । आस्वाद्यमान इव=रस्यमान इव । परीवाहैः=आवर्त्तैः । उह्यमान इव=नीयमान इव । यमेन=वैवस्वतेन । नियम्यमान इव=निबध्यमान इव । कालेन=समयेन । मृत्योरग्रेऽभिधानादेवमेवार्थः । काल्य-मान इव=प्रेर्यमाण इव । मृत्युना=अन्तकेन । मार्यमाण इव=

गगनम्, तरङ्गितं सागरम्, प्रेङ्खित वीचिप्रचयम्, क्षार-क्षोद-क्षीयमाणं चाऽऽत्मानमवलोकयन्, न वेद्मि कैः कैः क्रन्दनैर्धैर्य्य-धारणभंगवत्स्मरणैश्च तमीमतिवाहयाम्बभूव।

अथ शनैः समुद्रफेनेष्विव लीयमानेषु तारकानिकरेषु, उडुपे इव प्रतीच्यां निमग्ने उडुपे, सरस्वतस्तरङ्गोच्छालितांस्तोयकणान् माणिक्यानिव विदधन् प्राचीं कुङ्कुम-वलाहक-निकराक्रान्तामिवाकार्षीद्भगवान् भास्वान्। अस्मिन् समये वीचिक्षोभोऽतिमन्द आसीदित्यपारयमहं सुदूरमीक्षितुम्। उद्ग्रीवेणापि विस्फारित-चक्षुषाऽपि नाऽऽलोकि पुरोहितो वा भूभागो वा।

समुद्रेण तूर्मिघातैः प्रागेव प्रेर्यमाणश्चिरानन्तरमद्राक्षं गुणवृक्ष-

---

ध्वस्यमान इव। तारकितम् = उडूपेतम्। गगनम् = नभः। तरङ्गितम्= लहरिसमेतम्। प्रेङ्खितम् = उल्लोलितम्। वीचिप्रचयम्=लहरिव्रजम्। क्षारक्षोदक्षीयमाणम्=समुद्रडिण्डीरापचीयमानम्। तमीम्=रात्रिम्। अतिवाहयाम्बभूव = अतिगमयामास। लिट् उत्तमपुरुषस्य रूपम्। न वेद्मीत्यनेन चित्तविक्षेपाभिधानात्परोक्ष्यमुपपादनीयम् "बहु जगद पुरस्तात्तस्य मत्ता किलाहमि" त्यादाविवेति वेदितव्यम्।

समुद्रफेनेषु=वारिधिडिण्डीरेषु। तारकानिकरेषु = भगणेषु। उडुपे=नावि। इवेनोत्प्रेक्षा। प्रतीच्याम्=पश्चिमायाम्। निमग्ने = ब्रुडिते। उडुपे=तारकाधिनाथे चन्द्रे। सरस्वत =अर्णवस्य। "सरस्वान् सागरोऽर्णवः" इत्यमरः। तरङ्गोच्छालितान् = लहरिसमुत्थापितान्। तोयकणान्=अम्भोबिन्दून्। माणिक्यानिव = मौक्तिकानीव। कुङ्कुम-वलाहकनिकराक्रान्तामिव = केसरमेघव्रातव्याप्तामिव। भास्वान् = दिनेशः। वीचिक्षोभः=लहरिसञ्चलनम्। अपारयम्=शक्तोऽभूवम्। ईक्षितुम् = द्रष्टुम्। उद्ग्रीवेणापि=उत्कन्धरेणापि। भूभाग = महीतलम्।

ऊर्मिघातैः=तरङ्गताडनैः। प्रेर्यमाणः=प्रोह्यमानः। गुणवृक्षक-

कमिव कस्यापि पोतस्य। क्षणेनैव वायुना समुद्धूयमानाः पटाः, परतश्च वेगेन मदध्यासितामेव दिशं समुपसर्पन् प्लव एको दृष्टः। तन्नियामकाश्च कथमप्युद्धृतकरं मामवलोक्यैव वायुविधूतान् पटान् विचाल्य मामेव लक्ष्यीकृत्य समायाताः, कथं कथमपि च मामुत्थाप्य स्वपोते समुदस्थापयन्। अहन्तु तत् स्थानं प्राप्यैव निश्वस्य पतितश्चिरं मूर्च्छामापम्। ते तु तैलसम्मर्द्दनादिभिर्मां सुखयन्तः सुरत-नगरप्रान्त आगत्य मामुद्बोध्य दुग्धादि पाययित्वा तटे व्यसृजन्।

अहन्तु क्षारोद-क्षार-नीलीकृत-वर्णः सुरतनगरे परिभ्रमन्, रामचन्द्र-मन्दिरमेकमवाप्य तत्रैव विरक्त-भिक्षुकाणां मध्ये निवसन् मन्दिराध्यक्षेण चिकित्सित उल्लाघोऽभूवम्। एकदा विहितनित्यनियमं तं स्वपुत्रपुरोहितयोः कुशलविषये समपृच्छम्। स च चिरं ध्यात्वाऽब्रूत यत्—मा स्म ग्रसिष्ठा अमङ्गलचिन्तया, क्वापि समुद्रतटे संलग्नौ तव पुत्रपुरोहितौ त्वदपेक्षयाऽधिक तौ कुशलिनौ स्तः।

अथ "भगवन्! कथं तत्साक्षात्कारो भवेत्?"—इति पृष्टश्च

मिव = कृपकमिव। समुद्धूयमाना = हिल्लोल्यमानाः। मदध्यासिताम् = मत्सेविताम्। प्लव. = जलयानम्। तन्नियामका = तत्सञ्चालकाः। उद्धृतकरम् = उत्थापितहस्तम्। वायुविधूतान् = वातचालितान्। समुदस्थापयन् = सम्यगूर्ध्वमनयन्। आपम् = प्राप्तवान्। व्यसृजन् = त्यक्तवन्तः।

क्षारोदस्य = क्षारवारिधेः, क्षारेण = लवणाम्भसा, नीलीकृतवर्णः = श्यामीकृतः। विरक्तानाम् = विरागिणाम्। भिक्षुकाणाम् = भिक्षारतानाम्, मस्करिणां वा। चिकित्सितः = औषधेनोपचरितः। उल्लाघः = रोगनिर्मुक्तः। "उल्लाघो निर्गतो गदात्" इत्यमरः। विहितनित्यनियमम् = कृतनैत्यिककृत्यम्। तम् = मन्दिराध्यक्षम्। मा स्म ग्रसिष्ठाः = ग्रस्तो मा भूः। अमङ्गलचिन्तया = मरणादिकल्पनया। कुशलिनौ = सानन्दौ।

मां मन्त्रमेकमुपादिक्षत्, उक्तवांश्च यद्—"आसन्ने तव तनयस्योद्वाहसमये तेन तव सम्मेलनं भविष्यति, तावदेनं मन्त्रराजं जप।" अह तु तत्र वारं वारं लुण्ठकोपद्रवमवलोक्य, तुरुष्क-मौद्गल-गोरण्ड-पाठीनादीनां महासम्मर्दं च सम्भाव्य इतोऽस्मिन् देशे समागतोऽस्मि। न जाने कदा जीवन्तं रामं द्रक्ष्यामि—इति।

गौर०—विचित्रा दैवघटना, विचित्र एव चायं भवतो वृत्तान्तः। अवश्यमेव कञ्चित् समयमतिवाह्य मन्त्रबलेन द्रक्ष्यत्यायः स्वपुत्रस्यापि मुखम्। अपि पृच्छेयं कथमिव महाराष्ट्रराजेन समालापो जात ?—इति।

ब्रह्मचारिगुरुः—भीमायास्तटे स्नात्वा परावर्तमानस्य ममैकदा द्वाभ्यां म्लेच्छलुण्ठकाभ्यां सह मेलनमासीत्। तयोरेकेनोक्तम्—"त्यज सर्वं वस्त्रादिकम्, अन्यथा व्यापाद्यसे"—इति। तत्क्षणमेव मयैकया प्रबलचपेटिकया स तथाऽभिहतो यत्पीतं रक्तं श्याममिव च दिक्चक्रमालोकयन् निरुद्धनिश्वासो भ्रान्त्वा भूमिमालिङ्गितवान्। द्वितीयश्च निस्त्रिंशं कोषादाकर्षन् मामभिचलितः। तस्य हस्तादर्द्धकृष्टमेव कृपाणमहमाच्छिद्य त्सरुणा तथा मस्तके

उपादिक्षत्=उपदिष्टवान्। आसन्ने=समीपस्थे। तुरुष्काः "तुर्क" इति, मौद्गला: "मोगल" इति, गोरण्डा: "गोरे" इति, पाठीनाः "पठान" इति च ख्याता लोके। महासम्मर्दम्=अतिसङ्घर्षम्।

विचित्रा=साश्चर्या। कथमिव=केन प्रकारेण। समालापः=वार्ता।

परावर्तमानस्य=निवर्तमानस्य। म्लेच्छलुण्ठकाभ्याम्=यवनचौराभ्याम्। व्यापाद्यसे=हन्यसे। प्रबलया=असहनीयया, चपेटिकया=तलेन। पीतं रक्तं श्याममिव च दिक्चक्रम्=हरिद्गणम्। आसन्नमरणस्वभाववर्णनम्। निरुद्धनिश्वासः=स्तब्धप्राणवायुः। भ्रान्त्वा="चक्कर खाकर" इति भाषायाम्। आलिङ्गितवान्=आश्लिष्टे। निस्त्रिंशम्=खड्गम्। कोषात्=असिधान्याः। अभिचलितः=सम्मुखमागतः। अर्धकृष्टम्=कोषादर्धनिष्कासितम्। कृपाणम्=असिम्। आच्छिद्य=

हतवान्; यथा सोऽपि मूर्छितः स्वसहचरस्य चरणयोः पतितः। तत्खड्गं गृहीत्वा चाहं कुशलेन न्यवर्तिषि।

घटनामेतां दूरतोऽश्वं चालयन् महाराष्ट्रराजोऽपश्यत्। स च मार्ग एव मत्समीपमागत्य, ससाधुवादं मम जातिमभिप्रेतञ्च पृष्ट्वा, पञ्चपान् भृत्यान् मम सेवायां नियोज्य, अस्मिंस्तडागतटे पर्णकुटीरे मामस्थापयत्। अहं च सर्वथा तस्य जयमीहमानो यथाशक्यं यतमानश्चात्र तिष्ठामि, मन्त्रं च साधयामि। महाराष्ट्र-राजोऽपि मम निखिलं वृत्तान्तं न वेत्ति।

गौर०—[मनसि बहुशश्चिन्तयन्] आर्य ! क्षम्यतां श्रीमतो नाममन्त्रश्रवणेन कर्णौ पिपावयिषत्येष जनः।

ब्रह्मचारिगुरु—किमिव नाम्ना ? यदा मम परितो गच्छतां गजानां घण्टानादैर्दिगन्तोऽपूर्यत, तदा तु स्वप्नेष्वपि शत्रूणां कर्ण-कुहरं निविशमानं समापरमेव किमपि नामाऽऽसीत्। अधुना तु ब्रह्मचारिगुरुरित्येव वदन्ति जनाः।

गौर०—क्षम्यताम्, परम मम कुतूहलं तदेव श्रोतुं नाम श्रीमतः।

ब्रह्मचारिगुरुः—[चिरं तूष्णीं स्थित्वा] वत्स ! तदानीं मां वीरेन्द्रसिंह—इत्यवदन् जनाः।

गौर०—[प्रणमन्] आर्य ! तत्किं स्मर्यते यन्मम पित्रा कश्चन सम्बन्धोऽपि प्रतिज्ञातः ?—इति।

प्रसह्य आकृष्य। त्सरुणा=खड्गमुष्टिना। न्यवर्त्तिषि = निवृत्तोऽभूवम्।

जातिम्=ब्राह्मणत्वादिव्यावर्तकधर्मम्। अभिप्रेतम् = इष्टम्।

ईहमान = समभिलषन्। यतमान=यत्नमादधानः।

नामैव = अभिधानमेव, मन्त्र. = देवताप्रतिपादकवर्णानुपूर्वीविशेषः। तस्य श्रवणेन = तदाकर्णनेन। पिपावयिषति = पावयितुमिच्छति। भवतो नाम श्रोतुमिच्छामि इति यावत्।

कर्णकुहरम् = श्रोत्रच्छिद्रम्। कर्णशष्कुलीमिति यावत्।

ब्रह्मचारिगुरु.—वत्स ! सर्वं स्मरामि, किन्तु तत्कथोपकथनैर्दुःखमेव वर्द्धतेतमामिति—अलमालप्याशुष्मिन् विषये ।

गौर०—आर्य ! अलं तद्विषये शोकावहनेन । न भवन्ति भवादृशैः सनियममनुष्ठितानि मन्त्र-साधनानि विफलानि । रामसिंहं वयमपि विशिष्य मार्गयिष्याम ।

एवमालपतोरेव तयोरकस्मादुपावर्त्तत हयारूढो रघुवीरसिंहः । झटिति रामसिंहमयी दृष्टिरपतत् तदुपरि सर्वेषाम् । यदि जीवेद् वयसा रूपेण ईदृश एव सम्बोभूयेत रामसिंह'-इति विचारयति वीरेन्द्रसिंहे, किमिति पृच्छति च गौरे—"महाराज' स्मरत्यत्र भवन्तम्"—इति मन्दं गौरसिंहमभ्यधाद् रघुवीरसिंह । सोऽपि चोमिति व्याहृत्य वाजिनमारुह्य तेन सह सपदि प्रतस्थे ।

रघुवीरस्तु कियन्तमद्धानमतीत्य, विकचसारसं सारस-कारण्डवादि-कदम्ब-कूजितं सर एकमवलोक्य, "अहं चिर-तृष्णा-गलितोत्साहं वाहं पानीयं पाययित्वा, अनुपदमेवाऽऽयामि, तावद्गत्वा विलोकनीय. श्रीमता महाराज "—इति कथयित्वा गौरं प्रस्थाप्य स्वयं वाहवल्गा तत एवाऽऽचकर्ष । तत्र च सैन्धवस्य मुखात् फेन-

---

तत्कथोपकथनैः = तद्वार्तालापैः । वर्द्धतेतमाम् = अतितरामेधते ।

सनियमम् = सविधि । अनुष्ठितानि = साधितानि । मार्गयिष्यामः = अन्वेषयिष्यामः ।

उपावर्त्तत = परावृत्तः । रामसिंहमयी = रामसिंहभावनाभरिता । सम्बोभूयेत=सुतरा सम्भवेत् । तेन = रघुवीरसिंहेन । सपदि=तत्क्षणम् ।

विकचसारसम् = प्रफुल्लसरोजम् । सारस. = प्रलम्बचञ्चुचरणः श्वेतपक्षी, कारण्डव =मद्गुनामापक्षिविशेषः, एवमादीना कदम्बेन=समूहेन, कूजितम् = नादितम् । चिरतृष्णागलितोत्साहम् = दीर्घकालपिपासाविधूतहर्षम् । वाहम् = घोटकम् । अनुपदम् = पदः पश्चात् । त्वरितमिति यावत् । प्रस्थाप्य = सम्प्रेष्य । सैन्धवस्य = घोटकस्य । फेन-क्षालित-

क्षालित-खलीनं रश्मिमपसार्य्य तत्पृष्ठमार्द्रयन् जलं पाययन् सरस्तट-शाद्वले पर्य्याटयंश्च परिश्रममपनेतुमारब्धवान् ।

अस्य तु सर्वक्षणे सौवर्णी-मूर्त्यैव चित्रितं चित्रफलकमिव चित्त-मित्यस्मिन्नेकान्ते पुनरुद्भूवंस्तद्विपर्यिण एव मानसाः कथा-प्रसाराः-

यत् "किमिव करोमि ? अल्पं मे महत्त्वम्, क्षुद्रोऽधिकारः, असिधारावलेहनमिव कार्यम्, प्रत्यहं वर्द्धमान उपद्रवो महाराष्ट्र-देशे, स्वप्रेम्णा क्रीतवती मे हृदयं सौवर्णी। सा महतां कुलरत्नम्, महाधिकारस्य श्रीमतो गौरसिंहस्य भगिनी, कस्यापि कृतपुण्यस्य जनस्य जनुः सफलयितुमवतीर्णा, तथाऽपि सा मदर्थमेव रोदिति, दूयते, खिद्यते, क्लिश्यति, रोमाञ्चति, सीदति, स्विद्यति, ताम्यति च। न जाने केनेवान्तरात्मना प्रेरितोऽहमपि तयैव पाणिपीडां प्रति-ज्ञातवान्। अहह ! कथमेतत् सम्भवेत् ? मनोरथोऽयं चिरेणापि साधयितुं दुःशकः, मन्मथस्तु प्रतिक्षणमेव मनो मथ्नाति ।

खलीनम् = डिण्डीरधौतकविकम् । रश्मिम् = प्रग्रहम् । "किरणप्रग्रहौ रश्मी" इत्यमरः । अपसार्य्य = दूरयित्वा । सरस्तटशाद्वले = सरसी-तीरस्थघासवत्प्रदेशे । पर्याटयन् = भ्रामयन् । अपनेतुम् = दूरीकर्तुम् ।

सौवर्ण्याः, मूर्त्या = प्रतिबिम्बेन । चित्रफलकम् = चित्रपट्टम् । चित्तम् = मानसम् । एकान्ते = रहसि । तद्विपर्यिणः = सौवर्णासम्ब-न्धिनः । कथाप्रसाराः = विविधा आलापाः ।

क्षुद्र = हीनः । अधिकारः = स्वाम्यम् । स्वप्रेम्णा = निजस्नेहेन । कुले = अन्वये, रत्नम् = श्रेष्ठा । कृतपुण्यस्य = विहितसुकृतस्य । जनुः = जन्म । सफलयितुम् = सफलीकर्तुम् । स्त्रियो हि जन्मिना जन्मना साफल्यस्य वैफल्यस्य च कारणता गताः । दूयते खिद्यते प्रभृतीना प्रायः समानार्थकाना खेदाधिक्यप्रदर्शनायाभिधान वक्तुश्च विरहदूयमानमानसत्वा-दिति पौनरुक्त्यदोषाङ्कुशताऽवधेया ।

पाणिपीडाम् = विवाहम् । प्रतिज्ञातवान् = प्रतिश्रुतवान् । मन्मथः = कामः । मथ्नाति = आलोडयति ।

अहह ! तस्यास्तानि तानि भाषितानि, तानि तानीङ्गितानि, तानि तानि भ्रूविभ्रमणानि, तानि तानि प्रेक्षितानि, तानि तानि हसितानि, तानि तानि च रुदितानि शल्यानीव निमग्नानि मम हृदये । स्वप्नेष्वपि तामेव सुदतीं मदर्थं रुदतीमवलोकयामि; "प्रिये ! प्रिये ! मा स्म मृणाल–कोमलान्यङ्गानि चिन्ता–सन्तान–ज्वाला–जालावलीढानि कार्षीः" इति सक्षोभं विलपंश्च भग्ननिद्रः समुत्थाय परितस्तामेव कटाक्षपातैर्मां निघ्नतीमिवान्वेषयामि ।

अहह ! कथं तां प्राप्नुयाम् ? कथं तां परिणयेयम् ? कथं वा तदधर–सीधु–समास्वादेन सुधा–सुखमधरीकुर्याम् ? । हन्त ! कष्टं जीवनं मादृशानाम्, किमिव नाहं युद्धभूमिषु विनाश्ये ? हा दैव ! किं प्रिया-वियोग-दुःखेनैव हृदयहतकं शोषयितुं जीवयसि ?"—

एवं चिन्ता–सन्तान–वितान–परवशः सोऽश्वमारुह्य चलित-श्चित्त–परवशतया सिंहदुर्गं यामि–इति मनसि निधाय प्रस्थितोऽपि तोरणदुर्गं प्राप्त । तत्र च चकितः काम–परवशतया धैर्य–विरहं च निन्दन्, मारुति–मन्दिर-पूर्व-वाटिकां प्रविष्टः, एकस्मिन् कुञ्जे उपविश्य निःशब्दं रुदतीं च तामेव प्राणप्रियां ददर्श । सा तु

इङ्गितानि = चेष्टितानि । भ्रूविभ्रमणानि=भ्रूचालनानि । प्रेक्षितानि = अवलोकनानि । शल्यानीव = कण्टका इव । निमग्नानि=खचितानि । सुदतीम् = शोभनदन्तवतीम् । चिन्तासन्तापज्वालाजालावलीढानि = चिन्तनानुतापकीलालसमूहालिङ्गितानि । निघ्नतीम्=मारयन्तीम् । अन्वेषयामि = गवेषयामि ।

परिणयेयम्=विवाहयेयम् । तदधरसीधुसमास्वादनेन=तदोष्ठ-मधुरस ग्रहणेन । सुधासुखम्=पीयूषपानानन्दम् । अधरीकुर्याम्= अवरं विदध्याम् । विनाश्ये=मारितो भवामि ।

चिन्ता-सन्तान-वितान-परवशः = विचार-समूह-विवर्धन-रतः । कामपरवशताम्=कामाधीनताम् । धैर्यविरहम्=धीरताराहित्यम् । कुञ्जे=लतादिपिहितोदरे स्थाने । निःशब्दम्=ध्वनिशून्यम्, अस्फुट-

दृष्ट्वैव एनमुत्थाय "कितव ! सुसमये समायातोऽसि, तिष्ठ, यावदहं त्वां पश्यन्त्येव शाखि-शाखयाऽऽत्मानमुद्बध्य प्राणांस्त्यजामि" इति रोषारुणाभ्यां नयनाभ्यामनिमिषमीक्षमाणा व्याहृतवती। रघुस्तु- "प्रिये ! कथय, किमिव संवृत्तम् ? केनावहेलिताऽसि ? केन क्ष्वेलिताऽसि ? तोरण-दुर्ग-नेदीयस्यस्मिन् महाराष्ट्र-राज-भट-सङ्घट्ट-रक्षिते उद्याने कस्य वा शक्तिस्त्वां धर्षयितुम्"-इति न्यवीविदत्।

सा तु पुनराह-वीर ! रक्षक एवात्र भक्षकः। योऽयं क्रूरसिंहाभिधोऽश्वारोहाणा पञ्चशत्या अध्यक्षोऽत्र तोरणदुर्ग-प्रान्त-रक्षकत्वे नियुक्तः; स स्वयमेव केनापि व्याजेनाऽऽगत्य मामवलोक्य हसति, भ्रुवौ नर्त्तयति, करकम्पनैराह्वयति, मन्दं मन्दं किमप्यभिदधाति च। अद्य तु उद्याने पुष्पाण्यवचिन्वतीं मामकस्मादुपगत्य चिरं-"प्रिये प्राणेश्वरि ! अनुगृहाण, पाणिं मे गृहाण" इति अवादीत्। मया बहुशो धिक्कृतश्च-"जाने, त्वं रघुवीरेऽनुरक्तासि, तत् सपदि तं मदसि-र्विलीढमालोक्य मां वरिष्यसि"-इत्युक्त्वा श्च्योतद्रक्ताभ्यामिव नेत्राभ्यां विदारयन् मम हृदयं, निरगात्।

शब्दमिति यावत्। कितव !=धूर्त्त ! शाखिशाखायाम्=वृक्षविटपे। व्याहृतवती=जगाद। अवहेलिता=तिरस्कृता। क्ष्वेलिता=हास्यविषयीकृता। तोरण-दुर्गस्य नेदीयसि=अन्तिकस्थे। महाराष्ट्रराजस्य, भटानाम्=वीराणाम्, सङ्घट्टेन=सम्मर्देन, रक्षिते=पालिते। धर्षयितुम्=दूषयितुम्।

तोरणदुर्गप्रान्तरक्षकत्वे=तोरणदुर्गयुतदेशखण्डशासकत्वे। व्याजेन=छद्मना। करकम्पनैः=हस्ताह्वानैः। किमपि=अश्रोतव्यमश्रुतं च। अवचिन्वतीम्=संकलयन्तीम्। उपगत्य=समीपमागत्य। अनुगृहाण=कृपां कुरु। धिक्कृतः=भर्त्सित इति यावत्। मदसिना विलीढम्=विद्धम्। आलोक्य=वीक्ष्य। वरिष्यसि=स्वीकरिष्यसि। श्च्योतद्रक्ताभ्यामिव=प्रवहल्लोहिताभ्यामिव। निरगात्=निष्क्रान्तः।

तदाकर्ण्य दुःखितो रघुवीरश्चिरं तां सान्त्वयित्वा, क्रूरे कुपितः सिंहदुर्गं प्रास्थित। अकस्माच्च तस्मिन्नेव दिने पुण्यनगरात् पूर्वस्यां सेनास्थाने स्व-सादि-समूहेन सह स्थातुं क्रूरसिंहेन महाराजस्याऽऽदेशः प्राप्तः-इति स तथाऽकरोत्। अत्र चान्य. ससादिगणो रक्षक आगतः-इति किञ्चिच्छान्त. सौवर्ण्या आधिः।

एवं विलक्षणा संवृत्ता दैवघटना; यदेकतः पुत्र-वियोग-दुःखित' पुनस्तत्प्राप्तये साधन-विशेषमनुतिष्ठन् वीरेन्द्रोऽवसीदति। अन्यतः सौवर्णी-विवाह-चिन्ता-प्रस्तौ रामसिंहालुलोकयिषा-लोलुप-लोल-लोचनौ गौरश्यामौ विषीदतः, परतो रघुवीराय लज्जया विरहय्य वितीर्णेव, उत्कण्ठया समाकृष्य समर्पितेव, इन्द्रिय-गणेन कुसुमेषु-घातैर्वशंवदां विधाय विनिवेदितेव, मदनेन किङ्करीकृत्योपहृतेव, कामेन दुर्मद-मदन-मदैर्मामद्यमानाऽप्यधिक सम्मदय्य प्रदत्तेव, अनुरागेण सकल-गुण-गुणान् विगणय्य विक्रीतेव, हृदयेन रघुवीरं चिन्तयन्ती कोशला दिवसान् गणयति। ततो रसनारी च महाराष्ट्रराजस्य मधुरालापैरिव क्रीता, मन्मथोन्मथितेन मनसेव विक्रीता—

सान्त्वयित्वा=प्रशाम्य। स्वसादिसमूहेन=निजाश्वारोहिव्रातेन। आधिः=मानसिकी व्यथा। "पुंस्याधिर्मानसी व्यथा" इत्यमरः।

साधनविशेषम्=मन्त्रानुष्ठानम्। अवसीदति=क्लिश्नाति। रामसिंहस्य, आलुलोकयिषया=द्रष्टुमिच्छया, लोलुपे=अभिलाषुके, लोले=चपले, च लोचने=नयने, ययोस्तौ। विषीदत'=विषादं कुरुतः। लज्जया=त्रपया। विरहय्य=वियोज्य। वितीर्णा=दत्ता। उत्कण्ठया=आध्यानेन। कुसुमेषुघातैः=पुष्पेषुताडनैः। वशंवदाम्=अधीनाम्। विनिवेदिता=नम्रतया प्रदत्ता। दुर्मदस्य=दुर्दमनीयस्य, मदनस्य मदैः। मामद्यमाना=अतितरा माद्यन्ती। सम्मदय्य=मत्ता विधाय। मन्मथोन्मथितेन=कामोत्पीडितेन।

"कथमेतेन परिणीता भवेयम् ? कथमेनेन सह विहरेयम् ? कथमेतस्य चिर-विहार-विसृमरान् स्वेद-कणानात्मन. शाटी-प्रान्तेन परिहरेयम् ? कथमेतस्य "प्रिये ! पूर्णदृशाऽवलोक्यानुगृह्णीष्व माम्"—इति चाटु-वचन-रचनानि समाकर्णयेयम् ? कथमिव चास्मै स्वमनोरथं सूचयेयम् ? एष वैदिक-धर्मानुष्ठानायैव दत्त-हस्तावलम्बनः, तत् कथमेष म्लेच्छराज-तनयां मामर्द्धाङ्गिनी विधित्सिष्यति ? अहह ! हताऽहम्, किमिति म्लेच्छ-गर्भात् सम्भूताऽस्मि ? चक्रवर्ति-नन्दिनीति व्यर्थो मेऽभिमानः। वरं राजपत्नी; न तु राजकन्या। न जाने कस्मै दित्सते मां तातः, अवश्यमनुचरायैवानुगतायैव च कस्मैचन दास्यति, न तु स्वतन्त्रो महाराष्ट्र-राज-सदृशो महाराज· कश्चन तस्य प्रेमपात्रम्। तत्किं लज्जया विरज्य, धैर्यमवधीर्य, गुणान् विगणय्य, वाचालतामूरीकृत्य, धृष्टतां शिरसि संस्थाप्य, अभिमानमवमान्य, चापलं चावलम्ब्य, स्वयमेव किमप्यमुष्मिन् विषये प्रकटयामि ? पर न वेद्मि प्रकारमीदृशे प्रेमाचारे स्वाभिलाप-प्रकाशनस्य। एतद्विपये एतस्य सत्का-

---

परिणीता = विवाहिता। विहरेयम्=विहार कुर्याम्। चिरविहारविसृमरान्=दीर्घकालक्रीडाप्रसृतान्। स्वेदकणान्=घर्मबिन्दून्। शाटीप्रान्तेन=धौताञ्चलेन। परिहरेयम् = दूरयेयम्। चाटुवचनाना रचनानि। समाकर्णयेयम्=शृणुयाम्। सूचयेयम् = बोधयेयम्। दत्तहस्तावलम्बनः=कृतकराश्रयः। अर्द्धाङ्गिनीम्=अर्धशरीररूपिणीम्। स्त्रियमिति यावत्। विधित्सिष्यति=कर्तुमेष्यति। सन्नन्ताद् लृट्। म्लेच्छगर्भात्=यवनान्युदरात्। जातिविवक्षया पुस्त्वम्। "कुक्कुट्यादीनामण्डादिष्वि"ति वार्तिकप्रत्याख्याने भाष्ये समाश्रितमिदमिति सन्तोष्टव्यम्, म्लेच्छ इत्यत्रैकशेषो वा। चक्रवर्तिनः=सम्राजः, नन्दिनी=तनया। दित्सते=दातुमिच्छति। अनुगताय=वचःपालकाय। विरज्य=विरागं कृत्वा। अवधीर्य=तिरस्कृत्य। अवमान्य = अपमानितं कृत्वा। चापलम्=चाञ्चल्यम्। अवलम्ब्य=आश्रित्य। प्रेमाचारे=स्नेहव्यवहारे। स्वाभिलाषप्रका-

रोऽपि तिरस्कारः, आदरोऽपि न्यक्कारः, स्तवोऽपि परिभवः, आलापोऽपि विलापः, सेवनमपि परिदेवनम्, भाषणमपि च भषणम्, हा हताऽस्मि ! दुराचारेण मारेण !"

—इति जल्पन्ति केनचन धवलिम्नेवाऽऽलिङ्ग्यमाना, पाण्डुरतयेव स्नप्यमाना, रोमपञ्जरेणेव निगृह्यमाणा, स्वेदबिन्दुसन्दोहैरिवाभिषिच्यमाना, प्रेम-निगड-बद्धा, अनुराग-कारागार-सयन्त्रिता, कदाचिदुच्छ्वसन्ती, कदाचिदश्रूणि मुञ्चन्ती, कदाचिच्छून्यं जगदाकलयन्ती, कदाचित् तदभिनिविष्टचेतना सम्मुख-स्थितमिव च महाराष्ट्रराजं पश्यन्ती खिद्यते। इत क्रूरः क्रूरतया रघौ क्रूरं कर्म चिकीर्षुः कोशला-कामनया क्लिश्यति। ततो रघुवीरोऽपि क्रूर-क्रूरतामाकलय्य ग्लायति-इति बहूनां हृदये चिन्तासन्तानविताना ज्वालामुखपर्वता इव जाज्वल्यन्ते।

× × ×

शनस्य = स्वमनीषितप्रकटीकरणस्य । परिभवः = अनादरः, "परिभवः परीभावस्तिरस्क्रिये" त्यमरः। विलापः = रोदनम्। परिदेवनम् = कृतस्य कर्मणोऽनुचितत्वबुद्ध्याऽनुतापः। "विलापः परिदेवनम्" इत्यमरः। भषणम् = कुक्कुररवः। दुराचारेण = कुव्यवहारेण। मारेण = मन्मथेन।

धवलिम्ना = श्वैत्येन आलिङ्ग्यमाना = आश्लिष्यमाणा। पाण्डुरतया = ईषत्पीतवर्णतया। रोमाण्येव पञ्जरम् = शुकादिबन्धनस्थान तेन। निगृह्यमाणा = बध्यमाना। अभिषिच्यमाना = स्नप्यमाना। प्रेमैव निगडम् = लोहदाम, तेन बद्धा। अनुराग एव कारागारम् = चारकम्, तस्मिन् संयन्त्रिता = नियमिता। आकलयन्ती = अवधारयन्ती। तदभिनिविष्टचेतना = शिवमयीभूतचैतन्या। क्रूरः = तन्नामा। रघौ = रघुवीरे। क्रूरम् = अमानुषम्। क्रूरतया=कठोरतया। ज्वालामुखपर्वता इव = वह्न्युद्गिरका गिरय इव। जाज्वल्यन्ते = अतितरां ज्वलन्ति।

× × ×

इतश्च माया-भवने सादरं संस्थापितोऽपि मायाजिह्मो नतरां केनापि सह सम्भाषते, नतमां वा कमपि पूर्णदृशाऽवलोकयति। एवं चिर-चिन्ता-पूरपूरितोऽद्य हन्ये, श्वो विनाश्ये—इति स्वस्मिन् नृशंसं कर्माऽऽशङ्कमान एवैकदा कैश्चित्सहचरैः सह समायान्तं महाराष्ट्रराजमद्राक्षीत्। यावदेष तत्प्रभाधर्षित उत्थाय किमपि विमृशति स्म; तावत्स स्वयमेव सादरमुवाच यद्—"भद्रं भवतु राजकुमारस्य। न मां पूर्वमपश्यद् भवान्—इति सूचयामि, मां जनाः शिवराज-इति कथयन्ति। कुमारस्यापि पित्रा सह मम बहूनि युद्धानि जातानि, भवन्ति च। श्रूयते श्रीमानपि मया योद्धुमेव प्रेषित इति, परं स्वच्छतया वा, साधुतया वा, मुग्धतया वा अल्पवयस्कतया वा, सग्राममननुष्ठायैव मम गृहमायातः-इति स्वागतम्। कच्चिद् यथासमयं यथोचिताचारैरुपतिष्ठन्ते दासेराः? कच्चित् प्रसीदति वा भवान्? उपविश्यतामुपविश्यताम्"—इत्युक्त्वा, तमुपवेश्य स्वयमप्युपविष्टः। एवं साम्रेडमापृच्छ्यमानः कुमारोऽपि ह्रीपरवशः कथमपि सम्मुखं मुखं विधायोक्तवान्-राजन्! अहं शत्रुपुत्रोऽस्मि, योद्धुं चाऽऽयातोऽस्मि-इति निगृहीतश्चेद्धन्तव्यः, दण्डयितव्यश्च,

नतराम्=सर्वथा नैव। सम्भाषते=वक्ति। पूर्णदृशा=समस्तचक्षुषा, द्रष्टव्यरूपेणेति यावत्। चिर-चिन्तापूर पूरितः=दीर्घानुचिन्तनप्रवाहपूर्णः। हन्ये=विनाश्ये, अहमिति शेषः। नृशंसम्=क्रूरम्। अद्राक्षीत्=अवालोकयत्। तस्य प्रभया=कान्त्या, धर्षितः। विमृशति स्म=व्यचारयत्। भद्रम्=कल्याणम्। स्वच्छतया=निर्मलतया। साधुतया=परोपकृतिपटुतया। मुग्धतया=सरलतया। अल्पवयस्कतया=न्यूनावस्थाकतया। अननुष्ठाय=अविधाय। स्वागतम्=शुभागमनम्। दासेराः=भृत्याः। उपतिष्ठन्ते=सेवां कुर्वन्ति, "उपाद्देवपूजासङ्गतिकरणे" त्यादिनाऽऽत्मनेपदम्। प्रसीदति=तुष्यति। साम्रेडम्=अनेकवारम्। ह्रीपरवशः=त्रपाधीनः। सम्मुखम्=पुरः। निगृहीतः=चारके कृतः। दण्ड-

न तु सत्कारैस्तिरस्करणीय', स्वागत-वाणी-बाणैश्च मर्मसु वेधनीयः। ततस्तावेवमालापिष्टाम्।

शिव०—कुमार! केयं कथा? राज्ञां पारस्परिकाः सन्धिविरोध-रूपा भवन्त्येव सम्बन्धा इति दैवान्मे विरोधस्तव पित्रा। त्वं तु यथा दिल्लीनायकस्य लालनीयस्तथा ममापि-इति दर्शं दर्शं तव यौवनोद्भेदसुभगान्यङ्गानि प्रीतिरेव मे वर्द्धतेतराम्।

कुमा०—एवं चेत् कथं निगृहीतोऽस्मि? स्वतन्त्रः कथं न क्रिये?

शिव०—कोऽत्र निग्रह'? केवलं मम साक्षात्कारायात्र वासितो भवान्। अधुना तु यथा रोचेत, तथा विधातुं शक्यते। अस्मिन् देशे न कदाऽप्यायातो भवान्-इति कुतूहलं चेदवलोक्यन्तां विविधानि दुर्गाणा पर्वतानां वनानाञ्च रामणीयकानि। निविवर्त्तिषते चेत् सुखेन गम्यतां स्वदेशे, निर्विघ्नमास्माकीना. सादिनः प्रतियापयिष्यन्ति आयुष्मन्तम्।

कुमा०—[तदौदार्येण चकित इव] महाराष्ट्रराज! किमिव व्यामोहयसि? न भवति मे निश्चयो यन्महत्या वाहिन्या सह भवतो राज्यमात्मसात्कर्तुमायाते मादृशे श्रीमानेवं दयिष्यते-इति।

यितव्य = दण्डविषय.कर्त्तव्यः। सत्कारै.=आदरैः। स्वागतवाण्य एव बाणा =इषवः, तैः। मर्मसु=कोमलेषु रक्षणीयेषु स्थानेषु च। वेधनीय =प्रहरणीयः।

आलापिष्टाम्=वार्त्तामकुरुताम्। लुङ्-प्रथम पुरुषद्विवचनम्।

पारस्परिका =आन्योन्याः। दैवात्=अदृष्टात्। लालनीयः= सुखेन पालनीय। यौवनोद्भेदसुभगानि=तारुण्योद्गमसुन्दराणि।

निग्रहः=बन्धनम्। साक्षात्काराय=अवलोकनाय। अवलोक्यन्ताम्= दृश्यन्ताम्। रामणीयकानि=सौन्दर्याणि। निविवर्त्तिषते=निवर्तितुमिच्छति। प्रतियापयिष्यन्ति=तत्र प्रापयिष्यन्ति। आयुष्मन्तम्=चिरायुषम्।

व्यामोहयसि=बुद्धिभेदं जनयसि। वाहिन्या=सेनया। आत्मसात्कर्त्तुम्=स्ववशीकर्त्तुम्। दयिष्यते=दया करिष्यते।

शिव०—आः! कोऽत्र संशयः? नैतद्भवतस्तातचरणानां राज्यम्; यत्र विश्वासघातो विध्वंसो लुण्ठनं दाहश्च वशंवदानामपि क्रियते। राज्यमिदं महाराष्ट्राणाम्। नात्र दारापहरणम्, नात्र 'रक्ष रक्षेति' व्याहरमाणानां वधः, न चात्र वशमागतैः सह विश्वासघात-व्यापारः। सुखेन स्वगृहे इव यथेच्छं विहरतु भवान्।

तदखिलमिदं सदाचार-सौष्ठवाधिक-मधुरं वचनामृतं कर्ण-पुटाभ्यां पीत्वा स्वपितुर्दौरात्म्ये घृणामावहन्, महाराष्ट्रराजस्य निगृहीतेष्वपि सदाचारं बहु मानयन् चिरमालपत् शिवराजेन मायाजिह्मः।

ततः—"अद्य सपदि समायास्यति कश्चिन्मया प्रेषितोऽधिकृतः, भवन्तं च पुण्यनगरं कानिचिच्च दुर्गादीनि दर्शयिष्यति"—इत्यभिधाय प्रस्थिते महाराष्ट्र-राष्ट्र-त्रिविष्टपनाथे, कैश्चिन्नर्तितकाम्बोजैरश्वारोहैरनुसृतः, श्यामेनैकेन सुवर्ण-वल्गेन राजत-खलीनेन मौक्तिक-स्तवक-राजि-राजित-निगालेन रत्न-निचय-रुचिर-रोचिः-प्रचय-च्छुरित-वालधिना सुवर्ण-सूत्र-ग्रथित-प्रान्त-पीत-कौशेयोप-

---

वशंवदानाम् = अधीनानाम्। व्याहरमाणानाम् = कथयताम्। यथेच्छम्=यथाभिलषितम्। विहरतु=क्रीडतु, 'शेषे प्रथमः' इति प्रथमपुरुषत्वम्।

सदाचारसौष्ठवेन,अधिकम्, मधुरम् यद्। वचनामृतम्=उक्तिपीयूषम्। दौरात्म्ये = दुष्टतायाम्। आवहन् = धारयन्। मानयन्=मानितं कुर्वन्।

अधिकृतः=नियुक्तः। महाराष्ट्राणां राष्ट्रम्=राज्यम्, तदेव त्रिविष्टपम् = सुरलोकः, तन्नाथे = तदधीशे। नर्तिताः = सुगत्या चालिताः, काम्बोजाः = कम्बोजदेशोद्भवा अश्वा यैस्तैः। अनुसृतः =अनुगतः। सुवर्णवल्गेन = हिरण्यरश्मिना। राजतखलीनेन = रौप्यकविकेन। मौक्तिकस्तबकानाम् = मणिगुच्छानाम्, राज्या=श्रेण्या, राजितः= शोभितः, निगालः = गलोद्देशो यस्य तेन। रत्ननिचयस्य=हीरकादिसमूहस्य, रुचिरेण = मनोहारिणा, रोचिःप्रचयेन=तेजोव्रातेन, छुरितः= रूषितः, वालधिः=पुच्छं यस्य तेन। सुवर्णसूत्रग्रथिता=हिरण्यतन्तुस्यूता। प्रान्ते=चरमेंऽशे, पीताः=पीतवर्णाः, "गुणे शुक्लादयः पुंसि गुणि-

वेशनिकाऽऽच्छन्न–मध्येन कशाङ्कितकक्षेण धृतरश्मिनैकेन नियन्त्रा मन्दं मन्दमानीयमानेन वनायुजेन सहितः श्यामसिंहः समुपतस्थे।

मायाजिह्मश्च तेनाऽऽलाय हयमेनमारुह्य श्यामेन सह प्रथमं पुण्यनगरं प्राविक्षत्। तत्र च गृहे गृहे गीतानि द्वारि रम्भा–स्तम्भान् कुट्टिमे कुट्टिमेऽवलम्बित-माणिक्य-दीपिकानुल्लोचान् वीक्षमाणः, ग्रैवेयकालङ्कृतकन्धरान् सिन्धुरान्, उच्चैः श्रवस इव वान्धवान् सैन्धवान्, धारिताभिनववस्त्रान् पौरान्, समुद्धृत-विजयध्वजांश्चाखिलान् गेहान् उपलभमानः, भेरी-पटह-झर्झरादि-नादांश्चाऽऽकर्णयन्, "अप्यस्ति कोऽप्यद्य उत्सवविशेषः?"—इति श्याममपृच्छत्। स च "अद्य एकपदमेव महाराजो दिल्लीश्वरं सौरतान्

लिङ्गास्तु तद्वति" इत्यभिधानात् शुक्लादीनां गुणगुण्युभयवाचकत्वं वर्तते। या कौशेयस्य=पट्टवस्त्रस्य, उपवेशनिका = आसनिका, "चारजामा" इति हिन्दी, तया, आच्छन्नं मध्यं यस्य तेन। कशया = अश्वताडन्या, "कोडा चाबुक" इति हिन्दी, अङ्कितः=चिह्नितः, कक्षः = बाहुमूलं यस्य तेन। धृतरश्मिना = गृहीतप्रग्रहेण, नियन्त्रा = सारथिना, "नियन्ता प्राजिता यन्ता सूतः क्षत्ता च सारथिः" इत्यमरः। आनीयमानेन = प्राप्यमाणेन, वनायुजेन=वनायुदेशे जातेन सदश्वेन। "अरबी घोडा" इति हिन्दी।

एनम्=पूर्वोक्तगुणगणयुतम्। प्राविक्षत्=प्रविवेश। कुट्टिमे कुट्टिमे= प्रतिनिबद्धभूमि। अवलम्बितमाणिक्यदीपिकान्=धारितमणिप्रदीपान्। उल्लोचान्=मण्डपानि। ग्रैवेयकालङ्कृतकन्धरान्=ग्रीवाभूषणभूषित-ग्रीवान्। सिन्धुः=मदजलम्, अस्ति येषां तान् सिन्धुरान्= करिणः। उच्चैःश्रवसः=इन्द्रघोटकस्य। बान्धवानिव=भ्रातृनिवेत्युपमा। सैन्धवान्=हयान्। धारिताभिनववस्त्रान्=परिहितनूतनवसनान्। पौरान्=नागरिकान्। समुद्धृतविजयध्वजान्=समुच्छलित-जय-वैजयन्तीकान्। उपलभमानः=समवलोकयन्। आकर्णयन्= शृण्वन्। उत्सवविशेषः=महोद्भवः। एकपदमेव–एकदैव। सौरतान्=

विद्रोहिणः पोतयोधिन सामुद्रांश्च पराजितवान्—इति महोत्सवोऽस्मिन् राज्ये"—इति समुदतारीत्, मायाजिह्मश्च रालज्ञमश्रौषीत् ।

अथ ततो निवृत्तः सिंहदुर्गमायातस्तत्रत्यान विजयध्वजानालोक्य किञ्चिदन्तर्गत्वा च शास्तिखान—शिरोभूषणादीनि बहूनि विजित्याऽऽच्छिद्याऽऽनीतानि वस्तूनि दृष्ट्वा ह्रीण इव हतोत्साह इव चकित इव च ततोऽपि निवृत्तः, पथि महदेकं महाप्रघणं शारद-घन—घनाघन—विडम्बनं भवनमद्राक्षीत् । तत्र प्रविश्य च, रजतेन कनकेन च निर्मीयमाणाः शिवराजनामाङ्किता मुद्रा निष्काणि च दृष्ट्वा ततः प्रचलितो राजदुर्गमाससाद । दूरादेव दुर्गस्य समीपवर्त्तिनि प्रशस्ते शाद्वले च परःसहस्रानश्वारोहान् उन्मुखयन्तं भ्रामयन्तञ्च महान्तं कर्कमारूढं युवानमेकं समलुलोकत् । कोऽसाविति पृष्टश्च श्यामसिंहः—कुमार ! एष मे ज्येष्ठो भ्राता, महाराष्ट्र-राजस्यास्यतमः सेनापतिरस्ति—इति व्याहार्षीत् ।

तावदेकतो धौरितकेनाश्वारोह—शतकेनानुगम्यमानः, स्वयमपि पारसीकमेकमारूढः तथैव धावमानोऽनिल—लोलकुन्तलो नवीन-

यूरतदेशीयान् । पोतयोधिन =नौसंग्रामकारिणः । सामुद्रान् = उदधिसम्बन्धिनः । पराजितवान् = परास्तवान् ।

विजयध्वजान् = विजयवैजयन्तीः । ह्रीण इव = सलज्ज इव । महाप्रघणः=बृहद्बहिर्द्वारप्रकोष्ठकं, यस्मिंस्तादृशम्, "प्रघाणप्रघणालिन्दा बहिर्द्वार-प्रकोष्ठके" इत्यमरः । शारदस्य=शरदि भवस्य, घनस्य=सान्द्रस्य, घनाघनस्य = वर्षुकमेघस्य, "वर्षुकाब्दो घनाघन" इत्यमरः । विडम्बना = अनुकृतिर्यस्य तत्, अभूतोपमालङ्कारः । निर्मीयमाणा =निर्म्यमाणाः । निष्काणि = सुवर्णमुद्राः । उन्मुखयन्तम्=अभिमुखयन्तम्, भ्रामयन्तम्= चालयन्तम् । "कवायद करानेवाले" इति हिन्दी । युवानं = तरुणम् । कर्कम् = श्वेताश्वम् । "शुक्लोऽश्वः कर्क इत्युक्तः" इत्यभिधानम् ।

धौरितकेन = गतिविशेषेण । अश्वारोहाणाम्=सादिनाम्, शतकेन । पारसीकम् = पारसदेशोद्भवम् । अनिलेन लोलाः = चञ्चलाः, कुन्तलाः=चूर्णकुन्तलाः, यस्य सः, तादृशः, "अलकाः चूर्णकुन्तलाः" [illegible]

रुणैर्वासोभिरपरिचीयमानो रघुवीरसिंह समागतः । समादरमुद्रया कुमारं सम्भाव्य, श्यामेन भ्रूसञ्ज्ञयैव पृष्टो "मान्य ! शास्तिखान-युद्धे मयि प्रसन्नेन प्रभुणा शतमश्वारोहान् ममाधिकारे निरूप्य, तदध्यक्षताया नियोजितोऽस्मि" इति समस्तक-नमनमभ्यधात् । तेन "भद्रम्, दिष्ट्या दिष्ट्या"—इति सप्रसादमुक्तश्च पुरतः प्रचलितः ।

अथ मायाजिह्मो राजदुर्गं परितः परिक्राम्यन्, कुतश्चित् सेनानिवेशान्, कुतश्चित् पदाति-निकर-विरचिता व्यूह-रचनाः, कुतश्चिद् धडद्धडद्ध्वनिपुरःसरं विहायसि प्रयुज्यमाना भुशुण्डिकाः, कुतश्चित् ह्रादिनी-निर्ह्रादं ह्रेपयतीः शतघ्नीः, कुतश्चिन्मिथ्यायुद्धरचनया चन्द्रहास-चालन-चातुरीं प्रासासन-साहसं, पट्टिश-प्रयोग-पाटवं इषु-वर्षण-कौशलं च दर्शयतोऽनेकान् वीरान्, कुतश्चिच्च ध्वजमुत्थाप्य भारतस्य सनातनधर्मस्य महाराष्ट्रराजस्य च जयमुद्घोषयतः प्रमोदपूरप्रफुल्लान् पौरान् पश्यन्, विविध-विभावनाभङ्ग-भज्यमान-हृदयः पुनर्माया-प्रासादं निववृते ।

वाल० इत्यमरः । अरुणैः=ईषद्रक्तैः । अपरिचीयमानः=अनवबुध्यमानः । [illegible] इति भावः । समादरमुद्रया=सम्मानप्रदर्शनभङ्ग्या । कुमारम्=[illegible] । समस्तकनमनम्=सशिरोनति । दिष्ट्या=भागधेयेन ।

सेनानिवेशान्=शिबिराणि । पदातिनिकरः=पदगसमूहैः, विरचिताः=[illegible] । विहायसि=नभसि । ह्रादिनीनिर्ह्रादम्=वज्रगर्जनम् । 'ह्रादिनी वज्रमस्त्री स्यात्' इत्यमरः । ह्रेपयतीः=लज्जयन्तीः । शतघ्नीः=तोपाः । प्रासासनसाहसम्=कुन्त[illegible] । पट्टिशप्रयोगे=[illegible], पाटवम्=कौशलम् । प्रमोदपूरप्रफुल्लान्=[illegible] । विविधविभावनाभङ्ग=[illegible] 'भङ्गस्तरङ्ग ऊर्मिर्वा' इत्यमरः, भज्यमानम्=[illegible] हृदयं यस्य सः । मायाप्रासादम्=मायादुर्गम् । [illegible]

श्यामसिंहस्तु तं तत्र प्रवेश्य, स्वयमपि महाराष्ट्रराजस्य विजयोत्सवे राजदुर्गे समागतानां सम्भावित-मण्डलानां साकारे प्रताप-इव महति स्वर्ण-सिंहासने समारूढं मूर्तिमता यशसेव च्छत्र-मण्डलेन सुशोभितं प्रजाभिराद्रियमाणं महाराष्ट्रराजं द्रष्टुं राजदुर्गं प्रचलित. ।

इत्यष्टमो निश्वासः ।

इति द्वितयो विराम' ।

☆

सम्भावितमण्डलानाम् = पूजितमित्रवर्गाणाम् । साकारे = शरीरधारिणि । प्रताप इवेत्युत्प्रेक्षा । मूर्तिमता = आकृतिमता । यशसेव = कीर्त्येवेत्युत्प्रेक्षा । आद्रियमाणम् = सत्क्रियमाणाम् । जयजय-ध्वनि-गोचरीक्रियमाणमिति यावत् ।

अशेष-भूमीतल-विद्यमान-गवज्ञ-लोकार्चित-पादयुग्म. ।
नारायण श्रीहरशब्दपूर्वस्त्रिपाठिवर्यो गुरुरस्ति यस्य ॥ १ ॥
अध्यापिपच्छ्रीशिवदत्तमिश्रस्तर्कांश्च य तार्किकमण्डलीश ।
सिपाहवासी भगवत्सुदीतो वेदान्तविद्यागवतोऽज्ञो य. ॥ २ ॥
श्यामा-पदद्वन्द्व-मरन्द-लुब्ध स रामजीशर्म पद-प्रसिद्ध' ।
प्रादर्शयद्वीर-जये द्वितीये विरामके नूतनवैजयन्तीम् ॥ ३ ॥

इति श्रीशिवराजविजयवैजयन्त्यामष्टमनिश्वासविवरणम् ।

द्वैतीयीकविरामविवरणं समाप्तम् ।

❀ श्रीः ❀

अथ तृतीयो विरामः

।। नवमो निश्वासः ।।

"दैवी विचित्रा गतिः"

—स्फुटकम्

येनामन्दमरन्दे दलदरविन्दे दिनान्यनायिषत ।
कुटजे खलु तेनेहा तेने हा ! मधुकरेण कथम् ? ।।

—जगन्नाथः

या सत्त्वैकगुणाश्रया भगवती वाणीति सम्बोधिता
लीना राजससहतो सुरवरैर्लक्ष्मीति चाभ्यर्थिता ।
या कालीति तमोगुणा मधुमदोन्माथे चिरादर्चिता
सेयं काचिदनूतनाऽपि युवती बोभूयतां भूतये ।। १ ।।

• नवमे निश्वासे वृद्धिं गच्छत. शिववीरमहिम्न. प्रबलबलसमवेतबल-समवेतजयपुरन्दरजयसिंहमहाराजतोऽवरोध विवर्णयिपुस्तन्मूलाञ्चाग्रे भाविनीं दिल्लीवल्लभाधीनतामाशङ्कमानस्तदुभयमुपक्षिपति पद्यखण्डेन पण्डितराजीयेन पद्येन च ।

दैवी=देवसम्बन्धिनी, अदृष्टाधीना वा ।

येन=मधुकरेण, अमन्दमरन्दे=प्रचुरमकरन्दे, दलदरविन्दे=विकसत्पद्मे, दिनानि, सुखमयानि रसानुसेवनपराणि, अनायिषत=व्यतियापितानि, हा !=कष्टम्, खलु=निश्चितम्, तेन, न तु परेण, कुटजे=पार्वतमल्लिकायाम्, ईहा=इच्छा, अपि, कथम्=केन प्रकारेण, तेने=

ऋतुरेष शरत् । साम्प्रतं पुण्यनगरप्रान्तेऽकालेऽपि वसन्त इव पुंस्कोकिलाः काकली-कलकलैर्दिगन्तं बधिरयन्ति । मिलित-मलयानिल लोला लवङ्ग-लता दोलन्ति । मधु-गन्धान्ध-मधुव्रत-व्रात-विधुता माकन्द-मञ्जर्यो माञ्जुल्यं वमन्ति । नितान्त-विरह-क्लान्त-परम-श्रान्त-शून्य-स्वान्त-कान्ताजन-ज्वाला-जटाल-दाव-ज्वलन-जाज्वल्यमानाङ्गारक-कदम्बमिव पाटलपटलमुल्ल-

विवृद्धिं नीता । धीरवीरस्वभावेन परमोदात्तेन नायकेन श्रीशिववर्मेण जयसिंहसेनासहयोगात्मके महति विपद्गणे समुपस्थितेऽपि सन्धित्सा कथम-कारि, यन्मूलाऽग्रेतनी बन्धनादिरूपा दुर्यशोज्वाला धूमाविलेति मधुकरा-न्योक्त्याऽवश्यम्भाविदैवपरतन्त्रैव वा यन्त्रणैषेति प्राथमिकपद्यखण्डेन च दन्ध्वन्यते ।

ऋतुरेष शरत्, शरच्छब्दो नित्यस्त्रीलिङ्गो विधेयभूतः, उद्देश्यभूतश्च ऋतुशब्दो नित्यपुल्लिङ्गः, उद्देश्यप्रतिनिर्देश्ययोरैकत्वमापादयन्ति सर्वनामानि पर्यायेण तत्तल्लिङ्गभाञ्जीति सर्वनाम्नि पुंस्त्वमुद्देश्यगतमाश्रित्य प्रयोग इति वेदितव्यम् । अकाले = असमये । पुंस्कोकिला. = पिकाः । काकली-कलकलैः = पञ्चमस्वरैः । दिगन्तम् = हरिदन्तरालम् । बधिरयन्ति = शब्दश्रुतिशून्य कुर्वन्ति । पिकरवो व्याप्त इति यावत् । मिलितेन = सयुक्तेन, मलयानिलेन=मलयवायुना, लोलाः=चञ्चलाः । लवङ्गलता.= देवकुसुमप्रततय. । दोलन्ति=कम्पन्ते । मधुगन्धेन=मकरन्दपरिमलेन, अन्धानाम्=मत्तानाम्, मधुकराणाम्=द्विरेफाणाम्, व्रातेन=व्रजेन, विधुता' = सञ्चालिताः । माकन्दमञ्जर्य' = रसालपुष्पगुच्छाः । माञ्जु-ल्यम् = कोमलतामिश्रा सुन्दरताम् । वमन्ति=उद्गिरन्ति । नितान्त-विरहक्लान्त.=अतिशयितवियोगखिन्नः, परमश्रान्तः=अत्यन्त स्थगितः, शून्यस्वान्त.=विरहितचित्त, विक्षिप्तप्राय इति यावत्, य कान्ताजन = प्रमिलोक एव ज्वालाजटाल.=कीलालङ्कृतः, दावज्वलनः=वनाग्निः; तेन जाज्वल्यमानानाम् = अतितरा ज्वलताम्, अङ्गारकाणाम्=वह्नि-दग्धकाष्ठखण्डानाम्, कदम्बमिव=समूहमिव । कान्ताजनेषु दावदहन-

सति। पुष्पपरागे. पीत–मकरन्द–बिन्दु–सन्दोहैरार्द्रः प्रफुल्ललता-लिङ्गने शीत. कुञ्जसश्लेषश्च धीर समीरः प्रवहति स्म। दुःशकुन-रूपत्वादागामि–भय–सूचकेऽपि वसन्तप्रायत्वात् सुखमयेऽस्मिन् समये तोरणदुर्गादबहुदूरं पूर्वस्या कुसुमवाटिकाया स्वय महाराष्ट्रराज एकाकी पर्यटति स्म।

तत्र च भ्रमद्भ्रमरैश्चोचुम्ब्यमाना मल्लिका. पश्यन्, दोदुल्य-मानै कर–पल्लवैरिव पल्लव-तल्लजैः पार्श्व-परिवर्ति-द्रुमान स्पृशती-र्वासन्तीरवलोकयन, पुस्कोकिल–काकली-प्रतिवचनानीव कोकिल–कलरव-कुहूकारानाकर्णयन् अहरह "जय महाराष्ट्रराज !" इति

त्वमारोपित तदीयश्वासेषु ज्वलदङ्गारत्वनिमित्तमिति विशेषशोभाधायकत्वम्। पाटलपटलम्=पाटलासमूहः। पाटलम् "गुलाबफूल" इति भाषाप्रसिद्धम्। पुष्पपरागै =कुसुमरजोभिः। पीत.=पीतवर्ण.। मकरन्द-बिन्दु-सन्दोहै =पुष्परसपृषतसमूहैः। आर्द्र =क्लिन्नः। प्रफुल्ललतालिङ्गने = विकसितव्रततिसमाश्लेषे.। शीत =शीतलः। कुञ्जसश्लेषे =निकुञ्ज-सम्पर्कैः। धीर.=मन्दगतिः। समीरः=वायुः। प्रवहति स्म= सरति स्म। दुःशकुनरूपत्वात्, असामयिकत्वेन दुःशकुनत्वम्। आगामि-भयस्य=भाविभीतेः, निग्रहात्मकानिष्टस्य, सूचके=बोधके। सुख-मये=आपातरमणीये। अबहुदूरम्=अन्तिकम्। "दूरान्तिकार्थेभ्यश्च" ति द्वितीया। पर्यटति स्म=विहरति स्म।

भ्रमद्भ्रमरै =सञ्चलद्द्विरेफैः। चोचुम्ब्यमानाः=समाश्लिष्य-माणाः। मल्लिका =मालत्यः। दोदुल्यमानै =उत्क्षिपद्भिः। करपल्लवै-रिव=हस्तकिसलयैरिव। पल्लवतल्लजै =प्रशस्तैः किसलयैः। पार्श्वपरि-वर्तिन =समीपस्थान्, द्रुमान्=वृक्षान्। स्पृशती.=आश्लिष्यतीः। वासन्ती.=माधवीलताः। पुस्कोकिल-काकलीप्रतिवचनानीव=पिको-क्तिप्रत्युक्तीरिव, कोकिल–कलरव–कुहूकारान्=पिकमधुरोक्तिकुहूरवान्। आकर्णयन्=शृण्वन्। अहरह =प्रतिदिनम्। विहित-तदनुकरण–

साम्रेडमाकर्णनेन विहित–तदनुकरण–विरावाभ्यासाः सारिका विभावयन्, अकस्मात् परस्पर–ग्रथितं कुसुम–भार–निविडं मिलिन्द–व्याप्तं लता–प्रतान–निचयं हस्ताभ्यामुभयतोऽपसार्य निविशमानाम्, अष्टादशवर्षदेशीयाम्, धारित–हारित–परिधानाम्, कण्टकाकर्ष–श्लथद्वसन–दरीदृश्यमानमीषदुन्निर्मापितमुरोज–युगलमञ्चलेनाऽऽच्छादयितुं यतमानाम्, प्रफुल्ल–कमल–भ्रमेणेव वदनमभिपततो मधुकरान् ससम्भ्रमं सभ्रूभङ्गमीक्षमाणाम्, कपोल-पालि-लग्न-पराग-रागेण होलिका-महोत्सव-नेपथ्येनेवावतरन्तीम्, मल्ली-वल्ली-सङ्घर्षोन्मथितेनाधररागेणाधिकमधिकं तर्षमिव

विरावाभ्यासाः = कृततद्विडम्बनशब्दावृत्तीः। सारिकाः = शारिकाः। विभावयन् = अवलोकयन्। परस्परग्रथितम् = अन्योन्यसंसक्तम्। कुसुमभारनिविडम् = पुष्पभरघनम्। मिलिन्दव्याप्तम् = द्विरेफयुक्तम्। लताप्रताननिचयम् = व्रततिविस्तृतिसमूहम्। अपसार्य = दूरीकृत्य। निविशमानाम् = प्रविशन्तीम्। अष्टादशवर्षदेशीयाम् = प्रायोऽष्टादशवर्षवयस्काम्। धारित–हारित–परिधानाम् = परिहितहरिद्वर्णवसनाम्। कण्टकानाम्, आकर्षण = आकृष्ट्या, श्लथत = पतमानात्, वसनात् = वासस, दरीदृश्यमानम् = भृश अवलोक्यमानम्। ईषदुन्निर्मापितम् = किञ्चिदुन्नतम्। उरोजयुगलम् = कुचद्वन्द्वम्। अञ्चलेन = वसनकोणेन। आच्छादयितुम् = गोपयितुम्। यतमानाम् = यत्नमादधतीम्। प्रफुल्ल–कमल–भ्रमेणेव = विकसितारविन्दभ्रान्त्येव। वदनम् = लपनम्, अभिपततः = समीपमुपसर्पतः। अभ्रूभङ्गम् = भ्रूपातपुरस्सरम्। ईक्षमाणाम् = अवलोकयन्तीम्। कपोलपालौ = गण्डस्थलप्रान्ते, लग्नेन = ससक्तेन, परागरागेण = पुष्पधूलिलौहित्येन। होलिकामहोत्सवनेपथ्येन = होलोद्भववेषेण। अवतरन्तीम् = आविर्भवन्तीम्। मल्ली-वल्ली-संघर्षोन्मथितेन = मालती व्रतति-संसर्ग-मर्दितेन। अधररागेण = ओष्ठलौहित्येन। तर्षम् = पानेच्छाम्। अर्थादधरमधुनः। जनयन्तीम् =

जनयन्तीम्, शुक-शावक रावानुकारि-मञ्जु-मञ्जीर-मन्द-शिञ्जिताम्, गृहीत-कुसुम-स्तबका कामपि यवन-कामिनीमद्राक्षीत्।

सा तु दृष्ट्वैव महाराष्ट्रराजं दक्षकरमुत्थाप्य शिरो नमयित्वा स्रसमान वसन-दर्शित-ताटङ्क-निचया, रशना-निःस्वनेनेव किञ्चन वचनीयमिति सूचयन्ती, लोलल्ललन्तिका, सूक्ष्मवसनान्तर्देदीप्यमान-वालपाश्या, वद्धकरसम्पुटा, एकत. समवतस्थे।

महाराजस्तु तां तथाभूतामालक्ष्यैवमालपत्।

महाराज —भद्रे ! का त्वम्? कुत. समायाता? किमीहसे? किं विवक्षसि? कथमेकाकिनी वनेषु भ्रमन्ती न लज्जसे? न वा बिभेषि? रमणीया तवाऽऽकृतिः, वरणीयं वयः–इति कथं न स्वगेहे

उद्भावयन्तीम्। शुकशावकरावानुकारि=कीरशिशुशब्दविडम्बकम्, मञ्जु=सुन्दरम्, मञ्जीरयो=नूपुरयो., शिञ्जितम्=भूषणध्वनि., यस्यास्ताम्। गृहीतकुसुमस्तबकाम्=धृतपुष्पगुच्छाम्। यवनकामिनीम्=म्लेच्छवनिताम्।

दक्षकरम्=दक्षिणहस्तम्। स्रसमानात्=स्खलतः, वसनात्=वाससः, दर्शित=साक्षात्कारितः, ताटङ्कनिचय.=कर्णभूषणव्रजो यया सा। रशनानिस्वनेनेव=सारसनशिञ्जितेनेव। वचनीयम्=वक्तव्यम्। सूचयन्ती=बोधयन्ती। लोलन्ती=चलन्ती, ललन्तिका=आनाभिलम्बितकण्ठिका, यस्याः सा। सूक्ष्मवसनस्य=जूटकबन्धनस्य, झूल, "झूल, जाल" इति प्रसिद्धस्य, अन्त.=मध्ये, देदीप्यमाना=अतितरा प्रकाशमाना, वालपाश्या=शिरोरुहसमूहो यस्याः सा।

बद्धकरसम्पुटा=कृताञ्जलिका। समवतस्थे=स्थिता।

आलक्ष्य=अवलोक्य।

भद्रे!=कल्याणि। विवक्षसि=वक्तुमिच्छसि। एकाकिनी=असहाया। बिभेषि=भय करोषि। आकृति=अवयवसंस्थानम्। वरणीयम्=विवाहयोग्यम्।

स्वकुटुम्बेन समं वससि ? किमिति चाञ्चल्यमङ्गीकृतवत्यसि ? स्फुटं वद ।

यवनी—महाराज ! अत्रभवत्या दिल्लीवल्लभस्य तनयायाः सहचरीं मामवैतु श्रीमान् । श्रीमती तु चन्द्रशाला-गवाक्ष-जालिकातो वनान्तीक्षमाणा श्रीचरणानपश्यदिति किमपि सन्दिश्य मा प्रेषितवती । अहञ्च केवल तदाज्ञा-पालन-व्रतं शिरसा वहन्ती समायाताऽस्मि । कस्या वाऽपरस्याः साहसं भवेद् महाराजस्य समीपे एवमुपस्थातुम् ?

महा०—अपि राजकुमार्याः सहचर्य्यसि ?

सहचरी-[साभिवादनम्] आम्, महाराज !

महा०—कच्चित् कुशलिन्यत्र भवती ?

सहचरी-महाराज ! कुत. कुशलम् ?

महा०-किं तत् ?

सहचरी-महाराज ! अत्यन्तं खिद्यते सा !

महा०-तत्किम् ? कि भृत्या नावहन्ति तदाज्ञाम् ? सत्कारे नियुक्ता न सत्कुर्वन्ति ? समये नोपस्थाप्यते सामग्रीजातम् ? विनयं न रक्षन्ति रक्षका. ? दिल्ली-गमनाभिलापो वा विकलयति राजकुमारीम् ?

सहचरी-महाराज ! नेद किमप्याशङ्कनीयम् ।

सहचरीम्=सर्वकार्येषु सम्मिलन्तीं भृत्याम् । चन्द्रशालाया'=शिरोगृहस्य, "चन्द्रशाला शिरोगृहमि" त्यमरः । गवाक्षजालिकातः=वातायनिकारन्ध्रतः । श्रीचरणान्=भवतः । सन्दिश्य=सन्देशं दत्त्वा । तस्याः, आज्ञापालनमेव व्रतम्=नियमम् । वहन्ती=धारयन्ती । अपरस्याः=अन्यस्याः, भवतो भवदीयाया वाऽसम्बन्धिन्याः ।

नावहन्ति=न पालयन्ति । विकलयति=खेदयति ।

महा०—तत्किमेतद्देशीय–वायु–जलादिकं न भवति तदनुकूल-मिति शिथिला राजकुमारी ?

सहचरी–दीनबन्धो ! नास्ति सोऽपि हेतुः खेदस्य ।

महा०—तत्कि मयैव किमप्यपराद्धम् ?

सहचरी–आः ! शान्तं पापम् ! नैतत्स्वप्नेष्वप्याशङ्क्यते आतिथेयेषु कोङ्कण–चक्रवर्तिषु ।

महा०–[क्षणं चिन्तयित्वा] अथापनयतु मे सन्देहं सहचरी, किमिति खिन्ना राजकुमारी ?

सहचरी–महाराज ! न विद्मः को नाम व्याधिर्धुनोति राजकुमारीम् । साऽस्माभिरतिसावधानतया सेव्यमानाऽपि प्रतिक्षण-मनिमिषपात–निरुद्ध-नि'श्वास वेक्ष्यमाणाऽपि रोमाञ्चति, स्विद्यति, सीत्करोति, ताम्यति, विलपति, वेपते, उद्भ्रमति, रोदिति, ग्लायति, क्लिश्यति, मुह्यति, मूर्च्छति च । धीरं समीरमासाद्याधिकं खिद्यते, शीतमयूखमालोक्याधिक तप्यते, कोकिल–कलरवमाकर्ण्य कर्णयो-स्तोद्यमानेव कराभ्यां कर्णकुहरं पिधायान्तर्निविशते, अस्माभिर्हास्य-मानाऽपि न हसति, विविध–विलास–रामणीयकेष्वपि न रमते,

---

शिथिला=खिन्ना ।

आतिथेयेषु=अतिथिषु साधुषु ।

व्याधि' = व्यथा । विशिष्ट आधिर्व्याधिः, स चासह्या मानसिक-व्यथैव । अग्रे च लक्षणैराधिं स्पष्टयति । प्रतिक्षणम्=क्षणे क्षणे । अनिमिष-पातनिरुद्धनिश्वासम्=निर्निमेषश्वासरोधपुरस्सरम् । ईक्ष्यमाणा=अव-लोक्यमाना । रोमाञ्चति=पुलकं बिभर्ति । धीरम्=मन्दगतिम् । आसा-द्य=लब्ध्वा । शीतमयूखम्=हिमदीधितिम् । तप्यते=क्लिश्नाति । कोकिल-कलरवम् = पिककुहूशब्दम् । कर्णयोः = श्रोत्रयोः । तोद्यमानेव = पीड्य-मानेव । कर्णकुहरम् = श्रोत्रशष्कुलीम् । अन्तर्निविशते = अन्तराले गच्छति । हास्यमाना = नर्मवचसा गोचरीक्रियमाणा । न हसति = न कसति । विविधेषु = अनेकप्रकारेषु, विलासरामणीयकेषु=क्रीडासौ-

पाटलि-पटल-कलिका-मालामपि ज्वलन-ज्वाला-जालावलीमिव वेवेत्ति। किं वर्णयामि? केवलं दक्षतो वामतश्च परिवर्तनै, दीर्घ-निश्वासैः, सजृम्भाऽङ्गुलिस्फोटनैश्च सा क्षपा क्षपयति।

महाराष्ट्रराज-[स्वस्मिन्नेव] तत् किं मदन-व्याधिरेष? अस्तु, शृणोमि तावत्।

सहचरी—महाराज! सा साञ्जन-वारिधारा-सम्पात-सम्मर्द-मलिनौ पाण्डुरौ कपोलौ, ताप-तपन-तप्त-निश्वासाहृति-शुष्कमधरम्, कर्पूर-पूर-चूर्ण-मञ्जिम्ना केनचिद् धवलिम्ना कृशिम्ना च समालिङ्गितान्यङ्गानि वहति। कदाचिद् विमनायमाना किञ्चित्पुस्तकमादाय पिपठिषन्त्यपि वाष्प-जलैः पत्राण्याविलयति। कर्हिचिच्चक्षुषी निमील्य विरहमयानि कानिचिच्छन्दांस्याम्रेडते। कदाचन कोणात् कोणं पर्य्यटन्ती कुड्ये लम्बमानं महाराज-चित्र-फलकमालोकमालोकं वाष्प-बिन्दु-व्रज-व्याजेन धैर्यमिव वमति।

न्दर्येषु। पाटलिपटलकलिकामालाम् = शाटलासमूहकोरकस्रजम्। ज्वलन-ज्वालाजालावलीम् = दहनकीलालव्रजपङ्क्तिम्। वेवेत्ति = अवधारयति। परिवर्त्तनैः=वलनैः। दीर्घनिश्वासैः=लम्बोच्छ्वासैः। सजृम्भाङ्गुलिस्फोटनै = गात्रविनामाङ्गुलित्रोटनपुरस्सरम्। क्षपाम्=निशीथिनीम्। क्षपयति = यापयति। साञ्जनस्य = सकज्जलस्य, वारिधारासम्पातस्य = जल-प्रवाहपतनस्य, सम्मर्देन = सम्पर्केण, मलिनौ = कज्जलाविलौ। पाण्डुरौ= पीतवर्णौ। ताप एव = कामज्वर एव, तपन = सूर्यः, तेन तप्तस्य=उष्ण-ताङ्कितस्य, निश्वासस्य आहृतिभि = ताडनैः, शुष्कम् = नीरसम्। कर्पूर-पूर-चूर्ण-मञ्जिम्ना = हिमवालुकापुञ्ज-क्षोद-शोभया। केनचित् = अवच-नीयेन। धवलिम्ना = धवैत्येन। कृशिम्ना = दौर्बल्येन। विमनायमाना= उत्का। पिपठिषन्ती = पठितुमिच्छन्ती। वाष्पजलैः=अस्रैः। आविल-यति = दूषयति। विरहमयानि = विप्रलम्भशृङ्गारवर्णनपराणि, छन्दांसि = काव्यानि। पारसीकैः "शेर" इत्यभिहितानि। कुड्ये = भित्तौ। वाष्पबिन्दुव्रजव्याजेन=अश्रुपृषत्समूहच्छद्मना। वमतीव=उद्गिरतीव।

कर्हिचन फलकार्पितामेवात्रभवतो मूर्तिं सम्बोध्य चिरमालपति, उपालभते, स्तवीति, प्रार्थयते, वन्दते च। अथ फलकमिदमवतारयति, करे करोति, वक्षसि धत्ते, निपुणमीक्षते, गाढं चुम्बति, चिरमालिङ्गति, शिरसा च वहति। क्वचन स्वहस्तेनापि श्रीचरणानामिव मूर्तिमालिखति, आत्मनश्च प्रतिमां तद्वामत एव विन्यस्यति, ततश्च क्षणं मोदते, क्षणं हसति, क्षणं विषीदति, क्षणं क्रन्दति, क्षणमालपति, क्षणञ्च विलपति—इति किमिव कथयामि ? कुमार्या आदेशो मा मुखरितवानित्यपराधश्चेत् क्षन्तव्यो महाराष्ट्रराजैः।

महाराष्ट्रराजस्तु तां तथाऽभिधाय शिरो नमयित्वा बद्धकरसम्पुटामेकतः स्थितामालोक्य, रसनाग्रांश्च स्वस्मिन्ननुरागमवधार्य, तत्क्षणमेव प्राप्तावसरेण धैर्यघस्मरेण स्मरेण व्याकुलीक्रियमाणः क्षणं किमपि नोक्तवान्। मार-विकार-प्रसार-भार-ज-र्ज-

---

क्रियोत्प्रेक्षा। फलकार्पिताम् = चित्रलिखिताम्। उपालभते = उपालम्भं ददाति। 'उलाहना देती है।' स्तवीति = स्तुतिं करोति। वन्दते = नमस्करोति। अवतारयति = अवरोहयति। वक्षसि = उरसि। धत्ते = धारयति। गाढम् = घनं यथा तथा। मूर्त्तिम् = चित्रम्। आत्मनः = स्वस्याः। प्रतिमाम् = मूर्त्तिम्। विन्यस्यति = स्थापयति। वामाङ्कस्थापनेन हिन्दुधर्मव्यवहारस्वीकरणपूर्वकं पत्नीत्वाङ्गीकरणं व्यनक्ति। क्रन्दति = रोदिति। आलपति = आलापं करोति। विलपति = परिदेवनं करोति। मुखरितवान् = बहुभाषणवतीमकृत।

अभिधाय = निगद्य। शिरो नमयित्वा = प्रणम्य, कथनसमाप्तिसूचकमिदम्। बद्धकरसम्पुटाम् = कृताञ्जलिम्। प्राप्तावसरेण = लब्धसन्दर्भेण, धैर्यघस्मरेण = धीरताभक्षकेण। "भक्षको घस्मरोऽद्मरः" इत्यमरः। स्मरेण = मदनेन। व्याकुलीक्रियमाणः = विचेतस्कतां नीयमानः। मारविकारस्य = कामविकृतेः, स्वेदादेः, प्रसारस्य = प्रसरणस्य, भारेण =

रितमाकारञ्च कथं कथमपि कुसुम-स्तबकावचयैः कल-कूजित-पूजित-पतत्रि-कुल-कलित-शाखाऽनुसन्धानैः, तत्क्षण-त्रोटित-कदली-दल-वीजनैः, स्वेदापनोदनैश्च निगूढवान्। तां सहचरीन्तु—

"त्रायतां महाराजः, त्यक्ष्यति प्राणानत्रभवती यदि न रक्ष्यते श्रीचरणैः"—इत्यभिदधानाम्, "ओम्! निवेदय भवतीमेषोऽहमायामि" इत्यभिधाय विसृष्टवान्।

तस्यां प्रयातायां च चिरं बहुशश्चिन्तयन् मुहूर्तमतिवाह्य, स्वयमपि शनैः शनैस्तोरणदुर्ग-शिरोगृहं सनाथयामास। तत्र च तथाभूतया रसनायां सादरमुपवेशितः, स्वयं सखीजनेऽपसृते वारं वारं रसनायां मुखं पश्यन्, करतल-न्यस्त-कपोलां रसनारीं व्यजिज्ञपद्, यद् "भद्रे! श्रुतवानस्मि सहचरीमुखादखिलं वृत्तान्तम्, तथाऽपि भवत्या मुखादपि शुश्रूषे कोऽयं कथमयं कीदृशश्चायं खेदः?"—इति।

आधिक्येन, जर्जरितम्=जीर्णप्रायम्। आकारम्=शरीरम्। कुसुमस्तबकावचयैः=पुष्पगुच्छसंकलनैः। कलकूजितेन=मधुररवेण, पूजितेन=संस्कृतेन, पतत्रिकुलेन=विहगनिवहेन, कलितानाम्=व्याप्तानाम्, शाखानाम्=वृक्षावयवानाम्, अनुसन्धानैः=विचारणैः, समवलोकनैरिति यावत्। तत्क्षणम्=तत्कालम्, त्रोटितस्य=भञ्जितस्य, कदलीदलस्य=रम्भापत्रस्य, वीजनैः=व्यजनव्यापारैः। स्वेदापनोदनैः=घर्मबिन्दुदूरीकरणैः। निगूढवान्=गोपितवान्।

अभिदधानाम्=कथयन्तीम्। आयामि=आगच्छामि। "वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा"। विसृष्टवान्=त्यक्तवान्, गमनाय।

तोरणदुर्गस्य, शिरोगृहम्=चन्द्रशालाम्। स्वयम्=आत्मनैव। अप्रेरित एवेति यावत्। अपसृते=दूरीभूते। विज्ञाताभिप्रायत्वात्सहचरीणा स्वयं दूरीभवनम्। तदुक्तम् "परेङ्गितज्ञानफला हि बुद्धयः"। एतेन सहचरीणामतिनिपुणत्वं विशकलितम्। करतलन्यस्तकपोलाम्=हस्ततालिकास्थापितगण्डाम्। व्यजिज्ञपत्=विज्ञापितवान्। शुश्रूषे=श्रोतुमिच्छामि। "ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः" इत्यात्मनेपदम्।

२७

सा तु अतरल–तारकेण क्षुण्णपक्ष्मणेक्षणेन क्षणंराजमुखमैक्षिष्ट। ईक्षमाणैव च स्वेद-सलिल-सन्दोहैः स्नपितेव, महाराष्ट्र-मण्डलाखण्डलाय वाष्प–बिन्दु–मौक्तिकावलिमिवोपहरन्ती, श्वास-प्रश्वास-झञ्झावातोड्डीन–धैर्या, शोकाङ्कुरैरिव रोम-निकरैर्निगृहीता, भयेनेवाकम्पत।

अथ "कथ्यतां, कः क्लेशः कुमार्याः ? किं वाऽभीप्सितम् ?–" इति वदति महाराष्ट्रराजे, सा वेपमानैरङ्गैरिव निवार्यमाणा, मन्मथोन्मथितेन मनसेव मूकीक्रियमाणा, उद्वेल्लितैर्वाष्पैरिव कण्ठे रुध्यमाना, अवहेलितया ह्रियेवावहेल्यमाना, अनासादितचरेण साहसेनेव हास्यमाना, मदन–मदेनेव च मामद्यमाना, न कञ्चन वाचां प्रचारमूरीचकार।

अतरलतारकेण = अचपलकनीनिकेन। क्षुण्णपक्ष्मणा = अनिमीलितनेत्रलोम्ना। ईक्षणेन = नयनेन। ऐक्षिष्ट = अलोकयत्। स्वेद-सलिल-सन्दोहैः = घर्म-जल-व्रातैः। स्नपितेव = कृतनिर्णेजनेव। वाष्पबिन्दु-मौक्तिकावलीम् = अस्रपृषद्रत्नमालिकाम्। उपहरन्ती = ददती। श्वास-प्रश्वासयोः, झञ्झावातेन = सवृष्टिकेन पवनेन, अत्र रोदनसहितेन, उड्डीनम् = विलुप्तम्, धैर्यं यस्याः सा। शोकाङ्कुरैरिव = खेदोद्गमनैरिव। रोमनिकरैः = लोमचयैः। भयेनेव = भीत्येव।

अभीप्सितम् = अभिलषितम्। वेपमानैः = कम्पमानैः। निवार्यमाणा = निषिध्यमाना। मन्मथोन्मथितेन = कामजर्जरितेन। मूकीक्रियमाणा = मौनं नीयमाना। उद्वेल्लितैः = उच्छलद्भिः। रुध्यमाना = वार्यमाणा। अवहेलितया = तिरस्कृतया। ह्रिया = त्रपया। अवहेल्यमाना = तिरस्क्रियमाणा। अनासादितचरेण = पूर्वमप्राप्तेन। साहसेन = मानसिकेन बलकर्मणा। हास्यमाना = उपहस्यमाना। मदनमदेन = कामजविकारेण। मामद्यमाना = अतितरां माद्यन्ती। वाचां प्रचारम् = वाक्प्रसारम्। ऊरीचकार = स्वीचकार।

अथ क्रियासमभिहारेण महाराजेन सान्त्व्यमाना, अभ्यर्थ्यमाना च, अञ्चलान्तेन स्वेदैः सह लज्जामिवापसार्य, कदली–दलैः बीजन–व्याजेन किञ्चनावशिष्टं धैर्यमप्युद्धूय, वाष्पापहरण-कैतवेन विवेकमपि च सम्मर्द्य, कर्णार्पित–कर्णिकार–पापत्यमान–मधुकर-निकर–विधूनन–च्छलेन निर्मक्षिकमिव विदधती, परितोऽवलोकन–च्छद्मना वास्तुदेवी–श्रवणमिवाऽऽशङ्कमाना वक्तुकामाऽपि स्वाशयं प्रकटयितुं यतमानाऽपि स्फुरितोत्तराऽपि च विरह-ज्वाला-वलीढ-वसनया प्रकाशमनाजिगमिषन्त्या भगवत्या सरस्वत्या वारितेव पुनर्मौनमेवाकलयत् ।

क्रियासमभिहारेण=पौनःपुन्येन । सान्त्व्यमाना=साम्ना प्रतिबोध्यमाना । अभ्यर्थ्यमाना=प्रार्थ्यमाना ।

अञ्चलान्तेन=वसनप्रान्तेन । स्वेदैः सह=घर्मबिन्दुभिः साकम् । लज्जामपसार्य=त्रपा दूरीकृत्य । सहोक्तिरलङ्कारः । कदलीदलवीजन-व्याजेन=रम्भापत्रहिल्लोलनच्छद्मना । अवशिष्टम्=शेषम् । उद्धूय=दूरीकृत्य । वाष्पापहरणकैतवेन=अस्रापयनव्याजेन । विवेकम्=विचारम् । सम्मर्द्य=विनाश्य । कर्णयोः=श्रोत्रयोः, अर्पितेषु=स्थापितेषु, कर्णिकारेषु=तन्नामककुसुमेषु, पापत्यमानानाम्=वारं वारं पतताम्, मधुकराणाम्=भ्रमराणाम्, निकरस्य=समूहस्य, विधूननच्छलेन=दूरीकरण-व्याजेन । निर्मक्षिकम्=जनसञ्चारशून्यम् । वास्तुदेवीश्रवणम्=देहल्य-धिष्ठातृदेवीश्रुतिम् । आशङ्कमानेव=संशयानेव । एतेन वक्तव्यस्य परम-गोप्यत्व ध्वनितम् । वक्तुकामाऽपि=कथयितुमभिलषन्त्यपि । स्वाशयम्=स्वाभिप्रायम् । प्रकटयितुम्=व्यक्तीकर्तुम् । यतमाना=चेष्टमाना । स्फुरितोत्तरा=चञ्चलितोत्तरोष्ठा । किञ्चिद्वक्तुं प्रवृत्तेव । विरहज्वालावलीढवसनया=वियोगकीलालकवलितवाससा । प्रकाशम्=स्फुटताम् । अनाजिगमिषन्त्या=आगन्तुमनभिलषन्त्या । निर्वसनत्वादिति स्फुटमेव । वारिता=निषिद्धा ।

ततस्तच्छोकदर्शनातिखिन्नेन महाराष्ट्र-कुम्भिनी-स्तम्भेन पौनः-पुन्येन प्रार्थितम्—भद्रे ! अकथितकारणो वर्द्धते खेद । यदि दूती-प्रेषणेन मामनुगृहीतवत्यसि, तत् कथं मानस-खेद-हेतु-कथनेनाधिकं न कृतार्थयसि ? नात्र कश्चन तृतीयः, न भवति भवत्या वाणी षट्कर्णा । प्राणान् संशयमारोपयसि, न च वक्षि । लज्जां मानयसि, न तु जीवनम्—इति ।

परतश्च निश्वासानुपातिभिर्मधुपैरिव परिपीतायाम्, खेद-सागर इव निमग्नायाम्, बाष्प-प्रवाहेणेव क्षालितायाम्, मदन-दहनेनेव दग्धायाम्, नख-विलेखैरिव कर्तितायाम्, दीर्घोच्छ्वासैरिव विधूतायाम्, महाराजवचनैरिव विलुण्ठितयां च त्रपायाम्, चक्षुषी प्रमृज्य, अभिमुखीभूय, वक्तुमारभत रसनारी—

तच्छोकदर्शनातिखिन्नेन=तद्दुःखावलोकनातिदुःखिना । महाराष्ट्रकुम्भिन्या'=महाराष्ट्रवसुमत्याः, स्तम्भेन । "गौरिला कुम्भिनी क्षमे" त्यमरः । पौनःपुन्येन=क्रियासमभिहारेण । अकथितकारणः=अनिवेदितहेतुः । वर्धते=एधते । अनुगृहीतवती=अनुकम्पितवती । मानस-खेद-हेतु-कथनेन=चैतस-दुःख-कारण निवेदनेन । षट्कर्णा=वक्तृश्रोत्रितरश्रोत्रगोचरा । तृतीयादिश्रवणे रहस्यभेदादाशङ्का भवति । तथा चोक्तम्-"षट्कर्णो भिद्यते मन्त्र" इति । संशयम्=सन्देहस्थानम् । वक्षि=कथयसि । मानयसि=धारयसि । जीवनम्=प्राणनम् ।

निश्वासानुपातिभिः=निश्वासपश्चाद्गतिभिः । परितः पीतायाम्=आस्वादितायाम् । इवेनोत्प्रेक्षा । एवमग्रेऽपि । निमग्नायाम्=त्रुडितायाम् । बाष्पप्रवाहेण=अस्रपूरेण । क्षालितायामिव=धौतायामिव । मदनदहनेन=कामवह्निना । दग्धायामिव=प्रज्वलितायामिव । नखविलेखैः=नखविदारणैः । कर्त्तितायामिव=छेदितायामिव । विलुण्ठितायाम्=बलादपहृतायाम् । त्रपायाम्=लज्जायाम् । अभिमुखीभूय=सम्मुखीभूय ।

महाराज ! सर्वं विदितमार्यस्य, केवलं पुनरुक्तिरियं भवित्री मदुक्तिः, तथाऽपि वारं वरमापृच्छ्यमानाऽपि यदि वाचं यच्छेयं प्रत्युत्तरं च न प्रयच्छेयं तत्परमापराधिनी स्यामिति निवेदयामि यत् महाराज एव कारणं ममाऽऽधीनाम्। न शोभते महाराजे एवं वनिता-जन-वञ्चनं व्यर्थ-मर्यादा-विकत्थनं च।

महाराजस्तु ईदृशीं भङ्गीमाकर्ण्य, दिल्लीश्वर-दुहितुर्लोलताम्, निर्भीकताम्, अभीकताम्, चटुलताम्, चतुरताम्, कविताञ्च विभावयन् पुनरुवाच—"भद्रे ! विशकलय्य कथ्यताम्, कोऽनाचारः प्रादर्शि जनेनैतेन ?"

सर्वं विदितमार्यस्य, एतेन विज्ञताशयोऽपि महाराजो बलान्मदाननाच्छ्रोतुं वाञ्छति निखिलम्, तदिदञ्च महाराजत्वं पुरुषत्वञ्चेति ध्वनयति प्रथमवाक्येनैव रसनारी। एषा हि परं विदुषी कवयित्री चेतीतिवृत्तेषु ख्यातम्। नारीणां च विदुषीणां वचनं व्यङ्ग्यबहुलं भवतीति न तिरोहितम्—"विजृम्भितं यस्य किल ध्वनेरिदं विदग्धनारीवचनं तदाकरः" इति श्रीहर्षोक्तिवेदिनामिति यत्किञ्चिदेतत्। पुनरुक्तिः=द्वितीयवारं कथनम्। मदुक्तिः=मत्कथनम्। मदुक्तिरेव सहचरीमुखादधिगता भवद्भिरिति तामेव कथयिष्यामि नान्यत्किमपीति व्यनक्ति। वाचं यच्छेयम्=मौनिनी भवेयम्। प्रत्युत्तरम्=प्रतिवाचिकम्। न प्रयच्छेयम्=न प्रदद्याम्। आधीनाम्=मानसिकीनां व्यथानाम्। वनिताजन-वञ्चनम्=नारी-जन-प्रतारणम्। व्यर्थमर्यादायाः=निष्प्रयोजनधार्मिकबन्धनस्य, विकत्थनम्=श्लाघनम्, धर्मरक्षणाद्युक्तिः श्लाघामात्रम्, खिन्नजनखेदवारणं हि सर्वतो बलीयान् धर्मः, स नानुष्ठीयते भवता।

भङ्गीम्=कथनप्रकारम्। लोलताम्=चपलताम्। निर्भीकताम्=निर्भयताम्। अभीकताम्=कामुकत्वम्। "कम्रः कामयिताऽभीकः कमनः कामनोऽभिक" इत्यमरः। चटुलताम्=चञ्चलताम्। चतुरताम्=कौशलम्। कविताम्=कवनशक्तिम्। विभावयन्=विचारयन्। अनाचारः=दुर्व्यवहारः। प्रादर्शि=प्रदर्शितः।

रसनारी—महाराज ! किमिवाऽऽच्छन्दयसि ? विचित्रास्तव मायाः, विलक्षणास्तव घटनाः। यदा यदा मां साक्षात्करोषि तदा तदाऽनया तु मूर्त्याऽऽचारं विनयं मर्यादामेव च रक्षसि, किन्तु उत्थाय प्रस्थितोऽपि मायामय्येव मूर्त्या चक्षुषोरग्रत एव वर्वर्त्सि। अहह ! साहचर्य्यमेव न त्यजसि, सहैव पर्य्यटसि, सहैव भुङ्क्षे, सहैव च शेषे। निद्रायामपि मम कदाचिदंशुकं स्पृशसि, कर्हिचित् कपोलयोः स्वेदानपहरसि। केयं चातुरी ? यदेकया मूर्त्या मर्य्यादाया ध्वजं वहसि, परया चाचिन्तनीयमाचरसि। हन्त ! कुत आयासि ? मुद्रितं कवाट-युगलमपि नोद्घाटयसि, शृङ्खलामपि न चालयसि, सहचरीभिरपि नेक्ष्यसे, अनन्य-श्राव्यमालपसि, निभृतमेव वहसि, चित्रं चित्रं चित्रगतोऽपि च स्मयसे। अवलोकमवलोकं तवैतां मायामत्यन्तं बिभेमि, खिद्ये, उन्माद्यामि च। को वा न मुह्येदीक्षमाण ईदृक्षाणि विलक्षणानि इन्द्रजालानि ? तत् समये समायातोऽसि, निवेदितवत्यस्मि निखिलमितिवृत्तम्। साम्प्रतन्तु न शक्नोमि जीवि-

---

आच्छन्दयसि=मोहयसि। माया'=मोहनप्रकाराः। घटनाः=कार्याणि। साक्षात्करोषि=पश्यसि। मूर्त्या=आकारेण। आचारम्=व्यवहारम्। विनयम्=नम्रताम्। मर्यादाम्=धार्मिकसीमानम्। मायामय्या=वशीकरणशक्तियुतया। वर्वर्त्सि=अतितरां तिष्ठसि। पर्य्यटसि=भ्रमसि। अंशुकम्=वसनम्। अपहरसि=प्रोञ्छसि। मर्यादाया ध्वजम्—धार्मिकसीम्नो वैजयन्तीम्। परा धार्मिकता प्रकटयसीति यावत्। अचिन्तनीयम्=अविचारणीयम्, मुद्रितम्=पिहितम्, कवाट-युगलम्=कपाटद्वयम्। "कपाटमररं तुल्ये" इत्यमरः। शृङ्खलाम्=अररबन्धनदाम न चालयसि=न हिल्लोलयसि। कपाटोन्मुद्राणार्थं शृङ्खला सञ्चाल्य शब्दयन्ति जना इति लौकिकम्। अनन्यश्राव्यम्=अनितरश्रोतव्यम्। गुह्यभाषणमिति यावत्। निभृतम्=गुप्तम्। स्मयसे=किञ्चिद्धसति। खिद्ये=खेदिनी भवामि। इन्द्रजालानि=मायिकानि कार्याणि। इतिवृत्तम्=पूर्ववृत्तम्। जीवितुम्=प्राणान् धर्तुम्।

तुमिति पश्यत एव तव प्राणांस्त्यजामि । स्मरणीयाऽहम्, कोऽप्यपराधश्चेद् भ्रमविहितः स क्षन्तव्यः–इत्युक्त्वाऽञ्चल-प्रान्तेनाऽऽत्मानमुद्बद्धुमिव यतमानां करे धृत्वा सान्त्वयन्, शीतलयंश्च पुनराह महाराष्ट्रराजः ।

महाराजः—भद्रे ! मुधैव मामुपालभसे । यदा गम्भीरं निरीक्षिष्यसे, परीक्षिष्यसे च, तदा स्पष्टं समीक्षिष्यसे, यन्नात्राणुरपि दोषो मामकीनः । श्रीमत्या एव हृदयम, मन', वाञ्छा, यौवनम्, कामः, रागश्चात्रापराध्यति । धन्यमात्मानं मन्ये, यच्छ्रीमती दिल्ली-वल्लभ-नन्दिनी गर्वमपहाय पार्वतोन्दुरुनाम्ना प्रसिद्धि गमितेऽपि मय्यनुरक्तवती । आनृण्यं चास्यानुग्रहस्य मन्ये न कदाऽप्युपयास्यामि, परमिदमत्र विभावनीयम्–पित्रा अप्रदीयमाना यं कञ्चिदेवाङ्गीकुर्वती व्यभिचारिणी वचनीया च भवति वदावदानाम् । मातापितृभ्यामदत्तामात्मसात्कुर्वंश्च 'लम्पटः' इति निन्द्यते । तदाज्ञा चेदत्र भवतीमहं सादरं स्वसेनया रक्ष्यमाणां कुशलेन तातभवन प्रापयामि,

---

स्मरणीया=स्मृतिपथमानेतव्या । भ्रमविहितः=भ्रान्तिकृतः । उद्बद्धुम्=पाशीकर्तुम् । सान्त्वयन्=सामवचांसि प्रयुञ्जानः । शीतलयन्=शिशिरयन् ।

मुधा=व्यर्थम् । उपालभसे=उपालम्भं ददासि । निरीक्षिष्यसे=द्रक्ष्यसि । परीक्षिष्यसे=विचारयिष्यसि । समीक्षिष्यसे=आलोचयिष्यसि । अणुरपि=लघुतमोऽपि । वाञ्छा=अभिलाषः । यौवनम्=तारुण्यम् । रागः=प्रेमा । अपराध्यति=अपराधहेतुर्भवति । धन्यम्=अतिश्रेष्ठम् । गर्वम्=अभिमानम् । अनुरक्तवती=प्रेम कृतवती । आनृण्यम्=ऋणशून्यत्वम् । अनुग्रहस्य=कृपायाः । विभावनीयम्=विचारणीयम् । अप्रदीयमाना=अवितीर्यमाणा । अङ्गीकुर्वती=स्वीकुर्वती । व्यभिचारिणी=परपुरुषरता । वचनीया=निन्दनीया । वदावदानाम्=कथयितॄणाम् । "वदो वदावदो वक्ता" त्यमरः । आत्मसात्कुर्वन्=स्वाधीनता नयन् । लम्पटः=परस्त्रीरतः,

तातेनानुमता च मां सूचयिष्यसि। मदपक्षेयाऽप्यतिसुन्दरम्, अतिकमनीयम्, अतिसम्पदम्, अतिप्रार्थनीयम्, तुरुष्काऽऽरव्य-पारस्यादिदेश-राजकुमारेषु वा अन्यतमं वरं वरयिष्यसि। मा स्म अकृतार्थमात्मानं मंस्थाः। यैः पुण्यबलैर्दिल्लीवल्लभकुले जाताऽसि, तैरेव कञ्चन चक्रवर्ति-कुमारं वासन्त-वासन्तीव सहकारं वरयिष्यसि।

एवमालपद्भ्यामेव ताभ्यामन्वभावि कश्चन धूमगन्ध इव। यावच्चेतस्ततः पश्यतस्तावद् गवाक्ष-द्वारेण प्रविशन् शुण्डि-शुण्डादण्ड इव चण्डो धूमोऽवलोकित। यावच्च तद्विचिन्तयितु यतते; तावत् 'अग्निरग्निरग्नि, वह्निर्वह्निर्वह्नि, ज्वाला ज्वाला ज्वाले'ति प्रचण्डोऽश्रावि क्षुभितानामिव दौर्गिकाणां कोलाहल.। तत्कोलाहल-श्रवणसमकालमेवात्युद्विग्ना रसनारी त्रायस्व त्रायस्वेति वदन्ती महाराजं बाहु-

---

कामुकः। अनुमता=आज्ञप्ता। सूचयिष्यसि=बोधयिष्यसि। अतिसुन्दरम्=अत्यन्तरूपिणम्। अतिकमनीयम्=अतितरामर्थयितव्यम्। वरयिष्यसि=स्वीकरिष्यसि। अकृतार्थम्=अपूर्णमनोरथम्। वासन्तवासन्तीव=वसन्ते गृहीतजन्मा मालतीव। सहकारम्=रसालम्। उपमा।

एवं धर्ममर्मसंरक्षणप्रवणेन शिववीरेण प्रत्याख्याता रसनारी, किन्तु न सर्वथा प्रार्थयमानायास्तिरस्कारोऽपि विधेयः, "स्त्रीणां वरमनुस्मरन्, रामाया जातकामायाः प्रशस्ता हस्तधारणे" त्यादिवचनेभ्य इति बुबोधयिषुः, अमङ्गलमयशस्यञ्च भावि किञ्चनेति दुःशकुनं प्रदिदर्शयिषुः, रसनार्याः परममिष्टमालिङ्गन दैवप्रापितमिति च समर्थयितुमिच्छुरग्रेतन गद्यं निगदति—

अन्वभावि=अनुभवगोचरीकृतः। अनवलोकितत्वादिवः। पश्यत.=अवलोकयतः। प्रविशन्=गेहमाक्रामन्। शुण्डिशुण्डादण्ड इव=करिकरदण्ड इव। प्रचण्ड.=अत्युत्कटः। विचिन्तयितुम्=कुत इति विवेचयितुम्। प्रचण्ड.=बहुलीभूतः। क्षुभितानाम्=व्याकुलानाम्। भयभ्रान्तानामिति यावत्। कोलाहलः=कलकलः। अत्युद्विग्ना=अतितरा भीता। त्रायस्व त्रायस्व=पाहि पाहि। बाहुलताभ्याम्=भुजलतातीभ्याम्।

लताभ्यां गाढमवेष्टयत्। महाराजोऽपि तां तथा भीत-भीतां किञ्चिदुदञ्चिताभ्यां कुचाभ्यां वक्षःस्थलं पीडयन्ती बाहुपाश-वेष्टित-ग्रीवां सवेपथुं गाढमाश्लिष्टामवलोक्य, मा भैपीरित्यभिधाय कराभ्यां क्रोड उत्थाप्य, सपदि द्वार-देशान्निस्सृत्य बहिरायातः। सहचर्योऽपि च कान्दिशीका भय-भ्रान्त-नयनाः 'भट्टारक! भट्टारक! भट्टिनि! भट्टिनि!'–इत्युच्चैः प्लुतेनेव स्वरेणाऽऽकारयन्त्यस्तत्रैव समागमन्।

तावदुद्धूतमकृशं कृशानुमालोक्य दौर्गिकाः सर्वेऽपि यौगपद्येन कृतोद्योगा जलयन्त्रैः शमयाम्बभूवुः।

ततस्तु गृहीतकण्ठां रसनारोमालोक्य, "आः! कथमाश्लिष्ट एवास्मि यवनराज–तनयया"–इति तदभिमुखः 'एव जनः'–इत्य-भिधाय, अनेकपुरुप-दर्शनेन लज्जमानां झटिति निर्दिष्ट–गृहे प्रविष्टां

रूपकम्। अवेष्टयत्=आच्छादयत्। उदञ्चिताभ्याम्=उन्नताभ्याम्। वक्षःस्थलम्=उरःस्थलम्, महाराजस्य। पीडयन्तीम्=आनन्दवर्षिणीं पीडामुद्भावयन्तीम्। बाहुपाशवेष्टितग्रीवाम्=भुजबन्धयन्त्रितशिरोध-राम्। सवेपथुम्=सकम्पाम्। मा भैपीः=भयं न विधेहि। क्रोडे= भुजद्वयमध्ये। कान्दिशीकाः=भयद्रुताः। भयभ्रान्त-नयनाः=भीत्यु-द्घूर्णमाननेत्राः। प्लुतेन=त्रिमात्रिकेण। आकारयन्त्यः=आह्वयन्त्यः।

एना कथा समुपस्थाप्य सर्वोऽप्यग्रेतनः शिवराजचारकीकरणादिरूपो दुर्यशोव्रातो रसनारीस्नेहजन्मेति बोधयति। दिल्लीगमन–सन्धित्सादावप्यय-मेवानुरागः कथोपकथनादिश्चान्तरङ्गीभूतो हेतुरिति विवेचनीयं सुधीभिः।

उद्धूतम्=उत्थितम्। अकृशम्=अदुर्बलम्। सुपुष्टमिति यावत्। कृशानुम्=हिरण्यरेतसम्। यौगपद्येन=एककालम्। कृतोद्योगाः= विहितश्रमाः। जलयन्त्रैः=वह्निशामकैर्धाराजनकैर्यन्त्रैः। "फायर ब्रिगेड" इति विदेशीयभाषाशब्दस्तद्वाचकः।

आश्लिष्ट एव=आलिङ्गित एव। न ज्ञानपूर्वकमिदं वृत्तमिति प्रदर्श-यन् नायकोदात्तता रक्षयति। एष जनः=अयं मनुजव्रातः, अवलोक यतीति गम्यमाना क्रिया। निर्दिष्टगृहे=पूर्वप्रदर्शितसद्मनि।

राजकुमारीं त्यक्त्वा, महाराजः सोपानैर्नीचैरवातरत्। तत्र च "महाराज! आकस्मिकोऽयमज्ञात-कारणो ज्वालाजालः सञ्जातो जातवेदसः, तदमङ्गलमिव सूचयति, सूचयति चामङ्गलमेव अकाल-कुसुमोद्गमः। तस्मात् सपदि ज्योतिर्विदं देवशर्माणं पण्डितं दृष्ट्वा शान्तिरस्य काचन विधेया; फलं च प्रष्टव्यम्" इत्यभिदधत आत्मीयानालोक्य, स्वयमेवैकाकी सहचरान् प्रतिनिवर्त्य, देवशर्मणः साक्षात्काराय हनुमन्मन्दिरमयासीत्। दुर्गद्वाराद् वहिर्निर्गतमात्र एव च कांश्चिद् दूरत आयातांश्चरानद्राक्षीत्। तैरुक्तम्—

महाराष्ट्र-विश्वम्भरेश्वर! वीराणां महारण्येनेव सिन्धुराणां घटयेव वाजिनां वीचिभिरिव च परिवृतोऽम्बरेश्वरो जयपुर-संस्थापन-निपुणो महाराज-जयसिंहो दिल्लीपक्षं पुष्णन् योद्धुमागत्य, अविदूरत एवोपकारिका आयोज्य, श्वो वा परश्वो वा समरमारिप्सते। अत्रभवन्त एवात्र प्रमाणम्—इति।

महाराष्ट्रराजस्तु "आम्, तदागमन-सूचना दूरचरैः पूर्वमेव दत्ता" इत्यभिधाय, तत्क्षणात् सर्वानपि दुर्गाध्यक्षान् सेनापतींश्च

सोपानैः=अवरोहणीभिः। आकस्मिकः=सहसा-भवः। अज्ञातकारणः= अनवगतहेतुकः। जातवेदसः=तनूनपातः। अकालकुसुमोद्गमः= असमयसुमसमुद्भूतिः। फलम्=भाविशुभाशुभम्। निर्गतमात्रः= निष्क्रान्तप्रायः। चरान्=स्पशान्।

महाराष्ट्रविश्वम्भरायाः=महाराष्ट्रभूमेः, ईश्वर!=अधिनायक!। "रसा विश्वम्भरा स्थिरे" त्यमरः। महारण्येनेव=अरण्यान्येव। उत्प्रेक्षा। सिन्धुराणाम्=गजानाम्। घटयेव=समूहेनेव। वीचिभिरिव=लहरिभिरिव। परिवृतः=समवेतः। अम्बरेश्वरः=आमेर-देशाधीशः। जयपुरस्य=तन्नामकनगरस्य, संस्थापने=निर्मापणे। निपुणः=कुशलः। पुष्णन्=प्रबलयन्। उपकारिकाः=शिबिराणि। आरिप्सते=आरब्धुमिच्छति।

दूरचरैः=दूरभ्रमणशीलैर्गुप्तचरैः। रणसज्जया=सङ्ग्रामोद्योगेन।

रणसज्जयाऽपेक्षितुं सूचयितुमादिदेश । मात्रायामेकस्यां च व्यतीतमात्राया तोरणदुर्गे महानेकः शतघ्नीनिर्ह्रादो जातः । परतश्च युद्ध-सज्जा-सूचकाः सर्वेभ्योऽपि दुर्गेभ्यस्सेनासन्निवेशेभ्यश्च सघर्घराघोषाः, घोरघोराः, घनाघन-निर्घोष-निभाः, तोभनिस्वनाः प्रादुरभूवन् । घोरं घोषममुमाकर्ण्य कथमुद्विग्ना रसनारीति तदितरः को वेत्ति ?

महाराष्ट्रराजस्तु हनूमन्मन्दिरमासाद्य, मारुतिमूर्तिं दण्डासनेन प्रणम्य, देवशर्माणं तत्रैवाऽऽकारयत् । सोऽप्यागतः, साशीर्वादं महाराजेन सह तत्रोपविष्टः पृष्टश्च प्रोवाच-"महाराज ! न भवत्येषोऽग्निदाहः समयं विनैव वासन्तकुसुमोद्गमश्च शुभः, तद् दुष्फलमेतस्य हवनैः, विप्र-पूजनैः, दानैश्च प्रशमनीयम्"-इति ।

महाराजस्तु तदैव मन्दिर-पुरोहितमाहूय, देवशर्म-निदेशानुसारेण हवन-पूजनादिकं विधातुमाज्ञप्तवान् । परतश्च जयसिंह-

---

अपेक्षितुम्=प्रतीक्षितुम् । आदिदेश=आज्ञप्तवान् । मात्रायाम्=सार्धपलद्वये, "मिनट" इति लोके ख्यातिः । व्यतीतमात्रायाम्=समाप्तप्रायायाम् । शतघ्नीनिर्ह्रादः=तोभगर्जनम् । युद्धसज्जासूचकाः=सङ्ग्रामसन्नद्धताबोधकाः । सेनासन्निवेशेभ्यः=सैनिकशिबिरेभ्यः । घोषाः=शब्दाः । घनाघननिर्घोषनिभाः=वर्षुकमेघध्वनितुल्याः । तोभनिस्वनाः=शतघ्नीरवाः । "णभतुभ हिंसायाम्"-इत्यस्माद् घञि तोभः । लोके "तोप" इति । तदितरः=रसनारीभिन्नः । को वेत्ति, काक्वा न कोऽपीत्यर्थः । अथवा ब्रह्मा वेत्तीति । कः=ब्रह्मा ।

मारुतिमूर्त्तिम्=हनूमत्प्रतिमाम् । दण्डासनेन=साष्टाङ्गपातम् । प्रणम्य=नमस्कृत्य । एवम्भूतः प्रणामो योगशास्त्रे प्रसिद्धः । समयं विनैव=वसन्तकालाभावेऽपि । वासन्तकुसुमोद्गमश्च=माधवीप्रसूनप्रादुर्भूतिश्च । दुष्फलम्=असत्फलम् । हवनैः=होमैः, विप्राणां पूजनैः=सेवनैः । दानैः=वितरणैः ।

युद्ध-विषये पृष्टवान्। देवशर्मा तु 'महाराज! एतेन समरेऽनुष्ठितेऽवश्यं महाराष्ट्राणां पराजय', इति सर्वथा सन्धातव्यम्' इत्याह।

महाराष्ट्रेश्वरोऽपि चिरं चिन्तयित्वा "सत्यम्, बहुतरैर्युद्धैः साम्प्रतं स्थगिता मे सेना, वीराश्च केचन सुरतदेशे, केचित् कल्याणदेशे, अपरे सामुद्रकेष्वनूपेषु, कच्छेषु द्वीपेषु च, नवाऽसादितराज्यं प्रबध्नन्ति, समायातश्च महत्या सेनया वीरराजः, कुशलाऽस्य सेना, दूरदर्शी च जयपुरेश्वरोऽस्ति, तत्सम्भाव्यते तादृक्षमेव। यथोच्यतेऽत्रभवता तथैव विधातुं यतिष्ये"–इत्यवदत्।

देवशर्म्मा–विजयतां महाराजः!

महाराष्ट्रराज –[प्रणम्योत्तिष्ठन् देवशर्म्माणं निपुणं निरीक्ष्य] दैवज्ञशिरोमणे! सदैव भवानस्मच्छुभं चिन्तयति, आशिषो वदति, ग्रहनक्षत्रादि-गणनैः फलकथनैः सदुपदेशैः साहाय्यं च विदधाति, तत्कथ्यतां कथमस्माभिरानृण्यमासादनीयम्?

देवशर्म्मा—महाराज! सर्वथा सुखी वर्त्ते। न किमपि याचनीयम्।

महा०—तथाऽपि।

देव०—वेत्ति महाराजोऽहं गौरसिंहस्य पुरोहित इति।

अनुष्ठिते=कृते। सन्धातव्यम्=सन्धिः कर्त्तव्यः। स्थगिता=श्रान्तिं गता। सामुद्रकेषु=समुद्रान्तरालवर्त्तमानेषु। अनूपेषु=जलप्रायेषु। कच्छेषु=एकतो भूमिसम्पर्कवत्सु सर्वतश्च जलवत्सु। द्वीपेषु=उभयोर्दिशोर्जलयुतेषु, सर्वतो जलयुतेषु च। नवासादितराज्यम्=नूतनलब्धराष्ट्रम्। उपनिवेशमिति यावत्। प्रबध्नन्ति=प्रबन्धं कुर्वन्ति। कुशला=निपुणा, सुशिक्षितेति यावत्। दूरदर्शी=विशेषविचारकः, नतुशास्तिखानादिवन्मद्यादिनिरतः।

दैवज्ञशिरोमणे!=मौहूर्तिकश्रेष्ठ! साहाय्यम्=सहायताम्। एतदेव ब्राह्मणकर्तृकं देशकार्यमिति वेदितव्यम्।

वर्त्ते=तिष्ठामि। याचनीयम्=भिक्षितव्यम्।

महा०—सर्वं श्रुतवानस्मि भवतामितिवृत्तम् ।

देव०—गौरस्य भगिनी मयैव लालिता, पालिता, मयैव च साम्प्रतमपि रक्ष्यते ।

महा०—अवगतमस्ति ।

देव०—तस्या एव विवाहार्थं वयं सर्वेऽपि चिन्ताऽऽकुला इति कमिव निवेदयाम ऋते प्रभुवर्यात् !

महा०—वरः कोऽपि स्थिरीकृतः ?

देव०—[सनिश्वासम्] राजन् ! पित्रा यस्मै दातुं प्रतिज्ञातमसीत् ; स क्वास्तीति न ज्ञायते, किन्तु ज्यौतिष-गणितेनैतद्देश एव सम्प्रति तत्स्थितिरनुमीयते । तत्पिता च कलितमुनिवेषो वीरसिंहोऽपि प्रभुमेवोपजीवति ।

महा०—आ ! एवम् , स्मृतमखिलम् । गौर-द्वारा तदपि श्रुतवानस्मि ।

देव०—तद् यथासम्भवं स एव प्रनष्टो वीरसिंह-पुत्रो रामसिंहोऽन्वेष्टव्यः, यथा बहूनां स्याज्जीवनम् , अन्यथा तु यथोचितमाचरितु प्रभव एव प्रमाणम् ।

महा०—देव ! तामहं निजामेव दुहितरं मन्ये । तद् जयसिंह-सेना-समुद्रस्य सन्धिना वा विग्रहेण वा पारं गत्वा, पूर्णैरुद्योगै-

---

अवगतम्=विज्ञातम् । निवेदयाम, लोड्रुत्तमपुरुषबहुवचनम् । "ऋत्यकः" इति प्रकृतिभावः ।

ऋते=विना । तद्योगे पञ्चमी ।

ज्यौतिषगणितेन=भगणचिन्तनेन । अनुमीयते=अनुमानेन निश्चीयते । कलितमुनिवेषः=धारिततपस्विनेपथ्यः ।

प्रनष्टः=क्षुपितः, गोपितात्मेति यावत् । यथोचितम्=उचितानतिक्रमणपूर्वकम् ।

दुहितरम्=तनयाम् । सन्धिना=मेलेन । विग्रहेण=सङ्ग्रामेण ।

वीरसिंहपुत्रं परिमार्गयिष्यामि। दैवादसफलोद्योगश्च कस्मैचिदन्यस्मै योग्याय वराय स्वहस्तेन वितरिस्यामि। मा स्म भूदत्र सन्देह आर्यस्य। आज्ञाप्यतामधुना, प्राप्तकालं यते, प्रणमामि—

इत्युक्त्वा, आशिषो गृहीत्वा प्रचलितो महाराजः सिंहदुर्गमागत्य, स्वविश्वास-पात्रं स्तन्यजीवम् माल्यश्रीकम् स्वं वृद्धं पुरोहितं च सन्धिवार्त्ताः स्थिरयितुं बहुश एवमेवमिति कर्णे कथयित्वा, [illegible] साक्षात्कर्तुं विससर्ज। महाराजानुमतो भूपणकविरपि [illegible] जयसिंहशिबिरमुद्दिश्य चलित। ।

तौ च महाराज-जयसिंहेनाऽऽलप्य, आगत्य च, महनीयमहोभिर्महितं महाराष्ट्र-मही-महीश्वरं समासाद्य, एकान्ते प्रावोचताम्—महाराज! भूपणकविना सहितावावां द्वावपि पण्डित-वेषमाकलय्य, महाराज-जयसिंहस्य शिबिरं गतौ। सोऽस्मत्संवादं प्राप्यैवान्तः प्रवेष्टुमाजिज्ञपत्। अस्माभिस्तु प्रविश्यैव साशीराशि तन्निर्दिष्टस्थाने स्थितम्। भूषणकवेः पूर्वपरिचित इति प्रथमं तेनैव मुहूर्तमालपत्। भूपणकवि-मुखेन श्रीमत्प्रशंसामयीं व्रजभापा-कवितां श्रुत्वा समधिकममोदिष्ट। युष्मद्दत्तं तत्पारितोपिक-वृत्तान्तमाकर्ण्य, भूषण-द्वारा तत्समभिव्याहारेणैव महाकवेः सप्तशती-कारस्य विहारिणः

परिमार्गयिष्यामि=अन्वेषयिष्यामि। वितरिष्यामि = दास्यामि। प्राप्तकालम् = अवसरोचितम्। यते = करोमि।

स्तन्यजीवम् = "तानाजी"-नाम्ना प्रसिद्धम्। स्वम् = आत्मीयम्। साक्षात्कर्तुम् = द्रष्टुम्। तत्साहचर्येण=महाराजसहगमनेन।

महनीयमहोभिः=वन्दनीयतेजोभिः। प्रावोचताम्=उक्तवन्तौ। महितम्=पूजितम्। प्राप्यैव=लब्ध्वैव। न विलम्बितवानिति यावत्। अमोदिष्ट=प्रसन्नतामन्वभूत्। तत्समभिव्याहारेण=तत्कथनेन। सप्तानां शतानां समाहारः सप्तशती। "सतसई" इति प्रसिद्धा। गाथासप्तशत्या अनुवादभूता बिहारिकवितेयमित्यालोचकशिरोमणयः। यद्यप्यनुवादे

प्रशंसाविशेषं श्रुत्वा चाधिकं ह्रीण इवाभूत् । तत इतरान् भ्रूसंज्ञया स्थानं निर्मक्षिकयितुं सूचयित्वाऽस्मदभिमुखो बभूव । महाराज ! किमिव कथयावः, व्यर्थ एवाभूत्तदग्र आवयोः पाण्डित्याऽऽडम्बरः ! स तु स्वयमेव शास्त्रज्ञः, ज्योतिषां निगूढं तत्त्वं वेवेत्ति । कानिचिदेव वर्षाणि व्यतीतानि; यत्तेन ज्योतिर्यन्त्रालया वाराणस्यादि-प्रसिद्ध-स्थानेषु व्यरचिषत । अथ क्षणानन्तरं स्वयमस्मानपृच्छद् युद्धविषये । किमधिकं कथ्येत ? चिरमालपितमस्माभिः, किन्तु दृष्टं यज्जयसिंहोऽयं नापजलखानः, न शास्तिखानः, न वा यशस्विसिंहः, यः कथमपि वशयितुं शक्येत । यद्देशीया गौरसिंह-सदृशा अल्पवयस्का अपि नीतिमर्मज्ञाः, किं नाम कथनीयं स्यात् तद्देशीय महाराजानां विषये ? स प्रबलया सेनया समायातोऽस्ति, शीघ्रमस्मद्दुर्गरोधं विधित्सति ।

"कविरनुहरतिच्छायामि" ति नास्ति, तथाऽपि परं प्रावीण्यं विहारिणस्त-न्निर्माण इति न 'ननु न च' समेतम् ।

ह्रीणः=लज्जितः । महाराष्ट्राधिनाथः कवितामेकां भूषणकवेर्निशम्य सिन्धुराननेकान् ग्रामांश्च ददौ, जयपुराधीशश्च सप्तशतीं निपीयापि दीनाराणा सप्तशतीमेवार्पयदिति लज्जाकारणम् । निर्मक्षिकयितुम्=निर्जनयितुम् । ज्योतिषाम्=भानाम्, खेचराणाम् । निगूढम्=गुप्ततमम् । ज्योतिर्य-न्त्रालयाः=भगणगत्यादिबोधनपराः शालाः । वाराणस्यादिषु=चतुर्षु स्थानेषु वाराणस्यां जयपुरे दिल्ल्यामुज्जयिन्याञ्च । जयपुरं स्वीयं नगरमिति कृत्वा, वाराणसी च सर्वतः श्रेष्ठं हिन्दूनां तीर्थमिति कृत्वा, दिल्ली च सम्राण्नि-वासभूमिरिति कृत्वा, उज्जयिनी च कृष्णकालभवविद्यावीर्थत्वात्सान्दीपनिज-न्मभूमित्वाद् भूमध्यरेखास्थितत्वाच्च स्वीकृतिविषयताङ्गतेति वेदितव्यम् । वारा-णस्यामिद मानमन्दिरनाम्नाऽऽख्यातं दशाश्वमेधघट्टतो नातिदूरे । एतदुत्तर-तश्च शिवराजविजयकर्त्तुर्निवासस्थानमस्ति । वशयितुम्=स्वायत्तीकर्त्तुम् । नीतिमर्मज्ञाः=राजनीतिविशारदाः । विधित्सति=विधातुमिच्छति ।

एकैकशश्च दुर्गाण्याच्छिद्य साकल्येनास्मान् विजिगीपते।

महा०—अपि कथमपि सन्धातुमपि तेनाङ्गीकृतम् ?

माल्य०—भगवन्! स्पष्टीकृत्य तेनोक्तम् यद्—"वृद्धोऽस्मि, क्षत्रियोऽस्मि, द्विर्भाषण न जाने। यदि सन्धित्सते महाराष्ट्रराजः, तद् दिल्लीश्वरस्यापहृत-दुर्गेष्वधिकारस्त्याज्य., करप्रदता चोरी-कार्येति," उक्तवांश्च यद् "नाऽस्मत्त उपधिराशङ्कनीयः। स्वच्छेन हृदा समागत्य महाराष्ट्रराजेन स्वयमेव मया सह स्थिरयितव्योऽयं विषयः"—इति। तदत्र प्रभुचरणा एव प्रमाणम्।

तदाकर्ण्य महाराष्ट्र-धरा-धनी किञ्चिन्निश्वस्य, "तथाऽस्तु, यथोचितं श्वो रात्रौ विधातास्मः" इत्युक्त्वा स्वान्तरङ्ग-मित्र-मण्डल्या सह वहु सम्मन्त्र्य, सर्वेपामपि च विजिघृक्षायामसम्मतिं, सन्धित्सायामेव च सम्मतिमाकलय्य, माल्यश्रीकं पृष्टवान्, "मया तेन सहाऽऽलपितुं कथं तत्सेना-व्यूहं विभिद्य प्रवेष्टव्यम्"—इति।

आच्छिद्य=वलात्स्ववशीकृत्य। साकल्येन=सर्वतो भावेन। विजि-गीपते=जेतुमिच्छति। 'विपराभ्या जेः" इत्यात्मनेपदम्।

द्विः=वारद्वयम्। भाषणम्=कथनम्। सत्यप्रतिज्ञ इति यावत्। अपहृतदुर्गेषु=वलात्स्वायत्तीकृतेषु दुर्गेषु। करप्रदता=राजस्वविश्राण-नम्। अस्मत्तः=अस्मत्सकाशात्। उपधि.=छद्म। चौर्यमिति यावत्। स्वच्छेन=निष्कपटेन। स्थिरयितव्य'=निश्चेतव्यः।

महाराष्ट्रधराया धनी, नतु साम्प्रतं महेश्वरो वाऽऽखण्डलो वाऽधि-नाथो वा। अधुना तु सन्धिपरायणत्वाद्धनी स्यास्यति, स एव चास्तीति कविजनसवेद्योऽर्थः। किञ्चित्=ईषत्। निश्वस्य=उच्छ्वस्य। एतेन न सोऽपि प्रेम्णा सन्धिमकरोत्; अपि तु परिस्थितिवशादिति व्यनक्ति। विधा-तास्मः=करिष्यामः, लुटो रूपम्।

विजिघृक्षायाम्=विग्रहीतुमिच्छायाम् युद्धे। सन्धित्सायाम्=सन्धि-करणेच्छायाम्। तत्सेनाव्यूहम्=तद्वाहिनीरचनाम्। जयपुराधीश्वरस्य,

स उवाच—"भगवान्! जयपुराधीश्वर-मुद्राङ्कितं प्रवेशक-पत्रमानीतवानस्मि—इति न कोऽपि प्रविशन्तं श्रीमन्तं किमपि वक्ष्यति"। ततस्तथा तथेत्युक्त्वा सर्वेऽप्युत्तस्थुः।

परेद्युरहोरात्रद्वयमतीतायां रजन्यामकस्माच्छिबिरान्तरुपविष्टं महाराजमम्बराधीश्वरं प्रतीहारः प्रविश्य प्रावोचत्—"भगवन्! महाशयः कश्चन एकाकी द्वारदेशे वितिष्ठते, पृष्टश्चाऽऽत्मनो नाम शिव इत्येव ब्रूते, तदत्र प्रभुचरणा एव प्रमाणम्"—इति।

महाराजस्तु, "आम्! परिचिनोमि"—इत्युक्त्वा स्वयं द्वार-देशमागत्य बहुशश्चित्रेषु कारुवरैर्लिखितास्तन्मूर्त्तीरदर्शदिति दर्शनसमकालमेव महाराष्ट्रराज इति निश्चित्य, सादरमालिङ्ग्य, अन्तर्निनाय। स्वोपविष्टविष्टरे एव च तमुपवेश्य, तेन सह स्वयमपि स्थित्वा, एवमालपत्।

जयपुरराजः—महाराष्ट्रराज! भवान् एतेन साधारणेन वेषेण स्वयमागत्य मामधिकं सम्मानितवानस्ति इति स्वागतं श्रीमते। अत्र स्वगृहे इव व्यवहरणीयम्, न कोऽपि संशयावसरः।

महाराष्ट्रराजः—महाराजस्यामुना स्नेहेन सनाथितोऽस्मि। महामान्य! यद्यहं स्वगृह इव न व्यवाहरिष्यम्, समधेक्ष्यश्च, तर्हि

मुद्रया=राजचिह्नेन, अङ्कितम् = चिह्नितम्। वक्ष्यति = कथयिष्यति। एतत्स्थलमेव मनसि कृत्वाऽभाणि मनीषिणा मान्येन "कुटजे खलु तेनेहा तेने हा! मधुकरेण कथम्?"

वितिष्ठते, "समवप्रविभ्यः स्थ" इत्यात्मनेपदम्।

परिचिनोमि=जानामि। चित्रेषु = आलेख्येषु। कारुवरैः = चतुरशिल्पिभिः। अदर्शत्=आलोकयत्। सादरम्=सबहुमानम्। आलिङ्ग्य=आश्लिष्य। स्वोपविष्टविष्टरे=स्वाधिष्ठितासने। आलपत्=अभाषत।

सम्मानितवान्=आदृतवान्। व्यवहरणीयम्=व्यवहर्तव्यम्। संशयावसरः=सन्देहस्थानम्।

सनाथितः=सभाजितः। व्यवाहरिष्यम्=व्यवहारमकरिष्यम्। सम-

कथमेकाकी सेना-व्यूह-प्रचण्ड-दुर्गान्तःस्थे शिविरे समागमिष्यम्। परन्तु क्षत्र-वंशावतंसानां भारतीय-महाराजानां युष्मादृक्षाणामुदार-हृदयानां दास एवैष जनः। गतदिवसे द्वौ पण्डितौ श्रीचरणानां समीपमायातौ, यथा च तद्द्वाराऽऽज्ञां लब्धवानस्मि, तथैव चानुष्ठितवानस्मि।

जय०—सत्यम्, पण्डितवेषौ द्वौ भावत्कावायातौ भूषणकविसहितौ।

महा०—[किञ्चिल्लज्जितवान्]

जय०—अस्तु, तद्द्वारा यथा सन्देशं प्रहितवानस्मि, तत्समर्थ्यते भवता ? यदि भवान् सन्दधीत; तद् भवतो विद्रोहाचरणं विस्मृत्य दिल्लीवल्लभो भवन्तं प्रेमपात्रं मन्यते। भवतो रक्षादि-विषये प्रतिज्ञातवानस्मि, स्वीक्रियेत चेत् तथा विदध्याम्। राजपुत्रदेशीयोऽयं वृद्धः, एतदुक्तिवज्रलिपिरिवान्यथा न भवति।

ततस्तृतीयस्य कथयाऽपि रहिते तस्मिन्प्रदेशे तादृशमाकर्ण्य

घेदयम् = सन्देहमकरिष्यम्। सेनाव्यूहेन = वाहिनीरचनया, प्रचण्डे = भीतिप्रदे, दुर्गान्तःस्थे = दुर्गमान्तरालस्थे। क्षत्रवंशावतंसानाम् = क्षत्रियान्वयभूषणानाम्।

आज्ञां लब्धवान् = आदेशं प्राप्तवान्। अनुष्ठितवान् = कृतवान्।

भावत्कौ = भवदीयौ।

लज्जितवान् = शिवेन पण्डिताविल्युक्तम्, जयसिंहश्च पण्डितवेषावित्यभिधाय गूढवेष परिचितवानिति लज्जा।

प्रहितवान् = प्रेषितवान्। सन्दधीत = सन्धि कुर्यात्। विद्रोहाचरणम् = शत्रुताकरणम्। प्रेमपात्रम् = स्नेहाधारम्। विदध्याम् = कुर्याम्। वज्रलिपिरिव = वज्रोल्लिखितेव। अन्यथा = विपरीता। तदिदं वृद्धस्यास्य वृद्धमतेर्भ्रान्तिविलसितमग्रेतनेनोरगजिह्वकर्तव्येन स्फुटीभविष्यति।

कथयाऽपि = नाम्नाऽपि। विमनायमाने = उत्कता गते।

परितोऽवलोक्य किञ्चिद्विमनायमाने इव तूष्णीके महाराष्ट्र-महाराष्ट्र-पतौ, पुनराहाम्बरेश'—

जय०—वीर ! भवानेकाकी अत्र समायात', आत्मानं च समर्पितवानिति ग्लानेन न भाव्यम् । यदैव रोचेत तदैव मदश्व-शालात एकमुत्तममाजानेयमारुह्य सङ्कटे रक्षित एव स्वालयपर्य्यन्तं यास्यति, परतश्च रणाजिरे जयो वा पराजयो भवेत्, किन्तु नास्मत्तो लेशोऽपि विश्वासघातस्य शङ्कनीय. ।

महा०—[तादृशीमुदारा वाचं निशम्य विस्मित इव] महाराज ! त्वं विश्वसिमि, तद्विषये नास्ति मम खेद. ।

जय०—तत्किं ग्लानिमिव वमति मुखमण्डलं भवतः ?

महा०—ग्लानेरनल्पं कारणमस्ति ।

जय०—नात्र पञ्चम' कर्णोऽवधत्ते, तत् स्पष्टमुच्यताम् ।

महा०—वीरवर ! येषां राजपुत्र-देशीय-क्षत्र-कुल-च्छत्राणां प्रतापगानैर्बाल्यं व्यतियापितवानस्मि, यै राजन्वतीयं भारतभूः, ये चैकमात्रमालम्बनं सनातन-धर्मस्य भारत-गौरवस्य भारताभिजन-

---

तूष्णीके=मौनिनि । महाराष्ट्रमेव, महद् राष्ट्रम्, नतु ततो बहिर्भूतं भारतं नाम किञ्चित्, तत्पतौ=तद्रक्षके ।

ग्लानेन=खिन्नेन । मदश्वशालातः=मामकमन्दुरातः । आजानेयम्=अश्वम् । उत्तमपदस्य पृथगभिधानात्, 'आजानेयाः कुलीनाः' इत्यमरः । रणाजिरे=सङ्ग्रामाङ्गणे । लेशोऽपि=मात्राऽपि ।

वमति=उद्गिरति । प्रकटयतीति यावत् ।

अनल्पम्=बहु ।

पञ्चम. कर्ण.=पञ्चाना सङ्ख्याना पूरकं श्रोत्रम् । न कश्चिद् द्वाभ्यामतिरिक्तः शृणोतीति यावत् ।

प्रतापगानै=तेजस्विताप्रकटनपराभिर्गातिभिः । वाल्यम्=शैशवम् । व्यतियापितवान्=क्षपितवान् । राजन्वती=सुन्दरराजसमेता । आलम्बनम्=आधारस्तम्भभूतम् । भारताभिजनस्वातन्त्र्यस्य=भारतदेश-

स्वातन्त्र्यस्य च; तेषामेव महाराजमद्य म्लेच्छानां सेनापतिमवलोकयतो विदीर्यते मे हृदयम् ।

जय०—अपीदमेव कारणं खेदस्य भवतः ? वीर ! यदा तारुण्यमासीदस्मद्देशीय-क्षत्रिय-प्रताप-तपनस्य; तदा यवनराजानां वक्षःस्थलेषु च्छुरिका-लेखनाभिर्भारत-जय-क्रियासमभिहारेणास्माभिरलेखि, किन्तु न सदा समानो व्यत्येति कालः। ग्रीष्मे शोषित-महानदोऽपि भास्करो हिमे हिमकणिकाभिस्तथाऽऽव्रियते; यत्तदवलोकनमपि दुःशकं भवति। तदधुना क्षत्रिय-प्रतापस्य वार्द्धक्य-समयः—इति दैवघटनयाऽस्माकं पारवश्यं सम्पन्नमस्ति । न जानीमहे कदा वा कल्पपरिवर्तनं भविता, यदा पुनः स्वातन्त्र्य-सुखमासादयेद् भारतं वर्षम् । नाधिकमस्मिन् विषये वचनीयम्, यतः सर्वमवगतं वीरस्य ।

महाराष्ट्र०—आर्य ! अवगतमस्ति, अत एव च पृच्छामि-यद् यैः सहैव चिरन्तनो वृद्धो द्वेषः, कथमद्य तदाज्ञा शिरसा धार्यते ?

स्वतन्त्रतायाः । विदीर्यते=भिद्यते ।

तारुण्यम्=यौवनम् । अस्मद्देशीयक्षत्रियाणां प्रताप एव तपनः=खेचरचक्रवर्त्ती, तस्य । छुरिका =असिधेनुका एव, लेखन्य =लिपिसाधनानि, ताभिः । रूपकम् । क्रियासमभिहारेण=वारं वारम् । समानः=एकविधः । शोषितमहानद.=शुष्कीकृतमहाजलाधारः । हिमे=शीतर्तौ । हिमकणिकाभि =प्रालेयखण्डैः । आव्रियते=आच्छाद्यते । तदवलोकनम्=तद्दर्शनम् । वार्द्धक्यसमय =वृद्धत्वकालः । दैवघटनया=भाग्यचक्रेण । पारवश्यम्=पारतन्त्र्यम् । यत एवेय शिक्षा राजनीतौ कृतपदा तत एव भारतेपारतन्त्र्यशृङ्खला द्रढिमानमासादितवतीति न विस्मर्त्तव्य वृद्धोक्तिपठनपरैः । कल्पपरिवर्त्तनम्=समयपरावृत्तिः । वचनीयम्=वक्तव्यम् ।

वृद्धः=वृद्धिं गतः, द्वेषः=शत्रुता ।

जय०—मन्ये, जानीते भवान्; यदस्माकं सत्य-प्रतिज्ञताया महान् पक्षपातः।

महा०—आम्! जाने।

जय०—तदा यदा वैरमासीत् तदा रणाङ्गणमासाद्य निष्कृप-कृपाण-प्रहारैर्यवन-कूट-कोटि-कन्धरा-कोष्ण-रक्त-प्रवाहैस्तुन्दिलीकृता भगवती चण्डिका, यदा च कैरपि कारणैर्वशंवदताऽङ्गीकृताः तदाज्ञां वहामि। राजपुत्रदेशीय-क्षत्रियाश्छद्मना न कुर्वन्ति विद्रोहाचरणम्।

महा०—किं सदा सर्वैः सत्यं पालनीयम्?

जय०—आः! किं कथ्यते? अत्रापि सन्देहः? किं महाभारते जरासन्धस्य, अर्जुनस्य, युधिष्ठिरस्य वा न श्रुतानि कथानकानि? राजपुत्रदशीय-क्षत्रियाणां कि नाश्राविषतेतिहासा भवता? अस्माकं कथनमेव पत्रम्, कथनमेव च मुद्रा।

महा०—सत्यम्, किन्तु मरुधराधीश्वरो महाराज-श्रीयशस्विसिंहोऽ-

सत्यप्रतिज्ञतायाः=सत्यसन्धतायाः।

वैरम्=शत्रुत्वम्। निष्कृपकृपाणप्रहारैः=निर्दयासिताडनैः। यवनकूटकोटेः=म्लेच्छसमूहकोटेः, कन्धराभ्यः=ग्रीवाभ्यः, कोष्णस्य=ईषदुष्णस्य, रक्तस्य, प्रवाहैः=धाराभिः, तुन्दिलीकृता=स्थूलोदरीकृता, चण्डिका=महामाया। वशंवदता=अधीनता। छद्मना=कपटेन। विद्रोहाचरणम्=शत्रुताव्यवहारम्।

न श्रुतानि=न कर्णगोचरीकृतानि। कथानकानि=चरितानि। जयसिंहेन कथानकानि श्रुत्वापि दुरर्थतयैवाध्यवसितानीति विदुषा सम्मतिः। सर्वैरेवैभिर्महाभारतख्यातैः कूटनीतिराश्रिता, किमपरं युधिष्ठिरोऽपि 'अश्वत्थामा हत' इत्यभिधाय तामेवाशिश्रयदिति न तिरोहितं विशेषु। ईदृशा एव हि धर्ममापाततः श्रुत्वाऽन्यथयन्ति खेदयन्ति च भारतभुवमिति किमधिकम्। अश्राविषत=श्रुताः। मुद्रा='मुहरबन्द' इति भाषा।

ह्योऽपि सनातनधर्मं रक्षायाः प्रधान एव यामिकः। स तु सनातन-धर्म-रक्षायै यवन-वंशावतंस-ध्वंसं चिकीर्षन्नस्मत्सहयोगमकार्षीत्, तत्साहचर्यञ्चात्याक्षीत्।

जय०—श्रुतमस्माभिः, यदवधि मरुराजः सिप्रातीरे दिल्लीश्वरेण विजितः, तदवधि बहिः सन्धि दर्शयन्नन्तर्द्वेष्टीति। परं छलमिदं गर्हितमनुष्ठितं तेन।

महा०—अथ किं म्लेच्छानां भारत-विद्रोहिणामप्यपकारः स्वदेशीयानां च साहाय्यं गर्हितं कार्यम्?

जय०—मम तात्पर्यं न बोबोद्धि भवान्। ननु कथयामि छलं गर्हितम्। यदि स प्रत्यक्षतो विरोधमनाच्छादयन् समयोत्स्यत, दिल्लीश्वरं विजित्य यौधिष्ठिर-ध्वजाधारे धरातले ध्वजमुद्धूनयिष्यद्, भारत-स्वातन्त्र्य-पोत-कर्णधार-धुरामवक्ष्यत्, समराङ्गणे प्राणानत्यक्ष्यत्; मार्तण्ड-मण्डलमभेत्स्यत्; सकुसुमवृष्टि दिव चासनाथयिष्यत्, तत् तद्यशोगीति-गानै राजपुत्रदेशः समपूरयिष्यत। परं यदवधि स च्छलमकार्षीत्; तदवधि बाला अप्यस्मद्देशीयास्तं निन्दन्ति। वीर! यदि सत्येन स्वधर्म-रक्षा न भवति,

---

यामिकः = प्रहरी। अत्याक्षीत् = उदसृजत्।

अन्त = अभ्यन्तरे। द्वेष्टि = शत्रुता करोति। छलम् = कपटम्। गर्हितम् = निन्दितम्।

अपकारः = अपकृतिः।

बोबोद्धि = अतितरां जानाति। अनाच्छादयन् = अगोपयन्। समयोत्स्यत = युद्ध व्यधास्यत्। यौधिष्ठिरस्य = युधिष्ठिरसम्बन्धिनः, ध्वजस्य, आधारे = स्थितिभूमौ। उद्धूनयिष्यत् = उदस्थापयिष्यत्। भारत-स्वातन्त्र्य-पोतकर्णधारधुराम् = हैन्दव-स्वतन्त्रता-नौ-नाविक-भारम्। अवक्ष्यत् = अधारयिष्यत्। सकुसुमवृष्टि = सकुसुमवर्षणम्। दिवम् = स्वर्गम्। असनाथयिष्यत् = अभूषयिष्यत्। तद्यशोगीतिगानैः = तत्कीर्त्तिगीतिकागीतिभिः। समपूरयिष्यत = परिपूर्णोऽभविष्यत्।

तत्किमसत्येन सम्चोभवीति ? यदि च प्राण-दानैरपि स्वदेशो दुराचारात् त्रातुं न शक्यते, अथ च्छलेन शक्यते ? कुलीनाः प्राणानगणयन्तो धर्मं रक्षन्ति, न तु कपटाचरणैर्धर्मं विघट्टयन्ति ।

महा०—[किञ्चित् कुपित इव] वीरवर ! वयमपि धर्मार्थमेव प्राणान् न गणयामः, महाराष्ट्रा अपि भीरवो न सन्ति, महाराष्ट्रा अपि स्वार्थं न कुर्वन्ति सङ्ग्रामम्, किन्तु काश्यादिस्थानेषु विहितानत्याचारान् श्रावं श्रावं कर्णौ स्फुट्येते, हृदयं च विदीर्यते—इति न शक्यते सोढुमिति यथासामर्थ्यं सम्मुखं परतश्च युक्तिभिरपि विजयामहे । धन्यं युष्माकं सत्यम् ! यदवलम्ब्य काशीस्थ-विश्वनाथ-बिन्दुमाधवादि-मन्दिर-मूलच्छेद-कौतुकिनो व्यर्थ-हत्या-काण्ड-व्यसनिनो लम्पटाः प्रबलीक्रियन्ते । युष्मादृशैरेव वीरवरैर्गौराङ्ग-विहित-हरिकीर्त्तन-पूता वङ्गभूमिर्म्लेच्छ-हतकानां हस्ते समर्पिता, अधुना गवां ब्राह्मणानां च रक्तैः स्नाति । महाराज ! दृश्यतां धर्मशास्त्रम्, हत्या-साहाय्यमपि हत्या-विशेष एव ।

जय०—वीर ! वर्द्धस्व । शास्त्र-श्रवणैरेव केशाः श्वेतिताः सन्ति, न त्वातपतापेन । तत्र न बहु वचनीयम् । किन्तु

कुलीनाः=सत्कुलप्रसूताः । विघट्टयन्ति=मर्दयन्ति ।

भीरवः=भयभीताः । स्वार्थम्=स्वीयप्रयोजनाय । स्फुट्येते=विद्धयेते । परतः=ततः परम् । युक्तिभिः=छद्मादिशब्दव्यपदेश्यैस्तन्त्रैः । लम्पटाः=परस्त्रीपातिव्रत्यध्वंसकाः । गौराङ्गेण=महाप्रभुणा, विहितेन=सम्पादितेन, हरिकीर्त्तनेन=भगवद्यशोगानेन, पूता=पवित्रा । हत्यायाः साहाय्यम्=साहायकम् । हत्याविशेषः=मारणभेदः ।

"अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी" इत्यादिना सहायकादीनामपि घातकत्वं धर्मशास्त्रकारैर्विस्पष्टमङ्गीकृतम् ।

शास्त्रश्रवणैः=श्रुत्यादिश्रुतिपथानयनैः, केवलं श्रवणमेव कृतं नार्थो व्यज्ञायीति कवेर्व्यङ्ग्यम् । आतपतापेन=घर्मतपनेन । तत्र=शास्त्रविषये । न बहुवचनीयम्=नाधिकं वक्तव्यम् । परास्तानामेष पन्था योऽ-

प्रवञ्चनं नाङ्गीचिकीर्षत्येष वृद्धः ।

महा०—[क्षणं तुष्णीं स्थित्वा] महाराज ! तत्किं सदा यवन-पद-दलितयैव स्थास्यते हृतभाग्यया भारतभूम्या ? दन्दल्यमानेनैव वर्तिष्यते चातुर्वर्ण्येन ? बम्भज्यमानेनैव वा भविष्यते सनातनधर्मेण ? अहह ! अस्मदीये कोङ्कणदेशे कोटिशो जनाः सुखेन स्वधर्ममनुतिष्ठन्ति, भेरीराहत्य सनातनधर्मस्य जयमुद्घोषयन्ति, चन्द्र-चुम्बि-कलशाग्रेषु माधव-मन्दिरेषु च सशङ्खवादमारार्तिक-महोत्सवान् अनुभवन्ति, किन्तु निखिलमिदमद्य श्रीमता संशयमारोपितम् । यदि वशंवदतामङ्गीकुर्याम्; तदधुनैव सुखेन यवनाः प्रविश्य प्रतिमन्दिरं पार्श्वतो मस्जिदस्थानानि निर्माय कलहमारप्स्यन्ते । यदि भवताऽऽहवद्यूतमूरीकुर्य्याम्; तत् प्रथमं भगवती भारतभूः, ब्राह्मणानां क्षत्रियाणाञ्च मांस-रुधिर-कर्दमेन पङ्किला भवित्री, परतश्च भवादृशेषु भारतरत्नेषु प्रजामण्डलं निष्कण्टकीकृत्य यवनराजहस्ते समर्पितवत्सु, पुनस्तदेव मन्दिर-मर्दनम् ,

---

नुद्यतो जयसिंहेन विषयमनभिधाय स्वबोधख्यापनात्मा । प्रवञ्चनम्= धौर्त्यम् । नाङ्गीचिकीर्षति = नोररीकर्तुमिच्छति ।

यवनाना पदेन दलितया=मर्दितया । हृतभाग्यया=भागधेयविरहितया । भारतभूम्या = हैन्दवधरिञ्या । दन्दल्यमानेनैव=अतितरा दलनमधिगच्छतैव । चातुर्वर्ण्येन=चतुर्णां वर्णाना समाहारः चतुर्वर्णम्, तदेव चातुर्वर्ण्यम्, तेन । स्वार्थे ष्यञ् । बम्भज्यमानेनैव=अतितरा त्रुट्यमानेनैव । जयम्=विजयम् । उद्घोषयन्ति=प्रकटयन्ति । चन्द्रचुम्बिकलशाग्रेषु=शशिसंसर्गिशृङ्गेषु । सशङ्खवादम्=कम्बुवादनपुरस्सरम् । आरार्तिकमहोत्सवान् = आरार्तिक्यमहोद्भवान् । पार्श्वतः=समीपे । आरप्स्यन्ते=उपक्रमिष्यन्ते । आहवद्यूतम्=युद्धकपटम् । मांसरुधिरकर्दमेन=मांसरक्तपङ्केन । पङ्किला=कर्दमभरिता, निष्कण्टकीकृत्य=शत्रुशून्य विधाय । मन्दिराणां मर्दनम्=पातनम् ।

तीर्थमन्थनम्, वेदच्छेदनम्, धेनुध्वंसनं च पदे पदे संवर्त्स्यते। अहह! प्राणानगणयित्वा रक्षितोऽपि मयाऽयं देशोऽद्य भवच्चन्द्र-ह्रास-चन्द्रिका-चुम्बितोऽसाध्येन दुर्दशा-ज्वरेणोल्लीढः। किमिव करोमि? महाराज! पूर्वं जहि मां तीक्ष्णेन च्छुरिकाग्रेण, परतश्च देशमिमं यवनहस्तगतं विधास्यसि। [इति कथयन् काश्चिदश्रुबिन्दू-नपातयत्]

जय०—[तदाकर्ण्य, स्वयमपि ग्लान इव, मुखं परिवर्त्य, चक्षुषी सम्मर्द्य] महाराष्ट्रराज! "भवितव्यं भवत्येव नारिकेलफलाम्बुवत्"। तदलं महता शोकेन। दृश्यताम्—किं किं न कृतं राजपुत्रदेशीयैः क्षत्रियैः? किन्तु ये युद्धक्षेत्रे धारातीर्थे करप्रदताग्लानिं चिक्षाल-यिषन्तो जीवनमपि तृणाय मन्यमाना देहमपातयन्; तेषां पुत्रपौत्रा अधुना करप्रदाः संवृत्ताः। प्रबलैः सह विरोधो न भवत्येव सुख-करः। यदि भवान्मामपि युद्धे हन्यात्; तत् सम्राजा कश्चन परः सेनानीः प्रेषयिष्यते, तस्मिन्नपि च दैवाद्धते, अपरोऽपरः समाया-स्यति–इत्येवं न सम्भवत्यन्तो महाराष्ट्रदेशदुर्दशायाः! यत्र च चिरं युद्धानि भवन्ति; तत्रैव प्रायशो रोगा आपतन्ति, तत्रैव दरिद्रता पदमादधाति, तत्रैव च क्रमशः सर्वं महार्घतामाप्नुवद् भयानकं दुर्भिक्षं जनयति–इति चिर-युद्ध-हतोत्साहाः प्रजा भटाश्च हतोत्साहा

वेदानां छेदनम्=भेदनम्। धेनूनाम्=पयस्विनीनाम्, ध्वंसनम्=हननम्। संवर्त्स्यते=सम्भविष्यति। भवच्चन्द्रहासचंद्रिकाचुम्बितः=भवदसिकौ-मुदीस्पृष्टः दुर्दशैव ज्वरः तेन। उल्लीढः=आघ्रातः। जहि=मारय। तीक्ष्णेन=खरतरेण।

ग्लान इव=गतहर्ष इव। नारिकेलफले यथाऽन्तराले, अम्बु=जलम्, तद्वत्। "गन्तव्यं गुप्तकं याति गजभुक्तकपित्थवत्" इत्युत्तरार्द्धम्। करप्रदता-ग्लानिम्=राजस्वविश्राणनमालिन्यम्। चिक्षालयिषन्तः=क्षालयितुमभि-लषन्तः। करप्रदाः=राजस्वदायिनः। सेनानीः=वाहिनीपतिः। महार्घ-ताम्=बहुमूल्यप्राप्यवस्तुताम्। दुर्भिक्षम्=अकालम्। चिरयुद्धहतो-

भवन्ति—इतीदृशेष्वेवावसरेषु सन्धी राजधर्म.।

महा०—[क्षण विमृश्य] महाराज ! भवान् वृद्धो दीर्घदर्शी राजधर्म्म-मर्म्मज्ञश्चेति मामप्यनुशास्तु । नाहं यवनरुधिरतृपितं खड्गं राजपुत्र-देशीय-क्षत्रिय-रक्तैरारक्तयितुमिच्छामि, न वा मम सहचराः स्वबान्धवाविशेषैर्भावत्कैर्योद्धुमुत्सहन्ते । तद् यदाज्ञाप्यते, तदेव मे शिरोधार्यम् । यथा श्रेयो भवति तथैवानुशास्योऽयमनुगत.।

जय०—वीर ! सन्धिरेव श्रेयान् । कोङ्कणदेशे धर्मविप्लवोऽपि चैवं नाऽऽशङ्कनीयः । यतो भवान् केवलं करं दास्यति, स्वप्रजाश्च स्वयमेव पालयिष्यति ।

महा०—यदि ते बलान्मम शासने हस्तं क्षिपेयुः !

जय०—मा भैषीः । अहं प्रतिजाने न भविष्यति तथा, यथा राजपुत्रदेशीयभूपेषु करप्रदेष्वपि तत्र न हस्तक्षेप एषाम्; तथाऽत्रापि संवर्त्स्यति ।

महा०—महाराज ! बाल्येऽहं चिरं स्वप्नानपश्यम्—यद्, दुराचारैर्म्लेच्छैः सह प्रतियोद्धुं स्वदेशस्य स्वातन्त्र्यं धर्मञ्च रक्षितुं मां स्वयं भगवती दुर्गाऽऽदिशतीति । तादृश-स्वप्नावलोकन-वर्द्धितोत्साहः क्रमेण यदकरवम्, तन्मन्ये तिरोहितं नास्ति श्रीमन्निकटे । तदधुना विमूढ इव पृच्छामि, कीदृशा मे स्वप्नाः ? कीदृशं चानुष्ठितवानस्मीति ?

त्साहा' =दीर्घसङ्ग्रामविधुतसाहसाः। सन्धि", मूले "रो रि" लोपे 'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः' इति दीर्घे च दीर्घप्रयोगः ।

अनुशास्तु=अनुज्ञा ददातु । यवनरुधिरतृपितम्=म्लेच्छरक्तपिपासितम् । आरक्तयितुम्=लोहितीकर्तुम् । स्वबान्धवाविशेषैः =निजभ्रातृकल्पैः । उत्सहन्ते = सनद्धा भवन्ति । शिरोधार्यम्=शीर्षग्राह्यम् । श्रेयः =कल्याणम् । अनुशास्यः=उपदेश्यः । 'अनुगत' =अनुयायी ।

प्रतिजाने = प्रतिज्ञा करोमि ।

तिरोहितम्=अज्ञातम् । विमूढ इव=गतमनीष इव । अनुष्ठितवान् = कृतवान् ।

जय०—वीर! अस्मद्देशे स्त्रियोऽपि तव गीतीर्गायन्ति, भारतस्य सुपुत्रोऽसि, भारतस्य रत्नमसि, आर्यवंशस्य ध्वजोऽसि। सत्यास्ते स्वप्नाः। अनुपमं तवोद्देश्यम्। भगवती सफलयतु तव मनोरथान्।

महा०—राजन्! प्रतिदिनं वर्द्धमाने यवन-प्रतापे कथं स्युः सफला मनोरथाः?

जय०—वीर! क्वास्ति वर्द्धमान. प्रतापः? एषां दुराचारकीटैरेवायं जर्जरितान्तःसारः सवर्तितोऽस्ति, तन्निश्चितामिमां वाचमवगच्छ, मौद्गल-राज्यं न चिराय स्थास्यति। इदमधुनैव महापातकै. कृत्तमूलं संवृत्तमस्ति। परतश्च प्रतिदिनमेतस्य क्षयः—इति काशीस्थ-बिन्दुमाधव-विश्वनाथादि-मन्दिर-समापस्थ-महामज्जित-स्थानेषु घूङ्कारैर्घूका घोरं घोषं विधास्यन्ति, वरटाः सरटाः करटाश्च क्रीडिष्यन्ति, तैलपायिकाश्च विष्ठाभिर्मलिनयिष्यन्ति।

महा०—दीनबन्धो! भवादृशेषु सहायेषु कथमेव सम्भवति?

जय०—अहं वृद्धोऽस्मि। न चिरं जीवामि। यावतीनां प्रजानाञ्च हृदये जाज्वल्यते वैरवह्नि.। एतदीया मण्डलशासका अनुचरा

अनुपमम्=अतुलम्, उपमारहितम्।

वर्द्धमाने=एधमाने।

दुराचारा एव कीटाः=क्षुद्रजीवाः, तैः। अयम्=प्रतापः। जर्जरितान्तःसारः=विध्वस्ताभ्यन्तरिकबलः। सवर्त्तितः=कारितः। महापातकैः=अहिंस्यहिंसनादिभिः। कृत्तमूलम्=छिन्नाधारम्। क्षयः=विनाशः। घूङ्कारैः=घूंशब्दैः। घूकाः=उलूकाः। घोरम्=अश्राव्यम्। घोषम्=रवम्। वरटा.=हंसयोषितः। सरटाः=कृकलासाः। करटा.=काकाः। क्रीडिष्यन्ति=क्रीडा विधास्यन्ति। तैलपायिकाः=जतुकाः। "जतुका जिनपत्रा स्यात्परोष्णी तैलपायिके" त्यमरः। विष्ठाभिः=गूथैः। मलिनयिष्यन्ति=मलिनतामानयिष्यन्ति। सफलीभवतादाशीरियं वृद्धस्य कवेश्चेति महामायामभ्यर्थयामः।

यावतीनाम्=समस्तानाम्। मण्डलशासकाः=भूखण्डरक्षकाः,

अपि गूढं विद्विषन्ति। कथं शासनमूरीकरणीयमिति बहुश एनं पत्रद्वारा बोधितवानस्मि। नैपोऽस्मदुपदेशाञ्छृणोति, प्रजाः पीडयति, बान्धवेष्वपि वैरायते, निज-धर्म-धुर्याणां मौलिवीनामपि च न कर्णे करोति वाच। आसन्न-विनिपातानि भवन्तीदृश-शासकाध्युषितानि सिंहासनानि।

महा०—शान्तं पापम्! प्रतिहतममङ्गलम्!! चिरं जीवतु महाराजः!! [क्षणं द्वावपि तूष्णीकौ स्थितौ, परतश्च पुनः किञ्चिद्विचार्य प्रोवाच महाराष्ट्रराजः] अहं चिरमयुध्ये—इति दिल्लीश्वरः कथं मैत्र्या वर्तिष्यते—इति संशये।

जय०—भवन्तमतिमात्रमित्रं मंस्यते दिल्लीश्वरः, यदि भवान् तस्य किमपि कार्यं साधयेत्।

महा०—किं तत्?

जय०—कार्यत्रयमुपस्थितमस्ति।

महा०—किं किम्?

जय०—प्रथमतस्तु गोलखण्डमायाते दिल्लीश्वरे तत्समीपमागच्छन्ती तद्दुहिता श्रीमती रसनारी मार्ग एव कैश्चन लुण्ठकैरपहृता, साऽन्वेषणीया।

"सूबेदार, नवाब" इत्यादिपदवाच्याः। गूढम्=अप्रकटम्। विद्विषन्ति=शत्रुत्वमाचरन्ति। पत्रद्वारा, महाराजजयसिंहेन "अवरङ्गजीवं" सम्बोध्य लिखितमेकं पत्रं तन्मुद्राङ्कितं काशीस्थाग्रवालश्रेष्ठिरामनारायणदासमहोदयानां निकट आसीत्। तद् यथास्थितं भारतेन्दुहरिश्चन्द्रमहाशयेन प्राप्तम्, तच्च शिवराजविजयकारेण साक्षादवलोकितम्, भारतेन्दुना च निजे "बादशाह दर्पण"-नामधेये पुस्तके प्रकाशितमिति मूलकारानुमोदिता च टिप्पणी। बान्धवेषु=भ्रातृषु। अवरङ्गजीवकर्तृकं भ्रातृवधादि नातितिरोहितमितिवृत्तविदाम्। आसन्नविनिपातानि=सन्निकटविनाशानि।

अयुध्ये=समग्रामयम्, लड्डूत्तमपुरुषे। मैत्र्या=मित्रतया। वर्तिष्यते=व्यवहरिष्यति। संशये=सन्दिग्धे।

महा०—[मनस्येव प्रसीदन्] द्वितीयम् ?

जय०—द्वितीयतो भवतैव सह योद्धुं प्रस्थितो राजकुमारो मायाजिह्वः कुत्राप्यटवीष्वपभ्रष्टः, स तु नाद्यापि लब्धः-इति सोऽपि मार्गणीयः ।

महा०—[मनसि स्मयमान इव] आम् ! तृतीयम् ?

जय०—तृतीयतस्तु विजयपुरेश्वरेणाऽऽहवोऽनुष्ठेयः ।

जय०—[सहर्षम्] एतत् त्रयमपि साधयिष्यामि ।

महा०—इतोऽप्यधिकं किं नाम स्यात् कारणं तोपस्य ? परं विजयपुराधीशेन योत्स्यते भवानिति न सन्देहः, किन्तु शिष्टं कार्यद्वयं साधयिष्यत्येव-इति कथं विश्वस्याम् ।

ततः शनैः शनैरुभयोर्बहव आलापाः सञ्जाताः । परिशेषे च जयपुराधीशेनोक्तम्—सर्वमवगतवानस्मि । श्व एव मायाजिह्वं रसनारीं चात्र प्रेषयतु, यथा स्वपत्रेण सह तौ दिल्लीं प्रेषयामि । अत्रभवति चात्यन्तं दिल्लीश्वरस्य तोषं सम्पादयामि ।

महा०—यदाज्ञाप्यते ।

जय०—स्वीकृता भवताऽधुना सकरप्रदता मैत्री ?

महा०—सर्वोऽपि भवदादेशः शिरोधार्यः । ततो जयपुराधीश्वरः प्रतिष्ठासमानं महाराष्ट्रराज सप्रेम सम्बोध्य प्रोक्तवान्-अस्तु, साम्प्रतं जिगमिषति भवान् चेदास्माकीना भटा भवन्तमनुगच्छन्तः सिंहदुर्गपर्य्यन्तं कुशलेन प्रापयिष्यन्ति । स तु—आर्य ! परमुपकृतोऽस्मि सकरुण-भाषणेनानेन । रात्रौ एकाकिभ्रमणमेवातितरां

अटवीषु=अरण्येषु । अपभ्रष्ट=मार्गच्युतः । मार्गणीयः=अन्वेषयितव्यः ।

आहव =सङ्ग्रामः ।

विश्वस्याम् = विश्वासं कुर्याम् ।

अत्रभवति=माननीये भवति । तोषम्=प्रसन्नताम् ।

सकरप्रदता=सबलिविश्राणना ।

प्रतिष्ठासमानम्=प्रस्थातुकामम् । सप्रेम=सानुरागम् । एकाकि-

ष्यामि, प्रतिनिवर्तितुञ्च वक्ष्यामि। कथ्यतां किं तेनोक्तम् ?

महा०—राजकुमारि! स वक्ति यद्—"महाराजाधिराजो दिल्लीश्वरः कुमार्याः कुमारस्य च पदवीमलभमानोऽत्यन्तं चेखिद्यते। यदवधि स भवतोः प्रनष्टतामश्रौषीत्; तदारभ्य मित्रैर्न हसति, राजसभां नाधितिष्ठति, कलाकौशलानि नावधत्ते, आलाप-मूर्च्छना न शृणोति, उद्यानेष्वपि च न पर्य्यटति, 'हा वत्स! माया-जिह्म!! हा वत्से!! रसनारि!!'—इति समाक्रन्द-विलपितोद्भूतै-र्बाष्पैरेव श्मश्रु-कूर्चञ्च स्नपयति। तत्र भवती महिषी, अन्या भोगिन्यश्च हाहाकारैरेव समयं गमयन्ति।"

रस०—[साश्रुपातम्] हा तात! हा मातः!! [इति रोदिति]

महा०—समाश्वसितु समाश्वसितु भवती, शीघ्रं द्रक्ष्यति भवती पितरौ।

ततश्चिरं यावत् सान्त्वनामयं नीतिगर्भं दर्शित-पितृस्नेह-वर्षञ्चाऽऽलपत् कुमार्या सह महाराष्ट्राध्यक्षः।

प्रतिनिवर्त्तितुम्=दिल्लीं गन्तुम्। वक्ष्यामि=कथयिष्यामि।

पदवीम्=पन्थानम्। चेखिद्यते=अतितरां क्लिश्नाति। प्रनष्टताम्=अदृश्यताम्। नाधितिष्ठति=नाश्रयति। "अधिशीङ्स्थासां कर्म"ति सभाशब्दस्य कर्मसंज्ञा। नावधत्ते=न विवेचयति। समाक्रन्दात्=रोदनात्। विलपितात्=सशब्दरोदनाच्च, उद्भूतैः=सञ्जातैः। वाष्पैः=अस्रैः। श्मश्रु=उत्तरोष्ठोपरिस्थिता रोमराजिः। कूर्चम्=चिबुकप्ररूढा रोमावलिः। महिषी=पट्टराज्ञी। भोगिन्य.=इन्द्रियतृप्तिमात्रार्थमङ्गीकृताः। "कृताभिषेका महिषी भोगिन्योऽन्या नृपस्त्रियः।" इत्यमरः।

द्रक्ष्यति=अवलोकयिष्यति। माता च पिता च पितरौ। "पिता मात्रा" इत्यनेनैकशेषः।

सान्त्वनामयम्=सामप्रचुरम्।

तावत् प्रतीहार्य्या प्रविश्योक्तम्—भगवन् ! दिल्लीश्वरकुमारः समायाति—इति। स तु श्रुत्वैवोत्थाय बहिर्निर्गत्य तं प्रणमन्तमालिङ्गय, एकाकिनमन्तः प्रावेशयत्।

तत्र स भगिनीमवलोक्य कथं चमच्चकार, कथं वा ताभ्यां परस्परं प्रेमभारा विभराम्बभूविरे, काभिर्वा कथाभिः कतिचन क्षणा अतिवाहयाञ्चक्रिरे—इति नायं लेखनीविषयः।

कियत्क्षणानन्तरं स्वस्वागमन–गाथामुदीर्य तौ द्वावपि महाराष्ट्रराज–प्रशंसा–परवशौ बभूवतुः। उभाभ्यां निरचायि च यद्—गत्वैव दिल्लीनगरीं दृढं तातचरणोऽभ्यर्थनीयो महाराष्ट्रराजेन सह सन्धातुम्। कुमारेणोक्तम्—"भगिनि ! तातः शत्रु–सम्बन्धिनो निगृह्य पशुमारं मारयति। महाराष्ट्रमेघवाहनश्चास्मादृक्षान् प्राप्यापि प्रेम–पूर–प्रवाहैरेव परिपोषयति—इति स्पष्टं कथयिष्यामि तातमेतेन युद्धं शमयितुम्"। तत उक्तं कुमार्य्या यद्—भद्र ! श्रूयते महत्या सेनया जयपुरेश्वरो महाराष्ट्राञ्छलभनाशं प्रणाशयितुं प्रेषितोऽस्ति।

प्रतीहार्य्या=दौवारिक्या। निर्गत्य=निःसृत्य। एकाकिनम्, स्वयमप्यप्रविश्येति चातुर्यस्य परा काष्ठा।

चमच्चकार=चमत्कृतोऽभूत्। प्रेमभारा=गाढस्नेहाः। विभराम्बभूविरे=दध्रिरे। अतिवाहयाञ्चक्रिरे=व्यतियापयाञ्चक्रिरे। लेखन्याविषयो न=वक्तुमनर्हं इति तत्त्वम्-केवलानुभवैकमात्रवेदितव्य इति यावत्।

स्वस्वागमनस्य गाथाम्=कथाम्। उदीर्य=निगद्य। निरचायि=निश्चयः कृतः। सन्धातुम्=मैत्री विधातुम्। शत्रुसम्बन्धिन.=रिपुसम्पर्किणः। पशुमारं मारयति=यथा पशून् हन्ति तथेत्यर्थः। महाराष्ट्रमेघवाहन.=महाराष्ट्रेन्द्रः। "तुराषाण्मेघवाहन" इत्यमरः। प्रेमपूरप्रवाहैः=अनुरागधाराभिः। एतेन=शिवराजेन, सह। शलभनाशं प्रणाशयितुम्=शलभमिव नाशयितुम्। शलभानिवानायासेन नाशयितुम्। "उपमाने कर्मणिचे"ति णमुल्।

माया०—आः ! अधुनैव गत्वा निवारयामि जयपुरेश्वरम् ।

रस०—भद्र ! श्रूयते युद्धमधुनाऽपि नाऽऽरब्धवान्, सन्धिश्च प्रस्तूयते ।

तत पित्रोर्दुःखविषयेऽपि सास्रं कथितवती कुमारी । कुमारोऽपि श्रवाष्पमाकर्ण्य, बहिरागत्य महाराजं प्रणम्य, सगद्गदमुवाच—

महाराज ! श्रीमत' स्नेहस्य चिराय ऋणी सवृत्तोऽस्मि, कुशलिनीं भगिनीमालोक्य चोपकारभाराक्रान्त. शिरोऽप्युन्नमयितुं न शक्नोमि । न जाने कैर्व्यवहारैरानृण्यं प्राप्स्यामि ?

महा०—आयुष्मन् ! कथ न कथये, महतां कुमारोऽसि । किन्तु साम्प्रतं जयपुरपुरन्दरो योद्धुमायातोऽस्ति । विहितसन्धिप्रस्तावे च मयि कथितवान्—यद् "यदि कुमारी कुमारश्च सुखेन दिल्लीश्वरान्तिकं व्रजेताम्; तदवश्यं सन्धास्यति महाराजाधिराज." इति । स च शिबिरस्थ. कुमारं प्रतीक्षते ।

माया०—एष प्रतिष्ठे यद्यनुमन्ये । अवश्यं सन्धानीयं तातेन । अन्यथा नाहं तस्य, न स मम ।

ततो महाराष्ट्रपतिस्तं प्रतिपूज्य, सादरं स्वकीयैः सह विसृज्य, रसनारीसमीपे पुनरगच्छत् । रसनारी तु अनुभविष्यमाणेन शिवविरहेण-ग्लाना, मुहुर्मुहुस्तातसेनाप्रेषणश्रवणेन कुपिता, माता-पितृ-स्नेह-स्मरणेन च विकला, प्रस्थातुं नोमिति, न वा नेति, वक्तुं पारितवती ।

प्रस्तूयते = प्रस्तावविषयता नीयते ।

सगद्गदम्=अविस्पष्टाक्षरम् ।

उपकार-भारेण=उपकृतिभरेण, आक्रान्तः=निम्नीकृतः । उन्नमयितुम्=उत्थापयितुम् । आनृण्यम्=ऋणराहित्यम् ।

प्रतिष्ठे=प्रस्थान करोमि । सन्धानीयम् = सन्धातव्यम् ।

अनुभविष्यमाणेन = कियत्कालानन्तरमेव भविष्यता । ग्लाना= क्षीणहर्षा । विकला=खिन्ना । पारितवती=अशक्त् ।

महाराष्ट्रेश्वरश्च तां चलप्रकृतिमगम्भीरस्वभावां चावगत्य, "भद्रे ! अलं विषादैः ! दिल्ली गत्वा पित्रोर्दुःखं शमय, मां स्नेहेन सनाथयसीत्यपि कयाचन मुद्रया प्रकटय। तेनानुमन्यमाना च मामप्यनुगृहाण। अन्यथा तु युद्धे संवृत्ते त्वत्पितरं जिघांसति मयि; श्व एव वा, परश्व एव वा तव स्नेहः कार्श्यमासादयेत्। उत्तिष्ठ, वीरतनयाऽसि, राजकुमार्यसि, न शोभते त्वयि एतादृक्षश्चिन्ता-वितानः"—इति प्राबोधयत्।

सा च चलप्रकृतितया यथा बोधिता तथैव वर्द्धितोत्साहा सन्धिं विहितमिव, पित्रनुमतिमासादितामिव, पाणिग्रहण-विधिं प्रबध्यमानमिव, आत्मानं च महाराष्ट्रराजेन श्लिष्यमानमिव-मन्यमाना सपद्युत्थाय सप्रेम समालिङ्ग्य, तन्निर्दिष्टशिविका-मारुह्य, बहुभिः सखीभिः परिवृता, अनेकैः सादिभि पादातिकैश्चा-नुगम्यमाना श्रीजयसिंहाध्युषित-शिविराभिमुखं प्रतस्थे।

अथ कालान्तरे महाराष्ट्रराजोऽपि अम्बराधीश्वरस्य निकटे गतः। स चैनमवलोक्य, आलिङ्ग्य, अतिप्रेम्णाऽवादीत्—

वीर ! कुमारौ दिल्लीं प्रेषितवानस्मि। अनेनोपकारेणात्यन्तं मोदिष्यते दिल्लीवल्लभः। गृह्यतामिदं सन्धिपत्रम्, यानि दुर्गाणि

चलप्रकृतिम्=चञ्चलस्वभावाम्। शमय=शान्तिं नय। सनाथ-यसि=कृतार्थयसि। मुद्रया=भङ्ग्या। प्रकटय=विज्ञकलय। अनु-मन्यमाना=अनुमोद्यमाना। अनुगृहाण=अनुकम्पय। शिववीरस्य दिल्लीगमने कारणमिदमेवेति कथनभङ्ग्याऽत्रत्यया विवेचयन्तु पण्डिताः। जिघांसति=हन्तुमिच्छति, शन्नन्तम्। कार्श्यम्=दौर्बल्यम्।

पित्रनुमतिम्=जनकानुज्ञाम्। आसादितामिव=लब्धामिव। पाणिग्रहणविधिम्=विवाहविधानम्, प्रबध्यमानम्=समारभ्यमाणम्। बहुभिः=बह्वीभिः। "वोतो गुणवचनात्" इत्यनेन स्त्रीप्रत्ययस्य वैकल्पि-कत्वम्। पादातिकैः=पदगैः सैनिकैः।

कुमारौ=रसनारीमायाजिह्मौ। एकशेषः।

भवता दिल्लीश्वरेण सह युद्ध्वा बलाद् गृहीतानि, तानि निवर्तनीयानि, यथोल्लेखञ्च किञ्चन प्रतिवर्षं देयम् ।

महाराष्ट्रमुकुटस्तु, ओमित्युक्त्वा, सन्धिपत्रं गृहीत्वा, किञ्चित् मलिनमुख इव सवृत्तः ।

जयपुरेश्वरस्तु—वीर ! वर्द्धस्व, अल शोकेन ! समय एप ईदृश एव, साम्प्रतमुत्तिष्ठ, महाराजसाहाय्यं युद्धेपु विधेहि । विजयपुरेश्वर एप दिल्लीश्वरस्याऽऽज्ञा न पालयति—इत्येतेन सह बहूनि समराणि भूतानि भवन्ति च । तदत्र कौशल दर्शयित्वा दिल्लीश्वरस्य दक्षिणो बाहु. संवर्तस्व—इत्युवाच ।

महाराष्ट्रराजस्तु, अनयाऽपि मुद्रया चिरन्तनसपत्नस्य विजयपुरेश्वरस्य दमनाऽऽदेशश्रवणेन स्फुरितबाहुः सेना आयोजयितुं तत्क्षणादादिदेश ।

आसीदासन्नमेव विजयपुराधीशस्य गिरिशिखरस्थमेकं रुद्रमण्डलाभिधं महद् दुर्गम् । तदेव हस्तगतं विधातुं कौशलमाचचार शिवराज. । एकान्ते गौरसिंहमाकार्य रात्रौ रुद्रमण्डलस्य पूर्वत. सेना आयोज्य, प्रथातु परभटेपु सम्मुखमायातेपु च, पृष्ठत. शनै. शनैरपसरणच्छलेन तान् पुरतो नेतुमादिशत्, स्वयञ्च

मलिनमुख.=धूमिलाननः ।

समराणि=युद्धानि । "अस्त्रिया समरानीकरणाः" इत्यमरः ।

भूतानि=जातानि । कौशलम्=नैपुणीम् । दक्षिणो बाहु =वामेतरो भुजः । परमस्नेहभाजनमिति यावत् ।

अनयाऽपि मुद्रया=अनेनापि प्रकारेण । चिरन्तन-सपत्नस्य=पुरातनशत्रोः । दमनादेशश्रवणेन=निग्रहाज्ञाश्रुत्या । स्फुरितबाहुः=चपलितभुजः । आयोजयितुम्=सन्नाहयितुम् ।

आसन्नम्=समीपवर्ति । गिरिशिखरस्थम्=पर्वतकोटिस्थम् । हस्तगतम्=स्वायत्तम् । कौशलम्=नैपुण्यम् । आयोज्य=सघटय्य । परभटेपु=शत्रुसैनिकेपु । अपसरणच्छलेन=पलायनव्याजेन । नेतुम्=

महान्धतमसे, - अन्यजीव-माल्यश्रीक-स्तन्यजीव-रघुवीरादि-सहितः सहस्रं वीरान् सह नीत्वा रुद्रमण्डलस्य पृष्ठतो निभृतं प्रचलितः ।

महानेष उच्चो गिरिः, अन्धतमसं व्याप्तम्, अविदितचरः पन्थाः, तथाऽपि क्वचिदुत्प्लुत्य, क्वचिच्छाखा आलम्ब्य, क्वचिदुपविश्य, क्वचिन्निर्झरजलान्तः प्रविश्य, क्वचिल्लता जालान्यपसार्य, क्वचिद्विद्धान् कण्टकानपनीय, कथं कथमपि दुर्गस्य नेदीयस्याम-धित्यकायामायातः । तावदपश्यद्-यद् दुर्गप्राचीर एका सदीपा काच-मञ्जूषा, अपराऽपराऽपि च स्थापितेति । ततो 'वयमाशङ्किताः' इति निश्चित्य सर्वे तरुच्छायासु विलीनाः । मुहूर्तानन्तरं पुनस्तू-ष्णीमुपगच्छन्तो ददृशुर्यत् पञ्चषा यवन-वीराः प्राचीरे पर्य्यटन्तः सतर्कमधो वीक्षन्ते-इति । पुनस्तेषु तरूणामधो विलीनेषु, अन्धत-मस-वशादनीक्षमाणा मर्मरकारणमलभमाना दौर्गिकाः पुन-र्निवृत्ताः । ततः किञ्चिज्जाते पादाघातशब्दे, अकस्माद् दुर्ग-प्राचीर-स्योपरि, एकः, द्वौ, दश, शतं बहवश्च सशस्त्राः पुरुषा दृष्टाः । तेऽपि नेदिष्ठान् दृष्टवन्तः—इति वृक्षतलेषु लीयमानानपि प्रत्यर्थिनः शक्ति-शराघातैस्ताडयितुमारेभिरे ।

ततः पुरः समागत्य, प्रत्यक्षं योद्धुमारब्धवता शिववीरेण

प्रापयितुम् । महान्धतमसे = गाढेऽन्धकारे । निभृतम् = गूढम् ।

उच्चः = उन्नतः । अविदितचरः = पूर्वमविज्ञातः । लताजालानि = प्रततिव्रातान् । विद्धान् = चरणादिषु प्रविष्टान् । अपनीय = अपसार्य । नेदीयस्याम् = अन्तिकस्थायाम् । काचमञ्जूषा = रक्तवर्तिका । आश-ङ्किताः = आशङ्काविषयीकृताः, दौर्गिकैरितिशेषः । विलीनाः = क्षुपिताः । प्राचीरे = प्राकारे । सतर्कम् = सावधानम् । मर्मरकारणम् = पत्रध्वनि-हेतुम् । दौर्गिकाः = दुर्गरक्षापरायणाः । सशस्त्राः = सायुधाः । नेदि-ष्ठान् = अतिशयान्तिकस्थान् । प्रत्यर्थिनः = शत्रून् ।

निर्दिष्टाः, 'दृष्टा वयमिति किं व्यर्थाघातसहनैरात्माच्छादनैश्च'—इति स्वयं वोवुध्यमानाः सक्ष्वेडं सर्वे शिवसहचराः—"हर हर महादेव" इत्युदीर्य, प्रत्यक्षीभूय च शाखि-शाखान्तरोदर-सुप्त-पक्षि-पटलान्युन्निद्रयन्तः, चन्द्र-चन्द्रिका-साक्षिकं घोरं युद्धं विधातुमुपक्रान्तवन्तः। यवनशरभल्लाहता बहवो महाराष्ट्रवीराः, चन्द्र-मरीचि-चाकचक्य-चमत्कृतामधित्यकां कोष्ण-रुधिर-पातैः स्नपयन्तः, शिवविजय-कुङ्कुमेनेव चर्चयन्तः, ससूर्यभेदं स्वर्गं प्रतिष्ठमानाः शिवं प्रणमन्त इव च पेतुः। महाराष्ट्र-शरासन-मुक्तैः शिलीमुखैराहता यवनवीरा अपि च बहुशः प्राचीरमुभयतः पेतुः।

अथ यावन्महाराष्ट्राधीशश्चिन्तयति यत्—"किमेतेनेहानेन क्रीडनकेनेव युद्धेन? मध्ये मध्ये विहता वीरा उभयतः पतन्ति। अस्माकं चस्वप्रवेशश्च दुर्गेऽस्मिन्न भवति। होराद्वयानन्तरं मार्तण्ड-मण्डलमुदेष्यति। ततस्तु कथमपि न पारयिष्यामोऽधिकबलानेतान् विजेतुम्, तत् सपदि केनापि कौशलेन प्राचीरमारुह्य दुर्गस्यान्तः प्रवेष्टव्यम्"—इति—

व्यर्थाघातसहनैः = निष्प्रयोजनताडनमर्षणैः। आत्माच्छादनैः = स्वगोपनैः। वोवुध्यमानाः = अतितरां जानन्तः। प्रत्यक्षीभूय = साक्षादेव पुरत आगत्य। शाखिशाखान्तरोदरसुप्तपक्षिपटलानि = द्रुमावयवमध्यगृहीतनिद्रविहगसमूहान्। उन्निद्रयन्तः = जागरयन्तः। चन्द्रचन्द्रिकासाक्षिकम् = हिमदीधिति-किरण-प्रत्यक्षदर्शकम्। चन्द्रस्य मरीचीनाम् = किरणानां चाकचक्येन चमत्कृताम्। कोष्णरुधिरपातैः=कदुष्णरक्तपतनैः। शिवविजयस्य कुङ्कुमेन=केसरेण। चर्चयन्तः =लिम्पन्तः। ससूर्यभेदम्=तिग्मदीधितिमण्डलभेदनपुरस्सरम्। महाराष्ट्राणाम्, शरासनेभ्यः=धनुर्भ्यः, मुक्तैः =निःसृतैः। शिलीमुखैः=बाणैः। प्राचीरमुभयतः, तसिलान्तयोगे द्वितीया, "ततोऽन्यत्रापि दृश्यते" इति।

क्रीडनकेनेव=खेलनेनेव। चस्वप्रवेशः=लघुरपि प्रवेशः। होराद्वयानन्तरम्= "घण्टा"-द्वयस्य पश्चात्।

तावद् दृष्टवान् यदेको नववयस्को महाराष्ट्र-वीरो घोरं युद्धम-गणयन्, उपर्य्यधः कतिपयान् शिला-खण्डान् चित्वा भित्तिकार्पित-भल्ल-समाश्रयो लाघवेनोत्प्लुत्य, प्राचीरमारुह्य, "विजयते महाराष्ट्र-राजः"—इत्युच्चैरवदत्।

तं च तथाऽऽरूढमालोक्य यवनाः सदन्तघर्षं सन्दष्टदशनच्छदं निस्त्रिंशान् कोशादाकर्षन्तः शक्तिमुत्तोलयन्तः शरासनानि टङ्कुर्वन्तश्च परितः समापतिताः। तांश्च भूमिष्ठा अपि महाराष्ट्रवीराः शरघातै-रविध्यन्, प्राचीरारूढमात्मसहचरं च समरक्षन्। तदालोक्य गौरव गरिष्ठोऽपि लाघवेनोत्पत्य, सहचरैरप्यवितर्कितोत्पतनो वीरशिवः स्वयमपि प्राचीरमारुह्य परितः समापतितान्प्रत्यर्थिनः कदर्थीकृत्योभयतः समपातयत्।

ततः सक्ष्वेडम्—"आरुह्यतामारुह्यताम्"—इत्युक्त्वा धाविता महाराष्ट्राध्यक्षोत्साहिता बहवो महाराष्ट्रवीराः सोत्फालं प्राचीरमा-रोहन्, हस्तावलम्बेन चान्यान् बहून् क्षणेनोदतूतुलन्। क्षणं तत्र

नववयस्कः=नूतनावस्थाकः, तरुणः। चित्वा=संकलय्य। भित्तिका-र्पितः = कुड्यसंस्थापितः, भल्लः=कुन्तः, समाश्रयः=आधारो यस्य सः।

सदन्तघर्षम् = सदशनघट्टनम्। सन्दष्टदशनच्छदम् = ओष्ठखण्डन-पुरस्सरम्। निस्त्रिंशान् = असीन्। टङ्कुर्वन्तः = टङ्कारशब्दमरितान् कुर्वन्तः। भूमिष्ठाः = भूतले तिष्ठन्तः। अविध्यन् = अताडयन्। आत्मसहचरम् = निजसहगामिनम्। गौरवेण गरिष्ठ. = अतिशयगुरुः। लाघवेन = लघुशरीरतया। अवितर्कितोत्पतनः = असंभावितोर्ध्वगमनः। कदर्थीकृत्य = विनाश्य। समपातयत्=समपोथयत्।

सक्ष्वेडम् = सगर्जनम्। महाराष्ट्राध्यक्षेण = शिववर्मरेण, उत्सा-हिताः = वर्धितसाहसाः। सोत्फालम् = सकूर्दनम्। हस्तावलम्बेन =

घोरं युद्धमभूत्। तावदकस्माद् दृष्टम्—यत् कश्चन "हर हर महादेव"—इति तारस्वरेणोच्चारयन खड्ग चालयन सोत्फालं दुर्गान्तःपतितोऽस्ति। सोऽयं रघुवीरसिंह, यः सर्वेभ्य प्रथममेव प्राचीरमारूढ, प्रथममेव च दुर्गान्त. प्रविश्य साहसमप्यकार्षीत्। तेन सहैव वीरराजशिवोऽपि शार्दूल इव जघन्य-वन्य-मण्डले समापप्तत्। तन्निरीक्ष्य शतशो महाराष्ट्र-वीरास्तथैव सकूर्दन दुर्गान्तः प्रविष्टाः, तत्र च मुहूर्त्तं तुमुलं युद्धमभून्।

दण्डद्वयेनेव शतशो यवना हता, अपरे च जीवन्त एव निगृहीताः, शान्तमिव च युद्धम्। ततो महाराष्ट्र-वीरा स्थूल-दीपान् सञ्ज्वल्य दुर्ग-मध्यस्थ-प्रासादाभिमुखं चलिता, दृष्टवन्तश्च यत् दुर्गाध्यक्षो गृहान्त प्रविष्ट, द्वारश्च-लौह-शृङ्खल-कीलैर्दृढतरै. कपाटैरमुमुद्रदिति। निरीक्ष्यैतत् क्षण विचार्य महाराष्ट्रराज सगर्जनमुवाच—"दुर्गाध्यक्ष! स्वामिभक्ति दर्शितवानसि, यथाशक्ति दुर्गं रक्षितवानसि, व्यर्थोऽधुना लज्जया गृहप्रवेश, तत् स्वयं बहिर्निर्गच्छसि चेद् जीवन्त त्यक्ष्याम, इतरथा तु प्रासादेन सह त्वां क्षणेन धक्ष्याम"—इति।

दुर्गाध्यक्षो रहोमत्तखानस्तु क्रियासमभिहारेण शृण्वन्नपि न

कराश्रयणेन। उदतूतुलन्=उन्नीतवन्तः। शार्दूलः=सिंहः। जघन्यानाम्=क्षुद्राणाम्, वन्यानाम्=आरण्यकाना शृगालादीनाम्, मण्डले=समूहे। समापप्तत्=निपतितवान्। सकूर्दनम्=सोत्फालम्। तुमुलम्=भयानकम्।

दण्डद्वयेन=घटिकाद्वयेन। निगृहीता=वशीकृताः। स्थूलदीपान्="मशाल" इति ख्यातान्। दुर्गमध्यस्थस्य=दुर्गान्तरालविद्यमानस्य, प्रासादस्य=हर्म्यस्य, अभिमुखम्=सम्मुखम्। लौहशृङ्खलकीलै=आयसनिगडकण्टकैः। दृढतरै=कठोरतरै। कपाटै=अररैः। अमुमुद्रत्=प्यधात्। सगर्जनम्=रुष्वेडम्। धक्ष्यामः=ज्वालयिष्यामः।

रहोमत्तखान="रहमत खाँ" इति लोके प्रसिद्धः।

बहिर्निरगात्। अथ महाराष्ट्रराजस्याऽऽज्ञामवाप्य, तदीया इन्धनैरावृत्य प्रासादममुं ज्वलयितुमारेभिरे। ततः समन्ततो विहायसं लिहन्तीषु देदीप्यमानासु शिखासु, 'अवीरयोग्यं मृत्यु प्राप्तोऽहम्' इत्याशङ्क्य खङ्गहस्तो गवाक्षिकात उत्प्लुत्य, भूमौ पतितो रहोमत्तखान उवाच—

किमिति ममैकस्य प्राणार्थं महामूल्यं महार्घ-वस्तुजात-पूरितं महाप्रासादं दहथ? एषोऽस्मि। यथेच्छं प्रहरत। स्वाम्यर्थेऽहं प्राणानुत्सृजामि—

तदाकलय्य परितः परिपतितेषु महाराष्ट्रवीरेषु, महाराष्ट्रपतिरगादीत्—

"वीरोऽसौ, वीरोऽसौ, न हन्तव्यः, न हन्तव्यः। किन्तु जीवन्नेव ग्रहीतव्यः"–इति। तत एकाकिन्यपि सुसज्ज-निस्त्रिंशानां महाराष्ट्र-वीराणां मण्डले, सखङ्गचालनं दक्षान् वामांश्च मार्गांश्चरति तस्मिन् यवनवीरे, अकस्माद् विद्युच्चमत्कार इव सोत्फालमापत्य रघुवीरः त्सरुं तस्य मुष्टिं जग्राह। यावच्चैषको यतते आच्छेत्तुं स्वहस्तम्, तावद् अपरे वीरा दृढं गृहीत्वा, तत्क-

---

निरगात्=निष्क्रान्तः। इन्धनैः=काष्ठैः, आवृत्य=आच्छाद्य। ज्वलयितुम्=दग्धुम्। आरेभिरे=आरब्धवन्तः। विहायसम्=गगनम्। लिहन्तीषु=स्पृशन्तीषु। देदीप्यमानासु=अतितरा ज्वलन्तीषु। अवीरयोग्यम्=शूरानुपयुक्तम्। गवाक्षिकातः=वातायनिकातः। उत्प्लुत्य=सङ्कूर्द्य।

दहथ=ज्वालयथ। यथेच्छम्=यथाभिलाषम्। प्रहरत=मारयत। उत्सृजामि, "वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा" इति लट्।

एकाकिनि = असहाये। सुसज्जनिस्त्रिंशानाम्=सन्नद्धीकृतासीनाम्। सखङ्गचालनम्=सचन्द्रहासमारणम्। विद्युच्चमत्कार इव=चपलाचमत्कृतिरिव। त्सरुम्=सखङ्गमुष्टिम्। एष एव, एषक.। "अव्ययसर्वनाम्नामकच्प्राक् टेः"। आच्छेत्तुम्=आक्रष्टुम्। यतते=

राबन्द्रहासमाच्छिद्य, उष्णीषिकापटेन बाह्वोः स्कन्धे च समबध्नन्। महाराजाऽऽज्ञया च अनेक-शत-निगृहीत-जनाधिष्ठिते कोण-गृहे तमपि निक्षिप्य, कवाटं समसुमुद्रन्।

तत. प्रासाद-दाहं शमयित्वा, कथं कथमप्यन्तः प्रविश्य, अट्टालिकामारुह्य, महाराष्ट्रराजो दृष्टवान्—यत् पूर्वतः सञ्जात एवारुणोदय। तत्प्रभया किञ्चित् किञ्चिद् भासमाने भूभागे सुदूरमवलोकितवान्—यत् परिपन्थि-पदातिनां षट् सप्त वा शतानि स्वाभिमुखमेव धावमानानि समायान्तीति। अतर्कयच्च यदवश्यमेते गौरसिंह-सेना-कोलाहलाऽऽकृष्टाः सुदूरं पूर्वतो गता आसन्। तत एव च प्रासाद-दाह-ज्वाला-माला अवलोक्येनो निवृत्ता कोप-कषायिता समायान्ति, तत् सपद्येवैतै सह युद्धस्य कश्चन सकौशलं प्रबन्धो विधेय, अन्यथा तु नि शेषमेवैतेऽस्मान् समुच्छेत्स्यन्ति।

अथ महाराष्ट्रराज क्षणं स्वमित्रैः सह सम्मन्त्र्य, दुर्ग-युद्धार्थमेवावातिष्ठत। क्षणं विमृश्य च, स्वप्रधानवीरानाहूय पुनरुवाच—

उद्ग्रहक्ते। उष्णीषिकापटेन=शिरोवसनवाससा। अनेकशतनिगृहीतजनाधिष्ठिते=अत्यधिकचारकीकृतमानवविराजिते। निक्षिप्य=अन्तःप्रवेश्य। कवाटं="कवाटमरर तुल्ये" इत्यमरः। समसुमुद्रन्=अप्यधु।

अरुणोदयः=भास्करोद्भूतिपूर्वकालिकलौहित्याविर्भावः। भासमाने=द्योतमाने। परिपन्थिपदातिनाम्=शत्रुपदगानाम्। धावमानानि=त्वरया चलन्ति। गौरसिंहस्य सेनायाः कोलाहलेन=कलकलेन, आकृष्टा=आहूताः। प्रासाददाहेन=हर्म्यज्वलनेन, ज्वालामाला। कोपकषायिता=क्रोधकलुषिताः। सकौशलम्=सनैपुण्यम्। नि.शेषम्=साकल्येन। समुच्छेत्स्यन्ति=समुन्मूलयिष्यन्ति।

संमन्त्र्य=विचार्य।

मित्राणि ! यद्यप्यायस्तमस्मन्मण्डलम्, सव्रणा बहवः पदातयः, साम्मुख्यं द्विगुणैः परिपन्थिभिः, तथाऽपि सकाशमागच्छन्तीं शत्रु-सेनामालोकयतोऽपि तूष्णीं स्थातुं नोत्सहते मे चेतः। सदैव प्रसह्याऽऽक्रम्य युद्धवानस्मीति गृहे आत्मानमाच्छाद्य वर्त्तितुं नोररीकरोत्युरः। अप्यस्ति कश्चिद्वीरः यः शतद्वयं भटान्सह नीत्वा, अग्रत एव गत्वा शस्त्रक्रीडया वराकैरेतैः सपत्नैः क्रीडेत्? विश्वसिमि, एतेषां पृष्ठलग्न एव गौरसिहोऽपि ससेन आयातीति यावदितोऽस्मत्सेना होरार्द्धमिव समर-दुरोदरेण यापयिष्यति-तावद् गौरोऽपि तत आगत्य, कृपाण-धाराभिरेतान् स्नपयिष्यति—इति कथ्यताम्, कः समुत्सहते द्वे शते वीराणा सह नीत्वाऽग्रत एव सपत्नान् शक्ति-पातैः सत्कर्तुम्?—इति।

तदाकर्ण्य "सज्जा वयं शिरसा वोढुमादेशम्"—इति सर्वे प्रोचुः। ततः परितो विलोकयन् महाराष्ट्रराजो रघुवीरसिंहमपि बद्धाञ्जलिं सम्मुखस्थमालोक्य व्याजहार—"रघुवीर! अद्य त्वमेव युद्धमारब्धवानसि, त्वमेव च मध्येऽपि पराक्रमं दर्शितवानसि, त्वमेव चाधुना युद्धं समापय, पूर्ण-पारितोपिक-भाक् च भव"।

आयस्तम्=श्रान्तम्। अस्मन्मण्डलम्=अस्मत्सैन्यम्। सव्रणाः= साघाताः। साम्मुख्यम्=आभिमुख्यम्। "सामना" इति हिन्दी। सकाशम्=समीपम्। प्रसह्य=बलात्। गृहे=दुर्गे। वर्त्तितुम्= स्थातुम्। नोररीकरोति=न स्वीकरोति। उरः=हृदयम्। वराकैः= क्षुद्रैः। सपत्नैः=शत्रुभिः। पृष्ठलग्नः=पश्चात्स्थः। होरार्द्धम्= घण्टार्द्धम्। समर एव दुरोदरम्=द्यूतम्, तेन। कृपाणधाराभिः= चन्द्रहासप्रवाहैः। स्नपयिष्यति=स्नानं कारयिष्यति। मारयिष्यतीति यावत्। शक्तीनां पातैः = मारणैः। सत्कर्तुम् = आदर्तुम्। हन्तुमिति यावत्।

सज्जाः=सन्नद्धाः। पूर्णस्य=समग्रस्य, पारितोषिकस्य=कृते कार्ये प्रसन्नतया दीयमानस्य, भाक्=ग्रहीता।

तदवधार्य प्रणम्य 'ओम्' इत्युक्त्वा रघुवीरः शतद्वयं साहसिकान् पत्तीन् सह नीत्वा समापत्य, उच्छलितकोपैर्यवनवीरैः सह युद्धमन्वतिष्ठत्। सपत्नापेक्षया त्रिगुणितेष्वपि, विस्मितप्रायेषु च तेषु ससिंहनादं प्रासासि-रिष्टि-तोमर-क्षेप-तत्परेषु, अकस्मात् पृष्ठतो "हर हर महादेव"—इति व्याहरन्ती गौरसिंह-सेनाऽपि समापप्तत्। तत क्षणेनैव बहुषु विनष्टेषु परेषु निगृहीतेषु च शत्रुवर्गेषु, जयध्वनि प्रख्यापयन्तः सर्वेऽपि समागत्य महाराष्ट्रराजं प्रणम्य विजयदुर्ग-विजय-वैजयन्तीरुड्डाय्य भेरीराहत्य जयनादैर्गगनं व्यलोडयन्।

तावत् अरुण-पीत-प्रकाशेन दरीदृश्यमानासु सकल-भित्तिकासु, वनस्थलीषु, उपत्यकासु, अधित्यकासु, अट्टालिकासु च, महाराष्ट्रराज सस‌ाधुवादमखिलान सम्मान्य, नित्य-क्रियाभिरात्मानं सुखयितुं विससर्ज, उक्तवांश्च गौरसिंहं यत्—

"स्वयं गत्वा महाराजमम्बरेश्वरं रुद्रमण्डल-विजय-वृत्तान्तमवगमय, ब्रूहि च यदपराह्णेऽद्य रुद्रमण्डल-प्रासादे, साधुवाद-पारितोषिकादि-वितरणैः प्रदर्शित-युद्ध-कौशलान् भटानधिकमुत्साहयितुं सभा भवित्री, तत्रोपस्थाय महाराजेन द्विगुणं सनाथनी-

---

पत्तीन्=पदातिसैनिकान्। उच्छलितकोपैः=विवृद्धक्रोधैः। प्रासासिरिष्टितोमराणा क्षेपे=पातने, तत्परेषु=निरतेषु। व्याहरन्ती=कथयन्ती। प्रख्यापयन्तः=प्रकटयन्तः। उड्डाय्य=उत्पात्य, "उडाकर" इति हिन्दी। व्यलोडयन्=ममन्थुः। जयध्वनिभिरपूरयन्निति यावत्।

अरुणस्य=भुवनभास्करस्य, पीतेन प्रकाशेन। दरीदृश्यमानासु=अवलुलोक्यमानासु।

अवगमय=बोधय। ब्रूहि=कथय। अपराह्णे=अह्नो द्वितीये भागे। द्वादशवादनादूर्ध्वमिति यावत्। उत्साहयितुम्=ससाहसयितुम्। उपस्थाय=समागत्य। सनाथनीया=कृतार्थनीया। समिति=सभा।

या समितिः"—इति ।

तस्मिंस्तथा प्रस्थिते दुर्गप्राचीर-द्वारादिस्थानेषु यथोचितं विश्वस्त-चिरन्तन-स्वामिभक्त-भटानायोज्य, सभा स्थानं परिष्कर्तुं कांश्चिदादिश्य, स्वमनसि स्वास्थ्यमाससाद ।

अथ तथाऽनुष्ठितवस्तुखिलेषु, विहित-भोजनादि-क्रिये परतः किञ्चिन्निद्रा-मुद्रयेव विद्रावित-मान्थर्ये जयपुराधीश्वरे, पश्चिमा-शामवनमति मार्तण्ड-मण्डले,चण्ड-मरीचि-प्रचयेषत्प्रतप्त-वाताऽऽघात-प्रताप-शुष्यत्फलपत्र-शाखाप्रशाखेषु वृक्ष-क्षुप-प्रतती-व्रजेषु, होराद्वयात् परत एव सम्पत्स्यमाने सायङ्काले; रुद्रमण्डलस्थ-महाप्रासाद-सम्मुखे प्रविततभूभागे सुवर्ण-सूत्र-प्रचय-रचित-लता-कुसुम-चित्र-विचित्रितस्य, विविध-वर्ण-वर्णनीय-स्तम्भ-

---

विश्वस्तान् = जातविश्वासान्, चिरन्तनस्वामिभक्तान् = प्राचीनाधिपतिसेवकान् । आयोज्य = संलग्य्य । परिष्कर्तुम् = स्वच्छयितुम् । स्वास्थ्यम् = कृतकृत्यताऽऽनन्दम् । आससाद = प्राप ।

अनुष्ठितवस्तु = कृतवस्तु । निद्रामुद्रया = स्वापभङ्गया । विद्रावितमान्थर्ये = दूरीकृतालस्ये । अवनमति = नम्रीभवति । चण्डमरीचीनाम् = भास्करदीधितीनाम्, प्रचयेन = समूहेन, ईषत्प्रतप्तस्य = उष्णप्रायस्य, वातस्य = वायोः, आघातप्रतापेन = ताडनतेजसा, शुष्यन्तः = शोषमुपगच्छन्तः, फलपत्रशाखाप्रशाखा येषा तेषु । वृक्षा. = अनोकहाः, क्षुपाः = ह्रस्वशाखाः, प्रतत्य. = लताः, एतासा व्रजेषु = समूहेषु । सम्पत्स्यमाने = भाविनि । प्रवितते = अतिविस्तीर्णे, भूभागे = भूप्रदेशे । सुवर्णसूत्रप्रचयेन = हैरण्यतन्तुसमूहेन, रचितैः = निर्मितै, लताना कुसुमानाञ्च, चित्रैः = आलेख्यैः, विचित्रितस्य = विभूषितस्य । विविधैः = अनेकप्रकारैः, वर्णैः = रङ्गैः, वर्णनीयानि = रञ्जनीयानि, यानि स्तम्भशतानि =

शतोच्छ्रितस्य; पुष्कल-दाम-शताकृष्ट-बद्धस्य कौशेयोल्लोचस्याधस्ताद् आस्तीर्णेषु कौशेयाऽऽस्तरणेषु महासभा समतिष्ठत।

तत्र हि कनकसूत्र-गुम्फित-प्रान्तासनाच्छादितायामेकस्यां वितस्त्युच्छ्राय-तूलिकायां महोपबर्ह-लग्न-पृष्ठो जयपुराधीश्वर उपविष्टः। तत्रैव च तद्वामतो महाराष्ट्र-राष्ट्र-त्रिविष्टपेष्टोऽपि समवर्तिष्ट। परितो यथाधिकारं क्रमतो द्वयोरपि राज्ञोः कृपा-पात्राण्युपविष्टानि। वितान परितश्च बद्धपङ्क्तयो योद्धारः सुसज्जाः समतिष्ठन्त। प्रभाकर-प्रभा-प्रचय-प्रपात-प्रहतानाम्, तत्कटिबद्ध-महारजत-रजतादि-पट्टिकानाम्, स्कन्धोन्नमित-शक्ति-भल्लानाम्, कटि-विलम्बित-कृपाण-सौवर्ण-त्सरूणाम्, वेष्टित-गण्ड-युगल-चिबुकानाम्, राजत-लेप-लिप्त-लौह-शृङ्खलोष्णीषिका-बन्धनानां च

अनेकान्याधारभूतानि, तैः, उच्छ्रितस्य = उन्नतस्य। पुष्कलानाम् = पुष्टानाम्, दाम्नाम् = रज्जूनाम्, शतैः, आकृष्टस्य बद्धस्य च। कौशेयोल्लोचस्य = पट्टसूत्रीयवितानस्य। आस्तीर्णेषु = विस्तीर्णेषु। कौशेयास्तरणेषु = पट्टसूत्रनिर्मितासनेषु। महासभा = विशाला समितिः।

कनकसूत्रैः = हैरण्यतन्तुभिः, गुम्फितः = ग्रथितः, प्रान्तो यस्य तादृशेन, आसनेन = प्रावरणविष्टरेण, आच्छादितायाम् = गोपितायाम्। वितस्त्युच्छ्रायायाम् = अर्धहस्तोन्नतायाम्, तूलिकायाम् = तूलवत्याम्। महोपबर्हे = महोपधाने, लग्नं पृष्ठं यस्य सः। महाराष्ट्रराष्ट्रमेव त्रिविष्टपम् = स्वर्गः, तस्य इष्टः = अभिमतः। समवर्तिष्ट = समन्वित। कृपापात्राणि = दयाभाजनानि। वितानं परितः = उल्लोचस्य चतुर्दिक्षु। "अभितः परितः" इत्यादिना द्वितीया। प्रभाकरप्रभाप्रचयस्य = भास्करभासमूहस्य, प्रपातैः = प्रपतनैः, प्रहतानाम् = ताडितानाम्। भासितानामिति यावत्। तत्कटिषु = वीराणां मध्यभागेषु, महारजतस्य = सुवर्णस्य, रजतस्य = दुर्वर्णस्य, आदिना रीत्यादेश्च, पट्टिकानाम्। स्कन्धेषु, उन्नमितानाम् = उन्नमय्य स्थापितानाम्, शक्तीनां भल्लानाञ्च। कटिविलम्बितानाम्, कृपाणानाम्, सौवर्णानां त्सरूणाञ्च। राजतलेपेन

चाकचक्यम् अवलोचकलोचनमतीतडत् । कलित-महाध्वजाः परितः प्रसर्पिणो वीराश्च, सभेरीनादं श्रीशिवराजस्य महाराज-जयसिंहस्य च जयमजूघुपन् ।

ततो महाराष्ट्रराजः संक्षेपेण रुद्रमण्डल-विजय-वृत्तान्तमश्रावयत् जयसिंहम् । स च ससाधुवादमखिलानुत्साहयाम्बभूव । ततो महाराष्ट्रराजो गौरसिंह-श्यामसिंह-क्रूरसिंह-माल्यश्रीकादीन् प्रत्येकमङ्गुल्या निर्दिश्योक्तवान्—एत एव प्राधान्येन विहितसाहाय्या मम—इति । जयसिंहश्च तान् प्रशशंस, स्वहस्तेन चैकैकमसिधेनुकादानेन पर्यतोषयत् ।

अथ रघुवीरं निर्दिश्य शिवराजः कथितवान्—"महाराज ! एष एव वीरबालो रुद्र-मण्डल-जयस्य प्रधान-कारणम् । अयमेव प्रथमं युद्धमारब्धवान्, अयमेव शर-प्रपातमगणयित्वा प्रथमं प्राचीरमारूढः, अयमेव रिपु-निकर-व्याप्ते दुर्गे प्रथमं सोत्फालमन्तः प्रविष्टः, अयमेव दुर्गाध्यक्षं निगृहीतवान्, अयमेव च परस्तात् समापतन्तीं यवनसेनां त्रिगुणामत्यल्पीयस्या सेनया पराजेष्ट" ।

लितानाम् लौहश्रृङ्खलाभिन्नानाम् उष्णीषिकाबन्धनानाम् । चाकचक्यम्=चमत्कृतिः । अवलोचकलोचनम्=द्रष्टृनयनम् । अतीतडत्=अतीघतत्, अभिभूतं चकारेत्यर्थः । कलितमहाध्वजाः=धारितविजयवैजयन्तीकाः । प्रसर्पिणः=गच्छन्तः । अजूघुपन्=घोषितवन्तः ।

अङ्गुल्या=करशाखया । प्राधान्येन=वैशिष्ट्येन । एकैकम्=प्रत्येकम् । असिधेनुकायाः=छुरिकायाः, दानेन=समर्पणेन ।

शराणाम्=इषूणाम्, प्रपातम्=घोरपतनम् । रिपुनिकरव्याप्ते=शत्रुसमूहावृते । अत्यल्पीयस्या=अतितरां न्यूनया । पराजेष्ट=परास्तवान् ।

तदाकर्ण्य सर्वे प्रासीदन् ऋते दन्दह्यमानहृदयात् क्रूरसिंहात्। अम्बराधीशस्तूत्थाय तस्मै स्वहस्तस्थं महासिमयच्छत्, साधुवादेन च समतूतुषत्। सोऽपि राजद्वयं प्रणम्य, असिं कटिदेशे लम्बयित्वा, निर्दिष्टस्थाने उपाविक्षत्। महाराष्ट्रेश्वरश्च "अयं पाञ्चसाहस्रिकता-योग्यः"-इति शनैरम्बरेशकर्णे आलपत्, सोऽपि चान्वमूमुदत्। किञ्चित् किञ्चिदिदमनेकैरेव श्रुतम्। क्रूरसिंहस्तु तदाकलय्य शूलेनेव कर्णयोस्तोद्यमानो भ्रुवावाकुञ्च्य, मुखमवनमय्य तथैवास्थात्।

ततो महाराष्ट्रेश्वराज्ञया सर्वेऽपि निगृहीता वीरा आनायितास्त्यक्ताश्च। ततो दुर्गाध्यक्षो रहोमत्तखानोऽपि तत्र समानीतो निर्मुक्तबन्धनस्सम्मुखमवनतशिराः स्थितः। तमालोक्य महाराष्ट्रराज उवाच—

"वीर! साधु दर्शितवानसि युद्ध-कौशलम्। उचितमाचरितवानसि स्वामि-पिण्डस्य। जयः पराजयश्च न स्वाधीनः। यदि विजितोऽसि, गृहीतोऽसि, बद्धोऽसि, ततो व्रीडा नोचिता। पलायनं वा रक्ष रक्षेति रोदनं वा व्रीडास्पदम्, न तु वीरता-पुरस्सरं बन्धो वा प्राणत्यागो वा। तदधुना मुक्तोऽसि। रोचते चेत् अस्माननुसर, अथ वा स्वच्छन्दं विजयपुरेश्वरमेवानुसर"।

प्रासीदन्=प्रसन्ना अभूवन्। समतूतुपत्=सन्तोषितवान्। पाञ्चसाहस्रिकतायाः=पञ्चसहस्रसैनिकाध्यक्षतायाः। योग्यः=अर्हः। अन्वमूमुदत्=अनुमोदितवान्। तोद्यमानः=सङ्कर्त्यमानः। आकुञ्च्य=वक्रीकृत्य।

निगृहीताः=चारकीकृताः। निर्मुक्तबन्धनः=विगतनिगडः। अवनतशिराः=नम्रमस्तकः।

स्वामिनः, पिण्डस्य=अन्नादेः। व्रीडा=त्रपा। व्रीडायाः, आस्पदम्=स्थानम्। मुक्तः=परित्यक्तः। अनुसर=अनुव्रज। स्वच्छन्दम्=स्वतन्त्रम्। क्रियाविशेषणम्।

स तु "वीरराज ! अत्यन्तमुपकृतोऽस्मि औदार्य्येणानेन; किन्तु यस्मिन् हस्ते विजयपुर-रक्षार्थं खड्गं वहन् जीवनं यापितवानस्मि; नास्मिन्नेव दग्धहस्ते विजयपुर-विरोधिनां साहाय्याय निस्त्रिंश-माकलयितुमुत्सहते मे चेतः"—इत्युक्तवान् । ततः शिवराजेन यथोचितं विधेहीत्युक्तः, गच्छन् कतिभिश्चिदेव पदैः परावृत्य पुनः प्रोक्तवान्—

"महाराज ! वृद्धोऽसौ वहुभिर्युद्धवान्, किन्तु न भवादृशो वीरराज एव दृष्टः, न वा भावत्का इव योद्धार एव दृष्टाः । तथाऽपि निविवेदयिषामि—यद् भवत्सेनासु न सर्व एव राजभक्ताः सन्ति । केचन विद्रोहिणोऽपि कपटेन स्वं राजभक्तं प्रदर्श्य भवत्कृपा-पात्रतामपि वहन्तो गूढं विद्रोहमाचरन्ति । तादृशेनैव केनचित् प्रथममेव सतर्कीकृता वयम्, अन्यथा अल्पेनैवाऽऽयासेन जय्यमासीद् भवादृशेन दुर्गमास्माकीनम् । तत्सानुसन्धानं शोधनीया स्वसेना, व्रजाम्यहम्"—इति उक्त्वा प्रचलितः ।

महाराष्ट्रराजस्तु कोपारुणीकृतनयनः परितः पश्यन्, सर्वान् सेनापतीन् सम्मुखमेक-लेखायामुत्थाय स्थातुमाज्ञप्तवान् । सर्वेषु तथा कृतवत्सु प्रोक्तवान्—हन्त भो ! महाराष्ट्र-मण्डलेऽपि स्वामि-विद्रोहः ? अपीदं रोचते युष्मभ्यम् ?

दग्धहस्ते = भागधेयरहितकरे । आकलयितुम् = धारयितुम् । विधेहि=कुरु । पदैः=चरणैः । परावृत्य=निवृत्य ।

निविवेदयिषामि=निवेदयितुमिच्छामि । विद्रोहिणः=शत्रवः । भवत्कृपापात्रताम्=भवदीयदयाभाजनताम् । सतर्कीकृताः=सावधानीकृताः । सूचिता आक्रमणसम्बन्ध इति यावत् । आयासेन=श्रमेण । जय्यम्=जेतुं शक्यम् । "शक्यजय्यौ शक्यार्थे" । सानुसन्धानम्=सपरामर्शम् । शोधनीया=परिष्करणीया ।

कोपारुणीकृतनयनः=कोपलोहितीकृतनेत्रः । एकलेखायाम्=एकस्यां पङ्क्तौ ।

सर्वे—विद्रोहाचरणं महापापम्, न रोचतेऽस्मभ्यम् ।

महा०—न रोचते चेद् यदि ज्ञायते सपदि कथ्यतां को विद्रोहीति ?

सर्वे—न जानीमहे । न जानीमहे ।

ततः क्षणं सम्पूर्णा सभा निर्मक्षिकसञ्चारा संवृत्ता । सर्वेऽपि "कस्य प्राणा अवसन्नाः ? कस्य जीवनं समाप्तम् ? को मृत्युना वीक्षितः ? को वा कृतान्तेन पाशितः ?" इति चिन्तयन्तस्तूष्णीका जडीकृता इव चित्र-लिखिता इव चावर्तन्त ।

अथ पुनरेव निर्णेतुमारब्धवान् महाराष्ट्रपतिः ।

महा०—अथ ज्ञायते ह्यः कश्चिद् अनुपस्थितो वा, विलम्ब्य समायातो वा ?

क्रूरसिंह—महाराज ! कश्चन श्रीचरणानामनुग्रह-पात्रमेव विलम्ब्य समागतः, प्राणदान-प्रतिज्ञया सनाथ्येयं चेत् कथयेयं नामापि ।

महा०—न भयं ते । कथय केन विलम्बितम् ?

क्रूर०—रघुवीरसिंहोऽत्यन्तविलम्बेनाऽऽगतः ।

[ततः सर्वेषु क्षणं चकितेषु निभृतञ्चावस्थितेषु]

महा०—मूर्ख ! सत्यं कथय । दृष्टवानस्मि रघुवीरस्य पौरुषं भक्तिं च, न सत्यं मिथ्या-कलङ्केनाङ्कितं भवेद् रघोर्वंशः । रघुवीरस्योन्नतिमासहमानो निन्दसे-इति प्रलपसि । तत्सत्यं वद, अन्यथाऽधुनैव न भवसि ।

निर्मक्षिकसञ्चारा=मक्षिकासञ्चारेणापि शून्या । अवसन्नाः=समाप्तप्रायाः । पाशितः=बद्धः । जडीकृता इव=स्तब्धीकृता इव ।

प्राणदानप्रतिज्ञया=अमुक्षणमन्यया । सनाथ्येय=सनाथितः स्याम् ।

पौरुषम्=पुरुषार्थम् । भक्तिम्=एकतानसेवाम् । प्रलपसि=असम्बद्धं कथयसि । न भवसि=मृतो भवेः ।

[इति शक्तिमुदतुलत् ।

रघुवीरः—[सप्रश्रञ्जलिं बद्ध्वा] महाराज ! क्रूरसिंहो मिथ्या नाभिधत्ते । सत्यमहं किञ्चिद् विलम्ब्य समायातः । क्रूरो न हन्तव्यः ।

तदाकर्ण्य, सकलाऽपि सभा जडीकृतेव मोहितेव समाहितेव च संवृत्ता । अथ पटान्तेन स्वेदमपहृत्य शिवराजः क्रूरेण चक्षुषा रघुवीरं दिधक्षन्निव समगादीत् ।

शिव०—मूढ ! तर्हि किमिति विलम्ब्य समायातोऽसि ?

क्रूर०—[रघुवीराभिमुखम्] कथय, कारणं कथय ।

शिव०—क्षिप्रं कथय ! किं न वेत्सि मदाज्ञा-समुल्लङ्घनस्योल्वणं फलम् ? यद्विलम्बितवानसि,

[ततो भुवमालोकयन्, बद्धकर-सम्पुटो रघुवीरः, किमपि न प्रावोचत् । तदाकलय्याधिकं शङ्कितो महाराष्ट्रराजः पुनरवादीत्]

महा०—मूढ ! विद्रोहिन् ! मिथ्यैव स्वामिभक्तिं प्रकटयसि ?

रघु०—प्रभो ! विद्रोहो मिथ्याऽऽचारो वा नास्मत्कुल-धर्मः ।

महा०—तत्किमिति विलम्बितवानसि ?

रघु०—[मनसैव "सौवर्णि ! तव साक्षात्कार एव विलम्ब-कारणम्, तदत्र किं कथयामि ?"—इति विभावयन् भुवमालोकयन् पाद-नखेन धरा-तलमुल्लिखन् निःशब्द एव समस्थित]

महा०—[अत्यन्तं खिन्नः, स्विन्नश्च पटान्तेन स्वेदं परिहृत्य] आः ! कथं स्वप्नमिव पश्यामि । यस्यैवं मधुरा गीः, यस्यैवं पराक्रमः; स एव च्छली !!

समाहिता=सावधाना । किमग्रे भावीति समवलोकयितुम् ।
उल्वणम्=कठिनम् ।
मिथ्याचारः=असदाचरणम् । कुलधर्मः=अन्वयकर्त्तव्यम् ।
निःशब्दः=मौनी ।
स्विन्नः=घर्मबिन्दुव्याप्त ।

रघु०—महाराज ! अनीहमानस्यापि मे विलम्बो जातः, किन्तु छलं वा स्वामि-विद्रोहं वा न जानामि ।

महा०—मूढ ! ईदृशैः कथनैः प्राण-रक्षा-यत्नो व्यर्थः ।

रघु०—प्रभो ! स्वामिनोऽन्नेन पुष्टमिदं शरीरम्, स्वामिन एव कृपाणेन विलीढं भवतु । यस्य तोषश्चिरमजीवयत्, तस्यैव रोषो व्यापादयतु । नाहं प्राणरक्षार्थं यते, न वाऽपराध-क्षमां याचे । किन्तु यत् सत्यं तद् ब्रवीमि, नाहं स्वामि-विद्रोहापराधी, न वा छलं जाने, किन्तु न जाने केषां दुरदृष्टानां फल-स्वरूपो मे विलम्बः समभूत् । सत्यमिति कथयामि । विलम्बापराधस्य जीविकाच्छेदो वा शिरश्छेदो वा यथा रोचेत, तथा दण्डो विधेय । विद्रोहाचरणन्तु न कृतवानस्मि ।

महा०—वाचाल ! कपटिन् ! तिष्ठ ! पश्यन्तु सर्वे विद्रोहिणो दण्डम् । [इति शक्तिमुदतिष्ठिपत्]

रघु०—महाराज ! अत्र भवतो भ्रमापनोदनाय तत्त्वं कथितवानस्मि । वाचालो नास्मि । अस्मत्कुलं कपटस्य कथामपि न जानाति । जननीमपि न स्मरामि । बालस्यैव तातोऽपि सागरे मग्नः । प्रभुरेव जननी, जनकः, ईश्वरश्च । यदि मृतेऽपि वृद्धो गुरुर्वा नववयस्का एका अपरा व्यक्तिर्वा रोदिष्यति, नाऽन्य । श्रीमतश्चरणं ध्यायन् सुखेन प्राणास्त्यक्ष्यामि । किन्तु यथा भवानेव पश्चात् दुःखेन न तप्येत, तथा विचार्य हन्तव्योऽयं बालः ।

अनीहमानस्य=अनिच्छतः ।

विलीढम्=विनष्टम् । तोष=प्रसन्नता । व्यापादयतु=मारयतु । दुरदृष्टानाम्=दुर्भाग्याणाम् ।

वाचाल !=मिथ्या बहुभाषिन् ! ।

भ्रमापनोदाय=भ्रान्तिदूरीकरणाय ।

नववयस्का-एका-अपरा-व्यक्तिः, एतेन गूढतया विलम्बकारणं प्रदर्शितम्, किन्तु दौर्मनस्याद्दौर्भाग्याद्वा तदानीं न शिवेनावधारितम् ।

महा०—नाहमधिकं शुश्रूषे तव व्यर्थप्रलपितम् ।

[इति कथयित्वा शक्तिं सज्जीकृतवान्]

[ततो जयपुराधीश्वरेण बहुशः सान्त्वितोऽपि, शक्तिं संस्थाप्यापि, क्रोधेनास्थिरः प्रोक्तवान्] न त्वादृशानां निकटे जयपुराधीशानां खड्गः शोभते, तत् प्रतियच्छ ।

रघु०—[खड्गं सम्मुखेऽस्थापयत् ।]

महा०—दूरतो भव, नाहं त्वादृशानां मुखमवलुलोकयिषामि ।

रघु०—[साष्टाङ्गं प्रणम्य निर्गतः

अथ मुहूर्त्तानन्तरं किञ्चित् प्रकृतिमापन्ने महाराष्ट्रेश्वरे, महाराज-जयसिंहेन मन्दमुक्तम्—वीर ! एकदा निर्दोषं बन्धुं वीरेन्द्रसिंहं कलङ्कितवानस्मि । स तु वैभवं त्यक्त्वा न जाने क्व गतः—इत्यद्यापि स्मारं स्मारं खिद्ये । तत् कथयामि, दण्डे त्वरा न विधेया । मन्ये, अस्मिन् विषये बहु अवशिष्यते । तद् अङ्गीकरोषि चेत् प्रातरहमपि वास्तविक-विद्रोहिणं निश्चेतुं यते ।

महा०—नात्र मम विमतिः ।

जय०—कथ्यतां प्रातः सर्वेऽप्येते मच्छिबिरमायान्त्विति ।

महा०—क्रूरसिंह ! प्रियमाल्यश्रीक ! भवन्तः सर्वेऽपि प्रधानवीराः प्रातरेव महाराज-जयपुराधीश्वरस्य शिबिरं गच्छन्तु, पृष्टाश्च सत्यं वदन्तु ।

शुश्रूषे=श्रोतुमिच्छामि ।

अवलुलोकयिषामि=अवलोकयितुमिच्छामि ।

प्रकृतिम्=आवेशविधुरावस्थाम् । आपन्ने=प्राप्ते । कलङ्कितवान्=मिथ्याक्षेपैराक्षिप्तवान् । वैभवम्=सम्पत्तिम् । त्वरा=शैघ्र्यम् ।

विमतिः=विभिन्ना मतिः । विपरीतो विचार इति यावत् ।

एवम्भूता क्षिप्रकारिताऽपि शिवराजपतनस्य कारणेष्वेकमित्यवधारणीयम् । या शैली पश्चादाश्रितैतद्विषयविवेचनाय जयसिंहेन स्वीकृता, सैव

जय०—सादिनः सत्वरं प्रेष्याः, ये रहोमत्तखानमपि सत्वरं परावर्त्त्य, अत्रैव स्थापयेयुः, रघुवीरं चाऽऽनयेयुः ।

महा०—माल्य ! तथा विधेहि । माल्यश्रीकस्तथा विधातुं सादिनो धावितवान् । सायं समयमासन्नमवगत्य च सर्वे समुत्तस्थुः ।

इति नवमो निश्वासः ।



राजनीतिकयोग्यतापूर्णेति को नाङ्गीकुर्यात् ? स्याच्छत्रुपक्षीयेन रहोमत्तखानेन कस्यचन सेनापतेर्व्यर्थहिंसायै कथित भवेदित्यपि नावधारित तदानीं यत्तदपि त्वराविलसितमित्यास्ता तावत् ।

इति श्रीशिवराजविजयवैजयन्त्या नवमनिश्वासविवरणम् ।

"मानो हि महता धनम् !"
"गङ्गा-तीरमपि त्यजन्ति मलिनम्, ते राजहंसा वयम् !"

—स्फुटम्

अथ प्रातरेव महाराज-जयसिंहो विसृज्य पर्य्यङ्कम् 'रघुवीरो निर्दोष:' इत्येव स्वप्नेषु पश्यन् प्रातर्विधेय-कर्मणो निवृत्य सभामधिष्ठाय चिरं निरणैषीत्। तेनाऽऽहूय, "सत्यं वद केन सूचितोऽसि, न ते भयम्, यथा निर्दोषो न भवेद्दण्डितस्तथा विधेहि"—इति पृष्टो रहोमन्त्रज्ञाता उवाच—"महाराज! अस्त्येक: क्रूरसिंहाख्य: सेनापति:। तस्यैव साहाय्येन शास्तिखानेन पुण्यनगरं गृहीतमासीत्। तेनैव वचमपि सूचिता:"।

तत: कोप-कषायितेन महाराजेन क्रूरमानाययितुं सादिन: प्रेषिता:। स तु रात्रावेव गृहं त्यक्त्वा क्वापि पलायित इत्याकलय्य निश्चितस्तस्य दोष इति निरचायि। ततो रघुवीरमानाययितुं हयारोहान् विसृज्य संवादमाप्तवान्—यत् सभानो निर्वासितो रघु-

क्रूरेण क्रूरसिंहेन मिथ्याभियुक्त:, कियत: क्षणस्य कृते स्वाभाविकत्वया स्वीकृतवति च शिववीरे, स्वीयं मानं पालयितुं तथा दूरीभूतो रघुवीरसिंहो यथा तदनिच्छयाऽन्वेषितोऽपि न लब्ध इत्युपक्षिपति "मानो हि महता धनम्" इति "गङ्गातीरमि" ति च।

विसृज्य=परित्यज्य। पर्य्यङ्कम्=शोभनां खट्वाम्। प्रातर्विधेय-कर्मण:=उष:कर्तव्यकार्यात्। निरणैषीत्=निरचैषीत्। आहूय=आकार्य।

कोपकषायितेन=रोषताम्रेण। आनाययितुम्=आनयितुम्। पलायित-इत्याकलय्य, न केवलं रहोमन्त्रज्ञानकथनेनैव दोषो निर्णीतो महा-राजिकज्ञानवता जयसिंहेन, अपि तु पलायनरूपात्तत्कार्यादपीति बोध्यम्।

वीर आवासं गत्वा गुरुं गणेशशास्त्रिणं साष्टाङ्गं प्रणम्य, "अद्य निर्दोषोऽपि प्रभुणा विद्रोहीति कोप-विषयीकृतोऽस्मि । धिङ् मे दुरदृष्टम्" इति मुक्तकण्ठं रुदित्वा, वृद्धं गणेशशास्त्रिणञ्च रोदयन्, गृहान्निर्गतो न परावर्तते—इति ।

इत्याकलय्य सर्वैः समं यावत् खिद्यते महाराजस्तावदकस्मात् प्रविवेश दुःखेन कोपेन च विह्वलो गणेशशास्त्री । उक्तवांश्च—

महाराज ! महाराज ! अपि भवादृशानां सम्मुखे उचितोऽयमन्याय-प्रचारः ? किं रघुवीर-सदृशानि कुलीनानामपत्यानि विद्रोहमाचरन्ति ? "अहह ! हा ! हा ! हा ! मिथ्यैव कलङ्कितोऽस्मि"-इति भूमौ विलुठ्य रुदतो बालस्य मूर्तिः खचितेव मद्हृदये । महाकुलस्य मानधनो बालो न जाने क्व गतः ? न च जाने, असौ मान हानि-खिन्नो व्याघ्र-वदने वा वाहिनी-प्रवाहे वा पतिष्यति, गरलं भक्षयिष्यति, तपोभिर्वा शरीरं जर्जरयिष्यति ! हन्त ! हतोऽस्मि ! को मा वृद्धं 'तात तातेति' मधुर-भाषण-पुरस्सरं सेविष्यते !

तदाकर्ण्य गणेशशास्त्रिणा सहैव सर्वेऽपि वाष्प-धाराभिः कपोलावस्नपयन् ।

ततो रघुवीरान्वेषणाय बहूनश्वारोहान् विसृज्य, गणेशशास्त्रिणं पुनरुवाच महाराज —

वृद्ध ! ह्यो रघुवीरोऽपि कुल-गौरवमशंसत, भवानपि चाऽऽम्रेड्य तत्कुलकथां सस्मरति । तत्र वीरताव्यवहारं, गम्भीरं

आवासम्=निवासभूमिम् । दुरदृष्टम्=दुर्भाग्यम् । मुक्तकण्ठम्=विदारितगलम् । सुस्पष्टमिति यावत् । रोदयन्=क्रन्दयन् ।

अन्यायप्रचार =अनीतिव्यवहारः । कुलीनानाम्=सत्कुलजानाम् । खचिता=आलिखिता । मानधनः=अभिमानवित्तः । वाहिनी-प्रवाहे=तरङ्गिणीस्रोतसि । गरलम्=विषम् ।

अशंसत=अकथयत् । आम्रेड्य=द्वित्रिरुद्घुष्य । वीरताव्यवहार=

भाषणम्, औदार्य-पूरितं हृदयम्, तेजस्विनी आकृतिश्च, कुलमेव परिचाययन्ति । किन्तु विशिष्य विज्ञातुमेतस्य भवतश्च वृत्तान्तं चपलं मे चेतः । मन्ये भवन्तमपि कदाचन दृष्टवानस्मि, भवतो भाषण-भङ्गी चानुकरोत्यस्मद्देशीयानां परिपाटीम् । तद्विशकलय्य प्रोच्यताम्, कुत्रत्यो भवान् ! किमितिहासश्च रघुवीर. ?—इति ।

तदाकर्ण्य वृद्ध उवाच—"महाराज ! इतिहासममुं श्रुत्वाऽधिकं खेदमावक्ष्यति भवान्, तदलं शोक-समुद्र-मन्थनैः" । तत पुनः पुनराग्रहेण पृच्छ्यमानो वृद्ध. शृण्वत्सु माल्यश्रीकगौरसिंहादिपु समवादीत्—

देव ! किं न स्मर्यते भवता जितवार-भूस्वामी भवद्बन्धुः ? यो भवता विनैवापराधमवहेलितः सर्वस्वं त्यक्त्वा, राजपुत्र-देशमेव त्यक्तवान् ।

कथं न स्मर्यते ? आजन्म स्मरिष्यामि, पश्चात्तापैश्च हृदयं धक्ष्यामि । [पटान्तेन बाष्पं परिमृजन्] ततः—

गणेशशास्त्री—तस्यैवाहं पुरोहितोऽस्मि, तत्रैव मां भवान् बहुशोऽद्राक्षीत् ।

जय०—आः । स भवान् ! [इत्युत्थाय प्रणनाम]

गणेश०—[आशिष उक्त्वा] तेनैव सहाहमपि प्रचलितः ।

श्रवणकर्तव्यम् । औदार्यपूरितम्=उदारताभरितम् । तेजस्विनी = प्रतापमयी । आकृतिः=रूपम् । परिचाययन्ति = बोधयन्ति । चपलम्= जिज्ञासाचञ्चलम् । भाषणभङ्गी = कथनशैली । परिपाटीम् = शैलीम् । क इतिहासो यस्य सः किमितिहासः = किमितिवृत्तः ।

आवक्ष्यति = प्राप्स्यति । शोकसमुद्रस्य = खेदपारावारस्य, मन्थनै. = आलोडनैः ।

जितवारनाम्नो ग्रामस्य भूस्वामी = ग्रामपतिः । अवहेलितः=तिरस्कृतः । सर्वस्वम् = सर्वं धनम् ।

पश्चात्तापैः = अनुतापैः । धक्ष्यामि = ज्वलयिष्यामि ।

जय०–किं तेनैव सह ? वीरेन्द्रेणैव सह ? किं वीरेन्द्रसिंहोऽधुनाऽपि भवदाश्रमे सहास्ति ? अपि तमालिङ्गय चिरताप–व्यथां पर्यवसाययिष्यामि ?

गणेश०–महाराज ! प्रभुणा वीरेन्द्रेणैव सह निर्यातोऽस्मि। वयं सर्वेऽपि प्रथमं द्वारकाधीशं द्रष्टुं प्रचलिताः। ततो महता पोतेन मुम्बापुरीं निवर्तमाना अकस्माद् झञ्झावाताऽऽघातात् पोत–पातमन्वभवाम। ततः सपदि मया वीरेन्द्रकुमारो रामसिंह उत्तरीय-वाससा स्कन्धे बद्धः। दैवाच्चाऽऽवाभ्यामुभाभ्यां पुरोहितयज-मानाभ्यां कार्पास–भार–द्वयं लब्धम्, तदवलम्ब्य यावत् पुरोऽव-लोक्य सायात्रिक–क्रन्दन–श्रवण–सञ्जातं रोमोत्कम्पमन्वभवाव; तावन्मन्दर–गण्ड–शैल इव पारावारतलमगात् पोतः।

क्षण तरङ्गैरान्दोल्यमानो वीरेन्द्रसिंहो दरीदृश्यमानोऽपि, ऊर्मि-राशिभिर्न जाने कुतो नीतः। अहञ्च रामसिंह-संहितो मूर्छितप्रायः समस्तां रात्रिं वीचि-प्रचयैर्दोदुल्यमानः, अरुणोदयसमये समप-श्यम्—यत् केचन सायात्रिका आवां स्वपोते उत्थाप्य, पयोधि-

भवदाश्रमे=भवत्कुटीरे। चिरतापव्यथाम्=दीर्घविरहपीडाम्। पर्यवसाययिष्यामि=परितः समापयिष्यामि।

निर्यात =निष्क्रान्तः। महता, पोतेन=जलयानेन। मुम्बा-पुरीम्=मोहमयीम् 'बाँवे'। झञ्झावाताघातात्=सवृष्टिकमहावायुता-डनात्। पोतपातम्=जलयानभञ्जनम्। सायात्रिकाणाम्–पोतवणिजाम्। सयात्रा=समुदितयात्रा द्वीपान्तरयात्रा वा प्रयोजनमस्येति प्रयोजने ठक्।' क्रन्दनश्रवणेन=रोदनश्रुत्या, सञ्जातम्=सम्भूतम्। रोमोत्कम्पम्=पुलकम्। मन्दरस्य=तन्नाम्नोऽचलस्य। गण्डशैल इव=पर्वतच्यूत थूलोपल इव। पारावारतलम्=समुद्रगर्भम्। अगात्=अगमत्।

आन्दोल्यमान =हिल्लोल्यमानः। ऊर्मिराशिभि =लहरितितिभिः। नीतः=प्रापितः। वीचिप्रचयैः=तरङ्गभङ्गैः। दोदुल्यमानः=उत्क्षिप्य-

पयःक्षार-क्षरित-प्रायां त्वचं तैलैर्मर्दयन्तीति। अथ कालेनो-ल्लाघौ आवामितः पुण्यनगरमायातौ। रामसिंहो दुरवस्थासमये स्वनामापि ख्यापयितुं लज्जमानो रघुवीरनाम्नाऽऽत्मानं परिचाययन् महाराष्ट्र-राजस्य चरेषु प्राप्तजीविकः संवृत्तः। इतः परमवगत एव वृत्तान्त एतस्य भवताम्। हा! रामसिंहो मा वार्द्धक्ये विहाय न जाने क गतः?। [ततः क्षणं सर्वेऽपि सचिन्ताः समवर्तन्त। गौरसिंहाद्योऽपि च परस्परमवलोक्य, किमपि व्याजिहीर्षव इव महाराजं विवक्षुमाकलय्य, पुनस्तत एव दत्तकर्णाः समतिष्ठन्त]

जय०—[सजलनयनः समुच्छ्वस्य] शास्त्रिन्! रामसिंहो जीवति। मत्प्रेषिताः सादिनस्तमन्विष्य सपद्यानेष्यन्तीति विशिष्य सम्बोभवीति। अन्यथाऽपि स नाऽऽत्मान व्यापादयिष्यति। यतो नास्मत्कुले जाता मूढयोषित इवाऽऽत्मानं घ्नन्ति। सोऽपि निश्चयेन गूढ-पौरुषं प्रदर्श्य समये पुनरात्मानं परिचाययिष्यतीति विश्वसिति मे हृदयम्।

गणेश०—महाराज! तथाऽस्तु, चिरञ्जीवतु कुमार-रामसिंहः, स एव मेऽवलम्बः। न जाने तत्पिता प्रभुर्वीरेन्द्रो नक्रैर्भक्षितो वा,

माणः। पयोधिपयसः=अम्भोधिवारिणः। क्षारेण=लवणभागेन। क्षरितप्रायाम्=जर्जरिताम्। उल्लाघौ=नीरोगौ। दुरवस्था-समये=अशोभनकाले। प्राप्तजीविकः=लब्धभृतिः। वार्द्धक्ये=वृद्धावस्थायाम्।

व्याजिहीर्षवः=व्याहर्तुमिच्छवः, आकलय्य=विज्ञाय। ततएव=तत्रैव। दत्तकर्णाः=अवहितश्रोत्राः।

विशिष्य=विशेषतः। सम्बोभवीति=अतितरां सम्भवति। अन्यथाऽपि=अप्राप्तावपि। व्यापादयिष्यति=मारयिष्यति। मरिष्यतीति यावत्। मूढयोषित इव=मूर्खस्त्रिय इव। आत्मानं घ्नन्ति=आत्म-हत्यां कुर्वन्ति। गूढपौरुषम्=गुप्तं पुरुषकारम्। विश्वसिति=विस्रम्भते।

अवलम्बः=आधारस्तम्भः। नक्रैः=मकरैः। यादोभिरिति यावत्।

तरङ्गैरेव कथाऽवशेषीकृतो वा, तटं प्राप्यापि कृतान्तेन वीक्षितो वा, क्वापि पुत्रशोकाकुलो जीवति वेति ।

गौरसिंहः–शास्त्रिन् ! महाराज ! जीवति वीरेन्द्रसिंहो वीरवरः । नेदीयस्येव ब्रह्मचारि–कुटीरे जटिल–वेषेण वसति । स्वपुत्रं रामसिंहमेव प्राप्तुं देवमाराधयति । वयमपि चिरं कुमार–रामसिंहममार्गयाम, परन्तु रघुवीर एवायमिति परिचयो न लब्धः । हा दैव ! विचित्रा ते घटना ! यदर्थं तातो देवशर्म्मा वयञ्च चिराय रुदिमः, स एव कण्ठगतो मणिरिव न ज्ञातः ।

ततः सर्वे चिरं बहुविधं वीरेन्द्रादि–विषये आलेपुः । परतः सर्वैः सह जयपुर–पुरन्दरः स्वयं कुटीरं गत्वा ब्रह्मचारि–वेषं वीरेन्द्रमालिलिङ्ग । उक्तवांश्च यद्–मयि क्षमां विधाय द्विगुणं राज्यमङ्गीकृत्य सनाथ्यतां राजपुत्रदेशः–इति । सोऽवोचत्–महाराज ! न भवतो दोषः, भवत्येव भाव्यम् । अहन्तु कुमार–रामसिंहस्य मुखं दृष्ट्वा काशीं गत्वा वयो निःशेषयिष्यामि । महाराजेन रामसिंह एवान्विष्यताम्, तस्मै एव राज्यं दीयताम् । अन्धोऽहं यत् प्रत्यहं पश्यन्नपि नाज्ञासिषं–यद् रघुवीरो मे रामसिंहः—इति ।

अथ गणेशशास्त्रिणाऽपि वीरेन्द्रः समालिङ्गितः । परतश्च खेदमया बहव आलापा अभूवन् ।

परम्परया वृत्तान्तमिमं शृण्वन्नेव महाराष्ट्रराजोऽपि कुटीर-

कथावशेषीकृतः=प्रणाशितः । कृतान्तेन=यमेन । वीक्षितः=दृष्टः ।

नेदीयसि=निकटस्थे । जटिलवेषेण=साधुवेषेण । आराधयति=सेवते । अमार्गयाम=अन्वेषयाम । रुदिम=क्रन्दामः ।

आलेपुः=आलापं चक्रुः । ब्रह्मचारिवेषम्=वर्णिलिङ्गिनम् । सनाथ्यताम्=स्वीक्रियताम् । भाव्यम्=भवितव्यम् । निःशेषयिष्यामि=समापयिष्यामि । नाज्ञासिषम्=नावेदिषम् ।

मायातो बाष्पैः कपोलौ क्षालयन्, "ममैवाविचार्यकारितायाः फलमेतत्"–इत्यसकृदुवाच । तावत्प्रविश्य भृत्येनैकेन कथितं "जयतु जयतु जयपुराधीश्वरः! तत्रभवतः सम्राजः पत्रमादाय दिल्लीतः सादिन आयाताः, शिबिरद्वारि च तिष्ठन्ति । अत्र प्रभवः प्रमाणम्" ।

ततो वीरेन्द्रं गणेशं च बहुशः सान्त्वयित्वा सर्वेऽपि समुत्थाय स्वहयानारूढा वायुवेगेन निर्दिष्ट–शिबिरमायाताः । अन्तः प्रविश्य पत्रं पठित्वा जयपुरेश्वरः सर्वान् विसृष्टवान्, रहसि च महाराष्ट्रेश्वरेण समालपत् ।

जय०—राजन्, पत्रमिदं दिल्लीश्वरस्य ।

महा०—आम् ! अवगच्छामि ।

जय०—भवतो मेलनेन प्रसीदति सम्राड् इति प्रकटयति ।

महा०—प्रसादोऽयमत्रभवतः ।

जय०—भवन्तं साक्षात्कर्तुं महाराजस्य महानभिलाषः ।

महा०—[क्षणं तूष्णीं स्थित्वा] तत्किं सम्राडित आजिगमिषति ?

जय०—नहि नहि । तत्रैव भवन्तं सच्चिकीर्षति ।

महा०—महाराज ! भवद्वचने सर्वथा विहितविश्वासोऽस्मि, किन्तु न भवति मे प्रत्ययलेशोऽपि यवनेषु । तत् स्वगृहमागतं चिरविरोधिनं चेन्निगृह्णीयात् ॥

जय०—मैवम्, मैवम्, अहं तस्य पितुस्समीपे चिरं युद्धकार्यमकरवम् । तन्मामत्यन्तं सम्मानयत्येषोऽपि—इति निश्चिनोमि ।

अविचार्यकारितायाः = अनवधार्य करणस्य । असकृत् = अनेकवारम् ।

मेलनेन = सन्धिना ।

सच्चिकीर्षति = सत्कर्तुमिच्छति ।

प्रत्ययलेशः = मात्रयाऽपि विश्वासः ।

अस्मासु मध्यस्थेषु न प्रतीपमाचरिष्यति सम्राट् ।

महा०—[चिरं चिन्तयित्वा] महाराज ! चिरं यवनैर्युद्धवानस्मि इति स्मरन् मे शत्रुतां निश्चितं निग्रहीष्यति मां सम्राड्-इति न जाने कः कथयतीव मम कर्णे, लिखतीव च हृदये ।

जय०—शत्रुरपि संहितो मित्रं भवति । ततोऽपि भवान् कुशलिनं त्यक्तवान् कुमारं मायाजिह्मम्, समर्य्यादां यापितवान् कुमारीं रसनारीम्, सपराक्रमं विजितवान् रुद्रमण्डलमहादुर्गम्—इति किं तेन न स्मरिष्यते ?

महा०—आर्य ! ये काशी-मथुरादि-तीर्थ-स्थानानि निरर्थं भ्रंशयन्ति, मन्दिराणि निपातयन्ति, प्रतिमाश्च चूर्णयन्ति; तेषां न सम्भाव्यते सौजन्य-लेशोऽपि । तत् क्षम्यताम्, युद्धे मत्तुमुपदिशति, न च मेऽन्तरात्माऽङ्गीकरोति दिल्ली-यात्राम् ।

जय०—[क्षण विचिन्त्य] अथ मन्यताम्-मया लिखितं भवदस्वीकारं श्रुत्वा पुनर्भवता सह युद्धमारभेत ?

महा०—तद् योत्स्ये !

जय०-एतस्मिन् विषये सत्वरता नोचिता । निरीक्ष्यताम्,ससेनोऽहमेव समीपे निवसामि। यदि भवता सह योद्धुमहमेवाऽऽदिश्ये ?

प्रतीपम् = विरुद्धम्, शत्रुकृत्यम् ।

कथयतीव = श्रावयतीव ।

संहितः = सम्मिलितः । कुशलिनम् = अक्षतम् । समर्य्यादाम् = धर्मरक्षणपुरस्कृताम् । यापितवान् = प्रापितवान् । सपराक्रमम् = सबलप्रदर्शनम् ।

निरर्थम् = निष्प्रयोजनम् । चूर्णयन्ति = पेषयन्ति । ध्वंसयन्तीति यावत् । उपदिशति = कथयति । अन्तरात्मा = अन्तःकरणम् । तदुक्तम्महाकविना—

"सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः"

सत्वरता = शैघ्रयम् । ससेनः = सवाहिनीकः । आदिश्ये = समाज्ञप्तः—

महा०—[विचिन्त्य] महाराज ! मम कृपाणः स्वदेशीयानां शोणितं न पिपासति—इति पूर्वमेवोक्तवानस्मि । परं दिल्लीगमने निग्रहमाशङ्कते मे हृदयम् ।

जय०—निग्रहो नाऽऽशङ्कनीयः, कुशलेन भवन्तं पुनरत्र परावर्तयितुमहं प्रतिजानामि । मम पुत्रो रामसिंह: स्वसहकारेण भवन्तं सभाय नेष्यति, सत्करिष्यति च । कुमार-मायाजिह्ममपि पत्रं लिखामि । सोऽपि ससम्मानं प्रतियापयिष्यति ।

महा०—श्रुतं श्रीमता गोवध-प्रतीकार-विषये सम्राट्-समीपे पत्रमेकं प्रेषितमासीत्, किन्तु तन्नाङ्गीकृतं तेन । एवमेव पुनर्भवदीय-मन्त्रणा-श्रवणे बधिरीभूय, यदि इतोऽपि स मयि पापमाचरेत् ?

जय०—तर्हि अहमपि स्वदेह-त्यागेन प्रायश्चित्तमाचरिष्यामि ।

महा०—शान्तं पापम्, शान्तं पापम् । यथाऽऽज्ञाप्यते तथा करिष्यामि ।

जय०—अथाधुना मध्याह्न-क्रिया निर्वर्तनीयाः । सपद्येव च दिल्ली-यात्रा विधेया । तद्विषयेऽपरसमये आलपिष्यामः ।

स्याम् । निग्रहम्=बन्धनम् । कुशलेन=क्षेमेण । प्रतिजानामि=प्रतिज्ञा करोमि । स्वसहकारेण=निजसहायकत्वेन । सत्करिष्यति=आदरिष्यते । प्रतियापयिष्यति=प्रत्यावर्तयिष्यति ।

गोवधप्रतीकारविषये=गोहिंसानिवारणार्थम् । भवदीयायाः, मन्त्रणायाः=विचारणायाः, श्रवणे=श्रोत्रगोचरीकरणे । बधिरीभूय=अदत्तकर्णो भूत्वा । पापम्=निग्रहादिकम् ।

प्रायश्चित्तम्=पापशोधनम् ।

मध्याह्नक्रियाः=सन्ध्यादिकाः । निर्वर्तनीयाः=समापयितव्याः । अपरसमये=अन्यस्मिन् काले । आलपिष्यामः=संभाषण करिष्यामः ।

ततो महाराष्ट्रपतिः स्वालयमायातः। जयपुरेश्वरश्च स्वशिबिर एव भोजनादि-क्रिया निरवर्तयत्। ततः किञ्चिच्छयनेन किञ्चित् पर्य्यटनादिना च दिनमयापयत्।

× × ×

अथास्तङ्गते मरीचिमालिनि सर्वतो व्याप्ते महान्धकारे चपलित-चञ्चु-पुटासु प्राचीमवलोकमानासु चकोरीषु शनैरुदगान्निशानाथः।

समयोऽयं शरदन्तस्य, ऋतुरेप हिमः, शीतल समीर सरति, द्विगुणीकृतं वस्त्र रोचते, चिरमरुणा सन्ध्या रात्रीभूता। ईदृशे समये तोरण-दुर्ग-समीपे हनुमन्मन्दिरात् पूर्वतः पुष्पवाटिकायामासन्दीषु उपविष्टास्तिस्रो बालाः परस्परमेवमालपन्ति स्म।

प्रथमा—सौवर्णि! समाश्वसिहि समाश्वसिहि, कदाचिदलीको भवेदेष वृत्तान्तः। चारुहासिनि! सान्त्वय सान्त्वय सहचरीम्।

चारुहासिनी—प्रियसखि! सत्य वदति विलासिनी। यावन्निश्चित्य न ज्ञायते, यावच्च प्रामाणिकैर्न कथ्यते; तावन्मुधा शोकैरात्मनो ग्लपनं व्यर्थम्।

सौवर्णी—[अञ्चलेन वाष्पमपहृत्य] विलासिनि! चारुहासिनि!

स्वालयम्=स्वसदनम्। निरवर्तयत्=समापितवान्। अयापयत्=अक्षपयत्।

× × ×

चपलितचञ्चुपुटासु=चञ्चलितत्रोटिषु। प्राचीम्=ऐन्द्रीम्। अवलोकमानासु=पश्यन्तीषु। शशिन उदयमानस्य निरीक्षणार्थम्। उदगात्=ऊर्ध्वमायात्, उदित इति यावत्।

शरदः, अन्तः, तस्य। हिम=हेमन्तः। शीतलः=हिममिश्रः। चिरमरुणा=अतिलोहिता। रात्रीभूता=रात्रिताङ्गता। सन्ध्याकाल एव रात्रिभासनमिति यावत्। आसन्दीषु=वेत्रासनिकासु।

अलीकः=असत्यः।

प्रामाणिकैः=सत्यवाग्भिः। मुधा=वृथा। व्यर्थम्=अनावश्यकम्।

गतदिवसमारभ्यैव विमनायमानं मे चेतः। रात्रौ निद्रामपि न लब्धवती, किञ्चिल्लग्ननिमेषा च भयङ्करान् स्वप्नान् दृष्टवत्यस्मि, मध्याह्ने च भोजनशालायाः पृष्ठतो गच्छतोर्न जाने कयोरालापमिमं भयानकमश्रौषम्। सत्यतां चैतस्य विह्वलीभवद् हृदयमेव मे प्रमाणीकरोति। भगिन्यौ! क्षत्रियकन्याऽहम्, दृढा मे प्रतिज्ञा, तमेव वरयिष्यामि, ब्रह्मचर्येणैव वा शरीरहतकं शोषयिष्यामि।

चारु०–प्रियसखि! सिद्ध्यन्तु ते मनोरथाः। तमेव प्राप्स्यसि, तमेव वरयिष्यसि। अञ्जनीसूनुस्साधयतु ते कार्यम्।

सौ०–[निःश्वस्य] आः! किं तादृशा आकृतिविशेषा अपि विद्रुह्यन्ति? कथमेष मिथ्या-कलङ्कः स्थानं लब्धवान्?

विला०–प्रिये! यदि मिथ्यैष कलङ्कः, तदचिरादेव स्वयं महाराष्ट्रराजः पश्चात्तापैस्तप्यमानः पुनस्तमन्विष्य, अभ्यर्हिततरे पदे नियोक्ष्यति। दैव-घटनायामलं शोकेन।

सौ०–शोकों हि कलङ्क-विषये! यद्यहं युद्धे तस्य क्षत्रियधर्मेण प्राणत्यागमप्यश्रोष्यम्; तत् सुखेन तन्नाम संस्मृत्य स्वयमपि प्राणान् व्यसक्ष्यम्। परं कलङ्को न सह्यते क्षत्रियैः।

[तावद् दूरतः]–"अन्तिके! अन्तिके!" इति समश्रावि बालस्येवा-

विमनायमानम्=उन्मनायमानम्, खिन्नमिति यावत्। किञ्चिल्लग्ननिमेषा=ईषन्मुद्रितनयना। भयङ्करान्=भीतिजनकान्। भोजनशालायाः=पाकशालायाः। विह्वलीभवत्=खेदमिश्रमौत्सुक्यमाश्रयत्। प्रमाणीकरोति = निश्चाययति। वरयिष्यामि = विवाहयिष्यामि। शरीरहतकम्=व्यर्थीभूत देहम्।

अञ्जनीसूनुः=वायुतनयो हनूमान्।

आकृतिविशेषाः=विशिष्टस्वरूपाः। स्थानम्=पदम्।

अचिरात्=शीघ्रम्। तप्यमानः=क्लिश्यमानः। अभ्यर्हिततरे=अतिपूजनीये। नियोक्ष्यति=नियोजयिष्यति। दैवघटनायाम्=अदृष्टव्यापारे।

क्षत्रियधर्मेण="युद्धे चाप्यपलायनम्" इत्येवंरूपेण। व्यसक्ष्यम्=अत्यक्ष्यम्।

ऽऽह्वानम् । ततः सपदि समुत्थाय चारुहासिनी ततोऽभिमुखीभूय, "गोपाल ! एते समागच्छावः"—इत्युच्चैरुच्चार्य सौवर्णी बहुशः सान्त्वयित्वा, "भ्रातृजाये ! उत्तिष्ठ, यावः"–इति विलासिनीमपि सह नीत्वा मन्दिराभिमुख प्रययौ ।

सौवर्णी तु व्यामूढेवोत्थाय क्षुपात् क्षुपं कुटात् कुटं प्रति पर्य्यटन्ती, कदली–दल–खण्डमाच्छिद्य, तेनैवाऽऽत्मानं वीजयन्ती, आत्मानमपि विस्मरन्ती, पूर्वतो वहुदूरं निर्गता तडाग-पर्यन्तमायाता विकचानां भ्रमद्-भ्रमर-झङ्कृतानां कैरवाणां शोभामवलोकयन्ती, सोपानैरवतर्तुमारब्धवती च अकस्माच्छुश्राव निःश्रेणि-प्रान्तस्थ-शिला-वेदिकास्थस्य कस्यापि "उलङ्घ्य सिन्धो सलिलम्" इति हनूमत्स्तोत्र-पाठम् । झटिति तत उन्मुखीभूय पश्यन्ती चावालोकयद्-यत् कश्चिदंस-द्वय-लम्बमान-धूसरित-जटाजूट', दीप-शिखा-दीप्ति-

---

याव.=गच्छावः ।

व्यामूढेव=विक्षिप्तेव । क्षुपात्=ह्रस्वशाखिनः । "ह्रस्वशाखाशिफः क्षुपः" इत्यमर. । कुटात्=वृक्षात् । "अनोकहः कुटः शाल " इत्यमरः । पर्य्यटन्ती=भ्रमन्ती । कदलीदलखण्डम्=रम्भापत्रभागम् । वीजयन्ती=व्यजनयन्ती । भ्रमद्भिः=चलद्भिः, भ्रमरैः=द्विरेफैः, झङ्कृतानाम्=सशब्दानाम् । कैरवाणाम्=अम्भोजानाम् । सोपानैः=निःश्रेणिभिः । निःश्रेणिप्रान्तस्थायाम्=अधिरोहिणीकोणस्थायाम्, शिलावेदिकायाम्=प्रस्तरवितर्दिकायाम्, स्थस्य=तिष्ठतः । सलिलमिति—

सलीलम्

यः शोकवह्नि जनकात्मजायाः ।
आदाय तेनैव ददाह लङ्काम्
नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥

इति सम्पूर्णम् । अंसद्वये=स्कन्धद्वये, लम्बमानः, धूसरितः=धूलिभरितः, जटाजूटो यस्य सः । दीपशिखादीप्तिरव=आलोकसाधन-

द्योतमान - विशाल-कुङ्कुम-तिलकः, भगवच्चरण-चिह्नाङ्कित-ललाटः, पीत-मृत्तिका चूर्ण-च्छुरित-वदन-वक्षो-बाहु-दण्ड, तुलसी-कमलाक्ष-माला-विलम्बित-गलः, रामनामाङ्कित-वसन-वेष्टित-मूर्द्धा, पीत-वसनपरीधानः, मृगचर्म्मासनस्थः, समीपस्थिततुम्बीपात्रः, तेजःपुञ्ज-मिवोद्वमन् अल्पवया ब्रह्मचार्यस्तीति ।

तं यथा यथा नेदीयांसं प्रदेशमासाद्य गम्भीरमवलोकितवती; तथा तथा गाम्भीर्यमौदार्य तेजःप्रचयं चाधिकमधिकमुपलभमाना स्तव-समाप्तौ तेनापि वीक्षिता, शिरसाऽञ्जलिं बद्ध्वा प्रणनाम । तेन च "जयति श्रीरामचन्द्रः"–इत्युक्ता बद्धकरसम्पुटा समपृच्छत्–"स्वामिन् ! किमपि निविवेदयिषत्येषा दीनदीनाऽबला" ।

स्वामी०–[किञ्चिद् गणयित्वेव] जाने, कस्यापि क्षत्रिययूनो विषये प्रश्नः ।

ज्वालाद्युतिवत्, द्योतमानः=प्रकाशमानः, विशालः = विपुलः, कुङ्कुमतिलको यस्य सः । भगवच्चरणचिह्नेन, अङ्कितम्=मुद्रितम्, ललाटं यस्य सः । पीत-मृत्तिकायाः=रामरजसः, चूर्णेन, छुरितम्=रूषितम्, वदनवक्षोबाहुदण्डं यस्य सः । तुलसीकमलाक्षमालया विलम्बितो गलो यस्य सः । रामनामाङ्कितेन=रामाभिधानचिह्नितेन, वसनेन = वाससा, वेष्टितः, मूर्धा=शिरो यस्य सः । पीतं वसनं परीधानं यस्य सः । तेजः-पुञ्जम्=प्रकाशसमूहम् । उद्वमन्=उद्गिरन् । अल्पवयाः=तरुणः ।

नेदीयांसम्=अतिनिकटगतम् । गम्भीरम्=गाढम् । गाम्भीर्यम्=गूढप्रकृतित्वम् । तेजःप्रचयम्=प्रतापव्रातम् । उपलभमाना=प्राप्नुवती । स्तवस्य=स्तुतेः, समाप्तौ=अन्ते । उक्ता = प्रणामप्रत्यभिनन्दनरूपेण कथिता । तथा च मनुः "अभिवादनशालस्य न करोत्यभिवादनम् । आशिषं वा न कुरुते स याति नरकं ध्रुवम् ॥" बद्धकरसम्पुटा=कृताञ्जलिका । निविवेदयिषति=निवेदयितुमिच्छति । दीनदीना=अतिकृपणा । अबला=नारी ।

क्षत्रियस्य, यूनः=युवकस्य, नववयसः ।

सौ०—[चकितेव] भगवन् ! धन्यं भवतस्तपोबलम् ! न किमप्यज्ञात स्वामिनः । परतः कथ्यताम् ।

स्वा०—स तु प्रभुणा विद्रोहीत्यवहेलित. ।

सौ०—अपि सत्यमेतत् ? हा कष्टम् !

स्वा०—[पुनर्विचिन्त्य] तथ्योऽयं वृत्तान्तः ।

सौ०—तत. ?

स्वा०—ततः स नाहमपराधीति प्रभुमसकृत्तदुक्त्वा प्रणम्य गृहादिकमखिलं विसृज्य क्वापि निर्गतः ।

सौ०—धिक् ! नाहं तादृशमुदारस्वभाव कुलीनं युवानं विद्रोहीति विश्वसिमि । सूर्यो यदि प्रत्यगुदियात्, गगनतलं वा प्रफुल्ल-कमल-मण्डल मण्डितमवलोक्येत; ततोऽपि न भवेन्मे विश्वासस्तदीयकपटस्य ।

स्वा०—[मुखमन्यत. कृत्वा, मन्द मन्दम्] भाग्यमिदं तस्य यद्भवत्येवं दृढं तं धार्मिकं प्रत्येति ।

सौ०—स्वामिन् ! भक्ति-बलेन परोक्षमपि प्रत्यक्षं भवतः । कथयतु भवानेव किं सत्यं वीरोऽसौ प्रभु गुप्तं व्यरुणत् ?

स्वा०—तस्य वंशे प्रभुद्रोही कोऽपि नाभूत्, सोऽपि विनैव दोषं मात्सर्य्य-पूरितेनेर्ष्या-परवशेन पिशुनेन निन्दितः, विनैव

अवहेलित.=तिरस्कृतः ।

तथ्य.=सत्यः ।

प्रत्यक्=पश्चिमायाम् । अव्ययमिदम् । उदियात्=उदयं प्राप्नुयात् । प्रफुल्लकमलमण्डलमण्डितम्=विकसितपद्मनिचयनिचितम् । तदीयस्य, कपटस्य=प्रवञ्चनस्य ।

प्रत्येति=विश्वसिति ।

भक्तिबलेन=देवसेवाबलेन । परोक्षमपि=इन्द्रियागोचरमपि । प्रत्यक्षम्=साक्षात् । व्यरुणत्=व्यद्रुह्यत् ।

मात्सर्यपूरितेन=परोत्कर्षासहिष्णुत्वभरितेन । ईर्ष्यापरवशेन=विद्वेषपरतन्त्रेण । पिशुनेन=सूचकेन खलेन वा ।

विचारं प्रभुणा कोपविषयीकृतः।

सौ०—अथ कुशलेन जीवति ?

स्वा०—जीवति।

सौ०—अपि पृच्छामि को निर्बन्धस्तस्य ?

स्वा०—[अङ्गुलिषु गणयित्वा ध्यात्वा च] स प्रकाशेनेव पौरुष-प्रचय-सम्पादितेन यशसा धरातलं धवलीकृत्य कलानिधिरिव परस्तादात्मानं प्रकटयितुमिच्छति। अन्यथा मिथ्याकलङ्क एव च वर्द्धमाने प्राणानपि परिजिहासति।

सौ०—[आकाशे चक्षुषी स्थिरयित्वा] प्राणनाथ! वरं प्राण-त्याग, न च कलङ्क-मलीमसं जीवनम्। किन्तु एषा, हृतभाग्या! [इति निःशब्दमरोदीत्]

स्वा०—[मुखमन्यतः परावृत्य कानिचिदश्रूणि विमुच्य] भद्रे! वेद्मि निष्कपट-प्रणयिनी भवती! पतिव्रतानां पुण्येन किं न भवति ? इति भवत्या एव निश्चलानुरागेण पुण्यबलेन च कदाचित् स कृतकार्यो भवेत्।

निर्बन्धः=आग्रहः।

प्रकाशेनेव=आलोकेनेवेत्युपमा। पौरुषप्रचयसम्पादितेन=पुरुष-कारसमूहार्जितेन। यशसा=कीर्त्या। धवलीकृत्य=श्वेतीकृत्य। कला-निधिरिव=इन्दुरिव। परस्तात्=अनन्तरम्। मिथ्याकलङ्के=अनृता-पवादे। वर्द्धमाने=एधमाने। परिजिहासति=परित्यक्तुमिच्छति।

कलङ्कमलीमसम्=अपवादमलिनम्।

अश्रूणि=अस्राणि। अय रघुवीर एव साधुवेष इति नाविज्ञातप्रायं स्यात्पाठकाना विवेकिनाम्।

निष्कपटप्रणयिनी=निर्व्याजप्रेमिका। वस्तुतस्तु सकपटः प्रणयो भवत्येव नेति विदुषा सम्मतिः। निश्चलेन=अचञ्चलेन, अनुरागेण=प्रेम्णा।

सौ०—महामात्य ! यद्यपि स निगूढ एव चरिष्यति, तथाऽपि किमहं तं द्रष्टुं शक्ष्यामि ?

स्वामी—अहं स्वच्छन्दं विचरामि । कदाचित् तेन सह कचिन् मेलनं भवेत्; तदहं निखिलं तव दुःख वृत्तान्तं कथयिष्यामि, समये समये तुभ्यमात्मानं दर्शयितुं चानुरोत्स्यामि ।

यावदेष समाप्नोत्यालाप., तावदकस्मात्सोपानोपान्तस्थ-वट-कुट-कुटीरादश्रावि—"तिष्ठ रे तिष्ठ सौवर्णि ! चिररात्राय त्वं रघु-वीराभिमानिन्यासीः । इदानीं त्वां बलाद् वशंवदां करोमि"—इति कोपेनेवोदीरित. क्रूरः शब्दः । तदाकर्ण्यैव सौवर्णी कुल-मर्य्यादा-भङ्ग-भीरु , झटिति "रक्ष रक्षेति" व्याहरन्ती, स्वामिनमा-श्लिपत । सोऽपि "बाले ! मा भैषी" इत्याम्रेड्य कथयन्नुत्थाप्य तां स्वासनादन्यतः संस्थाप्य, सम्मुख सोपान-परम्परातोऽवतरन्तं खडखडायित-पादत्राणं कृष्ण-वसनं मुण्डित-श्मश्रु-कूर्चं करकलित-च्छुरिकमस्पष्टाकृतिं कञ्चन युवानमपश्यत् । तथा दृष्ट्वैव स्वामी बद्धपरिकरः समाकुञ्चितजट स्वतुम्बी-पात्रादेकां छुरिकामादाय, हस्ते धृत्वा, किञ्चिदग्रत उपसृत्य, योद्धुं सज्ज समतिष्ठत । स त्वागत्य स्वामि-द्वितीयां सौवर्णीमाकलय्य, कोपस्फुरिताधर उवाच—

निगूढ=नितान्तं गुप्त. । शक्ष्यामि=पारयिष्यामि ।

अनुरोत्स्यामि=अनुरोधं करिष्यामि । वटकुटः-वटवृक्षः एव कुटीरः क्षुद्रगृह, तस्मात् ।

वशंवदाम्=स्वाधीनाम् । कुलमर्य्यादायाः=पातिव्रत्यरक्षणरूपान्वय-सीमायाः, भङ्गात्=खण्डनात्, भीरु=भीता । आश्लिपत्=आलिङ्गत् । स्वासनात्=स्वविष्टरतः । खडखडायिते=खडखडशब्दकारिणी, पाद-त्राणे=उपानहौ यस्य तम् । कृष्णवसनम्=कालवाससम् । करे कलिता=धारिता, छुरिका=असिधेनुका, येन तम् । बद्धपरिकरः=सनद्धकच्छः । समाकुञ्चितजट.=बद्धकेशः । स्वतुम्बीपात्रात्=निजालाबुभाजनात् । उपसृत्य=गत्वा । सज्ज.=सन्नद्धः । स्वामी=संन्यासी, द्वितीयः=सहायः, यस्याः सा, पक्षे वस्तुतश्च प्रकृते स्वामी=पतिरेव द्वितीयो यस्याः सा ।

"कुलटे ! रघुवीरं चुम्बसि, भिक्षुकांश्चैतादृक्षान् रहसि भाषसे। न च मया बहुशः प्रार्थ्यमानाऽपि पूर्णतया वीक्षसे। तदद्य त्वां बलादश्वस्य पृष्ठे बद्ध्वा नेष्यामि"।

स्वामी—कस्त्व रे ! सतीं कुमारीं कुलटां वदसि ! कस्य सामर्थ्यमस्मिन् हनूमन उद्यान-प्रान्ते एवं बलात्कारं मनसाऽपि चिन्तयितुम् ?

ततः स आह—भिक्षुक ! त्वमपि च्छुरिकां वहसि। [विहस्य] त्वयि भिक्षापात्रं शोभते; न तु शस्त्रम्।

स्वा०—मूढ ! ब्रह्मचर्य-व्रत-रक्षायै भिक्षापात्रं वहामः, किन्तु क्रूरस्य तव हत्यायै शस्त्रमपि धारयामः।

स०–[किञ्चित् स्तब्धीभूय] किं कथयसि ? क्रूरसिंहं परिचितवानसि ? ततोऽपि किम् ? तवोपवीतं पश्यन् ब्रह्महत्याया बिभेमि।

स्वा०—नास्मि ब्राह्मणः। अहं क्षत्रिय-ब्रह्मचारी। जाने त्वाम्, त्वमेव क्रूरसिंहोऽसि ! त्वमेव रघुवीर-निर्वासन-पिशुनोऽसि, त्वमेव च कुलकन्या-बलात्कार-पातक-पतयालुरसि। पश्यत्वेपाऽपि क्षत्रिय-कुमारी रघुवीर-प्रत्यर्थिनः प्राणदण्डम्। ततः सक्ष्वेड-

---

कोपस्फुरिताधर.=क्रोधचञ्चलोष्ठः। भिक्षुकान्=याचकान्। रहसि=एकान्ते।

सतीम्=सच्चरिताम्। कुमारीम्=अविवाहिताम्। कुलटाम्=व्यभिचारिणीम्। सामर्थ्यम्=शक्तिः। उद्यानप्रान्ते=वाटिकैकदेशे। बलात्कारम्=साहसकर्म।

ब्रह्मचर्यव्रतस्य, रक्षायै=पालनाय। भिक्षापात्रम्=याञ्चामत्रम्। क्रूरस्य=क्रूरनाम्नः, कठोरकृत्यनिरतस्य च। हत्यायै=मारणाय।

स्तब्धीभूय=स्थगितीभूय नामश्रवणतः। परिचितवान्=विज्ञातवान्।

रघुवीरस्य निर्वासने=निष्कासने, पिशुनः="चुगलखोर" इति हिन्दी। कुलकन्यायाः=कुलीनबालिकायाः, बलात्काररूपे पातके=अघे, पतयालु.=पतनशीलः। रघुवीरस्य, प्रत्यर्थिनः=शत्रोः। सक्ष्वेडम्=

मुभौ दक्षान् वामांश्च मार्गाश्चरन्तौ विकोश-च्छुरिका-हस्तौ परस्परं जिघासया समवर्तिषाताम्। तावदकस्मात् क्रूरसिह. स्वामिनो वामं भुज मूलं लक्ष्यीकृत्य छुरिकां प्रहितवान्। स्वामी तु वाहु-स्पृष्टाग्रच्छुरिकमेव हस्तं वामहस्तेन दृढं गृहीत्वा, दक्ष-हस्तेन तस्य वक्षसि च्छुरिकया दृढं प्राहरत्, अपातयच्च। स तु पतितमात्र. समुवाच—"रे! रघुवीरस्येव छुरिकया निहतोऽस्मि" स्वाम्युवाच—मूढ! न जानीषे रघुवीर एव राघवः! माञ्च राघवाचार्य इति वदन्ति जना'। व्यर्थमेव रघुवीरं कलङ्कितवानसि—इति भुङ्क्ष्व खलता-लताया फलम्। क्रूरस्तु तत्क्षणादेवोद्र्ध्व-श्वास-प्रश्वास-पराधीनः समुत्तम्भितनयन प्रस्खलद्रुधिर-धारा-स्नपित-सोपान, "हा रघुवीर! हा राघव! कृतस्य फलमासादित-वानस्मि। निर्दये सौवर्णि! त्वदर्थं नङ्क्ष्यामि"—इति घुरघुरायितेन कण्ठनास्पष्टं मुहुराम्रेडयन् प्राणानत्याक्षीत्।

राघवाचार्यस्वामी च क्रूर-कवोष्ण-रक्ताक्ता छुरिका दक्ष-कराङ्गुलि-पृष्ठ करभ मणिवन्ध कूर्परं च तडागजलेन प्रक्षाल्य,

---

सनिह्नादम्। चरन्तौ=भ्रमन्तौ। विकोशच्छुरिकाहस्तौ=नग्नासिधेनुकाकरौ। जिघांसया=मारणेच्छया। समवर्तिषाताम्=समस्थिषाताम्। वाहौ स्पृष्टा=ससक्ता, अग्रच्छुरिका=असिधेनुकाग्र यस्मिन्नेवम्भूतम्। वक्षसि=उरसि। प्राहरत्=अताडयत्। अपातयत्=अपोथयत्। निहतः=ताडितः। खलतालतायाः=दुष्टताव्रततेः। ऊर्ध्वश्वासप्रश्वासयो.=मरणकालिकश्वासप्रश्वासयोः, पराधीनः=वशगः। समुत्तम्भितनयनः=समुद्घूर्णमाननेत्र.। प्रस्खलन्त्या=पतन्त्या, रुधिरधारया=लोहितप्रवाहेण, स्नपितानि=निर्णिक्तानि, सोपानानि=निःश्रेणयो येन स.। त्वदर्थम्=त्वत्कृते। नंक्ष्यामि=म्रिये। प्राणान्=असून्।

क्रूरस्य कवोष्णेन रक्तेन. अक्ताम् आर्द्रां छुरिकाम्। करभम्=कराद्बहिः। "मणिबन्धादाकनिष्ठ करस्य करभो बहिः" त्यमरः। मणिबन्धम्=हस्तान्तिकस्थमस्थिबन्धम्। कूर्परम्=कफोणिम्। "केहुनी" इति हिन्दी।

छुरिकां कोशेनाऽऽच्छाद्य, तुम्बी-पात्रे निधाय, जटाजूटं पुनः प्रसार्य, उत्तरीयं स्कन्धे सन्धार्य, मृगचर्मासनमाकुञ्च्य कक्षे धृत्वा, सौवर्णीमुवाच-सुन्दरि ! मा स्म भैषीः । उत्तिष्ठ त्वदालय-पर्यन्तं त्वामनुसरिष्यामि । कुशलेन तातभवन-पर्यन्तं यापयित्वा स्वच्छन्दं विचरिष्यामि ।

सौवर्णी तु दृष्ट्वेमां रोमहर्षिणी घटनाम्, प्रत्यक्षीकृत्य च स्वामिनो विलक्षणं वीर्यम्, कोऽयम् ? कुतोऽयम् ? इति विभावयन्ती, तूष्णीका तेन सह स्वावासाभिमुखमुपससार । स्वालयस्य निकटे तेन विसृज्यमाना च प्रणम्य "स्वामिन् ! पुनः कदा दर्शनं भवेद-साधारण-बन्धोः, जीवन दीक्षा-गुरोः श्रीचरणस्य ?" इति पृष्टवती । "स्वच्छन्दा वयम्, यदा कदैव पुनरायास्यामः" इत्युत्तीर्णा, "नैषा दासी विस्मरणीया, प्रायशः समागमेन दर्शन-दानेन च कृतार्थनीया"-इति साम्रेडं निवेदयन्ती, पुनः प्रणम्य, सम्मुखमपश्यद्—यद् राघवाचार्यः स्वामी नास्ति । ततश्चायं स्वप्नो वा माया वा, व्यामोहो वा,—इति चिन्ता-चक्र-घूर्णित-चित्ता स्वावसथं प्रविवेश ।

× × ×

तुम्बीपात्रे=अलाबुभाजने । उत्तरीयम्=उत्तरासङ्गम् । आकुञ्च्य=सङ्कोच्य । कक्षे=बाहुमूले । अनुसरिष्यामि=अनुव्रजिष्यामि ।

रोमहर्षिणीम्=पुलककारिणीम्, भीषणामिति यावत् । विभावयन्ती=विवेचयन्ती । तूष्णीका=वाग्यता । स्वावासाभिमुखम्=स्वनिवाससम्मुखम् । असाधारणबन्धोः=निष्कारणमित्रस्य । जीवनदीक्षागुरोः=प्राणदानपरायणस्य । कृतार्थनीया = कृतकृत्यतां नेया । व्यामोहः = चित्तविक्षिप्तता । चिन्ताचक्रेण=विचारसन्तानेन, घूर्णितं=भ्रान्तम्, चित्तं यस्याः सा । स्वावसथम्=स्वसदनम् ।

× × ×

महाराष्ट्रराजस्तु कालेन सर्वाणि स्वमित्राण्याकार्य, सर्वेषां सम्मतिं दृष्ट्वा, कैश्चिद्दिल्ली-गमनायानुमोद्यमानः, परैर्वार्यमाणोऽपि, अन्ततो दिल्लीयात्रामेव निश्चितवान्।

एकदा तु रात्रौ भटवेषेण स्वप्रजा अवलोकयितुं पर्य्यटन् महाराष्ट्रराजोऽकस्माद् द्रुम-निचय-च्छायातो द्रुतमागच्छन्तं कञ्चन महात्मानमिवादर्शत्। स तु पीत-रेणु-रूषित-सर्वाङ्गः, रामानामाङ्कितोत्तरीय, "जय जयेति" वदन् प्रणमन्तं गुप्ताकारमेनं शनैरुवाच—

"वीर! राजपुत्र-देशीया राजानोऽप्येते कन्यादानैर्यवनैरात्मानं सम्बध्नन्तोऽर्द्धयवना एव, ये स्वतन्त्रानार्यनरेशान् विजित्य यवन-हस्ते समर्प्पयन्तो वीरम्मन्यतया श्मश्रु परिमृशन्ति। इयं धन्यता वा जघन्यता वा प्रमाणमत्र श्रीमद्हृदयमेव। कोऽयमासीन्मानसिंहस्य मानः, यद् यवनार्थमुदयपुराधीश्वरं सकल-भारताभिजन-मान्यं मेदःपाट-परिवृढमत्यन्तमचिक्लिशत्। तस्यै-

---

आकार्य=आहूय। अनुमोद्यमानः=अनुज्ञायमानः। वार्यमाणः= निषिद्ध्यमानः।

भटवेषेण=राजपुरुषनेपथ्येन। द्रुमनिचयच्छायातः=वृक्षप्रातच्छायायाः। महात्मानम्=साधुम्। पीतरेणुरूषितसर्वाङ्गः=रामरजश्छुरितसकलशरीरः। गुप्ताकारम्=गूढाकृतिम्।

कन्यादानैः=बालिकार्पणैः। यवनैः, सहयोगे तृतीया। आत्मानम्= स्वम्। सम्बध्नन्तः=सम्मेलयन्तः। अर्धयवनाः=नेमम्लेच्छाः। स्वतन्त्रान्=स्वाधीनस्वदेशीयनरपतिरक्षितान्। वीरम्मन्यतया=भटम्मन्यतया। श्मश्रु=मुखलोम। परिमृशन्ति=स्पृशन्ति। "मूछों पर ताव देते हैं" इति भाषायाम्। धन्यता=श्रेष्ठता। जघन्यता=नीचता। सकलभारताभिजनमान्यम्= समस्तहैन्दवनिवासिमाननीयम्। मेदःपाटपरिवृढम्=मेवाराधीश्वरम्। "मेवाड" इत्यधुना प्रसिद्धः शब्दो 'मेदःपाट' शब्दापभ्रंश इति व्यासादीनामभिप्रायः। तर्करत्नमहोदयास्तु स्वीयेऽमरमङ्गले सव्युत्पत्तिकं मेवारशब्दमेव तद्वाचकत्वेन स्थिरयन्ति। उभयोरपि शक्तत्वं साधुत्वञ्चेति विवेचनापटवः। अचिक्लि-

वाद्ध्वन्येपोऽद्धवन्यो ढुण्ढारवन्यवन्यध्यक्षो जयसिंहः । मा श्रीमानस्य मायामयीमुररीकरोतु मन्त्रणाम् । यत्येत चेद्, महाराष्ट्रैः सह विजयपुरेश्वरः, गोलखण्डेश्वरः, उदयपुरेश्वरः योधपुरेश्वरः, अपरे च बहवो वीरवरा महाराजा दिल्ली–दलन–पक्षमवलम्बेरन् । तदलं वृद्धेन जयसिंहेन ज्यौतिष–पण्डितेन ! भवत्वेष जर्जरो निर्जरसां राजा, भर्जयतु च भवान् स्वगर्जन-तर्जन-ज्वलनेन वर्ज्यानेतान् भारतद्रुहः ।"

तदाकर्ण्य यावद् वीरशिवराजः किमपि विवक्षति; तावद् घनच्छाय–पलाशि–पटल एवालीयत स्वामी । महाराष्ट्रेश्वरश्च सचिन्तो निवृत्य तादृक्षानेव स्वप्नान् पश्यन् रात्रिं निनाय । पुनश्च यथासमयं मित्रैर्दिल्लीयात्रामेव निर्णीय, स्वात्मीयस्य स्वर्णदेवस्य हस्ते निखिलं महाराष्ट्र–देश–राज्य–भारं समर्प्य, अश्वारोहिणां पञ्चशतीं सहस्रञ्च पदातीनां सह नीत्वा, मातरं प्रणम्य, जयपुराधीश्वरादेशानुसारेण तदीयैरपि शतसङ्ख्यैः सादिवीरैर्वृतो

शत्=क्लेशितवान् । अध्वनि=मार्गे । अध्वन्यः=पथिकः । ढुण्ढारवन्याः=ढुण्ढारारण्यस्य, राजपुत्रदेशे जयपुरप्रान्तो 'ढुण्ढार' इत्युच्यते, या, अवनी=पृथिवी, तस्याः, अध्यक्षः=स्वामी । ढुण्ढारशब्देन वनीशब्दं सयोज्य तद्वासिना तदध्यक्षस्य चारण्यकत्वमुद्घोषितम् । मायामयीम्=प्रवञ्चनासमेताम् । मन्त्रणाम्=परामर्शम् । यत्येत=यत्नः क्रियेत । जर्जरः=वृद्धः । निर्जरसाम्=देवानाम् । राजा=अधिपतिः । मृतः स्वर्गसिंहासनमलङ्करोत्विति यावत् । भर्जयतु=दाहयतु । स्वगर्जनतर्जनाभिन्नेन, ज्वलनेन=दहनेन । रूपकम् । वर्ज्यान्=वर्जनीयान्, अस्पृश्यान् ।

घनच्छायपलाशिपटले=सान्द्रच्छायवृक्षसमूहे । अलीयत=अदृश्यताङ्गतः ।

स्वात्मीयस्य=स्वीयस्य । स्वपदं स्पष्टार्थम् । जयपुराधीश्वरस्य, आदेशस्य=आज्ञायाः, अनुसारेण । तदीयैः=जयसिंहीयैः । सादिवीरैः=

गौरेण, स्तन्यजीवेन, माल्यश्रीकेण, कविवर-भूषणशर्म्मणा च सहितोऽनिच्छन्नपि दिल्ली प्रतस्थे। प्रथमेनैव दिनेन क्रोश-दशक-मतिवाह्य, शैलतटेषु उपकारिका आयोज्य, सायं समये पर्वतस्यै-कस्य शोभा-वीक्षण व्याजेन मित्रैरेव सह्याधित्यकामारूढः, तत्रैव शिलासु स्थित्वा विमनायमानः पुनरात्मीयैरेवमालपत्।

महा०—न जाने किमिति ग्लायतीव मे हृदयम्!

माल्य०—महाराज! शत्रु-गृह-प्रवेश एव ग्लानि-कारणम्।

भूषण०—महाराज! ग्लानिर्नोऽऽवहनीया, न रोचते चेदद्यापि प्रतिनिवृत्य जयसिंह-सेनैवासनीया। प्रस्थीयते चेद् दिल्ली गत्वा, अवरङ्गजीवोऽपि वीक्षणीयः। न भवतस्तथा ग्लानिः, यथा स ग्लायति भवत्स्मरणेन। दृष्ट्वैव भवन्तं हरिद्रा-द्रव-स्नापित-कपोल इव निःशोणितवदनः, विस्मृततुरङ्गः, पारिप्लवकुरङ्ग इव कुरङ्गः, पर्यन्वेषितसुरङ्गः, सवेपथु-दुरङ्गः सवत्स्यति समासादित-भयानक-नवरङ्गोऽवरङ्गः। येन भवानी-नामक-खड्गेन भवानीकिनीविजय-

---

अश्वारोहिभटैः। अनिच्छन्नपि=अनभिलषन्नपि।

उपकारिकाः=पटभवनानि। शोभावीक्षणव्याजेन=छटावलोकनच्छद्मना।

ग्लायति=क्षीणहर्षतामापद्यते।

शत्रुगृहप्रवेशः=रिपुसदनगमनम्।

असनीया=क्षेप्तव्या, जेतव्येति यावत्। प्रस्थीयते=गम्यते। हरिद्राद्रवेण=महारजनरसेन, स्नापितौ=धौतौ, कपोलौ=गण्डस्थले यस्य सः। निःशोणितवदनः=निर्लोहिताननः। विस्मृततुरङ्गः=अनवधृताश्वः। पारिप्लवकुरङ्ग इव=चञ्चलहरिण इव। कुत्सितो रङ्गः=वर्णः, यस्य सः। पर्यन्वेषितसुरङ्गः=गवेषितपलायनमार्गः। सवेपथूनि=सकम्पानि, दुरङ्गानि=दुरवयवाः, यस्य सः। समासादितः=लब्धः, भयानकः, नवः, रङ्गो येन सः। भवानीकिन्याः=ससारस्थितनिखिलशत्रुवाहिन्याः, विजयला-

लाभवता भवता विविधा आपद उत्तीर्णाः, हस्ते एवास्ति स खड्गो भवतः ।

तावदकस्मादेकतः समश्रावि–"महाराज ! विरम, इतोऽपि प्रति निवर्तस्व, मा विश्वसिहि दिल्ली-कलङ्कम्, खड्गमाश्रय" इति गम्भीरः शब्दः। सर्वैस्ततः पातितदृष्टिभिश्च स एव घृत–तुम्बी–पात्रः, काञ्चन–चूर्ण–प्रचय–रुचिर–मृत्स्ना–मर्दित–सर्वाङ्गः, कृत–कुङ्कुम–तिलकः, तुलसी–माला–लसद्विशाल–वक्षःस्थलः, त्रिदण्डी स्वामी राघवाचार्यो दृष्टः । स स्वागतमात्र एव दक्षिण–हस्तमुत्थाप्य गम्भीर-घोषेणपुनरगादीत्—

भवता=जयं प्राप्तवता । आपदः=आपत्तयः ।

समश्रावि=श्रुतः । प्रतिनिवर्त्तस्व=परावृत्तिं स्वीकुरु । मा-विश्वसिहि, दिल्लीकलङ्कमिति शेषः, मा विश्वास विधेहि, अवरङ्गे । अत्र माशब्दो नतु माङ्, अंत एव न लुङ् । खड्गमाश्रय=सङ्ग्रामय । घृततुम्बीपात्रः=गृहीतालाबुभाजनः । काञ्चनचूर्णप्रचयवत्=हिरण्य-क्षोदव्रातवत्, रुचिरया मृत्स्नया=प्रशस्तमृदा, मर्दितं सर्वाङ्गं यस्य सः । त्रिदण्डी=दण्डत्रयवान् । अर्जुनेनापि त्रिदण्डधारणमेव कृत सुभद्राहरण-प्रकरणे । ब्राह्मणसंन्यासिना सदा दण्डत्रयधारणमेवोचितमिति स्पष्टं निरूपितं विहितकल्पतरुपरिमलखण्डनैः पण्डितस्वामिराममिश्रशास्त्रिभिर्महामहो-पाध्यायैरिति मूलकृदनुमोदिता तच्छिष्यकृता टिप्पणी । सोऽयं सम्प्रदायवाद इति न विस्मर्तव्यम् । वैष्णवा हि त्रिदण्डिनः । वैष्णवपुराणेषु त्रिदंडधार-णमर्जुनादेः, शैवेषु चैकदण्डधारण दरीदृश्यत इति नेदं किमपि । मिश्राणां खण्डनञ्च बालबुद्धिप्रतारणातिरिक्तं न किमपीति पुराणमतदीपिकाया विस्पष्टं प्रतिपादितमिति तत एवावेक्षणीयं वादरसिकैः । सिद्धान्तन्तु नीलसर-स्वती जानातु ।

"वीर ! इतोऽपि विरम । चिर-प्रवृद्धं वैरम् । अविश्वास्योऽवरङ्गजीव' दिल्लीतो दूरं महाराष्ट्र-सेना । स्फुरति च मे वामं नयनम्, तदितोऽपि निवृत्यताम् । यदि दिल्ली-वल्लभस्याऽऽज्ञया जयपुरेश्वरो युध्यते; तद् योत्स्यामहे, [विचार्य] युध्यन्ताम् । राजपुत्रदेशीया युद्धकुशलाश्चेन्महाराष्ट्रा अपि दुर्बलेन करेण न वहन्ति चन्द्रहासम् । युद्धे प्राणास्त्यक्ष्यथ, ततोऽपि मार्तण्ड-मण्डलं भित्त्वा स्वर्गमार्गमाकुलयिष्यथ । यदि विजेष्यध्वे, ततोऽपि लोकद्वये, कीर्त्यां कीर्तिं धर्मरक्षा-पुण्यञ्च लप्स्यध्वे । अलं कुक्कुट-मेदोमेदस्वि-तुन्द-तुन्दिलस्य, वारुणी-व्याघूर्णित-नयनस्य, अवरङ्गजीवस्य गृहावग्रहणी-घर्षणेन । आः ! नावलोकयितुं शक्नोमि !! यो महाराष्ट्र-मण्डल-चक्रवर्ती; स एवाद्य दिल्लीकलङ्कस्य करप्रदः संवृत्त' !! धर्म-धारि-धौरेयः पातकपुञ्जपतयालुं प्रेक्षितुं पथिकः ! कर-कलित-भवानी-करवालोऽपि जाल्मस्य पाटच्चर-परिपन्थिनोऽग्रे विनयं दर्शयिष्यति !! हा देव ! विचित्रा ते गतिः !"

इतोऽपि=अस्मादपि स्थानात् । चिरप्रवृद्धम्=दीर्घकालवर्धमानम् । वामम्=दक्षिणेतरम् । अशकुनमिदमिति लोकप्रसिद्धम् । योत्स्यामहे=सङ्ग्रामयिष्यामः । स्वस्यापि कर्तृकोटौ निक्षेप इति शिवराजभृत्येष्वन्यतम इति विज्ञातं स्यात्, साधुताकपटञ्च प्रकटितं स्यादिति विचार्य आह युद्ध्यन्ताम्, भवद्भिरिति कर्तृपदम् । दुर्बलेन=बलशून्येन । आकुलयिष्यथ=क्षोभयिष्यथ । लोकद्वये=इहामुत्र च । कीर्त्याम्=कीर्तनीयाम्, गेयामिति यावत् । कीर्त्तिम्=यशः । धर्मरक्षायाः=वैदिकधर्मपालनस्य, पुण्यम्=धर्मम् । कुक्कुटमेदोभिः=चरणायुधमांसादिभिः, मेदस्विना=चिक्कणेनोन्नतेन च, तुन्देन, तुन्दिलस्य=बृहत्कुक्षेः । वारुण्या=मदिरया, व्याघूर्णिते=चाञ्चल्यमुपयाते, नयने, यस्य तस्य । गृहावग्रहण्याः=देहल्याः, घर्षणेन=घट्टनेन । करप्रदः=राजस्वसमर्पकः । पातकपुञ्ज-पतयालुम्=अघौघपतनशीलम् । प्रेक्षितुम्=द्रष्टुम् । पथिकः=पान्थः । जाल्मस्य=धूर्तस्य । पाटच्चरपरिपन्थिनः=लुण्ठकस्य शत्रोः । विनयम्=नम्रताम् ।

तदाकर्ण्य क्षण सर्वे चित्र-लिखिता इव नीरवाः सवृत्ताः। परतो महाराष्ट्रपतिरवादीत्—

नवीन-संन्यासिन् ! हृदयग्राहि ब्रूपे। परन्तु कथय, यदि भारतीयानां वैदिक-धर्मावलम्बिनामेव मांसैर्मासलीक्रियेत भारत-वसुमती, तत् किं न भवति पापम् ?

राघवाचार्यः—पाप कस्य ? यो विरोधिनां पक्षमवलम्ब्य स्वबन्धूञ्जिघांसति; यत्कुलजा यवनानां श्यालत्वे श्वशुरत्वे च प्रतिष्ठां मन्वते, तस्य। न त्वेतस्य, यः स्वधर्मं रक्षितु द्विपतो रुणद्धि। [ततः सर्वेषु क्षण नीरवेषु पुनः] वीर ! गत-दिवसेऽपि भवन्तं कथितवानस्मि, तदेव चाद्याप्याम्रेडितवानस्मि। गच्छाम्यहमधुना तीर्थान्यटितुम्, स्वस्ति भवते, यथा रोचेत तथा विधेयम्— [इत्युक्त्वा सपदि शाल-जाले निलिल्ये]

महा०—[उच्चैर्निश्वस्य] गगन-गिरेवाऽऽलपितमिदम्। किं कुर्याम् ? स्मारं स्मारमिमां गिरं स्व-बाल्य-स्वप्नानिव पुनश्चक्षुषोरग्रत इव पश्यामि—यद् यवनदुर्गाणि वशीकृतवानस्मि, सुदूर-पर्यन्तं देवमन्दिरेषु ध्वजा उड्डीयन्ते, मथुरा-वृन्दावन-वाराणस्यादि-तीर्थेषु निर्भयं श्रीमद्भागवत-रामायणादि-कथा घोष्यन्ते,

नीरवाः=निःशब्दाः।

नवीनसन्यासिन् !=अचिरगृहीतसंन्यास ! चिरान्न धर्मो विचारित इत्येवं ब्रूष इति हार्दम्। हृदयग्राहि=मनोहारि, क्रियाविशेषणम्। मांसलीक्रियेत=पुष्टा क्रियेत। भारतवसुमती=हैन्दववसुन्धरा।

जिघांसति=हन्तुमिच्छति। श्यालत्वे=पत्नीभ्रातृत्वे। श्वशुरत्वे=पत्नीपितृत्वे। द्विपतः=शत्रून्। आम्रेडितवान्=द्विस्त्रिः कथितवान्। तीर्थानि=पुण्यस्थलानि। अटितुम्=भ्रमितुम्। शालजाले=वृक्षसमूहे। "अनोकहः कुटः शालः" इत्यमरः। निलिल्ये=निलीनः।

गगनगिरा=नभोवाण्या। उड्डीयन्ते=दोधूयन्ते। घोपयन्ते=

वयं दिल्लीमपि आवृतवन्तः, कम्बोज-पर्य्यन्तं यवनाः पराजिताः, भवानी च स्वयमिव प्रकटीभूय यवन-हतकैर्योद्धुं मामुत्साहयते। तत् किं व्यर्था एवैते स्वप्नाः? व्यर्थ एव भवानी-समुत्साहः? किमद्य दिल्ली-कलङ्को मां निग्रहीष्यति? न जाने किं भावि! दिल्ली प्रस्थितोऽस्मि। स संन्यासी च निवारयति। अकारण-बन्धुरेष तथ्यं ब्रूते—इति निश्चिनोति मे हृदयम्।

भूषण०—[क्षण सर्वेषु नीरवेषु] महाराष्ट्रराज! यस्य भवतो नामापि श्रुत्वा यवन-रमणीनां गर्भाः पतन्ति; अवरङ्गजीव च ज्वर इवाऽऽविशति, कस्तं निग्रहीष्यति? यदि गगन-विहारी विहङ्गराजः पिञ्जरे निगृह्येत, यदि शार्दूलो वशे क्रियेत; यदि वा नागनाथोऽनन्तो घटे मुद्र्येत, ततोऽपि को जानीते सम्भाव्येत भवनो निग्रह-कथा न वा? तच्चिन्ता-चक्रेणालम्! यदि कोपकषायितो रणाङ्गणे बलेन जयसिंहस्यापि शिरस्यसिमसिष्यसि; तन्मन्ये तस्योष्णीषं लौह-शिरस्त्रं सकवचमङ्गं महोपवेशनं दन्तावलञ्च द्विः कृत्वा वसुधां विदार्य कमट-पृष्ठे रेखां विधास्यसि। यदि

उच्चैः कथ्यन्ते। आवृतवन्त =अवरुद्धवन्तः। व्यर्थाः=निष्प्रयोजनाः। निग्रहीष्यति=स्वायत्तीकरिष्यति, दण्डयिष्यति। अकारणबन्धुः= निष्प्रयोजनमित्रम्। तथ्यम्=सत्यम्।

गर्भाः=औदरिका बालाः। ज्वरः=शरीरतापः। गगनविहारी= आकाशचारी। विहङ्गराजः=गरुडः। पिञ्जरे=पक्षिस्थित्यर्थंनिर्मिते लौहादियन्त्रे। शार्दूलः=मृगाधीशः। नागनाथः=सर्पराजः। अनन्तः= तन्नामा, शेष इति यावत्। घटे=गर्गरे। मुद्र्येत=नियन्त्र्येत। निग्रहकथा=नियन्त्रणवार्त्ता। चिन्ताचक्रेण=चिन्तनव्रातेन। कोपकषायितः=रोषकलुषः। असिम्=चन्द्रहासम्। असिष्यसि=क्षेप्स्यसि। उष्णीषम्=शिरोवेष्टनम्। लौहम्=आयसम्, शिरस्त्रम्=शीर्षत्राणम्। सकवचम्=सवारत्राणम्। महोपवेशनम्=विशालासनम्। दन्तावलम्=करिणम्। वसुधाम्=धरिणीम्। विदार्य=विभिद्य। कमठ-

च अवरङ्गजीवमरुणेनापाङ्गेनापि निरीक्षिष्यसे; तत्तं मूर्छयिष्यसि। दिल्लीं गच्छ वा, परावर्तस्व वा, न भवति ते आशङ्कास्थानं किमपि। दिल्ली प्रयात आपत्सु पतितोऽपि कौशलेन प्राग्मोद्धारः कुशलेन स्वदेशमायास्यसीति निश्चितं वदामि, मा स्म शङ्किष्ठा ब्राह्मण-वचने। यथा रोचेत तथा विधेहि।

माल्य०—[मुहूर्तं सर्वेषु स्तब्धेषु] भगवन्! चिर-विचारेण निश्चिते विषयेऽलं चिन्तया। जयपुरेश्वरेण सन्धिर्विहितः। भवतो दिल्लीतः कुशल-निवर्तनं वृद्धेन महाराजेन प्रतिज्ञातम्, सन्ति च रामसिंह-मायाजिह्म-प्रभृतयस्तत्रापि भवतः पक्षावलम्बिनः। सशस्त्रा वयमपि। स भवतो विरुद्धमाचरिष्यति चेत्; सर्वोऽप्येष देशो विद्रोहस्य ज्वालाभिरिव ज्वलिष्यतीति दिल्लीश्वरोऽपि वेवेत्ति। जयसिंहेन सह युद्धे पराजय इति स्पष्टमुक्तं दैवज्ञवर्येण देवशर्मणा। दिल्लीत आपदोऽप्युल्लङ्घ्य, हनूमानिव लङ्कातः कुशलेन निवर्तिष्यते—इति च क्रियासमभिहारेण कथ्यते दैवज्ञैर्ब्राह्मणैः। तद् यदि दिल्लीं प्रतिष्ठामहे; तदा तदापदोऽपि समुत्तीर्य परावर्तिष्यामहे—इतीष्टदेवं स्मृत्वाऽऽरब्धस्यैवान्तगमनं विधेयम्।

पृष्ठे=कच्छपपृष्ठे। रेखाम्=चिह्नम्। अरुणेन=क्रोधरक्तेन। अपाङ्गेन=नेत्रप्रान्तेन। मूर्च्छयिष्यसि=मूर्छितं विधास्यसि। आपत्सु=विपत्सु। कौशलेन=नैपुण्येन। प्राग्मोद्धारः=लब्धनिष्क्रमणः। कुशलेन=शिवेन। मा स्म शङ्किष्ठाः=शङ्का मा कृथाः।

स्तब्धेषु=मौनिप्रायेषु। कुशलनिवर्तनम्=क्षेमेण परावृत्तिम्। सशस्त्रा=सायुधाः। वेवेत्ति=अतितरां जानाति। दैवज्ञवर्येण=मौहूर्तिकशिरोमणिना। क्रियासमभिहारेण=वारं वारम्। दैवज्ञैः=अदृष्टज्ञैः। प्रतिष्ठामहे=गच्छामः। ताश्च ता आपदश्च तदापदः=भाविविपत्तीः। समुत्तीर्य=उल्लङ्घ्य। परावर्तिष्यामहे=प्रत्यागमिष्यामः। स्वदेशं प्रतीति शेषः। इष्टदेवम्=महाकालिकादिम्। आरब्धस्य=अनुवृत्तस्य। 'अनारम्भो मनुष्याणां प्रथमं बुद्धिलक्षणम्। आरब्धस्यान्तगमनं द्वितीयं बुद्धिलक्षणम्॥'

२

एवमालपतामेव तेषां सगर्जनमेको व्याघ्रः सम्मुखं समापप्तत्। शिववीरश्च सपदि समुत्थाय, दक्ष-कर-धृत-विकोश-च्छुरिको वामे चर्म च धृत्वा तमभिपतितः। यावत्स व्याघ्रः पूर्वकराभ्यां तमाच्छन्दति, तावत्स चर्मणि तदग्रकरौ प्रतिरुध्य, अन्तः प्रविश्य, छुरिकयोदरं विददार। तत्क्षणमेव च शिवसहचरा अपि स्व-स्वखड्गैस्तमोतप्रोतं चक्रुः। अथ सर्वैस्तमालिङ्ग्य 'विजयस्व विजयस्व, शुभ-सूचकमिदम्' इति व्याजह्रे। दिल्लीगमनं च पुनः स्थिरयित्वा स्वोपकार्यां विविशे।

× × ×

समयोऽयं महामहिम-हिमाच्छन्न-शिशिरस्य। ऋतुनैतेन दिनानां परिणाहः, तमीनां तनुता, पयोजाना प्रसन्नता, सलिलानां सुखावगाह्यता च लुण्ठिता। भगवान् भास्करो दक्षिणस्यां निर्वा-

---

इति हि प्रामाणिकाः।

सगर्जनम्=सक्ष्वेडम्। व्याघ्रः=शार्दूलः। समापप्तत्=आपतितः। दक्षे करे धृता विकोशा=नग्ना, छुरिका येन सः। चर्म=असिरक्षणीम्। पूर्वकराभ्याम्=अग्रिमचरणाभ्याम्। पशूनामग्रिमौ द्वौ हस्तौ, पाश्चात्यौ च चरणाविति विवेकः। आच्छन्दति=आवृणोति। अन्तः=उदरान्तिके। विददार=द्विधा चकार। ओतप्रोतम्=विद्धानुविद्धम्। व्याजह्रे=कथितम्। स्वोपकार्या=स्वशिबिरम्। विविशे=प्रविष्टा। सर्वैरिति शेषः।

× × ×

महामहिम्ना=प्रचुरप्रभावेण। हिमेन=प्रालेयेन, आच्छन्नस्य=आवृतस्य, शिशिरस्य। परिणाह=विशालता। लुण्ठितः, इति लिङ्ग-विपरिणामेनान्वीयते यथायथम्। तमीनाम्=रात्रीणाम्। तनुता=लघुता। पयोजानाम्=कमलानाम्। प्रसन्नता=विकासशीलता। सुखेन=आनन्देन, अवगाह्यता=स्नानयोग्यता। लुण्ठिता=चोरिता।

सितः । गगनतलं च प्रायिक-प्रालेय-पातैर्धूम-धूसरितमिव विहितम् । साम्प्रतं तैल-ताप-तूलिका-तरुणी-ताम्बूलादिष्वेव कृतादरा जनाः । जगत्प्राणो जगति प्राणिनो जडीकुर्वन् जवेन वहति । आखण्डल-दिक्कुण्डलतामात्रमुपेयुषः, शुकतुण्ड-च्छवेः, मार्त्तण्ड-मण्डलस्य, अचण्डानां मरीचीनां कोमलमुत्तापं सिषेवयिषूणां शाद्वलेन पथा प्रयातानां वन्यजन्तूना पाद-क्षेप-विहता नैशीथ-मिहिका-प्रचय-भङ्गा एव, आखेटक्रोडा-कौतुकिनां पन्थानमुपदिशन्ति । सुन्दरी-संसर्ग रहितमपि वीरमण्डलमिदं प्रायिक-सीत्कार व्रणिताधरं सरोमाञ्च सवेपथु चास्ति । त्निे सन्नेग-

---

निर्वासित' = निस्सारितः । प्रायिकै = प्रायोभवैः, प्रालेयपातै' = हिमानीपतनैः । धूमधूसरितमिव = धूममलिनमिव । तैलम् = स्नेहः, ताप = अग्न्यातपादिजन्मा, तूलिका = तूलवती, तरुणी = युवती, ताम्बूलम् = नागवल्ली, इत्येतेषु । कृतादराः = विहितप्रणयाः । जगत्प्राणः = समीरणः । प्राणिनः = जनान् । जडीकुर्वन् = स्तब्धीकुर्वन् । जवेन = वेगेन । आखण्डलदिश.=ऐन्द्रया हरितः, कुण्डलतामात्रम् = कर्णभूषणतामात्रम् । उपेयुषः = प्राप्तवतः । शुकतुण्डच्छवेः=कीराननकान्ते' । मार्त्तण्डमण्डलस्य = सूर्यमण्डलस्य । अचण्डानाम् = अकठोराणाम् । मरीचीनाम् = दीधितीनाम् । उत्तापम् = औष्ण्यम् । सिषेवयिषूणाम् = सेवयितुमिच्छूनाम् । शाद्वलेन = घासमयेन । प्रयातानाम् = गतानाम् । वन्यजन्तूनाम् = आरण्यकजीवानाम् । पादक्षेपविहता.=चरणपातदलिताः । नैशीथानाम् = रात्रिपतितानाम्, मिहिकाप्रचयानाम्=हिमनिकराणाम्, भङ्गा =छेदाः । आखेटक्रीडाकौतुकिनाम्=मृगयाव्यसनिनाम् । पन्थानम् = मार्गम् । उपदिशन्ति=प्रकटयन्ति । पथि पतितहिमानीषु चरणचङ्क्रमणचिह्नेन मृगयवः पशुगमनमार्गं निशीथे निश्चिन्वन्तीति तात्पर्यम् । सुन्दरीणाम् = वनितानाम्, संसर्गेण=सम्पर्केण, रहितम्=शून्यम् । वीरमण्डलम् = शूरकदम्बकम् । प्रायिकः=प्रायोभवः, सीत्कारः=अधरखण्डनादिकालिकः शब्दावशेषः यस्मिन् । व्रणिताधरम्=दष्टोष्ठम् । सरोमाञ्चम्=सपुलकम् ।

घोटक-धावनेन न लक्षितो हिम-पात-त्रात-घातः, निशीथिन्यान्तु वरूथिनीयं मन्थरिता ।

तदेवं स्थिरप्रतिज्ञास्ते प्रस्थिताः पथिषु प्रायो गोधूम-यवाऽऽढकी-मसूराऽतसी-सर्षप-हरिमन्थक-हरितानि परिपक्व-धान्य-कपिशानि निर्विडेक्षु-दुर्गमाणि छिद्यमाना-मुद्ग-माष-वज्राणि क्षेत्राणि निरीक्षमाणा', तत्क्षणच्च्योतितेक्षुरसं रसयन्तो नवीनान् सतीनान् खादमानाः, कृत्त-कलम-पुष्कल-पटलेषु वृष-भावली-चालनेन धान्य-पवन-कार्यं सम्पादयता खट्वाः परित्यज्य

सवेपथु=सकम्पम् । स्त्रीसंसर्गे भावि सर्वमिदं हिमानीसम्पर्कतोऽत्रेति विवेचनीयम् । सवेगघोटकधावनेन = सजवाश्वशीघ्रगत्या । हिमपात-त्रातघात' =हिमानीताडनम् । निशीथिन्याम्=तमस्विन्याम् । वरूथिनी=सेना । मन्थरिता=क्षीणजवा ।

स्थिरप्रतिज्ञा.=निश्चितसन्धाः । गोधूम'="गेहूँ", यव.="जौ", आढकी="अरहर", मसूर.="मसूर", अतसी="तीसी", सर्षपः="सरसो", हरिमन्थक ="चना", एभिः, हरितानि=हरिद्वर्णवन्ति । परिपक्वैः धान्यैः, कपिशानि=कपिशवर्णानि । "श्यावः स्यात्कपिशो धूम्रधूमलौ कृष्णलोहिते" इत्यमरः । निर्विडेक्षुदुर्गमाणि=सान्द्रेक्षुदुःखगम्यानि । इक्षु., "ऊख" इति हिन्द्याम् । छिद्यमानानि=कर्त्यमानानि मुद्गमाषवज्राणि येषु तानि । "मूँग उरदी बाजरा" इति लौकिकाः शब्दाः । तत्क्षणच्च्योतितेक्षुरसम्=तत्कालनिस्सारितेक्षुद्रवम् । रस-यन्त =आस्वादयन्तः, पिबन्त इति यावत् । नवीनान्=नूतनान् । सतीनान्=निष्पावान् । "केराव" इति हिन्दी । खादमाना =खादन्तः, कृत्तानाम् = खण्डितानाम्, कलमानाम्=धान्यानाम्, पुष्कलपटलेषु= पूलव्रजेषु । वृषभावलीनाम्=बलीवर्दपङ्क्तीनाम्, चालनेन=भ्रामणेन । धान्यपवनकार्यम्=धान्यपूतीकरणकर्त्तव्यम् । "दँवरी" इति लोके ।

सकौतुकं महाराष्ट्र-वीर-मण्डलमवलोकयतां खेट-खर्वट-वासिनां निरीक्षण-कौतुकमावहन्तः, सूच्यग्रैरहिफेन-फलानि निर्यासार्थं घर्षयन्तीनां कलमान् कृन्ततीनामारण्यक-शुष्क-गोमयराशींश्चिन्वतीनां ग्राम्य-चेटीनां शिवराज-यशोमयानि गीतानि शृण्वन्तश्च कतिपयैरेव सप्ताहैरह्मोमदनगरम्, विराट-देशम्, इन्द्रपुरम्, उज्जयिनीम्, गोपालपुरम्, मथुरां च समुल्लङ्घ्य, अङ्गतु-रसेन्दु-मित-वैक्रमाब्दस्य [१६६६] वसन्तारम्भे दिल्लीनिकटं प्रापुः ।

सम्पादयताम् = कुर्वताम् । खट्वा = पर्यङ्किका । सकौतुकम् = सकुतूहलम् । अवलोकयताम् = पश्यताम् । खेटखर्वटवासिनाम् = क्षेत्रान्तरालस्थरिक्तभूमिनिवासिनाम् । निरीक्षणकौतुकम् = अवलोकन-कुतुकम् । आवहन्तः = धारयन्तः । सूच्यग्रैः = स्यूतिकरणाग्रैः । अहिफेनफलानि = "पोस्ता" इति ख्यातानि फलानि । निर्यासार्थम् = वहिःस्रुतदुग्धप्रायविषार्थम् । निर्यास = "गोंद, लासा" इति लोके । अहिफेनम् = "अफीम" इति हिन्दी । घर्षयन्तीनाम् = घट्टयन्तीनाम् । कलमान् = धान्यानि । कृन्ततीनाम् = खण्डयन्तीनाम्, आरण्यकानाम् = वन्यानाम्, शुष्कगोमयानाम् = "गोइठा" इति ख्यातानाम्, राशीन् = समूहान् । चिन्वतीनाम् = संकलयन्तीनाम् । ग्राम्यचेटानाम् = ग्रामीण-भृत्यानाम् । गीतानि = गीतीः । अह्मोमदनगरम् = "अहमदनगर" इति ख्यातम् । विराटदेशम् = विदर्भप्रान्तम्, "बरार" इति ख्यातम् । इन्द्रपुरम् = "इन्दौर" इति ख्यातम्, "इन्द्रावती"ति तद्वाचकोऽपरः संस्कृतशब्दस्तत्रत्यैर्बहुधाऽङ्गीकृतः । उज्जयिनीम् = अवन्तीम् । गोपाल-पुरम् = वृन्दावनम् । अङ्गानि षड् वेदस्य, ऋतवः षट्, रसाः षट्, इन्दुः-एकः "अङ्कानां वामतो गतिरि"ति-१६६६-संख्यया, मितस्य = परिमितस्य, वैक्रमाब्दस्य = विक्रमराज्यादतीतहायनस्य । वसन्तारम्भे = मधुप्रारम्भे । प्रापुः = प्राप्तवन्तः ।

दिल्लीत. कियद्दूरे यमुनातटे शिबिर-सन्निवेशो गिरिग्राम-समीपे विहि॰, जयसिंह-प्रेपिता. सादिनश्च महाराष्ट्राधीश-समागम-सवाद-कथनाय यमुनामुत्तीर्य दिल्लीं प्रविविशुः।

रात्रौ सर्वेषु सुप्तेषु, एकाकी महाराष्ट्र-महनीयो माल्यश्रीकसहायो वहिर्निर्गत्य यमुनातटे प्रालेयस्नाते पाषाण-खण्डे समुपविष्ट. । कदाचित् श्याम-श्यामैस्तरङ्ग-पटलैर्वहन्तीं यमुनाम्, कदाचन गगन-महासागर-फेन-पटलायितं तारका-पटलम्, पश्यन्, कर्हिचिच्च दीप-प्रचय-सूचित-प्रासाद-मण्डलां यवनराजधानीं निभालयन, मुहूर्त्तं निभृतमेवावतस्थे। परत समवोचत्—"मित्र! इयमेव राजधानी युधिष्ठिरादीना क्षत्रिय-कुल-भूषणानाम्। अत्रैव पृथ्वीराजोऽपि चरमवीर उवास। एतस्या एव नाम श्राव श्रावं हीरात-काम्बोज-गान्धार-समरकन्द प्रभृति-देशवास्तव्याः स्वप्ने-

---

गिरिग्रामस्य="गुडगाव" इति ख्यातस्य, समीपे=अन्तिके। उत्तीर्य=नावा सन्तीर्य, परतटं गत्वा।

महाराष्ट्रमहनीय=महाराष्ट्रवर्णनीयः। माल्यश्रीकः सहायः=सहचरो यस्य स॰। एवञ्चैकाकिताया नाद्वितीयताया तात्पर्यम्, अपि तु समानद्वितीयशून्यतायामिति वेदितव्यम्। प्रालेयस्नाते=हिमभूषिते। श्यामश्यामै=अतिश्यामैः, तरङ्गपटलै=लहरिव्रातैः, वहन्तीम्=चलन्तीम्। गगनमहासागरस्य=नभोनीरनिधेः, फेनपटलैः=डिण्डीरचयैरिवाऽऽचरितम्। रूपकम्। तारकापटलम्=उडुगणम्। दीपप्रचयेन सूचितानि प्रासादमण्डलानि=हर्म्यसमूहाः, यस्या ताम्। निभालयन=पश्यन्। क्षत्रियकुलभूषणानाम्=क्षात्रान्वयालङ्काराणाम्। चरमवीर=अन्तिमः शूर। एतस्या एव=दिल्ल्या एव। हीरात="ईरान" इति ख्यातः, काम्बोज="काबुल" इति प्रसिद्धः, गान्धार="कन्धार" इत्यपभ्रंशीभूताभिधेय., समरकन्द=एवमेव प्रसिद्धः, एव प्रभृतिदेशाना वास्तव्या=निवासिनः। "वसेस्तव्यत् कर्त्तरि णिच्च"।

ष्वपि "पलायध्वं ! भोः पलायध्वम्"—इति विलेपुः; सैवेयमधुना तद्देश-वासिभिरेव कदर्य्यैर्भुज्यते । अहह ! तत्रैव सनातनधर्मस्य तिरस्कारः । अत्रैव मया प्रवेष्टव्यम् । भगवान् भव्यं विदधातु !"

माल्य०—विदधातु भव्यं भगवान् ! तावदकस्माद् यमुनात-टादुद्भूता समश्रावि कस्यापि उदार-गम्भीरा वाणी—"सर्वथा भव्यं विदधातु भगवान्"—इति ।

ततः 'कुतोऽयम् ? कोऽयम् ?' इति विजिज्ञासमानैः सावधान-तया तत एव निपुणं निरीक्षमाणैरदर्शि यत् कश्चन हस्ते पुष्पं गृहीत्वा स्वाभिमुखमायातीति । समीपमागते च तस्मिन्नुभाभ्यां दृष्टं—'अस्त एव स्वामी पूर्वावलोकित'—इति ।

राघवाचार्यः—सर्वथा भव्यं विदधातु भगवान् । गृह्यतां मथु-राधीशस्य प्रसादकुसुममेतद् ।

महाराष्ट्रराजः—स्वामिन् ! कथमेवं वेगेन समायातो महाराष्ट्र-देशाद् दिल्ली भवान् ?

राघ०—राजन् ! संन्यासिनो वयमलौकिकाभ्यास-परायणाः, तदस्मिन् विषये भवता किमपि न प्रष्टव्यम् ।

महा०—[कराभ्यामाशीःकुसुम गृहीत्वा शिरसा संयोज्य] महा-नयमनुग्रहः ।

माल्य०—[प्रणम्य] अलौकिक एषोऽनुग्रहः श्रेम-क ।

तद्देशवासिभि =हीरातादिदेशीयैः । कदर्य्यैः=नीचैः । भुज्यते = शास्यते । भव्यम् = कल्याणम् ।

उद्भूता = उत्थिता । समश्रावि = श्रुता ।

विजिज्ञासमानैः= विज्ञातुमिच्छद्भिः । सावधानतया = मनोयोग-पूर्वकम् ।

अलौकिकाभ्यासे = आकाशगमनादिरूपे, परायणा =संलग्नाः ।

अनुग्रह = कृपा । श्रीमतामयं श्रैमतक = भावत्कः ।

राघ०—न बहु वचनीयम्। सम्राजा सह सतर्कैर्व्यवहर्त्तव्यमित्येव कथयामि। यवनराजेन भवदागमन-वृत्तान्त उपलब्धः। श्व एव साक्षात्कारो भविष्यति। इतोऽपि वदामि—साक्षात्कारानन्तर बहु न स्थेयम्। निःशस्त्रेण कदाऽपि न भाव्यम्। न कोऽपि तदीयो विश्वसनीयः। शिबिर प्रविशत। शेध्वम्। गच्छाम्यहम्। केवलमाशी सम्भावनायैवाऽऽयात। [इत्युक्त्वाऽन्धतमसे विलीनः]

महा०—माल्य! दिल्ली-प्रस्थान-वार्त्तारम्भ-समयमारभ्यैवैतेन सह परिचयो जात। कोऽयम्? किमित्यकारणमस्मान् स्निह्यति? न जाने।

माल्य०–दिनेष्वयं नावलोक्यते, रात्रावेव मिलति।

महा०—रात्रावपि च चिर नावतिष्ठते। पञ्चषा एव वार्ता आलप्य सपदि प्रयाति।

माल्य०—ईदृशो गम्भीरः स्वरः उदारा च वाक् न श्रुता कस्यापि।

महा०—न कस्यापि। [निःश्वस्य] ऋते एकस्मात् क्षत्रिय-युवकात् [ततो द्वावपि क्षण तूष्णीकौ दीर्घमुष्ण निश्वस्य, पटान्तेन चक्षुषी अमार्ष्टाम्।]

अथ उभौ शिबिराभिमुख चलितौ पथः पार्श्वे परिवर्तमानस्यैकस्य पर्कटी-वृक्षस्य भिन्नाञ्जन-श्यामल-च्छायात "महाराष्ट्रराज! क्षणमित आयाहि, किमपि कस्याश्चिद् दुःखिन्या वचनं निवेदयामि"–इति कस्या अपि योषित इव वचनं श्रुतवन्तौ।

भवदागमनवृत्तान्त = भवत्प्राप्तिसमाचार। उपलब्ध = प्राप्तः।

स्थेयम् = स्थातव्यम्। शेध्वम् = शयन कुरुत।

स्निह्यति = प्रीणाति।

अमार्ष्टाम् = प्रोञ्छताम्।

पर्कटीवृक्षस्य = प्लक्षद्रुमस्य। भिन्नाञ्जनश्यामलच्छायात = स्फुटिताञ्जनकृष्णच्छायाः। दुःखिन्याः = खिन्नायाः।

महा०—माल्य ! केयम् ?

माल्य०—पुनः शृणुवः !

अन्धकारात् पुन—दयस्व, दयस्व महाराज ! केवलं वक्तुं किमपि एतावत् कष्टं सोढ्वा आयाताऽस्मि। तत्रैव क्षणमपेक्षस्व, आगत्य निवेदयामि।

महा०—आगच्छ, तिष्ठाव'।

तावदुभाभ्यां दृष्टम्—यदेका नील-वसन-परिधानोत्तरीय-कञ्चुकिका विरहित-पाद-भूषणा, अन्धतमस-वशादस्पष्ट-दृष्टरूपा यवन-सुन्दरी समागत्य, एकेन हस्तेन सपूर्व-काय-नमनं प्रणम्य समुपस्थिता। तां तथाभूतामालोक्य महाराष्ट्रपति' समार्दवमगादीत्।

महा०—सुन्दरि ! कथय, का त्वम् ? कुत आयाता ? किमिच्छसि ? किं कथयसि ? आः ! न ते भय सर्पेभ्यो भूतेभ्यः पिशाचेभ्यो वा ? केन प्रहिताऽसि ? कथमस्मान् अत्रत्यान् ज्ञातवत्यसि ? कथं कृत-हिम-कण-पातं कालिन्दी-कूलाऽऽघातं वातं सहसे ? कथं वा घोरेऽन्धतमसे कलिन्द-तनयोत्तुङ्ग-तरङ्ग-भङ्ग-

---

सोढ्वा=क्षान्त्वा। अपेक्षस्व=अपेक्षां कुरु, तिष्ठेति यावत्।

नीलानि=कृष्णवर्णानि, वसनपरिधानोत्तरीयकञ्चुकानि यस्याः सा। विरहितपादभूषणा=नूपुरादिशून्या, प्रच्छन्नतारक्षार्थम्। अस्पष्टदृष्टरूपा=अपूर्णावलोकितवेषा। एकेन हस्तेन=अद्वितीयेन करेण। प्रणतिरीतिरियं यवनेषु प्रसिद्धा "सलाम" इति शब्देन। सपूर्वकायनमनम्=कायपूर्वभागशिरोनमनपुरस्सरम्। समार्दवम्=सकोमलतम्।

प्रहिता=प्रेषिता। अत्रत्यान=इह स्थितान्। कृतहिमकणपातम्=विहितप्रालेयखण्डपतनम्। कालिन्दीकूलाघातम्=यमुनातटताडनम्। वातम्=पवनम्। कलिन्दतनयायाः, उत्तुङ्गः=अत्युन्नतैः, तरङ्गभङ्गैः,

भयङ्कर-तटे सर्ज-खर्जूर-पर्कटी-गहने प्रदेशे समागच्छन्ती न भीताऽसि ?

यवनी—[अञ्जलिं बद्ध्वा] महाराज ! दिल्लीश्वर-दुहितुस्तत्र-भवत्या रसनार्य्या अन्तरङ्ग-सखीं मामवगच्छ ।

महा०—अहो ! अपि प्रसीदति तत्र भवती ? अपि वा नन्दति आयुष्मान् कुमार-मायाजिह्मः ?

यवनी—महाराज ! सर्वे कुशलिन इति कथनं व्यवहारः । तथाऽपि भगवती कुमारी रसनारी तु कथं कुशलिनी, यदि सदा हरिद्रा-द्रव-क्षालित-ताली-दल-प्रख्या कपोल-पाली वहति ।

महा०—स्फुटं वद, का चिन्ता ? किं वा दुरवापं दिल्ली-वल्लभ-क्रोड-क्रीडाऽतिवाहित-बाल्यानां महाराज-कुमारीणाम् ? मादृश-जनाधीनं वा किमस्ति, यन्निशीथेऽपि त्वां प्रेषितवती ।

यवनी—महाराज ! महाराज-कुमार्य एव महाराजेषु रज्यन्ते । यस्मिन्ननुरागः, तदलाभ एव खेदस्य कारणम् ।

महा०—ओः ! अवगच्छामि । माल्यश्रीक ! सम्राट्-कुमारी मामनुरागेणानुगृह्णाति ।

माल्य०—सत्यमौदार्यमिदं कुमारीहृदयस्य ।

भयङ्करे=भीतिदायिनि, तटे=कूले । सर्जैः, खर्जूरैः पर्कटीभिश्च गहने=दुर्गमे ।

व्यवहारः=आचारपालनम् । हरिद्राद्रवेण=महारजनरसेन, क्षालितस्य=धौतस्य, तालीदलस्य, प्रख्याम्=समाम् ।

दुरवापम्=दुःखेन प्राप्तुं योग्यम् । दिल्लीवल्लभक्रोडक्रीडया=दिल्लीशाङ्कक्रीडया, अतिवाहितम्=यापितम्, बाल्यं याभिस्तासाम् । निशीथे=अर्धरात्रे ।

महा०—सुन्दरि ! मद्वचनेन ब्रूहि तत्रभवतीं यद्—"महाभागे ! निवेदितवानस्मि तत्र भवत्या. परावर्तन-समये । तदद्यापि भवत्या: पिता चेदनुमन्येत; तत्प्रस्तुतोऽस्मि स्वहस्तेन श्रीमत्या: स्वेदानपनेतुम्, बाल-व्यजनेन च बीजयितुम् । दिल्लीवल्लभस्याननुमतं तु को नाम शक्तो मनसाऽपि चिन्तयितुम् ?" इति। सुन्दरि! तद्यो यथागतं निवर्तस्व। अहमपि स्वप्नेष्वपि राजकुमारीं पश्यामि, जागरितोऽपि च तद्गतचित्तस्तां पुरोगतामिव विलोकयामि। किन्तु किं करोमि ? दुर्घटो हि संयोग. । त्वमात्मानमाच्छाद्य गूढसञ्चारा कृष्णाभिसारिकेव समायातासि । यदि केनापि वीक्ष्येथा., तत्सम्भाव्यते पक्षद्वयेऽपि विपत्तिरिति । वयमद्यैव समायाता:, राजसाक्षात्कारोऽपि न कृत. । कियत्काल च स्थास्याम । ब्रूहि तत्र भवतीं धैर्यमवलम्बितुम् । प्रयाहि, प्रयाहि—

इत्युक्ता सा पुन. क्षणं मन्दस्वरेण किमपि समालप्य, साभिवादनं निवृत्ता । इमौ च शिविरं प्रविश्य सुषुपतुः ।

× × ×

महाभागे !=श्रेष्ठभागधेये ! । परावर्त्तनसमये=परावृत्तिवेलायाम्। अनुमन्येत=स्वीकुर्यात् । स्वेदान्=रतिश्रमोद्भूतघर्मबिन्दून् । अपनेतुम्=दूरयितुम् । विवाहयितुमिति यावत् । अननुमतम्=अस्वीकृतम् । यथागतम्=यथा आयातं तथा । पुरोगताम्=अग्रे स्थिताम् । गूढसञ्चारा=गुप्तगतिः । कृष्णाभिसारिका=कृष्णवसनाद्युपहिता याभिसारिकाऽभिसरति सा कृष्णाभिसारिकेत्युच्यते । अभिसारिका च "कान्तार्थिनी तु या याति सङ्केतं साऽभिसारिके"ति कृतलक्षणा वेदितव्या । वीक्ष्येथा:=दृष्टा स्याः । पक्षद्वये=रसनारीपक्षे मत्पक्षे च । अवलम्बितुम्=धारयितुम् । साभिवादनम्=सनमस्कृति, क्रियाविशेषणम् ।

× × ×

परेद्युर्विहित-स्नान-भोजनादि-क्रियैर्मित्रगणैः सह समुल्लोच-तले समुपविष्टे महाराष्ट्रराजे प्रतीहारेण प्रविश्य प्रणम्य कथितम्—

"महाराज ! अम्बर-राजकुमारः समायाति"—इति । तदा-कर्ण्य स्वयमुत्थाय प्रविशन्तमम्बर-पुरन्दर-पुत्रं रामसिंहं समा-लिङ्ग्य समानीय स्वपार्श्वे उपवेश्य स्वयमुपविष्टः । महाराष्ट्रराजो वीरोचितां तेजस्विनीमुदारां तदाकृतिं पश्यन्नतितरां मुमुदे । राम-सिंहश्च चिरात् तस्य नाम यशः प्रतापं च श्रावं श्रावं बाल्यम-यापयदिति विस्फारित-नयनं मुहूर्त्तं तमपश्यत्, परतश्च महाराष्ट्र-राजेन आपृष्ट-कुशलः, साञ्जलि सादरवचनं यथाचारमुक्त्वा कथितवान् यद्—

आर्य ! तातचरणानां पत्रं प्राप्तवानस्मि । यथा स मम मान्यस्तथैव भवान् इति मद्योग्येनाऽऽदेशेन सर्वथाऽनुकम्पनी-योऽहम् ।

महा०—एषा परमदया क्षत्रिय-कुलावतंसस्याम्बरेश्वरस्य ! भवन्तञ्च बन्धुं प्राप्य अतितरां प्रसीदामि ।

तदनन्तरं चिरमुभयोर्जात आलापः । परस्तान्मन्दमालपन्म-हाराष्ट्रराजो यद्—दिल्लीश्वर-दर्शन-विषये भवतः का सम्म-तिः ? इति ।

स आह सम्प्रति चण्डश्चण्डमरीचिरिति मुहूर्त्तं विलम्ब्य गन्तव्यम् । दिल्लीश्वरो भवन्तमागतं ज्ञातवानस्ति ।

समुल्लोचस्य=शोभनस्य वितानस्य, तले=निम्नस्थाने । प्रतीहारेण= दौवारिकेण ।

अम्बरराजस्य=जयपुरेशस्य, कुमारः=तनयः । तेजस्विनीम्= प्रतापप्रदर्शिकाम् । विस्फारितनयनम्=सुविकासितनेत्रम्, क्रियाविशेषणम् । आपृष्टं कुशलं यस्य सः ।

मद्योग्येन=मदर्हेण । अनुकम्पनीयः=दयनीयः ।

चण्डः=प्रखरः । चण्डमरीचिः=भास्करः ।

तदाकर्ण्य किञ्चित् स्मयमाने महाराष्ट्रराजे पुनर्विचार्येव प्रावोचत्—

भगवन् ! भवान् कुशलेन निवर्तनीयः—इति पित्रा लिखितमस्ति । तदत्र प्रतीपं नाऽऽशङ्कनीयम् । द्रष्टव्यः सम्राट् ।

ततो माल्यश्रीक आह—प्रतीपे आचरिते महाराष्ट्र-देशे तथा समर-ज्वलन-ज्वालाः प्रसरिष्यन्ति; यथा भारते यवनसम्राड्वंश एव भस्मसाद् भविष्यति ।

रामसिंहस्तु सान्त्वयन्नब्रवीत्—मैवम्, मम तातचरणमत्यन्तमाद्रियते सम्राट् इति तल्लेखं नान्यथा करिष्यतीति निश्चिनोमि ।

ततो बहुभिर्वार्ताभिरेव प्रतियापिते मुहूर्त्ते, "राज-साक्षात्कार-समयः संवृत्त." इत्युक्तवति रामसिंहे, नववस्त्राणि धारयन्, चन्द्रहासं समास्रंसयन्, सम्मुखमुकुरे दत्तदृष्टिरुष्णीष-बन्धनानि विन्यस्यन्, महाराष्ट्रपतिरगादीत्—मध्ये प्रबलप्रवाहा यमुनेति कथं प्रवेक्ष्यामो दिल्लीम् ? । स आह—आर्य ! नौका-परम्पराभिरायोजितो महान् सेतुरस्ति, तत एव नि:शङ्कं घोटकाः, उष्ट्राः, वृषाः; शकटा. रथाश्च, यातायातं कुर्वन्ति । तत एव यास्यामः ।

स्मयमाने=ईषद्धसति । "दिल्लीश्वरसाक्षात्कारो विधेयो न वेति शिवराजस्य तात्पर्यमासीत्, तच्च नावगतं रामसिंहेनेति स्मितवानिति" मूलकृच्छिष्यकृता टिप्पणी । दिदृक्षयैव समागतस्य तदर्थमेव स्थितस्य प्रतीक्षमाणस्य च निगूढमिममाभ्यन्तरिकमभिप्राय कथं वेवेत्तु रामसिंह इति नावधारयितुं पारयामः ।

प्रतीपम्=विरुद्धम् ।

समर एव ज्वलनः=दहनः, तज्ज्वालाः ।

बहुभिः, "वोतो गुणवचनात्" इत्यनेन स्त्रीप्रत्ययविकल्पः । समास्रंसयन्=अवलम्बयन् । सम्मुखमुकुरे=पुरःस्थितादर्शे । दत्तदृष्टिः=प्रहितनयनः । प्रबलप्रवाहा=विशालधारा । यातायातम्=गमागमम् ।

महा०—अथ कति अश्वारोहा अनुसरन्त्वस्मान् ?

कुमाररामसिंह —राजद्वार-पर्य्यन्त शतं शक्नुवन्ति गन्तुम् अन्तस्तु वयमेव यास्याम ।

महा०—अस्माभि. केन यानेन गन्तव्यम् ?

कुमार०—पुष्परथमानीतवानस्मि ।

महाराष्ट्रराजस्तु "दिल्लीकलङ्केनतेन स्वपुत्रो न प्रेपित आनेतुम् , अपमान एप "—इति मनसि चिन्तयन् , माल्यश्रीक-गौरसिंहादिभि. सज्जो भूत्वा, रामेण सहोत्थाय शिविरात् बहिरागत्य पुष्परथमारूढ' । तस्मिन्नेव तत्सम्मुखे कुमार-रामसिंह उपविष्ट. । गौरसिंह-माल्यश्रीकादयोऽपि भूपण-भूपितान् सौवर्णवल्गानश्वानारूढा' । कतिपये रामसिंह-सादिनोऽपरे च शतं महाराष्ट्र-सादिनोऽपि सज्जा इतश्चेतश्च धावन-सवेग-महोत्साह-खुरखुरायित-खुराणां कथ कथमपि संयम्यमानाना कुसुमैरिव फेन-प्रपातैः परिपूजित-वसुन्धराणां धावन-धुरन्धराणां सैन्धवाना हेषाभिर-

---

अनुसरन्तु=अनुयान्तु भवन्तु ।

पुष्परथम् = चक्रयानम् , असामरिकं रथम् ।

स्वपुत्र' = मायासिंहाद्यन्यतम । तनयानुरागिणे हि तनयप्रेषणमावश्यकम् । एतादृशीमेव काञ्चिद् घटनामक्षिलक्ष्यीकृत्य पण्डितराजोऽभाणीत्—

न वारयामो भवतीं विशन्तीं वर्षानदीस्रोतसि जह्नुजाये ।
न युक्तमेतत्तु पुरा यदस्यास्तरङ्गभङ्गान् प्रकटीकरोषि ॥

तस्मिन्नेव=पुष्परथ एव । भूषणैः=हिरण्याभरणैः, भूपितान्=अलङ्कृतान् । अत्र शिवराजकृत्येऽस्मिन् भूषणोऽश्वभूषणताङ्गत इति समानशब्दैर्ध्वनयति । सौवर्णवल्गान् = हैरण्यकविकान् । धावनसवेगेन यो महोत्साहः तेन खुरखुरायिताः, खुरा =शफा., येपा तेषाम् । संयम्यमानानाम्=अवरुध्यमानानाम् । कुसुमैरिव = प्रसूनैरिवेत्युत्प्रेक्षा । परिपूजितवसुन्धराणाम् = सेवितवसुमतीकानाम् । धावनधुरन्धराणाम् = शीघ्र-

ध्वनीनान् बधिरानकार्षु । तावत् सपदि भूपणकविरागत्य, प्रलम्ब-कवितयाऽऽशीराशीनुदीर्य राजहस्ते साक्षतानि कुसुमानि दत्त्वा, तदनुमत्या स्वयमपि मौक्तिक-माला-कलित-कण्ठं सौवर्ण-किरण-कलित-वर्णद्वय-मध्यं राजत-कुसुमावलि-शोभित-लाङ्गूल श्याममेकं प्रकाण्डं वाजिनमारूढवान् । समङ्गलशब्दं च सर्वेऽपि प्रस्थिताः, क्षणेनैव च सर्वे सेतुं प्राप्ताः । ततो दृष्टवान् महाराष्ट्र-पतिर्यद्भास्वान् मृदुलमयूखः सवृत्य भुवमभिपतति । अभ्रंलिहानां कलिनापर-मेघाडम्बराणां समुद्धूतध्वजानां दिल्ली-हर्म्याणां छाया कलिन्द-नन्दिन्याः श्यामता द्विगुणयति । अभितः सेतुं तनवः, महत्यः, सपटलाः, अपटलाः, साट्टाः, निरट्टाः, हंस-मयूर-वर्त्तक-सारस-कारण्डवादि-विविधाकाराः, चित्र-विचित्रिताः समञ्जीर-क्षेपण-झणत्काराकुलीकृत-कमठाः सहस्रशो नौका इत-

---

गतिपट्टनाम् । अध्वनीनान्=पथिकान् । मौक्तिकमालया=मणिस्रजा, कलित = भूषितः, कण्ठः = गलो यस्य तम् । सौवर्णकिरणैः= हैरण्यमयूखैः, कलितं वर्णद्वय मध्ये यस्य तम् । राजतकुसुमावलिभिः, शोभितम्, लाङ्गूलम्=पुच्छ यस्य तम् । प्रकाण्डम्= विशालम् । भास्वान्=दीधितिपतिः । मृदुलमयूखः=कोमलकिरणः । संवृत्य = भूत्वा । भुवम्=धरणीम् । अभिपतति=समुपयाति । अभ्रंलिहानाम् = मेघस्पर्शिनाम् । कलितापरमेघाडम्बराणाम् = धारितद्वितीयवारिवाहानुकृतीनाम् । श्यामताम्=कार्ष्ण्यम् । द्विगुणयति = वर्द्धयति । तनव =लघवः । महत्य. =श्रेष्ठाः । सपटलाः = सच्छदिकाः । "पटलं छदिरि" त्यमरः । "छापर" इति हिन्दी । अपटलाः=अच्छदिका । साट्टा =साट्टालिकाः । सचन्द्रशालाका इति यावत् । निरट्टाः= निरट्टालिकाः । हंसादिविविधाकारा = हसाद्यनेकाकृतयः, मयूरपुच्छीप्रभृतिशब्दैः ख्याता अधिरामनगरं दृष्टिपथगाः । चित्रैः=आलेख्यैः, विचित्रिता. = विस्मयजनिकाः लिखिता वा । समञ्जीराणाम् = सक्षुद्रघण्टिका-

श्वेतश्च संसरन्ति। तटस्थाः, तरणिस्थाः, सेतावपि च यातायात-पराः, सहस्रशो नागराश्च कन्धरं परिवर्त्य चक्षुषी विस्फार्य आत्मानं पश्यन्ति, साङ्गुलिनिर्देशं च स्वमित्राणि "सोऽयं सोऽयम्" इति दर्शयन्ति।

ततः स यमुनां प्रणम्य, मनस्येव कथितवान् यद्—

"भगवति! कृष्णप्रिये! यथा कालियसदनं प्रविश्यापि भगवान् कृष्णः काकोदरं निर्मथ्य निरगात्, यथा च नन्दो ग्राहेण गृहीतस्त्वज्जले निमग्नोऽपि बक-विद्वेषिणोऽनुग्रहेण सकुशलं परावृत्तः; तथैव चेदहमपि दिल्लीतः कुशलेन स्वपुण्यपुरीं परावर्ते; तद् दुग्ध-धारा-सहस्रैः कमलानां लक्षेण, लक्षेण च घृतदीपानां त्वामभ्यर्चयिष्ये"—इति।

तावत्ते सेतुमुल्लङ्घ्य, परं तटमायाता दिल्लीं प्रविविशुः। तत्र च प्रघाणस्थैः परिवर्त्तित-ग्रीवैर्लोलोष्णीष-बन्धैर्भटैः, आपणोपविष्टैः स्तब्ध-शष्कुलैः स्वर्णकारैः, कर्णार्पित-लेखनीकैश्चित्रकारैः, समुपे-

---

नाम्, क्षेपणानाम्=नौकादण्डानाम्, झणत्कारेण, आकुलीकृताः कमठा यामिस्ताः। यमुनाया कच्छपप्राचुर्यं प्रसिद्धम्। शोभार्थं क्षेपणीषु मञ्जीरासञ्जन कुर्वन्तीति वेदितव्यम्। संसरन्ति=प्रचलन्ति। तरणिस्था= नौकास्थिताः। नागराः=ऐन्द्रप्रस्थाः, प्रकृते।

कालियस्य=तन्नाम्नो नागस्य, सदनम्=ह्रदम्। काकोदरम्= सर्पम्। निर्मथ्य=निर्मर्दीकृत्य। नन्द=कृष्णपितृतया ख्यातः। ग्राहेण=नक्रेण। बकविद्वेषिण=बकासुरमारकस्य। अनुग्रहेण=दयया। स्वपुण्यपुरीम्=स्वीया पवित्रा नगरीम्। अभ्यर्चयिष्ये=पूजयिष्ये।

प्रघाणस्थैः=बहिर्द्वारप्रकोष्ठस्थैः। "प्रघाणः प्रघणालिन्दा बहिर्द्वारप्रकोष्ठके" इत्यमरः। परिवर्त्तितग्रीवैः=वक्रीकृतकन्धरैः। लोलोष्णीष-बन्धैः=चञ्चलशिरोवेष्टनैः। भटैः=गजपुरुषैः। आपणोपविष्टैः= विपणिसमुपस्थितैः। स्तब्धशष्कुलैः=स्थगितकर्त्तिकैः। स्वर्णकारैः= पश्यतोहरैः। कर्णार्पिता=श्रोत्रस्थापिता, लेखनी=कलमः, यैस्तादृशैः

क्षित-तुला-दण्डैर्वणिग्भिः, विशिथिल-स्खलित-मानदण्डैः पट-विक्रयिभिः, रुद्ध-सीवनैः स्यूतिकारैः, विस्मृतहार-ग्रथनैर्मालाकारैः, घण्टापथे विचरद्भिः समाकृष्टवल्गैः सादिभिः, आसादित-प्रान्तैः पर्य्यटकैः, आशीर्वचन-स्फुरितोष्ठैर्ब्राह्मणैः, परिवर्जित-क्रीडैर्बालकैः, गवाक्षस्थैः शिथिलितव्रीडैरङ्गुल्यग्रापसारित-तिरस्कारिणी-विच्छेद-प्रहित-कटाक्षावलोकनैः कुल-युवति-जनैश्च, सकौतुकं निरीक्ष्यमाणः;

"कोऽयम् ?, कुतोऽयम् ?, सोऽयम्, स एवायम्, वीरोऽयम्, वीरवरोऽयम्, महाराष्ट्रराजोऽयम्, दुर्धर्षोऽयम्, चिरश्रुतोऽयम्, शास्तिखान-शास्ति-शास्त्रज्ञोऽयम्, विजयपुर-विजय-दीक्षितोऽयम्,

---

चित्रकारैः=आलेख्यकारैः। समुपेक्षिततुलादण्डैः=परित्यक्तमापिकादण्डैः। वणिग्भिः=व्यापारिकैः। विशिथिलाः=विश्रृङ्खलाः, स्खलिताः=पतिताः, मापदण्डाः="गज" इति ख्याताः, येषा तैः। पटविक्रयिभिः=वस्त्रविक्रेतृभिः। रुद्धसीवनैः=परित्यक्तसूचीकृत्यैः। स्यूतिकारैः=सूचीकृद्भिः। विस्मृतहारग्रन्थनैः=अनवधृतमालानिष्पादनैः। मालाकारैः=मालिभिः, घण्टापथे=राजमार्गविशेषे। विचरद्भिः=गच्छद्भिः। समाकृष्टवल्गैः=समाकुञ्चितकविकैः। सादिभिः=अश्वारोहैः। आसादितप्रान्तैः=गृहीतमार्गपार्श्वैः। पर्य्यटकैः=वायुसेवनार्थं भ्रमद्भिः। आशीर्वचनेभ्यः=आशीःकथनेभ्यः, स्फुरितौ=चपलितौ, ओष्ठौ येषा तैः। "ओत्वोष्ठयोः समासे वा" इति वृद्धिविकल्पः। परिवर्जितक्रीडैः=परित्यक्तखेलैः। बालकैः=अर्भकैः। गवाक्षस्थैः=वातायनस्थैः। शिथिलितव्रीडैः=अल्पीकृतलज्जैः। अङ्गुल्यग्रापसारितायाः=करजप्रान्तदूरीकृतायाः, तिरस्करिण्याः=यवनिकायाः, विच्छेदेन=भङ्गेन, प्रहितानि=प्रेरितानि, कटाक्षावलोकनानि यैस्तैः। कुलयुवतिजनैः=सद्वंशतरुणीलोकैः। सकौतुकम्=सकुतुकम्। निरीक्ष्यमाणः=अवलोक्यमानः।

शास्तिखनस्य, शास्तेः=शासनस्य, दण्डनस्य, शास्त्रम्=शासनविधानम्, जानातीति तथाभूतः। विजयपुरविजये दीक्षा सञ्जाताऽस्येति दीक्षितः

गोलखण्ड-खण्डन-पण्डितोऽयम्, सुरत-वशीकरण-मन्त्र-मान्त्रिकोऽयम्, अम्बर-पुरन्दर-प्रीति-परवशोऽयं, सम्राजमुपसर्पति, अम्बर-राजकुमारेण सह नीयते। कीदृशमेतस्योष्णीष-बन्धनम्? कीदृशा अस्य सादिनः? स भूषणकविरप्यश्वारूढः सहचरः" —इति परितः परिवर्तिना बहूनां विविधालापान् मन्दमर्द्धोदीरितान् किञ्चित् किञ्चित् कर्णे कुर्वाणः;

केश्चित् कुक्कुटाण्ड-गणनासक्तैः, अपरैर्वर्त्तिका-निचय-वशीकार-व्याकुल-मुष्टिभिः, इतरैर्मञ्चारूढैर्धूम-पान-परायणैः, अपरैरक्षक्रीडाऽऽसक्तैः, यवनैश्च "सोऽयं समागतोऽयं समासादितोऽयम्, पर्वतोन्दुरुमेनमेवाऽऽचक्षते सम्राजः। दृश्यताम्; किं भवति, सम्राजः कथमेतेन व्यवहरन्ति?"—इति सक्रूर-कटाक्षं कथाविपयीक्रियमाणः,

उभयतः काश्चित् सझणत्कारं स्वापणे समुज्झितानां दीनाराणां गणनाऽऽसक्तान्, अपरान् रत्ननिचय-परीक्षण-प्रहित-सूक्ष्मेक्षणान्;

तारकादित्वादितच्। गोलखण्डस्य, खण्डने=ध्वंसने, पण्डितः=सञ्जातपण्डः, बुद्धिमान्। सुरतवशीकरणमन्त्रस्य, मान्त्रिकः=मन्त्रशास्त्रज्ञः। अम्बरपुरन्दरप्रीतेः=जयपुराधीशप्रेम्णः, परवशः=अधीनः। उपसर्पति=गच्छति। परिवर्त्तिनाम्=समन्तात् विद्यमानानाम्। अर्द्धोद्धीरितान=नेमकथितान्। कर्णे कुर्वाण=शृण्वन्।

कुक्कुटाण्डगणनायाम्=चरणयुधाण्डसङ्ख्याने, आसक्तैः=निरतैः। वर्तिकानिचयस्य, वशीकारे, व्याकुलाः, मुष्टयः=बद्धाङ्गुलिकाः, येषां तैः। मञ्चारूढैः=खट्वास्थैः, धूमपाने परायणैः=निरतैः। अक्षक्रीडासक्तैः=द्यूतलीलानिरतैः। समासादितः=प्राप्तः। आचक्षते=कथयन्ति। कथाविपयीक्रियमाणः=कथ्यमानः।

समुज्झितानाम्=त्यक्तानाम्। दीनाराणाम्=सुवर्णमुद्राणाम्। गणनायाम्=सङ्ख्याने, आसक्तान्। रत्ननिचयस्य=हीरकादिव्रातस्य, परीक्षणे=युक्तायुक्तत्वविवेचने, प्रहितानि, सूक्ष्माणि=सूक्ष्मदर्शीनि,

इतरान् अलङ्कार-क्रय-विक्रय-व्यवहार-संसक्तान्; अन्यांश्च गवाक्षस्थ-गणिका-गण-भ्रू-भङ्ग-निहित-दृष्टीन् वीक्षमाणः सपरिजनो महाराष्ट्रराजो मार्गान्तरं प्राप्तः।

तत्र प्रोच्चं पस्त्यमेकमासाद्य पृष्टवान्-किमिदमिति। कुमाररामसिंह उवाच—आर्य! महामज्जितमिदम्, यत्र प्रतिशुक्रवारं यवना आगत्य इष्टमाराधयन्ति।

परतश्च कियन्तमध्वानमतिक्रम्य सुदूरस्थं कैलासशिखरखण्डाऽऽभं महाहर्म्यमेकं दृष्ट्वा यावत् पृच्छति महाराष्ट्रराजः; तावत् स्वयमेव कुमार उवाच यद्—महाराज! ज्यौतिपालयोऽयं मत्पित्रा प्रतिष्ठापितः। अस्मिन् बहूनि शास्त्रोक्तरीत्या निर्मितानि यन्त्राणि सन्ति, यैर्ग्रहाणां गतयोऽनायासेन निश्चीयन्ते। अथ स उवाच—"कथं न स्यादीदृश एव ज्यौतिप-शास्त्र-पारङ्गतो भारतभूषणं तत्रभवान् जयपुराधीशः?"

ततः पुरतो गच्छन्तः क्षणेन राजद्वारं प्राप्ताः। तत्र कोऽयमिति रोद्धुमुत्सुकाः प्रतीहाराः कुमाररामसिंहेन किमप्युक्ता एकेन हस्तेन प्रणम्य बद्धपङ्क्तय एकतः स्थिताः। एते चान्तः प्रविश्यातिप्रशस्तं स्थानमेकं प्राप्ताः। कुमार-सम्मत्या तत्रैव यानमुन्मुच्य प्रचलिताः।

ईक्षणानि=नयनानि यैस्तान्। अलङ्काराणाम्=आभरणानाम्, क्रयविक्रयव्यवहारे, संसक्तान्=निरतान्। गवाक्षस्थस्य, गणिकागणस्य=वारस्त्रीव्रजस्य, भ्रूभङ्गे, निहिताः, दृष्टयः=नेत्राणि, यैस्तान्। सपरिजनः=सपरिकरः। मार्गान्तरम्=द्वितीय पन्थानम्।

प्रोच्चम्=प्रोन्नतम्। पस्त्यम्=सदनम्। महामज्जितम्="जुमा मस्जिद" इति ख्यातम्। आराधयन्ति=सेवन्ते।

कैलासशिखरखण्डस्य, आभेव, आभा यस्य तम्। महाहर्म्यम्=महाप्रासादम्। प्रतिष्ठापितः=निर्मापितः। ग्रहाणाम्=खेचराणाम्। निश्चीयन्ते=निर्णीयन्ते।

उत्सुकाः=उत्काः। अतिप्रशस्तम्=नितान्तशोभनम्। उन्मुच्य=

गौरसिंहः, माल्यश्रीकः, भूपणश्च स्वसैन्धवांस्त्यक्त्वाऽनुसृताः, तदवलोक्य कुमाररामसिंहेनोक्तम्—

किं भवन्तोऽपि ? अथवा, अस्तु, सुवर्ण-दण्ड-धारिणां निकटे स्थास्यते भवद्भिः।

एवं तस्या कक्षायां बहून पुष्परथान् वाजिनो गजान् क्रमेलकांश्चावलोकयन्तो विविध-मण्डलेश्वर-यातायात-सङ्कुलं मार्गमाश्रित्य द्वितीयं द्वारमायाताः। तत्प्रतीहारा अपि कुमारेण किमपि दत्तेङ्गिता मार्गं ददुः। तदन्तः प्रविश्य, पुनरेकं प्रशस्तं प्राङ्गणं प्राप्य, महाराष्ट्रराजोऽवालोकयद्—

मध्ये विशालमजिरम्, परितश्च सार्द्ध-हस्त-द्वयोच्छ्राया वेदिका, ततश्च परं सकाच-पट्टिक-हरित-कपिश-श्यामलादि-रञ्जित-कपाटानि कोष्ठानि सन्ति। वेदिकाया उपरि चैकतः सौवर्ण्यो दन्तावलग्रैवेयक-घण्टा निर्मीयन्ते, परतः पाटीर-स्कन्ध-निर्मितेषु कवा-

परित्यज्य। अनुसृताः=पश्चाच्चलिताः।

सुवर्णदण्डधारिणाम्=हैरण्यदण्डग्राहिणाम्। न केवल दण्डधारिणामपितु सुवर्णदण्डधारिणामिति कथयता स्मारित लौकिक कथानकम्—"ताडितुम्, पर लोहितोपनद्धा"।

कक्षायाम्=प्रकोष्ठे। पुष्परथान्=चक्रयानानि। क्रमेलकान्=उष्ट्रान्। विविधानाम्=अनेकेषाम्, मण्डलेश्वराणां यातायातैः, सङ्कुलम्=व्याप्तम्। दत्तेङ्गिताः=प्रहितचेष्टिताः। प्राङ्गणम्=अजिरम्।

विशालम्=सुविस्तृतम्। सार्धहस्तद्वयस्य, उच्छ्रायः=औन्नत्यं यस्याः सा। वेदिका=वितर्दिका। सकाचपट्टिकाः=काचपट्टिकासहिताः, हरितकपिशश्यामलादिभि वर्णैः रञ्जिताः कपाटा येषु तानि। सौवर्ण्यः=चामीकरनिर्मिताः। दन्तावलानाम्=करिणाम्, ग्रैवेयकघण्टाः=ग्रीवाभूषणभूताः घण्टाः। निर्मीयन्ते=विरच्यन्ते। पाटी-

टेषु रत्नकुसुमानि विरच्यन्ते, अन्यतः सैन्धव-शृङ्गाराय स्थूलमौक्तिकानां हारा गुम्फ्यन्ते, इतरतः कौशेयास्तरणानां प्रान्तेषु सौवर्णसूत्र-व्रततयः सीव्यन्ते, ततो राजतच्छत्राणां परिधिषु हीरकजालानि योज्यन्ते, इतश्च हाटकमञ्चाना दण्डेषु मरकत-कुसुमानि निर्मीयन्ते।

एवं विचित्रं वैभवं विलोकयन्तः सर्वे तृतीयं राजद्वारमागताः तत्प्रवेश-समये कुमारेण कथितम्—"कक्षायामस्यां सर्वैर्मौनेन गन्तव्यम्। पाद-क्षेपोऽपि निःशब्द एव विधेय."। ततस्तथैव तदपि द्वारं प्रविश्यावलोकितं यत् पन्थानमुभयत. पदे पदे सौवर्णपात्राधाराः सकुसुमाः क्षुपानन्तरं क्षुपा., मध्ये मध्ये च सौवर्ण-राजतादि-पञ्जरस्थाः पुंस्कोकिलाः, कीराः, सारिकाः, कलविङ्का.,लावाः,चकोराः,चातकाः,अन्ये च बहवो विविधवर्णाश्चपलित-

रस्य = चान्दनस्य, स्कन्धैः=शाखावधिभागैः। "अस्त्री प्रकाण्डः स्कन्धःस्यान्मूलाच्छाखावधिस्तरोः"इत्यमरः। निर्मितेषु। कवाटेषु=अररेषु। रत्नानाम्=हीरकादीनाम्, कुसुमानि=पुष्पप्रतिमाः। सैन्धवानाम्=घोटकानाम्, शृङ्गाराय=भूषणाय। स्थूलानाम्=महताम्, मौक्तिकानाम्=मणीनाम्। हाराः=कण्ठाभरणानि। गुम्फ्यन्ते=ग्रथ्यन्ते। कौशेयास्तरणानाम्=पट्टसूत्रवासोविष्टराणाम्। प्रान्तेषु=कोणेषु, चरमांशेषु च। सौवर्णसूत्रव्रततयः=हैरण्यतन्तुलताः। सीव्यन्ते=सूच्या रच्यन्ते। राजतच्छत्राणाम्=रजतनिर्मितातपत्राणाम्। परिधिषु=गोलभागेषु। हीरकाणा जालानि=समूहाः। योज्यन्ते=सम्मेल्यन्ते। हाटकमञ्चानाम्=चामीकरमञ्चानाम्। मरकतकुसुमानि=मरकतमणिसुमनानि।

वैभवम्=सम्पत्तिम्, पादक्षेपः=चरणपातः, सौवर्णपात्राधाराः=हैरण्यभाजनाश्रयाः, सकुसुमाः=सप्रसूनाः, क्षुपाः=अदीर्घशाखावृक्षमूलाः, "ह्रस्वशाखाशिफः क्षुपः" इत्यमरः। पुंस्कोकिलाः=पिकाः। कलविङ्काः=चटकविशेषाः। लावाः=वर्तिकाभेदाः। चकोराः=चन्द्रिकाप्रियाः,

चञ्चवः पक्षति-कण्डूयन-मनोहराः, पुच्छ-प्रसारण-सङ्कोचन-चञ्चलाः,वीणा-रणन-स्पर्द्धि-कूजिताः, दाडिम-द्राक्षाखण्ड-त्रोटन-तत्पर-त्रोटयः, आरोहमारोहं शलाकोपवेशनिका आन्दोलमान्दोलं च पुनरधः प्रपतन्त. पक्षिण. समुल्लसन्तीति । पार्श्वद्वयेऽपि सौरभ-पटल-व्याप्त-दिगन्तरमुद्यानम्, तदन्तस्थ-कुञ्जेपु च क्वचित् क्वचिद् वीणावादः । सम्मुखमेव सुदूरं महान् प्रासादः, तत्संलग्नैव महती हस्त-त्रयोच्छ्राया वेदिका, तदुपरि तादृशमेव वेदिकान्तरम्, तस्यापि चोपरि सौवर्णं महासिंहासनम्, तदेवाध्युषितो भारत-सम्राड् दृष्ट' ।

कुमारेङ्गितेन निपुणं निरीक्ष्य चावगतम्—यत् प्रथम-महा-वेदिकाया बहव. कलित-कनक-दण्डाः करवालाऽऽकलित-कटिप्रदेशा अनुचरा बद्धाञ्जलयो बद्धपङ्क्तय उत्थितास्तिष्ठन्ति ।

ख्याताः । चपलितचञ्चवः=चञ्चलितत्रोटयः । पक्षतिकण्डूयनेन=पक्षमूलखर्जनेन, मनोहरा.=चेतोहराः । पुच्छाना प्रसारणे=विस्तारणे, सङ्कोचने=आकुञ्चने, चञ्चलाः=चपलाः । वीणारणनस्य=वीणा-ध्वनेः, स्पर्धि कूजित येषा ते । दाडिमद्राक्षाखण्डाना त्रोटने=खण्डने, तत्परा.=निरताः, त्रोटय'=चञ्चवो येषा ते । आरोहमारोहम्=आरुह्याऽऽरुह्य । शलाकोपवेशनिका =शलाकादण्डनिर्मितानि उपवेश-स्थानानि । आन्दोलमान्दोलम्=हिल्लोलयित्वा हिल्लोलयित्वा । समुल्ल-सन्ति=शोभन्ते । पार्श्वद्वये=दक्षे वामे च भागे । सौरभपटलेन=सौगन्ध्यसमूहेन, व्याप्तम्, दिगन्तरम्=हरिदन्तराल येन तत् । उद्या-नम्=गृहवाटिका । तदन्तस्थेपु=तदन्तरालवर्त्तमानेपु, कुञ्जेपु=लतादिपिहितोदरेपु । तदेव=महासिंहासनमेव । अध्युषितः=अध्यारूढः ।

निपुणम्=सावधानम् । कलितकनकदण्डा.=गृहीतसुवर्णदण्डाः । करवालै'=चन्द्रहासैः, आकलित =संबद्धः, कटिप्रदेशो येषा ते । उत्थिताः=उत्तिष्ठन्तः ।

द्वितीय-वेदिकायां च सौवर्ण-दण्ड-भित्तिका-दत्त-हस्ताः मण्डलेश्वराः सेनापतयश्च उत्थिता एव तिष्ठन्ति। महाराष्ट्रपतिना कर्णे पृष्टम्—"किं सभाया केनापि नोपविश्यते ?"

कुमार उक्तवान्—राजकार्य-सम्बन्धिनीषु सभासु न केनाप्युपविश्यते ऋते सम्राजः। गान-वाद्यादि-समितिषु च कृपापात्राण्युपविशन्त्यपि।

एवं मन्दमालपन्त एव ते वेदिसमीपमायाताः, राङ्कवास्तरणाच्छन्नानि सोपानान्याक्रम्य प्रथम-वेदिकामारूढाः, तत्रैव कुमारेणेङ्गितो माल्यश्रीको गौरसिंहो भूषणश्च बद्धाञ्जलीनामन्येषां पङ्क्तिं भेजिरे। महाराष्ट्रेश्वरस्तु कुमारेण सह द्वितीयां वेदिमारूढ एव दक्ष हस्तेन सम्राजं प्रणनाम, कुमार-दर्शितेन पथा च समीपमागत्य महामूल्या मुद्रिकामेकां निजाञ्जलौ संस्थाप्य, हस्तौ प्रसारितवान्। ततोऽन्यतः क्षिप्तेक्षणे सम्राजि, समीपवर्त्तिषु कश्चन समचकथत्—"जगत्पालकानां करुणाऽवलोकनं सभाजयति महाराष्ट्र-देशीयः कश्चित् शिववीरः"—इति।

सौवर्णदण्डभित्तिकासु=तिर्यग्भूतैः सौवर्णदण्डैरेव रचितेषु कुडयेषु दत्तहस्ताः=स्थापितकराः। मण्डलेश्वराः=खण्डभूपतयः। उत्थिता एव, न तूपविष्टाः।

राजकार्यसम्बन्धिनीषु=राजनीतिकविचारार्थमाकारितासु। कृपापात्राणि=दयाभाजनानि, विटाः, गणिकाः, तादृशाश्चान्ये।

मन्दम्=शनैः। राङ्कवास्तरणैः=रङ्कुमृगचर्मनिर्मितविष्टरैः, आच्छन्नानि=गोपितानि। बद्धाञ्जलीनाम्=कृतकरसम्पुटानाम्। पङ्क्तिम्=श्रेणीम्। भेजिरे=सिषेविरे। महामूल्याम्=महार्घाम्। मुद्रिकाम्=अङ्गुलीयकम्। निजाञ्जलौ=स्वीयकरसम्पुटे। क्षिप्तेक्षणे=प्रेरितनयने। समीपवर्त्तिषु=आसन्नेषु। जगत्पालकानाम्=संसाररक्षकाणाम्। "जहाँपनाह" इति तत्रत्यः शब्दः। करुणया=दयया, अवलोकनम्=दर्शनम्। सभाजयति=प्रार्थयते।

अथ दृष्टिं परिवर्त्य वाचंयम एव, स्वहस्तेन मुद्रिकां जग्राह दिल्लीश्वरः, पाञ्चसाहस्रिकैश्च सेनापतिभिः सह उपस्थातुं मन्दमुक्तवान् ।

तदाकर्ण्य किरात-रसमिव पिबन् महाराष्ट्रराजः, सकष्टं ततो वभ्राम, कुमारानन्तदत्तदृष्टिश्च मन्दमुक्तवान्—किं शिवः पाञ्चसाहस्रिकः ? यदि सम्राट् कदाचन महाराष्ट्र-देशं यास्यति; तदा द्रक्ष्यति कति पाञ्चसाहस्रिकाः शिव चामरैर्वीजयन्ति ?—इति । तेन च चक्षुषैव वारितोऽरुणमुखस्तूष्णीमस्थात् । कियत्क्षणानन्तरमेव सभाभङ्गो जातः । दिल्लीश्वरः सिंहासनादुत्तीर्य, प्रस्तुत एवावरोधं प्रविष्टः, जनसमूहश्च क्रमतो वहिर्निरगात् ।

दिल्लीनगरस्य मध्य एव महाहर्म्यमेकं महाराष्ट्र—पतेर्निवासाय स्थिरीकृतमासीदिति तत्रैव स कुमारेण प्रापितः । प्रात्यहिकावश्यकवस्तुजातेन कैश्चिन्माल्यश्रीकादिभिर्वीरैश्च सह स तत्र स्थितः । पत्तयोऽश्वारोहाश्च तत्रैव शिबिरे स्थापिताः ।

महाराष्ट्रराजावहेलनावलोकनेनेव ग्लानः, यवनाऽऽखण्डलस्य

परिवर्त्य=मोटयित्वा । वाचंयम एव=मौनी एव । पाञ्चसाहस्रिकैः=पञ्चसहस्रसेनारक्षकैः ।

किरातरसमिव=तिक्तकरसमिव । तेन=रामसिंहेन । चक्षुषैव=नेत्रेणैव । वारितः=मौनीकृतः । अरुणमुखः=रक्ताननः । सभाभङ्गः=समितिविसर्जनम् । अवरोधम्=अन्तःपुरम् । निरगात्=निष्क्रान्तः ।

प्रात्यहिकावश्यकानाम्=प्रतिदिनापेक्षितानाम्, वस्तूनाम्, जातेन=समूहेन ।

महाराष्ट्रराजस्य, अवहेलनस्य=तिरस्करणस्य, अवलोकनेन=दर्शनेन । ग्लान इव=क्षीणहर्ष इव । यवनाखण्डलस्य=म्लेच्छेन्द्रस्य ।

दुरभिसन्धिं जानान इव पाण्डु-मुख-मण्डलः, राघवाचार्य-कथितं नाङ्गीचकार महाराष्ट्रराजः-इति च कोपेनेव शोणो भास्वानस्तं जगाम।

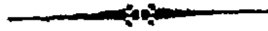
कुमाररामसिंहोऽपि पुनर्द्रक्ष्याम्यार्यमित्युक्त्वा निवृत्तः। महाराष्ट्रराजोऽपि च तदागारस्यान्तः प्रविवेश।

इति दशमो निश्वासः।



दुरभिसन्धिम्=दुर्विचारम्। जानान इव=विदन्निव। पाण्डुमुखमण्डलः=पीताननखण्डः। कोपेनेव=क्रोधेनेव। शोणः=रक्तः। अस्तं जगाम=अस्ताचलं भेजे।

इति श्रीशिवराजविजयवैजयन्त्या दशमनिश्वासविवरणम्।



"शेते करी मशक-पाद-विपादिकायाम्"

—स्फुटकम्

"उपकारिणि विस्रब्धे शुद्धमतौ यः समाचरति पापम् ।
तं जनमसत्यसन्धं भगवति वसुधे ! कथं वहसि ?"

—हितोपदेशः ।

एकादशे शिववीरस्यावरङ्गजीव–कारागृहे बन्धनं विवर्णयिषुरिति तदुपक्षेपकं प्रतीकत्रयमुद्धरति । तत्राऽऽद्यम्–शेते करी मशकपादविपादिकायामिति । मशकस्य=अतिक्षुद्रतरस्य तत्रापि नैव ख्यातस्य जीवस्य, पादे=चरणे, या विपादिका=स्फोटः, तस्याम् । यद्यपि 'पादस्फोटो विपादिका" कथ्यते कोशकारैस्तथापि समस्यायितेऽत्र पद्ये पादपदस्य पृथगुच्चारणेन स्फोटमात्रार्थकत्वमेव, विशिष्टवाचकपदन्यायादित्यवधारणीयम् । मशकचरणे तादृशलघुतमे, यत्र विपादिकोद्भूतेश्चर्चापि असम्भवः, किन्तु दैवाद्वाऽन्यस्माद्वा कस्माचिदेवम्भूतात्कारणव्रातात् सम्भूता विपादिका, तस्याञ्च करिवरो महान् जीवः सुखेन निद्रातीत्यसम्भवपरम्परा यथा; तथा शिववीरस्य-कारावासोऽपि दैवदुर्विपाकघटित एवेति हार्दम् ।

स चायं शिववीरः स एव, यः कियदेव पूर्वं दिल्लीकलङ्कस्य तनया तनयञ्च समार्पयत् प्रादर्शयच्च महतीं वीरतां गोलखण्डीयदुर्गविजये । अयञ्चोपकारः शिववीरकृतस्तादृशमुपकारं शिववीरादन्यस्तात्कालिकः कोऽपि कर्तुं न समर्थ आसीत्, किंतु सर्वमिदमेकपदे व्यस्मार्षीदवरङ्ग इति हितोपदेशाशयेन पद्येनोपक्षिपति-उपकारिणीति । उपकारिणि=कृतमहोपकृतौ । विस्रब्धे=विश्वस्ते । शुद्धमतौ=अकपटबुद्धौ । यः=दुर्विनीताग्रेसरः, निर्विवेकः । साधुसमाजगर्हितः । पापम्=घृणितमाचारम् । समाचरति=विदधाति । वसुधे !=वसुन्धरे ! । असत्यसन्धम्=असत्यप्रतिज्ञम्, तम्=पूर्वोक्तं पापिनम् । जनम्=मनुष्यमेव, ननु राक्षसम् । कथम्=केन प्रकारेण । वहसि=धारयसि । न हि

"पुरा सरसि मानसे विकच सारसालि स्खलत्-
पराग सुरभीकृते पयसि यस्य यातं वयः ।
स पल्वल-जलेऽधुना मिलदनेक भेकाऽऽकुले
मराल-कुल-नायकः कथय रे ! कथं वर्तताम् ?" ॥

—भामिनीविलासे पण्डितराजः ।

गिरिनदनदीशादिभिः पृथिव्यास्तथा भारो यथा मानव ाकारैः परवञ्चनमात्र-निपुणैर्विश्वासघातिभिरिति स्मरन्ति धर्मशास्त्रकारा नीतिकाराश्च ।

अथ दैवतन्त्रमित्यवधार्य जयसिंहादिभिः साकं सोढव्यः शिववीरेणापि दुर्वारविपद्व्रात इति चेदत्र पण्डितराजीयया हंसान्योक्त्या कर्त्तव्यमुपक्षिपति-पुरेति । पुरा=कियदेव पूर्वम् । मानसे सरसि=प्रालेयाद्रेरुत्तरस्या कैलासाद्रेरन्तिके कौबेरैर्यक्षोभिरधिष्ठिते पौराणिकैरनेकधा समुद्गीतगुणगणे मानसाख्ये सरोवरे । विकचानाम्=विकसितानाम्, सारसानाम्=सरसीरुहाणाम्, आलेः=राजेः, स्खलद्भिः=पतद्भिः, परागैः=धूलिभिः, सुरभीकृते=सुगन्धीकृते । पयसि=वारिणि । यस्य=भाग्यशालिनः । वयः=अवस्था । न दिनानि, मासाः, वर्षाणि वा-अपि तु वयः । यातम्=व्यतीतम् । सः=एषः । मरालकुलस्य=हंसान्वयस्य, नायकः=श्रेष्ठः । अधुना=साम्प्रतम् । मिलद्भिः=घटमानैः । अनेकैः=असङ्-ख्याकैः, भेकैः=मण्डूकैः । आकुले=व्याप्ते । पल्वलस्य=अल्पोदकसरसः, जले=नीरे । कथम्=केन प्रकारेण । वर्त्तताम्=विद्यताम् । रे !=नीचसम्बोधनम् । कथय=प्रतिपादय । अप्रस्तुतस्य मरालस्य प्रशंसया प्रस्तुतस्य कस्यचन महाशयस्य पूर्वं ससुखं क्वचनोषितस्य पश्चात् कैश्चि-त्कारणैस्तत्स्थानमपहाय गच्छतोऽन्यत्र स्थातुं कैश्चिन्नीचैरभिहितस्योदात्तभाव-प्रशंसाप्रतिपादनादप्रस्तुतप्रशंसालंकारः । अवरङ्गजीवपितु शाहजहाननृप-तेश्छायायाम् "दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा" इति स्वार्थनिर्वाहार्थं भणतः पश्चात्ततो विरागः सञ्जातः पण्डितराजस्येति स्वीयमेवात्र घटनाचक्रं निबध्नातीति मर्मविदः । भवति चैतत्प्रमाणीकृतं तेन स्वयं वर्णिते स्वजी-वनवृत्तान्ते—

निशीथप्राया रजनी, उष्ण. काल., समीरो न सरति, गृहे गृहे बालानां रोदनस्याऽऽर्तनादो व्यजन-चालनस्य च सणत्कारो निद्रा-मन्थरानपि व्याकुलयति। जल जलम्, हिमं हिमम्, वातो वात', दाडिम्बरसो दाडिम्बरसः, उशीरमुशीरम्, पाटलोदक पाटलोदकम्, चन्दन-चूर्णं चन्दन-चूर्णम्–इति, मशका मशकाः, मत्कुणा मत्कुणा., कण्डू कण्डू., स्वेद. स्वेद., इति च श्रूयते अट्टेभ्यो ध्वनि। तावद् भेरी-नाद-सहचरितेन वंशी-नादेन समारब्धो मध्य-निशीथ-सूचको विहागरागाऽऽलाप:। क्वचिच्चाश्रूयत नवोढानां मञ्जीर-किङ्किणी-नूपुर-वलय-शिञ्जितम्। एतद्रस-भञ्जक-

"सम्प्रत्युज्झितमासनं मधुपुरीमध्ये हरिः सेव्यत" इति पद्यखण्डे। अन्यच्च—

यस्मिन् वेल्लति सर्वतः परिचलत्कल्लोलकोलाहलै-
र्मन्थाद्रिभ्रमणभ्रम हृदि हरिद्दन्तावलाः पेदिरे।
सोऽयं तुङ्गतिमिङ्गिलाङ्गकवलीकारक्रियाकोविदः
क्रोडे क्रीडतु कस्य केलिकलहत्यक्तार्णवो राघवः॥

इत्यास्ता तावत्। प्राचीनेतिवृत्तान्वेषणपराणा ध्यानाकृष्टये तु यत्किञ्चिदिदमालपितमिति शम्।

निशीथप्राया=प्रायोऽर्धरात्रिरूपा। उष्ण. काल.=ग्रीष्मसमयः। समीर.=वायुः। न सरति=न चलति। व्यजनचालनस्य=वृन्तबीजनस्य। निद्रया मन्थरान्=सालस्यान्। उशीरम्=नलदम्। "खस" इति हिन्दी। पाटलोदकम्="गुलाबजल" इति हिन्दी। मत्कुणा =रक्तबीजा। कण्डू =खर्जूः। अट्टेभ्य =अट्टालिकाभ्य.। भेरीनादेन, सहचरितेन=मिलितेन। मध्यनिशीथसूचक.=अर्धरात्रबोधकः। विहागरागः=एतन्नामको रागविशेषः। नवोढानाम्=नूतनपरिणीतानाम्। एतस्य रसस्य=शृङ्गाराख्यनः, भञ्जक =

श्राऽऽकर्णि प्रहरिणां "जागृहि भो ! जागृहि, गाढोऽयमन्धकार."- इति कर्णकषायो नादः ।

महाराष्ट्रराजस्तु चिन्ता-सन्तापेनापि तप्यमानो नालभत निद्राम् । अथ उशीर-व्यजनिकामादायाऽऽन्दोलयन्, पर्य्यङ्कं विहाय दाडिम्ब-रस-सितोपल-मिश्रितं शीतं सलिलमास्वाद्य, स्वमातु स्वदेशस्य स्वपुत्रस्य स्वपत्न्याश्च संस्मरन्, बहिरलिन्दमागत्य निर्वाणप्रायं दीपं पुन. सञ्ज्वल्य, तत्रैवाऽऽसन्दीमेकामध्यु-ास । मनस्येव च चिन्तायतुमारब्धवान्, यद्—

अहह ! किं करोमि ? क्व गच्छामि ? कथं पुन. पुण्यनगरं प्राप्नोमि ? कथं पुन. प्रताप-दुर्ग-शिखरमारुह्य सस्य-श्यामां महाराष्ट्र-भूमिमवलोकयामि ? कथं पुनस्तोरणदुर्ग-साम्मुखीनां मारुति-मूर्तिं प्रणमामि ? कथं पुना राज-दुर्गस्थ-राजसिंहासन-मधिरोहामि ? कथं पुनर्दैवज्ञ-वर्य्यस्य देवशर्मणश्चरणौ स्पृशामि ? हन्त ! तदाश्रमस्थाया गौरसिंह-भगिन्या विवाह-साहाय्यार्थं वरमन्वेष्टुञ्च प्रतिज्ञातवानस्मि । हा ! श्रूयते तदर्थमभिमतो रामसिंह एव रघुवीर-नाम्ना मदनुचर आसीत् ! अहह !! योऽन्वे-

---

मर्दकः । कर्णकषायः=श्रोत्रकटुः ।

चिन्तासन्तापेनापि=चिन्तनज्वालेनापि । उशीरव्यजनिकाम्=नलदवातकरीम् । आन्दोलयन् = सञ्चालयन् । दाडिम्बरसेन=दाडिम-द्रवेण, सितोपलेन=शर्करया, मिश्रितम्=मेलितम् । शीतम्=शिशि-रम् । स्वमातुःसंस्मरन्, "अधीगर्थदयेशां कर्मणी"ति कर्मणि षष्ठी । एवमग्रेऽपि । बहिरलिन्दम्=प्रघाणम् । निर्वाणप्रायम्=समाप्तिं गच्छन्तम् । आसन्दीम्=वेत्रासनिकाम्, "उपान्वध्याङ्वसः" इति कर्मता ।

सस्यै=धान्यलघुवृक्षैः, श्यामाम्=असिताम् । तोरणदुर्गस्य, साम्मुखी-नाम्=पुरो भवाम् । मारुतिमूर्त्तिम्=आञ्जनेयप्रतिमाम् । वरम्=विवाह्यम् ।

ष्टव्यः; स ए मया सभर्त्सनं निःसारितः । हा ! कथं स्वपुत्र-वियोग-दुःखितं ब्रह्मचारि-वेषं महाराज-जयसिंहस्यान्यतमं बन्धुं वीरेन्द्रसिंहं सान्त्वयिष्यामि ? नूनं निर्दोष-रघुवीर-निर्वासन-पापस्यैव फलमेतत् यत्—स्वयमागत्य प्रत्यर्थिनां क्रोडे पतितोऽस्मि । प्रथम-साक्षात्कार एव अनादरं समनुभूतवानस्मि, परेऽह्न्येव च सन्देशं प्राप्तवानस्मि यद्—भूपति सभायां यदुक्तं तत् सम्राजः कर्णशष्कुलिमस्पृशत्; तस्यायमेव दण्डो यन्न पुना राजसभायामागन्तव्यमिति । अल्पीयस्यपि मे सेना नगराद्बहिरेव शिबिरेऽस्ति । पञ्चैरात्मीयैः कतिपयैरेव च भृत्यैः सहात्र निवसामि । अत्रत्यं वायु-जलं नानुकूलमिति छलेन महाराष्ट्रदेश-निवर्तनादेशाय प्रेषितेऽप्यावेदनपत्रे दिल्ली-कलङ्केन विषयान्तरे बहु लिखितमप्याज्ञा-सम्बन्धे किमपि नालेखि । विनैवाऽऽज्ञां यदि पलायेय, अथ गृह्येय चेद्यवन-हस्तेन ध्रुवो मृत्युः । अहो ! दुरदृष्टम् !! यद् रामदासाचार्य-सन्यासिनोऽपि न स्वीकृतं वचनम्-इति विचारयन्नेव निष्कुटक-कुटान्तरालेष्वेवास्पष्टाकृति कञ्चन पुरुषमद्राक्षीत् ।

"चौरोऽयं लुण्ठकोऽयं सपत्नोऽयम्" इति विचारयन्, सपदि विकोशां छुरिकां हस्ते गृहीत्वोदस्थात् । तस्मिन् किञ्चित् समीप-मायाते च ददर्श—यदेको भस्मोद्धूलित-शरीरो विश्लथत्-कच-

---

तदर्थम्=सौवर्णीकृते । अभिमतः=इष्टः । सभर्त्सनम्=सभयप्रदर्शनम्, सन्यक्कारम् । निर्दोषरघुवीरस्य, निर्वासनम्=निस्सारणम्, एव पापम्, तस्य । प्रत्यर्थिनाम्=शत्रूणाम् । प्रथमसाक्षात्कारे=आदिमदर्शने । अल्पीयसी=अतिन्यूना । विषयान्तरे=अन्यसम्बन्धे । पलायेय=गुप्त गच्छेयम् । गृह्येय=गृहीतो भवेयम्, यवनैरिति शेषः । निष्कुटकेषु=गृहारामेषु, ये कुटाः=वृक्षाः, तेपामन्तरालेषु । अस्पष्टाकृतिम्=अपूर्णावलोक्याकारम् ।

सपत्नः=शत्रुः । विकोशाम्=नग्नाम् । भस्मोद्धूलितशरीरः=

कुल-समाच्छन्नांस-पृष्ठ-वक्षःस्थलो लम्बकूर्चो नीलरस-रञ्जित-वसनो वामकर-गृहीत-मृत्तिका-मालो यवन-भिक्षुरायात इति। अथोच्चैः सप्रौढि तमपृच्छत्—कस्त्व रे! निशीथे?—इति। स तु मन्दमाह—जनोऽयं कश्चिच्छुभ-चिन्तको भवत', शनैरालपनी-यमेतेन। ततः स कश्चिच्छ्रु त-पूर्व स्वरं कर्णे कुर्वन्नपि परिचेतुम-क्षम पुनरपृच्छत्-नावगतं को भवान्?—इति। स आह—"शुभ-चिन्तकोऽयं राघवाचार्य्यः सन्यासी"। तदाकर्ण्य महारा-ष्ट्रपतिः प्रकाशं प्रबलीकृत्य निपुणं निरीक्ष्य, कृत्रिमां जटां कूर्च श्मश्रुपुञ्जञ्च विलोकयन्, मन्दं स्मित्वा, उवाच—अवधूत! धन्योऽसि, य एवमपि दृश्यसे। किन्तु पिहितेषु द्वारेषु कुत आया-तोऽसि? स उवाच—प्राचीरमुल्लङ्घ्य, कष्टेनाऽऽयातोऽस्मि। एष उवाच—कथमद्य रूपान्तरम्? स उवाच—नगरेऽस्मिन् वैष्णवेषु प्रपतति सर्वेषां दृष्टिः, न च म्लेच्छावधूतेषु—इति तद्वेषमे-वावलम्बितवानस्मि।

तत उपविष्टयोरुभयोर्मुहूर्तानन्तरमेवमभूवन्नालापाः—

महाराष्ट्रराजः—कुतः समागच्छत्यार्य्यः?

भूतिच्छुरितगात्रः। विश्लथत्कचकुलेन=विगलत्केशसमूहेन, समाच्छ-न्नम्=व्याप्तम्, अंसपृष्ठवक्षःस्थलं यस्य सः। लम्बकूर्चः=दीर्घदाढिकः। नीलरसेन=नीलीद्रवेण, रञ्जित वसनं यस्य सः। वामकरगृहीतमृत्ति-कामालः=दक्षेतरहस्तधारितमृत्स्नास्रक्कः। सप्रौढि=सगर्वम्। शुभ-चिन्तकः=कल्याणाभिलाषी। परिचेतुम्=संस्तोतुम्। कृत्रिमाम्=प्रयत्नसम्पादिताम्। अवधूत!=संन्यासिन्! पिहितेषु=आवृतेषु। रूपान्तरम्=वेषान्तरम्। वैष्णवेषु=विष्णुभक्तेषु, ऊर्ध्वपुण्ड्रामनामित्रि-दण्डादिभिः परिचीयमानेषु। म्लेच्छावधूतेषु=यवनसाधुषु। तद्वेषम्=यवनसाधुनेपथ्यम्।

राघवाचार्य्यः—व्रत-साधनाय परितो भ्रमामि ।

महा०—अपि जानाति कमपि कुशलवृत्तान्तं महाराष्ट्रदेशस्य भवान्? अपि कुशलिनी मे जननी? कुशलिनो वा जानपदाः? अपि वा कुशली शम्भु-कुमारः?

राघ०—दीनबन्धो! यादृशस्य महाशयस्य हस्ते महाराष्ट्र-भूमि-भरण-भारं निक्षिप्तवानसि; तादृशस्य शासने न सम्भवत्यकुशल-वार्ताऽपि। जननी च कुशलिनी, श्रीमत एव कुशलाय व्रतमाचरन्ती क्षामदेहा स्थण्डिलशायिनी हविष्याऽऽहारा च वर्वर्ति।

महा०—हा मात:! [इति मुखं परावर्त्य काश्चिदश्रु-बिन्दूनमूमुचत्]

राघ०—महाराज! न चिन्तनीयं किमपि! कुशली कुमारः शम्भुवीरः, तुरगं चालयन् स्वदर्शनेन प्रजा रञ्जयति। ग्रामे ग्रामे गृहे गृहे मन्दिरे मन्दिरे च परमात्मा समाराध्यते।

महा०—अपि मम कुशलाय परमेश्वर आराध्यते?

राघ०—वीरवर! भवत्प्रजासु के न भवन्तं प्राणाधिकं मन्यन्ते? सम्प्रति क्वचन महारुद्र-मुद्रया रुद्रोऽभिषिच्यते, क्वचन सह-स्रैर्गृहीत-ब्रह्मचर्य्याणां ब्राह्मणानां समन्त्र-सम्पुट-चण्डीपाठैर्भगवती

व्रतसाधनाय=अङ्गीकृतनियमनिर्वाहाय।

जानपदाः=देशवासिनः। शम्भुकुमारः="सुम्भाजी"ति ख्यातो राजकुमारः। इतिवृत्तेषु लिखितम्—"सोऽपि सहैव पित्रा कारागारे बद्ध" इति। अत्र तु वैपरीत्येनोल्लिखितं कथावैशिष्ट्यरक्षणायेति वेदितव्यम्।

महाराष्ट्रभूमेः, भरणभारम्=रक्षणधुराम्। अकुशलवार्त्ताऽपि=अमङ्गलकथाऽपि। क्षामदेहा=कृशकाया। स्थण्डिलशायिनी=भूमि-स्वापिनी। हविष्याहारा=पायसभोजना।

महारुद्रमुद्रया=महारुद्रयागेन। गृहीतब्रह्मचर्य्याणाम्=धारिताष्टविध-मैथुनत्यागनियमानाम्। समन्त्रसम्पुटं यथा स्यात्तथा चण्डीपाठैः=सप्तशती-मन्त्रजपैः। प्रतिसप्तशतीमन्त्रमाद्यन्तयोर्मन्त्रविशेषोच्चारणपूर्वकं सप्तशतीपाठः

दुर्गाऽऽद्रियते, कचिच्च ग्रह-मातृकादि-मण्डल-मण्डितस्य मण्ड-
पस्याधस्ताद् वेदमन्त्रैर्भगवान् बृहद्भानुर्हविषा हूयते। किं ब्रवीमि ?
दि अल्पमपि भवदमङ्गलं श्रूयेत महाराष्ट्रैः तन्मन्ये कोप-कृशानु-
तिभिरखिलं भूमण्डलं भस्मसात् क्रियेत।

महा०—[किञ्चिदानन्दित इवाङ्गान्यान्दोल्य] भगवन् ! का क्षमता
राकस्यैतस्य ममामङ्गलमाचरितुम् ? परं भवतो वचनमनङ्गीकृत्य
मायातोऽस्मीति तत्फलमेव भुञ्जे।

राघ०—तत्किं दिल्लीश्वरेण तु कृतसन्धिः श्रीमान् ?

महा०—किमिव लज्जयते मां स्वामी ? सर्वं विदितमा-
र्याणाम्।

राघ०—अत्रावस्थानं न रोचेत चेदद्यैव प्रतिष्ठताम्। को नाम
ागुरया समीरणमिव भवन्तं रोत्स्यति ?

महा०—मन्ये कोऽप्युपाय उद्भावितः पलायनस्य !

राघ०—किमज्ञातमार्य्याणाम् ?

महा०—किमिति ?

पुष्टपाठः। दुर्गा=दुर्गतितारिणी महामाया। ग्रहाणाम्=सूर्यादीनाम्,
मातृकाणाम्=गौर्यादिषोडशसङ्ख्याकानाम्, घृतमातृका-चतुष्षष्टियोगिनी-
सोधराणाम्, आदिना, पञ्चलोकलोकपाल-दशदिक्पाल-क्षेत्रपालादी-
ाञ्च, मण्डलैः=स्थानैः, मण्डितस्य=भूषितस्य। मण्डपस्य=तृणादि-
नेर्मित-परिमितहस्तद्वादशादिसङ्ख्यासंवलितस्यान्तर्गृहस्य। बृहद्भानुः=
हनः। हविषा=हवनीयेन वस्तुना। हूयते=तर्प्यते। कोप एव
कृशानुः=वह्निः, तस्य, हेतिभिः=ज्वालाभिः। भस्मसात्=दग्धम्।

आन्दोल्य=सञ्चाल्य। क्षमता=शक्तिः। भुञ्जे=अनुभवामि।

लज्जयते=लज्जितं कुरुते।

प्रतिष्ठताम्=प्रस्थानं क्रियताम्, भवानिति शेषः। वागुरया=
मृगबन्धन्या। समीरणमिव=वायुमिवेत्युत्प्रेक्षा।

राघ०—भगवन् ! अनायासेनाद्यान्धतमसे गृहीत-यवन-भिक्षु-वेषो मया सह नि सरतु श्रीमान् !

महा०—ततः ।

राघ०-यद्यपि नगरस्यास्य परित उच्चा भित्तिरस्ति; तथाऽपि पूर्वत एकत्र महान् सशङ्कुग्रन्थि-वंश एकः स्थापितोऽस्ति, तदवलम्ब्य कुड्योल्लङ्घनमनायास-सिद्धं महाराष्ट्रवीराणाम् । परतश्च श्रृङ्खलैका संलम्बते, तदालम्ब्य त्रुटिमात्रेण भूमिं स्प्रक्ष्यति । तत्र वृक्षच्छायायां निलीन एकोऽश्वः । तेन क्षणेन किञ्चिद्द गत्वैव द्रक्ष्यते यत्—कलिन्द-तनयायामेकाऽल्पीयसी नौकाऽस्ति, तस्यां क्षेपणी-हस्ता दश वाहका. प्रभुमपेक्षन्ते । ते च त्वरया मथुरां प्रापयिष्य न्त । ततस्तु येन केनापि पथा सुखेन भवान् महाराष्ट्र-देशं प्रधास्यति-इति ।

महा०—अत्यन्त प्रशंसामि भवदुद्योगम् , किन्तु मन्यतां यदि कश्चन मार्गे प्रहरिषु परिचिनुयात् ?

राघ०-एतस्मिन् पथि पञ्चषा आस्माकीना महाराष्ट्रा एव कलित-यवन-वेषा प्रहरितां प्राप्ता सन्ति । ते च श्रीमतः शुभं चिन्तयन्ति ।

महा०—अथ कोऽपि प्राचीरोल्लङ्घन-समये परिचिनुयात्, अन्तरायञ्च विदध्यात् ?

राघ०—महाराज ! तस्मिन्नेव स्थाने अन्धकारे द्वादश महाराष्ट्र-

उच्चा=उन्नता । भित्ति =कुड्यम् । शङ्कुग्रन्थिभिः सहितो वंशः सशङ्कुग्रन्थिवंशः=असमीकृतो वेणुः । स्थापितः=रक्षितः । कुड्यस्य, उल्लङ्घनम्=उत्प्लवनम् । श्रृङ्खला=दाम लौहम् । त्रुटिमात्रेण=निमेष-पतनद्वयमात्रेण समयेन । कलिन्दतनयायाम्=यमुनायाम् । क्षेपणीहस्ताः=नौकादण्डकराः । वाहका =कर्णधाराः ।

प्रहरिषु=यामिकेषु । परिचिनुयात्=विजानीयात् । अन्तरायं=विघ्नम् ।

भटाः खड्गहस्ताश्छद्म-वेषिणोऽन्धतमसाऽऽच्छन्नाश्च सन्ति । यदि कश्चिद् विघ्नमाचरेत्; तस्य ध्रुवं मरणम् ।

महा०—अथ परतो यमुना मार्गे चेदाक्रम्ये कैश्चित् ?

राघ०—न भयम्, न भयम् ! अस्माभिः शास्तिखान-युद्धे बहूनां यवन-भटानां पट्टिकाः खड्गा. वीरता-वस्त्राणि शिरोवेष्टनानि अधोवसनानि उपानहः कटि-बन्धनानि च बलाद् गृहीतानि, तैरेव कलित यवन-वेषाणां स्वाध्यक्ष-तदध्यक्षादि-सहितानां गुप्तसेनैकाऽस्ति । तस्या एव शतशो भटाः पथि परितो गूढ भ्रमन्ति । सर्वे ते श्रीमद्रक्षकाः ।

महा०—नौकाऽऽरोहसमये चेदापत्तिः ?

राघ०—वाहका अपि योद्धारः । शस्त्रपूर्णा च नौका । यमुनातटेऽपि कपट-भिक्षुका भावत्का. सजृम्भारम्भ स्वापमिवानुकुर्वन्ति ।

महा०—केचनाभिज्ञाय चेत् पथि तरणिगतिं रुन्ध्यु' ?

राघ०—तरणि-तनूजामभितस्तटेऽपि भावत्काः पत्तयः सादिनश्च सन्नद्धाः सन्ति । तरणिरोधं कोऽपि विधातुं पारयेच्चेत्; तरणि-रोधमपि विधातुं पारयेत् ।

छद्मवेषिणः=परिवर्तितनेपथ्याः । ध्रुवम्=अवश्यम् । मरणम्=मृत्युः । आक्रम्ये=आक्रान्तो भवेयम् ।

कलितयवनवेषाणाम् = धारितम्लेच्छनेपथ्यानाम् । गुप्ता=प्रच्छन्ना ।

शस्त्रपूर्णा=आयुधभरिता । कपटभिक्षुकाः=छद्मगृहीतयाचकवेषाः । सजृम्भारम्भम्=सगात्रविनामप्रारम्भम् । स्वापमिव=शयनमिव । अनुकुर्वन्ति=विडम्बयन्ति । यवनैः साकं योद्धुं सन्नद्धा इति भावः ।

अभिज्ञाय=परिचीय, तरणिगतिम्=नौकामार्गम् । रुन्ध्युः=प्रतिबध्नीयुः ।

तरणितनूजाम् = सूर्यतनयाम्, यमुनाम् । भावत्काः=भवदीयाः । पत्तयः=पदातयः । तरणिरोधम्=नौकाया प्रतिबन्धम् । तरणिरोधम्=सूर्यप्रतिरोधम् । मिथ्याध्यवसितिरलङ्कारः ।

महा०—मथुरायाञ्चेदापत्तिः ?

राघ०—नैवम्, मथुरायां सहस्रशो भावत्का वैष्णव-वेषेण सञ्चरन्ति ।

महा०—[क्षणं विचार्य] अथ मामकानां शिबिरस्थानां दिल्ली-नगरे चेतस्ततोऽधिवासितानां का दशा भवेत् ?

राघ०—महाराज ! भवन्तमलभमानो दिल्लीश्वरस्तान् गृहीत्वाऽपि त्यजेत् !

महा०—नैवं सम्भाव्यते क्रूरतमेऽस्मिन्, यो भ्रातॄनप्यवधीत्, पितरञ्च न्यग्रहीत् ।

राघ०—महाराज ! किमप्यस्तु, परन्तु यदि नाद्य पलायते भवान्, तदा श्वो गृहाद् वहिर्गमनमपि भवतो निषिद्धं भवेत् ।

महा०—अपि सत्यमिदम् ?

राघ०—अतिसत्यम् !

महा०—आ ! केनेव योगबलेन ज्ञातवानसि ? [क्षणं विचिन्त्य] आचार्य्य ! भवादृशे शुभचिन्तके साहाय्यं विदधति, कारागारस्थोऽपि स्वातन्त्र्यमासादयिष्यामि । किन्तु आश्रितान् मृत्युकपोले कवलवन्निपात्य नहि जिजीविषामि । किञ्च, अधुनैवापसृतेष्वस्मासु कदाचन अस्मद्दोषमेव दिल्लीश्वर-जयसिंहादयः

मामकानाम्=मत्सम्बन्धिनाम् । अधिवासितानाम्=कारितनिवासानाम् ।

भ्रातॄन्=सहोदरान् । अवधीत्=अमारयत् । पितरम्=उत्पादयितारम् । न्यग्रहीत्=कारासदने स्थापितवान् ।

शुभचिन्तके=कल्याणानुध्यायके । विदधति=कुर्वति । मृत्युकपोले=यममुखे । कवलवत्=ग्रासवत् । जिजीविषामि=प्राणितुमिच्छामि ।

प्रकटयेरन्—यत् "सम्मानयितुमुत्सुकमपि त्यक्त्वा, धाष्टर्येनैव पलायितः"—इति । तद्भवतु नाम कश्चन प्रकटोऽपराधो दिल्लीश्वरस्य, ततो यास्यामः । न हि महाराष्ट्रवीरा वराकैरेतैः सिंहा इव शशकैर्निग्रहीतुं शक्यन्ते । तावद्यदि क्लेशो न स्यात्; तत् सूच्यन्तामस्मत्पूजक-पाचक-लेखक-पाठकादयः सपदि महाराष्ट्रदेशाभिमुखं प्रस्थातुम् ।

राघवा०—[उच्छ्वस्य] धन्यो महाराज. । य एवं प्राणानप्यगणयन् करुणया आत्मीयानां कुशलं चिन्तयति । एवमेव धर्मो राज्ञां यत् स्वोयाना प्रतिपालनं सम्मान सदा कुशलचिन्तनञ्च । भृत्या हि, रोदं रोदं वक्षो घ्नतीं मातरम्, विलुलितैः केशैर्भूमि-विलुण्ठनैश्च रोदसी रोदयन्तीं पत्नीम्, ताता-तातेति कलरवैर्मूर्च्छयतः पटान्तमाकर्षतः पृथुकांश्च तृणवद्विहाय स्वामिकार्य्यं साधयितुं स्वदेहमर्पयन्ति । तत्कृतज्ञता-स्वीकारो हि राज्ञां 'प्रथमो धर्मः—इति धन्यो भवान् राजधर्म-परतन्त्रो दयानिधिः ॥

महा०—[निःश्वस्य पटान्तेनाश्रूणीवापसार्य्य] आचार्य्य ! बहूक्तम् ! मा स्म स्वयं खिन्नमधिकं खेदय, मादृशः कृतघ्नो दुरवापः ।

अपसृतेषु=पलायितेषु । सम्मानयितुम्=सत्कर्तुम् । उत्सुकम्=उत्कम् । धाष्टर्येन=धृष्टतया । सिंहा इव शशकैरित्युपमा । निग्रहीतुम्=रोद्धुम् । सूच्यन्ताम् = बोध्यन्ताम् ।

अगणयन्=अचिन्तयन् । आत्मीयानाम्=स्वेषाम् । सम्माननम्=सत्करणम् । कुशलचिन्तनम्=शिवानुध्यानम् । रोदं रोदम्=रुदित्वा रुदित्वा । वक्ष.=उरः । घ्नतीम् = ताडयन्तीम् । विलुलितैः=विश्रृङ्खलितैः । भूमिविलुण्ठनै. = धरणीपरिवर्त्तनैः । रोदसी=द्यावापृथिव्यौ । कलरवै.=मधुरभाषणैः । मूर्छयतः=मोहयतः । पटान्तम्=वसनप्रान्तम् । पृथुकान्=बालान् । राजधर्मस्य, परतन्त्रः=अस्वाधीनः ।

कृतघ्नः=कृतविस्मर्ता ।

राघवा०—किमिति ? किं कदाऽपि कोऽपि निष्कपट-दास-स्तिरस्कृतो वा ?

महा०—धिङ् माम् ! तथा तिरस्कृतवानस्मि प्राणरक्षकमेकम्; यत् श्रूयते स मम तिरस्कारग्लानः प्राणांस्त्यक्तवान्—इति। आधिरयं ममापि प्राणैः सहैव शान्तिमेष्यति।

राघ०—[ग्रीवा परिवर्त्य कानिचिदश्रूण्युन्मुच्य] अपि महाराज-स्तस्य नाम कथयिष्यति ? यथा योग-बलेन चिन्तयेयं स जीवति न वेति।

महा०—रघुवीरसिंह'।

राघ०—[आत्मनो रोमाञ्चं गद्गदस्वरञ्च गोपयन्, ध्यानच्छलेन क्षण तूष्णीं संवृत्य धैर्य्यमाधाय] दीनबन्धो ! जीवति रघुवीर-सिंहः।

महा०—जीवतु जीवतु, चिरं जीवतु, अथ किं करोति ? क्वा-स्ति ? स्मारं स्मारं मम तिरस्कारं मामपवदति वा ?

राघ०—[कर्णौ पिधाय] शान्तं पापम् ! नहि तादृशानि कुलीनानामपत्यानि प्रभुमपवदन्ति। तानि हि देहं पातयन्ति; न तु प्रभुभक्तिम्। प्राणांस्त्यजन्ति, न च स्वामि-चरणे अनुरागम्। स एवं तिरस्कृतोऽपि निर्वासितोऽपि प्रभूणां कुशलायैव व्रतमाचरति। [इति कथयत एव राघवाचार्य्यस्य स्वरभङ्गो भाव-विकारश्च प्रकटो बभूव]।

निष्कपटदास'=निश्छद्मभृत्यः।

तिरस्कारेण, ग्लान.=क्षीणहर्षः। आधिः=मानसिकव्यथा। शान्तिम्=शमम्।

रोमाञ्चम्=पुलकम्। ध्यानच्छलेन=चिन्तनव्याजेन। संवृत्य=भूत्वा।

अपवदति=गर्हयति। निन्दा करोति वा इति प्रश्नः।

पातयन्ति=नाशयन्ति। अनुरागम्=प्रेम। स्वरभङ्गः=कण्ठे वाष्पावरोधेन वैस्वर्यम्।

[महाराष्ट्रराजः सतर्कं तन्मुखमैक्षिष्ट]

राघ०—[सधैर्यम्] महाराज ! तस्मिन्ननुरक्तायाः कस्याश्चन ीर-बालाया अवस्थां संस्मृत्य खिन्नं मे चेत' ।

महा०—का सा ?

राघ०—प्रभोः सहचरस्य गौरसिंहस्य भगिनी ।

महा०—अहह ! स्मरामि । किमवस्था सा बाला सौवर्णी ?

राघ०—आर्य ! आकर्ण्य रघुवीरं नष्टम्; सा रहस्तडागतटमासाद्य, मुक्तकण्ठं चिरं रुदित्वा, शुष्ककाष्ठान्यादाय, चितां ज्वलयित्वा, आत्मानं भस्मसात् कर्तुं प्रवृत्ता ।

महा०—आः किमुच्यते ? ततः ।

राघवा०—ततो मन्दिर-पूजकस्य पुत्री पुत्रवधूश्चाकस्मात्तत आगते तां तथाभूतामालोक्य दृढं गृहीत्वा तारस्वरेण "धावत भोः धावत ! सौवर्णी त्वात्मानं दहति"—इति करुण-कोलाहलमकुरुताम् ।

महा०—ततः ?

राघ०—ततो झटिति मन्दिर-पूजको देवशर्मा, अपरे च स्खलन्तो निपतन्तः श्लथद्वसनास्त्वरित-निश्वासास्तत्र समागताः ।

महा०—ततः ?

राघ०—ततः समालिङ्ग्य, क्षणं रुदित्वा, देवशर्मणा कथितम्—वत्से ! वेद्मि—यत् त्वं शून्यं जगत् पश्यसि । आत्मानञ्च भुवो भारभूतमाकलय्य विमानमिव भासमानं बृहद्भानुमारुह्य पत्या समं

अनुरक्तायाः=कृतप्रणयायाः ।

रह'=एकान्ते । आसाद्य=प्राप्य । मुक्तकण्ठम्=उच्चैः ।

स्खलन्तः = पतितु प्रवृत्ताः । श्लथद्वसनाः = गलद्वस्त्राः । त्वरित-निश्वासाः=द्रुतश्वासाः ।

शून्यम् = रिक्तम् । भारभूतम् = भारायमाणम् । विमानमिव = आकाशयानमिव । भासमानम्=प्रज्वलन्तम् । बृहद्भानुम् = वह्निम् ।

वैकुण्ठं जिगमिषसि। कथं न स्याः ? कन्यारत्नं हि भवती क्षत्रियाणाम्! परमत्र ते भ्रमः! सम्यग् ग्रह-दशामवलोक्य रात्रावेव गणितवानस्मि। यं सुरलोकेष्वन्वेष्टव्यं मन्यसे, स वसुधामेवालङ्करोति। अचिरेण स आत्मानं प्रकटयिष्यति। तदा स त्वां कथास्वेवावलोक्य वाताऽऽहतो रम्भास्तम्भ इव निपत्य क्षणेन अचिन्तनीयमाचरिष्यति। तद् विश्वसिहि, धारय देहम्, प्राप्स्यसि प्रेयासम्—इति।

महा०—[आकाशमवलोक्य, निश्वस्य] भद्रे! तवापि कष्टस्यायमेव कारणं निर्विचारः [सम्मुखम्] आचार्य्य! ततः ?

राघ०—देव! एवं बहुधा बहुभिः सान्त्व्यमाना, उन्मत्तेव गृहीत-सुदृढ-मौनव्रता मुक्त-केशी धूलि-धूसरित-देहा रुद्राक्ष-माला-कलित-वक्षाः स्थण्डिल शायिनी तडाग-कोणे एव शिवालयमेकमध्युष्य बिल्वपत्रैर्जलधाराभिर्धूर्तकुसुमैरक्षतैश्चानवरतं शिवं पूजयन्ती समयं यापयति।

महा०—हा! रघुवीर! कदा त्वां समालिङ्ग्य क्षमापयिष्यामि ?

आरुह्य=उपरि स्थित्वा। वैकुण्ठम्=वैष्णव धाम। जिगमिषसि=गन्तुमिच्छसि। भ्रमः=भ्रान्तिः। ग्रहदशाम्=खेचरस्थितिम्। सुरलोकेषु=स्वर्गादिषु। अन्वेष्टव्यम्=अन्वेषणीयम्। अलङ्करोति=भूषयति। जीवतीति यावत्। कथासु=कथानकेषु। वाताहतः=वायुताडितः। रम्भास्तम्भ इव=कदलीस्तम्भ इव। अचिन्तनीयम्=अविचारणीयम्। मरणमिति यावत्। प्रेयांसम्=प्रियतरम्।

अयमेव=शिव एव। निर्विचारः=निर्विवेकः।

सान्त्व्यमाना=शान्तिं नीयमाना। गृहीतसुदृढमौनव्रता=धारितातिकठोरवाचंयमनियमा। धूलिधूसरितदेहा=रजोरूषितगात्री। शिवालयम्=शिवमन्दिरम्। अध्युष्य=अधिष्ठाय। "उपान्वध्याङ्वसः" इति शिवालयस्य कर्मत्वम्। बिल्वपत्रैः=श्रीफलदलैः। धूर्तकुसुमैः=धत्तूरैः। "उन्मत्तः कितवो धूर्तो धत्तूर"इत्यमरः। अक्षतैः=तण्डुलकणैः।

तावदकस्माद् दीपो मन्दप्रकाशः संवृत्तः। महाराष्ट्र-राजस्तमुद्दीप्य, परिवृत्त्याद्राक्षीत्–यत्र तत्र राघवाचार्य्यः। अथ द्विस्त्रिश्चाऽऽकार्य्य, अवतीर्य्य, उद्याने भ्रान्त्वाऽपि, क्वापि तत्पदवीं न लेभे। तत इदमखिलं स्वप्नमिव, इन्द्रजालमिव, मायादर्शनमिव च चिरं चिन्तयन्, प्रघणे एव पर्य्यङ्कमाकृष्य, तादृशानेव स्वप्नान् पश्यन् सुष्वाप।

प्रातः किञ्चिदुदञ्चिते चण्डमरीचौ, द्वार-देशान् कोलाहलमिव शृण्वन् गौरसिंहो गवाक्षादवलोक्य व्यजिज्ञपत्—"पश्यतु पश्यतु देवो दुष्टतां दिल्ली–दर्प–दर्पितस्य"।

अथ सर्वे 'किमिति किमिति'—ससम्भ्रमास्तत आगत्य ददृशुर्यत् परतः सशस्त्रा द्वारपाला भ्रमन्ति, अन्तराजिगमिषतश्च जनान् निरुन्धन्ति–इति।

अथ महाराष्ट्रराजो दृष्ट्वैवैतत् लोहितवदनः कोपस्फुरदधरो जाज्वल्यमान–नयन–द्वयो जिघत्सन्निव ब्रह्माण्डमण्डलम्, भ्रवो-राकुञ्चनेन स्फोटयन्निव गगन-तलम्, स्तन्यजीवं माल्यश्रीकञ्चावादीन्—पश्य पश्य, यवनराजस्य हृदयम्। नासौ जानीते यद्—महाराष्ट्रा अन्यानपि चातुरीं शिक्षयन्ति। अहो! राघवाचार्य्यस्य कथां नाऽऽदृतवानस्मि। रात्रावपि स स्पष्टमवादीदेतद्घटना–

उद्दीप्य = विपुलप्रकाशीकृत्य। आकार्य = आहूय। तत्पदवीम् = तन्मार्गम्।

उदञ्चिते = ऊर्ध्वमायाते, उदिते। चण्डमरीचौ = भास्करे। दिल्ली-दर्पेण, दर्पितस्य = साभिमानस्य।

ससम्भ्रमाः = व्याकुलाः। अन्तः = मध्ये। आजिगमिषतः = आगन्तुमिच्छतः। शसो रूपम्।

लोहितवदनः = अरुणमुखः। कोपस्फुरदधर. = क्रोधचलदोष्ठः। जाज्वल्यमाननयनद्वयः = दन्दह्यमानचक्षुर्द्वितयः। जिघत्सन् = अत्तुमिच्छन्। स्फोटयन् = विदारयन्। अन्यान् = इतरान्। चातुरीम् = पाण्डि-

विषये । पलायितुञ्च सम्यगवसरं प्राप्यापि, आत्मीयांस्त्यक्त्वा निवर्त्तनमनुचितमिति मन्यमानो नास्मि पलायितः । इच्छामि चेदधुनैव एषां कदर्य्याणां चक्षुष्षु रेणुका-राशि प्रक्षिप्य, अनवरुद्धगतिर्महाराष्ट्र-देशं गच्छेयम् । किन्तु, नोत्सहते मे मनस्त्यक्त्वा स्वाश्रितान् आत्मानं त्रातुम् ।

तत आह माल्यश्रीकः—महाराज ! अस्माकं महाराष्ट्रदेशगमनं सम्राजा नानुमतम्; तर्हि स्वाश्रितानां महाराष्ट्रदेशगमनानुमत्यै अपरमावेदनपत्रं प्रेषणीयम् । निश्चिनोमि यदसहायस्य देवस्य स्थितिरत्र रोचिष्यतेतरां यवनकुलनन्दनाय । समासादिताऽऽदेशपत्राश्च सुखेन निर्भया. प्रयास्यन्त्यास्माकीना महाराष्ट्र-देशमिति ।

तत' 'साधु साधु'—इति सर्वैरुक्तम् । सपदि आवेदनपत्रस्य लेखोऽपि प्रस्तुत । निर्गन्तॄणा संख्याऽपि समुल्लिखिता । पत्रमिदं कुमाररामसिंह-द्वारा प्रेषितं सम्राजा सप्रसादमङ्गीकृतम् । कतिपयैरेव दिवसैर्यथावाञ्छितं दिल्ली-निर्गमनपत्रिकाश्च लब्धा' ।

अथ पत्रिका इमा. प्राप्य, महाराष्ट्रराजेन गगने दृष्टिं बद्ध्वा प्रोक्तम्—"अरे रे दिल्ली-कलङ्क ! कियांस्ते चातुरी-गर्व' ! यद्यद्यैव स्वानुचर-वेषमाकलय्य, पत्रमेकं हस्ते गृहीत्वा निर्गच्छेयम्, तत् प्रपितामहोऽपि ते न शक्त' प्रतिरोद्धुम् । परं न शिवो मार्गेऽप्यात्मी-

---

त्यम् । निवर्त्तनम्=परावृत्तिः । कदर्य्याणाम् = नीचानाम् । रेणुकाराशिम्=धूलिनिकरम् । अनवरुद्धगति.=अवारितगमनः । स्वाश्रितान्=स्ववशगान् भृत्यान् ।

असहायस्य=एकाकिनः । देवस्य = भवतः । यवनकुलस्य नन्दनाय=हर्षवर्द्धनाय । निर्भयाः=भीतिशून्याः ।

निर्गन्तॄणाम्=निर्गच्छताम् । सप्रसादम्=प्रसन्नतया । यथावाञ्छितम्=यथाभिलषितम् ।

चातुरीगर्वः=कौशलाभिमान. । आत्मीयानाम्=स्वीयानाम् ।

यानामशिव-संभावना-पथमङ्गीचिकीर्षति"।

ततो महाराष्ट्रेश्वर-संमत्या सर्वेऽपि तदीया अनिच्छन्तोऽपि दिल्ली-नगरान्महाराष्ट्र-देशं प्रति निवृत्ताः।

× × ×

अथ स्नानपूर्वाः क्रियाः समाप्य यावन्महाराष्ट्रराजः सिष्णासति; तावत्प्राङ्गणे समुपातिष्ठतैका अनवरोद्धव्येति प्रतीहारैरनवरुद्धा, "पूजार्थं कुसुमानि माला हारान् कलिकाव्यजनानि स्तवक-कन्दुकानि च क्रीणीध्वं भोः! क्रीणीध्वम्"—इति वदन्ती, वामस्कन्ध-स्थापित-कुसुम-पूर्णपिटकिका, दक्ष-कराऽऽकलितातिमुक्त-कलिका-रचितानेक-विक्रेय-व्यजना, नील-सूत्र-वल्ली-स्यूति-स्यूत-प्रान्त-धवल-वसना, कर्णान्त-लम्बमान-राजत-ताटङ्क-चोचु-

---

अशिवसम्भावनापथम्=अमङ्गलाशङ्कामार्गम्। अङ्गीचिकीर्षति=अङ्गीकर्त्तुमिच्छति।

अनिच्छन्तोऽपि=अनभिलषन्तोऽपि। प्रतिनिवृत्ताः=परावृत्ताः।

× × ×

स्नानात्पूर्वाः=दन्तधावनाचमनाद्याः। सिष्णासति=स्नातुमिच्छति। प्राङ्गणे=अजिरे। अनवरोद्धव्या=वारयितुमनर्हा। मालाः=स्रजः। साधारणतया गुम्फिताः। हारान्=विशिष्टाः स्रजः। विशेषरूपेण ग्रथितान्। कलिकानाम्=कोरकाणाम्, व्यजनानि। स्तवककन्दुकानि=गुच्छकगेन्दुकानि। वामस्कन्धे स्थापिता, कुसुमपूर्णा, पिटकः=पेटा यया सा। दक्षकरेण, आकलितानि=धारितानि, अतिमुक्तकलिकाभिश्चितानि=माधवीकोरकनिर्मितानि, अनेकानि विक्रेयाणि व्यजनानि यया सा। नीलसूत्रैः, या वल्लीस्यूतिः=मतातिसीवनम्, तया स्यूतः प्रान्तो यस्य तादृशं धवलम्=स्वच्छम्, वसनम्=वस्त्रं यस्याः सा। कर्णान्तयोः, लम्बमानेन राजतेन=रजतनिर्मितेन, ताटङ्केन-आभरणविशेषेण, चोचुम्ब्यमानम्=

म्व्यमान-गण्ड-युगला, आरक्त-कञ्चुकिकाऽऽच्छन्न-तालफल-स्तनी, काच-खण्ड-मण्डिताग्र-राजत-लवङ्गिकाऽऽभरण-भूपित-नासा, ताम्बूल-राग-रञ्जिताधरा, यौवन-भर-मन्थरा, मन्दस्मितेन मालती-मुकुलानीव वमन्ती, अपाङ्ग-वीक्षणैर्नीलोत्पलैरिव ताडयन्ती, विलुलितैर्लोलालकै रोलम्ब-कदम्बानिव वशयन्ती, क्षुद्र-घण्टिका-शिञ्जिताऽऽकृष्ट-निर्दिष्ट-जन-दृष्टिः, एका कस्तूरिकोद्वर्तनोद्वर्तितेव शृङ्गार-रस-स्नातेव च श्यामा कुसुम-विक्रेत्री ।

महाराष्ट्रराजस्तु पराङ्गना-प्रतारणेषु न पटीयानिति भृत्यमेक शिव-पूजार्थं कुसुमानि क्रेतुमिङ्गितवान् । सा तु तेन सह कुसुम-मूल्य-विषये आलपन्त्येवाकस्मात्—"आ ! कथं मां क्ष्वेलयसि ? इदमेव किं सौशील्य महाराष्ट्रराजस्य समीपवर्तिनाम् ?

भृशं स्पृश्यमानम्, गण्डयुगल यस्याः सा । आरक्तया=ईषल्लोहितया, कञ्चुकिकया, आच्छन्नौ=गुप्तौ, तालफलवत् स्तनौ यस्याः सा । काचखण्ड-मण्डिताग्रेण, लवङ्गिकाभरणेन=देवकुसुमसमाननासाभूषणेन, भूपिता नासा यस्याः सा । ताम्बूलरागरञ्जिताधरा=नागवल्लीदललौहित्यभूषितोष्ठा । मन्थरा=सालस्या । मन्दस्मितेन=ईषद्धास्येन । मालतीमुकुलानि=माधवीकोरकान् । वमन्तीव=उद्गिरन्तीव । अपाङ्गवीक्षणैः=सकटाक्ष-निरीक्षणैः । नीलोत्पलैः=कृष्णसरसीरुहैः । ताडयन्तीव=घ्नतीव । रोलम्बकदम्बान्=भ्रमरौघान् । वशयन्ती=स्वायत्तीकुर्वन्ती । क्षुद्रघण्टिकाशिञ्जितेन-आकृष्टा निर्दिष्टजनाना दृष्टिर्यया सा । कस्तूरिकोद्वर्तनेन=मृगमदमिश्रानुलेपनेन, उद्वर्तितेव=कृताङ्गरागेव । श्यामा=कृष्णा षोडशी च । कुसुमविक्रेत्री=पुष्पविक्रयिणी ।

पराङ्गनाप्रतारणेषु=परस्त्रीवञ्चनेषु, पटीयान्=अतिशयेन पटुः । इङ्गितवान्=चेष्टया बोधितवान् । कुसुममूल्यविषये=पुष्पार्घसम्बन्धे । आलपन्त्येव=वार्ताः कुर्वन्त्येव । क्ष्वेलयसि=नर्मभाषण करोषि । 'क्ष्वेडते

कीदृशीयं चञ्चलता चित्तस्य; यद् युवति-दर्शन-समकालमेव द्रवति मनः ? नाहं वारवधूरिव विश्वेषां नर्मपात्रम्, किमिति मामेवं त्रपे ?" इत्युच्चैः सरोपमिवावदत्। ततः 'किमिति किमिति ?'-तत आगतेषु गौरसिंहादिषु महाराष्ट्रराजे च, कर्णौ स्पृष्ट्वा भृत्योऽवोचत्-"न मया तादृशं किमप्युक्तम्"। ततस्त्वमेव कथय—किमेतेनोक्तमिति महाराष्ट्रराजेनोक्ता-"महाराज ! रहसि कथयिष्यामि-यदुक्तमेतेन, त्रायस्व त्रायस्व"—इत्यश्रूणीव पातयन्ती स्वरभङ्गमवोचत्। महाराष्ट्रराजस्तु स्वदासेरस्य दुर्वृत्तमसहमानः सपदि तया सहोद्यानमविशत्। सा तु किञ्चिदन्तः प्रविश्याभिमुखी स्थिता स्मितवती। यावच्चैष क्षणं रुरुदिषन्तीं क्षणञ्च स्मयमानामवलोक्य विस्मयते; तावत्सा प्रावोचत्-'महाराज ! यदि क्षम्येत तत्कथयामि' स उवाच-'मा भैषीः, कथय'—

ततः सा वृक्षस्यैकस्य तले कुसुम-पिटकिकां संस्थाप्य, तदुपरि कलिकाव्यजनानि च धृत्वा, करौ सम्पुटीकृत्य प्रोवाच—

महाराज ! किमिदम् ? धर्म-ध्वजोद्धूनन-धुरीणेष्वपि न शोभन्ते इमे आचाराः। श्रूयते राज-कन्यामपहृत्य भवांश्चिरं स्वावरोधेष्वस्थापयत्, तत्सहचरीभिरपि च मिष्टमालपन् उपवनेषु पर्य्यटयत्। दिल्लीं समागतस्य च प्रथमे एवाहनि निशीथे भवत

हो' इति हिन्दी। सौशील्यम्=सुजनता। द्रवति=द्रुतं भवति। वारवधूरिव=वेश्येव। विश्वेषाम्=सर्वेषाम्। नर्मपात्रम्=हास्यभाजनम्। सरोषमिव=सक्रोधमिव। रहसि=एकान्ते। स्वदासेरस्य=स्वभृत्यस्य। दुर्वृत्तम्=दुराचारम्। उद्यानम्=गृहारामम्। स्मितवती=ईषद्धसितवती। रुरुदिषन्तीम्=रोदितुमिच्छन्तीम्। स्मयमानाम्=हसन्तीम्। विस्मयते=आश्चर्यं कुरुते।

पिटकिकाम्=क्षुद्रा "टोरी" पदवाच्याम्।

धर्मध्वजस्य, उद्धूनने=उत्थापने, धुरीणेषु=अग्रेसरेषु। स्वावरोधेषु=स्वान्तःपुरेषु। मिष्टम्=मधुरम्। उपवनेषु=उद्यानेषु। पर्य्या-

शिविरान्नि सरन्ती काचन यवन-सुन्दरी कतिभिश्चिद्दर्शकैर्दृष्टा। साम्प्रतमपि च मां भवतो भृत्या' क्ष्वेलयन्ति, भवानपि चैकान्ते मामानीतवानसि, केन किं सम्भावयिष्यते—इति को जानीते।

तदाकर्ण्य क्षण जडीभूत इव महाराज उवाच—

सुन्दरि ! स्फुटं कथय, का त्वम् ? किमीहसे ? कुत आगता ? कथमेवं सुगूढं वृत्तं वेत्सि ? किमित्र मां मोहयसि ? स्वयमेव स्वकीयमुद्देश्य विशकलय्य कथय।

अथ सा महाराज विक्षुब्धमेवाऽऽकलय्य, सप्रणाममुवाच—

क्षम्यतां महाराजेन। न श्रीमतो भृत्येन किमप्युक्तम्, न किमपि वचनीयोऽसौ निर्दोष.। अहं श्रीमत्या दिल्लीश्वरकुमार्या. सहचरी। केवल रहसि समानेतुमार्य्यं प्रपञ्चनमकार्षम्।

ततः स उवाच—आ.! कठिनमाचरितमिदं त्वया, विनाऽपराधं वयमत्र निगृहीता' स्म। त्वादृशीनां यातायातं केनचन ज्ञायेत चेत्सङ्घटेत महाननर्थ !

सा उवाच—महाराज ! राजकुमारी अभिनव-चन्द्रकलेव तनुगात्री, मृद्वीकेव शुष्का, प्रभातप्राया रजनीव मन्दतारका,

---

टयत् = अभ्रामयत्। क्ष्वेलयन्ति = हासयन्ति। एकान्ते = रहसि। सम्भावयिष्यते = कथयिष्यते, उत्प्रेक्षयिष्यते।

जडीभूत इव = स्तब्धीभूत इव।

सुगूढम् = अतिगुप्तम्।

वचनीय' = निन्दनीयः। प्रपञ्चनम् = चौर्य्यपूर्णचातुर्यम्।

विनाऽपराधम् = निर्दोषम्। त्वादृशीनाम् = राजकुमारीभृत्यसदृशीनाम्। सङ्घटेत = सम्भवेत्।

अभिनवचन्द्रलेखेव = नूतनशशिकलेव। तनुगात्री = मृद्वङ्गी। शुष्का = नीरसा। मृद्वीकेव = द्राक्षेव। मन्दाः, तारका' = उडव, यस्या सेति रजनीपक्षे, रसनारीपक्षे च मन्दे = अल्पावलोकनके, तारके = कनीनिके,

योगिनीव विगताशनाया-पिपासा, अवधूतेव चोन्मत्ता संवृत्ताऽस्ति—इति यदि भवतः प्रतिवचन-जीवातुं न गृह्णाति; तत एव महाननर्थः सङ्घटेत। दीनबन्धो! प्रणम्य ब्रूते राजकुमारी यद्-नूनं वधू-वध-बुधो भवान्। नाहं किञ्चन बहु वचनीय मन्ये, यतो निर्दयानां भवादृशानां हृदये मुक्तकण्ठ-रोदन-पुरस्सरं सहस्रशो विनयै रोदनेनापि च दया न प्रचरति। किमरण्यरोदनेन ? अथ वा काननेष्वपि अनन्य-श्राव्यमपि रुद्यतेतरां दुःखितैः, यतो रोदनं स्वभावत एवातिकठिनमपि दुःखं किञ्चिन्मृदूकरोति। तथैव-मद्यापि रोरुद्यते। जीवयतु वा, नाशयतु वा, तदत्र महाराजः प्रमाणमिति।

स उवाच—भद्रे! सर्वदा इदमेव प्रावोचं—यद् जनकेन चेदङ्गीक्रियेत कुमारी ममार्पयितुम्; तन्नास्ति मे नेति प्रतिद्वन्द्विनी वाक्। अन्यथा तु निवेदय कुमारीं कुमारञ्च ममावस्थाम्, वेदय च यद् एवं सम्राजा निरर्थकोप-विपयीकृतश्चेत् कुमारी-

यस्याः सेत्यर्थः। योगिनीव=योगसाधनरतेव। विगते=दूरीभूते, अशनायापिपासे=बुभुक्षापानेच्छे, यस्याः सा। अवधूतेव=ब्रह्मज्ञानिनीव। उन्मत्ता=उन्मादाख्यस्मरदशा प्राप्ता। अवधूताऽपि कृत्याकृत्यविवेकविधुरतामुपगता लोकैरुन्मत्तेव घुष्यते। संवृत्ता=सञ्जाता। प्रतिवचनजीवातुम्=प्रत्युत्तररूपं जीवनौषधम्। अनर्थः=दशमावस्थाप्राप्तिरूपः। वधूवधबुधः=नारीहननपण्डितः। निर्दयानाम्=कृपाकृपणानाम्। विनयैः=नम्रताप्रदर्शनैः। अरण्यरोदनेन=काननक्रन्दनेन। अरण्ये श्रोत्रभावेन रोदनं निष्फलमिति, यत्र तु श्रुत्वाऽपि श्रोतारोऽनुरूप कार्यं न कुर्वन्ति तत्रैवं प्रयोग इति ज्ञेयम्। अनन्यश्राव्यम्=अनितरश्रोतव्यम्। स्वभावतः=प्रकृत्या। मृदूकरोति=लघुता नयति। रोरुद्यते=भृशं क्रन्द्यते। जीवयतु=प्राणयतु।

अर्पयितुम्=दातुम्। प्रतिद्वन्द्विनी=विरुद्धा। अवस्थाम्=स्थितिम्। वेदय=बोधय। निरर्थकोपविपयीकृत=निष्कारणक्रोधा-

प्रणय-मलीमसोऽपि ज्ञायेय; तदवश्यं मम कुमार्य्याश्च प्राण-संशयः। भद्रे! स्मारं स्मारं कुमार्य्या मुख-मण्डलं निष्कपटमसाधारणञ्च प्रेमाणं खिद्येतमाम्। किं करोमि? दैवं नानुकूलम्! एवमालपत्येव महाराजे गौरेणोच्चैराकार्य्य कथितम्—"कुमारमायाजिह्मः समुपस्थितोऽस्ति, अपेक्षते च महाराजम्"—इति। ततस्तां सपदि निवर्त्य, इत आयातो महाराजः। कुमारेण चाऽऽदरोचिताचारं विधाय कथितम्—महाराष्ट्र-चक्रवर्तिन्! यो मां मम स्वसारञ्च तथा रक्षितवान्, तं तातो मे न सत्करोतीति किमत्र कारण नावैमि! आः! प्रहरिणोऽप्यद्य पश्यामि। नून मिथ्याभिशंसिभिश्चाटुकारैरेवोपपादितं किमपि भवद्विषये। शास्तिखानादीनां वराकाणां सम्बन्धिनो द्रुह्यन्ति भवन्तम्। अधुनैव गत्वा तातं भवतो महाराष्ट्र-देशं प्रति कुशलेन निवृत्त्यै निवेदयिष्यामि। मा स्म गृह्णीथा दोषमत्राऽऽस्माकीनम्। क्षमस्व एतैरेव पदैः पितरं गत्वा भवतो माहात्म्यं बोधयिष्यामि—इति कथयन् परावृत्तः! महाराष्ट्रराजस्तु "अस्य विपरीतं फल न स्यात्" इति कथयन् तं विससर्ज।

समयेऽस्मिन् यवनराजः कुसुम-वाटिका-मध्यस्थे मालतीकुञ्जे मारकत-दण्डायामासन्द्यामुपविष्टः। परितः सजलमणिमय-पात्रेषु

स्पदीकृतः। कुमारीप्रणयमलीमसः=रसनारीप्रेममलिनः। ज्ञायेय=वेद्येय, कर्मणि लिङुत्तमपुरुषैकवचनम्। प्राणसंशयः=जीवनसन्देहः। निष्कपटम्=निर्व्याजम्। असाधारणम्=अनितरलभ्यम्। प्रेमाणम्=प्रणयम्। "प्रेमा ना प्रियता हार्दं प्रेम" इत्यमरः। खिद्येतमाम्=भृशं विषीदामि। आदरोचिताचारम्=सत्करानुकूलव्यवहारम्। सत्करोति=आद्रियते। नावैमि=न जानामि। मिथ्याभिशंसिभिः=असत्यकथयितृभिः। उपपादितम्=विचिन्त्य कथितम्। द्रुह्यन्ति=द्विषन्ति। निवृत्त्यै=परावृत्तये। मा स्म गृह्णीथा=मा विद्धि। माहात्म्यम्=गौरवम्।

मालतीकुञ्जे=माधवीमण्डपे। मारकतदण्डायाम्=मरकतमणिनिर्मितहस्तचरणायाम्। आसन्द्याम्='कुर्सी' पदाभिधेयायाम्। सजल-

विविध-कुसुम-गुच्छा आयोजिताः । पार्श्वपरिवर्तिन्येकस्मिन् जाल-भवने बहवः शुकाः, पिकाः, सारसाः, कलविङ्काः, लावाः, जीवञ्जीवाः, चातकाः, कुरराः, केकिनः, क्रौञ्चाः, कोयष्टिकाश्च कूजनैः, उत्फालनैः, उड्डीयनैः, लूमदोलनैः, पक्षस्फुरणैः, चञ्चुकोटिभिः पक्षति-कण्डूयनैः, प्रणयकलहैः, समञ्जीर-शिञ्जित-नर्त्तनैः, कपट-कलहैः, मृद्वीकादि-रसनैः, प्रेयसी-प्राप्त्यहम्पूर्विका-युद्धैश्च चिक्रीडिरे । साम्मुखीनायां ताम्बूल-दलाकारायामेकस्यां पुष्करिण्यां कारण्डवाकाराः पञ्चषाः परिष्कृतास्तरयः सर्पन्ति स्म । तत्प्रान्ते च बहवो हंसाः कारण्डवा बकाः सारसाश्च मोदन्ते स्म । तावदेकत एकस्मात् कपोत-भवनान्निःसृत्यः सहस्रशः कपोताः प्रडीनोड्डीन-सण्डीनैरुड्डीयमाना गगन-तलं स्पृशन्तः, तारका इव संववृतिरे ।

अस्मिन् समये साम्मुखीन आस्तरणे, एक आरब्य-भाषायाः कविर्वृद्धो मौल्विः सम्राजः परम-कृपा-पात्रमुपविष्ट आसीत् । स बहुशः कथा आलपन् कविताः पठन् यवनराजं तोषयन्

मणिमयपात्रेषु=सवारिरत्नखचितभाजनेषु । विविधकुसुमगुच्छाः = अनेकविधसुमस्तवकाः। जीवञ्जीवाः=चकोराः। कोयष्टिकाः = टिट्टिभाः। लूमदोलनैः=लाङ्गूलचालनैः। "पुच्छोऽस्त्री लूमलाङ्गूले" इत्यमरः। समञ्जीरशिञ्जितनर्तनैः=सक्षुद्रघण्टिकाशब्दनृत्यैः । मृद्वीकादीनाम्=द्राक्षादीनाम्, रसनैः=आस्वादनैः । प्रेयसीप्राप्तौ=प्रियतमालब्धौ, या अहम्पूर्विका = अहम्पूर्वमितीच्छा, तया युद्धैः=कलहैः । साम्मुखीनायाम्= पुरतो विद्यमानायाम्। ताम्बूलदलाकारायाम्=नागवल्लीपत्राकृतिकायाम्। पुष्करिण्याम्=दीर्घिकायाम्। कारण्डवाकाराः=प्लवाकृतयः। तरयः= नौकाः। सर्पन्ति स्म=प्लवन्ते स्म। एकतः=एकस्या दिशि, उड्डीयमानाः=उत्पतन्तः। तारका इव = उडव इव। संववृतिरे=जाताः।

आस्तरणे=विष्टरे । आरब्यभाषायाः=अरबदेशीयभाषायाः, 'अरबी' इति ख्याताया। परमकृपापात्रम्=अतिशयस्नेह[illegible]जनम्।

प्रसङ्गतः समगादीत्—

महाराज ! रात्रौ दिने च समप्रकाशः शुक्ले कृष्णेऽपि च पक्षे पूर्णः कन्दरिणां कन्दर-मन्दिरेष्वपि किरण-किरणो निर्गत-कलङ्क-पङ्कातङ्को भवतो यशश्चन्द्रश्चमत्करोति । तस्मिन् कलङ्कलेशस्यापि पङ्कमाशङ्क्य क्षुभ्यति नो हृदयम् ।

दिल्लीश्वरः—तात्पर्यं न बुद्धम् !

आख्यकविः—वीरवर ! न मम क्षमता विशिष्य वक्तुम्, किन्तु यदि कश्चन चिरं भवता सह विहितसमरोऽपि परतोऽङ्गीकृत्य कर-प्रदताम्, स्वमपि भवत्प्रजास्वेवान्यतमं मन्यमानः शिरो नमयन् समागच्छेत्, तत् तस्मिन् महाराजस्यातिदयादर्शनमतिमहत्ता-सूचकम् ।

दिल्लीश्वर—मन्ये शिवमधिकरोति गीरियम् ।

आख्यकवि.—[हस्तौ बद्ध्वा] किमज्ञातं जगतीपतेः !

दिल्लीश्वर—महामूर्खः शिवः । मया आदर्तुमाकारितोऽपि प्रथम एव दिने राजसभायां किमपि प्राजल्पत् । ततोऽपि सुहर्म्ये

प्रसङ्गत' = अवसरतः । समगादीत् = समभाणीत् ।

समप्रकाश. = तुल्यालोकः । पूर्ण. = अखण्डः । कन्दरिणाम् = गिरीणाम् । कन्दरमन्दिरेषु = दरीसदनेषु । किरणकिरणः = दीधितिक्षेपकः । निर्गतकलङ्कपङ्कातङ्कः = दूरीभूतदुर्यशःकर्दमाशङ्कः । यशश्चन्द्रः = कीर्तिरजनीशः । चमत्करोति = प्रकाशते । कलङ्कलेशस्यापि = दुर्यशोमात्राया अपि । पङ्कम् = मालिन्यम् । आशङ्क्य = सम्भाव्य । क्षुभ्यति = खिद्यते ।

क्षमता = शक्तिः । विशिष्य = विशकलय्य । परतः = पश्चात् । करप्रदताम् = राजदेयदातृताम् । अतिदयादर्शनम् = अतिशयकृपाप्रकटनम् । अतिमहत्तासूचकम् = अत्युदारताबोधकम् ।

गीः = वाणी । "गीर्वाग् वाणी सरस्वती" त्यमरः ।

आदर्तुम् = सत्कर्तुम् । आकारित. = आहूतः । सुहर्म्ये = शोभने

स्थापितोऽपि सत्क्रियमाणोऽपि दिल्ली-नगर-वीथिकासु परितः पर्य्यटितुमारेभे । परस्सहस्रांश्च दिल्ली-वास्तव्यान् स्ववासगृहे आगन्तुमन्वमन्यत । ततो महाकलकल-रोधनाय कोटपाल-सूचनानुरूपं प्रहरिणः स्थापिताः । वन्या एते न विदन्ति राज-सभा-व्यवहारम् ।

आरव्यकविः—महाराज ! उचितमेव शासनं वन्यानाम् । परं साम्प्रतं दिल्लीनगरे गृहे गृहे विपणौ विपणौ च सर्वैः शिवस्यैव कथा प्रस्तूयते—इति भविष्यति किं व्यवसितं महाराजैः ?

दिल्लीश्वरः—यदि स मर्य्यादां प्रतिपालयेत् ; तदितोऽपि सत्कृत्य निवर्त्तयितुमेव सज्जोऽस्मि ।

आर०—विजयतां महाराजः ।

अथ कुमाररामसिंह त्वरया समागच्छन्तमालोक्य, ऐकान्तिकं कार्य्यमाशङ्कमान आरव्य-कविरुदस्थात्, प्रणम्य च निवृत्तः । रामसिंहस्त्वागत्य हस्तमेकमुत्थाप्य प्रवणीभूय सादरमुवाच-महाराज ! सम्प्रत्येव तातस्य पत्र प्राप्तवानस्मि, त्रायतां त्रायतां महाराजः !

दिल्लीश्वरः—उपविश, उपविश, किमिव क्षुब्धोऽसि ?

रामसिंह—भारतराज ! महान् क्षोभस्य विषयः ।

प्रासादे । आगन्तुम्=आयातुम् । अन्वमन्यत=अनुमोदितवान् । महतः, कलकलस्य=कोलाहलस्य, रोधनाय=वारणाय । कोटपालस्य=नगरशान्तिरक्षकस्य, "कोतवाल" इति ख्यातस्य, सूचनानुरूपम्=बोधनानुकूलम् । वन्याः=आरण्यकाः ।

शासनम्=दण्डनम् । भविष्यति=आगामिनि काले । व्यवसितम्=निश्चितम् ।

मर्य्यादाम् = राजसभाप्रतिष्ठाम् ।

ऐकान्तिकम्=एकान्ते भवम्, रहस्यम् । उदस्थात् = उत्थितः ।

प्रवणीभूय=नम्रीभूय । तातस्य = पितुः ।

दिल्लीश्वरः—विशकलय्य कथय ।

रामसिंहः—[उपविश्य, अञ्जलिं बद्ध्वा] दिल्लीश्वर ! तातो महाराष्ट्रराजं वशमानीय दिल्लीं प्रेष्य, स्वयं विजयपुराधीशेन युद्धमारभत।

दिल्लीश्वरः—[आसन्दी-दण्डासक्त कूर्परे वाम-हस्त-तले कपोलं संस्थाप्य भ्रुवौ किञ्चिदाकुञ्च्य विस्फारिताभ्यां नयनाभ्यां निपुणमीक्षमाणः] आम् ! ज्ञातम् !

रामसिंहः—तत्र च द्विगुणैस्त्रिगुणैश्च शत्रुभिराक्रान्तः—इति तस्य महासङ्कटमुपस्थितम् ।

दिल्लीश्वरः—[स्वगतम्] अस्तु, जयसिंहः शिवश्च द्वावेव भारते दुर्दमनीयौ वीरौ, तदेकः कारागारे बद्धः, अपरश्च तत्र विनश्येच्चेत् साधु भवेत् । [प्रकटम्] तत् ?

रामसिंहः—राजाधिराज ! तातः सविनयं सेनासाहाय्यं वाञ्छति ।

दिल्लीश्वर—किमिति ? तव पिता तस्मिंस्तु समये साभिमानं तावत्यैव सेनया प्रस्थितः, अधुना च सेनान्तरमपि वाञ्छति ।

रामसिंह—राजाधिराज ! अवितर्कितमिदं सम्पन्नम्, त्रायतां महाराजः ! [इति चक्षुषोर्जलं बभार]

अव०—कुमार ? पत्रं लिख—यत् सम्प्रति सेना प्रेषयितुं न शक्यते ।

राम०—विश्वम्भराधीश्वर ! तात सदा प्राणानगणयन् श्रीमन्तमन्ववर्तत । दैवादद्य प्राप्तसङ्कटश्चेद्रक्षणीयो महामान्यैः !

आसन्दीदण्डे, आसक्तः कूर्परः =कफोणिः, बाहुमध्यास्थिः यस्य तस्मिन् । वामहस्ततले = दक्षेतरकरनिम्नभागे । आकुञ्च्य=सङ्कोच्य ।

दुर्दमनीयौ = दुःखेन दमयितुं शक्यौ । अवशीकरणीयाविति यावत् । विनश्येत् = म्रियेत । साधु=शोभनम् ।

अवितर्कितम् = अविचारितम् । बभार=दधार ।

अव०—मम किं करणीयं तदहं वेवेद्मि !

राम०—[अधोमुखस्तूष्णीमवर्त्तत]

अव०—अप्यन्यदपि किञ्चित् तव पित्रा लिखितम् ?

राम०—[अञ्जलिं बद्ध्वा] अस्ति किञ्चित् ?

अव०—सपदि कथय, न मेऽवसरो बहु श्रोतुम् !

रामसिंहः—[अमुया भङ्गयैव हताशो मन्दमाह] आर्य्य ! तात. शिवं प्रत्यजानात्-यद् "दिल्ली गतस्य भवतो न काऽपि विपद् भविष्यति, कुशलेन च निवर्त्तयिष्यते"-इति ।

दिल्लोश्वर.—तत् ?

राम०—वीरवर ! राजपुत्राणां प्रतिज्ञा मिथ्या न भवति-इति पालनमेतस्याः श्रीचरणानामधीनम् ।

अव०—मूढा राजपुत्राः, यत् पराधीनेऽपि विषये एवं प्रतिजानन्ति !

राम०—[कटु वचनमिदं विषमिव पीत्वाऽधोमुखः]

अव०—चेदेवं न भवेत् ?

राम०—तत आत्म-विसर्ज्जनमपि पित्रा प्रतिज्ञातम् ।

अव०—अहो ! प्रतिज्ञा ! अहो बलम् ! [विचार्य्य] कुमार ! तव पित्रा सेनापति-कार्य सम्पादितम्, साम्राज्य-कार्य्यञ्च मया सम्पादयिष्यते । नात्र वचनीयं किमपि बालेन भवता । गम्यताम्, वयं कार्य्यान्तरे सक्ता. । तदाकर्ण्य हतोत्साहो विवर्णः कुमार-रामसिंहः सादराऽऽचारं प्रतस्थे ।

तावदुपातिष्ठत तुरगं नर्त्तयन् दूरादेवाङ्गीकृत-पादचारः कृत-प्रणाम. कुमार-मायाजिह्मः ।

प्रत्यजानात्=प्रतिज्ञातवान् ।

आत्मविसर्जनम्=जीवनसमापनम् ।

सम्पादयिष्यते=विधास्यते । विवर्णः=म्लानः ।

अङ्गीकृतपादचारः=स्वीकृतपादगमनः, विनयप्रदर्शनार्थम् ।

मायाजिह्वः—तात ! यो मां मम भगिनीं च अपहृत्यापि स्वबन्धुमिव रक्षितवान्, सादरञ्च प्रतियापितवान्, स एव शिवराजः प्रहरि-संवृतोऽस्ति—इति क्षुभ्यता हृदयेन स्वयमायातोऽस्मि, दयनीय एष ।

अव०—[विहस्य] स वां गृहीत्वाऽपि भयेन सत्कृतवान्, न तु सौहार्देन, जयसिंहेन चाऽऽक्रान्तः भवन्तौ भयेन दिल्लीं प्रेषितवान्, न तु सौहार्देन । अहञ्च तस्मिन् सदैव दये, किन्तु मूढोऽयं वन्य', 'केन किमालपेत्'इति संवृतोऽस्ति । स मर्य्यादां न भङ्क्ष्यति चेद् महाराष्ट्र-देशं कुशलेन यास्यति ।

माया०—तात ! एतद्देशीय-वायु-जलादिकं नानुकूलमेतस्य-इति प्रत्यहं शीर्य्यति, वैवर्ण्यञ्चाऽऽसादयति । तदेतस्मै स्वदेशे प्रतिनिवर्त्तितुमेव आज्ञा-दानेन दयनीयम् ।

अव०—तदपि जाने, आसन्नोऽयमाषाढमासः, नव-जलद-जलपूर-पूरिताः सहस्रशो नद्योऽजगरा इव सर्प्पिष्यन्ति । एते चाश्वयानाः, इमे दिल्लीतः प्रस्थिता नदीप्रवाहे पतिताः स्रोतोभि-

---

अपहृत्य=चौर्येण बध्नमानीय । प्रतियापितवान्=प्रत्यावर्तितवान् । प्रहरिसंवृत'=यामिकरक्षितः । क्षुभ्यता=व्याकुलेन । दयनीय =कृपार्हः । सौहार्देन=मैत्र्या । आक्रान्तः=आक्रमणोद्देश्यीकृतः । दये=कृपा करोमि । संवृत.=गुप्तः, प्रहरिभिरिति शेषः । भङ्क्ष्यति=विनाशयिष्यति । कुशलेन=कल्याणेन ।

शीर्यति=क्षीयते । वैवर्ण्यम्=विकृतं शरीररागम् ।

आसन्न.=समीपवर्त्ती । नवजलदानाम्=नूतनवारिधराणाम्, जलपूरै'=वारिप्रवाहैः, पूरिताः=भरिताः, अजगरा इव=विशालकायाः सर्पा इव । सर्प्पिष्यन्ति=गमिष्यन्ति । अश्वयाना'=घोटकवाहनाः । स्रोतोभि.=

नीताश्चेन्नङ्क्ष्यन्ति, तीरेपूषिताश्चेज्जल-पात-पीडिता ज्वरग्रस्ताः शोचनोयां दशां यास्यन्ति। मार्गेषु वैद्यमलभमानाः पश्चात्ताप-तप्ता. को जानाति कां दशामापद्येरन्! अत्र च मासेन वायु-जलमनुकूल-मिव ज्ञास्यते, ज्वरादि-सम्भवे च राजवैद्याश्चिकित्सां विधास्यन्ति, चातुर्म्मास्यानन्तरं च सुखेन स्वदेशं यास्यन्ति।

माया०—तात! अथ किमित्येष प्रहरि-बन्धः?

अव०—वत्स! जानीषे-एष धूर्तो मूर्खश्च। मूर्खतया राज-सभायां किमपि जजल्प; यथा तस्य राजदर्शन निषिद्धम्। धूर्त-तया चैष कैश्चित् कपट-संन्यासिभिरालपतीति श्रूयते। तत एष प्रहरि-बन्धः। त्वं मम बाह्यं जीवनमपि नीति-विरुद्धमाचरेः, तत् त्वा राजधर्ममासाद्यावश्यं दण्डयेयम्, कस्तत्र वराकः पार्व-तोन्दुरु? योऽहं राजधर्म्मं पालयितुं सहोदरान् कथावशेषानक-रवम्, यान् स्मारं स्मारं रोदिमि; यश्चाहं लालक-पालकं पितरमपि राजधर्म्ममेवाङ्गीकृत्य निगड-बद्धमकार्षम्, यत्संवाद-श्रवणेन विदीर्य्यति हृदयम्; स एवाहं जघन्यस्य वन्यस्य शिवस्यार्थे राज-धर्मन्न त्यक्ष्यामि। नैतेषु राजकार्य्येषु तव हस्तक्षेपाधिकार.।

धाराभिः। नङ्क्ष्यन्ति=विनाशं यास्यन्ति। तीरेषु=तटेषु। उषिता.= कृतवासाः। पश्चात्तापतप्ताः = अनुतापखिन्नाः। आपद्येरन्= प्राप्नुवीरन्।

प्रहरिबन्धः=यामिकावरोधः।

बाह्यम्=बहिर्भवम्। जीवनम्=प्राणनम्। द्वितीय आत्मेत्यर्थः। परमस्नेहीति यावत्। नीतिविरुद्धम्=राजनियमाननुकूलम्। आचरे.= कुर्याः।

सहोदरान्=भ्रातॄन्। कथावशेषम् = कथामात्रेणावशिष्टान्। लालकम्=प्रेमव्यवहारकम्, पालकम्=रक्षितारम्। निगडबद्धम्= शृङ्खलायन्त्रितम्। जघन्यस्य=नीचस्य।

एवं कथयन्नेव मेष-महिषादि-युद्धं प्रस्तुतमिति सवादं प्राप्य, सजयध्वनि समुत्थाय, सौवर्ण-कौशेय-पटावृतं रत्ननिचय-चञ्चच्चाकचक्यं नरयानमारुह्य, सत्वर-सत्वरं धावद्भिश्छत्र-चामर-कनक-दण्डादि-मण्डित-करैराश्रियमाणस्ततः प्रतस्थे ।

इतो महाराष्ट्रराजोऽपि सर्वमेतदाकर्ण्य चिन्तया शोकेन तापेन कोपेन च वीचिभङ्गैरिव विविध-भाव-भङ्गैः पारावार इव क्षुभितः, भूषणेन बहुश संवर्द्धितोत्साह, गौरेण माल्यश्रीकेण च गुप्तं सम्मन्त्र्य, पूर्वप्राप्तानामादेश-पत्राणामेवैकं दत्त्वा, "एवमिदमेवमिदमिति" बहूक्त्वा मथुरा प्रति भूषणकविमपि प्रास्थापयत् ।

दिल्ली-नगर-वास्तव्या सर्वेऽपि सज्जना गृहे गृहे चत्वरे चत्वरे सरणौ सरणौ विपणौ विपणौ कर्णे कर्णे प्रतिकथं प्रतिप्रस्तावं प्रतिकिंवदन्ति प्रत्याभाणकञ्च महाराष्ट्रेश्वरदिल्लीश्वरयोराचारमेवाऽऽलोचन्ते स्म ।

तत्र हि केचन-'आः ! कदर्यमाचरितं दिल्लीवल्लभेन' इति, कतिचन 'कष्ट भोः ! कष्ट यन्नामश्रवणेनापि गर्भानपीपतन् यवनसीमन्तिन्यः, सोऽयं मुद्रा-पञ्चक-वेतनैः प्रहरि-हतकै रुद्धः' इति; इतरे 'जातोऽत्र नीति-निष्णातस्यापि भ्रमो यदेप ईदृशं प्रत्यगात्'

सवादम्=समाचारम् । सौवर्णकौशेयपटावृतम्=सुवर्णतन्तुपट्टसूत्रनिर्मितवसनाच्छन्नम् । प्रतस्थे=प्रस्थितः ।

वीचिभङ्गैरिव=लहरिभङ्गैरिव । विविधैः=अनेकप्रकारैः, भावभङ्गैः=विचारच्छेदैः, पारावार इवेत्युपमा । प्रास्थापयत्=प्रेषितवान् ।

सरणौ=मार्गे । विपणौ=आपणमार्गे । प्रतिकथम्=कथा कथा प्रति । प्रतिकिंवदन्ति=प्रतिजनश्रुति । "किंवदन्ती जनश्रुतिरि" त्यमरः । प्रत्याभाणकम्=प्रतिसदृष्टान्तकलघुवचनम् । आलोचन्ते स्म=विचारयन्ति स्म ।

कदर्य्यम्=नीचतापूर्णम् । अपीपतन्=न्यपातयन् । यवनसीमन्तिन्यः=म्लेच्छरमण्यः । अत्र=अस्मिन् विषये । नीतिनिष्णातस्यापि=

इति; अपरे 'इयमपि काचन ग्रह-दशा भुज्यते शिवराजेन, कथमन्यथा शार्दूल-पराक्रमोऽपि निगृहीतः स्यात् शशकायितैः'-इति; अन्ये च 'सत्यं ग्रहदशा, क्षयते रुग्णोऽपि महाराष्ट्रराजः'-इति प्रोचुः।

महाराष्ट्रराजाध्युषित-हर्म्यस्य द्वारे राजकीयाः प्रहरिणः, तदन्त-द्वितीय-द्वारे महाराष्ट्र-प्रहरिणः। प्रथम-द्वारं प्रविष्टा अपि द्वितीय-द्वारे रुद्ध्यन्ते, ततोऽपि सूचित-स्वाभिप्रायाः प्राप्तदाज्ञाः पारयन्ति प्रवेष्टुम्।

'नगरेऽद्य महान् कलकल', मार्गे-मार्गे शृङ्गाटके शृङ्गाटके भेरीनादः। गृहे गृहे शृङ्गारः। पथिषु यानानां पादचारिणा च महासम्बाधः। किमिदं किमिदमिति निश्चित्य ज्ञातं यद्—यवनानां कश्चन वार्षिकः पर्वसमयः। स्थाने स्थाने कदलीस्तम्भ-रचना, स्थाने स्थाने च पिपासितेभ्यो हिमोपल-शीतलं सितोपल-जलं पाय्यते। महाराष्ट्रराजस्य हर्म्य-द्वारि प्रतिसायं बहवो भिक्षुकाः, संन्यासिनः, पङ्गवः, खञ्जाः, एडाः, कुब्जाः, अन्धाश्च एकत्र भवन्ति; येभ्य' प्रत्यहमन्नं वितीर्य्यते महाराष्ट्रपतिना। किन्तु समयोऽयं दिल्लीनगरे यवनानां महामहोत्सवस्येति न शक्यते निरवकाशे तस्मिन् घण्टापथे भिक्षुक-मण्डलो-निवेश'—इति कोटपालेन सूचितं यत्-

---

राजनीतिपण्डितस्यापि। प्रत्यगात् = प्रत्यगच्छत्। शार्दूलपराक्रमः = सिंहबलः। शशकायितैः = शशकतुल्यैः। क्षयते = क्षीणो भवति। रुग्णः = रोगाक्रान्तः।

शृङ्गाटके शृङ्गाटके = प्रतिचतुष्पथम्। महासम्बाधः = महान् सम्मर्दः। "संकटं ना तु सम्बाधः" इत्यमरः। पर्वसमय' = उत्सवसमयः। हिमोपलशीतलम् = दृढीकृतजलशीतलम्। हिमोपल' = "बर्फ" इति लोके। सितोपलजलम् = शर्करामिश्रं वारि। पङ्गवः = जङ्घाहीनाः। "श्रोणः पङ्गावि" त्यमरः। खञ्जाः = खोडाः। एडाः = बधिराः। कुब्जाः = 'कुबडा' इति ख्याताः। अन्धाः = नेत्रशून्याः। प्रत्यहम् = प्रतिदिनम्। निरवकाशे = जनसम्मर्दपूरिते। भिक्षुकमण्डलीनिवेशः = याचक-

"षड् दिनानि यावन्मार्गोपरोधो न विधेयः, भिक्षुकेभ्यः किमपि भोज्यादि देयञ्चेद् नगराद् वहिर्यमुनातटे भृत्यद्वारा प्रेष्यम्, तत्रैव च वितरणीयम् ।"

आज्ञामेतामाप्यातितरां प्रासीदन् महाराष्ट्र-वीराः ।

महाराष्ट्रराजो रोगग्रस्त इत्याकलय्य च मुमुदिरे द्विषः । भिक्षुकाश्च प्रत्यहं यमुनातटे एव शष्कुलीः, अपूपान्, मोदकान्, पेटाः, इण्डरिकाश्च प्राप्य परस्सहस्रैराशीराशिभिः समवर्द्धयन् । एकदा भृत्य-वेषेण गौरसिंहः स्वयमपि मध्यभागावलम्बि-मिष्टान्न-पेटावलम्ब-दण्डाग्रमेकत स्कन्धे कृत्वा,अपर-प्रान्त-लग्न-स्कन्धेन भृत्येन सह कालिन्दी-तटमागत्य, पञ्जराद्बहिर्निर्गतः कीर इव निःश्वस्य भिक्षुकेभ्यो भोज्यमर्पयितुमारब्धवान् । तस्मिन्नन्धकार-मिश्रिते वारुणी-चुम्बनेन मत्तस्येव मार्त्तण्डस्य, कोमले प्रकाशे केनापि "राघवाचार्य्यस्य आशीर्य्यन्त्र-वेष्टनमिदं पठित्वा राज्ञे देयम्"— इत्युक्त्वा हस्ते समर्पितं चतुःपञ्चकृत्वश्च भुग्नितं रक्त-सूत्र-वेष्टित भूर्जत्वक्-पत्रकं दृष्टम् । केन दत्तमिति विचिन्वन्नपि तमपरिचिन्वन् तूष्णीं तत् कक्षगुटिकायां संस्थाप्य परावृत्तः । स्ववास-

---

समूहस्थितिः । मार्गोपरोधः=सरणिप्रतिबन्धः । वितरणीयम्= देयम् । आप्य=लब्ध्वा । प्रासीदन्=प्रसन्ना जाताः ।

शष्कुलीः=पूरिकाः । अपूपान्=पूपान् । "पूपोऽपूपः स्यादि" त्यमरः । मोदकान्=लड्डुकान् । पेटाः="पेडा"इति ख्याताः । इण्डरिकाः="बडी" इति ख्याताः । मध्यभागावलम्बिन्याः, मिष्टान्नपेटायाः, अवलम्बस्य=आधारस्य, दण्डस्य, अग्रम् । अपरप्रान्ते=द्वितीयभागे, लग्नः स्कन्धो यस्य तेन । अर्पयितुम्=दातुम् । वारुणीचुम्बनेन= मदिरापानेन, सूर्यपक्षे पश्चिमासम्पर्केण । मत्तस्य=मदाघूर्णितस्य । कोमले=मृदुनि । भुग्नितम्=न्युब्जीकृतम् । भूर्जत्वचि लिखितं पत्रकम् । विचिन्वन्नपि=अन्वेषयन्नपि । अपरिचिन्वन्=अनध्यवस्यन् ।

स्थानमागत्य, अतिरहस्यम्, ऊद्‌र्ध्वतन-गृहमाश्रित्य, महाराजमाहूय, अनन्यश्राव्यं पत्रमेवमपठत्—

"विजयोऽस्तु महाराजस्य। महाराष्ट्र-देशाद् दिल्ली-पर्य्यन्तं सहस्रशो भावत्का वीरा विविध-वेषैः सञ्चरन्ति। दिल्ली-नगरमपि सहस्रशः प्रविष्टाः सन्ति, यमुनायां शतशो नावो युष्मदीयैर्गुप्तभटैः पूरिता मथुरातो दिल्लीपर्य्यन्तं प्रत्यहं सर्पन्ति। चत्वारि दिनानि यावत् सुभगो दिल्ली-त्यागावसरः"।

सर्वमेतदाकर्ण्य राघवाचार्य्यं कञ्चन निजं परमहितैषिणं मन्यमानौ तौ माल्यश्रीकमप्याकार्य एवमेवमिति बहुशः समालपितवन्तौ। परतो महाराष्ट्रराजेनोक्तम्—"परश्वस्तर्हि"। ताभ्यामप्युक्तम्—"आम्! परश्वः, भगवति भास्करे पश्चिमसमुद्रं स्पृशति" एवं ते स्थिरयित्वा सोपान-परम्परयाऽवरुह्य भोजनादि-व्यापारं परिसमाप्य पर्य्यङ्कमारूढाः। यातयामा यामिनी, अस्मिन्नपि समये नगरे महानेव वादित्रध्वनिः। तावदकस्मादेकेन महाराष्ट्र-भृत्येन त्वरितैः पदैः सोपानमारुह्य, अस्मिन् गृहे प्रविश्य, अञ्जलिं बद्ध्वा कथितम्—महाराज! प्रतिष्ठित इव कश्चन पञ्चाशद्वर्षदेशीयो यवनः शिबिकामारुह्य समायातोऽस्ति। भवनेऽस्मिन् प्रविशन्नस्माभिः

अतिरहस्यम्=नितान्तं गुप्तम्। अनन्यश्राव्यम्=अनितरश्रवणार्हम्। सञ्चरन्ति=भ्रमन्ति। युष्माकमेभिः, युष्मदीयैः। सर्पन्ति= गच्छन्ति। सुभगः=शोभनः।

परश्वः="परसों" इति लोकेऽपभ्रंशीभूतम् अव्ययम्। पश्चिमसमुद्रम्= वारुणवारिधिम्। स्पृशति=चुम्बति, सप्तम्या रूप, सूर्य्यास्तमनवेलायामिति यावत्। स्थिरयित्वा=निश्चित्य। अवरुह्य=नीचैरागत्य। पर्य्यङ्कमारूढाः=खट्वाया सुप्ताः। यातयामा=अतीतैकप्रहरा, यामिनी=रात्रिः। वादित्रध्वनिः=नृत्यवाद्यकोलाहलः। प्रतिष्ठितः=मर्य्यादाशाली। प्रवि-

पृष्ठश्च "सम्राट्-प्रेषितोऽस्मि चिकित्सितुं महाराष्ट्रराजम्, वैद्योऽहम्" इति वदन् सप्रौढि प्रविशति। तदत्र प्रभुचरणा एव प्रमाणम्। तदाकर्ण्य यावदुत्तरं चिन्तयति महाराष्ट्र-वसुधाधवस्तावदप्राप्तोत्तर एव पादत्राण-पटापटाभिः सोपानपङ्क्तीर्ध्वनयन् प्रविवेश यवन-चिकित्सकः।

ततः सर्वेऽपि तदभिमुखा ददृशुः-यदेकः पिचण्डिलः, दृढस्नायुः, ज्वलन्नयन-युगारोपित-राजत-शलाकाऽधिक-चाकचक्य-चमत्कृतोपनेत्रः, हरित-कौशेयोष्णीष-शिरस्कः, आनाभिविलम्बमान-सित-कृष्ण-सान्द्र-कूर्चः, कर्णान्त-दीर्घ-श्मश्रु-द्वयः, हरितकञ्चुकः, सुदीर्घ-पाण्डुराधोवसनः, कर-कलित-पुष्ट-यष्टिकः, "कुत्र महाराष्ट्रराजः? को रोगः?" इत्याम्रेडयन् यवनचिकित्सकः प्रविष्टः। तत्पृष्ठलग्न एव चैको द्वाविंशति-वर्षकल्पो यवन-युवकोऽपि कक्ष-स्थापित-श्याम-मञ्जूषः प्रविष्ट इति।

अथोत्थाय माल्यश्रीक-गौरसिंहाभ्यां स चिकित्सको राजपल्यङ्क-

शन् = आगच्छन्। चिकित्सितुम्=नीरोग कर्त्तुम्। सप्रौढि=सगर्वम्। महाराष्ट्रवसुधायाः, धव =पतिः। अप्राप्तोत्तरः=अलब्धप्रतिवचनः। पादत्राणपटापटाभिः = उपानत्पटपटाशब्दैः। ध्वनयन्=शब्दयन्।

पिचण्डिलः=दीर्घोदरः। दृढस्नायुः=पुष्टवस्नसः। ज्वलन्नयनयुगे=प्रदीप्तनेत्रद्वये, आरोपितम्, राजतशलाकायाः=रजतोपनेत्रदण्डस्य, अधिकचाकचक्येन, चमत्कृतम्, उपनेत्रम्="चश्मा" इति ख्यातम्, यस्य सः। हरितम्, कौशेयम्, उष्णीषम्, शिरसि यस्य सः। "शेषाद्विभाषा" इति वैकल्पिकः कप्। आनाभि विलम्बमानम्, सितकृष्णम्, सान्द्रम्, कूर्चं यस्य सः। मध्यमे वयसि वर्त्तमान इति श्मश्रु न पूर्णतया श्वैत्यमभजत। कर्णान्तदीर्घम्, श्मश्रुद्वयं यस्य सः। सुदीर्घम् पाण्डुरम्, अधोवसनम्="लुंगी" इति ख्यातं यस्य सः। करे कलिता पुष्टा यष्टिका=लघुदण्डः, येन सः। कक्षे स्थापिता श्यामा मञ्जूषा=पेटा, येन सः। राज्ञः पल्यङ्कस्य=पर्य्यङ्कस्य, समीपे।

समीप उपवेशितो राज्ञो मस्तकं स्पृशन् पृष्टवान् 'को रोगः ?'—इति । ततस्तेषामेवमभून्नालापाः ।

महाराष्ट्रराजः—चिकित्सक ! प्रत्यक्षतो न ज्ञायते को रोगः—किन्तु क्षुधा ह्रसते, अङ्गानि च निर्बलानि भवन्ति ।

चिकित्सकः—[चक्षुषी सम्मील्य द्वयोरपि करयोर्नाडीश्चतसृभिरङ्गुलिभिः परीक्ष्य] नाड्यः शुद्धाः, मन्ये स्वतन्त्रतामपहाय परवान् संवृत्तः—इति चिन्तारोगोऽयम् ।

महाराष्ट्रराजः—[तस्य तेजस्विमुखमण्डलं निपुणं निरीक्षमाणः] सत्यमन्येऽपि चिकित्सका एवमेव वदन्ति । किन्तु न जाने कीदृशोऽयं रोगो यज्ज्वलयत्यङ्गानि ।

चिकित्सकः—औषधं ददामि ।

महा०—अलं क्लेशेन । न वयं यवन-स्पृष्टमगदमङ्गीकुर्म्मः, भवानेवं कष्टमूरीकृत्य श्रान्तवानिति गृह्यतामेष स्वल्प उपहारः, इत्यङ्गुलीयकमार्प्पयत् ।

माल्यश्रीकः—राजचिकित्सक ! तथ्यं ब्रूते महाराष्ट्रराजः, नैतस्य कुले केनापि यवनौषधं गृहीतम् । एतस्य समीपमायाताः सर्वेऽपि गुणिनो यथोचितैरुपहारैः सत्क्रियन्ते, तद् गृह्यतामेतत्समयानुरूपमुपायनम् ।

क्षुधा=बुभुक्षा, "आपं चैव हलन्तानामि"ति भागुरिमतेनेदम् ।

द्वयोरपि करयोः, यवनचिकित्साशास्त्रे द्वयोरपि करयोर्नाडीपरीक्षा भवति, वातपित्तकफरक्ताख्याश्चत्वारो धातवश्च सन्ति, तन्नये चतसृभिरङ्गुलिभिः परीक्ष्यन्ते रोगिण इति वेदितव्यम् ।

अगदम्=औषधम् । उपहारः=उपायनम् । आर्पयत्=दत्तवान् ।

चिकित्सक—[अङ्गुलीयक हस्तेन संस्पृश्य] धन्या वदान्यता तत्रभवत' ! न वयं दिल्ली–वल्लभ–पाणि–पल्लव–तल्लज–लालिता. परदत्तं कारु–कोषमपोहामहे । न वा चिकित्सा–विषयेषु रोगिणा सम्मतिमपेक्षामहे । तत्रापि भवतश्चिकित्सनाय प्रबला राज्ञामाज्ञा, तत्क्षम्यताम्, [इति वक्षः समस्पृशत्] [महाराजोऽन्तरेव कोपेन जाज्वल्यमानः स्वभावविकार गोपयन् समविष्ठत]

गौर०—किं निर्णीतं भवता ?

चिकित्सक.—यन्निर्णीत तस्य प्रतीकारं विदधामि । आविद ! आविद !! मञ्जूषामुद्घाटय ! औषधं पाययित्वा क्षणेन नीरोगं विधास्यामि महाराजम् । [तदनुचर पेटापिधानमुदतुलत्, चिकित्सकश्चैकस्मिन् काच-पात्रे निर्म्मल जलमिव किञ्चन द्रवकमापूर्य्य तस्मिन् श्वेतं चूर्णमेकं मेलयितुमारेभे]

महाराज —किमिदमौषधम् ?

चिकित्सक —आम्, पीयूष–हालाहलं नामौषधम् ।

माल्यश्रीक.—पीयूष-हालाहलम् ?

चिकित्सक —आम् ! पीयूप–हालाहलम्, कफ–वात–पित्त-प्रकोपजो रोगश्चेदिदं पीयूषं क्षणेनोल्लाघं विदधाति । पलायितुकामाना प्रवञ्चनामात्रं चेद् 'हालाहलम्' क्षणेन विनाशयति ।

ततो निश्चितं विषमिदमिति मन्यमानाः सर्वे परस्परमवालुङ्कन । तावदेषोऽङ्गुल्यग्रेण तोयसावर्त्त्य, चूर्णं मेलयित्वा समीपमा-

---

वदान्यता=दानप्रवणता । कारुकोषम्=कारुनिधिम् । कारुनामा कश्चन महाधनिको यवनदेशे जातो यन्नाम्ना "कारू का खजाना" इति प्रसिद्धन्तेषु ।

प्रतीकारम्=निवारणोपायम् । आविद !, सहचर नाम्ना सम्बोधयति । पेटायाः पिधानम् = मुखम् । "पिहान" इति हिन्दी । द्रवकम्=रसम् ।

पीयूपहालाहलम्=अमृतविषम् । नतु विषामृतम् ।

उल्लाघम्=नीरोगम् । प्रवञ्चनामात्रम्=प्रतारणामात्रम् ।

नयत्। महाराजस्तु तस्य तादृश-वचन-भङ्गी-श्रवणे क्रमतो विवृद्ध-मन्युः साम्प्रतं यवन-स्पृष्ट-पानीय-पानमचिकीर्षुः प्रत्यक्षं गरल-जलं पाययति-इति ज्वालयेव ज्वलितो मुख-समीपमानीयमानं सपात्रं चिकित्सक-हस्तं तथा समताडयत्; यथा तत् काचपात्रं समुच्छलितं कुड्याहतं शतधा समभूत्। तदाहति-विस्मितप्रायस्य च चिकित्सकस्य शिरसि दृढं चपेटमेकमाहत्य "शास्तिरियं रोगिभिः सह क्ष्वेलाया."-इति कथयन् कूर्चं गृहीत्वा बलेन चकर्ष। ततश्च गौरसिंहोऽपि पृष्ठतो बाहुमूलं धृत्वा तं सुदूरं जघर्ष।

अथ महाराजस्तस्य कृत्रिम-कूर्चं स्वहस्तेनोत्पाटितम्, तञ्च घृष्यमाणमपि सखिलखिला-शब्दं हसन्तं दृष्ट्वा किमिदमिति सावधानतया तमालुलोके ददर्श च यत्—स्वस्य बाल्य-मित्रं प्रसिद्धो योद्धा श्रीमान् सुरेश्वरोऽस्तीति।

ततो महाराज उत्थाय तं गाढमालिलिङ्ग। ततस्तथैव माल्य-श्रीकः, गौरसिंहश्च परिषस्वजे। ततो महाराजाऽऽदेशेन सर्वे उपविष्टाः।

ततो विहस्य सुरेश्वरेण कथितम्—प्रभो! शिरःशिरासु महती वेदना, तत्कि विश्वेभ्योऽपि चिकित्सकेभ्य ईदृश्येव चपेट-दक्षिणा

विवृद्धमन्युः=प्ररूढकोपः। यवनस्पृष्टस्य, पानीयस्य=वारिणः, पानम्। गरलजलम्=विषमिश्रवारि। समुच्छलितम्=समुत्पतितम्। तदाहत्या=तत्ताडनेन, विस्मितप्रायस्य=साश्चर्यस्य। चपेटः=प्रसृतं करतलम्। शास्तिः=दण्डनम्। क्ष्वेलाया=उपहासस्य। चकर्ष=कृष्टवान्। जघर्ष=घृष्टवान्।

आलुलोके=ददर्श। बाल्यमित्रम्=शैशवसहचरम्।

परिषस्वजे=आलिलिङ्ग। महाराजादेशेन=महाराजाज्ञया।

शिरःशिरासु=मस्तकनाडीषु। वेदना=पीडा। विश्वेभ्यः=

दीयते ? माल्यश्रीक आह—'फलमिदं सिंहैः सह क्रीडायाः' । महाराष्ट्रराजोऽपि मन्द विहस्य किमपि नावोचत् । ततः सञ्जाते पारस्परिक-कुशल-प्रश्नादि-कलापे सुरेश्वरः समवादीत् ।

महाराज ! विद्मो वयं निखिलामत्रत्यां घटनाम्, न सा पुनर्वचनीया। महाराष्ट्र-देशाद् दिल्ली-पर्य्यन्तं प्रतिक्रोशान्तरालञ्चाऽस्माकीना निवसन्ति । धावित्वा परस्परं क्रमतः संवादं वदन्तः पत्रं वाऽर्पयन्तः सत्वरं महाराष्ट्र-देश भवद्विषये विदिततत्त्वं कुर्वन्ति ।

आकर्ण्य भट्टारकस्य निग्रह-वृत्तान्तम्, पारावार इव वाडवेन, कोप-कृपीटयोनिना क्षुभितो महाराष्ट्रदेशः । सर्वोऽपि दिल्ली दिधक्षन्निव चिचर्वयिषन्निव चुचूर्णयिषन्निव लुलुण्ठयिषन्निव च क्रोध-जरा-जर्जरीभूतो भावत्कः । न जाने-किमिति भवतः स्वदेशं प्रतिनिवर्त्तितुमिच्छैव न भवति ? अन्यथा गरुडस्येव समीरणस्येव मनस इव च को नाम शक्तः श्रीमतो गतिमवरोद्धुम् ? तत्साम्प्रतं यवनानां कश्चनोत्सवसमय—इत्यवसरोऽयं प्रस्थानस्य । यद्यपि दिल्लीश्वर शून्यमतावलम्बीति न तादृशोऽत्राऽऽडम्बरो

समस्तेभ्यः । चपेटदक्षिणा=करतलप्रहारदक्षिणा । पारस्परिकाणाम्=आन्योन्यानाम्, कुशलप्रश्नादीनाम्, कलापे=समूहे ।

अत्रत्याम्=इह भवाम् । प्रतिक्रोशान्तरालम्=एकैकक्रोशमध्ये । धावित्वा=त्वरया गत्वा । विदिततत्त्वम्=अवगतार्थम् ।

भट्टारकस्य=स्वामिनः, भवत । "राजा भट्टारको देवः" इत्यमरः । पारावार इव=सागर इव । वाडवेन=वडवामुखोत्थेनानलेन । कोप एव कृपीटयोनि'=ज्वलनः, तेन दिधक्षन्निव=दग्धुमिच्छन्निव । चिचर्वयिषन्=चर्वयितुमिच्छन् । चुचूर्णयिषन्=चूर्णयितुमभिलषन् । लुलुण्ठयिषन्=लुण्ठितुमिच्छन् । क्रोध एव जरा=वृद्धता, तया जर्जरीभूतः=व्याकुलः । गरुडस्येव=वैनतेयस्येव । समीरणस्येव=वायोरिव । मनस इव=चेतस इव । शून्यमतावलम्बी="सुन्नी" इति

मोहरमोत्सवस्य, तथाऽपि पर्य्याप्तोऽस्मत्कार्य्य-सम्पादनायेति न विलम्ब्यताम् ।

ततो महाराजेन यत् स्थिरीकृतमासीत्; तदखिलं कर्णे प्रोक्तम्। तेनापि बहुशः कथयित्वा श्रुत्वा च किञ्चिद् विचार्य्यैव कथितम्—

वरम्, यमुनाया अनुतीरं गच्छत एव पथः पार्श्वे पर्कटि-पलाशिनस्तले सत्त्वरगामिनः पञ्चपा हया द्रक्ष्यन्ते। तेषां नियन्ता शिष्टो दक्षं कर्णं संस्पृश्य, किमपि वदेच्चेत्स्वार्थं ते बोद्धव्या आरो-ढव्याश्च, मथुरां प्रति धावयितव्याः। मार्गेऽपि च सदक्ष-कर्ण-स्पर्शं श्रीमत्साम्मुखीना भवेयुः, तेऽपि स्वकीया एव निश्चेतव्याः। घोटकानां कशाश्च प्रायो दण्डरूपा एव लक्ष्यन्ते। तेषामग्रं सञ्चा-ल्याऽऽकृष्येत चेच्छुरिका वहिर्भवेयु'। परिवर्त्त्य ता एव पुनर्दण्डा-ग्रेषु योज्येरंश्चेद् भल्लाः सम्पद्येरन्—इति। को जानीते कीदृशी घटना घटेत पथि ?

तदाकर्णयन्तो मध्य एव सर्वे "साधु साधु"—इति प्रोचुः। गुप्तं किमपि सम्मन्त्र्य च, "परश्वः सायम्, परश्वः"-इति सहर्षं जगदुः।

अथोद्घाटितं कूर्चं च पुनः संयोज्य, उपनेत्रमासज्य, चिकित्स-केनोक्तम्—महाराज! ममौषधमङ्गीक्रियताम्! क्षणेन शान्तिर्भवित्री, चिकित्सा-प्रकरणे तु आर्य्यशास्त्रेऽपि स्पर्शदोषो नास्त्यूरीकृतः। पुन-पेयं रचयामि, किञ्चित् पीयताम्।

ख्यातः। बौद्धीयं शून्यमतमेव यावनक्षत्रियेषु "सुन्न" इति ख्यातमिति, हार्दम्। मोहरमोत्सवस्य="मुहर्रम" इति ख्यातस्योत्सवस्य।

अनुतीरम्=अनुतटम्। पर्कटिपलाशिनः=प्लक्षवृक्षस्य। सत्वरगा-मिनः=शीघ्रगतयः। नियन्ता=सारथिः, सूतः, प्रकृते रक्षकः। स्वार्थम्=स्वस्मै प्रयोजनाय। बोद्धव्याः=ज्ञातव्याः। श्रीमत्साम्मुखीनाः=भव-त्पुरः स्थिताः। निश्चेतव्याः=निर्णेतव्याः। कशाः=अश्वताडिन्यः। अग्रम्=प्रान्तम्। सञ्चाल्य="घुमा कर" इति हिन्दी। योज्येरन्=मेल्येरन्। घटेत=सम्भवेत्।

आर्यशास्त्रे=हिन्दूधर्मग्रन्थे। ऊरीकृतः=अङ्गीकृतः। पेयम्=पातव्यम्।

शिव०—प्राप्तोदयो महाराष्ट्रराजः ! चिकित्सक ! सत्यं सुधाकरोऽसि, तव कर-स्पर्शेन हीयते मे व्याधिः, प्रस्तूयताम्, अवश्य पास्यामि !

तेन विहस्य मन्दमुक्तम्—"कथं न सुधाकरः, चन्द्रकान्तस्पर्शेऽपि रसं रचयेत् ?" क्षणानन्तरं च पुनर्मन्दं सोत्प्रासेन गदितम्—'सुदुर्लभमिदमौषधम्। जलमिदं कलिन्द-गिरि-निर्झरस्य, चूर्णञ्चेद शोषितस्य मधु-वश-निर्य्यासस्य'।

ततः स्मित्वा माल्यश्रीकेणोक्तम्, "स्पष्टं किन्नोच्यते यदिदं यमुना-जलम्, इयं च सिता"—इति।

तत सर्वे मन्दं जहसुः।

महाराष्ट्रराजस्तु सिता-मधुरं कलिन्द-नन्दिनी-नीरं पीत्वा मुमुदेतमाम्।

अथोत्थाय चिकित्सकः प्रोवाच—"गच्छाम्यहम्, पर्य्याप्तं ममौषधं वारमेकमेव सेवनेन गदनदमपि शोषयितुम्। तदल्ला-कृपया परश्व एव भवांस्तथा प्रबलो नीरोगश्च संवत्स्यति; यथा शक्ष्यति

सुधाकरः=पीयूषपाणिः, पक्षे चन्द्रः। करस्पर्शेन=हस्तस्पर्शेन, किरणसंसर्गेण च। हीयते=क्षीयते। प्रस्तूयताम्=साध्यताम्।

सुधाकरः=शशी। चन्द्रवत्कान्तस्य=शशितुल्यकान्तेः, स्पर्शे=संसर्गे, चन्द्रकान्तमणेः संसर्गे च। पक्षे चन्द्रकस्य=चान्द्रखानस्य, अन्तः=नाशः, यस्मात् सः शिवराजः। रसम्=द्रवात्मकमौषधम्—वारि च। कलिन्दगिरिनिर्झरस्य=कलिन्दोद्भूतप्रवाहस्य, यमुनाया इति वाच्योऽर्थः। शोषितस्य=शुष्कता नीतस्य। मधुवशनिर्यासस्य, मधुवंशः=इक्षुदण्डः, तन्निर्यासस्य=तद्रसस्य। मधुनः वशनिर्यासस्य=वंशलोचनस्येति वार्थः।

मुमुदेतमाम्=अतितरां जहर्ष।

गदनदम्=रोगनदीम्। अल्लायाः=महामायायाः कृपया। यवना

श्रणेन क्रोशानाजानेयेन धावितुम्" । ततः सर्वे–'तथाऽस्तु, तथाऽस्तु'–इति स्वीचक्रुः ।

महाराजः स्वकीयं हीरक–हारं तस्य कण्ठे प्राक्षिपत् । सोऽपि प्रणमन् सोपानमुत्तीर्णः शिविकामारोहन् प्रहरिभिः पृष्टः—"का दशा महाराजस्य ?" स उक्तवान्—"रोगः कठिन आसीत्, किन्तु तथा प्रतिकृतवानस्मि, यथा परश्व एव न लप्स्यते भवता रुग्णो महाराजः" ।

ततो जन-प्रवाहे मिलिते तस्मिन्; प्रहरिणः परस्परमेवमालपन्—

एकः—गहनो रोग आसीत्, कथं क्षणेन शिथिलीकृत एतेन ?

द्वितीयः—अरे ! न जानीषे, सम्राजां चिकित्सकोऽयम् ।

तृतीयः—मन्ये, एतच्चिकित्सा-तुष्टेन महाराजेनैव हीरकहारोऽयमर्पितः, यः कन्धरेऽसौ लोल–लोलोऽवलोकितः ।

ईश्वरं मन्यन्ते तत्पदार्थमिति प्रागेव विनिवेदितम् । क्रोशान्, बहुसङ्ख्याकान् । धावितुम्=त्वरितं गन्तुम् । लोकप्रसिद्धेन वैद्यानां कथनप्रकारेणानेन गूढेङ्गितमकार्षीत् ।

हीरकहारम्=मौक्तिकमालाम् । प्रतिकृतवान्=चिकित्सितवान् । रुग्णो न लप्स्यते=सरोगो न प्राप्स्यते-न मिलिष्यति, पलायितत्वादिति यावत् ।

गहनः=कठिनः । शिथिलीकृतः=दुर्बलीकृतः । रोग इत्यनुषंजनीयम् । प्रतिमज्जितस्थानम्=सर्वेषु "मस्जीद" इति प्रथितस्थलेषु । लोललोलः=अतिचञ्चलः ।

चतुर्थः—वेत्सि रे ! महाराष्ट्रराजस्यौदार्य्यम्, यः प्रतिमज्जितस्थानं प्रत्यहं पक्वान्नानि प्रेषयति, यश्च अस्माद्दक्षाञ्छत्रुसेवकानपि कूर्चिका-स्निग्ध-कूर्चान् इण्डरिका-पिचण्डिलांश्च विदधाति । किमाश्चर्यं यदि स उपकारिणे चिकित्सकाय हारं दद्यात् ?

सर्वे—[शनैः] वर्द्धतां वर्द्धतां महाराजः ।

परेऽहनि महाराष्ट्रराजस्योल्लाघतामाकलय्य, ऋते केभ्यश्चित् सर्वेऽपि प्रसादमेवाऽऽकलयन् । महाराष्ट्रराजेन चाऽऽपणस्थानि सर्वाण्यपि पक्वान्नानि द्विगुण-मूल्यैः क्रीतानि, स्वाऽऽवसथमानाय्य च, महतीषु पेटास्वायोज्य, दिल्लीनगर-वास्तव्यानां भद्राणां गृहेषु प्रेषितानि । अद्य महाराष्ट्रराजस्योल्लाघतासूचिकेयं वृष्टिरिव पक्वान्नानां सञ्जाता । मज्जित-स्थानेषु च दधिकूर्चिका-नवनीत-सितापाक-प्रपातैः पङ्किलानि समभूवन् भूतलानि । यमुना-तटे चैकमल्पीयो यवसोटजं निर्मापितम् । तत्रैव शतशः पक्वान्न-पेटाः संस्थाप्य सहस्रशो भिक्षुभ्यो मोदक-शष्कुल्यपूप यवागू-पिटकाऽऽभिक्षे-

पक्वान्नानि=पूरिकापूपादीनि । "पकवान" इति हिन्दीप्रसिद्धोऽपभ्रष्टतया । कूर्चिकया=क्षीरविकृत्या,

"दध्ना सह पय पक्वं यत्तत्स्याद्दधिकूर्चिका ।
तक्रेण पक्वं यत्क्षीरं तद्भवेत्तक्रकूर्चिका ॥"

स्निग्धाः=चिक्कणीकृताः, कूर्चा येषां तान् । इण्डरिकाभिः, मिष्टान्नविशेषैः । पिचण्डिलान्=तुन्दिलान् ।

उल्लाघताम्=नीरोगताम् । केभ्यश्चित्=दग्धहृदयेभ्यः । आपणस्थानि=विपणौ विक्रय्यानि । स्वावसथम्=स्वसदनम् । भद्राणाम्=श्रेष्ठानाम् । उल्लाघतासूचिका=रोगमुक्तताद्योतिका । दधिकूर्चिकानाम्, नवनीतानाम्=हैयङ्गवीनानाम्, सितापाकानाम्=शर्करापाचितानाम्, कूष्माण्डादीनाञ्च प्रपातैः=अत्यधिकपतनैः । पङ्किलानि=पिच्छिलानि । यवसोटजम्=यवसकुटीरम् । तृणविशेषच्छन्नं लघुगृहम् । "पर्णशालोटजोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः । यवागू=पिष्टमिष्टं जले पक्वम् "लपसी" इति

ण्डरिकादीनि वितीर्णानि। तेषु यथाशक्ति पक्वान्नभारानुत्थाप्य नीतवत्सु परेषु पङ्ग्वन्धादिषु तत्रैवोपविश्यानायासं भुक्तवत्सु; परिशिष्टं यमुनाजले मत्स्य-कच्छपादिभ्योऽपि वितीर्णम्। उद्घोषितञ्च यत् यमुनातटे श्वोऽपि सायङ्काले भिक्षुभिरागन्तव्यम्, यथेष्टं दास्यते, उपवेश्य च भोजयिष्यते—इति। अवलोक्येमामुदारतां महाराष्ट्रराजस्य सर्वेऽपि—यवना अयवनाश्च मित्राणि शत्रवश्च तं प्रशशंसिरे।

अद्य रात्रौ दिल्ली—वास्तव्य-पक्वान्न-पाचकाः परेऽह्न्यधिकं पक्तुमादिष्टाः। ते च महति विक्रये महाँल्लाभः-इति समस्तां रजनीं पक्वान्नानि प्रस्तुतवन्तः, चुल्लीं ज्वलयन्तः, कटाहेषु पौनःपुन्येन घृतमाश्रयन्तः, पिष्टातक—द्रवैरपूपानि पाचयन्तः, दर्वीश्चालयन्तः, हस्ताभ्यां मोदकान् वर्त्तुलीकुर्वन्तः, रामठ-शृङ्गवेर-लवङ्गैला-लवण-मरिचाऽऽमोदित-सुस्वादु-चूर्ण-गर्भान् शृङ्गाटकान् सम्पादयन्तः, शष्कुलीनां घृतं च्योतयन्तः, यवागूश्चालयन्तः, हिङ्गुजीरक-

---

हिन्दी। पिटकम्="पेडा" इति ख्यातम्। आमिक्षा=तप्ते पयसि दध्यादिससर्गेण यद्विदीर्णं दुग्ध तत्। "आमिक्षा सा शृतोष्णे या क्षीरे स्याद्दधियोगतः" इत्यमरः। लोके "छेना" इति कथ्यते, वङ्गीयमिष्टान्नमूलभूतम्। इतरत्पूर्वव्याख्यातम्।

प्रस्तुतवन्तः=साधितवन्तः। कटाहेषु=पूरिकानिर्माणभाजनेषु। घृतम्=सर्पिः। आश्रयन्त.=क्षिपन्तः। पिष्टातकद्रवैः=अपूपनिर्माणार्थं पूर्वत एव रक्षितैः-मिष्टपिष्टमिश्रणैः। दर्वीः=पूरिकानिष्कासनभाजनानि। प्रकृते "छमौटा" इति हिन्दी। वर्त्तुलीकुर्वन्तः=गोलतां नयन्तः। रामठशृङ्गवेरलवङ्गैला-लवणमरिचैः, आमोदितम्=सुगन्धि कृतम्, सुस्वादु चूर्णम्, गर्भे येषा तान्। रामठादयः पूर्वं व्याख्याताः। शृङ्गाटकान्="समौसा" इति लोके ख्यातान्। च्योतयन्तः=निस्सारयन्तः।

लवण-राजिकामोदित-तक्रे वटकान् मज्जयन्त', कूर्चिकासु शर्करा-सितोपल-मृद्वीका आलोडयन्तः, प्रातरेव पर्वतानिव पक्वान्नानां प्रस्तुतवन्तः। महासम्भारममुं स्वच्छाना भोजन-सामग्रीणामालोक्य मोहरमोत्सवानन्दिताः सहस्रशो नागरा अपि यथेष्टं चिक्रीयिरे। परिशिष्टञ्चाखिलं सामग्री-जातं महाराजाऽध्युषितप्रासादस्य चतसृष्वपि शालासु व्यापृतम्। पक्वान्न-समारोहममुमालोक्य प्रहरिण' परस्परमेवमालापमकार्षुः।

एकः—महामद! उद्विग्नोऽस्मि आलोकमालोकं प्रत्यहमेतमाडम्बरम्, कदाऽयं समाप्स्यति वितरण-कोलाहलः?

महामदः-हसन! विक्षिप्तोऽसि, एतस्यैव कोलाहलस्य प्रसादात् वयमपि यवागू-सर्पिः-सिक्तं करतलं श्मश्रुषु प्रोञ्छामः, तत्कोऽयं हर्ष-समये उद्वेगः! कसीम! किं चिन्तयसि?

हिङ्गुजीरकलवणराजिकाभिः, आमोदिते=सुरभिते, तक्रे=उदश्विति, "तक्रं ह्युदश्विन्मथित" इत्यमरः। राजिका="राई" इति लोके ख्याता। वटकान्="बडा, बारा" इति हिन्दी। मज्जयन्तः=ब्रुडयन्तः। कूर्चिकासु=क्षीरविकृतिषु। आलोडयन्तः=सम्पात्य मथ्नन्तः। पर्वतानिव=गिरीनिव। उच्चतायामुपमिनोति। महासम्भारम्=विपुलसञ्चयम्। चिक्रीयिरे=क्रीतवन्तः। सामग्रीजातम्=वस्तुव्रातम्। व्यापृतम्=विसारितम्।

आडम्बरम्=सम्मर्दम्। वितरणकोलाहलः=दानकलकलः।

विक्षिप्तोऽसि=उन्मत्तोऽसि।

प्रसादात्=कृपायाः। यवागूसर्पिषा, सिक्तम्=आर्द्रम्। एवम्भूतप्रयोगेण यवागूशब्दस्य "हलुवा, मोहनभोग" इति प्रसिद्धेऽपि प्रवृत्तिनिमित्तं दर्शयति। उद्वेगः=विरागात्मक चैत्र्यम्। 'महामद-हसन-कसीमाः' नामानि यवनभृत्यानाम्।

कसीमः—अद्य चरमं दिनं वितरणस्येति श्रूयते ।

महा०—आः ! कष्टम् !! तन्मधुर-भाषणैस्तोषणीयो महाराजः, निर्गमन-प्रवेशेषु प्राथश्च नावरोद्धव्यो जनः, यथा तुष्टोऽत्रभवानधिकं प्रयच्छेत् ।

हसनः—अहो ! कोष्णानां कचौरीणां गन्धोऽसौ चपलयति मे रसनाम् ।

कसीमः—महामद ! हसन ! सतर्को भव, कोटपालोऽसौ समायाति ।

अथ सर्वे भल्लमुद्यम्य स्तब्धग्रीवा इतश्चेतश्च पर्य्यटितुमारब्धवन्तः, यावद्रेचितकेनाश्वं चालयन् कोटपालो निवृत्तः ।

तोषणीयः=प्रसादयितव्यः । निर्गमनप्रवेशेषु=गमनागमनेषु । प्रयच्छेत्=दद्याम् ।

कचौरीणाम्=घृतचौरीणाम् । प्रयोगोऽस्यान्यत्रापि मिलति-तद् यथा—

"माणोदरी सुभगहिङ्गुसुवासयुक्ता धान्याब्दशुण्ठिमरिचादिभिरर्चिता च । कोष्णाऽमृतोपमरसा रसनाभिरामा हे हे कचौरि ! घृतचौरि ! नमो नमस्ते ॥"

इति मूलकारानुमोदिता टिप्पणी । घृतचौरीशब्दापभ्रंश एव लोके "कचौरि" इति प्रसिद्धः, प्रदर्शितं पद्यन्तु हास्यरसाश्रयत्वाच्छब्दाना पूर्णविचारमविधायैव निर्मितम् । अत एव कचौरि ! इति, घृतचौरि ! इति चोभयं सम्बोध्यमानं दृश्यत इति वेदितव्यम् । वस्तुतस्तु हिन्दीप्रभृतिषु प्रसिद्धा ये केचनापि शब्दा व्याकरणप्रक्रियया शुद्धाः सन्तः प्रयोज्याः । एवमेव सर्वासु भाषासु भवति । तथा च कचौरीशब्दस्य प्राक्रियिकस्य प्रयोज्यत्वे साधुत्वे च न लेशतोऽपि संशयः ।

रेचितकेन=अश्वगतिविशेषेण । कोटपालः="कोतवाल" इति प्रसिद्धः ।

दिनमिदं प्रधानं मोहर्रमोत्सवस्य, गृहे गृहे शोक-समाज, स्थाने-स्थाने विलाप-गीति-गानम्, न कस्याप्यवसरोऽत्र विषयान्तरं सन्धातुम्। मोहर्रमोत्सवानुषङ्गिणां हरितैर्वस्त्रैर्दिल्ली हरितेवाभूत्। ज्वलयन्निवाखिलं भूवलयं ख-स्वस्तिकमाससाद भगवान् भास्वान्। होरा-चतुष्टयेन च गेहान् भ्राष्ट्रानिव सन्ताप्य, दिल्ली-नगर-वास्तव्यांश्च तलगृहेषु प्रवेश्य, स्वयमपि ग्रीष्मोत्तापित-सिष्णासुरिव, "नास्य मम तेजसा क्षीयते किमपीति" सरस्वन्तं सुशोषयिषुरिव, स्वतेजसा वाडवं विजिगीषुरिव, शेष-फणावली-ज्वाला-जाल-प्रचण्डतामालोकयितुं पातालं प्रविविक्षुरिव, पाश्चात्यान् पार-

शोकसमाजः=शोकप्रदर्शनार्थं सम्मिलिता गोष्ठी। तद्दिने मोहम्मद-नामा यवनधर्मप्रवर्त्तको मारित इति शोकाभिनयमद्यापि कुर्वन्ति। विलापगीते='मर्सिया' इति उर्दूप्रसिद्धायाः, गानम्=गीतिः। विषयान्तरम्=कार्यान्तरम्, सन्धातुम्=विचारयितुम्। मोहर्रमोत्सवस्य, अनुषङ्गिणाम्=संसर्गिणाम्। हरिता=हरिद्वर्णवती। ज्वलयन्निव=दाहयन्निव। खस्वस्तिकम्=ज्यौतिषप्रसिद्धं स्थानविशेषम्। "स्वस्तिन इन्द्रो वृद्धश्रवा" इति मन्त्रवर्णे इन्द्रः पूषा तार्क्ष्यः बृहस्पतिः-इति चत्वारो देवाः श्रुताः। एतेषां प्रत्येकं मण्डलमाश्रित्य रेखासु कृतासु स्वस्तिकचिह्नं निष्पद्यते, यत्सर्वेषु माङ्गलिककृत्येषु बह्वोः कालाद्यैर्व्यवह्रियते। शार्मण्यो जगद्विजयकामो हिटलरोऽपि स्वस्याऽऽर्यताप्रदर्शनाय स्वस्तिकं व्यवहरति स्म। आससाद=प्राप। भ्राष्ट्रानिव=अम्बरीषाणीव। सन्ताप्य=प्रज्वाल्य। तलगृहेषु=अन्तरालसदनेषु। सिष्णासुरिव=स्नातुमिच्छुरिव। तेजसा=प्रतापेन। घर्मेणेति यावत्। सरस्वन्तम्=सागरम्। "सरस्वान् सागरोऽर्णव' इत्यमरः। सुशोषयिषुरिव=शोषयितुमिच्छुरिव। वाडवम्=सामुद्रं दहनम्। विजिगीषुरिव=विजेतुमिच्छुरिव। शेषफणावलीनाम्=अनन्तस्फटामण्डलीनाम्, ज्वाला-जालस्य, प्रचण्डताम्=तीक्ष्णताम्। प्रविविक्षुरिव=प्रवेष्टुमिच्छुरिव।

स्यारव्यादि-म्लेच्छदेशान् दिधक्षुरिव, अस्ताचल-निर्झर-शीतल-जलानि पिपासुरिव वरुणदिशो नेदीयान् संवृत्तः।

अथ शनैः शनैरभूवन् छत्रमया दिल्लीमार्गाः। सहस्रशः सेचकाः पृष्ठाऽऽरोपितैर्भस्त्रा-पूरितैर्जलभारैः "अपसरापसरेति" पान्थानपसारमपसारं पथः सेक्तुमारब्धवन्तः। क्षणेनाऽऽपणिकैरापणाः सज्जीकृताः, विपणयश्च जन-प्रवाह-पूरिताः सञ्जाताः। महाराष्ट्रराजस्य गृहात् क्षणे क्षणे पक्वान्न-पूर-पूरितानि विशालानि वंश-पात्राणि बहिर्नीयन्ते स्म। तावद् गौरेणाऽऽगत्य प्रहरिभ्यः प्रत्येकं मधुरान्नानां महासम्भारः प्रदत्तः। साम्मुखीनाः पार्श्व-परिवर्त्तिन आपणिकाश्च मोदकादि-राशि-दानैरतितरां तोषिता। पेटानां परतः पेटाः, विहङ्गिकानां परतो विहङ्गिकाः, सर्वा एव पक्वान्नानां महासम्भारैः पूरिताः, सर्वा एव चोपरितः पटैरावृताः, बह्वयश्च तत्र द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिश्च वाहकैर्वाह्या आसन्। सर्वोऽयं पक्वान्न-पात्र-समुदायः कालिन्दी-कूल-कुटीरमाप्तः। सहस्रशस्तत्र भिक्षुकाः

पाश्चात्यान्=पश्चिमभवान्। दिधक्षुरिव=दग्धुमिच्छुरिव। अस्ताचल-निर्झराणाम्=चरमगिरिवारिप्रवाहाणाम्, शीतलजलानि=शिशिरवारीणि। पिपासुरिव=पातुमिच्छुरिव। सर्वत्रोत्प्रेक्षा। वरुणदिशः=पश्चिमायाः। नेदीयान्=निकटस्थः।

छत्रमयाः=आतपत्रमयाः। छत्रिजनसञ्चारात्। सेचकाः=दार्तिकाः। "भिस्ती"इति ख्याताः। भस्त्रापूरितैः=दृतिभरितैः। "भस्त्रा चर्मप्रसेविका" इत्यमरः। अपसारमपसारम्=अपसार्यापसार्य, सेक्तुम्=आर्द्रीकर्तुम्। आपणिकैः=आपणाध्यक्षैः। वंशपात्राणि=वेणुनिर्मिताः पेटकाः। साम्मुखीनाः=पुरःस्थिताः। विहङ्गिकानाम्=वीवधानाम्, भारयष्टीनाम्। "बहंगी" इति हिन्दी। उपरितः=उपरिष्टात्। आवृताः=आच्छन्नाः। वाहकैः=प्रापकैः, वैहङ्गिकैः। वाह्याः=प्रापयितव्याः। कालिन्दीकूलकुटीरम्=यमुनातटस्थलघुकुटीम्।

पक्वान्न-वितरणैस्तोपिताः, अपरे उपवेश्य भोजिताः, सर्वे च परितृप्ता निवर्त्तितुमारेभिरे ।

अथ संवृत्तोऽन्धकारः । कुटीरान्तरे चैकस्याः पेटाया पक्वान्ननिचयमपसार्य्य तन्मध्यान्निःसृत एकस्तेजस्वी संन्यासी । एप धूलि-विमर्द-धूसरित-देह', कापाय-वसन-वेष्टित-कच-कलापः, कापाय-वस्त्र-परिधानोत्तरीयः, वक्र-दण्डहस्तः, भस्मोल्लिखित-ललाटः, कुटीरान्त'स्थान् द्वित्रान् आलिङ्गय, "को विलम्बः" इत्यवोचत् ।

एप महाराष्ट्रराज, ते च गौरसिंहादयो वीराः, तेऽपि पक्वान्नवाहक-वेपं परित्यज्य, संन्यासि-वेषमाकलय्य, मनसैव भगवतीं भवानीं प्रणम्य, पृष्ठतः कुटीराद् नि'सृत्य, अनुकालिन्दीतीरमेव प्रचलिताः । समयेऽस्मिन् लौह-पञ्जरान्निःसृतः पञ्चास्य इव, जालवन्धन-विमुक्तो विहङ्ग इव, कुवेणीतो नद्यां परिभ्रष्टो मत्स्य इव, अहितुण्डिक-पिटकापसृतः पन्नग इव, चिराननुभूतं स्वातन्त्र्यसुख-

---

आप्तः=गतः । परितृप्ता'=अतितरा भोजनेन तुष्टाः ।

संवृत्त =समभूत् । पक्वान्ननिचयम्=पूरिकादिसमूहम् । अपसार्य=दूरयित्वा । नि सृतः=बहिर्भूतः । धूलिविमर्दधूसरितगात्रः=रजोव्यूहच्छुरितदेहः । कापायवसनेन=गैरिकवस्त्रेण, वेष्टित.=वलयितः, कचकलापो येन सः । कापाय वस्त्रं परिधानं, उत्तरीयञ्च यस्य सः । वक्रः=कुटिलः, दण्डः, हस्ते यस्य सः । भस्मोल्लिखितललाटः=विभूतिच्छुरितालिकः ।

पक्वान्नवाहकानाम्=मिष्टान्नप्रापकाणाम्, वेपम्=नेपथ्यम् । भवानीम्=शिवसहचरीम् । अनुकालिन्दीतीरम्=यमुनातटसमीपतः । लौहपञ्जरात्=आयससिंहवन्धनागारात् । पञ्चास्य इव=केशरीव । जालबन्धनात्-विमुक्त =अपसृतः । विहङ्ग इव=पक्षीव । कुवेणीतः=मत्स्याधानीतः । परिभ्रष्ट.=चलितः । अहितुण्डिकस्य=सर्पग्राहिणः, पिटकात्=पेटकात्, अपसृतः=पलायितः । पन्नग इव=नाग इव ।

मनुभवन् महाराष्ट्रराजः परितोऽवलोक्य सुदीर्घमश्वसत्। अवालोकयच्च—यद् गगनतलं किञ्चित् किञ्चित् श्यामतां धत्ते। अस्पष्टाकृतिरपि सम्मुखं दक्षिण-दिशि सुदूरं वितत., विनिवर्तमान परश्शत-भिक्षुक-व्रात-व्याप्त:, यातायात-परैरनेकैः पान्थैश्च परिपूरितो घण्टापथः। वामतः, चाल्यमानाभिः, मयूर-कारण्डवादि-विविधाऽऽकाराभिः, दीर्घाभिः, आयताभिः, अल्पाभिः, महतीभि. साट्टाभि', निरट्टाभिः, सोल्लोचाभिः, अनुल्लोचाभिः, सनूपुर-क्षेपणी-क्षेपणी-झणत्कार-विस्मायित-मीनाभिः, पथिकै',व्यापार-वस्तुजातैः,क्रीडामात्र-व्यसनिभिर्नागरैश्च परिपूरिताभिः, परस्सहस्राभिः तरणिभिः, विलोडित-नील-नीरा, परश्शत-कमठ-पृष्ठ-विम्ब-प्रतिविम्बैरिव, प्रतिसार्यं निविशमानावगाहमान-नीलगिरि-गण्डशैलायमान-सि-

---

चिराननुभूतम्=दीर्घकालालब्धम्। अश्वसत्=निश्वासमग्रह्णात्। दुःखमुक्ताना स्वभावोऽयम्।

धत्ते=दधाति। अस्पष्टाकृतिः=अविभाव्यमानाकारः। विततः=विस्तीर्णः। विनिवर्तमानानाम्=परावृत्तिं लभमानानाम्, परश्शतानाम्, भिक्षुकाणाम्, व्रातेन, व्याप्तः। घण्टापथ=राजमार्गः। चाल्यमानाभिः=सार्यमाणाभि.। दीर्घाभिः=लम्बमानाभिः। आयताभिः=विशालाभिः। अल्पाभिः=लघ्वीभिः। साट्टाभिः=सक्षौमाभिः। 'स्यादट्टः क्षौम'-मित्यमरः। सोल्लोचाभिः=सच्छदिभिः। सनूपुरक्षेपणीनाम्=क्षुद्रघण्टिकाभिः सहितानां नौकादण्डानाम्, क्षेपणझणत्कारैः=पातनझणदिति शब्दैः विस्मायितमीनाभिः=साश्चर्यीकृतमत्स्याभिः। तरणिविशेषणम्। क्रीडामात्रव्यसनिभिः=खेलनमात्रनिरतैः। नागरैः=पौरैः। तरणिभिः=नौकाभिः। विलोडितम्=हिल्लोलितम्, नील नीरं यस्याः सा। परश्शतानाम्=अगणितानाम्, कमठानाम्=डुलीनाम्, पृष्ठस्य, बिम्बप्रतिबिम्बैरिव=मण्डल-प्रतिच्छायाभिरिव। निविशमानानाम्=प्रविशताम्, अवगाहमानानाम्=निमज्जताम्, नीलगिरिगण्डशैलायमानानाम्=नीलाचलच्युतस्थूलोप-

न्धुर-घटा-क्षालनैरिव, सकल-कलङ्काङ्कित-दिल्ली-वल्लभ-सम्पर्कैरिव च श्याम-श्यामा, सन्तरणाऽऽसक्तैरनेकैर्यवनयुवकैर्विक्षोभ्यमाणा, क्वचित्सन्ध्योपासन-परायणैर्जल-युद्धाऽऽसक्त-यवन-बालक-कर-यन्त्र-च्युताम्बु-बिन्दु-स्पर्श-भीतैरपसारमपसारमुपविशद्भिर्ब्राह्मणै सेव्यमाना, क्वचित्प्रक्षिप्त-मांसाग्र-वडिश-बद्ध-रज्जु-हस्तैर्जलचर-तालु-वेधं प्रतीक्षमाणैर्यवनैर्नान्तिकेष्वभीक्ष्यमाणा, तरङ्ग-भङ्गैर्हस्तैरिव स्वं वक्षो घ्नती सकज्जलाश्रु-प्रवाहमयीव, स्वभ्रातरं यमं दिल्लीकलङ्क-वृत्तान्त निविवेदयिषन्तीव ततः प्रवहन्ती यमुना। दक्षतश्च समस्तं दिनमितस्ततोऽतिवाह्य सायं स्वावासमायातैर्विहित-कलकलैर्विहङ्ग-कुलैर्व्याप्तान्युद्यानानि।

लायमानानाम्। सिन्धुराणाम्=गजानाम्, घटानाम्=मण्डलानाम्, क्षालनैरिव=धावनैरिव। सकलकलङ्कैः=सर्वविधपापैः, दुर्यशोभिश्च, अङ्कितस्य=लाञ्छितस्य, दिल्लीवल्लभस्य, सम्पर्कैरिव=सान्निध्यैरिव। श्यामश्यामा=अतिकृष्णा। सन्तरणासक्तैः=प्लवननिरतैः। विक्षोभ्यमाणा=आकुलीक्रियमाणा। सन्ध्योपासनपरायणैः=सन्ध्यार्चननिरतैः, जलयुद्धासक्तानाम्=वारिक्रीडासलग्नानाम्, यवनबालकानाम्, करयन्त्रेभ्यः, च्युतानाम्=पतितानाम्, अम्बुबिन्दूनाम्=जलपृषताम्, स्पर्शाद्, भीतैः=भयत्रस्तैः। ब्राह्मणैः=विप्रैः। सेव्यमाना=आश्रीयमाणा। प्रक्षिप्ते=प्रेरिते, मांसाग्रे, वडिशे=मीनवेधिन्याम्, बद्धा=यन्त्रिता, रज्जुः=दाम, करे येषा तैः जलचराणाम्=मीनादीनाम्, तालुवेधम्=काकुदच्छेदम्। अन्तिकेषु=समीपेषु। नाभीक्ष्यमाणा=न अवलोक्यमाना। तरङ्गभङ्गैः=लहरिच्छेदैः। वक्षः=उरः। घ्नती=ताडयन्ती। सकज्जलाश्रुप्रवाहमयीव=साञ्जनास्रपूरयुतेव। यमम्=धर्मराजम्। निविवेदयिषन्तीव=निवेदयितुमिच्छन्तीव। यमुना=शमनस्वसा। वामतः प्रवहन्तीति पूर्वान्वयि। दक्षत=दक्षिणस्या दिशि। इतस्ततः=यत्र तत्र। अतिवाह्य=समाप्य। स्वावासम्=स्वसदनम्। विहङ्गकुलैः=पक्षिनिवहैः। व्याप्तानि=आवृतानि।

सर्वे शनैः शनैस्तेनैव पथा दक्षिणामुखं प्रचलिताः। क्रमतोऽयं मार्गो यमुना-प्रवाहाद् दूरतः संवृत्तः। बहवो भिक्षुकाश्च महाराष्ट्र-राजस्यौदार्य्यं प्रशंसन्तो ग्रामटिकानां पद्या अन्वसरन्। तावत्कश्चिदभिमुखमागच्छन् भव्यमिमं वीरसंन्यासिनं पश्यन्नपृच्छत्-'को भवान् ?'

एष आह—नारायण ! नारायण ! संन्यासिनो वयम् !।

स आह—कुत्र गम्यते ?

एष आह—नारायणस्य करुणया वृन्दावनमुद्दिश्य गम्यते। स आह—कियद्दूरं दिल्ली ? एष आह-इयमासन्ना दिल्ली, सपदि गम्यतामन्यथा गोपुरावरोधः स्यात्। गोविन्द ! गोविन्द ! हरे ! कृष्ण ! विष्णो !

एवमालप्य तस्मिन् नगराभिमुखं त्वरितं प्रचलिते, पुनरेते किञ्चिदग्रतो गत्वा द्विमुखं पन्थानमवालूलुकन्।

अथ केन पथा गन्तव्यम् ? कुतो यातव्यम् ? इति विचारयन्नेव माल्यश्रीकोऽद्राक्षीद्वामे पथि किञ्चिदेव दूरे विशालमेकं प्लक्ष-वृक्षम्, तदधस्ताच्च पञ्चषान् शाखाबद्धान खुराग्रोन्मथित-भूभागानश्वान्। "इत आगम्यताम्, मन्ये त एतेऽश्वाः"-इत्युक्त्वा चाखिलांस्तत एव नीतवान्।

यमुनाप्रवाहात्=कालिन्दीपूरात्। ग्रामटिकानाम्=क्षुद्रग्रामाणाम्। पद्याः=मार्गान्। अन्वसरन्=अनुसृतवन्तः। भव्यम्=सुन्दरम्।

गोपुरावरोधः=प्रधानद्वारपिधानम्।

द्विमुखम्=उभयतो गच्छन्तम्।

प्लक्षवृक्षम्=पर्कटं द्रुमम्। शाखासु=द्रुमावयवेषु, बद्धान्=यन्त्रितान्। खुराग्रैः=शफप्रान्तैः, उन्मथिता भूभागाः, यैस्तान्। अखिलान्=सकलान्। तत एव=तत्रैव।

अथ महाराष्ट्रराजोऽपि तान् खलीन-लेहन-लीला-लीनान् अतिमुक्त-कुसुम-स्तवकैरिव फेन-निचयैः परिपूजित-वसुन्धरान् सज्जोपवेशनिकान् उभयतो लम्बित-लौह-पादाधारान् स्वागमन-पादाहति-श्रवणेनैवोर्ध्वकर्णान्, श्यामान् रक्तांश्च हयान् आलोक्य पार्श्वस्थमेकं हयनियामकञ्च वीक्ष्य मन्दमगादीत्-"कस्यैते हयाः ?" स च दक्षं कर्णं सस्पृशन्नुदतीतरत्—दिल्लीनिवासिनः कस्यचिन्म-हाभाग्यस्य।

अथ 'इमे एव, इमे एव, तेऽश्वाः'—इति सर्वैरुक्तम्। ततो विशा-लमेकमाजानेयं महाराष्ट्रराज आरूढः, अपरं गौरसिंहः, अन्यञ्च माल्यश्रीकः। त्रयोऽपि च नियामक-दत्तांस्तादृशान् कशा-दण्डान् गृहीत्वा त्वरितं दक्षिणाऽभिमुखं धाविताः।

अथ गव्यूतिं यावन्निर्विघ्नं धावद्भिरकस्मात् पुरतः समागच्छन्तः सप्त सादिनो दृष्टाः। ते च समागतमात्राः 'तिष्ठत' इत्येतेषां गतिं रुरुधुः, अचकथश्च यत्-कुत आगच्छथ ?—इति। एतैरुक्तम्-संन्यासिनो वयम्, दिल्लीत आगच्छामः। तैरुदितम्—वरम्!

खलीनस्य=कविकायाः, लेहनलीलायाम्=चर्वणक्रीडायाम्, लीनान्=लग्नान्। अतिमुक्तकुसुमस्तवकैरिव=माधवीसुमगुच्छैरिव। फेननिचयैः=डिण्डीरव्रातैः। परिपूजितवसुन्धरान्=परिसेवितधरणीन्। अश्वाः परिश्रमजैः फेनैः पृथिवीमार्द्रयन्ति स्मेति भावः। सज्जो-पवेशनिकान्=सन्नद्धाश्वपृष्ठासनान्। उपवेशनिका-"काठी" इति हिन्दी। लम्बित.=दोलायितः, लौहः=आयसः, पादाधारः="रिकाब" इति प्रसिद्धः, येषां तान्। हयनियामकम्=अश्वरक्षकम्। उदतीतरत्= उत्तरमदात्। कशादण्डान्=अश्वताडनयष्टीः। धाविताः=जवाच्चलिताः।

गव्यूतिम्=क्रोशद्वयम्। सादिनः=अश्वारोहाः। रुरुधुः=

वयमपि दिल्लीमेव गच्छामः, किन्तु विस्मृतमार्गाः स्मः, तत्परावृत्य दिल्ली-पर्य्यन्तमस्माभिः सह गच्छत। ततो गौरेणोक्तम्—दयध्वं संन्यासिनाम् , सरलोऽयं मार्गः, सम्मुखमेव दिल्ली, उत्तराऽभिमुखा इव प्रयात, सपदि प्राप्स्यथ राजधानीम्–इति।

अथ तेषां प्रधान इवैकः प्रांशुर्निपुणं निरीक्षमाण उवाच—इयमुदारा वाग् , एषा भव्या मूर्तिः, एते राजयोग्या आजानेयाश्च न पुष्णन्ति युष्माकं साधारण-संन्यासि-भिक्षुताम्। तत् स्पष्टं कथ्यतां के यूयम् ? ततो माल्यश्रीक उवाच—"सत्यं ! कुलमास्माकीनमुच्चम् , किन्तु गृहीत–संन्यासा वयं सदा पर्य्यटनकौतुकिनो भाग्यवतां केषाञ्चिदौदार्य्येण लब्ध–सुन्दर–घोटकाः साम्प्रतं मथुरां यामः।"

ते तु सम्रापि निपुणं निरीक्षमाणास्तूष्णीमतिष्ठन्।

ततस्तेष्वेकेन मन्दमुक्तम्—अहं शास्तिखानेन सह चिरं महाराष्ट्र–युद्धे आसमिति परिचिनोमि शिवम्। तादृश एवास्य स्वरः सन्नाहश्च। अपरेणोदितम्—भाषणभङ्गी च स्पृशति महाराष्ट्र–भाषाम्। अन्येन शनैरालपितम्—शान्तं पापम् ! स तु दिल्लीनगरे निगृहीतोऽस्ति। अपरेणोट्टङ्कितम्—धूर्त्ता महाराष्ट्राः,

---

वारितवन्तः। उदितम्=कथितम्। विस्मृतमार्गाः=अनवधारितपदवीकाः। दयध्वम्=दया कुरुत। संन्यासिनामित्यत्र "अधीगर्थदयेशां कर्मणि" इति षष्ठी। प्रयात=गच्छत।

प्रधान इव=श्रेष्ठ इव। प्रांशुः=उन्नतः। पुष्णन्ति=समर्थन्ते।

उच्चम्=श्रेष्ठम्। गृहीतसंन्यासाः=धारितभिक्षुकव्रताः। पर्यटनकौतुकिनः=भ्रमणकौतूहलाः। भाग्यवताम्=सम्पन्नानाम्। लब्धसुन्दरघोटकाः=प्राप्ताजानेयाः।

स्वरः=स्वनः। भाषणमिति यावत्। सन्नाहः=शरीरबन्धः।

तथा निगृहीतानामप्येषां पलायनं नाऽऽश्चर्य्यप्रदम् ।

अथ महाराष्ट्रराजेन मनस्येव 'महतीयमापदेति' चिन्ता-निमग्नेन कथितम्—सरलोऽयं मार्गः, गम्यताम् । ततस्तेषां प्रधानेन गदितम्-मैवम्, भवतामेकेनापि गन्तव्यं सहास्माभिः ।

ततो यावदेते परस्परमालोक्य किमपि विमृशन्ति; तावत्तेषामेकेन सन्दिहानेन शनैः पृष्ठतोऽश्वं सञ्चाल्य महाराजस्य निकटे आगत्य, अकस्माद् भल्लाग्रेण शिरो-वेष्टनमुत्तोलितम्, दृष्टञ्च सर्वैरेतस्य शिरसि लौहं शिरस्त्रमस्तीति । महाराष्ट्रराजः सचकितमुत्फालितवाह एकतः स्थितवान्, माल्यश्रीकगौरसिंहाभ्याञ्च झटिति कशादण्डाग्रं सञ्चाल्य, छुरिकामाकृष्य, परिवर्त्य, पुनस्तथैव संयोज्य भल्ला विहिताः । महाराष्ट्रराजस्तु यावत्तथा करोति तावत्—"सोऽयम्, सोऽयम्, चोरोऽयम्, पलायितकोऽयम्, कश्योऽयम्, मुसल्योऽयम्,घात्योऽयम्, पात्योऽयम्"-इति सकोलाहलं ते—"छिन्धि-छिन्धि, भिन्धि भिन्धि" इत्यपतन् ।

योऽयं महाराष्ट्रराजं प्रथमं परिचिकाय; सोऽकस्मात् क्रूरखड्गमस्योपर्य्युदतूतुलत्, अन्ये चान्यौ व्यग्रावकार्षुः । महाराजस्तु

भाषणभङ्गी=कथनशैली । निगृहीतानाम्=कारागृहे स्थापितानाम् ।
आपदा=आपत्तिः । भागुरीयमतेनाबन्तता ।

विमृशन्ति=विचारयन्ति । सन्दिहानेन=सन्देहं कुर्वता । भल्लाग्रेण=कुन्तप्रान्तेन । शिरोवेष्टनम्=उष्णीषम् । उत्तोलितम्=उत्क्षिप्तम् । लौहम्=आयसम् । शिरस्त्रम्=शीर्षत्राणम् । उत्फालितवाहः=उत्कूर्दिताश्वः । एकतः=एकस्यां दिशि । सञ्चाल्य=सभ्राम्य । पलायितकः=अपसृतः । कश्यः=कशाभिस्ताडनीयः । मुसल्यः=मुसलेन हन्तुं योग्यः । घात्यः=मारयितव्यः । पात्यः=पातनीयः ।

परिचिकाय=परिचितवान् । क्रूरम्=कठोरम् । उदतूतुलत्=उदक्षिपत् । व्यग्रौ=उद्विग्नौ । अकार्षुः=चक्रुः, सज्जभल्लः=सन्नद्धकुन्तः ।

सज्जभङ्गो नासीदिति किङ्कर्त्तव्यविमूढोऽभूत्, अपश्यच्च हृदये प्रवलवाणेनाऽऽहतोऽसौ प्रहर्त्ता सचीत्कारं हयपृष्ठाद् भूमौ पतितः—इति।

अथ द्वितीयोऽपि सक्ष्वेडं खड्गं कोशादाकृष्य तस्मिन्नापतितस्तथैव वाणविद्धो भूमौ पतितः। तृतीयोऽप्युत्पतित एवमेव भूमौ समशयिष्ट। तावन्महाराजोऽपि भल्लतल्लजं करपल्लवेन दृढं गृहीत्वा सिंह इव वस्तानेतानाचक्राम। ते चत्वारोऽपि त्रिभिरेतैराक्रान्ताः कौशल-युद्धेनेषां चकिता बभूवुः। तेषामेकः शिवेनाऽऽहतः, द्वितीयोऽपि, तृतीयश्च गौरेण भल्लेनाऽऽहतः, चतुर्थश्च माल्यश्रीकेणाऽऽहतवाह सहयं तेनापथेनैव नीयमानो गर्त्ते पातितः। एवमापदमाषाढ़-घन-घटामिव क्षणेनापसृतामालोक्य सर्वेऽप्यक्षतविग्रहाः सपदि सैन्धवेभ्य उत्तीर्य, गतप्राणानामेषां केषाञ्चन कृन्दतां चन्द्रहासान् गृहीत्वा, यावत्पुनरश्वानारुह्य जिगमिषन्ति; तावन्महाराष्ट्रराजेनोक्तम्—"स्थीयताम्, न भयम्। दृश्यतां कोऽस्मत्प्राण-रक्षकः; यो वाणैः प्रत्यर्थिन प्राहरत्। नाहं कथमप्यानृ-

किङ्कर्त्तव्ये=किं विधेयमिति विचारणे, विमूढः=विक्षिप्तः। प्रवलेन=दुर्धर्षेण, वाणेन=शरेण। प्रहर्त्ता=मारयिता। सचीत्कारम्=सशब्द-क्रन्दनम्।

सक्ष्वेडम्=सगर्जनम्। तस्मिन्=शिवे। समशयिष्ट=अस्वाप्सीत्। भल्लतल्लजम्=प्रशस्तं कुन्तम्। करपल्लवेन=करकिसलयेन। अत्रपल्लवशब्दोऽनुप्रासार्थमेव। सिंह इव=पञ्चास्य इवेत्युपमा। वस्तान्=अजान्, वर्करान्। कौशलयुद्धेन=निपुणसंग्रामेण। चकिताः=भीताः। आहृतवाहः=मारिताश्वः। सहयम्=सघोटकम्। अपथेन=अमार्गेण। गर्त्ते=श्वभ्रे। आषाढघनघटामिव=वर्षारम्भमेघमालामिव। अपसृताम्=दूरीभूताम्। अक्षतविग्रहाः=अनाहतदेहाः। गतप्राणानाम्=गतासूनाम्। जिगमिषन्ति=गन्तुमिच्छन्ति। दृश्यताम्=ज्ञायताम्। अस्मत्प्राणरक्षकः=अस्मज्जीवनदाता। प्रत्यर्थिनः=शत्रून्। एवम्=

ण्यमुपयास्यामि यो मत्कण्ठे खड्गमप्येवं प्राहरत्; स शिताग्रेण शरेण यथा झञ्झावात-पात-घाताहतः शुष्कच्छद इव परतः पपात।"

ततः सर्वेऽपि पृष्ठतो विचिन्वन्तस्तमेवाश्व-नियामकमल्पीयां समेकमश्वमारूढमिष्वासपाणिं कटि-बद्ध-तूणीरमायान्तमपश्यन्।

अथ तमवलोक्य विहित-बहुल-साधुवादे समासादितप्रसादे महाराष्ट्रराजे, सोऽपि वाहादुत्तीर्णः। ततः समीपमागतं त कलित-हय-नियामक-वेषोऽसौ राघवाचार्य्यगोस्वामी—इति परि चिच्ये महाराजः।

अहो! दया स्वामिनः! इति सगद्गदस्वरं साष्टाङ्गं प्रणन्तुकाम महाराजमालोक्य, अञ्जलिं बद्ध्वा स उवाच–महाराज महाराज दासोऽयं श्रैमत्कः। अस्य गोस्वामिता हय-नियामकता च व्याज मात्रम्, जनोऽयं तोष-रोष-भाजनं महाराजस्य। तदाकर्ण्य चकितः क्षणं तूष्णीको महाराजोऽवादीत्–किमिव मोहयसि? स्पष्टं कथय, कस्त्वमस्माकमसाधारणो बन्धुः?

अमुना प्रकारेण। प्राहरत्=प्राताडयत्। शिताग्रेण=तीक्ष्णप्रान्तेन। झञ्झावात-पात-घाताहतः=सवृष्टिकवायुपतनताडितः। शुष्कच्छद इव=नीरसपत्रमिव।

विचिन्वन्तः=अन्विष्यन्तः। अल्पीयांसम्=अतिलघुम्। इष्वा सपाणिम्=धनुर्हस्तम्। कटिबद्धतूणीरम्=मध्यलम्बितेषुधिम्। आया न्तम्=आगच्छन्तम्।

विहित-बहुल-साधुवादे=कथितानेकसत्प्रशंसे। समासादित प्रसादे=लब्धप्रसन्नताके। परिचिच्ये=परिचितवान्।

प्रणन्तुकामम्=नमस्कर्त्तुमिच्छन्तम्। अञ्जलिम्=करसम्पुटम्। श्रैमत्कः=भावत्कः। तोषस्य=प्रसन्नतायाः। रोषस्य=क्रोधस्य च भाजनम्=पात्रम्।

असाधारणः=अनन्यादृशः। बन्धुः=मित्रम्।

स तु जानुभ्यामवनीं गत्वा, अञ्जलिं बद्ध्वा, शिरो नमयित्वा, सप्रश्रयमगादीत्—

देव ! दासोऽयं श्रीमच्चरणैर्लालितोऽपि पालितोऽपि वासितोऽपि निर्वासितोऽपि रघुवीरसिंहः !

तदाकर्ण्य चकितो महाराजः, रघुवीर-प्राप्तेः स्वप्नमिव, इन्द्रजालमिव, गन्धर्वपुरमिव च पश्यन्; विस्मृतात्मा, कण्टकितः, स्विन्नः, वेपितश्च तमुत्थाप्य, गाढमालिङ्गय, स्मारं स्मारं स्वकृत्यं तत्कृत्यञ्च मुग्धमाणवक इव मुक्तकण्ठं रुरोद ।

चिरात्तस्मिन्नुपशान्ते गौरोऽपि भगिनी-जीव-जीवनं वाष्पस्नातं रघुवीरं तथैवाऽऽलिलिङ्ग, अश्रूणि च मुमोच । परतः प्रेमवाष्प-पूर-पूरितो माल्यश्रीकोऽप्याशिश्लेष । ततो महाराज उवाच—

रघुवीर ! क्षमस्व, यद्विनाऽपराधमुपकार्य्यपि तथाऽनादृतोऽसि; त्वत्पिता जटिलवेषो वीरेन्द्रसिंह, त्वां विना कण्ठेन प्राणान् धारयति, तव पुरोहितो गणेशशास्त्री अस्थिचर्मावशेषः । श्रूयते त्वां प्राणनाथं मन्यमाना सौवर्णी आशामात्रेण जीवति, आगच्छ, सपदि महाराष्ट्र-देशं गत्वा सर्वानुज्जीवय !

वासितः=दत्तस्थानः । निर्वासितः=परदेशे निष्कासितः ।

गन्धर्वपुरमिव=मायानगरमिव । कण्टकितः=पुलकितः । आलिङ्गय=आश्लिष्य । मुग्धमाणवक इव=मूढबाल इव ।

तस्मिन्=रोदने । भगिनीजीवजीवनम्=सहोदरीप्राणरक्षकम् । आशिश्लेष=आलिङ्गितवान् ।

अनादृतः=तिरस्कृतः । कण्ठेन=गलेन । न सर्वेण शरीरेण । गतप्राणाना हि प्राणाः कियन्ति दिनानि प्रायः कण्ठे तिष्ठन्ति इति तथा कथनेन गतासुप्रायता लक्ष्या । उज्जीवय=उत्प्राणय ।

इति कथयित्वा महाराष्ट्र-पतिर्नैजमश्वमारूढः, माल्यश्रीको गौरश्च निजाश्वमारूढौ, भूमौ पतितानामेवैषामेकं प्रांशुमश्वं रघुवीरोऽप्यारूढः। यावदेते दक्षिणाभिमुखाः पुनः पथः कञ्चिदंशमतिवाहयन्तिः, तावदकस्मादेव प्रतीचीतः कदम्ब-कदम्ब-संवलितेन पथा खडखडा-शब्दं समागच्छतो दिल्लीश-सङ्केताङ्कित-पट्टिका-कलित-कटिबन्धान् श्याम-वसनान् रक्तशिरोवेष्टनान् भुशुण्डी-मण्डित-बाहु-दण्डान् शतमिवाश्वारोहानपश्यन्।

ते च 'सोऽयं सोऽयमिति' सपदि सपरिकरं शिवं पर्य्यवेष्टयन। किमिति ? किमिति ?—इति पृष्टाश्च सकर्ण-स्पर्शं मन्दं किमपि प्रोचुः। अथ सर्वेऽपि हृष्टा मथुराऽभिमुखमन्धकारमये पथि विलीनाः।

इत्येकादशो *निश्वासः।*



प्रतीचीतः=पश्चिमतः। कदम्बानाम्=नीपानाम्, कदम्बेन= समूहेन, सवलितेन=वलयितेन। दिल्लीशसङ्केतेन=अवरङ्गजीवनाम्ना अङ्किताभिः=चिह्निताभिः, पट्टिकाभिः, कलिताः=युताः, कटिबन्धाः, येषा तान्।

इमे सर्वे कलितयवनवेषा महाराष्ट्रवीरा इति राघवोक्तौ गुप्तसेनावर्णना दिभ्यः सुरेश्वरोक्तेस्च स्पष्टीकृतप्रायमिति शम्।

इति श्रीशिवराजविजयवैजयन्त्यामेकादशनिश्वासविवरणम्।



"तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथ-मन्मथः ॥"

—भागवते,

द्वादशे शिवराजस्य दिल्लीयात्राकालमारभ्यैव समुत्सुकानां तदर्थं महान्तं यत्नमनुष्ठानादिकञ्चानुतिष्ठता महाराष्ट्राणां पुरतः पुनरागमनं शिवस्येत्येका कथा, रघुवीरसमागमनमिति द्वितीया, अनयोरेव प्रधानभूतयोः परिपूर्त्यर्थं ग्रन्थसमाप्तौ सन्मङ्गलायमानमानसत्वञ्च प्रसारयितुं श्रोतृप्रभृतिषु सौवर्णी-परिणयादिलक्षणा अपि कथाभागाः प्रदर्शयितव्याः। तदेतस्य कथाव्रातस्य समुपक्षेपकं भागवतीयं रासपञ्चाध्यायी-गृहीतं पद्यमुपस्थापयति। वंशीनिनादेन समाहूय व्रजबालाः कालिन्दीतटे रममाणस्तासां साभिमानत्वं निरीक्ष्य अन्तर्हितो भगवान् श्रीकृष्णः। पश्चात्ताभिः कृतगोपीगीतादिरूपाक्रन्दाभिश्चिराभिलषितश्चिरप्रार्थितश्च प्रकटीभूतः। तदेतत्कामविजयप्रदर्शनं रासपञ्चाध्याय्या कृत वेदविदा व्यासेन। तदुपपादकश्चायं श्लोकः।

शूरस्य=शूरसेनस्यापत्यं पुमान् शौरिः। तासाम्=चिरहरिविरहखिन्नचेतस्कानाम्, गोपीनाम्। सम्बन्धमात्रविवक्षया षष्ठी। आविरभूत्=प्रकटीभूतः। शौरिं विशिनष्टि-स्मयमानम्=ईषद्धास्यमयम्, मुखाम्बुजम्=आननपद्मं यस्य सः। भगवतः स्मयश्च मायेति न विस्मर्तव्यम्। तथा च—

"हासो जनोन्मादकरी च माया, दुरन्तसर्गो यदपाङ्गमोक्ष" इति तत्रैव। पीताम्बरधरः=पीतकौशेयवासाः। स्रग्वी=मालाधारः। साक्षात्=प्रत्यक्षीभूतः। मन्मथस्य=कामस्य, मन्मथः=मथनः। पदैरेभिः स्पष्टतां नीतो रासाभिधेयभाव इति नाविदितं पण्डितेषु। रासपञ्चाध्याय्या विकृतमर्थं विकृतमनीषया समुपस्थाप्य कृष्णचरित्रे कलङ्कव्रातमालोकयतां प्रतारणायापि व्यासेनायं श्लोक उपरचितः, उपनिबद्धश्चायं स्वग्रन्थे व्यासेनेति बहुतरं विवित्सुभिः पुराणमतदीपिका निभालयितव्या।

"यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥"

श्रीमद्भगवद्गीतायाम्,

जातोऽयमरुणोदयः, कलविङ्कैरारब्धः कलरवः, तनूभूतं तमः, धीरः समीरः, इरमदो मदयति मयूरान्, मतङ्ग-मोहनं गन्धमुद्गिरति नव-वारिद-वारि-सरसिता रसा, वलाहका मन्द गर्जन्ति। समयेऽस्मिन् तोरणदुर्ग-समीपस्थ-सरोवर-प्रान्ते शिवमन्दिरे चारुहासिनी सौवर्ण्याऽऽलपति स्म।

उपक्रमे विष्णोर्माया भगवतीत्यभिधाय सकलजगन्मोहयित्र्यास्तस्याः प्राबल्यं प्रदर्शितम्, उपसंहारे तस्या विजयकरणोपाय भगवदेकतानत्वं प्रदिदर्शयिषुः, शिववीरस्य दिल्लीकलङ्ककरतलगतस्य ततो निःसृत्य पुनरपि स्वराज्यपरिप्राप्तेः कारणञ्च भगवच्छरणीकरणमेवेति विवेदयिषुः, "श्रीकृष्णः शरणं मम"ति महामन्त्रमुपदिदिक्षुः, गीताश्लोकमुपक्षिपति यत्र योगेश्वर इति।

योगाना योगिनाञ्चेश्वरः। महामायापतिरिति यावत्। इदमपि पद भगवच्चरित्रशुद्धतायाः प्रबल प्रमाणमिति वेदितव्यम्। धनुर्धरः=सर्वश्रेष्ठधनुर्धारी। पृथाया अपत्य पुमान् पार्थ। तत्र=तत्रैव। श्रीः=शोभा, लक्ष्मीः। विजयः=उत्कर्षः। भूतिः=सम्पत्तिः। नीतिः=नयः। ध्रुवा=अवश्यम्भाविनी। इति मम मतिः=सम्मतिः, मनीषा च। इति धृतराष्ट्रं प्रति गीतावसाने सञ्जयकथनम्।

अरुणोदयवर्णनपूर्वकं ग्रन्थारम्भ इत्युपक्रमोपसंहारयोरैक्य दिदर्शयिषुररुणोदयवर्णनं प्रारभते—जातोऽयमिति। कलविङ्कैः=चटकैः। कलरवः=मधुरालापः। तनूभूतम्=क्षीणता गतम्। इरंमदः=मेघज्योतिः। मूलपर्याययोर्वैपरीत्येनोक्तावमरः। मदयति=हर्षयति। मतङ्गमोहनम्=करिवशीकरणम्। उद्गिरति=उद्वमति। नववारिदवारिभिः=नूतनजलधरपाथोभिः, सरसिता=सरसतामापादिता। रसा=विश्वम्भरा। वलाहकाः=मेघाः। तोरणदुर्गसमीपस्थस्य, सरोवरस्य=जलाशयस्य, प्रान्ते=तटे। सौवर्ण्या, सहार्थकत्वभासनात्तृतीया।

चारुहासिनी—भद्रे ! दिष्ट्या वर्द्धसे, फलितं तव मनोरथैः, शुतवेषो रघुवीरसिंहस्तत्रभवतो दिल्लीं गतस्य महाराजस्य रक्षाम-रोन्-इति सन्तुष्टेन महाराजेन सादरमानीयते। अद्यैव सर्वे ायास्यन्ति, ह्यो गव्यूति-चतुष्टयान्तराले कृताधिवासाः सन्ति, ानन्दमयः समयोऽसौ महाराष्ट्र-देशस्य। त्यज विषादम् ! सम-ुभव महादेव-सेवाया नमस्यायास्तपस्यायाश्च अपूर्वं परिणामम् ! नमाप्ता सा ग्रह-दशा। अवसन्नानि दुरदृष्टानि। सम्पूर्णा दुष्कृत-वपाकाः। सम्प्रति उत्तिष्ठ। सन्ताप-तप्त-श्वास-शुष्कमधरं हास-रसै रञ्जय। चिर-विहित-न्यासं वाग्विलास पुनरासादय। अञ्जन-रञ्जन-रहिते क्रन्दन-वारि-विन्दु-व्रज-दुर्दिन-दुःखस्थे नयने आमो-दामृताऽऽसारैः स्नपय। दिष्ट्या वर्द्धसे !

सौवर्णी—किं कथयसि ? अपि सत्यमिदम् ?

चारुहासिनी—[सहर्षम्] भगिनि ! कथमसत्यं वच्मि ? ततः

दिष्ट्या=भागधेयेन। फलितम्=पूर्णताङ्गतम्। ह्यः=पूर्वदिने। कृताधिवासाः=विहितवसतयः। आनन्दमयः=सुखमयः। महादेवस्य=भगवतः शम्भोः, सेवायाः=सपर्यायाः। नमस्यायाः=नमस्कृतेः। तपस्यायाः=शरीरतापनरूपतपसः। परिणामम्=फलम्। अवसन्नानि=समाप्तानि। दुरदृष्टानि=दुर्भाग्याणि। दुष्कृतानाम्=पापानाम्, विपाकः=परिणामः। सन्तापेन, तप्तैः, श्वासैः, शुष्कम्=नीरसम्। रञ्जय=मोदय। हासेन हि स्वास्थ्यमेधते सौन्दर्यञ्चेति वैज्ञानिकाः। रक्तीकरणार्थकत्व नातीव मनोहारि। चिर विहितः, न्यासः=परत्र प्रयोगो यस्य तादृशम्। आसादय=प्राप्नुहि। अञ्जनरञ्जनरहिते=कज्जलाकताशून्ये। क्रन्दनवारिबिन्दुव्रजैः=रोदनाम्बुपृषत्समूहैः, यद् दुर्दिनम्=सवृष्टिकमेघच्छन्नं दिनम्, तदेव दुःखम्, तत्स्थे। आमोदामृतासारैः=प्रसादपीयूषवर्षैः। स्नपय=धावय।

पश्य तोरणदुर्गेषु सतोरणा ध्वजा आरोप्यन्ते। अधुनैव दुर्गाध्यक्षो मन्दिरमागत्य मारुति-मूर्त्तिं प्रणम्य वृत्तान्तमिमं सर्वान् संश्राव्य गतः।

सौवर्णी—महादेवं परिक्रम्य, प्रणम्य, पुलकावरुद्धकण्ठा गाढं चारुहासिनीमालिलिङ्ग। ततश्चिर चारुहासिनी सौवर्णी चोपविश्य व्यतीत-दुर्घटनानां स्मारं स्मारं रोदं रोदं मङ्गल-वृत्तान्तं चामुमवधारमवधारं मोदं मोदं बहुभिः समालापैर्घटिकार्द्धं यापितवत्यौ।

चारु०—भद्रे! समूलतपस्या संवृत्ताऽसि, तत् त्यज सांप्रतं तपस्विनी-वेषम्।

सौवर्णी—भगिनि! मैवम्, पत्युः कुशलेनाऽऽत्मप्रकटन-वृत्तान्तमवाप्याऽऽलपिष्यामि, तं दृष्ट्वा च तपस्विनीवेषं त्यक्ष्यामीति सुदृढे मम प्रतिज्ञे। तत्रैका पूर्णा, परस्यामपि गङ्गाधरस्यानुग्रहेण पूर्णायामूरीकरिष्यामि ते वचनम्।

ततः—"अहो! कुसुमानि चेयानि, मुहूर्त्तेन पुनस्त्वां द्रक्ष्यामि"—इत्युक्त्वा तामालिङ्ग्य वाटिकां प्रविष्टायां तस्याम्; परमानन्द-सन्दोह-मद-मन्थरा सौवर्णी पौनःपुन्येन महादेवमूर्तिं परिक्रम्य, विल्वपत्रैः सम्पूज्य, वं व वं, हर हर हर, इति व्याहृत्य, आन-

सतोरणाः=सबहिर्द्वाराः। "तोरणोऽस्त्री बहिर्द्वारमि" त्यमरः।

पुलकावरुद्धकण्ठा=रोमाञ्चविस्खलद्गला। दुर्घटनानामित्यत्र "अधीगर्थे" त्यादिना षष्ठी। अवधारमवधारम्=निश्चित्य निश्चित्य।

समूला तपस्या यस्याः सा। परिपूर्णतपश्चरणेति यावत्। तपस्विनीवेषम्=योगिनीनेपथ्यम्।

सुदृढे=निश्चितप्राये। गङ्गाधरस्य=भूतेशस्य।

चेयानि=संकलनीयानि।

परमानन्दसन्दोहस्य=प्रगाढहर्षसमूहस्य, मदेन, मन्थरा=सालस्या। व्याहृत्य=निगद्य। आनन्दाश्रुकलाभिः=हर्षास्त्रविन्दुकणिकाभिः,

न्दाश्रु-कलाऽऽकुलित-कपोला चिरमस्तोष्ट । ततो महादेवं ध्यायन्ती, निमीलित-चक्षुरेव मनोरथमये जगति समपश्यत्—यन्महादेवः स्वयं प्रकटीभूय, "मा स्म भैः" इत्यसकृदाभाष्य, वाटिका-कुट-जालान्तर्निविश्य भस्मोद्धूलितेन वलित-व्यालवाल-वलयेन करेण रघुवीर-बाहु-मूले गृहीत्वा समानाय्य "एष ते पतिर्गृह्यताम्" इति कथयित्वा, तत्परिपूजित-मूर्त्तावेव निलीनः । स्वयं च बद्ध-सौवर्णोष्णीषम्, महार्ह-कञ्चुकम्, लोलश्चन्द्रहासम्, पुलकांशु-परिपूर्ण-लोल-लोचनम्, दृशा लिहन्तमिव, आलिङ्गन्तमिव, परिपिबन्तमिव च वीक्षमाणा आत्मानं विस्मृत्य चित्रार्पितेव जडीकृतेव पुत्तलिकायितेव गत-चेतनेव मोहन-मन्त्र मोहितेव च स्विन्ना कण्टकिता पुलकिता वेपिता च तथैव समस्थित ।

किञ्चित्क्षणानन्तरञ्च—"भद्रे ! क्षमस्व वारमेकमवलोकयैतं त्वद्-

---

आकुलितकपोला=विच्छुरितगण्डस्थला । अस्तोष्ट=स्तुतिमकार्षीत् । निमीलितचक्षुरेव=अनुन्मिषितनयनैव । मनोरथमये=काल्पनिके । मास्म भैः=भयं मा कार्षीः । "स्मोत्तरे लङ् च" । यत्तु 'मा भैरिति' पाठं स्वीकृत्य पण्डितानामाह्वान विचारकरणार्थम्; तत्तु बुद्धिवैशद्यवैभवविलसितमिति सन्तोष्टव्यम् । वाटिकाकुटजालान्तः=उद्यानानोकहसमूहान्तराले । भस्मोद्धूलितेन=भूतिच्छुरितेन । वलितः=वेष्टितः, व्यालवाल एव वलयो यस्मिन् तेन । पूर्वनिपातप्रकरणानित्यताप्रदर्शनार्थमेवं पाठः । षष्ठीतत्पुरुषो वा । वालव्याल इत्येव पाठ इति भीतबुद्धयः ।

परिपूजितमूर्त्तौ=सेवितप्रतिमायाम् । बद्धसौवर्णोष्णीषम्=धारितस्वर्णरचितशिरोवेष्टनम् । महार्हकञ्चुकम्=महामूल्यवारबाणम् । लोलश्चन्द्रहासम्=चलदसिम् । पुलकाशुभिः परिपूर्णे लोले लोचने यस्य तम् । लिहन्तमिव=आस्वादयन्तमिवेत्युत्प्रेक्षा । एवमग्रेऽपि । चित्रार्पितेव=आलेख्यलिखितेव । पुत्तलिकायितेव=कृत्रिमकाष्ठस्त्रीत्वमापादितेव । मोहनमन्त्रमोहितेव=वशीकरणमन्त्रायत्तीकृतेव ।

र्पित-जीवनम्"-इति मधुर-मधुरं कर्ण-रसायनं वचनमाकर्ण्य नयने उन्मील्य, तमेव जीवनाऽऽधारम्, ध्यान-विहित-साक्षात्कारम्, विलुलिताश्रु-धारम्, ससार-सारम्, प्रापित-परम-पीडा-पारावारम्, अभिहित-वचन-पीयूषाऽऽसारं रघुवीरसिंहमदर्शत् !

दृष्ट्वैव चोत्थाय तस्य पादयोः पतित्वा, अनपेक्षित-व्रीडा, समनुभूत-चिर-विरह-पीडा-कलित-विक्षिप्त-क्रीडा, मुक्तकण्ठं रुरोद। सोऽपि च समानोद्गारोऽपि कथं कथमपि धैर्य्यमाधाय, भज्यमानेन स्वरेण सान्त्वयन्, कम्पमानैरङ्गैरुत्थाप्य, आलिङ्ग्य, कण्टकित-कराकलित-पटखण्डेन कपोल-तल-गलदश्रु-धारां प्रोञ्छितवान् उपवेश्योपविश्य च कथितवान्—प्रिये ! मामुद्दिश्य बहु कष्टं सोढवत्यसीति स्मारं स्मारं विदीर्यते हृदयम्। अहह !! कतिवारं नाहं निवेदितवान्—यद् मुधैव मादृशे अकिञ्चित्करे अव्यवस्थे अनुरक्ताऽसि। अस्तु, व्यतीता सा दुरदृष्ट-दशा, तवैव पुण्यैरहमपि जीवामि, दुष्कीर्त्ति-वेदना विधूय महाराजस्य परम-पुरस्कार-

---

कर्णरसायनम्=श्रोत्रानन्दजनकम्। ध्यानविहितसाक्षात्कारम्=चिन्तनानुभूतप्रत्यक्षम्। विलुलिताश्रुधारम्=प्रचलिताश्रुपङ्क्तिम्। प्रापितपरमपीडापारावारम्=लम्भितविपुलयन्त्रणासागरम्। अभिहितवचनपीयूषासारम्=कथितवचोऽमृतधारासम्पातम्।

अनपेक्षितव्रीडा=अगृहीतलज्जा। समनुभूतया चिरविरहपीडया, कलिता विक्षिप्तक्रीडा=उन्मत्तलीला यया सा। मुक्तकण्ठम्=स्फोटितगलम्। अतितारमिति यावत्। समानः, उद्गारः=दुःखोद्गमः यस्य सः। भज्यमानेन=त्रुट्यता। विशृङ्खलितेनेति यावत्। कण्टकिते=सरोमाञ्चे करे, आकलितेन, पटखण्डेन=मुखशोधकवस्त्रशकलेन। कपोलतलाद्, गलन्तीम्=पतन्तीम्, अश्रुधाराम्। उपवेश्य=सौवर्णी प्रतिष्ठाप्य। उपविश्य=स्वयमास्थित्य। विदीर्यते=द्विधा भवति। अकिञ्चित्करे=कार्यासाधके, कर्त्तुमशक्ते। अव्यवस्थे=स्थित्यादिव्यवस्थारहिते। दुष्कीर्त्तिवेदनाम्=दुर्यशोयन्त्रणाम्। विधूय=तिरस्कृत्य।

भाजनं च संवृत्तोऽस्मि। महाराजः स्वयमधुना तव पाणिं मां ग्राहयिष्यति, अधुना त्यजेमं संन्यासि-वेषम्, यदवलोकनेनापि खिद्यते चेतः।

अहह! क्व ते नवनीत-कोमलान्यङ्गानि? क्व चैतद् ब्रह्मचर्यम्? न तव प्रकृति-कुञ्चिता कचा जटाजूटतामर्हन्ति, नेयं त्वग् भसितसङ्घर्षमर्हति, नायं मौक्तिक-माला-गौरवमपि सग्लानि सहमानः कन्धरो रुद्राक्ष-राशि-भार-कष्टमर्हति, न चेयं कुसुम-शयन-सनाथन-प्रार्थना-भाजनं गात्र-यष्टिः स्थण्डिल-शय्यामर्हति। तदुत्तिष्ठ, सनाथय स्व-वास-भवनम्, समुज्जीवय वृद्धं देवशर्म्माणं पुरोहितम्, समासादय च चिरत्यक्त-प्रकृति-सिद्धं निज-वेषम्। गच्छाम्यहमधुना, मदर्थमेव चिराङ्गीकृत-ब्रह्मचर्य्यं स्वपितरं प्रशमयितुम्। ततश्च राजमाताऽपि कुशलमावेदनीया, क्षम्यतां क्षम्यताम्, साम्प्रतं नास्ति मेऽवकाशः। कदाचिद् वेत्ति भवती यद् अद्यैवापराह्णे महाराष्ट्रराजस्य प्रताप-दुर्ग-प्रवेशः—इति। नास्त्यद्यास्माकमवसरः क्षणमप्यन्यथाऽतिवाहयितुम्—इत्यनुमन्यसे चेत्साधयामि।

नवनीतवत् = हैयङ्गवीनवत्, कोमलानि=मृदूनि। क्व चैतद् ब्रह्मचर्यमिति विषमालङ्कारः। प्रकृतिकुञ्चिताः=स्वभाववक्राः। जटाजूटताम्=जटात्मना बन्धनम्। इयम्=ईदृशी। विशिष्टेति यावत्। भसितसङ्घर्षम्=भूतिमर्दनम्। मौक्तिकमालागौरवम्=मणिस्रग्गुरुताम्। सग्लानि=सखेदानुभवम्। रुद्राक्षराशीना भार एव कष्टम्। कुसुमशयनसनाथनस्य=पुष्पशय्यास्वीकरणस्य, प्रार्थनायाः, भाजनम्=आधारीभूतम्। स्थण्डिलशय्याम्=अपरिष्कृतभूशयनम्। सनाथय=शोभय। चिराङ्गीकृतब्रह्मचर्यम्=दीर्घकालगृहीतव्रतविशेषम्। आवेदनीया=बोधनीया। अवकाशः=अवसरः। अतिवाहयितुम्=समापयितुम्। साधयामि=गच्छामि। नाटकीयभाषेयमिति साहित्यदर्पणादिषु स्फुटीकृतम्।

सा तु आनन्द-परवशा जडीकृतेव चित्रार्पितेव मन्त्र-कीलितेव मायामोहितेव विक्रीतचित्तेव हारित-हृदयेव मथित-मानसेव च विविध-भाव-भङ्ग-तरङ्गिताभ्यां नयनाभ्यां निपुण-मीक्षमाणा, अविरल-गलन्नयन-जल-धारया भसित-सम्मर्दमिव क्षालयन्ती, मन्दं मन्दं मुहूर्त्तमालप्य तं विससर्ज्ज। स च ततः प्रचलितो वहुभिः साश्चर्य्यं सानन्दं च दरीदृश्यमानो मोमोद्यमानः सच्चरीक्रियामाणश्च यथोचितं तांस्तान्प्रणमन्, आलिङ्गंश्च, मारुति-मन्दिरमासाद्य सरोमाञ्चं सगद्गदं सानन्दञ्च हनूमन्मूर्तिं दर्शं दर्शं स्तावं स्तावं पातं पातं नामं नामञ्च परमं मोद-सन्दोहमवाप। तत्पूजकेन साशीराशि समाश्लिष्टः, प्राप्त-प्रसाद-माल, सम्पादित-सिन्दूर-तिलक-भालः, क्रियासमभिहारेण प्रणम्य, किञ्चित् समालप्य च देवशर्म्मणो मठं च प्रविश्य, 'दासोऽयं रघुवीरसिंह-प्रणमति' इति साष्टाङ्ग प्रणनाम।

आनन्दपरवशा=हर्षाधीना। मन्त्रैः, कीलितेव=यन्त्रितेव। मायामोहितेव=इन्द्रजालमूढेव। हारितहृदयेव=चोरितमानसेव। मथितमानसेव=विलोडितस्वान्तेव। अविरलम्=सततम्, गलन्त्या नयनजलधारया। भसितसम्मर्दम्=भूतिसम्मिश्रणम्। क्षालयन्ती=धावयन्ती। विससर्ज=तत्याज। गन्तुमनुमोदितवतीति यावत्। मोमोद्यमान.=प्रसाद्यमानः। सच्चरीक्रियमाण.=सत्कारगोचरतामानीयमानः। दर्शं दर्शम्=दृष्ट्वा दृष्ट्वा। स्तावं स्तावम्=स्तुत्वा स्तुत्वा। पातं पातम्=पतित्वा पतित्वा। नामं नामम्=नमस्कृत्य नमस्कृत्य। मोद-सन्दोहम्=प्रसन्नतासमूहम्। साशीराशि=सानेकाशीर्वादम्। समाश्लिष्ट.=समालिङ्गितः। प्राप्तप्रसादमाल.=लब्धहनूमदर्पितस्रक्कः। सम्पादितसिन्दूरतिलकभालः=भूषितनागकेशरतिलकमस्तकः। मठम्=छात्रादिनिलयम्। प्रथमान्त एवम्भूतोऽमरः। साष्टाङ्गम्=समस्तशरीर-पातम्। प्रणामस्येमान्यष्टावङ्गानि। "उरसा शिरसा दृष्टया मनसा वचसा तथा। पद्भ्या जानुभ्या प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः॥"

देवशर्म्मा तु चिर-समयानन्तरं तादृशं स्वरं वचनञ्चाऽऽकर्ण्य, पादयोः पतितां तादृशीं मूर्तिञ्चावलोक्य चकितः, क्षणं जड इव स्तब्धः परस्ताच्चोत्थाय, उपनेत्रं श्मश्रुकूर्चं च प्रक्षाल्य, पतन्तीभिर्बाष्प-धाराभिस्तमासिच्य, आनन्दाक्षतैरिव वात्सल्य-रजताङ्कुरैरिव प्रेम-पीयूष-धारोद्गारैरिव निःसरद्भिः कष्टकण्टकैरिव च समुदञ्चितैः श्वेत-रोमभिर्व्याप्तः, कलित-द्विगुण-कम्पाभ्यां कराभ्यां कथमपि तमुत्थाप्य, वलित-वली-पलितेऽस्थि-चर्म्ममात्रे वक्षसि गाढमालिलिङ्ग। सोऽपि च देवशर्म्म-प्रेम-पूर-द्विगुणोद्वेलित-बाष्पो निःशब्दमेव क्षणं रुदित्वा, शनैः शनैर्भग्नेन स्वरेण स्वीयमितिवृत्तं सूचयित्वा, ततस्ततः 'सपदि गन्तव्यमिति, महाराष्ट्र-चक्रवर्त्ती अद्यैवाऽऽयास्यति' इति च निवेद्य, तदनुमतिमासाद्य, नत्वा, निवृत्य, तुरग-निगालमास्फाल्य, सोत्फालमारुह्य, अभीषूनाक्षिप्य रेचितकेनाश्वं चालयन्, पलाशिनां मण्डलेषु निलीनः।

तत्र कुटीरे ब्रह्मचारि-गुरु-रूपो जटिलो वीरेन्द्रसिंहस्तु अद्य

स्तब्धः=निश्चेष्टः। बाष्पधाराभिः=अस्रप्रवाहैः। तम्=रघुवीरम्। श्वेतरोमाण्युत्प्रेक्षते-आनन्दाक्षतैरिव=हर्षतण्डुलकणैरिव। वात्सल्यम्=लघौ प्रेम, एव रजत तदङ्कुरैरिव=तत्प्ररोहैरिव। प्रेमपीयूषधारोद्गमैरिव=अनुरागामृतप्रवाहोद्भूतिभिरिव। निःसरद्भिः=बहिर्भवद्भिः। कष्टानि=दुःखानि, एव कण्टकाः, तैः। समुदञ्चितैः=समुत्थितैः। व्याप्तः=वलयितः। कलितः=धारितः, द्विगुणः, कम्पः=वेपनं याभ्यां ताभ्याम्। वलितवलीपलिते=प्राप्तवार्धक्यश्वेतकेशे। अस्थिचर्ममात्रे=कीकसकृत्तिमात्रावशिष्टे। वक्षसि=उरसि। देवशर्मप्रेमपूरेण, द्विगुणोद्वेलितम्=द्विगुणोच्छलितम्, बाष्पं यस्य सः। भग्नेन=त्रुटितेन। इतिवृत्तम्=पूर्वतनमितिहासम्। अनुमतिम्=आदेशम्। तुरगनिगालम्=अश्वगलोद्देशम्। सोत्फालम्=सकूर्दनम्। अभीषून्=रश्मीन्। अश्वाकर्षणरज्जुमिति यावत्। पलाशिनाम्=द्रुमाणाम्। निलीनः=अदृश्यताङ्गतः।

रजन्यां स्वप्ने 'कस्मिश्चिद् युद्धे रघुवीरसिंहो वीरगतिं गतः'—इत्यपश्यदिति सचीत्कारमुत्थितः पार्श्वस्थैर्दृष्टो रुदन् यथावृत्तमकथयत्। 'य' स्वापेष्वेवं दृश्यते, स दीर्घायुर्भवति पुरुषायुषं जीवति' इति क्रियासमभिहारेण तै. सान्त्व्यमानोऽपि शोकविमोकं नाकार्षीद्।

अथ वीरक्षत्रियोऽपि वृद्धः—इति, चिरानुभूत-सुत-वियोग-दुःख इति च खिद्यतेतमां वीरेन्द्रसिंहः-इति सर्वथा सान्त्वयितव्यः सुखयितव्यश्चायमिति, सर्वे ऊर्ज्जस्वलैरुदारैर्वागासारैस्तच्छोकाग्नि मन्दं चक्रुः।

तावत्प्रविश्यैकेन ब्रह्मचारि-बटुना स्वसमान-वयसमपरमेकं बटुमिङ्गितेनाऽऽहूय बहिर्नीत्वा निर्दिश्य कथितम्—"पश्य पश्य, कृष्ण-कर्णम्, चञ्चचन्द्र-वर्च्चसम्, उन्नत-ग्रीवम्, मेचक-कच-प्रचय-वीजित-निगालम्, धूम्र-लाङ्गूलोद्धूनन-विहित-चामर-चालन-चातुर्यम्, चर्वणावशिष्टैः प्रत्यर्थि-यशोभिरिव फेनैरा-

---

जटिल'=जटावान्, ब्रह्मचारी। वीरगतिम्=सम्मुखमरणम्। यथावृत्तम्=यथाजातम्। स्वापेषु=शयनेषु। पुरुषायुषम्=शतं वर्षाणि, पञ्चविंशत्युत्तराणीति चापरे। शोकस्य विमोकम्=त्यागम्।

चिरानुभूतसुतवियोगदुःखः = दीर्घकालाभ्यस्तपुत्रविरहखेदः। सान्त्वयितव्यः=साम लम्भयितव्यः। ऊर्जस्वलैः=बलशालिभिः। वागासारैः=वाणीधारासम्पातैः, तस्य शोक एवाग्निस्तम्। रूपकम्। मन्दम्=क्षीणम्।

स्वसमानवयसम्=स्वतुल्यावस्थाकम्। इङ्गितेन=चेष्टया। निर्दिश्य=प्रदर्श्य। चञ्चचन्द्रवर्चसम्=चमत्कुर्वच्चन्द्राभिपतितेजस्कम्। उन्नतग्रीवम्=उत्स्कन्धरम्। मेचकेन=कृष्णवर्णेन, कचप्रचयेन=केशव्रातेन, वीजितः, निगालः=गलोद्देशो यस्य तम्। धूम्रलाङ्गूलस्य=कृष्णपुच्छस्य, उद्धूननेन=सञ्चालनेन। विहितम्=प्रकटीकृतम्, चामरचालनचातुर्यं येन तम्। चर्वणावशिष्टैः=निगरणशेषभूतैः। प्रत्यर्थिय-

लिप्त-सृक्किणीकम्, तुरगममुं चालयन्, कोऽसौ धन्यः कुटीरमि-वोद्दिश्योपत्यकां परिक्रम्य इत आयाति ? अनुकरोत्येतस्य आकृती रघुवीरसिंहम्, हयाऽऽरोह-भङ्गी चैषा नान्यस्य सम्बोभवीति"।

अथ सोऽपि गाढं निरीक्ष्य प्रावोचत्—यद्यपि चिरात् प्रनष्टो रघुवीरः कथमकस्मादेवामुना वेषेण समागच्छेदिति संशेते हृदयम्; तथाऽपि चक्षुषी कथं न विश्वसेयम्? ध्रुवं रघुवीर एवासौ। अथान्यमपि दर्शयामि—इत्युक्त्वा, अन्तः प्रविश्य, द्वित्रानिङ्गितैरा-काय्यं दर्शयाम्बभूव।

तावद् विद्युद्वेगेन नेदीयान् संवृत्तोऽयमश्वः, सर्वे च 'निश्चित-मसौ रघुवीरसिंहः'—इति स्पष्टं व्याजह्रुः।

ततः केचित् "सोऽयं सोऽयम्" केचिद्—"दिष्ट्या जीवति"; केचिद्—"अहो! आनन्दः"; केचिद्—"कथं न स्यादीदृशी प्रसूतिः क्षत्रिय-धौरेयाणाम्!" केचिद्—"समाकर्णि मया पूर्वमेव यत्तो-पितप्रभुः समायाति रघुवीरः" इति; केचिद्—"सत्यं खलु भविष्यद्वचनं देवशर्म्मणः" केचिद्—"फलमिदं वीरेन्द्रसिंह-महा-व्रतस्य"; केचिद्—"विजृम्भित एष सौवर्ण्यास्तपसां परिणामः";

शोभिरिव=शत्रुकीर्त्तिभिरिव। फेनैः=डिण्डीरैः। आलिप्तसृक्किणीकम्=व्याप्तोष्ठप्रान्तभागम्। उद्दिश्येव=लक्षीकृत्येव। उपत्यकाम्=पर्वता-सन्नभूमिम्। अनुकरोति=विडम्बयति। हयारोहभङ्गी=अश्वारोहण-शैली। सम्बोभवीति=अतितरा सम्भवति।

प्रनष्ट=अदृष्टिविषयः। संशेते=सन्देहं करोति। चक्षुषी=नेत्रे। अन्यम्=इतरम्। आकार्य्य=आहूय।

विद्युद्वेगेन=चपलजवेन। नेदीयान्=अतिनिकटस्थितः। व्याजह्रुः=कथयाञ्चक्रुः।

प्रसूतिः=सन्ततिः। क्षत्रियधौरेयाणाम्=बाहुजश्रेष्ठानाम्। समा-कर्णि=श्रुतम्। विजृम्भितः=समेधितः। परिणामः=फलम्।

केचिच्च—"उच्यतामुच्यतां वीरो वीरेन्द्रसिंहः"—इति पप्रच्छुः । तावज्झटिति प्रविश्य "जीवति रघुवीरसिंहः, समायातो रघुवीरसिंहः, एष बहिरुपस्थितो रघुवीरसिंहः । दृश्यतां रघुवीरसिंहः, लभ्यतां रघुवीरसिंहः"—इति क्रियासमभिहारेण वदता बटूनां गुल्ममवलोकयन्, परिवृत्त-दृष्टिः, विस्मृतात्मा, व्यामुग्ध इव क्षणं स्तब्ध एव समतिष्ठत वीरेन्द्रसिंहः । अथ ते विश्वस्य धावमानाः शिष्या द्विजस्य बहिराययुः । तावद् रघुवीरसिंहागमन-कोलाहलेन व्याप्तमभूत् कुटीर-द्वारम् ।

रघुवीरोऽपि दूरादेव हस्तमुद्यम्य अङ्गुल्या स्वं दर्शयन् वेगेन निविशमानान् पुनर्बहिरागच्छतः स्वात्मीयान् कथं कथमपि बहिरुपयान्तं वाष्प-धाराऽऽसारैः स्नातं पितरमग्रे पश्यन्; अश्रु-कथाऽऽकुलित-लोचनः क्षणेन तुरङ्गमं कुटीरद्वारमानयत् । कदाऽसावत्र समायातः ? कदाऽश्वपृष्ठादुत्प्लुतः ? कदा वा तातस्य चरणयोः साष्टाङ्गं पतितः ?—इति न लक्षितं केनापि । तयोर्मिलनावलोकन-चकित इव महापरिणाहो गतसन्नाहो विगलत्स्वेदप्रवाहो वाहोऽपि दीर्घं निश्वसन् स्वतन्त्रोऽपि परतन्त्र इवैकतस्तस्थौ । वीरसिंहस्तु स्वरोदनेन तमपि स्फुटं रोदयन्, उत्थाप्य

झटिति=त्वरितम् । परिवृत्तदृष्टिः=अन्यतः प्रहितचक्षुः । व्यामुग्ध इव=व्यामूढ इव । विश्वस्य=विश्वासमाधाय ।

उद्यम्य=उत्थाप्य । निविशमानान्=प्रविशतः । स्वात्मीयान्=स्वसम्बन्धिनः । उपयान्तम्=समागच्छन्तम् । वाष्पधारासारैः=अस्रवेगवर्षैः । स्नातम्=निर्णिक्तम् । तुरङ्गमम्=हयम् । उत्प्लुतः=उत्कूर्दितः । पतितः=प्रणतः । न लक्षितः=नावलोकितः । महापरिणाहः=अतिविशालः, अत्र बहुव्रीहिः । गतसन्नाहः=त्यक्तोद्यमः । विगलत्स्वेदप्रवाहः=निष्क्रामद्धर्मबिन्दुपूरः । वाहः=अश्वः । स्वतन्त्रोऽपि=अयन्त्रितोऽपि । परतन्त्र इव=अस्वाधीन इव । तमपि=रघुवीरमपि ।

गाढमालिलिङ्ग । योऽयमस्मिन् समये परितः समभूत् प्रेम-पूर-प्रवाहः; स कथमिव वर्णयितुं शक्यः स्यादस्मादृक्षैः ? यतो यैरनुभूतस्तैरप्यात्मा विस्मृत इति तैरप्यशक्य एव व्याख्यातुम् ।

अथ मुहूर्त्तानन्तरं सर्वेऽपि कुटीरान्तः प्रविष्टाः, कटेषु चोपविष्टाः । वटुनैकेन निरभीपूकृत्य घोटको द्रुमशाखायां बद्धः, अपरेण च सरोवरस्यापरतटे निकुञ्जे स्थितो गणेशशास्त्री सूचितः । सोऽपि च हर्ष-वर्ष-परवशः, क्वचित् कुशान् क्वचित्पात्रं क्वचिदुत्तरीयं क्वचिच्च मालां पातयन्, स्वयमपि निपतन्निव धावमानः कुटीरं प्रविष्टः ।

रघुवीरस्तु दृष्ट्वैवैनमुत्थाय साष्टाङ्गं चरणयोः पतितः । सोऽपि च बाष्प-पूर-स्नावित-नयनः, वैक्लव्य-द्विगुणीकृत-सहज-कम्पः कथं कथमप्युत्थाप्य वीर-बालकमेनं पौनःपुन्येन दक्षतो वामतश्च गाढमालिलिङ्ग । मुहूर्तं यावत् पारस्परिक-प्रेम-पूर-प्रवाहाऽऽवर्त्त-गर्त्त-परिपतन-भीतेव न कुतोऽपि प्रचचार वाणी ।

स्फुटम्=प्रत्यक्षम् । प्रेमपूरप्रवाहः=अनुरागवारिनिर्झरणम् । अनुभूतः=अनुभवगोचरीकृतः । आत्मा=स्वम् । विस्मृतः=अनवधारितः । अशक्यः=अनर्हः । व्याख्यातुम्=कथयितुम् ।

कटेषु=कुशासनेषु "चटाई" इति भाषा । निरभीपूकृत्य=निष्प्रग्रहीकृत्य । द्रुमशाखायाम्=वृक्षावयवे । निकुञ्जे=वाटिकायाम् । हर्षवर्षपरवशः=आनन्दवृष्टयधीनः । निपतन्निव=स्खलन्निव । धावमानः=त्वरया चलन् ।

एनम्=गणेशशास्त्रिणम् । अन्वादेशत्वादेनादेशः । बाष्पपूरेण स्नाविते=स्नापिते, नयने यस्य सः । वैक्लव्येन=विकलतया, द्विगुणीकृतः, सहजः=स्वाभाविकः, कम्पो यस्य सः । पारस्परिकप्रेमपूरप्रवाहस्य=अन्योन्यानुरागोच्छलज्जलधारायाः, आवर्त्ताः=अम्भसा भ्रमा एव, गर्त्ताः=गम्भीरस्थानानि, तेषु, परिपतनभीतेव=मज्जनत्रस्तेव प्रचचार=निस्चक्राम । वाणी=भारती । कियत्कालं मौनिनावेव स्थिताविति यावत् ।

स्थाप्य, तदुक्त-प्रकारेण सामग्री-साधनमारब्धम् ।

तावद्वायुवेगेन समुपातिष्ठत तत्र कश्चन अश्वारोहः । तं च खेद-स्वेद-दुर्दिन-स्नातं त्वरित-श्वास-प्रश्वासं तादृशेनैव सैन्धवेन प्रापितमालोक्य यावत्किमिति-किमित्यापृष्टमखिलैस्तावत् स समुवाच-'श्रुतं वीर-रघुवीरसिंहः समायातः'-इति ।

तदाकर्ण्य सपदि रघुवीरसिंहेनोक्तम्—आम् , एषोऽस्मि, कः कुशल-वृत्तान्तः ?

स उवाच—भगवती महाराष्ट्र-राजमाता भवन्तमत्राऽऽगतं श्रुतवतीति गलज्जलाभ्यां नयनाभ्यां भवतः पन्थानमीक्षते ।

श्रुत्वैवैतत्प्रणम्य पितरं पुरोहितञ्च रघुवीरः समुत्थाय निजमश्वमारूढः ।

स च सादी स्वेङ्गितमनुसृत्य, केनापि बटुना समानीतमपरमश्वमारुह्य, एनमार्द्रपृष्ठीकरणाय तेषां समर्प्य, रघुवीरमनुचचाल । पश्यत्स्वेव च सर्वेषु, तौ खुराग्रेण शारद-घन-पटलमिव रेणुकाराशिमुद्गिरन्तौ, प्रलम्ब-पुच्छौ, आयत-ग्रीवौ, समीरण-संसरण-संस्तब्ध-कण्ठकेशौ, सप्तसप्ति-सप्तिदर्पं दूरीकर्त्तुमिव विद्रुतौ, अङ्गार-

---

समादिष्टः । सामग्रीसाधनम्=वस्तुव्रजसम्पादनम् ।

तादृशेनैव = स्वेदस्नातेन त्वरितश्वासेन च । प्रापितम्=लम्भितम् । अखिलैः = सकलैः ।

गलज्जलाभ्याम् = निपतद्वारिभ्याम् ।

स्वेङ्गितम् = स्वचेष्टितम् । अनुसृत्य=विज्ञाय स्वीकृत्य च । एनम्= आगमनं येन कृतं तमश्वम् । आर्द्रपृष्ठीकरणाय=क्लिन्नपृष्ठतासम्पादनाय । अनुचचाल=अनुससार । शारदघनपटलमिव=शरन्मेघसमूहमिव । रेणुकाराशिम्=धूलिनिकरम् । उद्गिरन्तौ = उद्वमन्तौ । समीरवत् = वायुवत् , संसरणेन=तीव्रगमनेन, संस्तब्धाः, कण्ठकेशाः, ययोस्तौ । सप्तसप्तिः = सूर्यः, तस्य सप्तीनाम्=अश्वानाम् , दर्पम् = अभिमानम् ।

परिपूर्णामिव भुवमुत्फालमुत्फालं पलमेकं स्पृशन्तौ, वाजिनौ चालयन्तौ सर्जोऽर्जुन-भूर्ज-खर्जूर-वने निलिल्याते।

गणेशशास्त्री तु सहर्षवर्षं वीरमाशीराशिभिरभिनद्य, विधिपूर्वं व्रतोत्सर्गं कर्म निर्वर्त्य, चिर-प्रवृद्धान् रूक्षान् केशान् वापयित्वा, उद्वर्त्य, अभ्यञ्ज्य, स्नापयित्वा, नवाम्बराणि परिधाप्य, देवान् ब्राह्मणान् प्रणमय्य महोत्सवमकारयत्।

तावदवितर्कितसमागमः समुपातिष्ठतैको जयपुरनगरात् सादी। स च जयपुराधीश्वर-श्रीजयसिंह-महाराजार्पितं पत्रमेकं वीरेन्द्रसिंहायार्पयत्। स च सुवर्ण-वर्णाङ्कितं विविध-वर्ण-वर्णनीय-कुसुम-माला-चित्र-विचित्रं प्रावरणमपसार्य्य, तादृक्षैरेव जाम्बूनदाक्षरैर्व्याप्तं पत्रं निस्सार्य्य पठनाय गणेश-हस्ते आर्पयत्। स तु निपुणमवलोक्यैवमपठत्—

"स्वस्ति श्रीदिगन्त-दन्त-दन्तुरित-कीर्त्ति-कौमुदी-धवलित-

विद्रुतौ = पलायितौ। अङ्गारेण=वह्निखण्डेन, परिपूर्णामिव=परितो व्याप्तामिव। उत्फालमुत्फालम् = कूर्दित्वा कूर्दित्वा। पलम्=दण्डषष्टिभागम्। 'कालाध्वनो' रितिद्वितीया; निलिल्याते=लीनौ बभूवतुः।

व्रतोत्सर्गम्=व्रतसमाप्तौ क्रियमाणं कर्म। निर्वर्त्य=कारयित्वा। रूक्षान्=अचिक्कणान्, तैलाद्यसंसर्गित्वात्। वापयित्वा=कर्तयित्वा। उद्वर्त्य=उद्वर्त्तनमनुलिप्य। अभ्यञ्ज्य=तैलं समर्द्य। नवाम्बराणि=नूतनवासांसि।

अवितर्कितसमागमः=अचिन्तितागमनः। समुपातिष्ठत=समुपाविशत्। सुवर्णवर्णाङ्कितम्=हैरण्यवर्णभूषितम्। विविधवर्णवर्णनीयेन=अनेकरङ्गरञ्जितेन, कुसुममालाचित्रेण, विचित्रितम्=आलिखितम्। प्रावरणम्=पत्राच्छादनकम्। "लिफाफा" इति हिन्दी। जाम्बूनदाक्षरैः=सुवर्णवर्णैः। व्याप्तम् = युक्तम्। आर्पयत्=अददात्।

स्वस्ति=कल्याणम्। स्वस्तिश्रीत्यारभ्य पत्रलेखनशैली प्राक्तनी। दिगन्तानाम्=हरिदन्तरालानाम्, दन्तैः=दशनैः, तदुपलक्षितैर्मुखैरिति

वसुधातल-राजपुत्रदेश-चूडामणीभूत-जयपुरप्रदेश-सामन्त-मण्डली-मस्तक-मण्डन-मण्डित-पादारविन्दो जयपुराधीशः साशीराशि सूचयति श्रीवीरेन्द्रसिंहं यद्—

भवाननुक्त्वैवास्मात् कुतोऽपि प्रस्थितः, अन्वेषणैरपि च न लब्धः—इति चिरमन्वभूम चिन्ता-कलापम् । इतस्तु भवतः कुशल-मवगत्य प्रसीदामः । मन्महे कुशली कुमाररामसिंहोऽप्युपलब्धः । इतस्त्वखिलाऽपि भवतः सम्पत् सुरक्षिताऽस्ति, नियत-व्यय-माहात्म्यात् कोपोऽपि सुप्रवृद्धोऽस्ति । शीर्णानि जीर्णान्यपि च भवतो निवास-भवनानि नूतनीकृतानि सन्ति । तत् समागम्यताम् । चिर-प्रवृद्ध-तृष्णा सुखाक्रियतां स्वप्रजा । सपद्यस्माभिरश्वमेधयज्ञ-महोत्सवः करिष्यते ।

सर्वेऽप्यस्मद्बन्धुजनाः समयेऽस्मिन् समुपस्थास्यन्ते । आशास्महे सकुमारो भवानप्यागत्य सर्वान् बन्धूनानन्दयिष्यति, स्वयञ्च महोत्सव-साक्षात्कारेणातुलं मोदमासादयिष्यति ।

यावत्, दन्तुरितया=गर्भीकृतया, व्याप्तयेत्यर्थः, कीर्तिकौमुद्या=यशश्चन्द्रिकया, धवलितम्=श्वेतितम्, वसुधातलं यस्य, तादृशो यो राजपुत्रदेशः=राजपुत्रायतप्रदेशः, तच्चूडामणीभूतः=तच्छेखररत्नीभूतः, यो जयपुरप्रदेशः, तस्य सामन्तमण्डलीनाम्=माण्डलिकौघानाम्, मस्तकमण्डनैः=शिरोभूषणैः, मण्डितम्=भूषितम्, पादारविन्द यस्यैवम्भूतः, साशीराशि=अनेकाशीर्वादपुरस्सरम् । सूचयति=बोधयति ।

अनुक्त्वैव=अकथयित्वैव । चिन्ताकलापम्=चिन्तनव्रातम् । अवगत्य=विज्ञाय । उपलब्धः=मिलितः । नियतस्य=निश्चितस्य व्ययस्य । माहात्म्यात्=कौशलात् । कोपः=निधिः । शीर्णानि=विश्रृखलितावयवानि । जीर्णानि=पुरातनानि, चिरप्रवृद्धतृष्णा=चिराय समेधितस्पृहा । "तृष्णे स्पृहा पिपासे द्वे" इत्यमरः । सुखाक्रियताम्=सानन्दा विधीयताम् । "सुखप्रियादानुलोम्ये" इति डाच् ।

कुमार-रामसिंहस्य सुक्षत्रियोचितं पराक्रमं सौशील्यञ्चाव-लोक्य तुष्यामस्तमाम् । एतस्मै सुबहुल-भूभाग-वितरण-पुरस्सरं मण्डलेश्वरता-पर्य्यवसायि राजपदमर्प्पयामः, तत्सूचकमिदं सवि-वरणमपरमाज्ञापत्रमेतेन सहचरितमस्ति । एतदपि स्वीकृत्य सकु-मारस्याऽऽगमनेन भूषणीयोऽयं देशः"—इति ।

तदाकर्ण्य सर्वेऽप्यत्यन्तं जहृषुः । तदपरमपि राजमुद्राङ्कितं प्रसार्य्य 'एवमेवम्' इति श्रावितम् । तदाकलय्य चाखिलाः—"अहो! औदार्य्यं महाराजजयसिंहस्य । अहो! वैचित्री दैवघटनायाः!! युक्तमिदं यथोचितमिदं रामसिंहाचारस्य !! प्रत्यक्षाण्येतानि फलानि वीरेन्द्रसिंहस्य नैष्ठिक-तपसाम् !!"—इति सामोदं व्याजह्रुः ।

गणेशशास्त्री तु—"अश्वमुन्मोचय, अत्रैव निवस दिनमेकम्, श्वः प्राप्तपत्रोत्तरः स्वदेशं प्रस्थास्यसे"—इति सादिनमुदीर्य्य प्रस्तु-ताभिर्व्यञ्जन-सामग्रीभिर्ब्राह्मणान् भोजयितुमुदस्थात् ।

अथापराह्णे प्रताप-दुर्गाद् गव्यूति-द्वयं यावत् सुगन्धित-सलिलै-रासिक्तो मार्गः । अभितः पन्थानं रम्भा-स्तम्भाः सम्भाविताः । कुङ्कुम-चर्चिता अम्भःपूर्णाः कुम्भाः स्थापिताः । अशोक-किसलय-माला आलम्बिताः । काश्मीर-राग-रञ्जिता ध्वजा आरोपिताः ।

पराक्रमम् = बलम् । सौशील्यम् = स्वभावम् । तुष्यामस्तमाम् = अतितरां प्रसीदामः । मण्डलेश्वरतायाम् = माण्डलिकतायाम् । पर्य-वसायि = परिणतम् । राजपदम् = राजा इति उपाधिम् । सविवर-णम् = सविशकलनम् । एतत् = आज्ञापत्रम् । भूषणीयः = मण्डयितव्यः ।

औदार्यम् = विशालहृदयता । वैचित्री = विचित्रता ।

उभयतः पन्थानम् = मार्गस्य समन्तात् । "अभितः परितः" इत्यादिना द्वितीया । संभाविताः = स्थापिताः । कुङ्कुमचर्चिताः = नागकेशरसम्मर्दिताः । काश्मीररागेण = केसररङ्गेण, रञ्जिताः ।

इतः पश्चाच्च सन्तस्थे शोणित-शीर्षण्य-शीर्षाणां सधनुर्बाणानां कलित-वारवाणानां कावचिकानां पङ्क्तिः ।

ततः पश्चाच्चापरोऽवतस्थे व्यूढ-कङ्कटानामास्फोटित-घोटक-सटानां मौर्वी-घात-सङ्घट्ट-किण-विकट-मणिबन्ध-संसर्पि-हाटक-कटकानां घोर-घन-विपाटकानां प्रत्यर्थिकूर्चोत्पाटकानां सादिभटानां श्रेणी । प्रतिघोटक-विंशतिकान्तराले च विविध-मण्डन-मण्डित-शुण्डादण्डाः मौक्तिक-स्तवक-चोचुम्ब्यमान-दान-वारिधाराऽऽसार-क्षालित-कपोलाः वमथु-परिषिक्त-पार्श्व-परिवर्ति-तुरङ्गाऽऽरोहाङ्गनिचोलाः नीलाद्रि-सानु-मञ्जुलाः कुञ्जरा उपस्थापिताः; यान् कुसुम-निचयाऽऽकीर्ण-पात्र-हस्ता बहवो ब्राह्मणवटवः समारूढाः ।

शोणितशीर्षण्यशीर्षाणाम् = रक्तवर्णशिरस्त्रमस्तकानाम् । कलितवारबाणानाम्=धारितकञ्चुकानाम् । कावचिकानाम्=वर्मधारिसैनिकानाम् । पङ्क्तिः=श्रेणी ।

व्यूढकङ्कटानाम्=धारितकवचानाम् । "उरश्छदः कङ्कटकोऽजगरः कवचोऽस्त्रियामि" त्यमरः । आस्फोटित-घोटक-सटानाम् = उत्साहवर्द्धनाय विधोथित-हयकेसराणाम् । मौर्व्याः = ज्यायाः, घातसङ्घट्टेन = ताडनव्रातेन, यः किणः=व्रणः, तेन विकटे=निम्नोन्नते, मणिबन्धे=करमे, संसर्पीणि, हाटककटकानि = सुवर्णवलयानि येषा तेषाम् । घोरघनविपाटकानाम्=सान्द्रमेघभेदकानाम् । विविधमण्डनैः मण्डिताः, शुण्डादण्डा येषा ते । मौक्तिकस्तबकैः=मणिगुच्छैः, चोचुम्ब्यमानायाः=स्पृश्यमानायाः दानवारिधारायाः=मदजलप्रवाहस्य, आसारैः, क्षालिताः कपोला येषा ते । वमथुपरिषिक्ताः=करशीकरसिक्ताः; "वमथुः करशीकर" इत्यमरः । पार्श्वपरिवर्त्तिनाम् = समीपस्थानाम्, तुरङ्गारोहाणाम्= सादिनाम्, अङ्गनिचोलाः=शरीरकञ्चुकानि यैस्ते । नीलाद्रिसानुमञ्जुलाः=नीलगिरि-शृङ्ग-सुन्दराः । कुञ्जराः=करिणः । कुसुमनिचयैः, आकीर्णानि=व्याप्तानि, पात्राणि, हस्ते येषा तादृशाः । ब्राह्मणबटवः=

रविगल-द्वयान्तरं च दौन्दुभिक-वैणविक-वैणिक-माद्दङ्गिक-मौरजिक-पाणिघैरारूढा भेरी-भाराक्रान्ता अपरे द्विरदा विन्यस्ताः।

अथ वारुणी-संसर्गाधिक-शोणे लज्जयेव पाश्चात्त्य-पर्वतपङ्क्ति-जवनिकाऽन्तर्निलीने चण्डमरीचिमण्डले, चिर-कर-स्पर्शोदीर्ण-स्वेद-स्नात-वदनेषु पटान्त-सङ्घर्षाधिक-ताम्र-कान्तिषु वीरेषु, पर-श्शत-वादित्र-वादनोद्भुत-महाध्वनि-बधिरीकृतेषु दिगन्तरालेषु,सकलै-रुद्ग्रीवैर्विस्मृतात्मभिर्निर्निमेष-नयनैर्निपीयमानः सहस्रं गुण-यन् महाराष्ट्र-वीराणामुत्साहम्, पुनरुज्जीवयन् चिर-विरह-वि-धुरामात्ममात्र-शरण-जन-गात्र-यष्टिम्, दुर्दिन-संशोषित-भारत-

विप्रब्रह्मचारिणः। दौन्दुभिकाः=दुन्दुभिवादनशीलाः, वैणविकाः=वेणुवादनशीलाः, वैणिकाः=वीणावादनशीलाः, माद्दङ्गिकाः=मृदङ्ग-वादनशीलाः, मौरजिकाः=मुरजवादनशीलाः, पाणिं घ्नन्तीति पाणिघाः=पाणिताडकाः, परस्परद्वन्द्वः, तैः। भेरीभारेण=दुन्दुभिभरेण, आक्रा-न्ताः=नम्रतामिव गताः। द्विरदाः=हस्तिनः।

वारुणीसंसर्गेण=पश्चिमासम्पर्केण, अधिकशोणे=अतिरक्ते। लज्जयेव=त्रपयेवेत्युत्प्रेक्षा। वारुणी-(सुरा) संसर्गजा त्रपा। पाश्चात्यप-र्वतपङ्क्तिरेव=पश्चिमस्थितगिरिश्रेण्येव, जवनिका=प्रतिसीरा, तस्याः, अन्तः=अन्तराले। निलीने=अन्तर्हिते। चण्डमरीचिमण्डले=भास्करबिम्बे। चिरकरस्पर्शेन=दीर्घकालकिरणसंसर्गेण, उदीर्णैः=उद्गतैः, स्वेदैः=घर्मजलकणैः, स्नातवदनेषु=क्षालिताननेषु। पटान्तसङ्घर्षेण=वसनकोणसम्बन्धेन, अधिकताम्रकान्तिषु=अतितरा शोणच्छविषु। वीरेषु=भटेषु। परश्शतानाम्=असङ्ख्यातानाम्, वादित्रा-णाम्=वाद्यानाम्, वादनात्, उद्भूतैः=सञ्जातैः, महाध्वनि-भिः, बधिरीकृतेषु। दिगन्तरालेषु=हरिदभ्यन्तरेषु। उद्ग्रीवैः=उत्कन्धरैः। निपीयमानः=चक्षुर्गोचरीक्रियमाणः। पुनरुज्जीवयन्=मुहुरुत्थापयन्। आत्ममात्रशरणानाम्=स्वैकाश्रितानाम्, जनानाम्, गात्रयष्टिम्=यष्टिसदृशं कृशं शरीरम्। दुर्दिनेन=दुष्टसमयेन, संशोषितस्य,

सौभाग्यस्य पुनरभिवर्षणेन हर्षमयमपरं दुर्दिनं विरचयन्, दिशोऽपि हासयन्, पृथिवीमपि पुलकयन्, आकाशमपि विकाशयन्, जगत्प्राणमपि प्राणयन्, द्रुम-सन्दोहमप्यानन्दयन्, ब्रह्मानन्द-सोदर्यस्येव, सुषुप्ति-स्वादन-स्पर्द्धिन इव, साहित्य-रस-रसन-समुत्थितस्येव, कस्यचिल्लोकोत्तरमहानन्दस्य निरुपम-परम-परम-प्रवाह-पूर-परम्पराभिः प्रजाः प्लावयन्, आशीर्भिरभिनन्द्यमानः, कुसुमैराकीर्य्यमाणः; जयध्वनिभिरुन्मुखीक्रियमाणः, स्तूयमानः, गीयमानः, वर्ण्यमानश्च सत्पथेऽस्मिन् न्यविशत महाराष्ट्र-चक्रवर्ती।

अग्रतोऽस्याश्च नर्त्तयन्तः प्रचलिताः शतशोऽश्वारोहा वीराः। विकोश-कृपाण-पाणयः सहस्रशः पादातिकाः। ततोऽपि भुशुण्डी-कराणां वीर-वराणां पङ्क्ति-परम्परा, ततोऽपि बाहुमूलाऽऽ-

---

भारतसौभाग्यस्य=हैन्दवैश्वर्यस्य। पुनः=मुहुः। अभिवर्षणेन=वृष्ट्या। दुर्दिनम् = मेघच्छन्नदिनम्। लक्षणया सततहर्षपूर्णम्। विरचयन् = सम्पादयन्। हासयन् = निर्मलीकुर्वन्। पुलकयन्= रोमाञ्चयन्। विकाशयन् = दापयन्। जगत्प्राणम् = समीरणम्। प्राणयन् = समीरयन्। द्रुमसन्दोहम् = वृक्षव्रजम्। आनन्दयन्= हर्षयन्। ब्रह्मानन्दस्य, सोदर्यस्येव = समस्येव, अभिन्नस्येवेति यावत्। एवमादिपूत्प्रेक्षा। सुषुप्तेः=तृतीयावस्यायाः, प्रपञ्चावबोधशून्यतात्मिकायाः, स्वादनेन=रसनेन, स्पर्धिन इव=प्रतिद्वन्द्विन इव। साहित्यरसस्य, रसनेन = आस्वादनेन, समुत्थितस्येव = समुद्भूतस्येव। लोकोत्तरस्य=लौकिकानन्दव्यतिरेकिणः, महानन्दस्य=निरुपमहर्षस्य। निरुपमः=उपमारहितः, परा, मा=शोभा यस्मिन्नेवम्भूतः परमप्रवाहपूरः = अत्युत्कृष्टधारापूरः, तत्परम्पराभिः=तच्छ्रेणीभिः। प्लावयन्=मज्जयन्। स्तूयमानः = स्तुतिगोचरीक्रियमाणः। न्यविशत = प्रविष्टः। "नेर्विशः" इत्यात्मनेपदम्।

अग्रतः = पुरतः। विकोशकृपाणपाणयः = नग्नासिहस्ताः। पादातिकाः = पदातयः। भुशुण्डीकराणाम् = "बन्दूक" हस्तानाम्। बाहु-

रोपित-मल्लिका-मतल्लिकानां मल्लतल्लजानामवलिपटलम्। ततः पश्चाच्च भूषण-सुरेश्वर-माल्यश्रीक-स्तन्यजीव-आन्यजीव-गौर-सिंह-श्यामसिंह-रघुवीरसिंहादिभिः परिवृतः, भारत-भूमण्डल-भागधेयम्, दाक्षिणात्य-वसुमती-वासवः, वनीपकीकृतावनी-यवनी-समुदायः, धर्म-धुरीणः, योध-बोध-पारीणः, महाराष्ट्र-मेदिनी-परिवृढो महाराज-शिवराजः।

दृष्ट्वैवैनं तारस्वरेण 'विजयतां महाराजः' इत्याम्रेडयन्तो गगनं विलोडयामासुरखिलाः। अभितः पन्थानं गजानारूढा विप्र-वटवश्च मकरन्द-विन्दु-सन्दोह-तुन्दिलानि महासौरभ-समाकृष्ट-परस्कोटि-रोलम्ब-कदम्बानि मोदित-सकल-जन-मनांसि सुमानि संववर्षुः। वाद्य-नाद-प्रतिध्वनि-व्याजेन विबुधा अपि वसुधाधिप-मेनं दिव्य-वाद्य-वादनैरिवाभिननन्दुः। महासन्नाह-विविध-वाह-

---

मूले, आरोपिताः, मल्लिकामतल्लिकाः=प्रशस्ताः कुन्ताः, यैस्तेषाम्। मल्लतल्लजानाम्=प्रशस्तभटानाम्। "प्रशंसावचनैश्च" इति मतल्लिका-तल्लजशब्दयोः परनिपातः। अवलिपटलम्=पङ्क्तिसमूहः। परिवृत.= परिलसितः। दाक्षिणात्यवसुमत्याः, वासवः=इन्द्रः। वनीपकीकृत.= याचकीकृतः, "वनीपको याचनको मार्गणः" इत्यमरः, अवन्याः=पृथिव्याः, यवनीसमुदायः, येन सः। तत्पतीना विध्वंसितत्वाद्याचनातिरिक्ता तासां जीविकैव नास्तीति भावः। धर्मधुरीणः=सनातनधर्मभारधारी। बोधे= परिज्ञाने। पारीणः=पारगः।

मकरन्दविन्दूनाम्=पुष्परसपृषताम्, सन्दोहेन, तुन्दिलानि= भरितानि। महासौरभेण=अतिसौगन्ध्येन, समाकृष्टानि, परस्कोटीनि, रोलम्बकदम्बानि=द्विरेफव्राताः, यैस्तानि। परस्कोटि-इत्यत्र पारस्क-रादित्वात् प्राप्तसुटः पदान्तत्वाभावात् विसर्गमध्यपाठः क्वापि विदुषा चिन्त्यः। मोदितसकलजनमनांसि=प्रसन्नीकृतनिखिलमानवस्वान्तानि। बहुव्रीहिः। सुमानि=प्रसूनानि। वाद्यनादानाम्, प्रतिध्वनेः=प्रतिनादस्य, व्याजेन=छद्मना। विबुधाः=देवाः। दिव्यवाद्यवादनैरिव=स्वर्गीय-मृदङ्गादिनादनैरिव उत्प्रेक्षा। महासन्नाहानाम्, विविधानाम्, वाहा-

प्रवाहैः सञ्चङ्क्रम्यमाणा मोदेनेव चकम्पे वसुन्धरा । कुसुम-मरन्द-बिन्दुभिः स्नातः पुलकमिव समाससाद समीरणः । जयध्वनि-सन्तान-वितानैरोत-प्रोतः स्वयं जयशब्द-कोटिभिरिवाऽऽजुहाव सविकास आकाशः ।

एवं क्रमेण सर्वानानन्दयन्, कुसुम-निचय-भराक्रान्तमात्मानं मुहुर्मुहुरङ्ग-स्फुरणैः सुमनःपातनैर्लघूकुर्वन्,अखर्वगन्धर्वखुराघातैर्धूली-भूयोद्गतया भुवाऽप्यालिङ्ग्यमानः, स्वदृग्द्वयोद्गतया आनन्द-सन्दोह-बाष्प-धारया अभिषिच्यमानः, सादी प्रतापदुर्गमाससाद देवः ।

तत्र च परितः सर्वान् गण्ड-शैलान् तरु-स्कन्धान् उन्नतभू-भागान् दुर्ग-प्रान्त-परिवर्त्त्युपत्यका दुर्गभित्तीश्च स्वावलोकनामोद-परवज्जन-समाकीर्णानेव समद्राक्षीत् ।

अथ तास्तान् स्वदृक्पातेनैव सम्मान्य, सपल्लव-कलश-हस्तान्

नाम्=घोटकानाम्, प्रवाहैः=यूथैः । सञ्चङ्क्रम्यमाणा=अतितरा गम्यमाना । मोदेनेव=हर्षेणेव । कुसुममरन्दबिन्दुभिः=पुष्परस-पृषद्भिः । स्नातः=मिश्रः । पुलकम्=रोमाञ्चम् । ओतप्रोतः=विद्धा-नुविद्धः । आजुहाव=आकारयामास । सविकासः=विशालः । आकाशः=नभः । "पुंस्याकाशविहायसी" इत्यमरः ।

कुसुमनिचयभराक्रान्तम्=पुष्पसमूहभाराच्छन्नम् । अङ्गस्फुरणैः=शरीरचालनैः । सुमनसां=कुसुमानां स्वसमर्पितानाम्, पातनैः=निरसनैः लघूकुर्वन्=निर्भारीकुर्वन् । अखर्वाणाम्=अत्युन्नतानाम्, गन्धर्वाणाम्=हयानाम्, खुराघातैः=शफसम्मर्दैः, धूलीभूय=पांसूभूय । उद्गतया=उत्थितया । भुवाऽपि=पृथिव्याऽपि । आलिङ्ग्यमानः=आश्लिष्य-माणः । अभिषिच्यमानः=स्नाप्यमानः सन् । सादी=अश्वारोहः, आससाद=प्राप ।

गण्डशैलान्=लघुशैलावयवान् । स्वावलोकनामोदेन=स्वदर्शन-प्रसन्नतया, परवन्तः=पराधीनाः, ये जनाः, तैः । समाकीर्णान्=व्याप्तान् ।

सम्मान्य=सत्कृत्य । सपल्लवाः=सकिसलयाः, कलशाः=जलभरिता

आशी-राशीन् गिरतो विप्रवरान् प्रणमन्नश्वादुदतीतरन्महाराजः । तत्रोपस्थितेष्वात्मीयेषु कांश्चिदालिङ्गय, कांश्चित् प्रणम्य, कांश्चिद् यथायोग्यमाशिष उक्त्वा, कांश्चिच्च कराग्रेण कराग्र एव गृहीत्वा, अपरान् कुशल-प्रश्नैः सोत्साहनिरीक्षणैः स्नेह-वचनैश्च सन्तर्प्य, जननी-स्मरणोद्भूतोद्भूत-वाष्प-धारा-व्याकुल-लोचन-द्वयः पदे पदे प्रस्खलतेव प्रेमपरवता वपुषा सपदि दुर्गान्तः प्रविवेश ।

× × ×

अन्येद्युः प्रातरेव कृत-सन्ध्यावन्दनादि-नित्यक्रियः, महाराजाऽऽगमन-महोत्सव-पराधीनानेक-सहस्र-सोपायन-प्रजा-परिवृत-प्रघाणस्य महाप्रासादस्य चन्द्रशालायामुपविष्टः, गौरसिंहश्चाऽऽहूय, सुरेश्वर-माल्यश्रीकादिभिः परिवृतः, स्वेङ्गितानुसारं स्तन्यजीवेनाऽऽनीतं पटखण्ड-परिवेष्टितं किञ्चन पत्रपटलं स्वनिकटे संस्थाप्यैवमालपत् ।

धराः, हस्ते येषा तान् । गिरतः=कथयतः । प्रणमन्=नमस्कुर्वन् । उदतीतरत्=निम्नदेशे समागतः । वस्तुतस्त्ववातीतरदिति शोभनतरमीदृगर्थविवक्षायाम् । यथायोग्यम्=यथानुरूपम् । कराग्रेण कराग्रे गृहीत्वेति साम्प्रतिकपाश्चात्यदेशीयनमनप्रकारः । जननीस्मरणात्=मात्राध्यानात्, उद्भूतोद्भूता=उन्नतीभूता, विपुलीभूतेति यावद्, या वाष्पधारा= अश्रुप्रवाहः, तया व्याकुलं लोचनद्वयं यस्य सः । प्रस्खलतेव=निपततेव, प्रेमपरवता=अनुरागाधीनेन ।

× × ×

अन्येद्युः परस्मिन्=दिवसे । महाराजागमनमहोत्सवपराधीनाभिः=महाराजप्राप्तिप्रचुरहर्षवशाभिः, अनेकसहस्राभिः=असङ्ख्याताभिः, सोपायनाभिः=देयवस्तुहस्ताभिः, परिवृतः=समाच्छन्नः, प्रघाणः=अलिन्दः, यस्य तादृशस्य । चन्द्रशालायाम्=शिरोगृहे । उपविष्टः=आसीनः । स्वेङ्गितानुसारम्=स्वचेष्टितानुकूलम् । पत्रपटलम्=पत्रसमूहम् ।

शिवराजः—प्रिय ! गौरसिंह ! चिरान्मां तोपयसि, प्राणानगणयन् मा प्राणयसि, सांसारिक-सुखानि असंस्मरन् सङ्गरकष्टानि सहसे इति असाधारणबन्धुं त्वां महाराष्ट्र-मण्डले मण्डलेश्वर-पद-दानेन सत्कर्त्तुं मे महानुत्साहः। तद् गृहाणेदमधिकार-पत्रम्, भुङ्क्ष्व भागमेकं महाराष्ट्र-भुवः।

गौरसिंहः—[तत्पत्रं स्पृष्ट्वा, प्रणम्य] महाराज ! श्रीमान् यवनोद्दण्ड-शुण्डादण्ड-गण्डि-मण्डलं प्रविश्यापि केसरीव कुशलेन निर्गत्य महाराष्ट्र-राजसिंहासनमाक्रम्य भारताभिजन-प्रजाः प्रजा इव पातुमारब्धवानिति किमितोऽप्यधिकं विश्वस्मिन्नपि विश्वस्मिन् अस्मानानन्दयितुमुपलभ्येत। क्षम्यताम् ! अनुचरतां विहाय सामन्त-सिंहासनमधिरोढुं लज्जते मे हृदयम्।

शिवराजः—गौरसिंह ! सुविस्तीर्णमधुना महाराष्ट्र-राज्यम्, तन्महाभागोऽयं विभज्य युष्माभिरपि विभ्रियेत चेत् शासनं सुकरं संवृत्येत। कथं भवादृशेषु नीतिकुशलेषूपकारिषु सहचरेषु वर्त्त-

---

तोपयसि=प्रसादयसि। प्राणयसि=जीवयसि। असंस्मरन्=अचिन्तयन्। सङ्गरकष्टानि=सङ्ग्रामदुःखानि। भागम्=अंशम्।

यवना एव, उद्दण्डाः=उच्छृङ्खलाः, शुण्डादण्डगण्डिनः=करिणः, तेषां मण्डलम्=समूहम्। शुण्डादण्डपदेनापि हस्तिरूपार्थप्रतीतौ गण्डिपर्यन्तानुधावनं समदकपोलस्थलस्मारकत्वेन सार्थक्यमाश्रयतीति विदुषां सम्मतिः। केसरीव=मृगेन्द्र इव, भारताभिजनप्रजाः=हैन्दवमूलनिवासिप्रजाः। पातुम्=रक्षितुम्। विश्वस्मिन्=समस्ते। विश्वस्मिन्=संसारे। संसारवाचिविश्वशब्दस्यापि सर्वार्थकत्वेन सर्वनामत्वमिति समाश्रित्येदम्। अनुचरताम्=भृत्यताम्। सामन्तसिंहासनम्=मण्डलेश्वरासनम्।

विभ्रियेत=धार्येत। शासनम्=रक्षणम्। संवृत्येत=सम्पद्येत। नीतिकुशलेषु=राजनीतिपण्डितेषु। दक्षिणभारताभिजनानाम्, भरण-

मानेष्वपि अहमेव दक्षिण-भारताभिजन-भरण-भाराकुलो वर्त्तेय ? तत् सर्वथा भवतः स्वीकरणीयमिदम्, नात्र नकारोपन्यासो भवतो युक्तः—इति तद्धस्ते आज्ञापत्रमार्पयत्।

गौरसिंहः—[पत्रं गृहीत्वा प्रणम्य] महाराज ! निर्देशः सर्वथा वहनीयः।

शिवराजः—[सौवर्णमुष्णीषं कृपाणञ्चार्पयित्वा] धारयेमं मण्डलेश्वरमात्र-धार्य्यमुष्णीषम्, रक्ष चानेन वैरि-व्रात-विमर्द्दनेन चन्द्रहासेन प्रकृतीः।

गौरसिंहः—[उष्णीषं शिरसि धारयित्वा, कृपाण कटि-प्रदेशे बद्ध्वा प्रणनाम]।

शिवराजः—[रघुवीरमभिमुखीभूय] वत्स रघुवीर ! स्मारं स्मारं तव परं पराक्रमम्, परां भक्तिम्, परं सौजन्यम्, परां स्वच्छताम्, परमुत्साहम्, परां वीरताम्, परं सौहार्द्दम्, पराञ्च दृढ-प्रतिज्ञताम्, महापरिणाहमिव सम्पद्यते मे हृदयम्। बहुवारमहं प्रत्यर्थि-खङ्गालीढप्रायो भवता रक्षितोऽस्मि, भवान् मां नाऽरक्षिष्यन् चेच्छास्तिखानं नाजेष्यम्। भवानेव साहाय्यं न व्यधास्यच्चेद् यवन-कारागारान्धकूपान्न निरयास्यम्। रुद्र-मण्डल-विजयस्य च भवानेव… [इत्यर्धोक्तौ निश्वस्य भग्नेन स्वरेण पुनर्वक्तुमारभत] आः ! परस्ताद् यदाचरितं विलुप्तमतिना मया तत्संस्मृत्यापि विदीर्य्यते मे हृदयम्।

भारेण=रक्षणभरेण, आकुलः=व्यग्रः, नकारोपन्यासः=निषेधोक्तिः।

वैरिव्रातविमर्द्दनेन=शत्रुसमूहकर्त्तनेन। प्रकृतीः=प्रजाः।

परम्=उत्कृष्टम्। दृढप्रतिज्ञताम्=सत्यसन्धताम्। महापरिणाहमिव=अतिविशालमिव। बहुव्रीहिः। प्रत्यर्थिनाम्=शत्रूणाम्, खङ्गैः, आलीढप्रायः=आघ्रातप्रायः। अरक्षिष्यत्=रक्षा व्यधास्यत्। अजेष्यम्=जयं प्राप्स्यम्। भविष्यति हेतुहेतुमद्भावे गम्ये लृङ्। यवनकारागारमेव अन्धकूपः=तमोमयगर्तः, तस्मात्। विलुप्तमतिना=

रघुवीरसिंहः—भगवन् ! शान्तं पापम् , आसीत् तन्मम जन्मान्तरीण-पाप्मनां फलम् ।

शिवराजः—यो हि बहुवारं प्राणानरक्षत्; तस्य प्रत्युपकारः प्राणैरपि विधातुमशक्यः । यतः प्राणाः वारमेकमेव पार्य्यन्ते त्यक्तुम् , न तु पौनःपुन्येन । तत् सर्वथा तव ऋणी संवृत्तोऽस्मि । तथाऽपि यथा मम निखिला आज्ञाः समपालयः; तथाऽनुपेक्षणीयमदोऽपि वचः—यदूरीकुरु महाराष्ट्रराजस्य मण्डलेश्वरताम् । दुर्ल्लभो हि त्वादृशो महाराष्ट्रदेशबन्धुः ।

रघुवीरसिंहः—[प्रणम्य] महाराज ! विनष्ट-मातृकोऽहमत्र भवत एवाऽऽश्रयेण वर्द्धितो भवच्चरण-सेवन-पुण्यैरेव च चिर-प्रनष्टं तात-चरणमप्यलभे—इति ममैव न लक्ष्यते कश्चनाऽऽनृण्योपायः ।

शिवराजः—वीर ! ऋतेऽनुचरेभ्यो राज्यकार्यं न सिद्ध्यतीति न तद्रक्षा राज्ञां निरभिसन्धिरनुग्रहः, अनुचरश्च चेत्स्वसमर्पित-कार्य्यातिरेकेण स्वामिनमनुचरेत्; तत् स एवाधमर्णं विदधाति धनिनम् । अथ वा किमप्यस्तु गृहाणेदमधिकारपत्रम् , यथा न स्यान्मम रिक्तं वचः ।

रघुवीरसिंहः—[करौ सम्पुटीकृत्योत्थाय] देव ! साधारणोऽय-

विनष्टबुद्धिना । जन्मान्तरीणपाप्मनाम्=इतरजन्मसञ्चितापानाम् ।

आज्ञाः=आदेशान् । समपालयः=पालितवानसि । अदः = इदम् ।

विनष्टमातृकः=मृतजननीकः । अलभे=प्रापम् । आश्रयेण= आधारेण । चिरप्रनष्टम्=दीर्घकालादृश्यताङ्गतम् । आनृण्यस्य= ऋणशोधनस्य, उपायः=यत्नः । निरभिसन्धिः = निष्कारणकः । अनुग्रहः = कृपा । स्वसमर्पितकार्यस्य, अतिरेकेण = अधिकेन । अधमर्णम् = ऋणगृहीतारम् । धनिकम् = वित्तवन्तम् । उत्तमर्णमिति यावत् । औपचारिकोऽयं प्रयोगः । रिक्तम्=शून्यम् ।

मनुचरः, राजसिंहासनाक्रमणं च महतां कार्य्यम्, तत्क्षम्यताम्, अपरः कश्चन निर्धार्य्यताम्!

शिवराजः—आः! किमुक्तम्? असाधारण-पौरुषं दर्शयन् असाधारण-कृतज्ञतां प्रकाशयन्नपि साधारण इति ब्रूषे! जयपुराधीशानामसाधारणे वंशे तव जन्म, वचनधनः पौरुष-भूषणो राजर्षिरिवापरः श्रीमानसाधारणो वीरो वीरेन्द्रसिंहस्ते पिता, तत् त्वत्तोऽप्यधिकगुणः को नामोपलभ्येत सामन्तसिंहासन-योग्यः?—इति सपदि गृहाणेदमधिकारपत्रम्! [इत्युत्थाय सम्पुटीभूतं तस्य कराग्र सहस्तेन प्रसार्य्याधिकारपत्रमर्पयामास]

रघुवीरसिंहः—[प्रणमन्] सर्वथाऽप्यादेश-वशंवदोऽयं जनः! [इत्यगृह्णात्]

शिवराजः—[सौवर्णमुष्णीषं कृपाणञ्चार्पयित्वा] उष्णीषमिदं मण्डलेश्वरता-परिचायकं धार्यताम्! असिना चानेन सशत्रुशातनं प्रजाः पाल्यन्ताम्!!

रघुवीरसिंह उष्णीषं शिरसि खड्गञ्च कटिप्रदेशे विन्यस्य, प्रणतिमकार्षीत्।

तावत्प्रतीहारेण प्रविश्य "देव! देवशर्म्मा पण्डितो द्वारि तिष्ठति" इति न्यवेदि। 'आम्! प्रवेशय प्रवेशय' इत्युक्तश्च देवशर्म्माणं सपञ्चष-शिष्यं प्रावेशयत्। तमालोक्यैवोत्थाय सपादस्पर्श प्रणनाम महाराष्ट्रराजः। स च गलदानन्द-सलिलाऽऽप्लुताभ्यां

राजसिंहासनस्य, आक्रमणम्=अधिरोहणम्। निर्धार्य्यताम्=निश्चीयताम्। असाधारणम्=अनन्यादृशम्, पौरुषम्=पुरुषार्थम्, असाधारणे=श्रेष्ठे। सम्पुटीभूतम्=साञ्जलिम्।

सशत्रुशातनम्=सरिपुध्वंसनम्।

सपञ्चषशिष्यम्=पञ्चभिः षड्भिर्वा शिष्यैः सहितम्। गलता=निष्पतता, आनन्दसलिलेन=हर्षवारिणा, आप्लुताभ्याम्=व्याप्ताभ्याम्।

नयनाभ्यां लिहन्निव कम्पमानेन करेण स्पृशन्, भग्नेन स्वरेणाऽऽशिपोऽवादीत्। यथानिर्दिष्टमासनञ्चाध्युवास।

महाराष्ट्रराजस्तु करौ सम्पुटीकृत्य, प्रावोचत्—विद्वद्वर! अगाध-सम्बाधे पतितो यदेष जनः कुशलेनः परावृत्तः, स एष केवलं भवत एवाऽऽशीराशीनां परिणामः। भवतैव दैवज्ञवानेष देशः—इति गृह्यतां काचिदेषाऽल्पिष्ठा सेवा—इति दीनार-सहस्र-परिपूरितं सुवर्ण-पात्रं समार्पयत्!

देवशर्म्मा तु बहुश आशीरशिभिरभियोज्य प्राब्रूत यद्—"देव! न हि युष्मादृशा धर्म्म-धूर्वहाः कदर्य्यैरवरोद्धुं शक्यन्ते। भगवता चक्रपाणिनाऽनवरतं रक्ष्यमाणस्य जयलाभवतो विघ्नानामेव भवन्ति विघ्नाः, आपदामेव भवन्त्यापदः!

महाराज! चिराय वेद-प्रतिपाद्यमाद्यं भारताभिजन-धर्म्मं रक्ष, प्रजाः पालयः, महाराष्ट्रञ्च महाराष्ट्र-देशस्य सनाथय।"

महाराष्ट्रराजः भवादृशानां तपोधनानामाशिष एव सकल-मङ्गल मूलम्! सर्वदा सनाथनीयोऽयं जन आज्ञादानैः।

लिहन्निव = आस्वादयन्निव। अध्युवास = अधितस्थौ।

अगाधे=गम्भीरे, सम्बाधे=पीडने। दैवज्ञवान्=ज्यौतिषिकयुतः, अल्पिष्ठा=न्यूनतमा। दीनाराणाम्=सुवर्णमुद्राणाम्, सहस्रेण, परिपूरितम्=भरितम्। सुवर्णपात्रम् = चामीकरभाजनम्।

धर्मधूर्वहाः=सनातनभारवोढारः। कदर्य्यैः=नीचैः। चक्रपाणिना=वासुदेवेन। अनवरतम्=सततम्। जयलाभवतः=विजयप्राप्तियुतस्य। विघ्नानाम्=प्रत्यूहानाम्। आपदाम्=विपत्तीनाम्। वेदप्रतिपाद्यम्=श्रुतिमात्रनिवेद्यमानम्। "चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः" इति हि सिद्धान्तः। चोदना च विधिः। तथा च भवति वेदैकप्रतिपाद्यत्वं धर्मस्य। आद्यम्=सनातनं धर्मम्। अयमेव धर्मः सकलस्य भूवलयस्येति तत्त्वम्। महाराष्ट्रम्=महाराज्यम्।

देवशर्म्मा—देव ! इमा एवाऽऽशिषः, इमा एवा चाऽऽज्ञाः, न मे काचन चिन्ता ऋत एकस्याः ।

महाराष्ट्रराजः—का सा ?

देवशर्म्मा—देव ! बाल्यात्परं वयो जुषते सौवर्णी । भाग्यैरेव वस्यास्तत्पितृ-सम्मतो वीरेन्द्रसिंह-पुत्रः कुमाररामसिंहो विविधा आपदः सोढ्वा समुपलब्धः । भाग्यैरेव चापरिचिन्वती, अजानानाऽपि, चैनमेव सा वृतवती । व्यत्येति चैष समय उद्वाहस्य । तत्–

महाराष्ट्रराजः—[अर्द्धोक्तावेव] आम् ! स्मर्य्यते, ममैव व्यामूढस्यापराधात् साऽपि भगवती चिरं सोढवती दुःखानि । एष आयुष्मान् कुमाररामसिंहः, एष च सौवर्णी-भ्राता गौरसिंहः, इमावप्येतावद्यावधि महाराष्ट्र-देशस्य मण्डलेश्वरौ राजानौ, आशीर्भिर्भावनीयावेवौ ।

देवशर्म्मा—[श्वेतोष्णीष-वेष्टनान्तः स्थितं तिथिपत्रं निस्सार्य्य, कक्षगुटिकात उपनयनं वहिष्कृत्य, चक्षुषोः सन्धाय, आलोच्य च] कुमाररामसिंह ! किन्ते जन्मनाम ?

रघुवीरसिंहः—आर्य ! मोहनसिंहः—इति ।

महाराष्ट्रराजः—इति ! [स्मित्वा] अत एव गुणैरखिलान् मोहयसि ।

देवशर्म्मा—अस्ति ते सिंहराशिः !

सर्वे—कथं न स्यात् सिंहविक्रमस्य सिंहराशिः ?

जुषते = सेवते । तत्पितुः, सम्मतः = इष्टः । सोढ्वा = अनुभूय । समुपलब्धः = सम्प्राप्तः, अपरिचिन्वती = अनिश्चिन्वाना । अजानाना = अविदन्ती । वृतवती = स्वीकृतवती । व्यत्येति = अतिक्रामति ।

व्यामूढस्य = विक्षिप्तचित्तस्य । भावनीयौ = अभिनन्दनीयौ ।

तिथिपत्रम् = पञ्चाङ्गम् । उपनयनम् = उपनेत्रम् । सन्धाय = धारयित्वा । आलोच्य = विचार्य ।

सिंहविक्रमस्य = मृगेन्द्रपराक्रमस्य ।

देवशर्म्मा—महाराज ! इतः पञ्चमेऽह्नि सुदिनं सुलग्नञ्चास्ति । इतः परमावर्षसमाप्ति न लक्ष्यत ईदृशोऽभ्यर्हितः समयः ।

महाराज—साधु, साधु, स्वीकृतमस्माभिः ! स्वयमहमुपस्थास्ये विवाह एतस्मिन् ।

प्रतीहारः—[झटिति प्रविश्य, करौ सम्पुटीकृत्य] महाराज ! उदयपुरात्पत्रमानीय द्वित्राः सादिन समुपस्थिताः ।

महा०—[माल्यश्रीकमवलोक्य] साध्यताम् ।

माल्य०—यदाज्ञाप्यते ! [इति निष्क्रम्य, सुवर्ण-मुद्राङ्कितपत्र-हस्तः पुनः प्रविश्य च] पत्रमिदमुदयपुराधीशस्य ।

महा०—अहो ! आनन्दः ! पठ्यताम् !!

माल्य०—[प्रसार्य्य वारमेकं मनस्येव पठित्वा] महाराज ! परम-प्रीति-पूर-पूर्णो भर्त्ता भारताभिजनानाम्, भाग्यं भारतस्य, तत्रभवानुदयपुराधीश्वरो देवं सम्बोध्यैवं लिखति—

महा०—आम् ! अवदधामि, पठ्यतां पठ्यताम् !

माल्य०—देव ! श्रूयताम्—

"स्वस्ति श्रीसकल-वसुमती-वलय-देदीप्यमान-धैर्य्य-वीर्य्य-गाम्भीर्य-प्रभावेषु, स्वच्छन्दोच्छृङ्खलोच्छलन्म्लेच्छ-मण्डल-मूर्छा-

---

आवर्षसमाप्ति=हायनावसानपर्यन्तम् । लक्ष्यते=दृश्यते । अभ्यर्हितः=श्रेष्ठः ।

उपस्थास्ये=उपस्थितो भविष्यामि ।

साध्यताम्=गम्यताम् । गत्वा पत्रमानीयतामिति तात्पर्यम् ।

परमेण, प्रीतिपूरेण, पूर्णः=समग्रकलः । भर्त्ता । भाग्यम्=मूर्तिमद्भागधेयम् । देवम्=भवन्तम् ।

श्रिया=लक्ष्म्या शोभया च सहितायाः, सकलायाः=समग्रायाः, वसुमत्याः=वसुन्धरायाः, वलये, देदीप्यमानः=जाज्वल्यमानः, धैर्यवीर्यगाम्भीर्यप्रभावाः, येषा तेषु । स्वच्छन्दानाम्=स्वतन्त्राणाम्, उच्छृङ्खलानाम्=उद्दण्डानाम्, उच्छलताम्=उत्कूर्दताम्, म्लेच्छानाम्=यवनानाम्, मण्डलस्य=समूहस्य, मूर्च्छादीक्षायाम्=विक्षिप्तताकरण-

दीक्षा-दक्षेषु, रणाङ्गणागणित-प्राणेषु, वैरि-व्रात-घात-कृपा-कृपण-कृपाण-धारावलीढ-भारत-प्रत्न-सपत्न-व्यग्र-ग्रीवाग्र-विगलत्-कवोष्ण-शोण-शोणित-शोण-चन्दन-द्रव-चर्चित-भूभागेषु, स्वातन्त्र्य-पीयूष-प्रवाह-रञ्जित-महाराष्ट्र-प्रदेशेषु, क्षत्रिय-भूपानुरूपाऽऽचार-प्रचुरीकृताऽऽस्माकीनाभिमानेषु, परमस्नेह-भाजनेषु, महाराष्ट्रचक्र-चक्रवर्त्तिषु, श्रीशिवराज-वीर-वरेषु; यथोचिताचारपुरस्सरं स्वाभिप्रायं प्रकटयति यवन-वन-दाव-दहनः, करप्रदता-कलङ्क-पङ्कानङ्कित-वंशावतंसः, वीर-मित्रम्, वीर-पुत्रः, वीर-बन्धुः, वीरता-सिन्धुः, वीरता-धनः, वीरतामात्र-विश्रान्त-कुलाभिमानः, मानोन्नत', नत-शरणः, रण-यज्ञ-दीक्षा-दीक्षितः, मेदःपाट-क्षितीश्वरो देवः।

नियमे, दक्षेषु=निपुणेषु। रणाङ्गणे, अगणिताः, प्राणाः=असवो यैस्ते। वैरिव्रातघाते=शत्रुसमूहहनने, कृपाकृपणः=दयादरिद्रः, यः कृपाणः=महासिः, तस्य धारया, अवलीढानाम्=आघ्रातानाम्, भारतस्य, प्रत्नसपत्नानाम्=पुरातनशत्रूणाम्, व्यग्रेभ्यः=विकटेभ्यः, ग्रीवाग्रेभ्यः=कन्धराग्रेभ्यः, विगलत्=निःस्सरत्, यत् कवोष्णम्=ईषदुष्णम्, शोणम्=रक्तवर्णम्, शोणितम्=रुधिरम्, तदेव शोणचन्दनद्रवः=रक्तपाटीररसः, तेन चर्चिताः=अनुलिप्ताः, भूभागा यैस्तेषु। स्वातन्त्र्यम्=स्वाच्छन्द्यमेव पीयूषम्=सुधा, तस्य प्रवाहेण, रञ्जिताः, महाराष्ट्रदेशप्रदेशाः, यैस्तेषु। क्षत्रियभूपानुरूपाणाम्=बाहुजनरेशयोग्यानाम्, आचाराणाम्=व्यवहाराणाम्, प्रचारणेन, प्रचुरीकृतः=वृद्धिं नीतः, आस्माकीनः, अभिमानः, यैस्तेषु। परमस्नेहभाजनेषु=विपुलप्रेमपात्रेषु। महाराष्ट्रमेव चक्रम्=राज्यम्, तच्चक्रवर्त्तिषु=तत्स्वतन्त्रनरेशेषु। स्वाभिप्रायम्=स्वविचारम्। यवना एव वनानि=काननानि, तेषां दावदहनः=वनाग्निः। करप्रदताकलङ्कपङ्केन=राजस्वार्पणदुर्यशःकर्दमेन, अनङ्कितस्य=अलाञ्छितस्य, वंशस्य=अन्वयस्य, अवतंसः=भूषणीभूतः। वीरतामात्रे विश्रान्तः कुलाभिमानो यस्य सः। मानेन, उन्नतः=श्रेष्ठः। नतानाम्=नम्राणाम्, शरणः=रक्षकः। रणयज्ञदीक्षया, दीक्षितः=स्वज्ञातदीक्षः। सर्वदा रणपरायण इत्यर्थः। मेदःपाटस्य=मेवाडस्य, क्षितीश्वरः=भूमिपतिः।

"तत्रभवतो म्लेच्छोच्छेदन-महाव्रत-श्रवण-रोमाञ्चित-गात्रा अपि जयपुरेश्वर-जयसिंह-वाक्-प्रलोभ-क्षोभित-हृदयस्य दिल्ली कर-प्रदता-स्वीकाराऽऽकर्णनेनातितरां क्षुभितहृदया वयमास्म। तत्रापि च "शत्रु-नगरीं प्राविशद् भवान्" इति वृत्तान्तश्चिरमखेदय-दस्मान्। ततोऽपि चाश्रावि करालः कर्णशूल इव रोधोदन्तः।

ह्यस्तु भवतः कुशलाय भगवतीं बहुशो निवेद्य सुप्ते मयि, स्वप्ने प्रत्यक्षीभूता सिंह-वाहिनी बाहु-सहस्रेण गगनं व्याप्य पुरः समु-पतस्थे। ततश्चाह प्रलम्ब-सावर्त्त-लाङ्गूलम्, विद्युद्विनिन्दक-च्छटा-पटल-परिव्याप्त-सटा-घटाऽऽलिङ्गित-कण्ठम्, खर-नखराग्र-सम्पात-सावटीकृत-भूभागम्, जाज्वल्यमान-लौह-गोलक-युगलावगूरण-गरिम-गुरु-नयन-गोलकम्, शूलि-शूलाग्र-महिमोन्मूलन-दर्शन-

---

म्लेच्छोच्छेदनमेव=यवनहननमेव महाव्रतम्, तस्य श्रवणेन= आकर्णनेन। रोमाञ्चितगात्रा'=पुलकितशरीराः। जयपुरेश्वरस्य, जयसिंहस्य वाक्प्रलोभेन, क्षोभितं हृदय यस्य तादृशस्य भवतः। दिल्लीकरप्रदता-स्वीकारस्य, आकर्णनेन=श्रवणेन। अतितराम्=अत्यन्तम्। आस्म= अभूम। प्राविशद्=गतवान्। करालः=कठिनः। कर्णशूल इव= श्रोत्रपीडेव। रोधोदन्तः=बन्धनवृत्तान्तः।

ह्य.=विगतेऽव्यवहितपूर्वदिने। सिंहवाहिनी=मृगेन्द्रगमना, दुर्गा। प्रलम्बम्=दीर्घम्, सावर्तम्=वलयितम्, लाङ्गूलम्=पुच्छंयस्य तम्। विद्यु-द्विनिन्दकेन=चपलातिरस्कारिणा, छटापटलेन=प्रभासमूहेन, परिव्याप्ता-नाम्=समलङ्कृतानाम्, सटानाम्=केसराणाम्, घटया=तत्या, आलि-ङ्गितः कण्ठो यस्य तम्। खराणाम्=तीक्ष्णानाम्, नखराग्राणाम्, सम्पा-तेन, सावटीकृतः=सगर्तीकृतः, भूभागो येन तम्। जाज्वल्यमानस्य= देदीप्यमानस्य, लौहगोलकयुगलस्य, अवगूरणगरिम्णा=आघूर्णनगौरवेण, गुरु=महत्, नयनगोलकं यस्य तम्। शूलिशूलाग्रस्य=शिवत्रिशूलप्रान्त-स्य, महिम्नाम्=प्रभावाणाम्, उन्मूलनाः=ध्वंसकाः, ये दशना.=

दीप्ति-दूरीकृतान्धकार-प्रचारम्, पृष्ठ-संस्पृष्ट-देवी-दिव्य-दुकूलम्, परिपन्थि-प्रतिकूलं शार्दूलम्, तलाग्र-विलसन्माणिक्य-मणि-मर्दन-शोणित-सङ्घात-शोणीकृत-पञ्चानन-पृष्ठ-देशं पाद-युगलम्, बाल-भास्कर-कर-निकरैरेव ग्रथितमिव स्वप्रभा-प्रवाह-व्याप्ताम्बरमम्बरम्; हरित-शोणितार्जुन-हारिद्र्याद्यनेक-विध-चाकचक्याऽऽक्षिप्ताक्षि-मणिमयालङ्कार-निचयम्, असि-शक्त्यृष्टि-शूल-चाप-रोप-द्रुघण-परिघ-सर्वौघ-तोमर-कुठार-परश्वधादि-विविधाऽऽयुध-मुष्टिपीडन-पराधीन-मुष्टिकं भुज-मण्डलम्;

दन्ताः, तेषा दीप्त्या, दूरीकृतः, अन्धकारप्रचारो येन तम्। संस्पृष्टम्=संसक्तम्, देव्याः, दिव्यं दुकुलं यस्य तम्। परिपन्थिप्रतिकूलम्=शत्रुविरुद्धम्। शार्दूलम्=मृगेन्द्रम्। तलाग्रे विलसताम्=चरणनिम्नांशे शोभमानानाम्, माणिक्यमणीनाम्=रक्तमणीनाम्, मर्दनेन=सङ्घर्षेण, यः शोणितसङ्घातः=रुधिरसमूहः, तेन शोणीकृतः=रक्तीकृतः पञ्चाननस्य पृष्ठदेशो येन तादृशम्। पादयुगलम्=चरणद्वयम्। देवीमापदमामस्तकञ्च वर्णयति दृष्टिपथगाम्। बालभास्करनिकरैरेव=नवोदितप्रभाकरदीधितिव्रातैरेव। ग्रथितमिव=अनुस्यूतमिव। स्वप्रवाहेण व्याप्तम्=लसितम्, अम्बरम्=गगनतलम्, येन तादृशम्। अम्बरम्=वसनम्। हरितः=पालाशवर्णः, शोणितः=लोहितः, अर्जुनः=श्वेतः, हारिद्र्यम्=पीतवर्णः, इत्यादि, अनेकविधम्=विविधप्रकारम्। यत् चाकचक्यम्=चमत्कृतिः, तेन, आक्षिप्तानि, अक्षीणि, यैरेवम्भूतानाम्, मणिमयानाम्, अलङ्काराणाम्=आभूषणानाम्, निचयो यस्मिन् तादृशम्। भुजमण्डलविशेषणम्। अस्यादीनाम्, विविधानाम्, आयुधानाम् मुष्टिपीडने=अग्रभागग्रहणे, मुष्टिः="मूंठ" इति हिन्दी। पराधीनामुष्टिका यस्य तादृशम्। भुजानाम्=अष्टादशसङ्ख्याकानाम्, बाहूनाम्, मण्डलम्=समूहम्। "अष्टादशभुजा पूज्या सा सहस्रभुजा सती" ति रहस्यवचनेन महालक्ष्म्या अष्टादशभुजत्वोक्तेः तस्या एव राज्ञा पूजाविषय-

ताम्बूल-राग-रक्तोष्ठं शोणापाङ्ग-लोचन-युगलं पूर्वाचल-चूडा-चुम्बि-चन्द्र-चन्द्रिका-चयेनेव रचितं मुनिजन-मनोमन्दिरं मन्मथ-मथन-नयन-मिलिन्द-विश्रामैक-कोकनदं वदन-मण्डलञ्च पश्यन्, विस्मृतात्मा क्षणं बद्धकरसम्पुटस्तूष्णीक एव तस्थिवान्।

किञ्चित्क्षणानन्तरञ्च—"अहो ! यस्याश्चरण-रेणु-निकरेणैव शेषस्यापि शिरोधार्य्यं गृहीत-वराहावतारस्य विष्णोरप्युद्धरणीयं गङ्गाधरस्यापि भस्मच्छुरण-च्छद्मना सर्वाङ्गसंश्लेषणीयं ब्रह्माण्ड-मण्डलं रचितमस्ति; सेयं भगवती जगदम्बिका समुपस्थिता"—

त्वात्। अत एव चालङ्काराणामायुधानाञ्चानेकविधत्वं प्रदर्शितमिति यत्किञ्चिदेतत्। ताम्बूलरागेण रक्तौ, ओष्ठौ यस्मिन् तादृशम्। वदनमण्ड-लविशेषणमिदमग्रेतनानि च। शोणापाङ्गम्=रक्तप्रान्तम्, लोचनयुगल यस्मिन् तत्। पूर्वाचलचूडाचुम्बिनः=उदयगिरिशृंगसम्पर्किणः, चन्द्रस्य, चन्द्रिकाणाम्=कौमुदीनाम्, चयेन। रचितम्=निर्मितम्। मुनिजनमन-साम्, मन्दिरम्=देवायतनम्। मन्मथमथनस्य=काममर्दनस्य, नयन-मिलिन्दानाम्=नेत्रभ्रमराणाम्, विश्रामस्य=विश्रान्तेः, एकम्=अद्वितीयम्, कोकनदम्=रक्तकमलम्। वदनमण्डलम्=मुखमण्डलम्। पाणिनीयव्याकरणानुसार 'विश्रम' इत्येव युक्तः प्रयोग इति "विश्राम इति त्वपाणिनीयमि" ति वदता दीक्षितादीनाम्मतम्। तन्मते प्रयोगाणामीदृशा-ना पाणिनिविरोधाविषयाणा माहेश्वराख्यव्याकरणेन साधुत्वमिति पूर्वमेव निवेदितम्, वस्तुतस्तु पाणिनिव्याकरणेनाप्यस्य साधुत्वमिति कौमुदीटीकासु विवृतम्।

चरणरेणुनिकरेण=अङ्घ्रिधूलिव्रजेन। "समादाय स्रष्टा सृजति पदपासून् निजकरैरि" ति देवीस्तवे भगवच्छङ्कराचार्यैरुक्तम्। शेषस्य=अनन्तस्य। शिरसा धार्यम्=वाह्यम्। गृहीतवराहावतारस्य=धारितसूक-राकृतेः। विष्णोः=वासुदेवस्य। उद्धरणीयम्=उत्थापनीयम्। गङ्गाधरस्यापि=भूतेशस्यापि। भस्मच्छुरणच्छद्मना=भूतिरूपणव्या-जेन। सर्वेषु, अङ्गेषु, संश्लेषणीयम्=समालिङ्गनीयम्। जगदम्बिका=

इति सञ्चिन्त्य साष्टाङ्गं प्रणम्य बहुशः स्तुत्वा च समचकथम्—

"मातः! काऽतः परं प्रतीक्ष्यते दुर्दशा भारतवर्षस्य? यदा सफलीकरिष्यसीमं बाहु-सहस्र-भारम्। आः! पश्यतोः पित्रोर्बालाः करपत्रैः कर्त्यन्ते; रुदतः पत्युः पत्न्यः पात्यन्ते; हाहाकार-गगन-तलमपि विदारयतां भक्तानां भगवन्मन्दिराणि चूर्ण्यन्ते, सोढ-विविध-बाधानां निरपराधानां हीनानां दीनानां रक्तै रक्ताक्रियते भगवती वसुन्धरा। देवि! निजतनयेषु समापादिता इमा दुर्दशा पश्यन्त्यपि न पश्यसि। रोदसी रोदयद्रोदनसदः शृण्वन्त्यपि न शृणोषि। मातैव समुपेक्षेत चेत् कोऽन्यो रक्षितुमपेक्षेत बालान्।

योऽसौ दिल्ली-दौर्भाग्य-परिणाम-स्वरूपोऽवरङ्गो मया युद्धे विजितो गृहीत्वाऽपि च शरणं वाञ्छन् जीवन्नेव परित्यक्तः; स एवासौ मैत्रीं प्रतिज्ञाय, अस्मद्बन्धुष्वन्यतमं महाराष्ट्रराजं जयपुरेश्वर-द्वारा स्वालयमानाय्य विश्वास्यापि कारागारनिरुद्धमकरोत्।

विधिहरीशादीनामप्युत्पादयित्री शिवादिभिन्ना तुरीया काचिच्छक्तिः। तथा चाऽऽचार्यचरणाः—

> गिरामाहुर्देवीं द्रुहिणगृहिणीमागमविदो
> हरेः पत्नीं पद्मां हरसहचरीमद्रितनयाम्।
> तुरीया काऽपि त्वं निरवधिनिःसीमसोदृगीतचरिता
> महामाये! विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषी॥

करपत्रैः=क्रकचैः। कर्त्यन्ते=छिद्यन्ते। पात्यन्ते=भ्रंश्यन्ते पातिव्रत्यात्। पत्युः, "षष्ठी चानादरे" इति षष्ठी। चूर्ण्यन्ते=धूलिसात्क्रियन्ते। सोढविविधबाधानाम्=अनुभूतानेकपीडानाम्। रक्ताक्रियते=लोहिता सम्पाद्यते। समापादिता=सम्प्रापिताः। रोदसी=द्यावापृथिव्यौ। रोदयत्=क्रन्दयत्। अपेक्षेत=अभिलषेत्।

दिल्ल्याः, दौर्भाग्यस्य=दुरदृष्टस्य, परिणामस्वरूपः=परिपाकरूपः। शरणम्, वाञ्छन्=अभिलषन्। मैत्रीम्=सौहार्दम्। प्रतिज्ञाय=प्रतिश्रुत्य। आनाय्य=प्रापय्य। विश्वास्य=विश्वासमु-

सहसे चेदीदृशान् करालानत्याचारान् मुधैव जगज्जननोपदेन विडम्व्यसे । यदि नाहं सत्वरं शृणोमि—"शिवराजः कुशलेन महाराष्ट्रदेशं न्यवर्तत"—इति; ततस्तु भवत्याः सत्ता-विषयेऽपि शैथिल्यमासादयिष्यति मे विश्वासः"—

इति कथयति मयि; गम्भीरेण स्वरेण दुर्गा समगादीत्—"मुक्तो महाराष्ट्रराजश्चतुर्थेऽहनि प्रतापदुर्गं प्रवेक्ष्यति । मा स्म खिद्येथाः ! दुराचारा एते न चिरमधिकरिष्यन्ति । कियतैव कालेन करटैः सरटैरेव च व्याप्ता द्रक्ष्यन्त एतेषां प्रासादाः" इत्युक्त्वैवान्तरधाद् देवी । प्रवुद्ध एव च पत्रमेतत् प्रहिणोमि, यतः प्रायशो न भवन्ति वितथानि स्वप्न-कथानकानि ईदृक्षाणि ।

इतस्तु साम्रेडमिदमेव कथ्यते—यन्न कदाऽपि कथमपि दिल्ली-कलङ्का इमे विश्वसनीयाः । दृश्यताम्, योऽसौ जयसिंहो भारते स्तम्भभूतो यवनराज्यस्य ; यश्च भवादृशानपि यवन-कुल-करि-कदम्ब-केशरिणो हस्तयित्वा दिल्लीमानिन्ये, तस्मिन्नेव दक्षिणदेशे युद्ध-महाम्बुधि-निमग्ने, वारं वारं सक्रन्दनं कुमाररामसिंहेन प्रार्थ्यमानोऽपि सेना-प्रेषणेन सम्राट्पद-विडम्बनोऽसौ रक्षा-भिक्षां न प्रादात् ; जयपुराधीश्वरस्य विपत्तिमाकलय्य च प्रासीदत्; सोऽसौ स्वप्नेऽपि न सन्धेयः । पुनरेतेन सह योद्धव्यम् । अवहेलितो

त्वाद्य । विडम्व्यसे=उपहस्यसे । सत्तायाः=विद्यमानतायाः, विषये । ❧

खिद्येथाः=खेद भजेथाः । करटैः=काकैः । सरटैः=कृकलासैः । अन्तरधात्=अन्तर्हिता ।

प्रहिणोमि=प्रेषयामि । वितथानि=असत्यानि । स्तम्भभूतः= आधारभूतः । यवनकुलमेव करिकदम्ब तस्य केशरिणः=मृगेन्द्रान् । हस्तयित्वा=वशमानीय । आनिन्ये=आनीतवान् । आकलय्य= निर्धार्य । प्रासीदत्=प्रसन्नता गतः । सन्धेयः=सन्धातुमर्हः ।

जयपुरेश्वरो नाधुनैतस्य साहाय्यं विधास्यति। मरुधराधीशश्च यवनराजस्यैवाविश्वास्यः। यदितोऽप्येतौ यवनसेनां निजभटैर्द्विगुणयन्तौ प्रचलेताम्; तदितोऽहमेतयो राज्यं भस्मसात् करिष्यामि। अस्माकमपि चिरवैरं जयपुरेण सहेति को न वेत्ति? भवता स्वप्रान्तस्थैरपरैरपि विजयपुराधीश्वरादिभिः सह योक्तव्यम्। भारतवर्षे न कोऽपि शुद्धेन हृदा समाद्रियत एतान् मन्दिर-मर्दनान् यवनहतकान्। अस्मासु भेरीराहत्य ध्वजानुद्धूय युद्धं विदधत्सु च; स्मारं स्मारमेषामत्याचारान् सर्वेऽप्यस्माकमेव वलक्षं पक्षमवलम्बिष्यन्ते। न चैषां शरणागत-घातकानां विहित-महापातकानां कुक्कुट-कूट-कवलीकाराऽऽकलित-कलुष-कुटिल-कर्कशाऽऽकार-विकार-प्रकाराणामकीर्त्ति-सवनानां दुराचार-यवनानाम्! तच्छीघ्रं निष्कृप-कृपाण-धारा-प्रवाहे एव प्रवाहयन्तु भवन्त एतान्।

एतावन्मात्रं पठितवत्येव माल्यश्रीके; परितो "हन्यन्तां हन्यन्तां म्लेच्छाः"—इति महान् समुदस्थात् प्रतिध्वनि-ध्वनन-शतगुणितो ध्वनिः। महाराष्ट्रचक्र-चक्रवर्त्ती च दक्षिण-करपल्लवाग्रेण श्मश्रु-प्रान्तं परिमृशन्, गगने दृष्टिं बद्ध्वा प्रोवाच-"अरे! अरे! यवनाः! सपदि विलयं याथ!!"

अवहेलितः = तिरस्कृतः। अविश्वास्यः = न विश्वासभाजनम्। यवनसेनाम् = म्लेच्छवाहिनीम्। द्विगुणयन्तौ = वर्धयन्तौ। चिरवैरम् = प्राचीन शत्रुत्वम्। युद्धम् = सङ्ग्रामम्। विदधत्सु = कुर्वत्सु। वलक्षम् = शुद्धम्। अवलम्बिष्यन्ते = धारयिष्यन्ति। कुक्कुटकूटकवलीकारेण = चरणायुधौघभक्षणेन। आकलितम् = सञ्चितम्, यत् कलुषम् = पाप्मा, तेन, कुटिलाः = वक्राः, कर्कशाः = कठोराः, आकारविकारप्रकाराः, येषां तेषाम्। अकीर्त्ति-सवनानाम् = अयशोयशानाम्।

प्रतिध्वनीनाम्, ध्वननेन = रणनेन, शतगुणितः = अतितरां वृद्धिं नीतः। परिमृशन् = स्पृशन्। विलयम् = विनाशम्।

अथ माल्यश्रीक उवाच—देव ! अपरमपि किञ्चिदवशिष्यते पठितुम् ।

ततः "पठ्यतां पठ्यताम्"—इत्याज्ञापयति महाराजे, पुनरारब्धवान् पठितुं यद्—

"इति भवतः प्रत्यावर्त्तनस्य हर्ष-वर्ष-पुरस्सरं साशीराशि समापयामि विषयममुम् ।

द्वितीयश्चासौ निवेदनीयो वृत्तान्तो यद्—आसीदस्मद्बन्धुः खड्गसिंह. ।

इति स्वपितृनामधेय-श्रवणेन सावष्टम्भं सगात्र-स्फुरणं चैकाग्रयोर्गौरसिंह-श्यामसिंहयो, पुनरग्रतोऽपठत्—तस्य पुत्रौ गौरसिंह-श्यामसिंहौ, आख्याऽनुकूलाकारौ, आखेट-परिभ्रष्टौ, चिरान्वेषणैरप्यस्माभिरलब्धौ, श्रीमद्दत्तहस्तावलम्बनौ स्त इति श्रूयते । सत्येयं वार्त्ता चेत्, तौ सपद्यस्मन्निकटे प्रेषणीयौ, तदीया सर्वाऽपि स्थावर-जङ्गम-सम्पत्तिरस्माभिः सम्यग् रक्षिता वर्द्धिता चास्ति । तावागत्य स्वसम्पदं स्वायत्तां कुर्य्यातां चेद्; गतैतच्चिन्तश्च सुखेन समुच्छ्वसेयम् । तद्भगिनी कोशला तत्पुरोहितो देवशर्मा च क्व स्त इति नाधुनाऽपि मम ज्ञान-गोचरतामापन्नम् । परन्तु तत्सत्ता-सम्बन्धेऽपि भवद्राज्य एव पक्षपातो मे हृदयस्य ।

सावष्टम्भम्=सस्थगनम् । सगात्रस्फुरणम्=सशरीरकम्पम् । एकाग्रयोः=यतचित्तयोः । आख्यानुकूलाकारौ=नामधेयसदृशाकृतिकौ । आखेटे=मृगयायाम्, परिभ्रष्टौ=दूरीभूतौ । स्थावरा=स्थितिशीला भूवृक्षादिरूपा, जङ्गमा=गमनशीला गजाश्वादिलक्षणा, सम्पत्तिः=लक्ष्मीः । रक्षिता=पालिता । वर्द्धिता=वृद्धिं नीता । स्वायत्ताम्=स्वाधीनाम् । समुच्छ्वसेयम्=श्वासं गृह्णीयाम् । सुखी स्यामिति यावत् । ज्ञानगोचरताम्=ज्ञानविषयताम् । आपन्नम्=आयातम् । तयोः, सत्तायाः=स्थितेः, सम्बन्धे=विषये ।

समाप्तप्रायेऽप्यस्मिन् पत्रे पुनरेतत्सूचयामि—यद् भाग्यैरेषां भारत-परिपन्थिनां यवनानां न भवति पारस्परिक-प्रीतिरस्माकं भारतीय-क्षत्रियाणाम्। तद् भारताभिजन-भूरि-भाग्य-भवन-भारताभिभावक-भाग्य-पराभवनञ्च सर्वथैक्यमेवाऽऽसादनीय-मस्माभिः। पारस्परिक-विरोध-ज्वरावलीढानि दुर्बलानि भवन्ति बलानि, प्रेम-पीयूष-धाराऽभ्युक्षितानि च महामहांसि सम्पद्यन्ते तेजांसि—इति किमधिकं वचनीयं स्यान्नीति-निष्णातेषु भवत्सु"—इति।

तदाकर्ण्य महाराष्ट्रराजः प्रावोचत्—

सत्यं दुग्धदग्धो जनस्तक्रमपि व्यजनैर्वीजयित्वा पिबति, व्याविद्धकण्टको न कण्टकाऽऽकुलेन पथा पौनःपुन्येन प्रचलति, तद् यवनैः सह सन्धेर्ज्ञाताऽऽस्वादैः कथं मुहुर्मुहुः संमुह्य सन्धास्यते? धन्य उदयपुराधीश्वरः! यः स्वयमेव खड्गमात्र-सहायस्य मम सहायः संवृत्तः। "एकमेकश्चैकादश भवन्तीति" प्रसिद्धमाभाणकम्। तदावामधुना द्वौ महासमुद्रौ स्वाङ्कस्थितैस्तिमिङ्गिल-

पारस्परिकप्रीतिः=आन्योन्यप्रेमा। भारताभिजनानाम्, भूरिभाग्यस्य=महतो भागधेयस्य, भवनम्=सदनम्। भारताभिभावकानाम्=भारतधासकत्वेन ख्यातिं गतानाम्, यवनानाम्, भाग्यस्य, पराभवनम्=तिरस्करणम्। दुर्बलानि=बलशून्यानि। बलानि=सैन्यानि। महामहांसि=भूरिबृंहितानि। नीतिनिष्णातेषु=नीतिनिपुणेषु।

दुग्धदग्धः=तप्तेन पयसा ज्वलितमुखः। तक्रम्=उदश्वित्। व्याविद्धकण्टकः=प्रविष्टकण्टकः। ज्ञातास्वादैः=अनुभूतरसैः। संमुह्य=मोहं मूत्वा। सन्धास्यते=सन्धिर्विधास्यते। खड्गमात्रम्, सहायः=साहाय्यकारी यस्य सः। असहायस्येत्यर्थः। एकसङ्ख्यामुल्लिख्य तद्वामे दक्षे पुनस्तस्या एवोल्लेखे भवत्येकादशसङ्ख्या। आभाणकम्=लोकोक्तिः, "कहावत" इति हिन्दी। तिमिङ्गिलप्रायैः=महामत्स्यकवलीकारकोविदैः

प्रायैर्वा रैभरितो प्रत्यर्थिन एतान् व्यामोह-पतितान् गण्डूपद-वृन्दा-नीवात्स्यायः ।

तावदकस्मात् प्रविश्य प्रतीहारः प्रणम्य प्रावोचत्—देव ! "सेनापतिर्विजयध्वजः समुपतिष्ठते"—इति । "आम् ! प्रवेशय प्रवेशय" इत्युक्तश्च तं प्रावेशयत् ।

स च सौवर्ण-प्रान्तारुण-वस्त्राऽऽलिङ्गिताङ्गः कटि-विलम्बि-महाचन्द्रहासः शिरसा भुवं स्पृशन् करौ सम्पुटीकृत्य न्यवेदयद्—

विजयतां विजयतां महाराष्ट्र-चक्र-चक्रवर्ती मण्डलेश्वर-मण्डल-चूडामणि-चोचुम्ब्यमान-चरणतलो महाराजाधिराजः ।

देव ! सन्धि-बन्धनाय यान्यस्मद्विजित-दुर्गाणि दिल्लीदूषणाय प्रतिनिवर्त्तितान्यासन , तानि त एव श्रीचरणानामाज्ञयाऽस्माभी-रङ्क्षितानि । प्रातरेव चाद्य सर्वाण्यपि देवस्य वशंवदानि संवृत्तानि। शत्रुभटाः केचन हताः, केचन पलायिताः, केचन गृहीताः, केचन च "त्रायध्वम्" इति वदन्तः शरणागताः संवृत्ताः ।

ततः सर्वे जयध्वनि-प्रतिध्वनिभिः प्रासादमेवाध्वनयन् । महा-राजश्च सौवर्ण-कङ्कण-युगलमस्मै प्रादात् ।

मत्स्यविशेषसदृशः । व्यामोहस्य=मूर्खतायाः, प्रवाहे=धारायाम् , पति-तान्=आगतान् । गण्डूपदवृन्दानीव=किञ्चुलकव्रातानिव । "गण्डूपदः किञ्चुलक" इत्यमरः । "केंचुवा" इति हिन्दी । अत्स्यावः=खादिष्यावः ।

सौवर्णप्रान्तेन=चामीकरतन्तुखचिताग्रेण, अरुणेन=ईषद्रक्तेन, वस्त्रेण, आलिङ्गिताङ्गः=भूषितशरीरः ।

मण्डलेश्वरमण्डलस्य, चूडामणिभिः=शिरोमौक्तिकैः, चुम्ब्यमा-नम्=स्पृश्यमानम् , चरणतलं यस्य सः । राजभिःप्रणम्यमान इति भावः ।

सन्धिबन्धनाय=मित्रतास्थापनाय । प्रतिनिवर्त्तितानि=प्रतिदत्तानि । रङ्क्षितानि=आक्रान्तानि । वशंवदानि=स्वायत्तानि ।

सौवर्णकङ्कणयुगलम्=हैरण्यवलयद्वयम् ।

ततः क्षणं परस्परं विविधानालापान् विधाय, बहुविध-वीर-रस-कलित-कविताः पठते कविकुल-भूषणाय भूषणाय भूस्वामिता-सूचकमधिकारपत्रं प्रायच्छत् । स च गृहीत्वा पत्रमेतत् साशीराशि पुनरन्या धन्य-धन्या मान्या ओजस्वि-पदविन्यासास्तत्क्षण-रचिताः कविता अपठत्; याः श्रुत्वा तत्रत्य-वीराणां दक्षिण-बाहवः प्रास्फुरन्, कृपाणाः स्वयं कोशात् किञ्चिद् बहिर्निरगच्छन्, लोचनानि च माञ्जिष्ठ-मञ्जिमानमकलयन् ।

ततः क्षणं निभृतं स्थित्वा भूषणं प्रशस्य गौरसिंहाभिमुखीभूय महाराज उक्तवान्—

गौर! श्रुतं भवता—यद् उदयपुराधीश्वरेण क्षत्रिय-कुल-कमल-दिवाकरेण भवन्तमुद्दिश्य लिखितम्! धन्यो भवान्! य एवं मत्प्रीति-प्रवाह-पात्रमपि 'पूर्ण-प्रताप-पटल-पाटलीकृत-मेद-पाटेन दुष्ट-गण-दुर्घट-घटना-विघाटनेन प्रत्यर्थि-प्राचीर-कपाट-विपाटनेन तत्रभवता श्रीमदुदयपुर-परिवृढेनापि सततं स्मर्य्यते। भाग्यवानसि, सम्प्रति सम्पाद्य भगिन्या उद्वाहमहोत्सवं वारमेकं गत्वा महाराज-

---

बहुविधाः=अनेकप्रकाराः, वीररसाकलिताः=ओजःपूर्णाः । कविताः=काव्यानि । एतत्=अधिकारबोधकं पत्रम् । अन्याः=इतराः । ओजस्विनाम्=ओजोगुणपूर्णानाम्, पदानाम्, विन्यासो यासु ताः । प्रास्फुरन्=समचलन् । कृपाणाः=असयः । स्वयम्=आत्मनैव । अनिष्कासिता एवेति यावत् । बहिर्निरगच्छन्=बहिर्निष्क्रान्ताः । अतिशयोक्तिः । लोचनानि=नयनानि । माञ्जिष्ठमञ्जिमानम्=मञ्जिष्ठवर्णताम् । अकलयन्=अधारयन् ।

निभृतम्=मौनेन ।

मत्प्रीतेः, प्रवाहस्य, पात्रम्=आधारः । पूर्ण-प्रताप-पटलेन=अत्यधिकतेजःसमूहेन, पाटलीकृतः=श्वेतरक्तीकृतः, मेदःपाटः=मेवारः, येन सः । दुष्टगणस्य, दुर्घटघटनायाः=अनिष्टकारिकर्तव्यस्य, विघाटकेन=विनाशकेन । उदयपुरपरिवृढेन=उदयपुराधीश्वरेण ।

मानन्दय, स्वसम्पत्तिमवलोकय। सानुजत्वं चिरान् कौमार-महाव्रतमेवाङ्गीकृत्य कुशोचिता धीरता-धुरां वहसि, तदधुना ससोदर्यं पदमाधेहि गार्हस्थ्याश्रमे।

श्रुत्वैतच्छिरो नमयित्वा यावत्किमपि विवक्षते गौरसिंहः, तावत् प्रविश्य विप्र-बटुनैकेन साशीर्वचनं निवेदित यत्-"सम्पन्नो भगवत्प्रसादीकृतास्वाद्यास्वादन-समयः"—इति।

तत' "पुनरालपिष्याम."—इत्युक्त्वा महाराज उदस्थात्। सर्वे च यथोचिताऽऽचारपुरस्सरं निवृत्ताः।

× × ×

महामङ्गलमयं दिनमिदं सौवर्णी-विवाहस्य। केन वा वर्णनीया स्याद् नवाधिकृत-राज्यस्य राज्ञो गौरसिंहस्य नवाऽऽसादित-प्रासाद-परिष्कार-शोभा? प्रासादेऽस्मिन् प्रतिद्वारं प्रत्यङ्गण प्रतिशालं प्रत्यट्टं प्रतिप्रघणञ्च रम्भा-स्तम्भा', मङ्गल-कलशाः, अशोक-पल्लव-तल्लजावली, प्रतिस्तम्भं परिवेष्टयत्कुसुमित-वल्ली-

---

आनन्दय=हर्षय। कौमारम्=अविवाहित्वम्, एव महाव्रतम्=कठोरं नियमम्। ससोदर्यः=सानुजः।

भगवत्प्रसादीकृतस्य=भगवदर्पितस्य, आस्वाद्यस्य=खाद्यस्य, आस्वादनसमय.=रसग्रहसमयः, भोजनकाल इति यावत्।

उदस्थात्=उत्थितोऽभूत्।

× × ×

वर्णनीया=कथनीया। नवम्, अधिकृतम्=अधिष्ठितम्, राज्यं येन तस्य। नवासादितप्रासादस्य=सद्यःप्राप्तहर्म्यस्य, परिष्कारशोभा=भूषणच्छविः। द्वार प्रतीति प्रतिद्वारम्। प्रत्यङ्गणम्=प्रत्यजिरम्। प्रतिप्रघणम्=प्रत्यलिन्दम्। अशोकपल्लवतल्लजानाम्=अशोकप्रशस्तकिसलयानाम्, आवली=पङ्क्तिः। प्रतिस्तम्भम्, स्तम्भ स्तम्भम्। परिवेष्टयन्त्यः=वलयिताः, कुसुमिता.=पुष्पिताः। वल्लीमतल्लिकाः=प्रशस्ता

मतल्लिकाः, प्रतिकलशं कुङ्कुम-कस्तूरी-चन्दन-चर्चा-मचर्चिकाः, प्रतिगवाक्ष यक्षकर्दम-वृकधूप - घनसारधूप - धूमोद्भूत - घन-घना-घनोद्धाः, प्रतिकुञ्जं माङ्गलिक-मण्डन-प्रकाराः, प्रतिचन्द्रशालञ्च दोधूयमाना ध्वजाः परितो मङ्गलमिव वर्षन्ति स्म । परितः सुदूर-पर्य्यन्तं केतक-सौरभ-सुरभीकृतैरम्भोभिः परिषिक्ताः पन्थानः खेचराणामपि घ्राणांस्तर्पयन्ति स्म ।

अभितो मार्गञ्च रम्भा-स्रक्-पल्लव-तोरण-पताका-कलशा-दीनां श्रेणी श्रेयांसि विश्राणयति । दुन्दुभि-पणवाऽऽनक-मर्दल-झर्झर-डिण्डिम-पटहादि-वाद्यानां सम्प्रसादा नादाश्च दिवं स्पृ-

मतलयः । कुङ्कुम-कस्तूरी-चन्दनानाम्=काश्मीरकेसर-मृगमद-पाटीराणाम्, चर्चामचर्चिकाः=मनोहराणि रूषणानि । मचर्चिकाशब्दः प्रशस्तवाचकः । प्रतिगवाक्षम् = प्रतिवातायनम् । यक्षकर्दमः=एकीकृतं कर्पूरादि । तदुक्तं व्याडिना—

> कर्पूरागुरुकस्तूरीकक्कोलघुसृणानि च ।
> एकीकृतमिदं सर्वं यक्षकर्दम उच्यते ॥

वृकधूपः=दशाङ्गधूपः, घनसारधूपः=कर्पूरधूपः, एतेषां धूमैः, उद्भूताः=उत्थिताः, घनाः=सान्द्राः, ये घनाघनोद्धाः=प्रशस्ता वपुष्कवारिदाः । "प्रकाण्डमुद्धतल्लजौ" इत्यमरः । प्रतिकुञ्जम्=प्रतिलता-दिपिहितोदरम् । माङ्गलिकानाम्=मङ्गलप्रयोजनानाम्, मण्डनानाम्=अलंकरणानाम्, प्रकाराः=भेदाः । प्रतिचन्द्रशालम्=प्रतिशिरोगृहम् । दोधूयमानाः=भृशं कम्पमानाः । वर्षन्ति स्मेवेति क्रियोत्प्रेक्षा । केतक-सौरभेण=केतकसुगन्धिना, "केवड़े के जल से" इति हिन्दी, सुरभीकृतैः=सुगन्धितामापादितैः । परिषिक्ताः=सर्वत आर्द्रीकृताः । खेचराणामपि=आकाशगामिनामपि । भूचारिणां तु कथैव का । घ्राणान्=नासिकाः ।

अभितः=उभयतः । श्रेयांसि । विश्राणयति=ददाति । सम्प्रसादाः=मनोहर्षकाः शब्दाः । नादाः=ध्वनयः । दिवम्=नभः । स्पृशन्ति=

शन्ति । सुहासिनीनां सुवासिनीनां कलित-ललित-काकलीभिरु-न्नीतानि गीतानि पुंस्कोकिलानपि कलकूजनं शिक्षयन्ति । पीता-रुण-कौसुम्भ-पट्टोष्णीपोत्तरीय-कञ्चुकाः कुङ्कुमतिलका. क्रमुक-कुसुम-कुङ्कुमाऽक्षताम्बर-नारिकेलादि-महामाङ्गलिकोपायन-हस्ताः सहस्रशो नागरिका यातायातैः पद्वीराकुलयन्ति ।

समयेऽस्मिन् महाराष्ट्रराजः स्वयमुपनिमन्त्रिते गौरसिंहप्रासादे । प्राप्त-राज्यस्य सोदर्या-पाणिपीडन-महोत्सव-पीयूष-पूर-प्रवाह-स्नातस्य दक्षिण-क्षितिचक्र-चक्रवर्तिनाऽपि च सनाथ्यमानस्य केन वा वर्णनीयः स्यादानन्दो गौरसिंहस्य श्यामसिंहस्य च ।

अथ वृद्धोऽपि देवशर्म्मा महोत्सव-रस-रसायनैस्तरुणीकृत इव

व्याप्नुवन्ति । सुहासिनीनाम् = शोभनहासवतीनाम् । सुवासिनीनाम् = सौभाग्यवतीनाम् । कलितललितकाकलीभिः = धारितशोभनसूक्ष्मकलैः । उन्नीतानि = उत्थापितानि । पुंस्कोकिलान् = पिकान् । कलकूजनम् = मधुररणनम् । शिक्षयन्ति = पाठयन्ति । आसा गीतध्वनिः कोकिलध्वनेरपि मधुर इति तात्पर्यम् । पीतारुणकौसुम्भानि, पट्टानि = कौशेयानि, उष्णीपो-त्तरीयकञ्चुकानि येषा ते । क्रमुकम् = पूगी, कुसुमम् = पुष्पम् , कुङ्कुमम् = केसरम् , अक्षताः = तण्डुलाः, अम्बरम् = एतेनैव प्रसिद्ध सुगन्धद्रव्य बहुमूल्यम् , नारिकेलम् = लाङ्गलीफलम् , इत्यादीनि, महामाङ्गलिकानि = अतिशयमङ्गलबोधकानि, उपायनानि = उपहाराः, हस्ते येषा ते । पद्वी. = सरणीः ।

सोदर्य्यायाः = समानगर्भजातायाः, भगिन्याः, पाणिपीडनमहोत्सव एव = विवाहमहोत्सव एव, पीयूषपूरप्रवाहः = अमृतमहाधारा, ते स्नातस्य = निर्णिक्तस्य । दक्षिणक्षितिचक्रस्य, चक्रवर्त्तिना = सम्राजा । सनाथ्यमानस्य = सहकृतस्य, सभाजितस्य ।

महोत्सवरस एव रसायनानि = जीवनौषधानि, तैः । तरुणीकृत इव =

क्षणमुद्वाह-मण्डपे क्षणं जनसमाजे च प्रविशति, क्षणमेष रजत-पात्र-स्थापिता औद्वाहिकीः सामग्रीर्गणयति, 'क्षणं हरिद्रा हरिद्रा,लाजा लाजाः,शमी शमी,दूर्वा दूर्वा' इति सामग्रीरानेतुं छात्रान् त्वरयति, क्षणं तिथिपत्रं प्रसार्य्य ग्रहगतीरालोकयति, क्षणञ्चाऽऽयस्त इव भित्तिकाश्रितः पृष्ठदेश उपविश्य कण्ठावलम्बिनीं तुलसी-मालिकां करे कृत्वा चक्षुषी सम्मील्य भगवन्नामानि जपति ।

तावदश्रूयत भेरी-पटह-शङ्ख-झर्झरादीनां दविष्ठो ध्वनिः, क्रमेण चायं नेदिष्ठतां प्रतिपेदे। "वरयात्रा वरयात्रा" इति परितः समुदस्थाद् महोत्साहमयः कलकलः । सत्पथाभिमुख-चन्द्रशालासु गवाक्षेषु च सपदि प्रविश्य शतशो गायन्त्यश्चिरण्ट्य उपतस्थिरे। अभितो मार्गं जनानां महान् सम्बाधः । द्वार-समीप-वर्त्तिनि रम्भा-स्तम्भ-सहस्र-हरिते आरक्त-पताका-पटलारुणिते जाम्बूनद-वितान-प्रभा-पुञ्ज-पीते अनेक-शत-मञ्चाधिष्ठिते महाकुट्टिमे गौर-प्राघुणिकाः

युवकीकृत इव । औद्वाहिकीः=उपयामसम्बन्धिनीः । गणयति=सङ्ख्याति । सामग्रीः=उपकरणानि । त्वरयति=शीघ्रयति । तिथिपत्रम् = पञ्चाङ्गम् । आयस्त इव = श्रान्त इव । भित्तिका श्रितः, भित्तिकाश्रितः । "द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैरि"ति समासः । 'पृष्ठदेश' इति सप्तम्यन्तं भित्तिकान्वयि द्रष्टव्यम् ।

दविष्ठः=अतिशयदूरस्थितः । नेदिष्ठताम् = अतिशयनिकटताम् । प्रतिपेदे = प्राप । सत्पथस्य = शोभनमार्गस्य, अभिमुखासु = सम्मुखासु, चन्द्रशालासु = शिरोगृहेषु । गवाक्षेषु = वातायनेषु । चिरण्ट्यः = सुवासिन्यः । सम्बाधः = सम्मर्दः । आरक्तानाम्=ईषद्रक्तानाम्, पताकानाम्, पटलेन, अरुणिते = लौहित्यमापादिते । जाम्बूनदवितानानाम् = हैरण्योल्लोचानाम्, प्रभापुञ्जैः = कान्तिपटलैः, पीते = हारिद्रे । अनेकशतैः, मञ्चैः, अधिष्ठिते = शोभिते । महाकुट्टिमे = महत्यां निबद्धभूमौ । गौरस्य, प्राघुणिकाः = अतिथयः । "पहुना" इत्यपभ्रंशीभूय

प्राविशन् । मञ्च-मण्डल-मध्यवर्त्ति महत्सौवर्ण-सिंहासनं महाराष्ट्रराजोऽलञ्चकार । क्रमतश्च यथाधिकारमन्येऽपि मञ्चानध्यवसन् । ततोऽपि च पृष्ठतः सतारा-पुरी-वास्तव्या बहवः प्राप्तप्रतिष्ठा विप्राः सुक्षत्रिया वणिजश्च सोपायन-राजत-भाजन-सभाजित-कर-कोकनद-कुड्मलाः स्वोचितमञ्चानध्यतिष्ठन् ।

विचित्रेयं दैव-घटना ! क्व मेदःपाट-वाट-वास्तव्यो गौरसिंहः श्यामसिंहश्च ? क्व जयपुर-प्रान्त-निवासी वीरेन्द्रसिंहो रामसिंहश्च ? क्वेयं सतारा-नगरी ? क्व चैष महामहो महाराष्ट्र-मही-महेश्वरस्य ?

गौरोऽपि श्यामोऽपि कोशलाऽपि रामोऽपि वीरोऽपि महाराजोऽपि च सर्व एवैते प्राणसंशयाऽऽपादिकाः कष्टपरम्पराः सोढं सोढमेव प्रतिनिवृत्ताः । दयतामखिलानां दीन-दयार्द्र-हृदयो दयोद-

---

लोके ख्यातः । मञ्चानाम्=आसन्दीनाम्, मण्डलस्य, मध्यवर्त्ति, महत् =श्रेष्ठम्, व्यस्तमिदम्, सौवर्णम्=जाम्बूनदखचितम्, सिंहासनम्= राजासनम् । यथाधिकारम्=योग्यतानुकूलम् । अध्यवसन्=आरुरुहुः । सतारायाः="सतारा" इति ख्यातायाः, पुर्या वास्तव्याः=वासिनः । प्राप्तप्रतिष्ठाः=लब्धमानाः । सोपायनैः=सोपहारैः, राजतभाजनैः= रौप्यपात्रैः, सभाजिताः=सनाथिताः, कराः, एव, कोकनदस्य= रक्तकमलस्य, कुड्मलाः=कलिकाः, येषां ते । स्वोचितमञ्चान्= स्वयोग्यमञ्चान् ।

मेदःपाटस्य, वाटे=मार्गे, वास्तव्यः=निवासी । महामहः=महोत्सवः । "मह उद्धव उत्सव" इत्यमरः ।

प्राणसंशयापादिकाः=जीवनसन्देहाधायिन्यः । कष्टपरम्पराः= दुःखश्रेणीः । सोढं सोढम्=सहित्वा सहित्वा । प्रतिनिवृत्ताः= प्रत्यागताः । दयताम्=दयां करोतु । अखिलानाम्=समस्तानां भूमण्डलप्राणिनाम्, "अधीगर्थदयेशां कर्मणि" कर्मणि षष्ठी । दीनेषु= खिन्नेषु, दयार्द्रम्=कृपाकोमलम्, हृदयं यस्य सः । दयायाः, उदन्वान्=

न्वान् दामोदरः; यथैतेषां दयितवान्। नूनं रामं विना कोऽन्यः कोशलायाः सौभाग्य-भवनं भवेत्?

श्रूयते राम एव क्रूरं हृतवान्, राम एव च संन्यासिवेषमाकलय्य प्रच्छन्नरूपो महाराजेन सहैव दिल्लीमगमत्, सैन्धव-नियामक-वेषश्च महाराजस्य प्राणानप्यरक्षत्। ईदृशानामेवोदाराणामाचाराणां फलमेतद् यद् आदौ सन्देश-हरश्चरोऽप्यधुना कोङ्कण-देशस्यान्यतमो मण्डलेश्वरो राजा संवृत्त'। राजपुत्र-देशेऽपि च लब्ध-पारम्परीण-स्थावर-जङ्गम-सम्पत्को जयपुराधीश्वराणां परम-प्रीति-पात्रं समपद्यत।

धन्योऽसौ गौरसिंहोऽपि यो रसनारीमाहृतवान्, महासेना-समुद्र-वीचि-सहस्रैः कोङ्कण-देशं स्रावयितुकामं मायाजिह्ममपि पक्षिराज इव सुप्रसर्पं निभृतं हृत्वा, आनीय माया-भवने निरुद्धवान्। अत एव महाराज इममसाधारणं बन्धुं मन्वानो मण्डलेश्वर-पदेनामण्डयत्, अनुजं चैतस्यान्यतमं सेनापतिमकार्षीत्।

-सागरः। दाम=रज्जुर्यशोदार्पिता, उदरे यस्य सः, दामोदरः=वासुदेवः। दयितवान्=कृपा कृतवान्।

क्रूरम्=क्रूरकर्माणम्, क्रूरसिंहम्। आकलय्य=धृत्वा। प्रच्छन्न-रूपः=गुप्तवेषः। सैन्धवनियामकवेषः=अश्ववाहकनेपथ्यः। अरक्षत्=अपालयत्। सन्देशहरः=वार्ताहारी। चरः=भृत्यः। लब्धा=अधिगता, पारम्परीणा=पितृपितामहादिपरम्पराप्राप्ता, स्थावरा जङ्गमा च सम्पत्, येन सः परमप्रीतिपात्रम्=अत्युत्कृष्टस्नेहाधारः। समपद्यत=संवृत्तः।

महासेनैव समुद्रस्तस्य वीचिसहस्रैः। स्रावयितुम्=ब्रुडयितुम्। नाशयितुमिति यावत्। पक्षिराज इव=वैनतेय इव। सुप्रसर्पम्=शयितं सर्पम्। हृत्वा=चोरयित्वा।

अहह ! धन्या भगवती कोशला ! या मनोमात्रेण वृतस्य रामसिंहस्यापि प्रनष्टता-श्रवणेन जीवनं तृणाय मन्यमाना, समिद्धतमेऽग्नौ प्रवेष्टु प्रक्रान्तवती, कथ कथमपि च, मौनमूरीकृत्यावधूतवेषेण विधूतेतर-वासना-पूतेन हृदा भगवन्तं भूतनाथं चिरमाराधयाम्बभूव। तस्या एव तपसामेष पूरित-सकल-कामः परिणामः।

सत्यम् ! कलित-दुर्घट-घटना-नैपुण्यानां पुण्यानामेव फल-मिदं—यद् बाल्ये देवशर्म्म-भिक्षा-भाग-भोग-भागधेयाऽप्यधुना महाराजाधिराजेन निजकन्येव सोत्साहं रामसिंहस्य राज्ञी क्रियते। काऽन्या स्यादितोऽपि धन्य-धन्या !"—

इत्येवं परस्परमालपन्तः सहस्रशो जनाः परितः समुपतस्थिरे।

तावत्समीपमायातो वरयात्रा-समारोहः। एकतान-श्रुतिशतैः सुखेनाऽऽस्वाद्यानां वाद्यानां परतो वाद्यानि, रञ्जित-विविध-रङ्ग-भङ्गानां मतङ्गानां परतो मतङ्गाः, अनवरत-पातित-फेन-राजीना

अहह = हर्षे। अपिभिन्नक्रमः। मनोमात्रेणेत्येतदग्रे द्रष्टव्य। एवकार्थे च। वृतस्य = स्वीकृतस्य। समिद्धतमे = अतिप्रज्वलिते। प्रक्रान्तवती = प्रारब्धवती। अवधूतवेषेण = तपस्विनेपथ्येन। विधूताभिः = तिरस्कृताभिः, इतरवासनाभिः = अन्यकामनाभिः, पूतेन = पवित्रेण हृदा = चित्तेन। आराधयाम्बभूव = सेवयामास। पूरिताः = पूर्णता नीताः, सकला', कामाः = अभिलाषाः, येन सः। परिणामः = परिपाकः। कलितम् = प्राप्तम्, दुर्घटघटनानाम् = दुष्करसंयोगानाम्, नैपुण्यं यैस्तेषाम्। देवशर्मणः, भिक्षाभागस्य = याचनाद्यस्य, भोगे = भोजनादिनोपभोगे, भागधेयम् = भाग्य यस्याः सा। धन्यधन्या = अतिभाग्यवती।

एकतानश्रुतिशतैः = एकाग्रीकृतानेकश्रोत्रैः। आस्वाद्यमानानाम् = गृह्यमाणानाम्। रञ्जिताः = रक्तीकृताः, रञ्जिता विविधैः, रङ्गैः = वर्णैः, भङ्गाः = पत्रभङ्गाः, नामैकदेशे नामग्रहणात्, रचनाविशेषा अलकारार्थं क्रियामाणाः, येषा तेषाम्। मतङ्गानाम् = करिणाम्। अनवरतम् = सततम्,

खर-खुराग्र-समुद्धूत-धूलि-महान्धकारान्धीकृत-महाजीनां वाजिनां परतो वाजिनः, पीतारुणाऽऽद्यनेक-वर्ण-वर्णनीयाम्बराणां मणि-गण-प्रभा-प्रभासिताम्बराणां वीरवराणां परतो वीरवराः, नाना-चित्र-चय-चकितीकृतावलोचक-लोचन-व्रजानां ध्वजानां परतो ध्वजाः, तुण्ड-सौष्ठव-परिस्पर्द्धयग्र-व्यग्रीकृत-शकुन्तानां कुन्तानाञ्च परतः कुन्ताः,—इति स्मरण-मात्रेणापि पराधीना अलौकिक-सामर्थ्य-विहीना नवीनाः कथमिव वर्णयेयुः कवि-कोविदम्मन्याः ?

वरयात्रा-महासमारोहस्यैतस्य शेषभागे परिहित-महा-कञ्चुकैः, आबद्ध-पीतारुणोष्णीषैः, आमुक्त-मुक्ता-माणिक्य-वैदूर्य-

---

पातिताः फेनराजयः, यैस्तेषाम् । खरैः, खुराग्रैः, समुद्धूतानाम् = उत्थापितानाम्, धूलीनाम् = रजसाम्, महान्धकारेण, अन्धीकृता, महाजयः = महासङ्ग्रामाः, यैस्तेषाम् । वाजिनाम् = घोटकानाम् । पीतारुणाद्यनेकवर्णैः वर्णनीयानि = रञ्जनीयानि, प्रशस्यानि, वा, अम्बराणि = वसनानि येषां तेषाम् । मणिगणप्रभाभिः, प्रभासितम् = प्रकाशितम्, अम्बरम् = नभो वसनं वा यैस्तेषाम् । वीरवराणाम् = श्रेष्ठभटानाम् । नानाचित्रचयैः, चकितीकृताः = साश्चर्यीकृताः, अवलोचकानां लोचनव्रजा यैस्तेषाम् । तुण्डसौष्ठवपरिस्पर्धिना = त्रोटिसौन्दर्यप्रतिद्वन्द्विना, अग्रेण, व्यग्रीकृताः = विमनायिताः । शकुन्ताः = पक्षिणः, यैस्तेषाम् । कुन्तानाम् = भल्लानाम् । नवीनाः कविकोविदम्मन्याः कथं वर्णयेयुरिति सम्बन्धः । नवीनत्वादननुभूतत्वात्स्मरणासम्भवात्सुतरां वर्णनासम्भवः । तदुक्तम्—स्मरणमात्रेण पराधीनाः = अस्वाधीनाः । स्मर्तुमप्यशक्नुवन्त इत्यर्थः । अथास्ति कश्चिदन्यो वर्णनोपायो न वा ?—तत्राऽऽह—अस्ति परं सोऽपि नवीनेषु नास्ति, एतदेवाह-अलौकिकेन = वैदिकेन, योगादिमाहात्म्यजन्येन, सामर्थ्येन = शक्त्या, विहीनाः = रहिताः ।

परिहितमहाकञ्चुकैः = धारितविपुलचोलकैः । आबद्धानि = वेष्टितानि, पीतारुणानि, उष्णीषाणि यैस्तैः । आमुक्तानाम् = संसक्तानाम्,

हीरक-मरकत-पद्मरागाद्यगणित-मणि-गण-प्रभा-पुञ्ज-पिञ्जरीकृत-निज-मण्डलैः, कमल-मुकुल-कुलाऽऽकलित-हार-सौरभ-भार-प्रचाराऽऽकृष्ट-भ्रमद्-भ्रमर-निकर-झङ्कार-स्तूयमानैः, क्षत्रिय-वंशावतंसैः आवृतः, परस्सहस्र-मौक्तिक-जालावृत-सर्वाङ्गाऽऽकलिताऽऽलोचक-लोकन-लोभावह-शोभां नूपुर-शिञ्जितैर-खिलानां मनो हरन्तीं लोल लाङ्गलेन चामर-दोलनमनुकुर्वती-मुन्नतग्रीवां स्तब्धकर्णां हरितवर्णां वडवामेकामारूढः, सौवर्ण-शिल्प-सौष्ठवासादितारुण-सर्वाङ्गीण-वासाः, कुसुम-कोरक-रचित-हार-माला-कङ्कण-केयूरावतंस-ललामः, विविधालङ्कारालङ्कृतः,

---

मुक्ता-माणिक्य वैदूर्य्य हीरक-मरकत-पद्मरागादीनाम्, अगणितानाम् = असङ्ख्यातानाम्, मणीनाम्, गणस्य, प्रभापुञ्जैः, पिञ्जरीकृतानि, निजमण्डलानि यैस्तैः। कमलमुकुलकुलैः = सरसिजकोरकव्रातैः, आकलितानाम् = निर्मितानाम्, हाराणाम्, सौरभभारप्रचारेण = सौगन्ध्यभरप्रसारणेन, आकृष्टानाम्, भ्रमताम्, भ्रमराणाम्, निकरस्य, झङ्कारैः, स्तूयमानैः = स्तुतिगोचरीक्रियमाणैः, इत्युत्प्रेक्षा। क्षत्रियवंशावतंसैः = क्षात्रान्वयभूषणैः, आवृतः = वेष्टितः। श्रीमान् रामसिंह इति विशेष्यम्। परस्सहस्राणाम्, मौक्तिकानाम्, जालैः = समूहैः, आवृतैः = सञ्छन्नैः, सर्वैः, अङ्गैः, आकलिता = धारिता, आलोचकानाम् = द्रष्टृणाम्, लोकनलोभावहा = दर्शनलालसोत्पादयित्री, शोभा = छविः, यया ताम्। लोललाङ्गूलेन = चञ्चललूमेन। चामरदोलनम् = चामरचालनम्। अनुकुर्वतीम् = विडम्बयन्तीम्। उन्नतग्रीवाम् = उत्थितकन्धराम्। स्तब्धकर्णाम् = शङ्कुश्रोत्राम्। वडवाम् = अश्वाम्। राजपुताने तदन्तिकेषु च वरो वडवामारुह्य गच्छति। आरूढः = अधिष्ठितः। सौवर्णशिल्पस्य = चामीकरतन्तुकारुकृत्यस्य, सौष्ठवेन, आसादितानि = युक्तानि, अरुणानि = रक्तानि, सर्वाङ्गीणानि = सकलशरीरधारणीयानि, वासांसि, यस्य सः। कुसुमकोरकरचितैः = कुसुमकलिकानिर्मितैः, हारमालाकङ्कणकेयूरावतंसैः,

ताम्बूल-रसारुणिताधरः, प्रतिरूपमिव भगवतः कुसुमधन्वनः, अवतार इव माधुर्य्यस्य, विश्वेषां नयनानि सर्वेषाञ्च मनो मोदयन्, जितवार-धराधीशस्य श्रीवीरेन्द्रसिंहस्य कुमारः श्रीमान् रामसिंहो दृष्टः।

दृष्ट्वैव महाराष्ट्रराजं यावत् कुमार-रामसिंहस्योपरि प्रसारितं मौक्तिक-जालावली-ललित-प्रान्तं महापुण्डरीक-मञ्जिमामत्रं छत्रं वाहकोऽस्याऽऽकुञ्चयितुं यतते; तावद् "नैवं मैवमुद्वाह-महोत्सवे, अलमेतेनाऽऽचारेण"—इति देवेन वारितः पुनस्तथैवावतस्थे। सर्वे च वीरेन्द्रसिंहादयोऽवलोक्यैवमुदारहृदयं सहर्षमहाराजं "विजयतां विजयतां महाराजाधिराजः!"—इत्युच्चैर्जगदुः।

अथ द्वारसमीपमायाते वरे, अट्टस्था माङ्गलिक-गीति-गानपराः सुन्दर्यः सुमनसो ववर्षुः।

ललामम् = भूषण यस्य सः। "ललामं पुच्छपुण्ड्राश्वभूषाप्रधान्यकेतुषु" इत्यमरः। विविधैः, अलङ्कारैः, अलंकृतः = भूषितः। ताम्बूलरसारुणिताधरः = नागवल्लीदलद्रवरक्तौष्ठः। प्रतिरूपमिव = प्रतिकृतिरिव। कुसुमधन्वनः = कामस्य। माधुर्यस्य = सौन्दर्यस्य। अवतार इव = देहग्रहणमिव।

मौक्तिकजालावलीभिः, ललितः = रम्यः, प्रान्तः = गोलभागः, यस्य तादृशम्। महापुण्डरीकस्य = विशालकमलस्य, मञ्जिमा = सौन्दर्यस्य, अमत्रम् = पात्रम्, तत्। छत्रम् = आतपत्रम्। आकुञ्चयितुम् = मीलयितुम्। चक्रवर्तिनोऽग्रे छत्रचामरादि नान्यैर्धारणीयमिति मर्यादारक्षणार्थम्। अलमेतेनाऽऽचारेण = नाऽऽचरणीयोऽयं व्यवहारः। वारितः = नेषेधितः।

अट्टस्थाः = अट्टालिकाया विद्यमानाः। माङ्गलिकीनाम्, गीतीनाम्, गाने पराः = लग्नाः। सुमनसः = पुष्पाणि। "स्त्रियः सुमनसः पुष्पं प्रसून कुसुमं सुममि" त्यमरः।

ततो बहुभिराचार-व्यवहारैः सह द्वारपूजायां संवृत्तायां वरेण सह वीरेन्द्रसिंहादयो महाराष्ट्र-देश-दिवस्पतिश्चान्तः प्रविविशुः। श्यामसिंहस्य परमादरेण सन्तर्पिताः सर्वे आत्मानमपि विसस्मरुः।

अनुरागिणो हृदयमनुरागी वेत्ति, नापरः। चिरवियोग-ज्वाला-जालावलीढं हृदयं संयोगायातिलोलं भवति। प्रेयः-प्राप्तिः साकल्येन धैर्यं धुनोति। तत् को नाम साकल्येन वक्तुं पारयति पारस्परिकावलोकन-विकसित-विविध-भाव-भङ्ग-तुङ्ग-तरङ्गाऽऽकुलस्य हृदयस्य दशाम्?

एतैर्हि लज्जया बलादाकृष्येतस्ततः क्षिप्ताऽपि दृष्टिः शिथिलित-जाल-बन्धना शफरीव तडाग-तलमज्ञात-प्रचारा स्वयं परस्परम-

---

द्वारपूजायाम्=द्वारे स्थापितानां गणेशगौर्यादीनाम्, स्थितस्य वरस्य च सपर्यायाम्। द्वारशब्दस्य तात्स्थ्याल्लक्षणामाश्रित्य षष्ठयन्तेन विगृह्य समास इति सिद्धान्तः। एतेन द्वारशब्दस्य जडवाचकत्वेन पूजायाश्च चेतनकर्मकत्वेन षष्ठयन्तसमासानुपपत्तिमाश्रित्य सप्तम्यन्तसमासोपपत्तिचिन्तार्थं मनीषां क्षपयन्तः परास्ता इति वेदितव्यम्। संवृत्तायाम्=समाप्तायाम्, महाराष्ट्र-देशस्य, दिवस्पतिः=इन्द्रः। सन्तर्पिताः=सन्तोषिताः। विसस्मरुः=विस्मृतवन्तः।

अनुरागिण=प्रेमवतः। हृदयम्=अन्तःकरणम्। चिरवियोग-ज्वालाजालेन, अवलीढम्=व्याप्तम्। संयोगाय=मिलनाय। अतिलोलम्=अतिचपलम्। प्रेयःप्राप्तिः=प्रियस्य प्रियाया वा लब्धिः। साकल्येन=सर्वतो भावेन। धुनोति=चालयति। पारस्परिकावलोकनेन=आन्योन्यसाक्षात्कारेण, विकसितानाम्, विविधभावभङ्गानाम्, तुङ्गैः=उन्नतैः, तरङ्गैः आकुलस्य=विक्षिप्तप्रायस्य।

एतैः=अनुरागिभिः। आकृष्य=आकुञ्च्य। इतस्ततः=विषयान्तरे। क्षिप्ता=प्रेरिता। शिथिलितजालबन्धना=विश्रृङ्खलितानायबन्धा। शफरीव=मत्स्यस्त्रीव। स्त्रीजातिग्रहणं चापल्यातिशयद्योतनाय।

भिमुखीभवति। धैर्य्येण गृह्यमाणाऽपि गात्रयष्टिः पुनः पुनः कम्पते। ताल-दल-व्यजन-वीजनैः कौशेय-पट्टाम्बर-सम्मर्दैश्चामरोद्धूननै-श्चापह्रियमाणोऽपि मुहुर्मुहुर्निर्झरधारां प्रसार इव प्रस्रवति स्वेद-बिन्दु-व्रजः। अरुण-वसन-महामाणिक्य-पद्मराग-निचय-प्रभा-सहस्रैररुणीक्रियमाणाऽपि भूयस्ताली-दल-द्युतिमासाद-यति कपोल-पाली। उभयोः पितृवन्मान्यौ नेदीयांसौ देवशर्म्म-गणेशशास्त्रिणौ। वीरेन्द्र-गौर-श्यामाद्योऽभ्यर्णस्था बान्धवाः। सर्वथा रक्षणीय एव विनयो महाराजाधिराजस्य सम्मुखे। तथाऽप्येनयोरावेगः, जडता, स्तम्भः, रोमोद्गमश्च क्रियासमभिहारेण सधैर्य्यं रोरुध्यमाना अपि प्रकटीभवन्त्येव। पाणिग्रहण-समये कैर्भावैराली‌ढमेनयोर्हृदयमिति तावेव वित्तः।

ऊर्ध्वतनशालासु सुवासिन्यो मङ्गल-गीतानि गायन्ति। उद्वाह-समये ब्राह्मणा ब्रह्मघोषैः पारिषदानां कर्णौ पावयन्ति। प्रासादस्य

तडागतलम्=सरोवराधोभागम्। अज्ञातप्रचारा=अविदितचलना। अभिमुखीभवति=सम्मुखीभवति। गृह्यमाणाऽपि=धार्यमाणाऽपि। तालदलस्य, व्यजनानाम्=पवनसाधनानाम्, वीजनैः=सञ्चालनैः। चामराणाम्, उद्धूननैः=हिल्लोलनैः। निर्झरधारां प्रसार इव=वारिप्रवाहजलाना प्रसरणमिव। प्रस्रवति=प्रवहति। स्वेद-बिन्दुव्रजः=घर्मोदकपृषद्गणः। अरुणवसनानाम्, महामाणिक्यानाम्, पद्मरागाणाञ्च निचयस्य, प्रभासहस्रैः=अगणितच्छटाभिः। अरुणीक्रियमाणाऽपि=लोहिततामापाद्यमानाऽपि। तालीदलद्युतिम्=पीतिमानम्। आसाद-यति=प्राप्नोति। कपोलपाली=गण्डस्थलम्। नेदीयांसौ=निकट-स्थितौ। अभ्यर्णस्थाः=समीपस्थाः। विनयः=नम्रता। सधैर्यम्=सधीरतम्, रोरुध्यमाना अपि=वारं वारं गोप्यमाना अपि। प्रकटी-भवन्ति=आविर्भवन्ति। वित्तः=जानीतः।

ऊर्ध्वतनशालासु=चन्द्रशालासु। ब्रह्मघोषैः=वेदध्वनिभिः। पारिष-दानाम्=परिषदि भवानाम्, मण्डपे तिष्ठताम्। पावयन्ति=पवित्रयन्ति।

द्वारे वादका वाद्यानि वादयन्ति। क्षणे क्षणे कुमार्य्यः कुसुमानि वर्षन्ति—इति घनानन्दानुभव-पुरस्सरं समाप्तोऽसौ कोशलापरिणय-महोत्सव'। रामविरहेण चिरग्लाना कोशला पुना रामेण सनाथिता—इति राम-प्राप्ति-सकल-सौभाग्य-भवनभूतां कोशलां दर्शं दर्शं मोमुद्यन्तेतमां पौराः।

शान्तोऽधुना देवशर्म्मणो गौर-श्यामयोश्च चिन्ता-चक्रस्य महाज्वरः। सुखेन निरश्वसद् वीरो वीरेन्द्रसिंहश्च विलोक्य राज-पदालङ्कृतं गृहीत-सुकुल-कन्या-पाणिपद्मं निजतनयम्। कृतकृत्य-तामन्वभूद् यजमानानन्दानन्दितो गणेशशास्त्री। क्रमेण रामसिंह-तिरस्कारस्य राज्य-दानादि-च्छलेन विहितप्रायश्चित्त इव च सन्तोप-मासलाद महाराजः। कोशलारामयोः शुद्धोऽनुरागो निर्वाधो निष्प्रतिबन्धोऽधुना क्रमतो यथासमयमासादितैरतिदुर्लभैस्तैस्तैर्वि-लासैः साफल्यमापेदे।

घनस्य=सान्द्रस्य, आनन्दस्य, अनुभवपुरस्सरम्। कोशलायाः, परिणयस्य, महोत्सव =महामहः। चिरग्लाना=दीर्घकालखिन्ना। सनाथिता=सभाजिता। रामप्राप्त्या=राममिलनेन, सकलसौभाग्यानाम्, भवन-भूताम्=आश्रयभूताम्। मोमुद्यन्तेतमाम्=अतितरा प्रसीदन्तितमाम्। पौराः=नागरिकाः। श्रीरामभद्रायोध्यावृत्तान्तोऽपि व्यक्तीकृतोऽनेन प्रका-रेणेति समासोक्तिरलंकारः।

गृहीतम्, सुकुलस्य=शोभनान्वयस्य, कन्यायाः, पाणिपद्मं येन तम्। कृतकृत्यताम्=विहितविधेयताम्। यजमाननान्देन, आनन्दितः=हृष्टः। न हि ब्राह्मणाना पृथक् स्वार्थ इति विदन्ति सर्वे। विहितम्, प्रायश्चित्तम्=पापविशोधनं येन सः। निर्वाधः=निर्विघ्नः। निष्प्रति-बन्धः=नीरोधः। विलासैः=हावभावादिभिः।

× × ×

अधुना पुण्यनगरोपकण्ठस्थायाम्, तारा-मण्डल-चुम्बि-सौधाग्र-शत-विहितामरावती-विडम्बनायाम्, नीलगिरि-प्रतिम-महामत्त-मतङ्गज-प्रकाण्ड-गण्ड-मण्डल-सोस्रयमाण-मदधाराऽभ्युक्षित-घण्टा-पथायाम्, अनवरतसरीस्रियमाणाजानेय-सहस्र-खर-खुराग्र-खननो-द्धूत-रेणुका-पटल-घटाऽऽलिङ्गित-प्राचीर-परिवेष्टितायाम्, निरन्तर-महाराष्ट्रराज-जयध्वनि-समाकर्णन-सञ्जात-संस्कार-भार-तदानुपूर्वी-रटन-पटु-कीर-सारिकादि-चङ्क्रम्यमाण-विटपावृतोद्यान-कदम्बा-याम्, सतारा-नगर्यां महोद्यान-वर्त्तिन्येकस्मिन् महाप्रासादे सकु-टुम्बो महाराष्ट्रपतिर्वसति।

कदाचन पाणिगृहीत्या विहरन्, कदाचन कुमारं लालयन्, कर्हिचित् सैनिकानां व्यूह-रचना-कौशलं शस्त्रक्षेप-लाघव-कौश-

---

पुण्यनगरस्य, उपकण्ठस्थायाम्=समीपस्थायाम्। तारामण्डलचु-म्बिभिः, सौधाग्रशतै विहिता, अमरावत्याः=आखण्डलनगर्याः, विड-म्बना=अनुकृतिर्यया तस्याम्। नीलगिरिप्रतिमानाम्=नीलाचलतुल्या-नाम्, महामत्तानाम्, मतङ्गजप्रकाण्डानाम्=प्रशस्तकरिणाम्, गण्डमण्डलेभ्यः, सोस्रूयमाणया=अतिशयेन क्षरन्त्या, मदधारया, अभ्यु-क्षिताः=सिक्ताः, घण्टापथाः=राजमार्गाः, यस्या तस्याम्। अनवर-तम्=सततम्, सरीस्रियमाणानाम्=अतिशयेन सरताम्, आजानेया-नाम्, सहस्रस्य, खुराणाम्, खननात्, उद्धूतानाम्=उद्गतानाम्, रेणुकानाम्, पटलस्य, घटया, आलिङ्गितेन=आश्लिष्टेन, प्राचीरेण, परितः वेष्टितायाम्, निरन्तरम्, महाराष्ट्रराजस्य, जयध्वनेः, समाकर्णनेन, सञ्जातेन, संस्कारभारेण=भावनातिशयेन, तदानुपूर्वीरटने=तत्क्रमानुसन्धान-पूर्वकमापणे, पटुभिः, कीरसारिकादिभिः, चङ्क्रम्यमाणैः=क्रम्यमाणैः, विटपैः, आवृतानि=आच्छन्नानि, उद्यानकदम्बानि, यस्यां तस्याम्। महोद्यानवर्त्तिनि=विस्तीर्णनिष्कुटान्तर्गते।

पाणिगृहीत्या=भार्यया। व्यूहरचनायाः=सैनिकस्थितिप्रकारनिर्माणस्य,

लञ्च परीक्षमाणः, कर्हिचिच्च सैन्धवैर्धावं धावं कन्दुकादि-क्रीडा-कुतूहलानि रचयन् विलसति । उत्तरस्यां मथुरापर्य्यन्तमेतस्यैव राज्यम् । एतद्राज्यवर्त्तिनो यवना अप्येतस्य सौजन्येन, औदार्य्येण, गाम्भीर्येण, सदाचारेण, सौहार्देन, करुणया, प्रेम्णा च वशंवदा इव सर्वेऽप्येतस्यैव प्रशंसाभिः समयं गमयन्ति । दिल्लीश्वरस्य महाभिमान-मतङ्गजोऽपि महाराजस्य कीर्त्ति-देवधुन्याः कृपाण-धारा-स्फालनैर्गम्भीरतरे प्रवाहे ग्राव-शकलवन्निमग्नः । ज्वाला-माला-जटालस्यास्य प्रताप-तपनस्य प्रकाशेन भारत-गौरवं विश्वेषा-मन्तराकाशे प्रचकाशे । धूमेनैव चास्य ध्वान्तैरिवान्धीकृतं दिल्लीश्वरस्य स्वान्तम् । एतद्ध्वजोद्धूननैरिव विधूनितं प्रत्यर्थिनां धैर्य्यम्, एतच्चाम-राऽऽहत-समीर-प्रसारैरिव शोषिता निस्साराः पर-मनोरथ-कासाराः ।

एकदा केतकी-सौरभ-वासित-पानीय-पूरित-पात्रस्थ-मरन्द-तुन्दिल-कुसुम-वृन्दामोदान्ध-मधुप-झङ्कृतायां नागदन्तिकाऽव-

---

कौशलम्=नैपुणीम् । सैन्धवै=घोटकैः । कन्दुकादिक्रीडाया'='पोलो' इत्याङ्ग्लदेशे ख्यातायाः, कुतूहलानि=कुतुकानि । महाभिमान एव मतङ्गज इति रूपकम् । महाभिमानस्य सविशेषणत्वेऽपि नित्यसापेक्ष-त्वात्समासः । कीर्त्तिरेव, देवधुनी=स्वर्धुनी, जाह्नवी, तस्याः । ग्रावशकल-वत्=अश्मखण्डवत् । निमग्न.=ब्रुडितः । ज्वालमालया, जटालस्य= वृद्धि गतस्य । प्रताप एव तपन.=दहनः, तस्य । ध्वान्तैः=अन्धकारैः । स्वान्तम्=मानसम् । विधूनितम्=समुच्चालितम् । निःसाराः=निस्त-त्वाः निर्जलाः, परमनोरथा'=शत्रुकामा एव, कासाराः=सरासि । "कासारः सरसी सरः" इत्यमरः ।

एकदाऽट्टालिकाया शयानो महाराजः स्वप्नममुमपश्यदिति सम्बन्धः । अट्टालिका विशिनष्टि—केतक्याः, सौरभेण वासितेन पानीयेन पूरितेषु पात्रेषु तिष्ठताम् मरन्दतुन्दिलानाम् कुसुमानाम् वृन्दस्य, आमोदेन= सुगन्धेन, अन्धैः=मत्तैः, मधुपै, झङ्कृतायाम्=नादितायाम् ।

लम्बि-कराल-करवाल-निपतद्दीपावली-प्रतियातना-प्रभूत-प्रभूत-प्रभा-प्रभासितायामत्युच्चतया पदार्पित-चित्रगतस्येव समस्त-सतारा-गृहोद्यान-वापी-तडाग-शाला-मन्दिर-चत्वरादेः ससौष्ठवावलोकन-सौकर्य्य-प्रदायां परितो गवाक्ष-मण्डलावृतायां ताराग्रह-मण्डलं स्पृशन्त्यामिवाट्टालिकायां गजदन्त-पर्य्यङ्के पय.फेन-निभायां तूलिकायां शयानो महाराजः स्वप्नममुमपश्यत्—

यत् "सौवर्ण-पर्य्यङ्के महोपधानावलम्बित-पृष्ठदेशोऽवरङ्गजीव उपविष्टोऽस्ति । कदाचित् पादौ प्रसारयति, कदाचिदाकुञ्चयति, कदाचिद्दक्षतः कदाचिद्वामतश्च परिवर्तते, कदाचिदुष्णीपिकां क्षिपति, कदाचित् व्यजनेन सम्यग् वीजयन्तमपि दासेरं "बलेन वीजय, बलेन" इति आक्रुश्यति, कदाचित् स्वेदाक्लिन्नं कञ्चुकं दूरतः क्षिपति । मुहुर्मुहुः पानीय-पूरितं जाम्बूनद-भाजनं विशिथिलेन करेणोत्थाप्य मुखे योजयति, मुहुरुष्णं निश्वसिति, मुहुर्वक्षसि करं

नागदन्तिकावलम्बिषु=शङ्कुदोलायमानेषु, करालेषु=खरेषु, करवालेषु=खड्गेषु, निपतन्त्या, दीपावलीप्रतियातनया=आलोकनिचयप्रतिकृत्या, प्रभूताभिः=समुत्पन्नाभिः, प्रभूतप्रभाभिः=विपुलकान्तिभिः, प्रभासितायाम्=भ्राजमानायाम् । ससौष्ठवम्, यदवलोकनसौकर्यम्, तत्प्रदायाम्=तद्दायिन्याम् । ताराग्रहाणां, मण्डलम् । स्पृशन्त्याम्=चुम्बन्त्याम् । अत्युच्चायामिति यावत् । गजदन्तपर्यङ्के=हस्तिदशननिर्मिते पल्यङ्के । पयःफेननिभायाम्=क्षीरडिण्डीरसमायाम् । तूलिकायाम्=तूलवत्याम् । शय्यायामिति यावत् । अमुम्=वक्ष्यमाणम् ।

सौवर्णपर्यङ्के=चामीकरखचितपल्यङ्के । महोपधाने=महोपबर्हे, अवलम्बितः=आश्रितः, पृष्ठदेशो यस्य सः । उष्णीपिकाम्=लघूष्णीषम् । "टोपी" इति हिंदी । दासेरम्=भृत्यम् । आक्रुश्यति=भर्त्सयति । जाम्बूनदभाजनम्=हिरण्यपात्रम् । विशिथिलेन=दुर्बलेन । योजयति=मेल-

विन्यस्य मन्त्र-कीलितो जीर्णाजगर इव स्तब्धनयनोऽवतिष्ठते, कदाचिच्च ललाटतले पिच्छिलीभवत्स्वेदराशिं करेणापहृत्य, श्वास-प्रश्वास-च्छलेन लशुन-प्रियाल-पलल-विस्र-पूतिगन्धोद्गारैस्मश-कानपि मूर्च्छयन् मन्दं मन्दमेवं रटति यद्—

"हा ! हतोऽस्मि महाराष्ट्र-वञ्चकेन !! एष मम नासामिव छित्वा कूर्चमिव समूलमुल्लूय श्मश्रु-युगलमिवोत्पाट्य पादत्राणेने-वाऽऽहत्य निष्ठीवनेनेवाभिषिच्य धूलभिरिव चान्धीकृत्य कारा-गारान्निष्क्रान्तः ! आ ! कथमेव मया प्रथम-साक्षात्कार एव खड्गैर्न खण्डशः कृतः ! संन्यासिभिरालपन् पलायितुकामोऽवगतोऽ-पि कथन्न सवास-भवनो दग्धः ? एतस्य भोज्येषु गरलं मेलयित्वा भवने सर्पान् क्षिप्त्वा वा कथन्नैव कालाजगर-जठर-ज्वलन-ज्वाला-पतङ्गः कृतः ।

यति । ननु पिबति । मन्त्रैः कीलितः=यन्त्रितः । निर्विषीकृतः इति यावत् । जीर्णाजगर इव=वृद्धमहासर्प इव । स्तब्धनयनः=स्थगितनेत्रः । पिच्छि-लीभवत्स्वेदराशिम्=अधिकीभवद्धर्मजलम् । लशुनस्य=रसोनस्य, प्रिया-लस्य=ग्रन्थकस्य, "प्याज" इति ख्यातस्य, पललस्य=मांसस्य, च, यः, विस्रः=दीर्घकालरक्षितविकृतमांसगन्धः, पूतिगन्धः=दुर्गन्धः, तस्य, उद्गारैः=उद्वमनैः । "पूतिगन्धिस्तु दुर्गन्धो विस्रं स्यादामगन्धि यत्" इत्यमरः । मूर्च्छयन्=मोहयन् । दुर्गन्धस्यात्युत्कटत्वाद् दुर्गन्धप्रियानपि खेदयन्निति यावत् ।

नासाम्=घोणाम् । छित्वेव=सङ्कर्त्येव । उल्लूय=उच्छिद्य । उत्पाट्य=उन्मूल्य । पादत्राणेन=उपानहा । निष्ठीवनेन=थूत्कारेण । अन्धीकृत्य=निर्लोचनीकृत्य । अवगतः=बुद्धः । वासभवनेन सहितः, सवासभवनः । क्षिप्त्वा=सम्प्रेर्य । कालाजगरस्य, जठरज्वलनज्वाला-याम्, पतङ्गः ।

अहह ! निर्गतोऽसौ महाशत्रुरत्रुटित-केशाग्रः । किं करोमि, न मे चिन्ता शाम्यति, पश्चात्ताप-तपनोऽयं तापयतितमाम् । प्रसिद्धिं गता मम निष्फल-यत्नता, निखिला अपि मे प्रजाः शत्रुभूताः । पथि मामवलोक्य बालोऽपि हसति, धिङ् माम् ! धिक् च मम क्लीवं जीवनम् !! अत्राऽऽगत्य शिवेन स्वाचारेण स्व-पौरुषेण च दिल्ली-वास्तव्या अपि बहवो वशंवदा विहिताः । किमन्यत् तनयोऽपि मम मायाजिह्मस्तमेव समये समये प्रशंसति । दुहिता रसनारी च तद्गतप्राणाऽपक्षीयते । हा हतोऽस्मि ! अस्तं प्रयातो मे प्रताप-तपनः !!"

जागरे हि, "एक-सम्बन्धि ज्ञानमपर-सम्बन्धि-स्मारकं भवति" स्वापे तु, "एकसम्बन्धि-साक्षात्कारोऽपर-सम्बन्धि-साक्षात्कार-कारको जायते"—इति रसनारी-शब्द-साक्षात्कारात्परं प्रत्यक्षीकृतमिव यद्—

एकतो द्वारमुद्घाट्य निःशब्दं रुदती, वाष्प-धारा-स्नपित-स्तन-द्वया, अस्थि-चर्म्म-मात्र-शेषा, सामर्थ्य-विहीनतयाऽयथोचित-पाद-विन्यासा, कटि-पर्य्यन्तावलम्बि-केशपाशो, धैर्य्य-विरहात् स्खलदवगुण्ठन-वसना सवेगं स्वपितुः सम्मुखमागता रसनारी ।

अत्रुटितकेशाग्रः=अछिन्नकेशमुखभागः । तस्य किमप्यनिष्टं न जातमिति भावः । क्लीबम्=नपुंसकम् । अनावश्यक पुरुषाणां स्त्रीणाञ्च कृते । अपक्षीयते=अपचीयते । प्रतापतपनः=प्रतापभानुः ।

जागरे=जाग्रदवस्थायाम् । एकस्य, सम्बन्धिनः=संसर्गिणः, ज्ञानम्=बोधः । यथा "पूर्वत्रासिद्धमि" त्यत्र पूर्वशब्दस्मरणम्, यथा वा मातरि पितरि च ज्ञाते पुत्रस्य स्मरणम् । स्वापे=स्वप्नावस्थायाम् । एकस्य सम्बन्धिनः, साक्षात्कारः=प्रत्यक्षम् ।

सामर्थ्यविहीनतया=शक्तिराहित्येन । अयथोचितपादविन्यासा=अयथायोग्याङ्घ्रिस्थापना । स्खलदवगुण्ठनवसना=निपतदवगुण्ठनवस्त्रा । सवेगम्=सजवम् ।

दृष्ट्वैवैनां कोपाऽऽकुलः समवादीद्वरङ्गजीवो यत्—"कर्कशे ! मम शत्रुं स्मरन्ती, उन्मादावस्थां नाटयन्ती, मुहुर्मुहुर्मां पीडयसि । तदौषधमेतस्य समुचितो दण्डः । अस्मिन्नपि क्षणे प्रकृतिं न यासि चेत्ताडयसे"—

श्रुत्वैतद् विस्फार्य्य नयने निरीक्ष्य तम्, तादृशमरुणैरपाङ्गैर्दहन्तीव स्फुरितेनाधरेण शपमानेव, उच्चस्वरेण रसनारी—"नोन्माद', प्रकृतिं यामि, स्वयमात्मानं दण्डयामि, शाम्यतु शत्रु-शातनस्य भवतः पीडा"—इति व्याहृत्य स्वतेजसा सदासेरं दिल्लीश्वरमपि धर्षयन्ती, नागदन्तिकावलम्बितामेकां छुरिकां त्सरौ गृहीत्वा, झटिति कोशादाकृष्य, 'ईदृशजीवनान्मरणं श्रेय'—इति कथयन्ती, बलेनाऽऽहृत्य स्ववक्षो विददार, रुधिर-धाराभिश्च समं भूमौ निपपात ।

दशामेतां स्वप्ने पश्यन्, स्वयं केनापि बलेनाऽऽहत इव, "हा हा ! हन्त हन्त ! कष्टं कष्टम् ! विरम विरम !" इति विलपन् झटित्युत्थाय करौ प्रसार्य्य, "उत्तिष्ठ, एषोऽस्मि"—इति कथयन्, सपदि पर्य्यङ्कादवतीर्य्य, प्रस्खलन्निव कोणात् कोणे समधावद्

कर्कशे !=कठोरे ! । उन्मादावस्थाम्=कामकृतामुन्मत्तताम् । नाटयन्ती=अभिनयन्ती । दण्डः=शासनम् । प्रकृतिम्=स्वाभाविकावस्थाम् ।

अपाङ्गैः=नेत्रप्रान्तैः । दहन्तीव=ज्वालयन्तीव । प्रस्फुरितेन=चपलितेन । शपमानेव=अनिष्टं कथयन्तीव । शत्रुशातनस्य=रिपुनाशनस्य । धर्षयन्ती=भीषयन्ती । त्सरौ=मुष्टौ । श्रेयः=कल्याणम्, शोभनम् । आहृत्य=प्रहारं कृत्वा । विददार=द्विधा कृतवती । रुधिरधाराभिः=लोहितप्रवाहैः ।

बलेन=बलात्कारेण । आहत इव=ताडित इव । प्रस्खलन्निव=

महाराजः। तावद् व्यजन-चालकेन—"महाराज! महाराज!! अवधीयताम्, स्वप्नोऽसौ, स्वप्नोऽसौ"–इति साम्रेडनमुक्तश्चक्षुषी सम्मृज्य समद्राक्षीत्—यद् न तत्र रसनारी, न वाऽवरङ्गजीवः।

ततः स्वप्नोऽयमिति जानानोऽपि वञ्चित इव, मुग्ध इव, दीर्घमुष्णं निश्वसन्, तेनैव सधडत्कृतिना वक्षसा धमद्धमद्ध-मन्तीभिर्धमनीभिर्लोल-लोलाभ्यां लोचनाभ्यां, शुष्कतरेण च कण्ठेन निर्वृत्यै पुनः शयनीयमधिष्ठितः। करयोरङ्गुलीः सङ्ग्रथ्य, हस्तौ सप्रसारमुत्तानीकृत्य, वदनं व्यादाय, नाडीः संस्तभ्य, जृम्भयाऽऽलस्यमिवोद्गीर्य्य, किञ्चिज्जलं पीत्वा, शुष्कप्रायां गल-नलि-कामार्द्रयित्वा, दुःस्वप्न-जनितारिष्ट-शङ्कां निवर्त्य, भगवन्तं नारायणं मातरं दुर्गां कुक्कुटञ्च स्मृत्वा पुनः शिश्ये। सान्द्र-तन्द्रा-मुद्रित-नयनस्यास्य सपदि पुनरङ्गान्यालिलिङ्ग निद्रा।

स्वप्न-जर्जरीकृत-निद्रस्य सुप्तोत्थितस्य पुनः शयनेऽपि न भवत्येव सुषुप्तिरिति कथमपि सुप्तोऽप्येष पुनरपश्यद् यद्—ज्वर-जर्ज-

---

निपतन्निव। अवधीयताम्=समाश्वस्यताम्। सम्मृज्य=सम्मर्द्य।

जानानोऽपि=निश्चिन्वानोऽपि। धमनीभिः=शिराभिः। लोल-लोलाभ्याम्=अतिचपलाभ्याम्। निर्वृत्यै=सुखाय। शयनीयम्=विष्टरम्। सप्रसारम्=प्रसारणपूर्वकम्। उत्तानीकृत्य=उत्थाप्य। व्यादाय=विस्फार्य। गलनलिकाम्=कण्ठस्रोतः, दुःस्वप्नजनितस्य, अरिष्टस्य=दुर्योगस्य, शङ्काः। कुक्कुटम्=एतन्नामक ब्राह्मणविशेषम्।

वाराणस्या दक्षिणेऽस्ति कुक्कुटो नाम वै द्विजः।
तस्य स्मरणमात्रेण दुःस्वप्नः सुखदो भवेत्॥

इति स्कान्देऽभिहितत्वात्। गजेन्द्रमोक्षणपाठोऽपि दुःस्वप्नफलनाशक इति स्मर्यते। शिश्ये=सुष्वाप। सान्द्रया=घनीभूतया, तन्द्रया, मुद्रिते, नयने, यस्य तस्य। आलिलिङ्ग=आशिश्लेष।

स्वप्नेन, जर्जरीकृता, निद्रा, यस्य तस्य। सुषुप्तिः=स्वप्नविरहितस्वापः।

रितो जराजीर्णो जयपुर-ज्या-जानिर्महाराजो जयसिंहः काञ्चन-पर्य्यङ्कमधिष्ठितः, महोपबर्हाश्रितः, अर्द्धोपविष्टः, किञ्चिदुच्छ्वसन्, वाल-व्यजनेन वीज्यमानः, भव-रोग-भेषज-भूतानि भगवन्नामानि भज्यमानेन स्वरेण जपन् स्वाभिमुख एव स्थितोऽस्तीति। दृष्टवांश्च यज्जयपुरेश्वरः किञ्चित् स्वाभिमुखं परिवृत्य निजेन सहैवमालपितवान्—

जय०—वीर ! दिष्ट्या मम चरम-निश्वास-विमोक्षणात् प्रागेव समुपस्थितोऽसि ! त्वां दृष्ट्वा भारतभुवं पुत्रवतीं मन्वानः सुखेन प्राणानुत्स्रक्ष्यामि। न मे सामर्थ्यमुत्थायाऽऽश्लेष्टुमिति न गृह्यतां मम दोषः।

स्वयम्—महाराज ! एवमल्पीयसा समयेनेदृशीं दशामापत्स्यते देवः—इति स्वप्नेष्वपि नाभूदनुभवः।

जय०—देहः क्षणभङ्गुरः, तत्रापि च समयेऽस्मिन् देहत्याग एव मे हर्षदः।

स्वयम्—देव ! किमिति ?

जय०—तथैव प्रतिज्ञातवानस्मि—यद् दिल्लीं गतो भवानवहेल्येत चेत् प्राणांस्त्यक्ष्यामि, बहुशश्च साभिमानमुक्तवानस्मि यद्—न भवत्यस्मादृक्षाणां क्षत्रियाणां भग्ना प्रतिज्ञा। तद्भवन्तं मैत्र्या

जयपुरस्य, ज्या=भूमिः, जाया यस्य सः। जयपुरज्याजानिः। "जायाया निङ्"। भवरोगस्य भेषजभूतानि=औषधायमानानि।

दिष्ट्या=भाग्येन। चरमनिश्वास-विमोक्षणात्=अन्तिमश्वासत्यागात्। मरणादिति यावत्। समुपस्थितः=समुपायातः। उत्स्रक्ष्यामि=त्यक्ष्यामि। न गृह्यताम्=नावधार्यताम्।

आपत्स्यते=प्राप्स्यति। अनुभवः=सम्भावना।

क्षणभङ्गुरः=अत्यल्पसमयनाश्यः।

अवहेल्येत=तिरस्क्रियेत। भग्ना=त्रुटिता। महायन्त्रणाम्=

विश्वास्य दिल्लीं प्रेष्य, महायन्त्रणामनुभावितवानस्मि । तदैवं कल्मषमलीमसेन देहेन नाहमात्मानं कलुषयितुमुत्सहे ।

स्वयम्—[कर्णौ पिधाय] देव ! शान्तं पापम् ! शान्तं पापम् !! [अञ्जलिं बद्ध्वा] महाराज ! नास्य विश्वास-घातस्याल्पिष्ठमपि कारणं देवः । दिल्ली-कलङ्को वा मम दुरदृष्टानि वा कारणम् । अत्रभवतस्तु आशिषामेष परिणामो यज्जीवन् निवृत्तोऽस्मि-इत्यस्थाने ग्लानिः ! त्रायतां त्रायतां क्षत्रियराजः !! मादृशान् हेतूकृत्य क्षत्रिय-वंशावतंसानां युष्मादृक्षाणामस्मत्परम-पूज्यानां लेश-मात्रेणापि क्लेशः शुभोदर्क-विघटक एव स्यात् । मा मां ग्लपय ! न मे जीवनं मलिनय !! अवरङ्गेऽप्रीतिङ्गतश्चेत् तत्सम्बन्ध-सूत्रं त्रोटयित्वा स्वतन्त्रो राजपुत्र-राज्यसिंहासनमलङ्करोतु देवः । ससेनः सकोशः सप्रजोऽहं सन्नद्धोऽस्मि चरणौ सेवितुम् । श्रीमति अवरङ्गेन युयुत्सौ संवृत्ते, मरुधराधीशोऽपि ततो दिल्ली-कलङ्क-शोणित-पङ्क-चर्चा-व्याकुल-कृपाणादुदयपुराधीश-श्रीराज-सिंहात्, इतश्च दिल्ली-दुरित-दर्प-दलन-दीर्घ-भुजदण्डोद्यत्प्रचण्ड-दण्डादत्रभवतो बिभ्यद्गत्या मैत्रीमेव रक्षिष्यति । मयि च प्रपन्ने

विपुलं मानसिक खेदम् । कल्मषमलीमसेन=पापमलिनेन । कलुषयितुम्=दूषयितुम् । उत्सहे=समर्थो भवामि ।

अल्पिष्ठम्=न्यूनतमम् । जीवन्=प्राणान् धारयन् । निवृत्तः=प्रत्यागतः । अस्थाने=अनवसरे । हेतूकृत्य=कारणीकृत्य । शुभोदर्कस्य=शुभपरिणामस्य, विघटकः=नाशकः । स्वतन्त्रः=अकरदः । सकोशः=सनिधिः । युयुत्सौ=योद्धुमिच्छौ । दिल्लीकलङ्कशोणितपङ्कस्य, चर्चया=सम्मर्देन, व्याकुलः कृपाणः, यस्य तस्मात् । दिल्लीदुरितस्य=दिल्लीपापस्य, अवरङ्गजीवस्य दर्पदलनाभ्याम्, दीर्घाभ्याम्, भुजदण्डाभ्याम्, उद्यन्=उदयं प्राप्नुवन्, प्रचण्डः, दण्डः=दमन यस्मात्तस्मात् ।

सर्वोऽपि दक्षिण-देशोऽत्रभवत' स्वेदेन सह स्व-शोणितं पातयितुं सज्जोऽस्ति, एवमस्माकं महामण्डले परस्परमैक्ये सञ्जाते के नाम वराका मौद्गलाः ? का वाऽल्पीयस्येषां शक्तिः ? स्मृत्वाऽपीदृशमैक्यमस्माकं स्फुरति मे बाहुः, उत्साहैः धमन्ति च धमन्यः, त्यज्यतां विश्वास-घातकस्य खरतरस्यास्य अवरङ्गहतकस्य सङ्गः । पुनर्भारताभिजन-प्रताप-पताका दोधूयन्तां हिम-सानुषु, अकूपार-कूलेषु च । स्पृशतु च भारतीय-भेरी-नादः पारसीकानाम् , आरव्याणाम् , काम्बोजीयानाम् , त्रिवृत्तानाम् , चीनानाम् , वर्मणाम् , सिंहलानाञ्च कर्णम् !!

जय०—वीर ! तथैवाचिरात्सर्वं सम्पत्स्यते, किन्तु वृद्धस्य मे सत्यप्रतिज्ञता-महाव्रतं मा जर्जरय !

स्वयम्—[किञ्चिदुच्छ्वस्य] महाराज ! जाज्वल्यमाने यवन-प्रताप-तपने कथं सर्वं तथैव सम्पत्स्यते ?

जय०-वीर ! यवनानां प्रताप-तपनोऽसौ तथा विलयं यास्यति; यथैतस्याऽऽख्यानकमपि न श्रोष्यते परतः ।

स्वयम्—महाराज ! भवादृशे गृहीत-सेनापति-कार्ये कथं यवन-राजस्य विपच्छङ्का ?

जय०-एषोऽहमपि परलोकं प्रस्थितप्रायः ।

स्वयम्—देव ! तथाऽपि वीरसू राजपुत्र-भूमिः । अत्रभवति भारतं विरहय्य लोकान्तरं सनाथितवत्यपि कुमाररामसिंहस्तथैव

बिभ्यत्=भय कुर्वाणः । प्रपन्ने=शरणागते । धमन्यः=नाड्यः । धमन्ति=प्रफुल्ला भवन्ति । हिमसानुषु=प्रालेयाद्रिनितम्बेषु । अकूपाराणाम्=वारिधीनाम् , कूलेषु=तटेषु च । त्रिवृत्तानाम्="त्रितानियाँ" इति ख्यातानाम् । वर्मणाम्="वर्मी" इति ख्यातानाम् । अन्ये स्फुटाः, व्याख्याताश्च प्राक् ।

आख्यानकम्=कथानकम् ।

मर्य्यादया सेनापति–कार्य्यं निर्वक्ष्यति—इति कथ सम्भाव्यते भवत्कुल–कृपाणावलम्बस्य प्रलम्बस्य यवन–राज्यस्य शैथिल्यम् ?

जय०—[उच्छ्वस्य] वीर ! सत्यं वक्षि, मयि महाध्वन्य–ध्वन्ये संवृत्तेऽपि न वीर-विरहिता भवेद् भारत-भूमिः, राज-पुत्र-देशे गृहे गृहे मादृशा मत्तोऽप्यधिकाश्च रणधीरा वीरा· समुल्लसन्ति । परन्तु राज्यमाभ्यन्तर-बलमवलम्ब्य स्थिरं भवति, न तु बाह्यम् । स्नेह-पाश-बद्धाः सुहृदः प्रजा भृत्याश्च राजार्थं प्राणानपि तृणाय मन्यन्ते, क्रौर्य्य-कण्टकोत्सारिताश्च त एव राजानं हन्तुमवसरं प्रतीक्षन्ते । प्रत्यक्षमेव दृश्यताम् ! यदि भवता सह मैत्रीं स्वच्छेन निश्छद्मना च हृदा समरक्षिष्यद् दिल्लीपतिः, तद्दखण्डस्तस्य प्रतापो दक्षिण-देशेऽपि बद्धमूलः प्राज्वलिष्यत् । भवत्खड्गमाश्रित्य स विजयपुरादि-महाराजानपि व्यजेष्यत, प्रासारयिष्यच्च स्वप्रतापं सिंहल-द्वीपेऽपि । एव मत्प्रतिज्ञा-रक्षण-सक्षणञ्चावलोक्याहमपि द्विगुणतरोत्साहेन मैत्र्युचितकार्य्याणि निरवक्ष्यम् । मयि भवति च तथाऽनुगते; शेषाः सर्वेऽपि महाराजास्तं सममानयिष्यन् । आवयोर्मन्त्रणामुररीकृत्य यदि स वैदिक-धर्म्म-विरोधमत्यक्ष्यत्; तत् सर्वा अपि प्रकृतय· पितरमिवैनमपूज-यिष्यन् । एवं स्ववशीकृताखिल-भारतवर्षस्य वर्षीयसोऽप्यस्य प्राज्यं राज्यं वर्षाणां सहस्रेणाप्यभेद्यं समपत्स्यत । परमधुना दुरा-

---

निर्वक्ष्यति=सञ्चालयिष्यति ।

वक्षि=कथयसि । महाध्वनि=मृत्युमार्गे । क्रौर्यमेव कण्टकम्, तेन उत्सारिताः=उत्खाताः, सिंहलद्वीपे=रामेश्वरादनतिदूरे समुद्रगर्भस्थे द्वीपविशेषे । भ्रमादनेके तमेव लङ्कात्मना जानन्ति, किन्तु भूमध्यरेखाया तदसत्त्वाद्वाल्मीकिप्रदर्शित–शतयोजनात्मकान्तरालस्य चाविद्यमानत्वान्नासौ लङ्केति निर्धारितमिति वेदितव्यम् । वर्षीयसः=अतिवृद्धस्य । प्राज्यम्=

चारैरेतस्य न कोऽपि भारतीय एवं स्निह्यति—इति सत्स्वपि वीर-सहस्रेषु अचिराद्विलयं यास्यति यवन-राज्यम्, विजयपुर-गोल-खण्ड-नगराद्यधीशाः प्रसिद्धाः शत्रवोऽस्य। चिरशत्रुरुदयपुराधीश., नन्दक-सम्प्रदायाऽऽचार्य्य-तिरस्कारिणोऽस्य पाञ्चालचोराः सर्वेऽपि शिक्ष्या विपक्षाः। भारतचन्द्रादि-महामान्य-जनावहेलनेन वङ्गदेशे न कोऽप्यस्य मित्रम्। भवान् जगद्विदित एतस्य सपत्नः। मामकाश्च रामसिंहादयोऽप्येतस्य विश्वास-घातकतायाः स्मारं स्मारं सन्धि-बन्ध शिथिलीकृतवन्तः—इति न चिरमवतिष्ठते यवनराज्यम्।

स्वयम्—[रोष-ज्वलित-नयनः] देवोऽश्वमेध-यज्ञे शाकल्यैः साकं यवन-राज्य-प्रतापमपि हुतवान्। यद्गीतानि गायं गायं योषितो बालान् शाययन्ति—इति कथन्न स्यान्नाश एषां कदाचारिणां प्रजा-मृग-वृकाणाम्॥

जय०—[प्रवृद्धोच्छ्वासवेगः] वीर! प्रत्यक्षमिव पश्यामि यत् कोप-ज्वलन-ज्वालाः परितः प्रवृद्धाः। अत्यन्तं यतमानोऽपि न पारयत्यवरङ्गजीवः प्रशमयितुम्। एष रोदिति, विलपति, अतिपश्चात्तापैस्तप्यते, सर्वोऽपि चास्य पराक्रमी घृतधारेव ज्वाला-जालमेतद् द्विगुणयति, न तु शमयति। सोदर्य्याणां शिरश्छित्वा जरा-जर्जरं जनकञ्च कारागारे निगृह्य, हत्या-काण्ड-सहस्रैः पर-लोकं यन्त्रणामयं विधाय, धूम-ध्वान्तेनेव दुर्य्यशः-सङ्घातेनाऽऽ-

---

समृद्धम्। शिक्ष्याः="सिक्ख" इति ख्याताः। भारतचन्द्रादीनाम्, महा-मान्यानाम्, अवहेलनेन=तिरस्करणेन, अन्नदा-मङ्गलादिकाव्यरचयिता वङ्गभाषाया महाकविः श्रीभारतचन्द्रोऽवरङ्गजीवेन दिल्लीमाहूतस्तिरस्कृत-श्चेति तेनैवालेखीति मूलकारानुमोदिता टिप्पणी।

शाकल्यैः=हविष्यैः। गायं गायम्=गीत्वा गीत्वा, शाययन्ति=स्वापयन्ति। प्रजा एव मृगाः, वृकाणाम्=दीर्घोदराणाम् "हुंडार" इति ख्यातानाम्। प्रजाहिंसकानामिति भावः।

घृतधारेव=सर्पिःप्रवाह इव। यन्त्रणामयम्=संकटप्रायम्।

स्मानमावृत्य च समासादितमस्य राज्यं स्वयं हस्तात् स्खलति। एतस्य निजा अप्यमात्या बान्धवाः सैनिकाः प्रकृतयश्च प्रत्यर्थिनः संवृत्ताः, सर्वेऽपि भारतीया एतं हस्तावुद्यम्य शपन्ति। कोप-ज्वलन ज्वाला-धूम्याभिमर्शका इव परितो यवन-वराकाः प्रनष्टाः।

महाराष्ट्र-वीरा दिल्लीं विलुण्ठन्ति। भग्नोऽसौ दिल्लीश्वर-प्रासादः। क्वासौ वराकः कदर्य्योऽवरङ्गजीवः—इत्यस्य देहोऽपि नोपलभ्यते।

आः! किं स्वप्नमिव पश्यामि? [दीर्घं निश्वस्य] विश्वम्भर! विलक्षणस्ते महिमा। भगवन्! चिरमुद्भ्रान्तोऽस्मि जालेष्वेतेषु। सम्प्रति दर्शयाऽऽत्मानम्! [उच्छ्वस्य] दिष्ट्या दृष्टोऽसि! अहो शोभा!! स्मृत एव सपदि समायातोऽसि। शारदाऽऽकाश-श्यामेषु तवाङ्गेषु तारका इव स्वेद-बिन्दवो भासन्ते। गलित-कुसुम-बन्धनाः कुञ्चित-मेचक-कचाः स्वेदाक्तौ कपोलौ चुम्बन्ति। सौदामिनी-वृन्द-विनिन्दकमिदं वसनमंसात् स्खलति। मौक्तिक-हाराः कुसुममालिकाश्च परस्परं सङ्ग्रथिताः। [सगद्गदम्] कन्दरान् प्रविश्य, कर्णौ सम्मुद्र्य, चक्षुषी सम्मील्य, श्वासमवरुध्य, मनो नियम्य, योगिराजैरपि कथं कथमपि ध्येयं देहि ते पादाम्बुजम्।

[दीर्घमुच्छ्वस्य] मन्देन स्वरेण नारायण! दामोदर! विश्वम्भर! जगदीश्वर! हरे! हरे! [ततो दौर्बल्यमस्य वाचमरुणत्] विलोक्यैवमुपरतप्रायं राजपुत्र-रणधीरता-धुरन्धरम्, आत्मानं नियन्तुमपारयन् बालक इव महाराष्ट्रराज उच्चै रुरोद, निद्रा

कोपज्वलनज्वालानाम्, धूम्याभिः=धूमसमूहैः।

जालेषु=इन्द्रजालायमानेषु जगत्सु। स्वप्नेष्विति यावत्। शारदा-काशवत्, श्यामेषु=नीलेषु, सौदामिनीवृन्दस्य=तडिद्गणस्य। विनिन्दकम्=विजेतृ। योगिराजैरपि कथं कथम्, अविजितहृषीकाणा-मात्मात्मीयगणनिपतितमनसान्तु का कथा।

चास्य समभज्यत। चिरं विचार-मग्न इव चोत्थाय भगवन्तं सूर्यं प्रणनाम।

× × ×

अद्य महाराष्ट्रदेशे गृहे गृहे जयध्वनिः, गृहे गृहे भेरीनादः, गृहे गृहे च शस्त्र-परिष्कारः। गुञ्जा-तोलनेन खिन्नमिव हिरण्य-गर्भस्य हरेरेकं रूपमिव हिरण्यमानन्दयितुमष्टोत्तरं शतं यावदात्मना सन्तोल्य, ब्राह्मणेभ्यो व्यतरन्महाराष्ट्रपतिः। तावदागत्य विजयध्वजे-नोक्तम्—देवानां प्रताप-तपन-प्रभावेण मथुरापर्य्यन्तं सपत्ना

समभज्यत=भग्ना। सूर्यं प्रणनाम=प्रत्यूहवारणार्थं दुःस्वप्नफलनि-वारणार्थञ्च भास्करं नमश्चक्रे। प्रातरभवदित्यपि व्यङ्ग्यम्। प्रातःकालदृष्टश्च स्वप्नो नानर्थको भवतीति बोधयन् सत्यघटनया साम्य प्रस्तौति। अत एव स्वाप्निकानीमानि वास्तविकविजयघटनाया सम्मिश्रितानीति वेदितव्यम्।

× × ×

गुञ्जाभिः=रक्तिकाभिः, "रत्ती" इति हिन्दीतोलनेन। खिन्नमिव= दुःखितमिव। खेदकारणं दर्शयति—हरेरेकं रूपं हिरण्यमिति। परम-पुरुषस्वरूपसुवर्णस्य नीचतमगुञ्जासाम्यप्रदर्शनात्खेदः, एतच्च प्राचीनेन कविना केनचिदित्थं प्रदर्शितम्—

"उचिताऽसि तुले। किं तुलयसि गुञ्जाफलैः कनकम्"

हिरण्यस्य भगवद्रूपत्वञ्च—

तदण्डमभवद्धैम सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः॥

इति मानवादिषु सर्वकारणीभूतस्य हैमत्वोक्त्या स्फुटमेव। विस्पष्टञ्चैत च्छतपथब्राह्मणे प्रतिपादितमिति वेदितव्यम्। अष्टोत्तरशतं यावत्=अष्टो त्तरशतवारम्। आत्मना सन्तोल्य, तुलादानमिति कथ्यते, लोकै सर्वेभ्यो वस्तुदानेभ्यः प्रशस्यञ्चेदम्।

यवना अपसारिताः । अकस्माच्च मोहावर्त्तखानो दिल्लीश्वरस्यान्यतमः सेनानीर्महत्या सेनया समायातः, किन्तु "हन्यतां हन्यतां जितं जितम्"—इति सक्ष्वेडं सेनासमुद्रे सोत्फालं पतितेषु महाराष्ट्र-केसरिषु; ते प्रहरमात्र-युद्धेनैव विमुखा अभूवन्। रिपूणां रक्त-चन्दन-क्षोदेनेव गाढ-रक्तेन समर्च्य, अलि-कुलाऽऽकुलैः कमलैरिव चैषां सश्मश्रुवदनैः समपूज्यत भगवती वसुन्धरा, हतशेषा भटम्मन्याश्च पलायिताः । विलक्षणोऽयमत्र भवतः प्रभावो यद्—"विजयतां महाराष्ट्रराज."—इति गर्जनं श्रुत्वैव पश्चादनवलोकयन् सर्वोऽपि यवन-भटः पलायते ।

इत्याकर्ण्य सर्वेऽपि सभास्थाः खणखणित-खड्गा वीरास्तार-तरेण स्वरेण "जयति सनातनो धर्म्म., विजयतां महाराष्ट्रपतिः"-इत्यादि सहर्षमवोचन् ।

समस्तेऽपि महाराष्ट्र-देशे सर्वतः समुत्थितं भेरी-झर्झर-पण-वादि-नाद-सहकृतं प्रतिध्वनि-निवह-सहस्र-गुणितं जयध्वनि-ध्वान-ममुं कन्दरि-कन्दरेष्वपि प्रविष्टं गृहीत-ब्रह्मचारि-गुरु-वेषेण वीर-वीरेन्द्रसिंहेन कुटीरे पूजितः स एव योगिराजोऽपि कथं कथमपि समाधि-सन्धावश्रौषीत् ।

श्रुत्वैव च कन्दराद् बहिरागत्य, शैलसानुं समारुह्य, त्राटकी-त्रुटितावरोधया दृष्ट्या सुदूरं पश्यन्, आपूर्वसमुद्र-

---

मोहावर्त्तखानः="मोहब्बत खां" इति ख्यातः ।

स एव योगिराजः=य आदिमनिश्वासे कथादौ स्मृतः । योगिराज-चरितेनैव समारभ्य तेनैव समापयन् उपक्रमोपसंहारयोरैक्यं प्रदर्शयति । समाधिसन्धौ=चित्तनिरोधविरामकाले । ध्वनिरयं समाधिभङ्गश्च दैवाद्वा योगिना तत्कालस्य पूर्वत एव ज्ञातत्वाद्वा समकालमेव समभूदिति तत्त्वम् ।

त्राटक्या=योगमुद्राविशेषेण,त्रुटितः,अवरोधः प्रतिबन्धो यस्या एवम्भूतया । चक्षुषोर्भ्रुवोरन्तरे संस्थापनं त्राटकी । तया चक्षुषोर्नियता शक्तिरप्रतिहता

मापश्चिमसमुद्रमालङ्कमाविन्ध्यञ्च कुसुमितमिवोद्यानम् , प्रफुल्ल-कमलमिव तडागम् , विध्वस्त-दानव-वृन्दमिव चेन्द्रपुरम् ,महाराष्ट्र-राज्यं पश्यन् , बहुश आशिषो वदन् पुनः समाधिमाकलयितुं तमेव कन्दरं प्रविष्टः ।

भवति । अत एव योगी सर्वं द्रष्टुं शक्नोतीति तात्पर्यम् । आलङ्कम्= आसिंहलमिति तात्पर्यम् । वस्तुतस्तु लङ्कासिंहलयोर्भेद इति पूर्वं प्रतिपादितम् । राक्षसराजनगरी भूमध्यरेखाया विद्यमाना रामेश्वरकूलाच्छतयोजनदूरे स्थिता लङ्का रामरावणयुद्धसमाप्तावेव समुद्रेण जलप्लाविता, अधुनाऽपि जलमग्नैव तिष्ठति, तस्याश्च कियानंशो दृष्टिगोचरो भवतीति वेदितव्यम् ।

भवति चात्रेतिहासवचनम्

"सप्तमेऽह्नि ता लङ्का समुद्रः प्लावयिष्यति ।" इति ।

अस्मद्रचितपुराणमतदीपिकाया सुविशदं निरूपितमिदम् ।

यतो धर्मस्ततो जय इति पद्यखण्डं विशदयन् धर्मपदस्य वास्तविकं तत्त्वञ्च प्रदर्शयन् तमेव पद्यखण्डं विवर्द्धय पठति–यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जय इति ।

शेषाशेषवचोविमन्थनविधौ मन्थानदण्डायितां
वाणीं यस्य निपीय पाणिनिगवीचिन्तापराः शाब्दिकाः ।
सोऽयं पण्डितपण्डितार्चितपदो नारायणान्तो हरः
ख्यातो भूवलयेऽधिकाशि निवसन् यस्य त्रिपाठी गुरुः ॥१॥
तर्के कर्कशतामुपागतवती यद्भारती भारते
गङ्गात्मत्वमुपागता विदलयत्यान्वीक्षिकीदूषणम् ।
सोऽयं श्रीशिवदत्तमिश्रविबुधो गौडाब्जिनीवल्लभो
यं प्राबोधयदञ्जसा मतिमताम्मोदावहं दर्शनम् ॥ २ ॥
वैयासे गणितो ग्रहीयगणिते पारङ्गतः पण्डितः
श्रीमान् भागवतो बभूव जनको यस्यातिपौराणिकः ।

प्रविशंश्च मन्दमन्दमेवमपठत्—

यद्—"यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः ।"

"हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः

साधुः समत्वेन भयाद् विमुच्यते"

इति महाकविश्रीमदम्बिकादत्तव्यासविरचिते शिवराजविजये

द्वादशो निश्वासः ।

इति तृतीयो विरामः ।

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

यं प्रासूत सतीशिरोमणिरनल्पै राजिता सद्गुणै—
र्देवी दिव्यशरीरिणी भगवती कीर्त्या स्थिता भूतले ॥३॥
पाण्डेयोत्तररामजीत्यभिहितः सोऽयं सिपाहोद्भवो
व्यासोक्ते शिवराजवीरविजये विद्वज्जनाङ्कीकृते ।
सप्त्यङ्काङ्कवसुन्धरापरिमिते श्रीवैक्रमाब्दे वरे
पूर्णायामथ माधवेऽन्वगमयच्छ्रीवैजयन्तीमिमाम् ॥४॥

श्रीशिवराजविजयवैजयन्त्या द्वादशनिश्वासविवरणं समाप्तम् ।

इति तृतीयो विरामः



शुक्लयजुर्वेदीय मंत्र-संहिता

[सम्पादक—वेदाचार्य पं० श्रीवेणीरामशर्मा गौड]

जो लोग समस्त 'शुक्लयजुर्वेद-संहिता' न पढ़कर केवल कर्मकाण्डीय आवश्यक मंत्रों को कण्ठस्थ कर अल्प समय में ही कर्मकाण्डप्रक्रिया में पूर्ण निपुणता प्राप्त करना चाहते हैं उनके लिये 'मंत्र-संहिता' अत्यन्त उपयोगी है।

इस पुस्तक में ५९३ मंत्र हैं। प्रारम्भ में ९६ पेज की विशद् महत्त्व-पूर्ण भूमिका लिखी गयी है, जिसमें वैदिकसाहित्य का पूरा-पूरा परिचय दिया गया है, जिसका साधारण ज्ञान वैदिकों को तथा व्याकरणादि शास्त्र-परिशीलनकर्ताओं को होना विशेष आवश्यक है। सर्वसाधारण की जानकारी के लिए, विशेषत वेद के परीक्षार्थियों के लिये लोकाहरण जटादि अष्ट-विकृतिलक्षण (पद, क्रम, जटा, घन आदि के मन्त्र, जिनका उपयोग वसन्त पूजा में भी होता रहता है) भी दे दिया गया है।

मंत्रों में, स्वरों और द्वित्वादि की शुद्धता की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। विलायती कागज, सुन्दर वम्बइया मोटा टाइप। ऐसी 'मंत्रसंहिता' आज तक दूसरी नहीं छपी। मूल्य—तीन रुपये

—हिन्दी में 'शतरंज' की एक मात्र पुस्तक—

च तु रं ग चा तु री

'महाकवि अम्बिकादत्त व्यास' की रचना है—जो अपने समय के अद्वितीय खिलाडी थे और 'गायबवाजी शतरंज' खेलते थे।

इस पुस्तक में खेल के नियम—मोहरों की चाल—एक घर में बिना दो बार गये चौसठों घरों में घोड़े का घूम आना—तीन पट्टियों में, चार, पाँच, छ और सात पट्टियों में घोड़ा घूमने का नकशा—घोड़ा घूमने के अनेकों विचित्र नकशे—हुक्मी चालें—किले की बँधावट—किला तोड़ने के उपाय—किस मोहरे से कैसे मात की जाती है—मात करने के तरह-तरह के नकशे और हमेशा काम में आने वाले एक-से-एक बढ़ कर नकशे।

मात करने के तरह-तरह के दाँव-पेच सिखाने वाली—खेल में दक्ष बनाने वाली—शतरंज प्रेमियों के बड़े ही काम की